॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

४१



वराहमिहिरविरचिता

बृहत्संहिता

'खुर्जा'नगरस्थश्रीराधाकृष्णसंस्कृत-महाविद्यालय-त्रिस्कन्धज्यौतिष-

प्रधानाध्यापक-ज्यौतिषाचार्य-पौरोहित्याचार्य-साहित्याचार्यादि-

पदवीक-प्राप्त'रौप्य'स्वर्णपदकेन

पण्डित श्री अच्युतानन्द झा शर्मणा

नवीनोदाहरणोपपत्तियुक्त-'विमला'

हिन्दीटीकया सनाथीकृत्य संशोधनपुरस्सरं सम्पादिता



चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१

वि० सं० २०१५]   [ई० १९५९

प्रकाशक—
चौखम्बा विद्याभवन,
चौक, वाराणसी-१

The Chowkhamba Vidya Bhawan
Chowk, Varanasi-1
(INDIA)
1959

मुद्रकः—
विद्याविलास प्रेस, वाराणसी-१

भूमिका

तिष्ठन्तीं शववक्षसि स्मितमुखीं हस्ताम्बुजैर्बिभ्रतीं
मुण्डं खड्गवराभयानि विजितारातिव्रजां भीषणाम्।
मुण्डस्रक्प्रविकाशमानविपुलोत्तुङ्गस्तनोल्लासिनीं
नत्वेमां किल भूमिकां वितनुते मन्दोऽच्युतादिः कृती ॥

परमेश्वर के सम्बन्ध में शास्त्रों में प्रतिपादित है कि 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' अर्थात् वह परमात्मा छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा है। इस अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक परमात्मा के निःश्वासभूत, प्राणियों के आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक इन तीनों प्रकार के दुःखों का अपहरण करने वाला और चतुर्वर्ग प्राप्ति का अतिशय सुन्दर मार्ग-प्रदर्शक वेद है।

प्राचीन तथा आधुनिक इतिहासों के द्वारा यह सर्वथा सिद्ध हो चुका है कि उपलब्ध पुस्तकों में सबसे प्राचीन वेद है। इसको अपौरुषेय कहते हैं अर्थात् किसी मनुष्य ने इसको नहीं बनाया, किन्तु प्राणियों के हित के लिये सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने त्रिकालज्ञ महर्षियों के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में इसे प्रकाशित किया।

यहाँ पर मनु—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥

श्लोकवार्तिक में—

श्रेयः साधनता ह्येषां नित्यं वेदात्प्रतीयते।
ताद्रूप्येण च धर्मत्वं तस्मान्नेन्द्रियगोचरः ॥

और भी—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता ॥

ब्राह्मणों को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

यहाँ पर मनु—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

इसके व्याकरण आदि छै अङ्ग हैं, जैसे—व्याकरण मुख, ज्यौतिष नेत्र, निरुक्त कान, कल्प हाथ, शिक्षा नासिका और छन्द पैर है—

श्रीमान् भास्कराचार्य—

शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्प: करौ ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधै: ॥

वेदपुरुष का नेत्ररूप होने के कारण ज्यौतिष शास्त्र सब अङ्गों में उत्तम गिना जाता है, क्योंकि अन्य सब अङ्गों से समन्वित भी प्राणी नेत्ररहित होने पर कुछ नहीं कर सकता।

यहाँ पर भास्कराचार्य—

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते ।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः ॥

काश्यप के मत से इस शास्त्र के सूर्य आदि अट्ठारह महर्षि प्रणेता हैं—

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि: पराशरः ।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा: ॥
लोमश: पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगु ।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्यौति शास्त्रप्रवर्त्तका: ॥

किन्तु पराशर के मत से ज्यौति शास्त्रप्रवर्त्तक उन्नीस हैं—

विश्वसृड् नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि पराशरः ।
लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवनः कश्यपो भृगु ॥
पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिश: शौनकोऽङ्गिराः ।
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्यौति प्रवर्त्तका: ॥

पराशर के मत से ज्यौतिश्शास्त्र में गुरु और शिष्य की सम्बन्ध परम्परा इस प्रकार है—

नारदाय यथा ब्रह्मा शौनकाय सुधाकरः ।
माण्डव्यवामदेवाभ्यां वसिष्ठो यत्पुरातनम् ॥
नारायणो वसिष्ठाय रोमेशायाऽपि चोक्तवान् ।
व्यास: शिष्याय सूर्योऽपि मयारण्यकृते स्फुटम् ॥
पुलस्त्याचार्यगर्गोऽत्रिरोमकादिभिरीरितम् ।
विवस्वता महर्षीणां स्वयमेव युगे युगे ॥
मैत्रेयाय मयाप्युक्तं गुह्यमध्यात्मसंज्ञकम् ।
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं लोके यत्नातिदुर्लभम् ॥

इस वेद के नेत्ररूप ज्यौतिष शास्त्र के सिद्धान्त, गणित, फलित ये तीन स्कन्ध हैं।

सिद्धान्त उसको कहते हैं जिसमें सृष्टिकाल से लेकर प्रलय के अन्त तक के काल

की गणना हो; सौर, सावन, चान्द्र, नक्षत्र आदि मानों का भेद प्रतिपादित हो, ग्रहों के संचार का ज्ञान-प्रकार हो, दो प्रकार का (व्यक्त, अव्यक्त) गणित हो, उत्तरसहित प्रश्न हों; पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति का वर्णन हो और यन्त्र आदि का वर्णन हो। सिद्धान्तशिरोमणिकार द्वारा यही परिभाषा मान्य है—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदस्तथा
चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥

गणित स्कन्ध उसको कहते हैं जिसमें व्यक्त, अव्यक्त आदि अनेक प्रकार के गणित वर्णित हों। यह स्कन्ध सिद्धान्तस्कन्ध के अन्तर्गत ही पाया जाता है।

फलित स्कन्ध के मुख्य पाँच भेद हैं—जातक, ताजिक, मुहूर्त, प्रश्न और संहिता।

जिसमें जन्मकाल के द्वारा प्राणियों के जीवनसम्बन्धी सब तरह के फल कहे गये हैं उसको जातक कहते हैं। वस्तुतः जन्मकाल के ज्ञान के बिना प्राणियों का जीवन अन्धकार में रहता है—

यस्य नास्ति किल जन्मपत्रिका या शुभाशुभफलप्रदायिनी।
अन्धकं भवति तस्य जीवितं दीपहीनमिव मन्दिरं निशि॥

ताजिक विभाग से वर्षफल, मासफल आदि का ज्ञान होता है।

पूर्वापर सन्दर्भ देखने से यह निश्चित होता है कि यवनों ने ताजिक शास्त्र में विशेष उन्नति की, अतः ज्यौतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों में यवनाचार्य का भी नाम आता है। ऐसा जान पड़ता है कि पूर्व समय में अन्यत्र ज्यौतिषी लोग वर्षफल आदि अन्य प्रकार से बनाते थे। नीलकण्ठाचार्य ने यवनों से ताजिकशास्त्र का अध्ययन करके ताजिकनीलकण्ठी नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। इसमें योगों के नाम फारसी शब्दों में इक्‌बाल, इन्दुवार आदि हैं। इन शब्दों को बदल कर संस्कृत शब्दों के द्वारा योगों के नाम नहीं लिखे, अतः यह भी सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में विद्वानों में गुणग्राहकता अत्यधिक थी।

मुहूर्तविभाग में जातकर्म, अन्नप्राशन आदि सकल मुहूर्तों का वर्णन है।

प्रश्नविभाग में मूकप्रश्न आदि का वर्णन है।

संहिताविभाग फलित ज्यौतिष का प्रधान अङ्ग है। इसमें ग्रहचार आदि फलों के अतिरिक्त वायसविरुत, शिवारुत, मृगचेष्टित, श्वचेष्टित, गवेङ्गित, अश्वेङ्गित, हस्तिचेष्टित, शाकुन आदि विषयों का फल भी लिखा है अतः इसको फलित का एक प्रधान अङ्ग मानना पड़ेगा।

इस विभाग के अन्तर्गत यह बृहत्संहिता नामक ग्रन्थ अनुपम है, जिसको आदित्यदास के पुत्र, त्रिस्कन्ध ज्यौतिष शास्त्र में पारंगत श्री वराहमिहिराचार्य ने बनाया।

इस समय एतद्देशीय सम्पूर्ण संस्कृत विद्यालयों में यह बृहत्संहिता नामक ग्रन्थ परीक्षा में पाठ्यत्वेन निर्धारित है परन्तु इसके मूल श्लोकों के अत्यन्त कठिन होने के कारण अर्थज्ञान के लिये विशेष प्रतिभा की आवश्यकता है। इसकी संस्कृत में भट्टोत्पलीय टीका बहुत अच्छी है किन्तु इस टीका द्वारा सर्वसाधारण के लिए मूल श्लोकों का अर्थ जानना कठिन था अतः जनसाधारण के उपकारार्थ इस ग्रन्थ की सरल परिशुद्ध हिन्दी टीका मैंने की है। आशा है पण्डितगण इस विमला हिन्दी टीकायुत अनुपम ग्रन्थ को देखकर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

काशी के प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थान 'चौखम्बा संस्कृत सीरिज' के अध्यक्ष श्रीमान् बाबू जयकृष्णदास जी ने तत्परतापूर्वक शीघ्र ही इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर दिया अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

अवसान में सविनय करबद्ध प्रार्थना यही है कि अनवधान वश अथवा मुद्रणदोष से कहीं त्रुटि रह गई हो तो पक्षपातरहित बुद्धि से पण्डित गण उसे सुधार कर मुझे *भी सूचित करें, जिससे कि पुनः अग्रिम संस्करण में उसको ठीक कर* उन सज्जनों के सामने उपस्थित कर सकूँ।

कहा भी है—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

दुर्जन गण अनेक प्रकार से प्रार्थना करने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ सकते हैं, अतः उनसे प्रार्थना करना व्यर्थ है, क्योंकि—

खलो मृगयते दोषं गुणपूर्णेषु वस्तुषु।
वने पुष्पफलाकीर्णे पुरीषमिव सूकरः॥

संवत् २०१५
वसन्तपञ्चमी

विदुषां वशंवद
श्री अच्युतानन्द झा

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥

बृहत्संहिता

'विमला' टीकोपेता





उपनयनाध्यायः

टीकाकर्तृमङ्गलाचरणम्—

आबद्धयेन्द्रियसञ्चयं रिपुगणं जित्वा च कामादिकं
रुद्ध्वा प्राणगतिं प्रसन्नमनसा संयोज्य सिद्धासनम् ।
श्यामाङ्गीं शशिशेखरां भगवतीं पश्यन्ति यां योगिनो
वन्दे तामनिशं सुरासुरनुतां स्मेराननां मातरम् ॥
कृत्याकृत्यविचारणासु कुशलं को वा न वेत्ति क्षितौ
प्रश्नानाकर्ण्य तूर्णं सदसि सरति वाग् यन्मुखादुत्तरार्थम् ।
छात्राध्यापनकर्मणैव महती संस्थापिता भारते
कीर्तिर्येन बुधाग्रणीं गुरुवरं गैनादिलालं भजे ॥
ग्रामे निवासी 'जरिसो' समाख्ये श्रीपाच्युतानन्दकृतीह मैथिलः ।
निर्माति टीकां विमलाभिधानां ग्रन्थेऽतिचित्ते हि वराहनिर्मिते ॥

ग्रन्थप्रयोजन—

जयति जगतः प्रसूतिर्विश्वात्मा सहजभूषणं नभसः ।
द्रुतकनकसदृशदशशतमयूखमालार्चितः सविता ॥ १ ॥

संसार की उत्पत्ति का कारण—'अग्नौ हुताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः' मनु ।-विश्व की आत्मा-सूर्य 'आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' श्रुति । आकाश का स्वाभाविक आभूषण और द्रवित सुवर्ण के समान अनेक किरणों से शोभायमान श्री सूर्य भगवान् सर्वोत्कृष्टता से वर्तमान हैं ॥ १ ॥

प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम् ।
नातिलघुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम् ॥ २ ॥

प्रथम मुनि (ब्रह्माजी) से कहे हुए विस्तृत ग्रन्थ का सत्य अर्थ देख कर स को ही अति संक्षेप और विस्तार से रहित रचना के द्वारा स्पष्ट रूप से कहने लिये प्रस्तुत हुआ हूँ ॥ २ ॥

मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरन्तनं साधु न मनुजग्रथितम् ।
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥ ३ ॥

जो प्राचीन मुनि के द्वारा विरचित है वही यथार्थ है, और मनुष्य का लिखा हुआ नहीं ऐसा कहना भी ठीक नहीं है यत. मन्त्रात्मक से भिन्न शास्त्र में अर्थ की तुल्यता रहने से केवल अक्षर मात्र का भेद. रहने पर क्या विशेषता हो सकती है अर्थात् कुछ भी नहीं ॥ ३ ॥

क्षितितनयदिवसवारो न शुभकृदिति यदि पितामहप्रोक्ते ।
कुजदिनमनिष्टमिति वा कोऽत्र विशेषो नृदिव्यकृतः ॥ ४ ॥

जैसे ब्रह्माजी के रचित ग्रन्थ में 'क्षितितनयदिवसवारो न शुभकृत्' और मनुष्य-कृत ग्रन्थ में 'कुजदिनमनिष्टम्' ऐसा लिखा है। पाठमात्र भेद के अतिरिक्त मनुष्य-कृत से मुनिकृत में क्या विशेषता है अर्थात् कुछ भी नहीं ॥ ४ ॥

आब्रह्मादिविनिःसृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः ।
क्रियमाणकमेवैतत्समासतोऽतो ममोत्साहः ॥ ५ ॥
आसीत्तमः किलेदं तत्रापां तैजसेऽभवद्धैमे ।

ब्रह्मा आदि मुनियों के द्वारा कहे हुए शास्त्रों में अतिविस्तार देखकर क्रम से और संक्षेप से इस शास्त्र को बनाने के लिये यह मेरा उत्साह है।

यहाँ पर गर्ग—

स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं चक्षुर्भूतं द्विजन्मनाम् ।
वेदाङ्गं ज्यौतिषं ब्रह्मपरं यज्ञहितावहम् ॥
मया स्वयम्भुवः प्राप्तं क्रियाकालप्रसाधनम् ।
वेदानामुत्तमं शास्त्रं त्रैलोक्यहितकारकम् ॥
मत्तश्चान्यानृषीन् प्राप्तं पारम्पर्येण पुष्कलम् ।
तैस्तदा सृष्टिभिर्भूयो ग्रन्थैः स्वैः स्वैरुदाहृतम् ॥ ५ ॥

स्वर्भूशकले ब्रह्मा विश्वकृदण्डेऽर्कशशिनयनः ॥ ६ ॥

यह सम्पूर्ण जगत् पहले अन्धकारमय था। वहाँ अन्धकार का विषय जल में तेजोमय एक सुवर्ण का अण्डा उत्पन्न हुआ, उसके दो टुकडे स्वर्ग और पृथ्वीरूप हुये, इन टुकड़ों में से सूर्य, चन्द्र रूपी नेत्र वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुये।

कहा भी है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥
ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ॥
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु समप्रभम्।
तस्मिन् यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायन पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्य सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां तु दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थान च शाश्वतम्॥ ६॥

कपिलः प्रधानमाह द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्य।
कालं कारणमेके स्वभावमपरे जगुः कर्म॥ ७॥

जगत् की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं, जैसे कपिल मुनि प्रधान मूलप्रकृति), कणाद द्रव्य आदि पदार्थ, कोई काल, दूसरे स्वभाव और मीमांसक कार्य को जगत् की उत्पत्ति का कारण मानते हैं॥ ७॥

तदलमतिविस्तरेण प्रसङ्गवादार्थनिर्णयोऽतिमहान्।
ज्योतिःशास्त्राङ्गानां वक्तव्यो निर्णयोऽत्र मया॥ ८॥

जगत् की उत्पत्ति के विषय में विस्तृत रूप से विचार करना व्यर्थ है, क्योंकि इस विषय का वर्णन करने में भी अनेक अन्य अतिविस्तृत विषयों की आवश्यकता होगी, अतः इस प्रसङ्ग को छोड़ कर प्रस्तुत ज्यौतिष शास्त्र के अङ्गों का वर्णन करना है॥ ८॥

ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं
तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता।
स्कन्धेऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
होरान्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोऽपर ९॥

अनेक भेदों से युत ज्यौतिष शास्त्र के तीन स्कन्ध (संहिता, त[illegible]) हैं।
जिस में सम्पूर्ण ज्यौतिष शास्त्र के विषयों का वर्णन हो उसको [illegible] कहते हैं।
जिस में गणित द्वारा ग्रहगति का निर्णय किया गया हो उ[illegible] कहते हैं।

इन के अतिरिक्त जातक फल मुहूर्त आदि का निर्णय जिस में हो उस को होरा स्कन्ध कहते हैं।

गणितं जातकं शाखा यो वेत्ति द्विजपुङ्गव ।
त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्टः संहितापारगश्च सः ॥ ९ ॥

वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणां करणे मयोक्ताः ।
होरागतं विस्तरतश्च जन्मयात्राविवाहैः सह पूर्वमुक्तम् ॥ १० ॥

मैंने करण ग्रन्थ (पञ्चसिद्धान्तिका) में तारा ग्रहों (भौमादि पञ्च ग्रहों) के वक्र, मार्ग, उदय आदि वर्णन किये हैं। तथा होरा (बृहज्जातक, बृहद्विवाहपटल आदि) ग्रन्थों में जन्म, यात्रा, विवाह आदि विस्तारपूर्वक वर्णन किये हैं ॥ १० ॥

प्रश्नप्रतिप्रश्नकथाप्रसङ्गान् स्वल्पोपयोगान् ग्रहसम्भवांश्च ।
सन्त्यज्य फल्गूनि च सारभूतं भूतार्थमर्थैः सकलैः प्रवक्ष्ये ॥११॥

शिष्यों के द्वारा किये गये प्रश्नों के प्राचीन मुनियों के द्वारा कहे हुये उत्तर, अनेक प्रकार के कथाप्रसङ्ग, सूर्य आदि ग्रहों की उत्पत्ति आदि थोड़े उपयोगी विषयों को छोड़ कर प्राणियों के हित के लिये सब प्रयोजनों से युत साररूप विषयों का इस ग्रन्थ में वर्णन करता हूँ ॥ ११ ॥

इति 'विमला'टीकायां शास्त्रोपनयनाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

सांवत्सरसूत्राध्यायः

अथातः सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्यामः ।

तत्र सांवत्सरोऽभिजातः प्रियदर्शनो विनीतवेषः सत्यवागनसूयकः समः सुसंहितोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारुकरचरणनखनयनचिबुकदशनश्रवणललाटभ्रूत्तमाङ्गो वपुष्मान् गम्भीरोदात्तघोषः । प्रायः शरीराकारानुवर्त्तिनो हि गुणा दोषाश्च भवन्ति ॥ १ ॥

इसके बाद इस अध्याय में सांवत्सरसूत्र (ज्यौतिषी का लक्षण) कहते हैं—

नवीन, देखने में प्रिय, नम्र, सत्यवादी, दूसरे के गुणों में दोष नहीं निकालने वाला, राग-द्वेष से रहित, दृढ और पुष्ट शारीरिक सन्धि वाला, सर्वाङ्गपूर्ण, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हाथ, पैर, नाखून, आँख, ठोढ़ी, दाँत, कान, मस्तक और शिर वाला, सुन्दर तथा बोलने में गम्भीर और उदात्त ज्यौतिषी होना चाहिये क्योंकि शरीर की आकृति के अनुरूप दोष-गुण होते हैं ॥ १ ॥

दैवज्ञों के गुण—

तत्र गुणाः। शुचिर्दक्षः प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभानवान् देशकालवित् सात्त्विको न पर्षद्भीरुः सहाध्यायिभिरनभिभवनीयः कुशलोऽव्यसनी शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरतः स्वतन्त्राश्चर्योत्पादितप्रभावः पृष्टाभिधाय्यन्यत्र दैवात्ययात्। ग्रहगणितसंहिताहोराग्रन्थार्थवेत्तेति ॥ २ ॥

दैवज्ञों के गुण कहते हैं—पवित्र, चतुर, सभा में बोलने वाला, वाचाल, प्रतिभाशाली, देश-काल को जानने वाला, निर्मल चित्त वाला, सभा में निर्भय, सहपाठियों से पराजय को नहीं पाने वाला, चेष्टाओं को जानने वाला, व्यसनों से रहित, शान्तिक (उत्पातों के निवारणार्थ वेदोक्त मन्त्र पाठ विनियोग का अनुष्ठान), पौष्टिक (आयु, धन आदि को बढ़ाने वाली विद्या), अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण, स्तम्भन, चालन आदि विद्या) इनको जानने वाला, देवपूजन, व्रत, उपवासों में निरत, अपने शास्त्र द्वारा आश्चर्यजनक विषय लाकर प्रभाव को बढ़ाने वाला, प्रश्नोत्तर करने वाला, दैवात्यय (प्राकृतिक अशुभ उत्पात) के निवारणार्थ बिना पूछे भी शान्ति कर्म बताने वाला और ग्रहों की गणित, संहिता, होरा इन के ग्रन्थों के अर्थ को जानने वाला दैवज्ञ होना चाहिये ॥ २ ॥

दैवज्ञों के लक्षण—

तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पञ्चस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्तनाडीप्राणत्रुटित्रुट्याद्यवयवादिकस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता ॥ ३ ॥

ग्रहगणित विभाग में स्थित पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर, पैतामह इन पाँच सिद्धान्तों में प्रतिपादित युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त, घटी, पला, प्राण, त्रुटि, त्रुटि के अवयव आदि कालों का तथा भगण, राशि, अंश, कला, विकला आदि क्षेत्रों का ज्ञाता ज्यौतिषी को होना चाहिये।

ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त में युगों का प्रमाण—

खचतुष्टयरदवेदा रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति।
सन्ध्यासन्ध्यांशैः सह चत्वारि पृथक् कृतादीनि ॥
युगदशभागो गुणितः कृतं चतुर्भिस्त्रिभिस्त्रेता।
द्विगुणो द्वापरमेकेन षड्गुणः कलियुगं भवति ॥

तैंतालिस लाख बीस हजार सौर वर्ष ४३२०००० संध्या संध्यांशसहित चारों युग (एक महायुग) का मान है। इस के दशमांश ४३२००० को चार से गुणा करने पर संध्या-सन्ध्यांश-सहित कृतयुग का मान = १७२८०००, तीन से गुणा करने पर

सन्ध्या-सन्ध्यांश-सहित त्रेता का मान = १२९६०००, दो से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांश-सहित द्वापर का मान = ८६४००० और एक से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांश-सहित कलियुग का मान = ४३२००० होता है।

सौरवर्षप्रमाण—

रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्षं प्रदिष्टम्।

मेषादि से लेकर मीनान्त पर्यन्त जितने सायन काल में रवि भोगता है, वह सौर वर्ष काल है। यह वर्षादि ३६५।१५।३०।२२।३० इतने होते हैं।

अयनज्ञानप्रमाण—

उदगयनं मकरादावृतवः शिशिरादयश्च सूर्यवशात्।
द्विभवनकालसमाना दक्षिणमयनं च कर्कटकात्॥

मकरादि छै राशियों में उत्तरायन और कर्क आदि छै राशियों में सूर्य हो तो दक्षिणायन होता है।

मकर-कुम्भ के सूर्य में शिशिर ऋतु, मीन-मेष के सूर्य में वसन्त, वृष-मिथुन के सूर्य में ग्रीष्म, कर्क-सिंह के सूर्य में वर्षा, कन्या-तुला के सूर्य में शरत् और वृश्चिक-धनु के सूर्य में हेमन्त ऋतु होती है।

प्राण आदि काल ब्रह्मसिद्धान्त में—

प्राणैर्विनाडिका षड्भिर्घटिका विनाडिका षष्ट्या।
घटिका षष्ट्या दिवसो दिवसानां त्रिंशता मासः॥
मासा द्वादश वर्षं विकला लिप्तांशराशिभगणान्तः।
क्षेत्रविभागस्तुल्यः कालेन विनाडिकाद्येन॥

दैवज्ञों के और लक्षण—

चतुर्णां च मानानां सौरसावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः॥ ४॥

सौर, सावन, नाक्षत्र, चान्द्र इन चारों मानों को और अधिक मास, क्षय मास इन के उत्पत्ति कारणों को जानने वाला ज्यौतिषी होना चाहिये।

विशेष—सूर्य के एक अंश भोग्य काल को एक सौर दिन, सूर्योदय से अग्रिम सूर्योदय तक एक सावन दिन, नक्षत्रोदय से नक्षत्रोदय तक एक नाक्षत्र दिन और एक तिथि भोग्य काल को चान्द्र दिन कहते हैं।

अधिमास और क्षयमास का लक्षण—

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद् द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्।
क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात् तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयञ्च॥

शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमान्त तक एक चान्द्र मास होता है, यदि इस चान्द्र मास में रवि की संक्रान्ति न हो तो अधिक मास, दो संक्रान्ति हो तो क्षय मास होता

है । क्षय मास कार्तिक आदि तीन ही महीने में होता है तथा जिस वर्ष में क्षय मास होता है उस वर्ष में दो अधिमास पतित होते हैं ॥ ४ ॥

दैवज्ञों के और लक्षण—

पष्ट्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिच्छेदवित् ॥ ५ ॥

प्रभव आदि साठ संवत्सर, तदन्तर्गत युग, वर्ष, मास, दिन, होरा इन के अधिपतियों की प्रतिपत्ति (प्रवर्तन) और छेद (निवृत्ति) का ज्ञान होना चाहिये ।

बारह युगों के नाम—

विष्णु सुरेज्यो वलभिद्हुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च ।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः ॥

वर्षाधिपानयन—

मुनियमयमद्वियुक्ते ह्युगणे शून्यद्विपञ्चयमभक्ते ।
प्रतिराशिस्तुंदहनैर्लब्धं वर्षाणि यातानि ॥
तानि प्रपञ्चसहितान्यग्निगुणान्यश्विवर्जितानि हरेत् ।
सप्तभिरेवं शेषो वर्षाधिपतिः क्रमात्सूर्यात् ॥

मासपति का आनयन—

त्रिशद्भक्ते मासाः प्रतिपत्सहिता द्विसङ्गुणास्त्येकाः ।
सप्तोद्धृतावशेषो मासाधिपतिस्तथैवार्कात् ॥

दैवज्ञों के और लक्षण—

सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटुः ॥६॥

अनेक शास्त्रों में कहे हुए सौर आदि मानों में यथार्थ और अयथार्थ का विचार करने में कुशल दैवज्ञ होना चाहिये । अर्थात् इन शास्त्रोक्त भिन्न-भिन्न मानों में कौन ठीक है इस का विचार करने में योग्य होना चाहिये ॥ ६ ॥

दैवज्ञों के और लक्षण—

सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षसममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानां छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः ॥ ७ ॥

सिद्धान्तों में सौर आदि मानों के भेद, अयननिवृत्ति के भेद, सममण्डल प्रवेशकालिक उदित अंशों के भेद, छाया जलयन्त्र से दृग्गणितैक्य इन को जानने में कुशल दैवज्ञ होना चाहिये ॥ ७ ॥

दैवज्ञों के और लक्षण—

सूर्यादीनां च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः ॥ ८ ॥

सूर्य आदि ग्रहों के शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर, नीच और उच्च गतियों के कारणों को जानने में कुशल दैवज्ञ होना चाहिये ॥ ८ ॥

दैवज्ञों के और लक्षण—

सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहणे ग्रहणादिमोक्षकालदिक्प्रमाणस्थितिविमर्दवर्णादेशानामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा ॥ ९ ॥

सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में स्पर्श, मोक्ष, इन के दिग्ज्ञान, स्थिति, विमर्द, वर्ण, देश, भावी ग्रहसमागम और ग्रहयुद्धों को कहने वाला दैवज्ञ होना चाहिये ॥ ९ ॥

दैवज्ञों के और लक्षण—

प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्ष्याप्रमाणप्रतिविषययोजनपरिच्छेदकुशलः ॥ १० ॥

प्रत्येक ग्रहों के योजनात्मक कक्षाप्रमाण और प्रत्येक देशों का योजनात्मक देशान्तर जानने में कुशल दैव होना चाहिये ॥ १० ॥

दैवज्ञों के और लक्षण—

भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्व्यासचरदलकालराश्युदयच्छायानाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञः ॥ ११ ॥

पृथ्वी, नक्षत्रों के भ्रमण तथा संस्थान, अक्षांश, लम्बांश, द्युज्याचापांश, चरखण्ड, राश्युदय, छाया, नाडी, करण आदि के क्षेत्र, काल और करण को जानने वाला दैवज्ञ होना चाहिये ॥ ११ ॥

दैवज्ञों के और लक्षण—

नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रज्ञो भवति ॥ १२ ॥

कसौटी, आग और शाण से परीक्षित शुद्ध सुवर्ण की तरह अतिशय स्वच्छ शास्त्र का वक्ता, अनेक प्रकार के चोद्य (सयुक्तिक) प्रश्नभेदों को जानने से निश्चयात्मक ज्ञान वाला दैवज्ञ होना चाहिये ॥ १२ ॥

यहाँ पर गर्ग का वचन—

न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमेकमपि पृष्टः ।
निगदति न च शिष्येभ्यः स कथं शास्त्रविज्ज्ञेयः ॥ १३ ॥

जो शास्त्रयुक्त अर्थ को नहीं कहता, प्रश्न पूछने पर एक का भी उत्तर नहीं देता और छात्रों को भी नहीं पढ़ाता वह किस तरह शास्त्रज्ञ हो सकता है अर्थात् कदापि नहीं ॥ १३ ॥

मूर्खों का उपहास—

ग्रन्थोऽन्यथाऽन्यथार्थं करणं यश्चान्यथा करोत्यबुधः।
स पितामहमुपगम्य स्तौति नरो वैशिकेनार्याम्॥ १४॥

जिस तरह ग्रन्थ का आशय है उस को नहीं समझकर जो मूर्ख उस का विरुद्ध अर्थ करता है वह मानो ब्रह्मा जी के पास में जाकर वेश्या की तरह उन की स्तुति करता है॥ १४॥

दैवज्ञों की वाणी की प्रशंसा—

तन्त्रे सुपरिज्ञाते लग्ने छायाम्बुयन्त्रसंविदिते।
होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वन्ध्या॥ १५॥

जो मनुष्य शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो, छाया, जलयन्त्र आदि साधनों के द्वारा लग्न का ज्ञान कर सकता हो और फलित शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो ऐसे गुणसम्पन्न बताने वाले की वाणी कभी भी वन्ध्या (निष्फल) नहीं होती॥ १५॥

प्रश्नों पर विष्णुगुप्त का वचन—

अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन् कदाचिदासादयेदनिलवेगवशेन पारम्।
न त्वस्य कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य गच्छेत्कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम्॥

तैरता हुआ मनुष्य कदाचित् वायु के वेग से समुद्र को पार कर सकता है, पर काल पुरुष संज्ञक ज्यौतिषशास्त्ररूप महासमुद्र को ऋषि-मुनियों के अतिरिक्त मनुष्य मन से भी पार नहीं कर सकता॥ १६॥

दोनों स्कन्धों में भेद—

होराशास्त्रेऽपि च राशिहोराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्यजातिचेष्टादिपरिग्रहो निषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्ययादेशसद्योमरणायुर्दायदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोगचन्द्रयोगद्विग्रहादियोगानां नाभसादीनां च योगानां फलान्याश्रयभावावलोकननिर्याणगत्यनूकानि तत्कालप्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनां च कर्मणां करणम्॥ १७॥

होराशास्त्र में भी राशि (मेष, वृष, मिथुन आदि, इन के स्वरूप), होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश, राशियों के बलाबल-परिग्रह। सूर्य आदि ग्रहों के दिग्बल, स्थानबल, कालबल, चेष्टाबल इन के द्वारा बल का विचार। गर्भाधान, जन्मकाल

इनमे विस्मयजनक विधाम का आदेश अर्थात् नालवेष्टित, कोशवेष्टित, यमल आदि सन्तान हुई है यह बताकर शास्त्रों में विश्वास पैदा कराना। शीघ्र मरण, आयुर्दाय, दशा, अन्तर्दशा, अष्टकवर्ग, राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहयोग, नाभसयोग इन सबों का फल। आश्रय, भाव, दृष्टि, निर्याण, गति, अनूक (पूर्वजन्म), इन का विचार। तात्कालिक प्रश्नों के शुभ-अशुभ कारण। लग्न के आश्रित शुभ-अशुभ सूचक कारण। विवाह आदि (उपनयन, चूडाकरण, गृहप्रवेश) कर्मों के ज्ञान के कारण। ये सब विषय होते हैं। इन पूर्वोक्त विषयों का विचार वराहमिहिर-विरचित बृहज्जातक, विवाहपटल इन दोनों पुस्तकों में अच्छी तरह वर्णित है ॥ १७ ॥

यात्रा में भेद—

यात्रायां तु तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्तविलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेङ्गितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहषाड्गुण्योपायमङ्गलामङ्गलशकुनसैन्यनिवेशभूमयोऽग्निवर्णा मन्त्रिचरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः परदुर्गोपलम्भोपायश्चेत्युक्तं चाचार्यैः ॥१८॥

यात्रा में तिथि, दिन, करण, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न, योग, अङ्गस्फुरण, स्वप्न, विजय, जीतने की इच्छा रखने वाले राजा का विजयनिमित्तक स्नान, ग्रहों के यज्ञ, गणयाग (गुह्यकपूजन = यात्रा के सात दिन पूर्व से गुह्यकपूजन), अग्निलिङ्ग (हवनकालिक अग्नि का लक्षण), हाथी-घोड़े की चेष्टा, सेनाओं (प्रधान राजपुरुषों) के बोलने से उनकी चेष्टा (उत्साह, अनुत्साह), वायु, मेघ, वृष्टि आदि के लक्षण, षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, संश्रय) इन के ग्रहों के वश सिद्धि-असिद्धि का ज्ञान, उपाय (साम, दाम, भेद, दण्ड) की भी सिद्धि-असिद्धि का ज्ञान, मङ्गल, अमङ्गल, शकुन, सेनाओं के निवास की भूमि, अग्नि का वर्ण, मन्त्री, चर, दूत, वनवासियों का कालानुसार प्रयोग, शत्रु के किले का लाभ इन सबों का विवरण होता है ॥ १८ ॥

यहाँ पर आचार्य का वचन—

जगति प्रसारितमिवालिखितमिव मतौ निषिक्तमिव हृदये ।
शास्त्रं यस्य सभगणं नादेशा निष्फलास्तस्य ॥ १९ ॥

भगणों से युक्त होराशास्त्र (स्कन्धत्रयात्मक ज्यौतिषशास्त्र) लोक में विस्तृत की तरह, बुद्धि में अङ्कित की तरह और हृदय में खचित की तरह है। उस का आदेश कभी भी निष्फल नहीं होता ॥ १९ ॥

संहिता की प्रशंसा—

संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति ॥ २० ॥

संहितासम्बन्धी निर्दोष तत्त्वार्थ को जानने वाला दैवचिन्तक (पूर्वकृत कर्म को जानने वाला) होता है ॥ २० ॥

संहिता के भेद—

यत्रैते संहितापदार्थाः।

दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागमचारादिभिः फलानि: नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचारः। सप्तर्षिचारः। ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्रश्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनीराजनखञ्जनकोत्पातशान्तिमयूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकुक्कुटकूर्मगोजाश्वेभपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्तःपुरचिन्ता पिटकलक्षणोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगतः प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि। न चैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि। तस्मात्सुभृतेनैव दैवज्ञेनान्येऽपि तद्विदश्चत्वारः कर्तव्याः। तत्रैकेनैन्द्री चाग्नेयी च दिगवलोकयितव्या। याम्या नैर्ऋती चान्येनैव वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति। यस्मादुल्कापातादीनि शीघ्रमपगच्छन्तीति। तस्याश्चाकारवर्णस्नेहप्रमाणादिग्रहर्क्षोपघातादिभिः फलानि भवन्ति ॥ २१ ॥

जिस में वक्ष्यमाण विषय का वर्णन होता है उस का नाम संहिता है।

सूर्य आदि ग्रहों के सञ्चार, उस सञ्चार में होने वाला ग्रहों का स्वभाव, विकार, प्रमाण (बिम्ब का परिमाण), वर्ण, किरण, द्युति (किरणकान्ति), संस्थान (ऊर्ध्वाधोगामी तोरण, दण्ड आदि का संस्थान), अस्त, उदय, मार्ग, मार्गान्तर, वक्र, अनुवक्र, नक्षत्रों के साथ ग्रह का समागम, चार (नक्षत्र में चलन), इन के फल, नक्षत्र-विभाग द्वारा बने हुए कूर्म चक्र से देशों का शुभाशुभ फल, अगस्त्य मुनि का सञ्चार; सप्तर्षियों (वशिष्ठ आदि सात ऋषियों) के सञ्चार, ग्रहों की भक्ति (देश, द्रव्य, प्राणियों के आधिपत्य), नक्षत्रों के व्यूह (द्रव्य, जनों के आधिपत्य),

ग्रह-शृङ्गाटक (एकत्रस्थित तारा-ग्रहों के शृङ्गाटक आदि स्थितिवश शुभाशुभ फल), ग्रहयुद्ध, ग्रह-समागम, ग्रह के वर्षपति होने पर उस का फल, गर्भ-लक्षण, रोहिणी योग, स्वाती योग, आषाढी योग, सद्योवर्षण, कुसुमलता का लक्षण, वृक्षों के फल-फूल की उत्पत्ति के द्वारा सांसारिक शुभाशुभ का ज्ञान, परिधि (प्रतिसूर्य का लक्षण), परिवेष, परिघ (सूर्य के उदय-अस्त काल में तिर्यक्स्थित मेघरेखा का लक्षण), वायु, उल्कापात, दिग्दाह का लक्षण, भूकम्प, संध्या की लालिमा, गन्धर्व-नगर का लक्षण, धूलि का लक्षण, निर्घात-लक्षण, अर्घकाण्ड, अन्न की उत्पत्ति, इन्द्र-ध्वज और इन्द्रधनुष का लक्षण, वास्तुविद्या, अङ्गविद्या (अङ्गस्पर्श से प्राणियों के शुभाशुभ फल जानने वाली विद्या), वायसविद्या (काकचेष्टित), अन्तरचक्र, मृगचक्र (मृगचेष्टित), श्वचक्र (घोड़ों की चेष्टा), वातचक्र, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, प्रतिमाप्रतिष्ठा, वृक्षायुर्वेद (वृक्षों की चिकित्सा), उदकार्गल (जल की उपलब्धि), नीराजन (मन्त्रों के द्वारा शुद्ध जल से पवित्र करना), खञ्जन-लक्षण, उत्पातों की शान्ति, मयूरचित्रक, घृत, कम्बल, खड्ग, पट्ट, मुर्गा, कूर्म, गौ, अजा, कुत्ता, अश्व, हस्ति, पुरुष, स्त्री, अन्तःपुर की चिन्ता, पिटक, मोती, वस्त्रच्छेद, चामर, दण्ड, शय्या, आसन, इनका लक्षण, रत्नपरीक्षा, दीपलक्षण, दन्त-काष्ठ आदि के द्वारा शुभाशुभ फल का लक्षण, संसार के प्रत्येक पुरुष और राजाओं में पूर्वोक्त प्रत्येक लक्षण का विचार एकाग्रचित्त होकर दैवज्ञ को करना चाहिये। अकेला दैवज्ञ सदा शुभाशुभ फल का निर्णय करने के लिये समर्थ नहीं हो सकता अतः प्रचुर धन देकर सतुष्ट किये हुए दैवज्ञ के साथ इस शास्त्र को जानने वाले और चार दैवज्ञों की नियुक्ति राजा को करनी चाहिये। उन चार दैवज्ञों में से एक को पूर्व और अग्निकोण की, दूसरे को दक्षिण और नैर्ऋत्य कोण की, तीसरे को पश्चिम और वायव्य कोण की तथा चौथे को उत्तर और ईशान कोण की परीक्षा करनी चाहिये। क्योंकि उल्कापात आदि (उल्कापात, गन्धर्वनगर, केतु) निमित्त देखने के साथ ही लुप्त हो जाते हैं। इनके आकार, वर्ण, स्निग्धता, प्रमाण (हस्त आदि प्रमाण), ग्रह-नक्षत्रों के अभिघात आदि के द्वारा शुभाशुभ फल होते हैं॥ २१॥

महर्षि गर्ग का आशय—

कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम्।
यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति॥ २२॥

सब प्रकार से कुशल, होराशास्त्र और गणित में प्रवीण ज्योतिषी की पूजा जो राजा नहीं करता वह नाश को प्राप्त होता है।

यहाँ पर भगवान् गर्ग का वचन—

अधिकृत्य ग्रहर्क्षादि जगतो येन निश्चयः।
सदङ्गमुत्तमं विन्द्यादुपाङ्गं दोषमुच्यते॥ २२॥

दैवज्ञों की और प्रशंसा—

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः ।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥ २३ ॥

वन में रहने वाले, ममत्वरहित और किसी से कुछ लेने की इच्छा न रखने वाले पुरुष भी ग्रह-नक्षत्र आदि को जानने वाले दैवज्ञों से पूछते हैं ॥ २३ ॥

दैवज्ञों की और प्रशंसा—

अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः ।
तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥ २४ ॥

दीपहीन रात्रि और सूर्यहीन आकाश की तरह ज्यौतिषी से हीन राजा शोभित न होते हुये अन्धे की तरह मार्ग में घूमता है ॥ २४ ॥

दैवज्ञों की और प्रशंसा—

मुहूर्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा ।
सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात्सांवत्सरो यदि ॥ २५ ॥

यदि ज्यौतिषी न हो तो मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतु, अयन आदि सब विषय उलट-पलट हो जायँ ॥ २५ ॥

दैवज्ञों की और प्रशंसा—

तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणीः ।
जयं यशः श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता ॥ २६ ॥

अतः जय, यश, श्री, भोग और मङ्गल की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिये कि विद्वान्, श्रेष्ठ ज्यौतिषी के पास जाकर अपना भविष्य पूछे ॥ २६ ॥

दैवज्ञों की और प्रशंसा—

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता ।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥ २७ ॥

सब प्रकार से अपने कुशल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को दैवज्ञहीन देश में नहीं बसना चाहिये क्योंकि जहाँ पर नेत्रस्वरूप दैवज्ञ निवास करते हैं वहाँ पाप नहीं रहता ॥ २७ ॥

दैवज्ञों की और प्रशंसा—

न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते ।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः ॥ २८ ॥

ज्यौतिष शास्त्र को पढ़ने और पढ़ाने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता तथा ज्यौतिष शास्त्र का चिन्तन करने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥२८॥

दैवज्ञों की और प्रशंसा—

ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत्कृत्स्नं जानाति यो द्विजः ।
अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पङ्क्तिपावनः ॥ २९ ॥

जो द्विज ज्यौतिषशास्त्र-सम्बन्धी सम्पूर्ण शब्दार्थ को जानता है वह श्राद्ध में सर्वप्रथम भोजन कराने के लायक, पंक्ति को पवित्र करने वाला, आदरणीय होता है ॥ २९ ॥

दैवज्ञों की और प्रशंसा—

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् ।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः ॥ ३० ॥

जिन म्लेच्छ यवनों के पास यह शास्त्र रहता है वे भी जब ऋषि की तरह पूजित होते हैं, तब दैवज्ञ ब्राह्मण की क्या बात अर्थात् उनकी पूजा तो निश्चित होती है ।

यवनों में प्रकाशित होने में वचन—

यहानवेन्द्राय मयाय सूर्य शास्त्रं ददौ सम्प्रणताय पूर्वम् ।
विष्णोर्वसिष्ठश्च महर्षिमुख्यो ज्ञानामृत यत्परमाससाद ॥
पराशरश्चाप्यधिगम्य सोमाद् गुह्यं सुराणां परमाद्भुतं यत् ।
प्रकाशयाच्चक्रुरनुक्रमेण महर्षिसन्तो यवनेषु तन्ते ॥ ३० ॥

अप्रष्टव्य मनुष्य—

कुहकावेशपिहितकर्णोपश्रुतिहेतुभिः ।
कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित् ॥ ३१ ॥

इन्द्रजाल विद्या से अपने शरीर को छिपाकर गुप्त रूप से प्रश्नकर्ता का अभिप्राय समझकर बताने वाले और कर्णपिशाची-सिद्धि से प्रश्न आदि बताने वाले ज्यौतिषी को सब जगह नहीं पूछना चाहिये, क्योंकि यह दैवज्ञ नहीं है ॥ ३१ ॥

और अप्रष्टव्य मनुष्य—

अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते ।
स पङ्क्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य ज्यौतिष-शास्त्र को बिना जाने अपने आपको दैवज्ञ कहकर व्रत, उपवास आदि बताता है उस पङ्क्तिदूषक पापी को नक्षत्रसूचक जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

नक्षत्रसूचकों की निन्दा—

नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः ।
स व्रजत्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडम्बिना ॥ ३३ ॥

नक्षत्रसूचक द्वारा बताये गये व्रत, उपवास आदि जो मनुष्य करता है वह उस श्वविडंबी (नक्षत्रसूचक) के साथ अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है ॥ ३३ ॥

नक्षत्रसूचकों की और निन्दा—

नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत्स्यादुपयाचितम्।
आदेशस्तद्वदज्ञानां यः सत्यः स विभाव्यते ॥ ३४ ॥

जिस तरह पुरद्वार में स्थित मृत्खण्ड के समीप की हुई याचना कभी-कभी पूरी हो जाती है, उसी तरह मूर्खों का आदेश भी कभी-कभी सत्य हो जाता है, परमार्थतः कभी भी सत्य नहीं होता ॥ ३४ ॥

मूर्ख दैवज्ञों की निन्दा—

सम्पत्त्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रियः
मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्ताद्महीक्षिता ॥ ३५ ॥

सम्पत्ति पाने के लोभ से जो आदेश करता है और ज्यौतिष-शास्त्र से भिन्न कथा में जिसका स्नेह है (ज्यौतिष-शास्त्र को ठीक तरह से न जानने के कारण अन्य कथा में प्रेम रखता है) ऐसे शास्त्र के एक देश को जानने से मत्त ज्यौतिषी को राजा त्याग दे ॥ ३५ ॥

राजा के पास रहने योग्य दैवज्ञ—

यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः।
अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा ॥ ३६ ॥

जय की इच्छा रखने वाले राजा को होरा, गणित, संहिता इन तीनों स्कन्धों को अच्छी तरह जानने वाले दैवज्ञों की पूजा करनी चाहिये और उनकी आज्ञा माननी चाहिये ॥ ३६ ॥

दैवज्ञों की प्रशंसा—

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।
करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः ॥ ३७ ॥

देश काल को जानने वाला एक दैवज्ञ जो काम करता है, वह हजार हाथी और चार हजार घोड़े नहीं कर सकते।

यहाँ पर किसी का वचन—

हिंसादम्भानृतस्तेयद्विष्टानिष्टविवर्जितम्। नरेन्द्रहितमक्रोधं श्रेष्ठं कालविदं विदुः ॥
भूतभव्यभविष्यस्य कालस्य ज्ञानपारगम्। अहीनाङ्गगुणोपेतं गुरुमर्कं प्रियंवदम् ॥
यथाङ्गिरसमाचार्यमधिगम्य शतक्रतुः। त्रैलोक्यराज्यं कृतवांस्तद्वत्कालविदं नृपः ॥ ३७ ॥

तिथि-नक्षत्र-श्रवण-फल—

दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि।
क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम् ॥ ३८ ॥

चन्द्र के नक्षत्र संवाद सुनने से बुरे स्वप्न, बुरे चिन्तन, बुरे दर्शन, बुरे कर्म इन सबों का शीघ्र नाश होता है।

यहाँ पर किसी का वचन—

श्रुत्वा तिथिं मग्रहवासरं च प्राप्नोति धर्मार्थयशांसि सौख्यम्।
आरोग्यमायुर्विजयं सुतांश्च, दुःस्वप्नघातं प्रियतां च लोके ॥ ३८ ॥

अब ज्योतिषी की प्रशंसा—

न तथेच्छति भूपतेः पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत्।
स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा हितमाप्तः सबलस्य दैववित् ॥ ३९ ॥

अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिये दैवज्ञ जिस तरह राजा का हित करता है उस तरह उसके माता-पिता, स्वजन और मित्र भी नहीं करते ॥ ३९ ॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां सांवत्सरसूत्रनामाध्यायो द्वितीयः ॥ २ ॥

आदित्यचाराध्यायः

किसी के मत से अयन का लक्षण—

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥ १ ॥

यह निश्चित है कि किसी समय आश्लेषा के आधे भाग से रवि का दक्षिणायन और धनिष्ठा के आदि भाग से उत्तरायण की प्रवृत्ति थी नहीं तो पूर्वशास्त्र में इसकी चर्चा नहीं होती ॥ १ ॥

वराहमिहिर का अपना मत—

साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥ २ ॥

इस समय कर्कादि से सूर्य के दक्षिणायन की और मकरादि से उत्तरायण की प्रवृत्ति होती है। इस तरह कथित अर्थ के अभाव का नाम विकार है। ये सब प्रत्यक्ष देखने से स्पष्ट होते हैं ॥ २ ॥

परीक्षण-प्रकार—

दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमयेऽपि वा सहस्रांशोः।
छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति ॥ ३ ॥

सूर्य के उदय-अस्तकाल में दूरस्थ चिह्न के वेध से अयन-गति की परीक्षा करनी चाहिये अर्थात् दूर स्थित वृक्ष आदि के सामने सूर्य के उदय-अस्त देखकर परीक्षा करनी चाहिये। फिर दूसरे दिन वहीं ही स्थित होकर परीक्षा करे, कि सूर्य वृक्ष से

दक्षिण या उत्तर तरफ आ रहा है। जिस तरफ सूर्य खिसकता हो उसी अयन में सूर्य को कहना चाहिये। अथवा महामण्डल में छायाप्रवेश और निर्गमचिह्न से अयन जानना चाहिये।

उदाहरण—जलादि से समान की हुई भूमि पर इष्ट त्रिज्या व्यासार्ध से एक वृत्त बनावे, उसमें दिग्ज्ञान करके पूर्वापरा रेखा अंकित करे, वृत्तमध्य में शंकु-स्थापन करे। जिस दिन मेषादि में रवि स्थित होता है उस दिन उदय-अस्तकाल में शंकु की छाया ठीक पूर्वापर रेखा पर पड़ेगी। बाद मिथुनान्त काल पर्यन्त शङ्कु की छाया धीरे-धीरे पूर्वापर रेखा से दक्षिण तरफ पड़ेगी। कर्कादि से कन्यान्तकाल पर्यन्त धीरे-धीरे शङ्कु की छाया उत्तर तरफ आयगी। फिर तुलादि स्थित रवि में शङ्कु की छाया ठीक मेषादि में स्थित रवि की तरह पूर्वापर रेखा पर पड़ेगी। बाद धन्वन्त बिन्दु पर्यन्त धीरे-धीरे पूर्वापर रेखा से शङ्कु की छाया उत्तर तरफ पड़ेगी। फिर वहाँ से लौटकर मकरादि से मीनान्त तक शङ्कु की छाया धीरे-धीरे दक्षिण तरफ पड़ेगी। जिस समय दो रोज की वृत्तपरिधिस्थ छायाग्रबिन्दु एक जगह पड़े उस रोज अयन की निवृत्ति समझनी चाहिये ॥ ३ ॥

विकारयुक्त रवि का फल—

अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम् ।
कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरां सैन्द्रीम् ॥ ४ ॥

यदि मकर में नहीं प्रविष्ट होकर सूर्य दक्षिण तरफ लौट जाय तो पश्चिम और दक्षिण दिशा में स्थित जनों का नाश करता है। यदि कर्क में प्रविष्ट नहीं होकर सूर्य उत्तर तरफ लौट जाय तो पूर्व और उत्तर दिशा में स्थित जनों का नाश करता है।

यहाँ पर गर्ग का वचन—

यदा निवर्ततेऽप्राप्तो धनिष्ठामुत्तरायणे ।
आश्लेषां दक्षिणेऽप्राप्तस्तदा विन्द्यान्महद्भयम् ॥

पराशर—

यद्यप्राप्तो वैष्णवमुदग्मार्गं प्रपद्यते ।
दक्षिणमाश्लेषां वा महाभयाय—इति ॥ ४ ॥

सीमातिक्रमण में शुभ फल—

उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमसस्यवृद्धिकरः ।
प्रकृतिस्थश्चाप्येवं विकृतगतिर्भयकृदुष्णांशुः ॥ ५ ॥

यदि सूर्य उत्तर अयन को अतिक्रमण कर के (मकर में प्रविष्ट होकर) उत्तर तरफ लौटे तो लोगों का कल्याण और धान्य की वृद्धि करता है। यहाँ पर उत्तरायण का ग्रहण उपलक्षण है किन्तु दक्षिणायन में भी इसी तरह का फल कहना चाहिये अर्थात् कर्क में प्रविष्ट होकर सूर्य दक्षिण तरफ लौटे तो लोगों का कल्याण और सस्य की वृद्धि करता है। प्रकृतिस्थित (गणितागत अयननिवृत्ति और पूर्वकथित वेधीय

अयननिवृत्ति एक काल में) होने पर ही पूर्वकथित फल ठीक घटता है। तथा विकार-युक्त गति होने पर सूर्य लोगों में भय उत्पन्न करता है।

यहाँ पर भगवान् वृद्धगर्ग—

अयने सुप्रभः स्निग्ध. सेवते यदि भास्करः। सुवृष्टिं च सुभिक्षं च योगक्षेमं च निर्दिशेत्॥
अनिवृत्ते समे वापि निवृत्ते वारयते रवि। हीने मथावहो लोके दुर्भिक्षभयकरप्रदः॥

पराशरतन्त्र में सूर्य की पाँच प्रकार की गति—

पञ्चविधां गतिमुदयास्तमययोरन्तरे भजत्यूर्ध्वाम्।
तिर्यङ्मण्डलमधो नक्षत्रानुयायिनीमपि च॥
तिर्यग्गच्छति काष्ठायामूर्ध्वं गच्छति चोदये।
प्रातराशामनुक्रम्य मध्यं गच्छति भास्कर.॥
मध्याह्ने तापयंल्लोकान्मण्डलं कुरुते गतिम्।
अस्तस्यापि च मध्याह्नादधो गच्छति भास्करः॥
अस्तं गच्छन्नपि रविर्नक्षत्रमुपगच्छति॥ ५॥

त्वष्टा नाम ग्रह से आच्छादित सूर्य का फल—

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते।
स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः॥ ६॥

पर्व से भिन्न काल में त्वष्टा नाम का ग्रह सूर्यमण्डल को अन्धकारयुक्त करता हो तो सात (१५ वें अध्याय में नक्षत्र कूर्म के विभाग से नव देशों के नव राजाओं में से सात) राजाओं का नाश करता है और शस्त्र, अग्नि, दुर्भिक्ष इन से लोगों का नाश करता है।

यहाँ पर भगवान् पराशर—

अपर्वणि शशाङ्कार्कौ त्वष्टा नाम महाग्रहः।
आवृणोति तम. श्याम सर्वलोकविपत्तये॥ ६॥

तामस कीलक से आच्छादित सूर्य का फल—

तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत्।
वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वाऽर्के फलं ब्रूयात्॥ ७॥

राहु के पुत्र तैंतीससंख्यक केतु हैं, ये तामस, कीलक आदि नाम से प्रसिद्ध हैं। इनको सूर्य (ग्रहणकालिक सूर्य) में देख कर वर्ण, स्थान और आकृति से फल कहे॥ ७॥

उनके शुभाशुभ फल—

ते चार्कमण्डलगताः पापफलाश्चन्द्रमण्डले सौम्याः।
ध्वाङ्क्षकबन्धप्रहरणरूपाः पापाः शशाङ्केऽपि॥ ८॥

ये तामस-कीलक-संज्ञक राहुपुत्र सूर्यमण्डल में अशुभ और चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होने पर शुभ फल देते हैं। पर ध्वांक्ष (काक), कबन्ध (छिन्नमस्तक पुरुष) या

ग्रहरण (खड्गादि) के समान उनकी आकृति देखने में आवे तो चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होने पर भी ये पाप फल देते हैं ॥ ८ ॥

तामस-कीलक आदि के उदय के कारण—

तेषामुदये रूपाण्यम्भः कलुषं रजोवृतं व्योम।
नगनरुशिखरामर्दी सशर्करो मारुतश्चण्डः ॥ ९ ॥
ऋतुविपरीतास्तरवो दीप्ता मृगपक्षिणो दिशां दाहाः।
निर्घातमहीकम्पादयोभवन्त्यत्र चोत्पाताः ॥ १० ॥

इन तामस-कीलक आदि के उदय होने से पहले विकारयुक्त जल, धूलि से व्याप्त आकाशमण्डल, पर्वत, वृक्ष, शिखर इन सबों का नाश करने वाला मिट्टी के कणों से युक्त भयङ्कर वायु, ऋतु के विपरीत वृक्षों में फल-फूल, सूर्य की गर्मी से पशु-पक्षी आदि जानवरों में व्याकुलता, दिशाओं में जलन, निर्घात (पवनः पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति भवति तदा निर्घात इति), भूकम्प ये उत्पात होते हैं ॥ ९-१० ॥

उत्पातों का निष्फलत्व—

न पृथक् फलानि तेषां शिखिकीलकराहुदर्शनानि यदि।
तदुदयकारणमेषां केत्वादीनां फलं ब्रूयात् ॥ ११ ॥

यदि केतु, तामस, कीलक, राहु इनका उत्पात होने के बाद सात रोज के अन्दर दर्शन हो जाय तो पूर्ववर्णित उत्पात का कोई अलग फल नहीं होता। ये उत्पात इन केतु आदि के उदय के कारण होते हैं। अर्थात् पूर्व में इन उत्पातों का दर्शन हो जाने से केतु आदि का दर्शन निश्चित होता है। यदि किसी समय किसी कारण से उत्पातों का दर्शन होने पर भी तामस, कीलक आदि का दर्शन न हो तो इन उत्पातों के वश ही फल कहना चाहिये ॥ ११ ॥

तामस-कीलक आदि के दर्शन का फल—

यस्मिन् यस्मिन् देशे दर्शनमायान्ति सूर्यबिम्बस्थाः।
तस्मिंस्तस्मिन् व्यसनं महीपतीनां परिज्ञेयम् ॥ १२ ॥
क्षुत्प्रम्लानशरीरा मुनयोऽप्युत्सृष्टधर्मसच्चरिताः।
निर्मांसबालहस्ताः कृच्छ्रेणायान्ति परदेशम् ॥ १३ ॥
तस्करविलुप्तवित्ताः प्रदीर्घनिःश्वासमुकुलिताक्षिपुटाः।
सन्तः सन्नशरीराः शोकोद्भवबाष्परुद्धदृशः ॥ १४ ॥
क्षामा जुगुप्समानाः स्वनृपतिपरचक्रपीडिता मनुजाः।
स्वनृपतिचरितं कर्म न पुराकृतं प्रब्रुवन्त्यन्ये ॥ १५ ॥

गर्भेष्वपि निष्पन्ना वारिमुचो न प्रभूतवारिमुचः।
सरितो यान्ति तनुत्वं क्वचित्क्वचिज्जायते सस्यम्॥ १६॥

जिन-जिन देशों में सूर्यबिम्बस्थित तामस-कीलक आदि का दर्शन हो उन-उन देशों में राजाओं को दुःख होता है। क्षुधा से पीड़ित मुनि लोग भी स्वधर्म एवं उत्तम चरित्रों से हीन होकर दुर्बल बालक को हाथ में लेकर दूसरे देश में जाते हैं। सज्जनों के धन को चोर अपहरण कर लेते हैं। अतः वे सज्जन दीर्घनिश्वास छोड़ने से सकुचित नेत्र वाले, खिन्न शरीर वाले और शोक से उत्पन्न अश्रुप्रवाह से मन्द नेत्र वाले होते हैं। अपना राजा और परराष्ट्र से पीड़ित दुर्बल मनुष्य निन्दा करते हुये पूर्वकृत अपने राजा के कर्तव्य को दूसरे से कहते हैं। गर्भयुक्त होने पर भी मेघ अधिक जल नहीं देते, नदियाँ कृश (अल्प जल वाली) हो जाती हैं और धान्य की उत्पत्ति बहुत कम होती है॥ १२-१६॥

तामस-कीलक आदि की आकृति से फल—

दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं स्यात् कबन्धसंस्थाने।
ध्वाङ्क्षे च तस्करभयं दुर्भिक्षं कीलकेऽर्कस्थे॥ १७॥

सूर्य के मण्डल में दण्ड की तरह केतु दिखाई दे तो राजा की मृत्यु, छिन्नमस्तक पुरुष की तरह दिखाई दे तो व्याधि का भय, काक की तरह दिखाई दे तो चोर का भय और कील की तरह दिखाई दे तो दुर्भिक्ष होता है॥ १७॥

और भी उनके फल—

राजोपकरणरूपैश्छत्रध्वजचामरादिभिर्विद्धः।
राजान्यत्वकृदर्कः स्फुलिङ्गधूमादिभिर्जनहा॥ १८॥

यदि सूर्यमण्डल राजा के उपकरणरूप छत्र, ध्वजा, चामर आदि से वेधित हो तो राजा का परिवर्तन होता है और अग्निकण, धूम आदि से वेधित हो तो लोगों का नाश करता है॥ १८॥

उनके और भी फल—

एको दुर्भिक्षकरो द्व्याद्याः स्युर्नरपतेर्विनाशाय।
सितरक्तपीतकृष्णैस्तैर्विद्धोऽर्कोऽनुवर्णघ्नः॥ १९॥

यदि पूर्वोक्त सूर्यमण्डल के वेध करने वालों में से एक से सूर्य वेधित हो तो दुर्भिक्ष, दो आदि से वेधित हो तो राजा का नाश और सफेद, लाल, पीला, काला इन वर्णों से वेधित हो तो क्रम से वर्णों का नाश करता है, जैसे सफेद वर्ण से वेधित होने पर ब्राह्मणों का, लाल वर्ण से वेधित होने पर क्षत्रियों का, पीले वर्ण से वेधित होने पर वैश्यों का और काले वर्ण से वेधित होने पर शूद्रों का नाश करता है॥ १९॥

विशेष फल—

दृश्यन्ते च यतस्ते रविबिम्बस्योत्थिता महोत्पाताः।
आगच्छति लोकानां तेनैव भयं प्रदेशेन ॥ २० ॥

ये पूर्वकथित ध्वांक्ष आदि महा उत्पात सूर्यमण्डल में जिस तरफ दिखाई देते हैं, उस दिशा में स्थित देशों के लोगों को भय होता है। जैसे यदि उत्पात सूर्यबिम्ब में पूर्व तरफ हो तो पूर्वीय देश में, दक्षिण तरफ हो तो दक्षिणीय देश में, पश्चिम तरफ हो तो पश्चिमीय देश में और उत्तर तरफ हो तो उत्तरीय देश में स्थित लोगों को भय होता है ॥ २० ॥

सूर्य की रश्मिवश शुभाशुभ फल—

ऊर्ध्वकरो दिवसकरस्ताम्रः सेनापतिं विनाशयति।
पीतो नरेन्द्रपुत्रं श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ॥ २१ ॥
चित्रोऽथवापि धूम्रो रविरश्मिर्व्याकुलं करोत्यूर्ध्वम्।
तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि सलिलं नाशु पातयति ॥ २२ ॥

सूर्य के ऊपरी भाग की किरणें ताम्र वर्ण की हों तो सेनापति का, पीले वर्ण की हों तो राजा के पुत्र का और श्वेत वर्ण की हों तो पुरोहित का नाश होता है। तथा चित्र या धूम्र वर्ण की हों तो चोरों या शस्त्रप्रहारों से लोग व्याकुल होते हैं। यदि उक्त उत्पात देखने के बाद जल्दी वृष्टि न हो तो पूर्वोक्त फल होता है। यदि वृष्टि हो जाय तो पूर्वोक्त फल न होकर लोगों का कल्याण होता है ॥ २१-२२ ॥

ऋतुवश सूर्य के वर्णों का फल—

ताम्रः कपिलो वार्कः शिशिरे हरिकुङ्कुमच्छविश्च मधौ।
आपाण्डुकनकवर्णो ग्रीष्मे वर्षासु शुक्लश्च ॥ २३ ॥
शरदि कमलोदराभो हेमन्ते रुधिरसंनिभः शस्तः।
प्रावृट्काले स्निग्धः सर्वर्तुनिभोऽपि शुभदायी ॥ २४ ॥

यदि सूर्यमण्डल शिशिर ऋतु में ताम्र या पीला, वसन्त ऋतु में हरा या कुङ्कुम के समान, ग्रीष्म ऋतु में पाण्डु (कुछ-कुछ सफेद) या सुवर्ण के समान, वर्षाकाल में सफेद, शरद् ऋतु में कमल के गर्भ के समान और हेमन्त में रुधिर के समान हो तो शुभ होता है। यदि वर्षाकाल में स्वच्छ या अन्य सब ऋतुओं के समान वर्ण हो तो भी शुभ फल देने वाला होता है।

समाससंहिता में—

ताम्रघृतकनकमुग्धकमलासृक्सन्निभः शुभः सविता।
शिशिरादिषु षट्सु ऋतुषु प्रावृषि सर्वर्तुसन्निभः स्निग्धः ॥

यहाँ पर वृद्ध गर्ग—

शिशिरे ताम्रसंकाशः कपिलो वापि भास्करः ।
वसन्ते कुङ्कुमप्रख्यो हरितो वापि शस्यते ॥
ग्रीष्मे कनकवैदूर्यं सर्वरूपो जलागमे ।
शस्तः शरदि पद्माभो हेमन्ते लोहितप्रभः ॥
एतत्स्वरूपं सवितुर्विपरीतमतोऽन्यथा ॥ (२३–२४)

सूर्य के वर्ण के और फल—

रूक्षः श्वेतो विप्रान् रक्ताभः क्षत्रियान् विनाशयति ।
पीतो वैश्यान् कृष्णस्ततोऽपरान् शुभकरः स्निग्धः ॥ २५ ॥

यदि सूर्यमण्डल रूखा या सफेद हो तो ब्राह्मणों का, लाल वर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है। यदि पूर्वोक्त वर्ण स्निग्ध हों तो ब्राह्मण आदि वर्णों का शुभ करने वाला होता है ॥ २५ ॥

ऋतुओं में रवि के अशुभ वर्ण—

ग्रीष्मे रक्तो भयकृद्वर्षास्वसितः करोत्यनावृष्टिम् ।
हेमन्ते पीतोऽर्कः करोति न चिरेण रोगभयम् ॥ २६ ॥

ग्रीष्म ऋतु में रक्त वर्ण का रविमण्डल भय करने वाला होता है, वर्षा ऋतु में काला रविमण्डल अनावृष्टि करता है और हेमन्त ऋतु में पीत वर्ण का रविमण्डल शीघ्र रोग भय करता है ॥ २६ ॥

ऋतुवश रवि के और फल—

सुरचापपाटितवपुर्नृपतिविरोधप्रदः सहस्रांशुः ।
प्रावृट्काले सद्यः करोति विमलद्युतिर्वृष्टिम् ॥ २७ ॥

यदि इन्द्रधनुष से सूर्यमण्डल खण्डित होता हो तो राजाओं में विरोध करता है। यदि वर्षा काल में निर्मल कान्तियुक्त हो तो सद्य (उसी रोज) वृष्टि करता है ॥ २७ ॥

ऋतुवश सूर्य के और फल—

वर्षाकाले वृष्टिं करोति सद्यः शिरीषपुष्पाभः ।
शिखिपत्रनिभः सलिलं न करोति द्वादशाब्दानि ॥ २८ ॥

यदि वर्षाकाल में शिरीष पुष्प की कान्ति के समान कान्ति वाला सूर्य-मण्डल हो तो उसी रोज वृष्टि करता है। यदि मयूरपत्र की तरह कान्ति वाला दिखलाई दे तो बारह वर्ष पर्यन्त वृष्टि नहीं होती।

यहाँ पर वृद्ध गर्ग—

मयूरचन्द्रिकाभो वा यदा दृश्येत भास्करः ।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे तदा देवः प्रवर्षति ॥ २८ ॥

सूर्य के और फल—

श्यामेऽर्के कीटभयं भस्मनिभे भयमुशन्ति परचक्रात्।
यस्यर्क्षे सच्छिद्रस्तस्य विनाशः क्षितीशस्य॥ २९॥

यदि सूर्यबिम्ब श्याम वर्ण का दिखलाई दे तो कीडे का भय और भस्म की कान्ति की तरह दिखलाई दे तो परराष्ट्र से भय होता है। जिस राजा के जन्मनक्षत्र में सूर्यमण्डल में छिद्र दिखाई दे उस राजा का नाश होता है॥ २९॥

सूर्य के और फल—

शशरुधिरनिभे भानौ नभस्तलस्थे भवन्ति सङ्ग्रामाः।
शशिसदृशो नृपतिवधः क्षिप्रं चान्यो नृपो भवति॥ ३०॥

यदि आकाश में खरहे के रुधिर के समान रक्त वर्ण का सूर्यमण्डल दिखलाई दे तो युद्ध होता है। यदि चन्द्र के समान वर्ण का सूर्यमण्डल दिखलाई दे तो वर्तमान राजा का नाश होकर दूसरा राजा होता है।

यहाँ पर गर्ग—

शशलोहितवर्णाभो यदा भवति भास्करः।
तदा भवन्ति सङ्ग्रामा घोरा रुधिरकर्दमाः॥ ३०॥

सूर्य के और फल—

क्षुन्मारकृद्घटनिभः खण्डो जनहा विदीधितिर्भयदः।
तोरणरूपः पुरहा छत्रनिभो देशनाशाय॥ ३१॥

जिस देश में घडे की आकृति के समान सूर्यमण्डल दिखाई दे उस देश में क्षुधा से पीडित होकर मनुष्य प्राण-विसर्जन करते हैं, यदि खण्डाकार दिखाई दे तो लोगों का नाश करता है, यदि तेज से हीन दिखाई दे तो भय देने वाला होता है, यदि फाटक की तरह दिखाई दे तो पुरों का नाश करता है और छत्र के समान दिखाई दे तो देश का नाश करता है॥ ३१॥

सूर्य के और फल—

ध्वजचापनिभे युद्धानि भास्करे वेपने च रूक्षे च।
कृष्णा रेखा सवितरि यदि हन्ति ततो नृपं सचिवः॥ ३२॥

यदि सूर्यमण्डल ध्वजा या चाप की तरह काँपता हुआ रूखा दिखाई दे तो युद्ध होता है। यदि सूर्यमण्डल में काली रेखा दिखाई दे तो मन्त्री के द्वारा राजा मारा जाता है॥ ३२॥

सूर्य के और फल—

दिवसकरमुदयसंस्थितमुल्काशनिविद्युतो यदा हन्युः।
नरपतिमरणं विन्द्यात्तदान्यराजप्रतिष्ठा च॥ ३३॥

यदि उल्का, वज्र, बिजली उदयकालिक सूर्य पर गिरे तो वर्तमान राजा की मृत्यु और उस पर दूसरे की प्रतिष्ठा होती है।

यहाँ पर पराशर—

उदयास्तमये भानुमुल्का हन्यात्समुत्थिता।
प्रज्वलन्ती तदा राजा क्षिप्रं दारुणेन वध्यते ॥ ३३ ॥

सूर्य के और लक्षण—

प्रतिदिवसमहिमकिरणः परिवेषी सन्ध्ययोर्द्वयोरथवा।
रक्तोऽस्तमेति रक्तोदितश्च भूपं करोत्यन्यम् ॥ ३४ ॥

यदि प्रत्येक रोज दोनों संध्या (उदय और अस्त) में परिवेषयुक्त सूर्य-मण्डल होता हो या रक्त वर्ण का होकर उदय अस्त होता हो तो निश्चय ही दूसरा राजा होता है ॥ ३४ ॥

संध्याकाल में सूर्य के शुभाशुभ लक्षण—

प्रहरणसदृशैर्जलदैः स्थगितः सन्ध्याद्वयेऽपि रणकारी।
मृगमहिषविहगखरकरभसदृशरूपैश्च भयदायी ॥ ३५ ॥

यदि दोनों संध्याओं में शस्त्र के समान स्वरूप वाले मेघ से सूर्यमण्डल आच्छादित हो तो युद्ध करने वाला होता है और हरिण, महिष, पक्षी, गधे या हस्ती के समान स्वरूप वाले मेघ से आच्छादित होता हो तो भय देने वाला होता है ॥ ३५ ॥

अर्काक्रान्त नक्षत्र के संतापशोधन—

दिनकरकराभितापादृक्षमवाप्नोति सुमहतीं पीडाम्।
भवति तु पश्चाच्छुद्धं कनकमिव हुताशपरितापात् ॥ ३६ ॥

अग्नि के परिताप से पीड़ित होकर जिस तरह सोना शुद्ध होता है उसी तरह सूर्य के परिताप से पीड़ित होकर नक्षत्र शुद्ध होता है।

यहाँ पर पराशर—

ग्रहोपसृष्टं नक्षत्रं सवितुर्योगमागतम्।
विशोधयति तत्पापं हुताग्निरिव काञ्चनम् ॥

वृद्ध गर्ग—

यथाग्निना प्रज्वलिते गृहे तप्यन्त्यदूरिणः।
तथार्कस्याप्यदूरस्थमृक्षं तदपि तप्यते ॥ ३६ ॥

प्रतिसूर्य का फल—

दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत्।
उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ॥ ३७ ॥

यदि सूर्यमण्डल की उत्तर दिशा में प्रतिसूर्य दिखलाई पड़े तो वृष्टि होती है, दक्षिण दिशा में प्रतिसूर्य दिखलाई पड़े तो आँधी आती है, दोनों तरफ दिखलाई पड़े तो राजा का और नीचे की तरफ दिखलाई पड़े तो लोगों का नाश करता है।

विशेष—सूर्योदय के बाद एक पहर तक जब एक छोटा मेघ का टुकड़ा आ जाता है तब वह सूर्य की किरणों से चमकता हुआ द्वितीय सूर्य के समान लक्षित होता है, उसी को प्रतिसूर्य कहते हैं ॥ ३७ ॥

सूर्य के वर्ण का और फल—

रुधिरनिभो वियत्यवनिपान्तकरो न चिरात्।
परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा दिनकृत् ॥ ३८ ॥

आकाश में रुधिर के समान लाल वर्ण का या धूलि के समुदाय से लाल वर्ण का सूर्यमण्डल राजा का बहुत जल्दी नाश करता है ॥ ३८ ॥

सूर्य के वर्ण का और फल—

असितविचित्रनीलपरुषो जनघातकरः।
खगमृगभैरवस्वररुतैश्च निशाद्युमुखे ॥ ३९ ॥

यदि सूर्यमण्डल कृष्ण, विचित्र या नील वर्ण का होकर भयङ्कर देखने में आवे या संध्याकाल में पक्षी, जंगली जानवरों के भयङ्कर शब्द सुनाई दें तो लोगों का नाश होता है ॥ ३९ ॥

सूर्य के शुभ लक्षण—

अमलवपुरवक्रमण्डलः स्फुटविपुलामलदीर्घदीधितिः।
अविकृततनुवर्णचिह्नभृज्जगति करोति शिवं दिवाकरः ॥ ४० ॥

स्वच्छ, अखण्डित, स्पष्ट, अतिशय स्वच्छ, दीर्घ किरण वाला, निर्विकार शरीर, वर्ण और चिह्न वाला सूर्यमण्डल संसार का मङ्गल करने वाला होता है।

यहाँ पर पराशर—

श्वेतः शिरीषपुष्पाभः पद्माभो रूप्यसन्निभः।
वैदूर्यघृतमण्डाभो हेमाभश्च दिवाकरः ॥
वर्णैरेभिः प्रशस्तः स्यान्महास्निग्धः प्रतापवान्।
भावनः सर्वसस्यानां क्षेमारोग्यसुभिक्षदः ॥ ४० ॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायामादित्याचाराध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥

अथ चन्द्रचाराध्यायः

चन्द्र में शुक्लाशुक्ल का निर्णय—

नित्यमध स्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्द्धम् ।
स्वच्छाययान्यदसितं कुम्भस्येवाऽऽतपस्थस्य ॥ १ ॥

जिस तरह धूप में स्थित घड़े का सूर्य की तरफ का आधा भाग शुक्ल और विरुद्ध दिशा में स्थित दूसरा आधा भाग अपनी छाया से ही कृष्ण देखने में आता है उसी तरह सदा सूर्य के अधोभाग में स्थित चन्द्र का सूर्य की तरफ का आधा भाग शुक्ल और विरुद्ध दिशा में स्थित अर्धभाग अपनी छाया से ही कृष्ण होता है।

इसी तरह ब्रह्मसिद्धान्त में—

रविदृष्टं सितमर्द्धं कृष्णमदृष्टं यथाऽऽतपस्थस्य ।
कुम्भस्य तथासर्वं रवेरधस्थस्य चन्द्रस्य ॥

सूर्यसिद्धान्त में—

महतश्चाप्यधःस्थस्य नित्यं भासयते रविः ।
अर्धं शशाङ्कबिम्बस्य न द्वितीयं कथञ्चन ॥ १ ॥

चन्द्र में अपने प्रकाश का अभाव—

सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम् ।
क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः ॥ २ ॥

जिस तरह दर्पण पर गिरे हुये सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब से घर के अन्दर का अन्धकार नष्ट होता है, उसी तरह जलपिण्डात्मक चन्द्र के ऊपर गिरी हुई सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब से रात्रिसम्बन्धी अन्धकार नष्ट होता है।

सूर्यसिद्धान्त में—

तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलकाः ।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिविदीपिताः ॥ २ ॥

चन्द्र के पश्चिम भाग से शुक्ल वृद्धि का कारण—

त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादवलम्बते यथा शौक्ल्यम् ।
दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधःप्रभृत्युदयः ॥ ३ ॥

सूर्य के अध प्रदेश को छोड़ते हुये चन्द्र का शुक्ल जिस-जिस तरह नीचे की तरफ लटकता है उसी तरह चन्द्र का उदित अधोभाग सूर्यवश क्रम से प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

प्रत्यह चन्द्रगोल में शुक्ल की वृद्धि—

प्रतिदिवसमेवमर्कात्स्थानविशेषेण शौक्ल्यपरिवृद्धिः ।
भवति शशिनोऽपराह्णे पश्चाद्भागे घटस्येव ॥ ४ ॥

अपराह्न काल में आतप में स्थित घड़े के पश्चिम भाग में जिस तरह शुक्ल बढ़ती है उसी तरह प्रतिदिन रवि से स्थानविशेष (दूर-दूर) में गमन करने से चन्द्र का शुक्ल बढ़ता है ॥ ४ ॥

चन्द्र के नक्षत्रों में गमन करने से शुभाशुभ फल—

ऐन्द्रस्य शीतकरणो मूलापाढाद्वयस्य चायातः।
याम्येन बीजजलचरकाननहा वह्निभयदश्च ॥ ५ ॥

जिस समय चन्द्रमा ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा इन चार नक्षत्रों के दक्षिण में होकर जाता है उस समय बीज, जलचर और वन का नाश होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उक्त नक्षत्रों के उत्तर में होकर यदि चन्द्र जाता हो तो शुभ होता है।

यहाँ पर वक्ष्यमाण प्रमाण—

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः।
प्रदक्षिणं तच्छुभदं नृपाणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः ॥ ५ ॥

चन्द्र के नक्षत्रों में गमन करने से और फल—

दक्षिणपार्श्वेन गतः शशी विशाखानुराधयोः पापः।
मध्येन तु प्रशस्तः पितृदेवविशाखयोश्चापि ॥ ६ ॥

यदि विशाखा और अनुराधा के दक्षिण भाग में होकर चन्द्रमा जाता हो तो पाप फल देने वाला होता है। यदि मघा और विशाखा के मध्य में होकर चन्द्रमा जाता हो तो शुभ फल देने वाला होता है।

समाससंहिता में—

भवति विशाखायातो पण्णो याम्येन पापदश्चन्द्रः।
उदगिष्टः सर्वेषां पित्र्येशविशाखयोश्चान्तः ॥ ६ ॥

चन्द्रमा से नक्षत्रों का संयोग—

षडनागतानि पौष्णाद् द्वादशरौद्राच्च मध्ययोगीनि।
ज्येष्ठाद्यानि नवर्क्षाण्युडुपतिनातीत्य युज्यन्ते ॥ ७ ॥

रेवती से छः नक्षत्र (रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर) अनागत (अप्राप्त) होकर चन्द्र से मिलते हैं। आर्द्रा से बारह नक्षत्र (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा) मध्यसंयोगी होकर चन्द्रमा से मिलते हैं और ज्येष्ठा से नव नक्षत्र (ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा) अतिक्रान्त (प्राप्त) होकर चन्द्रमा से मिलते हैं। इसका आशय यह है कि जब चन्द्र उत्तराभाद्रपदा में जाता है उसी समय चन्द्र का रेवती नक्षत्र से संयोग हो जाता है। इसी तरह रेवती में जाने पर अश्विनी

से, अश्विनी में जाने पर भरणी से भरणी में जाने पर कृत्तिका से, कृत्तिका में जाने पर रोहिणी से और रोहिणी में जाने पर मृगशिर से संयोग हो जाता है। आर्द्रा आदि बारह नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्रविभाग के बीच में चन्द्र के जाने से संयोग होता है। ज्येष्ठा से नव नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्र के अगले नक्षत्र में जाने पर ही पिछले नक्षत्र से संयोग कर लेता है, जैसे मूल में जाने पर ज्येष्ठा से, पूर्वाषाढा में जाने पर मूल इत्यादि से ··· चन्द्र का संयोग हो जाता है। इन्हीं नक्षत्रों को गर्ग आदि आचार्य अर्द्धभोगी, अध्यर्द्धभोगी और समभोगी नाम से पठित करते हैं।

इन आचार्यों में गर्ग का वचन—

उत्तराश्च मघाऽदित्यं विशाखा चैव रोहिणी। एतानि षडध्यर्द्धभोगीनि महाक्षेत्राणि॥
मघाश्विकृत्तिकास्तेभतिष्यविष्यभगाह्वयाः। सावित्रचित्राऽनूराधा मूल तोयं च वैष्णवम्॥
धनिष्ठा पैत्र्यपाचैव समभागः प्रकीर्तितः। एतानि पञ्चदश समभोगीनि मध्यक्षेत्राणि॥
याम्येन्द्ररुद्रवायव्यसार्पवारुणसहिता। एतानि षडर्द्धभोगीनि स्वल्पक्षेत्राणि॥

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में—

देशादिरथविशाखाप्रौष्ठपदार्यम्णवेश्वदेवानि। षट् षड् ज्येष्ठाभरणी स्वात्यार्द्रावारुणाश्लेषाः॥
पञ्चदशान्यानुकाग्ने कोऽभिजिदुक्तभुक्तभोगोऽन्य.। तन्मानं नाक्षत्रं स्फुटमिमं मन्दबुद्धीनाम्॥
अध्यर्द्धार्द्धसमक्षेत्राणां मध्यगतिलिप्तिकाः शशिन.। अध्यर्द्धार्द्धैकगुणा भभोगलिप्तास्तदैक्योना.॥
मण्डललिप्ताः शेषा भोगोऽभिजितः॥ ७॥

चन्द्र के दशविध संस्थानों में से नौ संस्थान का लक्षण और फल—

उन्नतमीषच्छृङ्गं नौसंस्थाने विशालता चोक्ता।
नाविकपीडा तस्मिन्भवति शिवं सर्वलोकस्य॥ ८॥

चन्द्र का शृङ्ग कुछ उन्नत होकर नाव की तरह विशालता को प्राप्त होता हो तो नौ नाम का संस्थान होता है। इसमें नाविक लोगों को पीडा और सबका शुभ होता है॥ ८॥

लाङ्गलसंस्थान का लक्षण और फल—

अर्द्धोन्नते च लाङ्गलमिति पीडा तदुपजीविनां तस्मिन्।
प्रीतिश्च निर्निमित्तं मनुजपतीनां सुभिक्षं च॥ ९॥

यदि चन्द्र का शृङ्ग आधा उन्नत हो तो लाङ्गलसंस्थान होता है। इसमें हल से जीवनयात्रा चलाने वाले को पीडा होती है। राजाओं में बिना कारण स्नेह होता है और सुभिक्ष होता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

यदा सोमः प्रतिपदि नौस्थायी समदृश्यते। उत्तरोऽन्नतशृङ्गो वा लाङ्गली च मनोहरः॥
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सर्वभूतेषु निर्दिशेत्। राज्ञां च विजयं ब्रूयाद्दक्षिणे शृङ्गिणस्तथा॥१॥

दुष्टलाङ्गल संस्थान का लक्षण और फल—

दक्षिणविषाणमर्द्धोन्नतं यदा दुष्टलाङ्गलाख्यं तत्।
पाण्ड्यनरेश्वरनिधनकृदुद्योगकरं बलानां च॥ १०॥

जब चन्द्र का दक्षिण शृङ्ग अर्द्धोन्नत देखने में आवे तब दुष्टलाङ्गल नाम का संस्थान होता है। इसमें पाण्डव देश के राजा की मृत्यु होती है और यह सेनाओं की यात्रा में उद्यम करता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

दक्षिणे च भवेत्स्थूलं हीनं शृङ्गमथोत्तरम्।
दुष्टलाङ्गलसंज्ञं तद्राजभयकरं स्मृतम्॥ १०॥

समदण्डसंस्थान का लक्षण और फल—

समशशिनि सुभिक्षक्षेमवृष्टयः प्रथमदिवससदृशाः स्युः।
दण्डवदुदिते पीडा गवां नृपश्चोग्रदण्डोऽत्र॥ ११॥

यदि चन्द्र का शृंग समान हो तो प्रथम दिन की तरह सुभिक्ष, क्षेम (कुशल) और वृष्टि होती है अर्थात् प्रतिपदा के दिन जिस तरह सुभिक्ष, क्षेम और वृष्टि होती है उसी तरह एक महीने तक सुभिक्ष, क्षेम और वृष्टि होती रहेगी। यदि दण्डाकार चन्द्रमा दिखलाई दे तो गौ को पीडा होती है और राजा बहुत कठोर दण्ड देने वाला होता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

समशृङ्गो यदा दृष्टः शशी क्षेमसुभिक्षकृत्। प्रतिपत्सदृशं तत्र वासवो वर्षते सदा॥
चन्द्ररेखा यदा चोर्ध्वशृङ्गी दण्ड इव स्थिता। उदकृष्ट्वाधिकसमो दण्डस्थानं तदुच्यते॥
उद्युक्तदण्डा राजानो विनिघ्नन्ति समन्ततः। गवां पीडां विजानीयाद्दण्डस्थाने यदा शशी॥

कार्मुक और युगसंस्थान का लक्षण और फल—

कार्मुकरूपे युद्धानि यत्र तु ज्या ततो जयस्तेषाम्।
स्थानं युगमिति याम्योत्तरायतं भूमिकम्पाय॥ १२॥

यदि चन्द्र की आकृति धनुष के समान हो तो उसको कार्मुकसंस्थान कहते हैं। इसमें युद्ध होता है तथा जिस तरफ धनुष की जीवा रहती है उस दिशा के राजा की जीत होती है।

यहाँ वृद्धगर्ग—

उदये तु यदा सोमं पश्येद्धनुरिवोदितम्। धनुर्धराणामुद्योगो जगद्युद्धकरो भवेत्॥
क्षत्रियाः क्षत्रियान् घ्नन्ति वर्णाश्चैव तथा परे। अग्रतश्च जयस्तेषां पृष्ठतश्च पराजयः॥

यदि चन्द्र के शृंग दक्षिणोत्तर विस्तीर्ण हों तो उसको युगसंस्थान कहते हैं। इसमें भूकम्प होता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

चन्द्ररेखा यदा व्यक्ता दक्षिणोत्तरमायता। शुक्लादौ प्रतिपद्येत तद्योगस्थानलक्षणम्॥
सैन्योद्योगा भवन्त्यत्र भूमिकम्पश्च जायते॥ १२॥

पार्श्वशायीसंस्थान के लक्षण और फल—

युगमेव याम्यकोट्यां किञ्चित्तुङ्गं स पार्श्वशायीति।
विनिहन्ति सार्थवाहान् वृष्टेश्च विनिग्रहं कुर्यात्॥ १३॥

पूर्वकथित युगसंस्थान में दक्षिण शृंग का अग्रभाग कुछ ऊँचा हो तो पार्श्वशायी संस्थान होता है। इसमें धनी व्यापारियों का और वृष्टि का नाश होता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

याम्यकोट्यायतः किञ्चिद्युगकाले यदा शशी।
पार्श्वशायीति संज्ञोऽयं सार्थहा वृष्टिनाशनः॥ १३॥

आवर्जितसंस्थान का लक्षण और फल—

अभ्युच्छ्रायादेकं यदि शशिनोऽवाङ्मुखं भवेच्छृङ्गम्।
आवर्जितमित्यसुभिक्षकारि तद्गोधनस्यापि॥ १४॥

अतिशय उन्नत होने के कारण चन्द्र का एक शृंग यदि अधोमुख हो तो आवर्जित नाम का संस्थान होता है। इसमें मनुष्य, पशु दोनों के लिये दुर्भिक्ष होता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

अधोमुखं यदा शृङ्गं शशिनो दृश्यते तदा।
संस्थानमावर्जितकं गोघ्नं दुर्भिक्षकारकम्॥ १४॥

कुण्डाख्यसंस्थान का लक्षण और फल—

अव्युच्छिन्ना रेखा समन्ततो मण्डला च कुण्डाख्यम्।
अस्मिन्माण्डलिकानां स्थानत्यागो नरपतीनाम्॥ १५॥

यदि चन्द्र के चारों तरफ अव्युच्छिन्न (अखण्डित) गोलाकार रेखा दिखलाई दे तो कुण्डाख्य संस्थान होता है। इसमें माण्डलिक राजाओं का स्थान छूट जाता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

अच्छिन्ना मण्डले रेखा शशिनो दृश्यते यदा।
कुण्डाख्यं नाम संस्थानं नृपविग्रहदायकम्॥

समाससंहिता में—

उदगुन्नत शुभफल सम समो दक्षिणोन्नतो न शुभः।
युद्धानि चापरूपे ज्यास्य यतस्ते नृपा जयिनः॥
नाविकपीडा नौवद्यादृद्वसंस्थिते कृषिकाराणाम्।
दण्डाऽवाङ्मुखसंकटमर्भपीडाकृतिर्न शुभः॥

उत्पाता व्याख्याता येऽर्के चन्द्रेऽपि ते विनिर्देश्याः।
शुक्ले भवन्ति सौम्याः कृष्णेऽधिकपापफलदास्ते ॥ १५ ॥

चन्द्र के समान्य लक्षण—

प्रोक्तस्थानाभावादुदग्गुत्क्षेमवृद्धिवृष्टिकरः।
दक्षिणतुङ्गश्चन्द्रो दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः ॥ १६ ॥

पूर्वकथित संस्थानों के अभाव में यदि चन्द्र का शृङ्ग उत्तर दिशा में उन्नत हो तो क्षेम, सस्य की वृद्धि और वृष्टि को करता है। यदि दक्षिण दिशा में उन्नत हो तो दुर्भिक्ष और भय करता है ॥ १६ ॥

चन्द्र के और भी सामान्य लक्षण—

शृङ्गेणैकेनेन्दुर्विलीनमथवाऽप्यवाङ्मुखं शृङ्गम्।
सम्पूर्णं चाभिनवं दृष्ट्वैको जीविताद् भ्रश्येत् ॥ १७ ॥

यदि चन्द्र का एक शृङ्ग विलीन (बिल्कुल नहीं हो), अधोमुख हो, या सब नये प्रकार के हों तो देखने वालों में से एक मनुष्य की मृत्यु होती है।

समाससंहिता में—

उदयन्तमप्यसदृशं न शुभं बहुरूपतायवैकरय।
एकश्चन्द्रविकारं यः पश्येन्न स चिरं जीवेत् ॥ १७ ॥

चन्द्र के स्वरूप का फल—

संस्थानविधिः कथितो रूपाण्यस्माद्भवन्ति चन्द्रमसः।
स्वल्पो दुर्भिक्षकरो महान् सुभिक्षावहः प्रोक्तः ॥ १८ ॥

संस्थानप्रकार कहने के बाद चन्द्र के स्वरूप और उनके फल को कहते हैं। यदि चन्द्रबिम्ब छोटा हो तो दुर्भिक्ष और बड़ा हो तो सुभिक्ष होता है ॥ १८ ॥

चन्द्र के स्वरूप का और फल—

मध्यतनुर्वज्राख्यः क्षुद्भयदः सम्भ्रमाय राज्ञां च।
चन्द्रो मृदङ्गरूपः क्षेमसुभिक्षावहो भवति ॥ १९ ॥
ज्ञेयो विशालमूर्तिर्नरपतिलक्ष्मीविवृद्धये चन्द्रः।
स्थूलः सुभिक्षकारी प्रियधान्यकरस्तु तनुमूर्तिः ॥ २० ॥

यदि चन्द्रबिम्ब मध्यम हो तो वज्रसंज्ञक होता है। यह क्षुधा और भय को देने वाला और राजाओं में उद्यम पैदा करने वाला होता है। यदि चन्द्रबिम्ब मृदङ्ग की तरह देखने में आवे तो कल्याण और सुभिक्ष होता है। यदि अति विस्तृत मूर्ति हो तो राजलक्ष्मी की वृद्धि होती है। यदि मोटी मूर्ति हो तो सुभिक्ष करनेवाला और पतली मूर्ति हो तो प्रियधान्य (सुभिक्ष) करनेवाला होता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

विलग्नमध्यो मेघाभो वज्रसंस्थानसंस्थितः।
मध्यच्छिद्रो विलीनो वा भयं च जनयेन्महत् ॥ १९-२० ॥

कुज आदि ग्रहों से खण्डित चन्द्रशृङ्ग का फल—

अत्यन्तान् कुनृपांश्च हन्त्युडुपतिः शृङ्गे कुजेनाहते
शस्त्रक्षुद्भयकृद्यमेन शशिजेनावृष्टिदुर्भिक्षकृत्।
श्रेष्ठान् हन्ति नृपान् महेन्द्रगुरुणा शुक्रेण चाल्पान्नृपान्
शुक्ले याप्यमिदं फलं ग्रहकृतं कृष्णे यथोक्तागमम् ॥ २१ ॥

यदि चन्द्रशृङ्ग मङ्गल से वेधित हो तो दूर में रहने वाले बड़े राजाओं का नाश करने वाला होता है, शनि से वेधित होने पर शस्त्र और क्षुधा का भय करने वाला होता है। बुध से वेधित होने पर अनावृष्टि और दुर्भिक्ष करने वाला होता है। बृहस्पति से वेधित होने पर श्रेष्ठ राजाओं का नाश करने वाला होता है तथा शुक्र से वेधित होने पर छोटे राजाओं का नाश करने वाला होता है। यह पूर्वोक्त ग्रहकृत फल शुक्लपक्ष में अल्प और कृष्णपक्ष में सम्पूर्ण होता है।

समास संहिता में—

अत्यन्तविनाशोऽन्नक्षयो महाराजपीडा च।
सङ्ग्रामाश्चाभिहते शृङ्गे भौमादिभिः क्रमशः ॥ २१ ॥

शुक्र से खण्डित चन्द्रबिम्ब का फल—

भिन्नः सितेन मगधान् यवनान् पुलिन्दान्
नेपालभृङ्गिमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रान्।
पाञ्चालकैकयकुलूतकपूरुपादान्
हन्यादुशीनरजनानपि सप्तमासान् ॥ २२ ॥

यदि चन्द्रबिम्ब शुक्र से वेधित हो तो मगध, यवन, पुलिन्द, नेपाल, भृङ्गि, मरुदेश, कच्छ, सूरत, मद्रास, पञ्जाब, काश्मीर, कुलूतक, पुरुपाद, उशीनर इन देशों में सात महीने तक भयानक मृत्यु होती है ॥ २२ ॥

बृहस्पति से खण्डित चन्द्रबिम्ब का फल—

गान्धारसौवीरकसिन्धुकीरान् धान्यानि शैलान् द्रविडाधिपांश्च।
द्विजांश्च मासान् दश शीतरश्मिः सन्तापयेद्वाक्पतिना विभिन्नः ॥२३॥

यदि चन्द्रबिम्ब बृहस्पति से वेधित हो तो गन्धार, सौवीरक, सिन्धु, कीर, पर्वतीय, द्रविड इन देशों के ब्राह्मणों और धान्यों का दश महीने तक नाश करता है ॥ २३ ॥

मङ्गल से वेधित चन्द्रबिम्ब का फल—

उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतींस्त्रैगर्तकान् मालवान्
कौलिन्दान् गणपुङ्गवानथ शिबीनायोध्यकान् पार्थिवान्।
हन्यात्कौरवमत्स्यशुक्त्यधिपतीन् राजन्यमुख्यानपि
प्रालेयांशुरसृग्ग्रहे तनुगते षण्मासमर्यादया॥ २४॥

यदि मङ्गल से चन्द्रबिम्ब वेधित हो तो अश्व आदि वाहनों के द्वारा योद्धाओं का नाश होता है तथा त्रिगर्त, मालवा, कौलिन्द, गणों में प्रधान, शिबि और अयोध्या में उत्पन्न जन और राजाओं का नाश करता है। इसी तरह कुरु, मत्स्य, शुक्ति इन देशों के जनों और राजाओं का छै महीने के अन्दर नाश करता है॥ २४॥

शनैश्चर से भिन्न चन्द्रबिम्ब का फल—

यौधेयान् सचिवान् सकौरवान् प्रागीशानथ चार्जुनायनान्।
हन्यादर्कजभिन्नमण्डलः शीतांशुर्दशमासपीडया॥ २५॥

यदि शनैश्चर से चन्द्रमा वेधित हो तो दश महीने तक पीड़ित करके योद्धाओं, मन्त्रियों, कुरुवंशीयों, पूर्व दिशाओं में स्थित राजा और अर्जुनायन (पाण्डुवंशीय) जनों का नाश करता है॥ २५॥

बुध से वेधित चन्द्र का फल—

मगधान् मथुरां च पीडयेद्वेणायाश्च तटं शशाङ्कजः।
अपरत्र कृतं युगं वदेद्यदि भित्वा शशिनं विनिर्गतः॥ २६॥

यदि चन्द्रमा को वेधित कर के बुध निकला हो तो मगध, मथुरा और वेणा नदी के तट पर स्थित देशों के मनुष्यों को पीडित करता है तथा पश्चिमीय देशों में स्थित मनुष्यों के लिये सतयुग के समान समय करता है, अर्थात् उन देशों में मनुष्य सब प्रकार से सम्पन्न होते हैं॥ २६॥

केतु से वेधित चन्द्र का फल—

क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी शीतांशुः शिखिना यदि भिन्नः।
कुर्यादायुधजीविविनाशं चौराणामधिकेन च पीडाम्॥ २७॥

यदि केतु से चन्द्रमा वेधित हो तो सब प्रकार के मंगल, आरोग्य, सुभिक्ष इन का और शस्त्र से जीवनयात्रा चलाने वाले मनुष्य का नाश करता है तथा चोरों को विशेषकर पीड़ा देता है॥ २७॥

ग्रहणकाल में उल्का से हत चन्द्र का फल—

उल्कया यदा शशी ग्रस्त एव हन्यते।
हन्यते तदा नृपो यस्य जन्मनि स्थितः॥ २८॥

यदि ग्रहणकालिक चन्द्र के ऊपर उल्कापात हो तो उस समय जिस राजा के जन्मनक्षत्र में चन्द्रमा बैठा हो उसका नाश करता है ॥ २८ ॥

चन्द्र के वर्ण का लक्षण और फल—

भस्मनिभः परुषोऽरुणमूर्तिः शीतकरः किरणैः परिहीणः ।
श्यावतनुः स्फुटितः स्फुरणो वा क्षुड्डमरामयचौरभयाय ॥ २९ ॥

यदि चन्द्रबिम्ब भस्म के समान रूक्ष, रक्त वर्ण, किरणों से हीन, कृष्ण वर्ण, खण्डित या काँपता हुआ हो तो दुर्भिक्ष, कलह, रोग और चोरों का भय देने वाला होता है ॥ २९ ॥

चन्द्र के और शुभ लक्षण—

प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातो
यत्नादिवाद्रिसुतया परिमृज्य चन्द्रः ।
उच्चैः कृतो निशि भविष्यति मे शिवाय
यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय ॥ ३० ॥

मानो शिव जी के लिये पार्वती जी ने साफ कर के हिम, कुन्दपुष्प या स्फटिकमणि के समान स्वच्छ अत्यन्त सुन्दर चन्द्र बनाया हो, ऐसे चन्द्र को जो मनुष्य रात्रि में देखता है उसके लिये वह कल्याणकारी होता है अर्थात् हिम आदि के समान स्वच्छ चन्द्र को रात्रि में जो देखता है उसका सर्वथा मंगल होता है ॥ ३० ॥

पक्ष की वृद्धि, हानि और साम्य होने पर शुभाशुभ फल—

शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च ।
हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥ ३१ ॥

यदि शुक्ल पक्ष में कोई तिथि बढ़ जाय तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और प्रजागण अत्यन्त बढ़ते हैं, घट जाने पर उनकी हानि होती है और समान रहने पर उनको साधारण फल मिलता है ॥ ३१ ॥

चन्द्र के और फल—

यदि कुमुदमृणालहारगौरस्तिथिनियमात् क्षयमेति वर्द्धते वा ।
अविकृतगतिमण्डलांशुयोगी भवति नृणां विजयाय शीतरश्मिः ॥३२॥

यदि विकाररहित गति और विकाररहित किरण वाला चन्द्र कुमुद, मृणाल या मुक्ताहार के समान वर्ण का होकर तिथि के अनुसार घटता-बढ़ता हो तो मनुष्यों की विजय के लिये होता है ॥ ३२ ॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां चन्द्रचाराध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

अथ राहुचाराध्यायः

राहु का महत्व सिद्ध करने में मतान्तर—

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम् ।
प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥ १ ॥

किसी का मत है कि राहु नामक राक्षस ने मस्तक कट जाने पर भी अमृत पी चुकने के कारण प्राणनाश नहीं वरन् महत्व प्राप्त किया।

यहाँ पर पौराणिक मत—

सिंहिकातनयो राहुरपिबच्चामृतं पुरा। शिरश्छिन्नोऽपि न प्राणैस्त्यक्तोऽसौ ग्रहतां यतः ॥१॥

यदि राहु ग्रह है तो आकाश में सदा और ग्रहों की तरह क्यों नहीं दिखाई देता—

इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात्किल न दृश्यते गगने ।
अन्यत्र पर्वकालाद्वरप्रदानात्कमलयोनेः ॥ २ ॥

काला होने के कारण ब्रह्मा जी के वरप्रदान से पर्वकाल से भिन्न समय में राहु आकाश में चन्द्र और रविमण्डल के सदृश नहीं दिखाई देता।

भगवान् गर्ग—

आदित्यनिलयो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु। आदित्यमेति सोमाच्च पुनश्चादित्सु पर्वसु ॥२॥

और भी मतान्तर—

मुखपुच्छविभक्ताङ्गं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये ।
कथयन्त्यमूर्तमपरे तमोमयं सैंहिकेयाख्यम् ॥ ३ ॥

किसी का मत है कि मुख और पुच्छ से विभक्त है अङ्ग जिसका ऐसा जो सर्प का आकार है, वही राहु का आकार है। किसी का मत है कि राहु का आकार कोई भी नहीं है, केवल अन्धकारमय है।

वीरभद्र—

सिंहिकातनयस्यास्य राहोः पुच्छमुखादृते। नान्यदस्ति परं बाहुकटिपादकरादिकम् ॥

वसिष्ठ का वचन—

भषट्कान्तरितौ राहुः सूर्याचन्द्रमसावुभौ। छादयत्युरगाकारो वरदानात्स्वयम्भुवः ॥

देवल का वचन—

अन्धकारमयो राहुर्मेघखण्ड इवोत्थितः। आच्छादयति सोमार्कौ पर्वकाले ग्रसिष्यते ॥३॥

पूर्वकथित अन्य मतों में दोष—

यदि मूर्तो भविचारी शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः ।
भगणार्द्धेनान्तरितौ गृह्णाति कथं नियतचारः ॥ ४ ॥

यदि राहु मूर्तिमान्, राशि में चलने वाला, शिर वाला और बिम्ब वाला होता तो निश्चित गति वाला होकर भगणार्द्ध पर स्थित रवि-चन्द्र इन दोनों को कैसे ग्रसता अर्थात् कभी भी नहीं ग्रस सकता ॥ ४ ॥

पूर्वोक्त मत में और दोष—

अनियतचारः खलु चेदुपलब्धिः संख्यया कथं तस्य ।
पुच्छाननाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ॥ ५ ॥

यदि राहु अनिश्चित गति वाला होता तो गणित से उसका ज्ञान कैसे हो सकता था। अथवा यदि मुख-पुच्छ-विभक्ताङ्ग वाला है तो अपने से दूसरी, तीसरी, चौथी या पाचवीं राशि पर स्थित रवि-चन्द्र को क्यों नहीं ग्रसता है ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त मत में और दोष—

अथ तु भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति ।
मुखपुच्छान्तरसंस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्द्धम् ॥ ६ ॥

यदि राहु सर्पाकार होता तो मुख या पुच्छ से छै राशि के अन्तर पर स्थित रवि-चन्द्र को ग्रहण समय में मुख और पुच्छ के बीच में स्थित भगणार्ध को भी आच्छादित कर देता ॥ ६ ॥

दो राहु कहने वाले के मत में दोष—

राहुद्वयं यदि स्याद् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवोदिते चन्द्रे ।
तत्समगतिनान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ॥ ७ ॥

यदि राहु दो होते तो चन्द्र के ग्रस्तास्त या ग्रस्तोदय समय में चन्द्र से षड्भान्तर पर स्थित सूर्य भी उसके समान गति वाले द्वितीय राहु से ग्रसित देखने में आता। आशय यह है कि जो कोई दो राहु एक नियत चार वाला और दूसरा अनियत चार वाला मानते हैं यह ठीक नहीं है, क्योंकि जब अनियत चार वाले राहु के द्वारा ग्रसित चन्द्र का उदय या अस्त होगा उस समय क्षितिज के ऊपर विरुद्ध दिशा में नियत चार वाले राहु से सूर्य का भी ग्रहण होना सम्भव है, पर ऐसा नहीं देखने में आता ॥ ७ ॥

अपना सिद्धान्त कहते हुये स्पार्शिक व्यवस्था—

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः ।
प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्द्धात् ॥ ८ ॥

अपने ग्रहण में, चन्द्रमा भूच्छाया में और सूर्यग्रहण में सूर्यबिम्ब में प्रविष्ट होता है अतः चन्द्र का स्पर्श पश्चिम भाग से और सूर्य का स्पर्श पूर्व भाग से नहीं होता ॥ ८ ॥

—रात्रि में भूच्छाया होने में कारण—

वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वे भवति दीर्घचया।
निशि निशि तद्वद्भूमेरावरणवशाद्दिनेशस्य ॥ ९ ॥

जिस तरह सूर्य के आवरणवश वृक्ष की छाया एक तरफ फैलती है उसी तरह सूर्य के आवरणवश पृथ्वी की छाया प्रत्येक रात्रि में लम्बी होती है ॥ ९ ॥

प्रत्येक पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण का असम्भव—

सूर्यात्सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणेन नातिगतः।
चन्द्रः पूर्वाभिमुखश्छायामौर्वीं तदा विशति ॥ १० ॥

जब सूर्य से सप्तम राशि में स्थित होकर पूर्वाभिमुख गति वाला चन्द्र क्रान्तिवृत्त से अत्यल्प उत्तर या दक्षिण शर पर रहता है उस समय पूर्वाभिमुख चलता हुआ चन्द्र पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है।

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में—

भूच्छायां शशिकक्ष्यागां रवौ भार्धान्तरस्थिते।
यदा विशत्यविक्षिप्तश्चन्द्रः स्यात्तद्ग्रहस्तदा ॥ १० ॥

ग्रहण में समता और विभिन्नता का कारण—

चन्द्रोऽधस्थः स्थगयति रविमम्बुदवत् समागतः पश्चात्।
प्रतिदेशमतश्चित्रं दृष्टिवशाद्भास्करग्रहणम् ॥ ११ ॥

सब देशों में प्रायः चन्द्रग्रहण एक रूप का और रविग्रहण विभिन्न रूप का देखने में आता है। उसका कारण यह है कि मेघ की तरह अधःस्थित चन्द्रमा पश्चिम तरफ से आकर रविबिम्ब को ढाकता है इसलिये प्रत्येक देश में सूर्यग्रहण विभिन्नरूप देखने में आता है।

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में—

भूच्छायेन्दुं चन्द्रः सूर्यं छादयति मानयोगार्धात्।
विक्षेपो यदूनः शुक्लेतरपञ्चदश्यन्ते ॥ ११ ॥

अर्द्धग्रसित चन्द्र की कुण्ठविषाणता और रवि की तीक्ष्णविषाणता होने में कारण—

आवरणं महदिन्दोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्द्धसञ्छन्नः।
स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविषाणो रविर्भवति ॥ १२ ॥

चन्द्र का आवरण (छादक = भूच्छाया) महान् होने के कारण अर्धग्रसित चन्द्रबिम्ब में कुण्ठविषाण (स्थूल शृङ्ग) होता है। एवं सूर्य का आवरण (छादक = चन्द्रबिम्ब) स्वल्प (सूर्यबिम्ब से अल्प) होने के कारण अर्धग्रसित सूर्यबिम्ब में तीक्ष्णविषाण (सूक्ष्म शृङ्ग) होता है।

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में—

महदिन्दोरावरणं कुण्ठविषाणो यतोऽर्द्धसञ्छन्नः।
अर्द्धच्छन्नो भानुस्तीक्ष्णविषाणस्ततोऽस्याल्पम् ॥ १२ ॥

रवि-चन्द्र के ग्रहण में राहु कारण नहीं है—

एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः।

राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः॥ १३॥

दिव्य दृष्टि वाले आचार्यों ने इस तरह उपराग (ग्रहण) का कारण कहा है। इसमें राहु को कारण न मानना शास्त्रमर्यादा की रक्षा करना है।

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में—

यदि राहुः प्राग्गमनादिन्दुं छादयति किं तथा नार्कम्।

दिवसार्द्धं मद्दिन्दोर्यथा तथा किं न सूर्यस्य॥

किं प्रतिविषयं सूर्यो राहुश्चान्यो यतो रविग्रहणे।

ग्रासान्यत्वं न ततो राहुकृतं ग्रहणमर्केन्दोः॥

इस तरह राहुकृत ग्रहण का न होना सिद्ध होता है। पर सर्वत्र पामर से लेकर बड़े-बड़े ज्ञानियों तक राहुकृत ग्रहण प्रसिद्ध है। तथा श्रुति-स्मृति-पुराणादि में भी राहुकृत ग्रहण ही प्रसिद्ध है। जैसे—

श्रुति में—

स्वर्भानुर्ह वा आसुरि तमसा विव्याधेति।

स्मृति में—

अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात्॥

और भी—

राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु। स्नानदानादिकं कुर्यान्निशि काम्यव्रतेषु च॥

गर्गसंहिता में—

यद्यद्गतौ राहुर्मतो शशिभास्करौ। तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः॥

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में—

राहुकृतं ग्रहणद्वयमागोपालाङ्गनादिसिद्धमिदम्। बहुफलमिदमपि सिद्धं जपहोमस्नानफलमत्र॥

स्मृतिसूक्तं न स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनाद्रात्रौ। राहुग्रस्ते सूर्ये सर्वं गंगासमं तोयम्॥

स्वर्भानुरासुरिरिनं तमसा विव्याध वेदवाक्यमिदम्॥ १३॥

लोक, श्रुति, स्मृति-पुराणादि में विरोध का परिहार—

योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्तः।

आप्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता॥ १४॥

तस्मिन् काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुः।

याम्योत्तरा शशिगतिर्गणितेऽप्युपचर्यते तेन॥ १५॥

पूर्व समय में ब्रह्मा जी ने राहु को ऐसा वर दिया था कि ग्रहण समय में लोगों के द्वारा दिये हुए हुतांश से तेरी तृप्ति होती रहेगी। इस कारण ग्रहण-समय में सूर्य, चन्द्र को राहु का सान्निध्य होता है और राहु के कारण ही चन्द्र की दक्षिणोत्तरा गति उत्पन्न होती है॥

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में—

श्रुतिसंहितास्मृतीनां भवति यथैक्यं तदुक्तितः।
राहुस्तच्छादयति प्रविशति यच्छुक्लपक्षदरयन्ते॥
भूच्छायातमसीन्दुं वरप्रदानात्कमलजस्य।
चन्द्रोऽम्बुमयोऽधःस्थो यदग्निमयभास्करस्य मासान्ते॥
छादयति शमिततापं राहुरछादयति तत्सवितुः।
भूच्छायाख्यामसमः शशिकक्षायां स्थितः शशिग्रहणे॥
राहुरछादयतीन्दुं सूर्यग्रहणेऽर्कमिन्दुममा।
यच्चदधिकं तमोमयराहुव्यासस्य सूर्यदृष्टं तत्॥
नश्यति भूच्छायेन्दुव्यासमतोऽस्माद्भवति राहुः।
भूच्छाया नेन्दुमतो ग्रहणे छादयति नार्कमिन्दुर्वा॥
तत्स्थस्तद्व्याससमो राहुरछादयति शशिसूर्यौ।

सिद्धान्तशिरोमणि में—

राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं शशाङ्कगश्छादयतीनबिम्बम्।
तमोमयः शम्भुवरप्रदानात्सर्वागमानामविरुद्धमेतत्॥ १४–१५॥

न कथञ्चिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते निमित्तानि।
अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि॥ १६॥

गर्गादि आचार्यों ने उत्पातों के द्वारा ग्रहण के कारण कहे हैं पर उनके द्वारा ग्रहण-ज्ञान स्पष्ट नहीं होता—किसी तरह उत्पात के द्वारा ग्रहणकाल का ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि पर्वकाल से भिन्न काल में भी उत्पात के द्वारा जो ग्रहण होता है उसको उत्पात कहते हैं॥ १६॥

पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य संभवो भवति।
तैलं च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः॥ १७॥

किसी का मत है कि जिस अमा या पूर्णिमा में पाँच ग्रहों की संयुति हो उसमें ग्रहण का सम्भव नहीं कहना चाहिये तथा ग्रहण से पूर्व अष्टमी के दिन जल में तेल डालकर स्पर्श-मोक्ष की दिशा का ज्ञान करना चाहिये, अर्थात् ग्रहण से पूर्व अष्टमी के दिन जल में तेल डाले, वह जिस तरफ फैले उस तरफ स्पर्श और उसके विरुद्ध तरफ मोक्षकाल समझना चाहिये।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

ग्रहपञ्चकसंयोगं दृष्ट्वा न ग्रहणं वदेत्। यदि न स्याद्बुधस्तत्र तं दृष्ट्वा ग्रहणं वदेत्॥
अष्टम्यां परिवेषः स्याच्चैले जलगते यदा। प्रसारिते विजानीयाद्यतः खण्डस्ततस्ततः॥

यहाँ पर गर्ग का वचन—

दिग्दाहोल्कामहीकम्पतमोधूमरजांसि च। सूचयन्त्यागमं राहोः पुनः पर्वण्युपस्थिते॥

तत्राष्टम्यां जले तैलं क्षिप्त्वा स्थानं विनिर्दिशेत्। परिवेषो यत्र खण्डस्तत्र ज्ञेयौ समागमौ॥
पञ्चग्रहसमायोगं दृष्ट्वा सौम्यविवर्जितम्। ग्रहणं तु वदेत्तत्र सबुधं न ग्रहं वदेत्॥

परन्तु यह मत ठीक नहीं है, अतः पण्डितों को यह अङ्गीकार नहीं करना चाहिये॥ १७॥

ग्रहण में ग्रासप्रमाण, दिग्ज्ञान और समयज्ञान—

अवनत्यार्के ग्रासो दिग्ज्ञेया वलनयाऽवनत्या च।
तिथ्यवसानाद्वेला करणे कथितानि तानि मया॥ १८॥

अवनति (स्पष्ट शर) के द्वारा सूर्य का ग्रास, वलन और स्पष्ट शर के द्वारा परिलेख से दिशा और तिथि (अमावास्या) के अन्त से ग्रहणकाल का निश्चय करना चाहिये।

पञ्चसिद्धान्तिका में इनके जानने का प्रकार—

दिनमध्यमसम्प्राप्ता यावत्यो नाडिका व्यतीता वा।
ताभ्यः षड्गुणिताभ्यो ज्यांत्रिंशांशरहितयेनर्मि॥
उदयात्प्रभृति च नाड्यो याः स्युः प्राग्लग्नमानयेत्ताभिः।
तस्मात्तु नव समेतादपक्रमाशान् विनिश्चित्य॥
लम्बज्यगुविवरज्यां द्विगुणां खरसांशसंमितामपमात्।
जह्यादिग्व्यत्यासे विक्षेपैक्ये तयोर्योगः॥
उत्तरमग्राच्छुद्धं याम्यं साक्षं च दक्षिणं विन्द्यात्।
उत्तरमक्षाद्यदधिकमुत्तरमेव विजानीयात्॥
तज्ज्यार्द्धं शशिभुक्तिं हत्वा षष्टिभिः हृतैः स्फुटावनतिः।
मध्यममान त्रिशङ्कानो शशिनश्चतुस्त्रिंशत्॥
समलिप्ताद्युविवरज्याभ्यस्ता मूर्च्छना नवहृताश्च।
अवनत्या युतविश्लेषिता च दिक्साम्यवैलोम्ये॥
मध्यममानाभ्यस्ता स्फुटभुक्तिर्मध्यभुक्तिभक्ता च।
भवति कलापरिमाणं तत्कालीनं रविहिमांशोः॥
अवनतिवर्गं जह्याद्रवीन्दुपरिमाणयोगदलवर्गात्।
तन्मूलात्तु द्विगुणात्तिथिभुक्तवदादिशेत्कालम्॥
रविशशिमानयुतिदलादवनतिहीनाद्भवन्ति या लिप्ताः।
तान्यङ्गुलानि विम्बमानोद्धृतानि चन्द्रमसा॥
अर्द्धेनालिख्य रविं दत्त्वावनतिं यथादिशं मध्यात्।
अवनत्यन्ताच्चन्द्रं विलिखेद्ग्रासार्थमर्द्धेन॥ १८॥

कल्पादि से छै छै मास वृद्धि करके सात पर्वों के ब्रह्मा आदि देवता—

षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः।
ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः॥ १९॥

कल्पादि से छै छै मास वृद्धि करके सात पर्वों के ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि, यम ये सात देवता होते हैं ॥ १९ ॥

इनके फल—

ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः क्षेमारोग्यानि सस्यसम्पच्च ।
तद्वत्सौम्ये तस्मिन् पीडा विदुषामवृष्टिश्च ॥ २० ॥
ऐन्द्रे भूपविरोधः शारदसस्यक्षयो न च क्षेमम् ।
कौबेरेऽर्थपतीनामर्थविनाशः सुभिक्षं च ॥ २१ ॥
वारुणमवनीशाशुभमन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम् ।
आग्नेयं मित्राख्यं सस्यारोग्याभयाम्बुकरम् ॥ २२ ॥
याम्यां करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं सङ्क्षयं च सस्यानाम् ।
यदतः परं तदशुभं क्षुन्मारावृष्टिदं पर्व ॥ २३ ॥

यदि ब्राह्मपर्व में ग्रहण हो तो ब्राह्मण और पशुओं की उन्नति, कुशल, आरोग्य तथा धान्यों की वृद्धि होती है। चान्द्रपर्व में इसी तरह ब्राह्मण और पशुओं की उन्नति, कुशल, आरोग्य, धान्यों की वृद्धि, पण्डितों को पीडा तथा अनावृष्टि होती है। ऐन्द्रपर्व में राजाओं में विरोध, शारदीय धान्य का नाश और लोगों में अकुशल होता है। कौबेरपर्व में धनपतियों के धन की क्षति और सुभिक्ष होता है। वारुणपर्व में राजाओं का अशुभ, दूसरे लोगों का कुशल और धान्यों की वृद्धि होती है। आग्नेयपर्व को मित्र भी कहते हैं, इसमें धान्य की वृद्धि, आरोग्य, अभय और वृष्टि होती है। याम्यपर्व में वर्षा का अभाव, दुर्भिक्ष और धान्यों का नाश होता है। इन सात पर्वों से भिन्न पर्व अशुभ फल देने वाले होते हैं। जैसे छै मास वृद्धि करके सात पर्वेश कहे गये हैं, इनमें किसी समय उत्पातवश पाँच, साढे पाँच, साढे छै या सात मास आदि पर ही पर्व की उपस्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में पूर्वकथित ब्राह्म आदि सात पर्व नहीं होते। इनसे अतिरिक्त पर्वों में दुर्भिक्ष, मरकी और अनावृष्टि होती है।

यहाँ पर गर्ग का वचन—

चन्द्रात्पञ्चममासे तु मासे त्वेकादशे तथा।
सप्तादशे वा सूर्यस्य ग्रहणं क्षुद्भयाय तत् ॥ २०–२३ ॥

वेलाहीन अतिवेल में पर्व का फल—

वेलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च ।
अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च ॥ २४ ॥

गणितागत ग्रहणकाल से पूर्व में या पश्चात् ग्रहण देखने में आवे तो उसको क्रम से वेलाहीन, अतिवेल ग्रहण कहते हैं। वेलाहीन पर्व में गर्भ (गर्भलक्षण आगे कहेंगे) का नाश, शस्त्रकोप (युद्ध) और अतिवेलपर्व में पुष्प-फल का नाश, भय, धान्यों का नाश होता है।

यहाँ पर गर्ग का वचन—

वेलाहीने शस्त्रभयं गर्भाणां स्रावणं तथा । अतिवेले फलानां तु सस्यानां च भयमादिशेत् ॥
दृक्समे पर्वणि नृपा निर्वैरा विगतज्वराः । प्रजाश्च सुखिताः सर्वा भयरोगविवर्जिताः ॥

कश्यप—

अनागतमतीतं वा ग्रहणे पर्व दृश्यते । गर्भस्रावमनावृष्टिं फलं पुष्पं विनश्यति ॥२४॥

ये सब पूर्वशास्त्रानुसार मैंने कहे हैं—

हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् ।
स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति ॥ २५ ॥

गणितागत ग्रहणकाल से भिन्नकालिक पर्व में जो फल मैंने कहे हैं, वे पूर्वशास्त्रानुसार हैं क्योंकि स्पष्ट गणित को जानने वाले दैवज्ञों के द्वारा साधित ग्रहणकाल अन्यथा नहीं हो सकता। यत देशान्तरकर्म के विना तिथिचलन नहीं होता यह गणित को जानने वाले ज्योतिषी लोग ही जान सकते हैं।

कहा भी है—

गणितग्रग्रहात्पश्चाद्यदि दृक्ग्रग्रहो भवेत् । स प्रागदेशोऽन्यथा पश्चाद्देशायाः स च मेरतः॥
उज्जयिन्यां गता याम्यसूत्रातो दक्षिणोत्तरा । तदन्तर्घटिकाभुक्तिवधात् षष्ट्याहतात् फलम्॥
मध्ये धनर्णं पश्चात्प्रागघटिका युगणेऽथवा ॥ २५ ॥

एक ही मास में चन्द्र-सूर्य दोनों के ग्रहण होने पर फल—

यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः ।
स्वबलक्षोभैः संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ॥ २६ ॥

यदि एक ही मास में सूर्य-चन्द्र दोनों का ग्रहण होवे तो अपनी सेनाओं में हलचली मच जाने से या शस्त्रप्रहार से राजाओं का नाश होता है।

यहाँ कश्यप का वचन—

चन्द्रार्कयोरेकमासे ग्रहणं न प्रशस्यते । परस्परं वधं कुर्युः स्वबलक्षुभिता नृपाः ॥ २६ ॥

ग्रस्तोदित ग्रस्तास्त चन्द्र और रवि का फल—

ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ ।
सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमरकदौ पापसन्दृष्टौ ॥ २७ ॥

यदि ग्रस्त चन्द्र-सूर्य का उदय या अस्त हो तो क्रम से शारदीय धान्य और राजा का नाश करता है। जैसे ग्रस्त चन्द्र का उदय या अस्त हो तो शारदीय धान्य का और ग्रस्त सूर्य का उदय या अस्त हो तो राजा का नाश होता है। सर्वग्रस्त चन्द्र-सूर्य यदि पापग्रह से देखे जाते हों तो दुर्भिक्ष और मरकी को देते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

उद्गच्छति गृहीतश्चेदस्तं या यदि गच्छति । शारदं तु सदा सस्यं जातं जातं विपद्यते ॥
ग्रैष्मेण तत्र जीवन्ति नरा मूलफलेन वा । भयदुर्भिक्षरोगैश्च तदा संपीड्यते जगत् ॥

ऋषिपुत्र का वचन—

यावतोंऽशान् प्रसित्वेन्दोरुदयरयरतमेति वा। तावतोंऽशान् पृथिव्यास्तु तम एव विनाशयेत्॥
उदयेऽस्तमये वापि सूर्यस्य ग्रहणं भवेत्। तदा नृपभयं विन्द्यात्स्वचक्रस्य चागमम्॥२७॥

उदय से लेकर अस्त तक ग्रस्त चन्द्र-सूर्य के सात प्रकार के फल—

अर्द्धोदितोपरक्तो नैकृतिकान् हन्ति सर्वयज्ञांश्च।
अग्न्युपजीविगुणाधिकविप्राश्रमिणो युगेऽभ्युदितः॥ २८॥
कर्षकपाखण्डिवणिक्क्षत्रियबलनायकान् द्वितीयांशे।
कारुकशूद्रम्लेच्छान् स्वतृतीयांशे समन्त्रिजनान्॥ २९॥
मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहा शोभनश्च धान्यार्घः।
तृणभुगमात्यान्तःपुरवैश्यघ्नः पञ्चमे खांशे॥ ३०॥
स्त्रीशूद्रान् षष्ठेंऽशे दस्युप्रत्यन्तहाऽस्तमयकाले।
यस्मिन् खांशे मोक्षस्तत्प्रोक्तानां शिवं भवति॥ ३१॥

यदि अर्द्धोदित चन्द्र और सूर्य ग्रस्त होता हो तो निषाद जाति का और सब यज्ञों का नाश करता है। दिनमान या रात्रि मान को सात जगह विभक्त करने पर युग का प्रथम आदि खांश मान होता है।

इन में प्रत्येक खांश मान में स्पर्श और मोक्ष होने पर फल यह होता है कि यदि युग के प्रथम खांश में उदित चन्द्र या सूर्य ग्रस्त होता हो तो अग्नि से जीविका चलाने वाले, गुणी, ब्राह्मण और आश्रमवासियों का नाश करता है। द्वितीय खांश में किसान, पाखण्डी, व्यापारी, क्षत्रिय और सेनापति का नाश करता है। तीसरे खांश में चित्र बनाने वाले, शूद्र, म्लेच्छ जाति और मन्त्रियों का नाश करता है। चतुर्थ खांश में राजा और मध्य देश का नाश करता है तथा अर्घों के मूल्य में समानता करता है। पञ्चम खांश में चतुष्पद, मन्त्री, अन्तःपुर और वैश्यों का नाश करता है। षष्ठ खांश में स्त्री और शूद्रों का नाश करता है। सप्तम खांश में (अस्तकाल में) चोर और गुहा में निवास करने वालों का नाश करता है। जिस खांश में मोक्ष होता है उस खांश में तत्तद्व्यक्तियों के लिये कथित अशुभ फल नहीं होकर शुभ फल होता है।

यहाँ पर काश्यप का वचन—

उदितास्तमितौ ग्रस्तौ सर्वसस्यभयङ्करौ। सर्वग्रस्तौ यदा पश्येद्दुर्भिक्षं तत्र जायते॥
प्रथमांशे विप्रपीडा क्षत्रियाणां द्वितीयके। शूद्राणां च तृतीयेंऽशे चतुर्थे मध्यदेशिनाम्॥
वैश्यानां पञ्चमे खांशे षष्ठांशे प्रमदाभयम्। दस्युप्रत्यन्तम्लेच्छविनाशः सप्तमांशके॥
येषामंशे भवेन्मोक्षस्तज्जातानां शुभं भवेत्।

वृद्ध गर्ग—

येषां सोमो युगे ग्रस्तो विमर्दो यत्र वा भवेत्।
तेषां पीडा विजानीयान्मोक्षे शुभमथादिशेत्॥ २८-३१॥

अयन और दिशा के वश ग्रहण का फल—

द्विजनृपतीनुदगयने विट्शूद्रान् दक्षिणायने हन्ति ।
राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादीन् ॥ ३२ ॥
म्लेच्छान् विदिक्स्थितो यायिनश्च हन्याद्धुताशसक्तांश्च ।
सलिलचरदन्तिघाती याम्येनोदग्गवामशुभः ॥ ३३ ॥
पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति वसुधां समागतो दैत्यः ।
पश्चात्कर्षकसेवकबीजविनाशाय निर्दिष्टः ॥ ३४ ॥

यदि उत्तरायण में चन्द्र या सूर्य का ग्रहण हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों का नाश करता है। दक्षिणायन में वैश्य और शूद्रों का नाश करता है। प्रदक्षिण क्रम से उत्तर आदि दिशाओं (उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम) में राहु दिखाई दे तो क्रम से ब्राह्मण आदि का नाश करता है, जैसे उत्तर में ब्राह्मण, पूर्व में क्षत्रिय, दक्षिण में वैश्य और पश्चिम में शूद्र का नाश करता है। विदिशा (ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य कोण) में स्थित राहु म्लेच्छ जाति, यायी और अग्नि से जीविका चलाने वाले (अग्निहोत्री आदि) का नाश करता है। दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम दिशाओं के लिये फिर विशेष फल कह रहे हैं। यदि दक्षिण में राहु दिखाई दे तो जलचर और हस्तियों का नाश करता है। उत्तर में दिखाई दे तो गाय-बैलों का नाश करता है। पूर्व में दिखाई दे तो भूमि को जल से पूर्ण करता है तथा पश्चिम में दिखाई दे तो किसान, भृत्य और बीजों का नाश करता है।

यहाँ पर कश्यप—

पूर्वे सलिलघाती स्यात् पश्चाद्धान्यकृषीवलान् ।
याम्ये जलचरान् हन्ति सौम्ये गोनाशकः स्मृतः ॥
म्लेच्छान् यायिनृपान् हन्ति विदिक्स्थः सिंहिकासुतः ॥

समाससंहिता में—

उदगादिषु दिक्ष्वशुभो विप्रादीनां सितादिवर्णस्य ।
विदिगादिगतो हन्याद्राहुर्म्लेच्छान् सविजिगीषून् ॥
द्विजराजन्यान् हन्यादुदगयने दक्षिणे तु विट्शूद्रान् ।
समरामयाय राहुर्यदि पक्षान्ते पुनर्दृश्य ॥ ३२-३४ ॥

मेष आदि राशियों में सूर्य और चन्द्रग्रहण का फल, उनमें पहले मेष राशि गत ग्रहण का फल—

पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजोड्रकिरातशस्त्रवार्ताः ।
जीवन्ति च ये हुताशवृत्त्या ते पीडामुपयान्ति मेषसंस्थे ॥ ३५ ॥

मेष राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण होने से पञ्जाब, कलिङ्ग, शूरसेन, काम्बोज, पौण्ड्रदेश, किरात, शस्त्र से जीवनयात्रा चलाने वाले और अग्नि से जीविका चलाने वालों को पीड़ित करता है ॥ ३५ ॥

वृष राशि में स्थित सूर्य और चन्द्र के ग्रहण का फल—

गोपाः पशवोऽथ गोमिनो मनुजा ये च महत्त्वमागताः।
पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽथवा वृषे ॥३६॥

यदि वृष राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो गौ को पालन करने वालों (अहीर आदियों), चतुष्पदों और पूजनीय मनुष्यों को पीड़ित करता है ॥३६॥

मिथुन राशि में स्थित सूर्य और चन्द्र के ग्रहण का फल—

मिथुने प्रवराङ्गना नृपा नृपमात्रा बलिनः कलाविदः।
यमुनातटजाः सबाह्लिका मत्स्याः सुह्मजनैः समन्विताः ॥३७॥

यदि मिथुन राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो उत्तम स्त्री, राजा, नृपमात्र (राजा के समान मन्त्री आदि), प्राणधारी अन्य जीव, कलाओं (चित्र, गीत, नृत्य और वाद्य) को जानने वाले, यमुना नदी के तट में निवास करने वाले, बाह्लिक (धीर मनुष्य, 'बाह्लीक बाह्लिकं धीरहिङ्गुनो'रिति मेदिनी) मध्यदेश (साकेता मिथिला चम्पा कौशाम्बी कौशिकी तथा। अहिच्छत्रं गया विन्ध्या मध्यदेशो हि कीर्तितः ॥) और सुह्म देश में निवास करने वाले मनुष्यों को पीड़ित करता है ॥३७॥

कर्क राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र-ग्रहण का फल—

आभीराञ्छबरान् सपह्लवान् मल्लान् मत्स्यकुरूञ्छकानपि।
पाञ्चालान्विकलांश्च पीडयत्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटे ॥३८॥

यदि कर्क राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो आभीर (अहीर, 'गोपे गोपालगोसंख्यगोधुगाभीरवल्लवाः' इत्यमरः), शबर (म्लेच्छ जाति, 'भेदाः किरात-शबर-पुलिन्दा म्लेच्छजातयः' इत्यमरः), पह्लव (दक्षिण देश का राजवंश), बाहुयुद्ध जानने वाले, मत्स्य, कुरु, शक, पञ्जाब इन देशों में निवास करने वाले और अङ्गहीन मनुष्यों को पीड़ित करता है ॥ ३८ ॥

सिंह और कन्या राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र-ग्रहण का फल—

सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान्
राजोपमान्नरपतीन् वनगोचरांश्च।
षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान्
हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च देशान् ॥३९॥

यदि सिंह राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो पुलिंदों (म्लेच्छ जातियों) का समूह, मेकल (पर्वत विशेष) में निवास करने वाले, बलवान्

जन्तु, राजा और राजा के समान तथा वन में निवास करने वाले मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि कन्या राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो धान्य, कवि, लेखक, गानविद्या जानने वाले, पत्थर से आजीविका करने वाले, त्रिपुर नामक देश और धान्ययुत प्रदेश इन सबों का नाश करता है ॥ ३९ ॥

तुला और वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र-ग्रहण का फल—

तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून्वणिग्दशार्णान्मरुकच्छपांश्च ।
अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान्द्रुमान्सयौधेयविषायुधीयान् ॥४०॥

यदि तुला राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो अवन्तिदेश में निवास करने वाले, पश्चिम समुद्र के निकट रहने वाले, सज्जन तथा व्यापारी, दशार्ण, मरु और कच्छ देश में रहने वाले इन सबों का नाश करता है। यदि वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो उदुम्बर, मद्र और चोल देश में निवास करने वाले मनुष्य, वृक्ष, युद्ध करने वाले मनुष्य, कठोर शस्त्र धारण करने वाले इन सबों का नाश करता है ॥ ४० ॥

धनु और मकर राशि में स्थित सूर्य और चन्द्र-ग्रहण का फल—

धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमल्लान्
पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान् ।
हन्यान्मृगे तु झषमन्त्रिकुलानि नीचान्
मन्त्रौषधीषु कुशलान् स्थविरायुधीयान् ॥ ४१ ॥

यदि धनु राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो मन्त्री, प्रधान मनुष्य, घोड़ा, विदेह देश (मिथिला) में निवास करने वाले मनुष्य, बाहुयुद्ध करने वाले मनुष्य, पञ्जाब देश में निवास करने वाले मनुष्य, वैद्य, व्यापारी, कठोर अस्त्र को चलाने वाले इन सबों का नाश करता है। यदि मकर राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो मछली, मन्त्रियों का कुल, नीच कर्म करने वाले मनुष्य, मन्त्र और औषध को जानने वाले, वृद्ध, शस्त्र से आजीविका चलाने वाले इन सबों का नाश करता है ॥ ४१ ॥

कुम्भ और मीन राशि में स्थित सूर्य और चन्द्र ग्रहण का फल—

कुम्भेऽन्तर्गिरिजान् सपश्चिमजनान् भारोद्वहांस्तस्करा-
नाभीरान्दरदाऽऽर्यसिंहपुरकान् हन्यात्तथा बर्बरान् ।
मीने सागरकूलसागरजलद्रव्याणि वन्यान् जनान्
प्राज्ञान्वार्युपजीविनश्च भफलं कूर्मोपदेशाद्वदेत् ॥ ४२ ॥

यदि कुम्भ राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो पहाड़ी मनुष्य, पाश्चात्य देश में रहने वाले मनुष्य, बोझा ढोने वाले, चोर, अहीर, दरद देश में रहने

वाले, प्रधान मनुष्य, सिंह नगर, बर्बर देश में रहने वाले मनुष्य इन सबों का नाश करता है। यदि मीन राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो समुद्र के तीर और जल में उत्पन्न हुये द्रव्य, जङ्गली मनुष्य, बुद्धिमान्, जल के विक्रय से जीवन-यात्रा चलाने वाले मनुष्य इन सबों का नाश करता है। नक्षत्र-फल कूर्म-विभाग के द्वारा कहना चाहिये, जैसे जिस नक्षत्र में सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो वह नक्षत्र कूर्म विभाग से जिस देश में पड़े उस देश में स्थित मनुष्यों को पीड़ा होती है।

समाससंहिता में—

कूर्मविभागेन वदेद् पीडां देशस्य वीक्ष्य नक्षत्रम्।
सहितं ग्रहणं येन तद्देशश्चाप्नुयात्पीडाम् ॥ ४२ ॥

सूर्य और चन्द्र के दश ग्रास—

सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः।
आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः ॥४३॥

सव्य, अपसव्य, लेह, ग्रसन, निरोध, अवमर्दन, आरोह, आघ्रात, मध्यतम, तमोन्त्य ये सूर्य और चन्द्र के दश ग्रास होते हैं ॥ ४३ ॥

सव्यापसव्य ग्रास के लक्षण और फल—

सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयं च।
अपसव्ये नरपतितस्करावमर्दः प्रजानाशः ॥ ४४ ॥

यदि ग्रहण समय में सूर्य या चन्द्र के सव्य (दक्षिण भाग) में होकर राहु गमन करे तो संसार जल से पूर्ण, हर्षित और भयरहित होता है। यदि अपसव्य (वाम भाग) में होकर गमन करे तो राजा और चोरों को पीड़ित करते हुये प्रजा का नाश करता है ॥ ४४ ॥

लेह नामक ग्रास के लक्षण और फल—

जिह्वोपलेढि परितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः।
प्रमुदितसमस्तभूता प्रभूततोया च तत्र मही ॥ ४५ ॥

यदि सूर्य या चन्द्रबिम्ब को जिह्वा के समान राहु चाटता हो तो लेह नाम का ग्रास होता है, इसमें पृथ्वी हर्षित संपूर्ण प्राणियों से युत और जलपूर्ण होती है ॥ ४५ ॥

ग्रसन नामक ग्रास का लक्षण और फल—

ग्रसनमिति यदा त्र्यंशः पादो वा गृह्यतेऽथवाऽप्यर्द्धम्।
स्फीतनृपवित्तहानिः पीडा च स्फीतदेशानाम् ॥ ४६ ॥

यदि सूर्य या चन्द्र के बिम्ब के तृतीयांश, चतुर्थांश या आधा, राहु से ग्रसित होता हो तो ग्रसन नामक ग्रास होता है, इसमें स्फीत (बहुऐश्वर्यशाली) नृप का धननाश होता है तथा स्फीत देश में रहने वालों को पीड़ा होती है ॥ ४६ ॥

निरोध नामक ग्रास का लक्षण और फल—

पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये पिण्डीकृतं तमस्तिष्ठेत्।
स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदकृत् सर्वभूतानाम् ॥ ४७ ॥

यदि सूर्य या चन्द्र मण्डल को चारों तरफ से ग्रसित कर राहु मध्य-प्रदेश में पिण्डाकार होकर बैठा हो तो निरोध नामक ग्रास होता है, यह भूमिस्थ सब प्राणियों को आनन्द देने वाला होता है ॥ ४७ ॥

अवमर्द नामक ग्रास का लक्षण और फल—

अवमर्दनमिति निःशेषमेव सञ्छाद्य यदि चिरं तिष्ठेत्।
हन्यात्प्रधानभूपान् प्रधानदेशांश्च तिमिरमयः ॥ ४८ ॥

यदि सूर्य या चन्द्र मण्डल के सम्पूर्ण बिम्ब को ढककर राहु बहुत काल तक ठहरे तो अवमर्द नामक ग्रास होता है, यह प्रधान राजा और देश का नाश करता है ॥ ४८ ॥

आरोहण नामक ग्रास का लक्षण और फल—

वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत्क्षणमावृत्य दृश्यते भूयः।
आरोहणमित्यन्योन्यमर्दनैर्भयङ्करं राज्ञाम् ॥ ४९ ॥

यदि सूर्य या चन्द्र के ग्रहण के बाद उसी क्षण में फिर राहु (ग्रहण) दिखाई दे तो आरोहण नामक ग्रास होता है।

विशेष—यह आरोहण नामक ग्रास गणित से नहीं आ सकता जब कभी अचानक ऐसी स्थिति देखने में आवे तो उसको उत्पातरूप समझना चाहिये। आचार्य ने पूर्व शास्त्रानुसार यह लक्षण यहाँ पर बताया है ॥ ४९ ॥

आघ्रात नामक ग्रास का लक्षण और फल—

दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिःश्वासमारुतोपहतः।
दृश्येताऽऽघ्रातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः ॥ ५० ॥

यदि बाष्पयुत निःश्वासवायु से मलिन दर्पण की तरह सूर्य या चन्द्र मण्डल का एक देश दिखाई दे तो आघ्रात नामक ग्रास होता है। यह वृष्टि और प्राणियों की वृद्धि करता है ॥ ५० ॥

मध्यतम नामक ग्रास का लक्षण और फल—

मध्ये तमःप्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परितः।
तन्मध्यदेशनाशं करोति कुक्ष्यामयभयं च ॥ ५१ ॥

यदि ग्राह्यबिम्ब का मध्यभाग राहु से ढका हो और चारों तरफ निर्मल हो तो मध्यतम नामक ग्रास होता है। यह मध्यदेश का नाश और पेट की बीमारी को उत्पन्न करता है।

विशेष—छाद्य (सूर्य) बिम्ब से छादक (चन्द्र) बिम्ब के अल्प होने के कारण यह ग्रास सूर्यग्रहण में ही हो सकता है। पर छाद्य (चन्द्र) बिम्ब से छादक (भूमा) बिम्ब के अत्यधिक होने के कारण चन्द्रग्रहण में ऐसी स्थिति कभी नहीं हो सकती। अतः सूर्यग्रहण वलयग्रहण और चन्द्रग्रहण खग्रास होता है ॥ ५१ ॥

तमोऽन्त्य ग्रास का लक्षण और फल—

पर्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये।
सस्यानामीतिभयं भयमस्मिंस्तस्कराणां च ॥ ५२ ॥

यदि सूर्य या चन्द्र मण्डल के प्रान्त भाग में अधिक और मध्यभाग में थोड़ा राहु देखने में आवे तो तमोऽन्त्य नामक ग्रास होता है। इसमें धान्यों को ईति का और प्राणियों को चोर का भय होता है।

प्रसङ्गवश, छः प्रकार की ईतियों का लक्षण—

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः। अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥

कश्यपोक्त सव्य आदि ग्रासफल—

सव्यगे तु सुभिक्षं स्यादपसव्ये तु तस्कराः। लीढे प्रजाः प्रहृष्टाः स्युर्ग्रसनं लोकनाशनम् ॥
निरोधे जनहर्षः स्यादारोहे नृपसंक्षयः। आमर्दिते चापमर्दे स्वयं क्षुभ्यन्ति पार्थिवाः ॥
वच्छं यर्णप्रदेशं यदाग्रातं तद्विघातयेत्। मध्ये तमसि सन्दृष्टे पीडयेन्मध्यदेशजान् ॥
दृष्टे तमसि पर्यन्ते सस्यानामीतिजं भयम् ॥ ५२ ॥

ग्रहणकालिक राहु के वर्ण का फल—

श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशेद्राहौ।
अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम् ॥ ५३ ॥
हरिते रोगोल्बणता सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः।
कपिले शीघ्रगसत्त्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम् ॥ ५४ ॥
अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षा वृष्टयो विहगपीडा।
आधूम्रे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिं च ॥ ५५ ॥
कापोतारुणकपिलश्यावाभे क्षुद्भयं विनिर्देश्यम्।
कापोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च ॥ ५६ ॥
विमलकमणिपीताभो वैश्यध्वंसी भवेत् सुभिक्षाय।
सार्चिष्मत्यग्निभयं गैरिकरूपे तु युद्धानि ॥ ५७ ॥
दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम्।
अशनिभयसम्प्रदायी पाटलकुसुमोपमो राहुः ॥ ५८ ॥

५, ६ बृ० सं०

पांशुविलोहितरूपः क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च।
बालरविकमलसुरचापरूपभृच्छस्त्रकोपाय ॥ ५९ ॥

यदि सूर्य या चन्द्र के ग्रहणकाल में राहु का वर्ण श्वेत हो तो क्षेम, सुभिक्ष और ब्राह्मणों को पीडा होती है। अग्नि के समान वर्ण हो तो अग्निभय और अग्नि से जीवनयात्रा चलाने वाले (लोहार, सोनार आदि) को पीडा होती है। हरित वर्ण हो तो रोगों की वृद्धि और ईतियों के द्वारा धान्यों का नाश होता है। पीला हो तो जल्दी चलने वाले जानवर (ऊँट आदि) और म्लेच्छ जाति का नाश तथा दुर्भिक्ष होता है। कुछ लोहित वर्ण हो तो दुर्भिक्ष, वर्षा का अभाव और पक्षियों को पीडा होती है। धूम्र वर्ण हो तो क्षेम, सुभिक्ष और थोड़ी वृष्टि होती है। कबूतर के समान लाल, कपिल और श्याम वर्ण हो तो क्षुधा और दुर्भिक्ष का भय होता है। कबूतर के समान या कृष्ण वर्ण हो तो शूद्रों के लिए रोग करने वाला होता है। निर्मल मणि की तरह पीत वर्ण हो तो वैश्यों का नाश और सुभिक्ष करने वाला होता है। अग्नि ज्वाला की तरह दिखाई दे तो अग्नि का भय करता है। गेरू के समान दिखाई दे तो युद्ध होता है। यदि दूर्वादल की तरह श्याम वर्ण या हल्दी की तरह पीत वर्ण का दिखाई दे तो मरकी पड़ती है। यदि पाटल पुष्प की तरह (श्वेत लेकर लोहित) हो तो वज्र गिरने का भय रहता है। और यदि पांशु (धूलि) या विलोहित (मिश्रित) वर्ण का राहु देखने में आवे तो क्षत्रियों का और वृष्टि का नाश करने वाला होता है ॥ ५३-५९ ॥

ग्रहणकालिक सूर्य-चन्द्र के ऊपर ग्रहदृष्टि का फल—

पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो घृतमधुतैलक्षयाय राज्ञां च।
भौमः समरविमर्दं शिखिकोपं तस्करभयं च ॥ ६० ॥
शुक्रः सस्यविमर्दं नानाक्लेशांश्च जनयति धरित्र्याम्।
रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं तस्करभयं च ॥ ६१ ॥

ग्रहणकालिक सूर्य या चन्द्र के ऊपर बुध की दृष्टि हो तो घी, शहद, तेल और राजाओं का नाश करता है। यदि मङ्गल की दृष्टि हो तो युद्ध, अग्निभय और चोरों का भय करता है यदि शुक्र की दृष्टि हो तो पृथ्वी पर धान्यों का नाश और अनेक तरह के क्लेश उत्पन्न करता है और यदि शनि की दृष्टि हो तो दुर्भिक्ष, अनावृष्टि और चोरों का भय करता है ॥ ६०-६१ ॥

ग्रहणकालिक सूर्य, चन्द्र के ऊपर गुरु की दृष्टि का फल—

यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा।
सुरपतिगुरुणाऽवलोकिते तच्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः ॥ ६२ ॥

ग्रहदृष्टिवश स्पर्श और मोक्ष समय में जो अशुभ फल कहे हैं, गुरु की दृष्टि से उनका जड़ से प्रज्वलित अग्नि की तरह नाश होता है ॥ ६२ ॥

ग्रहण-काल में उत्पातों के दर्शन से अन्य ग्रहण का ज्ञान—

ग्रस्ते क्रमान्निमित्तः पुनर्ग्रहो मासषट्कपरिवृद्ध्या।
पवनोल्कापातरजः-क्षितिकम्पतमोऽशनिनिपातैः ॥ ६३ ॥

यदि सूर्य या चन्द्र के ग्रहण समय में वायु, उल्कापात, धूलीवर्षण, भूकम्प, अन्धकार और वज्रपात हो तो क्रमसे छै-छै मास की वृद्धि करके फिर ग्रहण का सम्भव कहना चाहिये। जैसे ग्रहण समय में वायु-प्रकोप हो तो वर्त्तमान ग्रहण-काल से छै मास बाद, उल्कापात हो तो बारह मास बाद, धूली-वर्षण हो तो अठारह मास बाद, भूकम्प हो तो चौबीस मास बाद, अन्धकार हो तो तीस मास बाद और वज्रपात हो तो छत्तीस मास बाद फिर ग्रहण कहना चाहिये।

यहाँ पर पराशर का वचन—

उपरक्ते यदा सूर्ये प्रबलाद्वाति मारुतः। मासषट्के तदा विन्द्यादाहोरागमनं ध्रुवम् ॥
उल्कायां द्वादशे मासे रजसाऽष्टादशे तथा। भूकम्पे च चतुर्विंशे त्रिंशे तमसि निर्दिशेत् ॥
षट्त्रिंशेऽशनिपाते स्यात् सर्वेषु स्यात् षडुत्तरे ॥ ६३ ॥

ग्रस्त मंगल आदि ग्रह का फल, उन में पहले मंगल का फल—

आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः।
दृप्ताश्च मनुजपतयः पीड्यन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते ॥ ६४ ॥

सूर्य या चन्द्र के साथ एक राशि में अल्पांशान्तर पर होकर कुजादि ग्रहों का यदि शरामात्र हो तो वे ग्रस्त कहे जाते हैं। इस तरह यदि मङ्गल ग्रस्त हो तो अवन्ती देश में स्थित मनुष्य, कावेरी और नर्मदा नदी के तीर में रहने वाले, गर्वयुत राजाओं को पीडित करता है ॥ ६४ ॥

ग्रस्त बुध का फल—

अन्तर्वेदीसरयू-नेपालं पूर्वसागरं शोणम्।
स्त्रीनृपयोधकुमारान् सह विद्वद्भिर्बुधो हन्ति ॥ ६५ ॥

यदि बुध ग्रस्त हो तो अन्तर्वेदी (गंगा यमुना के मध्य का देश), सरयू, नेपाल, पूर्वी समुद्र, शोण नद, स्त्री, राजा, योद्धा, बालक, विद्वान् इन सबों का नाश करता है॥

ग्रस्त गुरु का फल—

ग्रहणोपगते जीवे विद्वन्नृपमन्त्रिगजहयध्वंसः।
सिन्धुतटवासिनामप्युदग्दिशं संश्रितानां च ॥ ६६ ॥

यदि गुरु ग्रस्त हो तो पण्डित, राजा, मन्त्री, हस्ती, घोड़ा, सिन्धुनद के तट पर रहने वाले, उत्तर दिशा में रहने वाले इन सबों का नाश करता है ॥ ६६ ॥

ग्रस्त शुक्र का फल—

भृगुतनये राहुगते दाशेरककैकयाः सयौधेयाः।
आर्यावर्ताः शिबयः स्त्रीसचिवगणाश्च पीड्यन्ते ॥ ६७ ॥

यदि शुक्र अस्त हो तो दारोरक, कैकय (काश्मीर), यौधेय और शिवि देश में स्थित मनुष्य, स्त्री-गण, मन्त्री इन सबों को पीड़ित करता है ॥ ६७ ॥

अस्त शनैश्चर का फल—

सौरे मरुभवपुष्करसौराष्ट्रिकधातवोऽर्बुदान्त्यजनाः ।
गोमन्तपारियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ॥ ६८ ॥

यदि शनैश्चर अस्त हो तो मरुभूमि, पुष्कर और सौराष्ट्र देश के निवासी जन, अर्बुद पर्वत पर निवास करने वाले मनुष्य, अन्त्यजन (निकृष्ट जाति के मनुष्य), गोस्वामी, पारियात्र पर्वत पर रहने वाले इन सबों का नाश होता है ॥ ६८ ॥

मासों का फल, प्रथम कार्तिक का फल—

कार्तिक्यामनलोपजीविमगधान् प्राच्याधिपान् कोशलान्
कल्मापानथ शूरसेनसहितान् काशींश्च सन्तापयेत् ।
हन्यादाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं तमो
दृष्टं क्षत्रियतापदं जनयति क्षेमं सुभिक्षान्वितम् ॥ ६९ ॥

यदि कार्तिक की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो अग्नि से आजीविका करने वाले (लोहार, सोनार आदि) मगध देश के रहने वाले, पूर्व दिशा के राजा, कोशल, कल्माष, शूरसेन और काशी में रहने वाले मनुष्य इन सबों को पीड़ित करता है। तथा मन्त्री और भृत्यों के साथ कलिङ्ग देश के राजा का नाश करता है। एवं क्षत्रियों को संतापित करता है। संसार में क्षेम और सुभिक्ष करता है ॥ ६९ ॥

मार्गशीर्ष का फल—

काश्मीरकान् कौशलकान् सपुण्ड्रान् मृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च ।
ये सोमपास्तांश्च निहन्ति सौम्ये सुवृष्टिकृत् क्षेमसुभिक्षकृच्च ॥७०॥

यदि मार्गशीर्ष मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो काश्मीर, कौशल और पुण्ड्र देश में रहने वाले, मृग (वन के जन्तु), पश्चिम देश वासी मनुष्य, सोमरस पान करने वाले इन सबों का नाश करता है। तथा संसार में सुवृष्टि, क्षेम और सुभिक्ष करता है ॥ ७० ॥

पौष मास का फल—

पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः ससैन्धवाख्या कुकुरा विदेहाः ।
ध्वंसं व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं भयं च विन्द्यादसुभिक्षयुक्तम् ॥७१॥

यदि पौष मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों में उपद्रव, सैन्धव, कुकुर और विदेह देश वासियों का नाश होता है। तथा संसार में थोड़ी वृष्टि, भय और दुर्भिक्ष होता है ॥ ७१ ॥

माघ मास का फल—

माघे तु मातृपितृभक्तवसिष्ठगोत्रान् स्वाध्यायधर्मनिरतान् करिणस्तुरङ्गान्।
वङ्गाङ्गकाशिमनुजांश्च दुनोति राहुर्वृष्टिं च कर्षकजनाभिमतां करोति ॥७२॥

यदि माघ मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो माता-पिता के भक्त, वसिष्ठ-गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण, स्वाध्याय और धर्म में निरत, हाथी, घोड़ा, वङ्ग, अङ्ग और काशी देश में रहने वाले मनुष्य इन सबों को पीडित करता है। तथा संसार में किसानों की इच्छा के अनुकूल वृष्टि होती है ॥ ७२ ॥

फाल्गुन मास का फल—

पीडाकरं फाल्गुनमासि पर्व वङ्गाश्मकावन्तिकमेकलानाम् ।
नृत्यज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां धनुष्करक्षत्रतपस्विनां च ॥ ७३ ॥

यदि फाल्गुन मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो बङ्गाल, अश्मक, अवन्ती और मेकल देश में रहने वाले, नाचने वाले, धान्य, उत्तम स्त्री, धनुष बनाने वाले शिल्पी, क्षत्रिय, तपस्वी इन सबों को पीडित करता है ॥७३॥

चैत्र मास का फल—

चैत्र्यां तु चित्रकरलेखकगेयसक्तान् रूपोपजीविनिगमज्ञहिरण्यपण्यान् ।
पौण्ड्रौड्रकैकयजनानथ चाश्मकांश्च तापः स्पृशत्यमरपोऽत्र विचित्रवर्षी ॥

यदि चैत्र मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो चित्रकार, लेखक, गान विद्या जानने वाले, रूपोपजीवी (वेश्या आदि), निगम (वेद) को जानने वाले, सोना बेचने वाले, पौण्ड्र, औड्र कैकय और अश्मक देश में रहने वाले पीडित होते है। संसार में अमरप (इन्द्र) विचित्रवर्षी (चित्रवर्षी = कहीं वृष्टि और कहीं नहीं वृष्टि करने वाले) होते हैं ॥ ७४ ॥

वैशाख मास का फल—

वैशाखमासे ग्रहणे विनाशमायान्ति कर्पासतिलाः समुद्गाः ।
इक्ष्वाकुयौधेयशकाः कलिङ्गाः सोपप्लवाः किन्तु सुभिक्षमस्मिन् ॥७५॥

यदि वैशाख मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो कपास, तिल और मूंग का नाश होता है। इक्ष्वाकु, यौधेय, शक और कलिङ्ग देश में उपद्रव होते हैं। किन्तु संसार में सुभिक्ष होता है ॥ ७५ ॥

ज्येष्ठ मास का फल—

ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः सस्यानि वृष्टिश्च महागणाश्च ।
प्रध्वंसमायान्ति नराश्च सौम्याः साल्वैः समेताश्च निषादसंघाः ॥७६॥

यदि ज्येष्ठ मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो राजा, ब्राह्मण, राजपत्नी, धान्य, वृष्टि, महागण, उत्तर दिशा में रहने वाले मनुष्य, साल्व-देशवासी, निषाद इन सबों का नाश होता है ॥ ७६ ॥

आषाढ मास का फल—

आषाढपर्वण्युदपानवप्रनदीप्रवाहान् फलमूलवार्तान् ।
गान्धारकाश्मीरपुलिन्दचीनान् हतान् वदेन्मण्डलवर्षमस्मिन् ॥७७॥

यदि आषाढ मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो उदपान (वापी, कूप, तालाब) के वप्र, (तट) में रहने वाले मनुष्य, नदी का प्रवाह, फल-मूल खाकर समय यापन करने वाले, गान्धार, काश्मीर, पुलिन्द, चीन इन सबों का नाश करता है। तथा संसार में मण्डलवृष्टि (कहीं कहीं वर्षा) होती है ॥ ७७ ॥

श्रावण मास का फल—

काश्मीरान् सपुलिन्दचीनयवनान् हन्यात्कुरुक्षेत्रजान्
गान्धारानपि मध्यदेशसहितान् दृष्टो ग्रहः श्रावणे ।
काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा यथोक्तानिमा-
नन्यत्र प्रचुरान्नहृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम् ॥ ७८ ॥

यदि श्रावण मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो काश्मीर, पुलिन्द, चीन, यवन, कुरुक्षेत्र, गान्धार, मध्य देश, कम्बोज इन देशों में रहने वाले, एकशफ (घोड़ा, गदहा), शरद ऋतु में उत्पन्न होने वाले अन्न इन सबों का नाश करता है। उक्त देशों से अन्यत्र के मनुष्य गण अत्यधिक अन्न की उत्पत्ति से सुखी होकर सम्पूर्ण संसार को व्याप्त कर लेते हैं ॥ ७८ ॥

भाद्रपद मास का फल—

कलिङ्गवङ्गान् मगधान् सुराष्ट्रान् म्लेच्छान् सुवीरान् दरदाश्मकांश्च ।
स्त्रीणां च गर्भानसुरो निहन्ति सुभिक्षकृद्भाद्रपदेऽभ्युपेतः ॥ ७९ ॥

यदि भाद्रपद मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो कलिङ्ग, वङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, म्लेच्छ, सुवीर, दरद, अश्मक इन देशों का और स्त्रियों के गर्भों का नाश करता है। तथा संसार में सुभिक्ष होता है ॥ ७९ ॥

आश्विन मास का फल—

काम्बोजचीनयवनान् सहशल्यहृद्भि-
र्बाह्लीकसिन्धुतटवासिजनांश्च हन्यात् ।
आनर्तपौण्ड्रभिषजश्च तथा किरातान्
दृष्टोऽसुरोऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकृच्च ॥ ८० ॥

यदि आश्विन मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो कम्बोज, चीन और यवन देश में रहने वाले, शल्यचिकित्सक, बाह्लीक देश में रहने वाले, सिन्धु नद के तट में रहने वाले, आनर्त और पौण्ड्र देश में रहने वाले, वैद्य, किरात इन सबों का नाश करता है। तथा संसार में अधिक सुभिक्ष होता है।

समास-संहिता में बारह मासों का संक्षेप फल—

अश्वयुग्माघकार्तिकभाद्रपदेष्वागतः सुभिक्षकरः।
राहुरवशिष्टमासेष्वशुभकरो वृष्टिधान्यानाम् ॥ ८० ॥

सूर्य और चन्द्र के दश मोक्ष—

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः सञ्छर्दनं च जरणं च।
मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशिसूर्ययोर्मोक्षाः ॥ ८१ ॥

दक्षिण हनु, वाम हनु, दक्षिण कुक्षि, वाम कुक्षि, दक्षिण पायु, वाम पायु, सञ्छर्दन, जरण, मध्य विदरण, अन्त्य विदरण ये सूर्य और चन्द्र के दश मोक्ष हैं॥८१॥

दक्षिण हनु भेद का लक्षण और फल—

आग्नेय्यामपगमनं दक्षिणहनुभेदसञ्ज्ञितं शशिनः।
सस्यविमर्दो मुखरुक् नृपपीडा स्यात् सुवृष्टिश्च ॥ ८२ ॥

यदि चन्द्र के ग्रहण में अग्निकोण में होकर राहु निवर्तित हो अर्थात् अग्निकोण में मोक्ष हो तो दक्षिण हनुभेद नामक मोक्ष होता है, इसमें धान्य का नाश, मुख का रोग, राजा की पीड़ा और सुवृष्टि होती है।

यहाँ पर कश्यप—

दक्षिणो हनुभेदः स्याचाग्नेय्यां यदि गच्छति।
सस्यभङ्गं च कुरुते नृपभङ्गं सुदारुणम् ॥ ८२ ॥

वाम हनुभेद का लक्षण और फल—

पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकुमारभयदायी।
मुखरोगं शस्त्रभयं तस्मिन् विन्द्यात् सुभिक्षं च ॥ ८३ ॥

यदि पूर्वोत्तर (ईशान कोण) में होकर राहु निवर्तित हो अर्थात् ईशान कोण में मोक्ष हो तो वाम हनुभेद नामक मोक्ष होता है, इसमें राजकुमार को भय, मुखरोग, शस्त्रभय और सुभिक्ष होता है।

यहाँ पर कश्यप—

पूर्वोत्तरेऽपरो भेदो नृपपुत्रभयप्रदः ॥ ८३ ॥

दक्षिण कुक्षि भेद का लक्षण और फल—

दक्षिणकुक्षिविभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः।
पीडा नृपपुत्राणामभियोज्या दक्षिणा रिपवः ॥ ८४ ॥

यदि चन्द्र-ग्रहण में दक्षिण पार्श्व में मोक्ष हो तो दक्षिण कुक्षिभेद नामक मोक्ष होता है, इसमें राजकुमारों को पीड़ा और दक्षिण दिशा में स्थित शत्रुओं में लड़ाई होती है।

विशेष—गणित के द्वारा दक्षिण दिशा में होकर राहु का निकलना असम्भव है, पूर्व-शास्त्रानुसार आचार्य ने कहा है, अब ऐसी स्थिति हो तो उसको उत्पात रूप समझना चाहिये।

यहाँ पर कश्यप—

दक्षिण-कुक्षिभेद स्याद्वामे मोक्षो भवेद्यदि । राजपुत्रभयं तत्र दक्षिणाद्विपां वधः ॥८४॥

वाम कुक्षि-भेद का लक्षण और फल—

वामस्तु कुक्षिभेदो यद्युत्तरमार्गसंस्थितो राहुः ।
स्त्रीणां गर्भविपत्तिः सस्यानि च तत्र मध्यानि ॥ ८५ ॥

यदि ग्रहण-काल में उत्तर तरफ होकर राहु निकलता (उत्तर तरफ मोक्ष) हो तो वाम कुक्षि-भेद नामक मोक्ष होता है, इसमें स्त्रियों के गर्भों का नाश और मध्यम रूप से धान्य होता है ।

यहाँ पर कश्यप—

सौम्यायां तु यदा मोक्षो वामकुक्षिविभेदतः ।
स्त्रीणां गर्भविनाशाय सौम्याशाधिपतेर्वधः ॥ ८५ ॥

दक्षिण और वाम पायु-भेद का लक्षण और फल—

नैर्ऋतवायव्यस्थौ दक्षिणवामौ तु पायुभेदौ द्वौ ।
गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वयोस्तु राज्ञीक्षयो वामे ॥ ८६ ॥

यदि मोक्ष काल में नैर्ऋत्य और वायव्य कोण मे राहु देखने में आवे तो क्रम से दक्षिण पायु-भेद और उत्तर पायु-भेद नामक मोक्ष होता है जैसे नैर्ऋत्य कोण में मोक्ष हो तो दक्षिण पायु-भेद और वायव्य कोण में मोक्ष हो तो वाम पायु-भेद नामक मोक्ष होता है, दक्षिण पायु-भेद में गुदा और लिङ्ग में रोग और थोड़ी वृष्टि तथा उत्तर पायु-भेद में राजपत्नी का नाश होता है ।

पायुभेदगते राहौ वायवीनैर्ऋताशयोः । गुह्यरोगभयं विन्द्याद्वामे राज्ञीभयं तथा ॥ ८६ ॥

सञ्छर्दन मोक्ष का लक्षण और फल—

पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव चापसर्पेत ।
सञ्छर्दनमिति तत्क्षेमसस्यहार्दिप्रदं जगतः ॥ ८७ ॥

यदि चन्द्र-बिम्ब के पूर्व भाग से स्पर्श करके राहु उसी तरफ से निकलता (बिम्ब के पूर्व भाग में ही स्पर्श और मोक्ष) हो तो सञ्छर्दन नामक मोक्ष होता है । यह मोक्ष संसार में क्षेम, धान्य और सन्तोष देने वाला होता है ।

यहाँ पर कश्यप—

प्राग्मोक्षो यदा पूर्वे छर्दनं तु तदा भवेत् । क्षेमहार्दिप्रदं ज्ञेयं सस्यनिष्पत्ति-कारकम् ॥८७॥

जरण मोक्ष का लक्षण और फल—

प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन् पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम् ।
क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्ना न शरणमुपयान्ति तत्र जनाः ॥ ८८ ॥

यदि चन्द्र-बिम्ब के पूर्व भाग में स्पर्श और पश्चिम भाग मे मोक्ष हो तो जरण

नाम मोक्ष होता है। इसमें क्षुधा और युद्ध के भय से उद्विग्न होकर मनुष्य निःशरण होते हैं अर्थात् कोई रक्षा करने वाला नहीं होता है।

यहाँ पर कश्यप—

पूर्वेण ग्रसते राहुरपरस्यां विमुञ्चति । क्षुत्तस्करभयं तत्र मोक्षस्तु जरणं स्मृतम् ॥ ८८ ॥

मध्य विदरण मोक्ष का लक्षण और फल—

मध्ये यदि प्रकाशः प्रथमं तन्मध्यविदरणं नाम ।
अन्तःकोपकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम् ॥ ८९ ॥

यदि ग्रहण के प्रारम्भ काल में ही मण्डल के मध्य भाग में प्रकाश मालूम पडे तो मध्य विदरण नामक मोक्ष होता है यह राजा की अपनी सेनाओं में ही परस्पर क्षोभ उत्पन्न करने वाला, सुभिक्ष और थोडी वृष्टि देने वाला होता है।

यहाँ पर कश्यप—

यदा प्रकाशो मध्ये स्याद् दुर्भिक्षमरकं तदा ॥ ८९ ॥

अन्त्य विदरण नामक मोक्ष का लक्षण और फल—

पर्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्त्यदरणाख्यः ।
मध्याख्यदेशनाशः शारदसस्यक्षयश्चास्मिन् ॥ ९० ॥

यदि ग्रहण-समय में चन्द्र के बिम्ब प्रान्त भाग निर्मल और मध्य भाग में अधिक श्यामता हो तो अन्त्य विदरण नामक मोक्ष होता है। इसमें मध्य देश और शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों का नाश होता है।

यहाँ पर कश्यप—

पर्यन्ते विमलत्वं स्यात्तमो मध्ये यदा भवेत् ।
मध्याख्य-देशनाशः स्याच्छ्रारदसस्यं विनश्यति ॥ ९० ॥

पूर्वोक्त दश मोक्षों का विचार सूर्य-ग्रहण में भी—

एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करेऽपि किन्त्वत्र ।
पूर्वा दिक् शशिनि यथा तथा रवौ पश्चिमा कल्प्या ॥ ९१ ॥

ये पूर्व कथित चन्द्र-ग्रहण के सब मोक्षों का विचार सूर्य ग्रहण में भी करना चाहिये। पर वहाँ की पूर्व दिशा के स्थान में यहाँ पश्चिम दिशा, पश्चिम दिशा के स्थान में पूर्व दिशा, उत्तर के स्थान में दक्षिण और दक्षिण के स्थान में उत्तर दिशा कल्पना करनी चाहिये। इस तरह दिग्वैपरीत्य करके दश मोक्षों का लक्षण और फल देखना चाहिये ॥ ९१ ॥

ग्रहण के बाद सात दिन के अन्दर उत्पातों का फल—

मुक्ते सप्ताहान्तः पांशुनिपातोऽन्नसङ्क्षयं कुरुते ।
नीहारो रोगभयं भूकम्पः प्रवरनृपमृत्युम् ॥ ९२ ॥

उल्का मन्त्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम्।
स्तनितं गर्भविनाशं विद्युन्नृपदंष्ट्रिपरिपीडाम्॥९३॥
परिवेषो रुक्पीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयम्।
रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं धत्ते॥९४॥
निर्घातः सुरचापं दण्डश्च क्षुद्भयं सपरचक्रम्।
ग्रहयुद्धे नृपयुद्धं केतुश्च तदेव सन्दृष्टः॥९५॥
अविकृतसलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम्।
यच्चाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति॥९६॥

मोक्ष के बाद सात दिन के अन्दर रजोवर्षण हो तो अन्न का नाश, नीहार (हिमवर्षण 'अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिममित्यमरः') हो तो रोग का भय, भूकम्प हो तो प्रधान राजा का मरण, उल्कापात हो तो मन्त्री का नाश, नाना वर्ण का मेघ हो तो अतिशय भय, मेघ का गर्जन हो तो गर्भ (२१ वाँ अध्याय में उक्त गर्भलक्षण) का नाश, विद्युत्पात हो तो राजा, सर्प, सूकर आदि को पीड़ा, परिवेष (मण्डल, 'परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले' इत्यमरः) हो तो रोग और पीड़ा, दिग्दाह हो तो राजभय और अग्निभय, कठोर प्रचण्ड वायु बहे तो चोर का भय, निर्घात (वायु से वायु अभिहत) हो, इन्द्रधनुष दिखाई दे या दण्ड (रवि के किरण, मेघ और वायु का संघात) हो तो दुर्भिक्ष और परराष्ट्र का भय, ग्रहयुद्ध या केतु का दर्शन हो तो राजाओं में युद्ध और निर्मल जल की वर्षा हो तो सुभिक्ष तथा ग्रहण में उत्पन्न अशुभ फलों का नाश होता है।

समाससंहिता में—

धरपवनघनाभ्रगर्जित-विद्युत्परिवेषभूप्रकम्पनाद्याः। सप्ताहान्तर्न शुभा ग्रहणनिवृत्तौ शुभा वृष्टिः॥

यहाँ पर वृद्ध गर्ग का वचन—

अथेन्दु-ग्रहनिर्मुक्ते सप्ताहान्तर्भवेद्यदि। पांशुवर्षोऽन्ननाशः स्यान्नीहारो रोगवृद्धये॥
नृपनाशाय भूकम्प उल्का मन्त्रि-विपत्तये। रोगाय परिवेषः स्याद्दाहो दैवाग्नि-सम्भवः॥
विद्युद्गर्भविनाशाय दिग्दाहोऽग्नि-विवृद्धये। निर्घातेन्द्रधनुर्दण्डा दुर्भिक्षाय भयाय च॥
पवनः प्रबलो रूक्षश्चौरोपद्रव-सूचकः। सर्वोपद्रवनाशः स्यात् सम्यग् वृष्टिर्भवेद्यदि॥
ग्रहानुचरितं प्रोक्तं चन्द्रग्रहणसूचकम्। तदेव सकलं सूर्ये वेदितव्यं-ग्रहानुगम्॥९३–९६॥

चन्द्र-ग्रहणानन्तर सूर्य-ग्रहण का फल—

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य।
तत्रानयः प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम्॥९७॥

यदि चन्द्र-ग्रहण के पन्द्रह रोज बाद सूर्य-ग्रहण हो तो प्रजाओं में अनीति और स्त्री-पुरुषों में द्वेष उत्पन्न होता है॥९७॥

सूर्य-ग्रहण के बाद चन्द्र-ग्रहण का फल—

अर्कग्रहात्तु शशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः।
नैकक्रतुफलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ॥ ९८ ॥

यदि सूर्य-ग्रहण के पन्द्रह रोज बाद चन्द्र-ग्रहण हो तो ब्राह्मण गण अनेक यज्ञ फल को भोगने वाले और प्रजागण हर्षित होते हैं ॥ ९८ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां राहुचाराध्यायः पञ्चमः ॥ ५ ॥



अथ भौमचाराध्यायः

उष्ण-मुख मङ्गल का लक्षण और फल—

यद्युदयर्क्षाद्वक्रं करोति नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु।
तद्वक्त्रमुष्णमुदये पीडाकरमग्निवार्तानाम् ॥ १ ॥

मङ्गल के पाँच मुख (उष्णमश्रुमुखं व्यालं रुधिराननमेव च। निस्त्रिंशो मुशलं चेति पञ्चवक्त्राणि भूसुते) होते हैं उनमें पहले उष्णमुख नामक मंगल का लक्षण और फल कहते हैं। जिस नक्षत्र में मङ्गल का उदय हो उससे सप्तम, अष्टम या नवम नक्षत्र में जाकर यदि वक्री हो तो वह वक्री मंगल उष्णमुख कहलाता है। इस उष्णमुख वाले मङ्गल के उदय काल में अग्नि से आजीविका करने वाले (सोनार, लोहार आदि) को पीडा होती है।

उदयाद्यवने कुर्याद्दष्टमे सप्तमेऽपि वा। निवृत्तिं लोहिताङ्गस्तु तदुष्णं वक्त्रमुच्यते।
नरोऽग्निजीविनो ये च पचन्ति च दहन्ति च। तेषामुत्पद्यते तापो जायते धनसङ्क्षयः ॥१॥

अश्रुमुख मङ्गल का लक्षण और फल—

द्वादशदशमैकादशनक्षत्राद्वक्रिते कुजेऽश्रुमुखम्।
दूषयति रसानुदये करोति रोगाननावृष्टिं च ॥ २ ॥

औदयिक नक्षत्र से दशम, एकादश या द्वादश नक्षत्र में यदि मङ्गल वक्री हो तो वह अश्रुमुख कहलाता है। यह वक्र रसों में दोष पैदा करता है, तथा रोग की वृद्धि और अनावृष्टि करता है।

दशमैकादशे वापि द्वादशे वापि वक्रिते। लोहिताङ्गे ग्रहे ज्ञेयं वक्त्रमश्रुमुखं च तत् ॥
तत्र वर्षति पर्जन्यो दूषयित्वा शुभान् रसान्। ते दुष्टा दूषयन्त्याशु नृणां धातून् तथा मृदून् ॥
बहवो व्याधयः क्रूरा उत्पद्यन्ते शरीरिणाम्। बहुभिः कारणैस्तैस्ततो लोकः प्रलीयते ॥२॥

व्यालमुख मङ्गल का लक्षण और फल—

व्यालं त्रयोदशर्क्षाच्चतुर्दशाद्वा विपच्यतेऽस्तमये।
दंष्ट्रिव्यालमृगेभ्यः करोति पीडां सुभिक्षं च ॥ ३ ॥

जिस नक्षत्र में मङ्गल अस्त हो उससे तेरहवें या चौदहवें नक्षत्र में जाकर वक्री हो तो वह वक्र व्यालमुख कहलाता है। इसमें दंष्ट्री (सूकर, कुत्ता आदि), सर्प और मृग से पीड़ा होती है, तथा संसार में सुभिक्ष होता है।

त्रयोदशे च नक्षत्रे यदि वापि चतुर्दशे। निवृत्तं कुरुते भौमस्तद्वक्रं व्यालमुच्यते।
भवन्ति प्रचुरा व्यालास्तेभ्यो लोकभयं वदेत्। नृपाणामशुभं विन्द्यात्सस्यसम्पत्तिमादिशेत्॥

तथा पराशर—

त्रयोदशचतुर्दशयोः सस्यदंष्ट्रिव्यालप्राबल्यं हिरण्यसंचयं च ॥ ३ ॥

रुधिरानन मंगल का लक्षण और फल—

रुधिराननमिति वक्त्रं पञ्चदशात् षोडशाच्च विनिवृत्ते।
तत्काले मुखरोगं सभयं च सुभिक्षमावहति ॥ ४ ॥

यदि अस्त-कालिक नक्षत्र से पन्द्रहवें या सोलहवें नक्षत्र में जाकर मंगल लौटता (वक्री) हो तो वह वक्र रुधिरानन कहलाता है। इस के उदय काल में मुख का रोग, भय और सुभिक्ष होता है।

यदि पञ्चदशर्क्षे तु भूसुतः षोडशेऽपि वा। निवृत्तिं कुरुते वक्रस्तद्विदुर्लोहिताननम्॥
दीप्तिमन्तः पार्थिवाश्च भवन्ति प्रथिता भुवि। चक्रकोपश्च सुमहान् मुखरोगा भवन्ति च॥

तथा पराशर—

पञ्चदशषोडशयोर्मुखरोगो नृपक्षोभो शस्त्रकोपश्च ॥ ४ ॥

असिमुसल नामक मङ्गल का लक्षण और फल—

असिमुसलं सप्तदशादष्टादशतोऽपि वा तदनुवक्रे।
दस्युगणेभ्यः पीडां करोत्यवृष्टिं सशस्त्रभयम् ॥ ५ ॥

यदि अस्तकालिक नक्षत्र से सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्र में जाकर मङ्गल पीछे की तरफ लौटता हो तो वह असिमुसल वक्र कहलाता है। इसमें चोरों से पीड़ा, अनावृष्टि और शस्त्रभय होता है।

यहाँ पर गर्ग—

सप्तदशेऽष्टादशे वा लोहिताङ्गे निवर्तिते। निस्त्रिंशमुसलं नाम तद्वक्रं परिकीर्तितम्॥
पशुपुत्रधनं धान्यमाहरन्ते तु दस्यवः। प्राणिनां जीवनं हन्ति जायते शस्त्रसम्भ्रमः॥

तथा पराशर—

सप्तदशेऽष्टादशे वा दस्युगणैः प्रजानामुपद्रवमवृष्टिं शस्त्रभयं च ॥ ५ ॥

योगवश विशेष फल—

भाग्यार्यमोदितो यदि निवर्तते वैश्वदेवते भौमः।
प्राजापत्येऽस्तमितस्त्रीनपि लोकान्निपीडयति ॥ ६ ॥

यदि पूर्वाफल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उदित होकर मङ्गल उत्तराषाढा में जाकर वक्री होता हो और बाद में रोहिणी में जाकर अस्त होता हो तो तीनों लोकों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) को पीडित करता है।

यहाँ पर पराशर—
फल्गुन्यामुदयं कृत्वा वक्रं स्याद्वैश्वदैवते। प्राजापत्ये प्रवासश्च त्रैलोक्यं तत्र पीड्यते॥६॥
संचारवश और विशेष फल—

श्रवणोदितस्य वक्रं पुष्ये मूर्धाभिषिक्तपीडाकृत्।
यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तद्दिग्व्यूहान् जनान् हन्ति॥ ७॥

यदि श्रवण नक्षत्र में उदित मङ्गल पुष्य में जाकर वक्री होता हो तो राजाओं को पीडित करता है, तथा जिस नक्षत्र में उदित हो उस नक्षत्र की दिशा (नक्षत्र कूर्मोक्त दिशा) और व्यूह (नक्षत्र व्यूह) जहाँ हो वहाँ के जनों का नाश करता है।

यहाँ पर पराशर—
उदितः श्रवने भौमः पुष्ये वक्रं चरेद्यदि। मूर्द्धाभिषिक्ता राजानो विनश्येयुः परस्परम्॥
यथा जनपदव्यूहे दिग्विभाग प्रदर्शितः। तस्य वै मोहितं कुर्यान्मोहिताङ्गस्तथा मुखम्॥७॥

संचारवश और विशेष फल—

मध्येन यदि मघानां गतागतं लोहितः करोति ततः।
पाण्ड्यो नृपो विनश्यति शस्त्रोद्योगाद्भयमवृष्टिः॥ ८॥

यदि मघा नक्षत्र में जाकर मंगल उसीमें वक्री होता हो तो पाण्ड्यदेशीय राजा का नाश करता है। तथा शस्त्रभय और अनावृष्टि करता है॥ ८॥

संचारवश और विशेष फल—

भित्त्वा मघां विशाखां भिन्दन् भौमः करोति दुर्भिक्षम्।
मरकं करोति घोरं यदि भित्त्वा रोहिणीं याति॥ ९॥

मघा नक्षत्रको भेद करके यदि मंगल विशाखा नक्षत्रको भेदता हो तो दुर्भिक्ष करता है। यदि रोहिणी नक्षत्र को भेदता हो तो जनों में भयङ्कर मरक (मरी) करता है॥९॥

संचारवश और विशेष फल—

दक्षिणतो रोहिण्याश्चरन्महीजोऽर्घवृष्टिनिग्रहकृत्।
धूमायन् सशिखो वा विनिहन्यात् पारियात्रस्थान्॥ १०॥

यदि रोहिणी नक्षत्र के दक्षिण से मङ्गल विचरण करता हो तो महँगी और अनावृष्टि करता है। यदि धूमयुक्त या शिखायुक्त मङ्गल देखने में आवे तो परियात्र पर्वत पर स्थित मनुष्यों का नाश करता है॥ १०॥

संचारवश मेघनाशक योग—

प्राजापत्ये श्रवणे मूले त्रिषु चोत्तरेषु शाक्रे च।
विचरन् घननिवहानामुपघातकरः क्ष्मातनयः॥ ११॥

यदि मङ्गल रोहिणी, श्रवण, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा या ज्येष्ठा में विचरण करता हो तो मेघों का नाश करता है॥ ११॥

संचारवश उत्तम फलदायक योग—

चारोदयाः प्रशस्ताः श्रवणमघादित्यहस्तमूलेषु ।
एकपदाश्विविशाखाप्राजापत्येषु च कुजस्य ॥ १२ ॥

श्रवण, मघा, पुनर्वसु, मूल, हस्त, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी, विशाखा और रोहिणी नक्षत्र में मङ्गल का सञ्चार तथा उदय अधिक प्रशस्त (उत्तम फलदायक) है ॥ १२ ॥

वर्ण का फल—

विपुलविमलमूर्तिः किंशुकाशोकवर्णः
स्फुटरुचिरमयूखस्तप्तताम्रप्रभाभः ।
विचरति यदि मार्गं चोत्तरं मेदिनीजः
शुभकृदवनिपानां हार्दिदश्च प्रजानाम् ॥ १३ ॥

अधिक निर्मल मूर्तिवाला, किंशुक और अशोक पुष्प के समान वर्ण वाला, स्पष्ट सुन्दर किरण वाला तथा तपाये ताँबे के समान वर्ण वाला मङ्गल यदि उत्तरा क्रान्ति में विचरण करे तो राजाओं का शुभ करने वाला और प्रजाओं को सन्तोष देने वाला होता है ।

यहाँ पर गर्ग—

याम्यादिपितृपर्यन्तं नवर्क्षं मार्गमुत्तरम् । भाग्यादिनैर्ऋतान्तं तु मध्यमं मार्गमुच्यते ॥
आषाढाद्याश्विनान्तं तु दक्षिणं समुदाहृतम् । सौम्यमार्गस्थितो भौमः प्रजानामुपकारकः ॥
मध्यमे मध्यफलदो याम्ये तु भयदः स्मृतः ॥

तथा पराशर का वचन—

प्रदक्षिणगतिः कान्तः स्निग्धश्च कल्मोपमः । तप्तकाञ्चनसङ्काशो भवेल्लोकविवृद्धये ॥ १३ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां भौमचाराध्यायः षष्ठः ॥ ६ ॥



अथ बुधचाराध्यायः

बुध के उदय का फल—

नोत्पातपरित्यक्तः कदाचिदपि चन्द्रजो व्रजत्युदयम् ।
जलदहनपवनभयकृद्धान्यार्घक्षयविवृद्धये ॥ १ ॥

उत्पातरहित होकर किसी समय में भी बुध का उदय नहीं होता अर्थात् जब बुध का उदय होता है उस समय किसी न किसी प्रकार का उत्पात अवश्य होता है । जैसे जल, अग्नि और वायु का भयरूप उत्पात तथा अनाज की महँगी या सस्ती करता है ।

समाससंहिता में—

उदयं याति शशिसुतो नोत्पातविवर्जितः कदाचिदपि।
पवनाग्निसलिलभयदो धान्यार्घवृद्धिक्षयकृद्वा॥

तथा वृद्धगर्ग—

अवर्षं कुरुते वर्षं वर्षं वर्षं न गच्छति। भये च कुरुते क्षेमं सर्वत्र प्रतिलोमगः॥

तथा काश्यप—

नाकस्माद्दर्शनं याति विनोत्पातेन सोमजः। भयवातातपहिमैरर्घवृद्धिक्षयादिभिः॥१॥

बुध का नक्षत्रफल—

विचरन् श्रवणधनिष्ठाप्राजापत्येन्दुवैश्वदेवानि।
मृद्नन् हिमकरतनयः करोत्यवृष्टिं सरोगभयाम्॥ २॥

श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिर या उत्तराषाढ़ा को यदि भेद करते हुये बुध विचरण करे तो वर्षा का अभाव और रोग का भय करता है।

यहाँ पर काश्यप—

रोहिणीं वैश्वदेवं च सौम्यवैष्णववासवान्। शशिजश्च यदा हन्ति प्रजा रोगैश्च पीडयेत्॥

बुध का और नक्षत्रफल—

रौद्रादीनि मघान्तान्युपाश्रिते चन्द्रजे प्रजापीडा।
शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः॥ ३॥

आर्द्रा से मघा तक के पाँच नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र में बुध का सञ्चार हो तो शस्त्रनिपात (युद्ध), क्षुधा, रोग, अनावृष्टि और अनेक प्रकार के दुःख से प्रजाओं को पीडित करता है।

यहाँ पर काश्यप—

रौद्रादीनि यदा पञ्च नक्षत्राणीन्दुनन्दनः। भिनत्ति शस्त्रदुर्भिक्षव्याधिभिः पीड्यते जगत्॥

बुध का नक्षत्रवश फल—

हस्तादीनि चरन् षड्ऋक्षाण्युपपीडयन् गवामशुभः।
स्नेहरसार्घविवृद्धिं करोति चोर्वीं प्रभूतान्नाम्॥ ४॥

हस्त से छः (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा) नक्षत्रों के योग तारा का भेद करते हुये बुध विचरण करे तो गौओं को अशुभ करता है। स्नेह (तेल, घृत आदि), रस (मधुर आदि) के मौल्य में वृद्धि करता है और भूमि को अनेक प्रकार के अन्नों से परिपूर्ण करता है।

यहाँ पर काश्यप—

हस्तादीनि चरन् षड् वै नक्षत्राणीन्दुनन्दनः। गवामशुभदः प्रोक्तः सुभिक्षक्षेमकारकः॥

बुध का नक्षत्रवश फल—

आर्यम्णं हौतभुजं भद्रपदामुत्तरां यमेशं च।
चन्द्रस्य सुतो निघ्नन् प्राणभृतां धातुसङ्क्षयकृत्॥ ५॥

उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा या भरणी नक्षत्र को बुध भेद करता हो तो प्राणियों के धातुओं (वसा, रक्त, मांस, मेधा, अस्थि, मज्जा और शुक्र) का नाश करता है।

यहाँ पर कश्यप—

भरणीकृत्तिकार्यम्णमहिर्बुध्न्य च चन्द्रजः। चरन्धातुविनाशाय प्राणिनां परिकीर्तितः ॥५॥

बुध का नक्षत्रवश फल—

आश्विनवारुणमूलान्युपमृद्नन् रेवतीं च चन्द्रसुतः।
पण्यभिषग्नौजीविकसलिलजतुरगोपघातकरः ॥ ६ ॥

यदि बुध अश्विनी, शतभिषा, मूल या रेवती को भेदे तो व्यापारी, वैद्य, नौका से जीविका करने वाले, जल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य तथा घोड़ों का नाश करता है ॥

यहाँ पर कश्यप—

रेवतीं वारुणं मूलमश्विनीं चोपमर्दयन्। बुधो वणिग्भिषग्वाहान् जलोत्थांश्च विनाशयेत् ॥

पुनः बुध का नक्षत्रवश फल—

पूर्वादृक्षत्रितयादेकमपीन्दोः सुतोऽभिमृद्नीयात्।
क्षुच्छस्त्रतस्करामयभयप्रदायी चरन् जगतः ॥ ७ ॥

यदि बुध पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा या पूर्वाभाद्रपदा को भेद कर विचरण करे तो क्षुधा, शस्त्र, चोर और रोगों का भय देने वाला होता है।

यहाँ पर कश्यप—

पूर्वात्रये चरन् सौम्यो भेदं कृत्वा यदि व्रजेत्। क्षुच्छस्त्रतस्करभयैः करोति प्राणिनां वधम् ॥

बुध की पराशरोक्त सात गति—

प्राकृतविमिश्रसङ्क्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्याः।
सप्त पराशरतन्त्रे नक्षत्रैः कीर्तिता गतयः ॥ ८ ॥

प्राकृत, विमिश्र, संक्षिप्त, तीक्ष्ण, योगान्तिक, घोर, पाप ये पराशरतन्त्रोक्त नक्षत्रों के साथ बुध की सात गतियाँ हैं ॥ ८ ॥

नक्षत्रवश पूर्वोक्त सात गतियों की स्थिति—

प्राकृतसञ्ज्ञा वायव्ययाम्यपैतामहानि बहुलाश्च।
मिश्रा गतिः प्रदिष्टा शशिशिवपितृभुजगदेवानि ॥ ९ ॥
सङ्क्षिप्तायां पुष्यः पुनर्वसुः फल्गुनीद्वयं चेति।
तीक्ष्णायां भद्रपदाद्वयं सशाक्राश्वयुक् पौष्णम् ॥ १० ॥
योगान्तिकेति मूलं द्वे चाषाढे गतिः सुतस्येन्दोः।
घोरा श्रवणस्त्वाष्ट्रं वसुदैवं वारुणं चैव ॥ ११ ॥

पापाख्या सावित्रं मैत्रं शक्राग्निदैवतं चेति।

स्वाती, भरणी, रोहिणी या कृत्तिका नक्षत्र में प्राकृत गति से, मृगशिर, आर्द्रा, मघा या आश्लेषा में विमिश्र गति से, पुष्य, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी में संक्षिप्त गति से, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी या रेवती में तीक्ष्ण गति से, मूल, पूर्वाषाढा या उत्तराषाढा में योगान्तिक गति से, श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा या शतभिषा में घोरा नाम की गति से और हस्त, अनुराधा या विशाखा में पापसंज्ञक गति से बुध स्थित होता है॥ ९–११॥

उदयास्तदिन से पूर्वोक्त गति का लक्षण—

उदयप्रवासदिवसैः स एव गतिलक्षणं प्राह॥ १२॥
चत्वारिंशत् त्रिंशद् द्विसमेता विंशतिर्दिनवकं च।
नव मासार्द्धं दश चैकसंयुताः प्राकृताद्यानाम्॥ १३॥

उदय और अस्तदिन से पूर्वोक्त गति का लक्षण कहते हैं। प्राकृता नाम की गति में स्थित बुध का उदय हो तो चालीस दिन तक उदित और अस्त हो तो चालीस दिन तक अस्त रहता है। एवं मिश्रा गति में ३० दिन, संक्षिप्ता गति में २२ दिन, तीक्ष्णा गति में १८ दिन, योगान्तिका गति में ९ दिन, घोर-गति में १५ दिन तथा पापा गति में स्थित बुध का उदय हो तो ९ दिन तक उदित और अस्त हो तो ९ तक बुध अस्त रहता है।

यहाँ पर वृद्ध गर्ग—

चत्वारिंशत्प्राकृतायां गतावालक्ष्यते बुधः। मासमेकं विमिश्रायां दर्शयित्वास्तमर्हति॥
अहां द्वाविंशतिं सार्द्धं सङ्क्षिप्तामेत्य लक्ष्यते। अष्टादशाह तीक्ष्णायां घोरायां दश पञ्च च॥
पापायां पादहीनानि तथैकादश तिष्ठति। योगान्तिक्यामिन्दुसूनुर्नवाहं लक्ष्यते तथा॥
चारकालो य एवोक्तः सोमपुत्रस्य भागशः। अस्तकालः स एव स्यात्सूर्यमण्डलचारिणः॥

तथा कश्यप—

चत्वारिंशत्तथा त्रिंशद्दिनानि द्वौ च विंशतिः। अष्टादशार्द्धमास च दश चैकयुतानि च॥
नव च प्राकृताद्यासु सोमजस्तूदितस्तथा। अस्तं गतः सर्वकालं तिष्ठतीति विनिश्चयः॥

समाससंहिता में—

प्राकृतविमिश्रसङ्क्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्याः।
गतयो लक्षणमासां मोदयदिवसैः स्फुटं भवति॥
स्पष्टा पराशरमते स्वाती च प्राकृता त्रिभं याम्यात्।
मिश्रा गतिः शशिशेखरभुजगपितृदेवतासौम्यैः॥
सङ्क्षिप्ता नाम गतिः पुनर्वसुः फल्गुनीद्वयं पुष्यः।
तीक्ष्णा भद्रपदाद्यं नक्षत्रचतुष्टयं ज्येष्ठा॥
मूलपूर्वं योगा घोरा श्रवणत्रिभं च सत्वाष्ट्रम्।
पापाख्या तु विशाखा हस्तो मैत्रं च शशिसूनोः॥ १२–१३॥

प्राकृतगत्यामारोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्धयः क्षेमम् ।
संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रमेतदन्यासु विपरीतम् ॥१४॥

प्राकृत गति में स्थित बुध आरोग्य, वृष्टि, धान्य की वृद्धि और क्षेम करता है। संक्षिप्त गति में स्थित बुध मिश्रित फल (मध्यम फल = साधारण आरोग्य, साधारण वृष्टि, साधारण धान्य की वृद्धि और साधारण क्षेम) देता है। और शेष (तीक्ष्णा, योगान्तिका, घोरा और पापा) गति में विपरीत फल (अनारोग्य, अवृष्टि, धान्य का नाश और अक्षेम) करता है।

यहाँ पर गर्ग—

क्षमारोग्यसुभिक्षेषु लक्षणा प्राकृता गतिः । संक्षिप्ता च विमिश्रा च शुभाशुभफलोदये ॥
तीक्ष्णा घोरा च पापा च तथा योगान्तिकापरा । एताश्चतस्रः सौम्यस्य दुर्भिक्षाक्षेमलक्षणा ॥

ऋज्व्यतिवक्रा वक्रा विकला च मतेन देवलस्यैताः ।
पञ्चचतुर्द्व्येकाहा ऋज्व्यादीनां षडभ्यस्ताः ॥ १५ ॥

देवल के मत से बुध की गति ऋज्वी, अतिवक्रा, वक्रा, विकला ये चार प्रकार की होती हैं। इन गतियों की स्थिति का प्रमाण—उदय या अस्तदिन से ऋज्वी ३० दिन तक, अतिवक्रा २४ दिन तक, वक्रा १२ दिन तक और विकला ६ दिन तक रहती है।

वृद्धगर्गोक्त पूर्वोक्त गतियों का स्फुट लक्षण—

ऋजुर्गच्छति चेन्मार्गमविकार प्रदक्षिणम् । ग्रहो यस्मात्तु तस्मात्सा ऋज्वी तु गतिरुच्यते ॥
कुर्वन्ति वक्रं वक्रायां यस्माच्छिरं महाग्रहा । अङ्गारकप्रभृतयस्तस्माद्वक्रेति सा गतिः ॥
वक्राद्भूयो महावक्रमनुकुर्वन्ति चेद्ग्रहाः । अनेनैवानुमानेन सातिवक्रोच्यते गतिः ॥
विस्खलन्ति यथा चाराम्मार्गादस्तमयोदयात् ।
गतेस्तस्मादि विकला सा गतिः परिकीर्तिता ॥ १५ ॥

पूर्वोक्त गतियों का फल—

ऋज्वी हिता प्रजानामतिवक्रार्घं गतिर्विनाशयति ।
शस्त्रभयदा च वक्रा विकला भयरोगसञ्जननी ॥ १६ ॥

ऋज्वी गति प्रजाओं का हित करने वाली, अतिवक्रा दुर्भिक्ष करने वाली, वक्रा शस्त्रभय देने वाली तथा विकला भय और रोग करने वाली होती है।

यहाँ पर देवल—

दिनानि त्रिंशदुदितस्तिष्ठेद्यदि च सोमजः । ऋज्वी गतिः सा विज्ञेया प्रजानां हितकारिणी ॥
चतुर्विंशदिनान्येवं यदि तिष्ठेच्च सोमजः । अतिवक्रा गतिर्ज्ञेया दुर्भिक्षगतिलक्षणा ॥
अहानि द्वादश यदा बुधस्तिष्ठेत्तथोदितः । वक्रा गतिः सा विज्ञेया शस्त्रभयप्रकारिणी ॥
षड्दिनानि यदा तिष्ठेदुदितः सोमनन्दनः । विकला सा गतिर्ज्ञेया भयरोगविवर्धिनी ॥
एवमस्तमये सर्वं गतिजं सोमजस्य तु । भावाभावाय लोकानां फलं वाच्यं शुभाशुभम् ॥

मासवश बुध के उदय और अस्त का फल—

पौषाषाढश्रावणवैशाखेष्विन्दुजः समाघेषु।
दृष्टो भयाय जगतः शुभफलकृत्प्रोषितस्तेषु॥ १७॥

यदि पौष, आषाढ, श्रावण या माघ में बुध का उदय हो तो संसार में भय और अस्त हो तो शुभफल करता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

वैशाखपौषमाघेषु श्रावणाषाढयोरपि। न दृश्यते बुधः प्रायो मासेष्वन्येषु दृश्यते॥
यदाऽदृश्येषु दृष्टः स्याद्दृश्येषु च न दृश्यते। तदा रोगमनावृष्टिं दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत्॥

तथा पराशर—

वैशाखाषाढयोर्माघे पौषश्रावणयोस्तथा। बुधो न दृश्यते जातु दृश्येत भयमादिशेत्॥
पौषे करोति मरकं माघे वातं तथा च सोमसुतः।
वैशाखे जनमरकमाषाढे श्रावणे च दुर्भिक्षम्॥ १७॥

पुनः मासवश बुध के उदय और अस्त का फल—

कार्तिकेऽश्वयुजि वा यदि मासे दृश्यते तनुभवः शिशिरांशोः।
शस्त्रचौरहुतभुग्गदतोयक्षुद्भयानि च तदा विदधाति॥१८॥

यदि कार्तिक या आश्विन मास में बुध का उदय हो तो शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग, जल और दुर्भिक्ष का भय करता है॥ १८॥

उदयास्तवश बुध का फल—

रुद्धानि सौम्येऽस्तगते पुराणि यान्युद्गते तान्युपयान्ति मोक्षम्।
अन्ये तु पश्चादुदिते वदन्ति लाभः पुराणां भवतीति तज्ज्ञाः॥१९॥

बुधास्त समय में जो पुर शत्रुओं से घिर जाता है वह उसके उदय होने पर मुक्त हो जाता है, किसी पण्डित का मत है कि यदि पश्चिम तरफ बुध का उदय हो तो उस तरफ के पुरों में स्थित मनुष्यों को लाभ होता है।

यहाँ पर नन्दी—

पश्चार्द्धादुदिते सौम्ये लभते पुररोधकः। पुनः प्रागुदिते तस्मिन् पुरमोक्षं विनिर्दिशेत्॥१९॥

बुध के बिम्ब का लक्षण और फल—

हेमकान्तिरथवा शुकवर्णः सस्यकेन मणिना सदृशो वा।
स्निग्धमूर्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न शुभकृच्छशिपुत्रः॥२०॥

सुवर्ण के समान कान्तिवाला, तोता पक्षी के समान वर्णवाला, धान्य अथवा नील-मणि के सदृश और निर्मल तथा विस्तीर्ण बुध का बिम्ब दिखाई दे तो संसार के हित के लिये होता है। इसके विपरीत वर्ण का दिखाई दे तो अशुभ करने वाला होता है॥

यहाँ पर पराशर—

विमलजलजतस्फटिकाभः प्रशस्यत इति॥ २०॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां बुधचाराध्यायः सप्तमः॥ ७॥

अथ बृहस्पतिचाराध्यायः

कार्तिक आदि वर्षों के लक्षण—

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री।
तत्सञ्ज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥ १ ॥

जिस नक्षत्र में रहते हुये बृहस्पति उदय लेता है उस नक्षत्र के अनुसार द्वादश मास की तरह द्वादश वर्ष होते हैं।

यहाँ पर ऋषिपुत्र—

यत्रोत्तिष्ठति नक्षत्रे सह येन प्रवर्धते। संवत्सरः स विज्ञेयस्तन्नक्षत्रविधायकः ॥

तथा काश्यप—

संवत्सरे युगे चैव षष्ट्यब्देऽङ्गिरसः सुतः। यन्नक्षत्रोदयं कुर्यात्तत्सञ्ज्ञं वत्सरं विदुः ॥
प्रभवादीनामब्दानां प्रवृत्तिर्गुरोरुदयकालादित एव यतो गुरुरत्राधिपतित्वेन स्थितः।

तथा ऋषिपुत्र—

तिष्यादि च युगं प्राहुर्वसिष्ठात्रिपराशराः। बृहस्पतेस्तु सौम्यान्तं सदा द्वादशवार्षिकम् ॥
उदेति यस्मिन्मासे तु प्रवासोपगतोऽङ्गिराः। तस्मात्संवत्सरो मासो बार्हस्पत्योऽथ गम्यते ॥

तथा गर्ग—

प्रवासान्ते सहर्क्षेण तूदितो युगपच्चरेत्। तस्मात्कालात्तत्पूर्वो गुरोरब्दः प्रवर्तते ॥
युगानि द्वादशाब्दानि तत्र तानि बृहस्पतेः। तत्र सावनसौराभ्यां सावनाब्दो निरुच्यते ॥
एवमाश्वयुजं चैव चैत्रं चैव बृहस्पतिः। संवत्सरं नाशयते सप्तत्यब्दशतेऽधिके ॥ १ ॥

पूर्वोक्त बारह वर्षों के नाम और समय—

वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि।
क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम् ॥ २ ॥

कृत्तिका आदि दो दो नक्षत्रों में बृहस्पति के रहने से कार्तिक आदि बारह मास की तरह बारह वर्ष होते हैं। इनमें केवल पञ्चम, एकादश और द्वादश वर्ष तीन-तीन नक्षत्र के होते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

फाल्गुनी चैव हस्तं च चरेद्यदि बृहस्पतिः।
स फाल्गुनोऽब्दः क्रूरः स्याद्दाम्पत्यसुखादनां प्रजेत् ॥
श्रावणादीनि च त्रीणि चरेद्यदि बृहस्पतिः।
श्रावणो नाम सोऽब्दः स्यात्क्षेमसौभिक्षमूर्तिमान् ॥

पूर्वोत्तरे प्रोष्ठपदे चरेद्रेवतिमेव च। प्रोष्ठपाद इति ज्ञेयो मध्यमो वत्सरो हि सः ॥
आश्विनं चैव याम्यं च चरेद्यदि बृहस्पतिः। संवत्सरः सोऽश्वयुक् स्यात्सर्वभूतहितावहः ॥
नववारा द्विनक्षत्रा गुरोर्द्वादशमासिकाः। शेषास्त्रयस्त्रिनक्षत्राः पञ्चमैकादशान्तिमाः ॥

तथा कश्यप—

कार्तिकादिसमा ज्ञेया द्विनक्षत्रविचारिणा।
विमं भाद्रपदे ज्ञेयं फाल्गुने श्रावणे तथा॥ २॥

कार्तिक वर्ष का फल—

शकटानलोपजीवकगोपीडा व्याधिशस्त्रकोपश्च।
वृद्धिस्तु रक्तपीतककुसुमानां कार्तिके वर्षे॥ ३॥

कार्तिक नामक वर्ष में गाड़ी से तथा अग्नि से आजीविका चलने वाले (लोहार, सोनार आदि) और गौ इन सबों को पीड़ित करता है। लोगों में व्याधि और लड़ाई होती है। पर लाल और पीले पुष्पों की वृद्धि होती है।

यहाँ पर गर्ग—

कार्तिकः प्रचुरातङ्क-दुस्स्वरोग्निभयप्रदः। गोशाकटिकपीडां च करोत्येवमवृष्टिदः॥ ३॥

मार्गशीर्ष वर्ष का फल—

सौम्येऽब्देऽनावृष्टिर्मृगाखुशलभाण्डजैश्च सस्यवधः।
व्याधिभयं मित्रैरपि भूपानां जायते वैरम्॥ ४॥

मार्गशीर्ष वर्ष में अनावृष्टि होती है, जङ्गली जानवर, चूहा, शलभ (टीडी) और पक्षियों से धान्य का नाश होता है। मनुष्यों में व्याधि का भय होता है तथा मित्रों से भी राजाओं को द्वेष होता है।

यहाँ पर गर्ग—

वर्षहन्ता व्याधिकरो मिथो भेदभयावहः। शलभाद्याकुलः सौम्यो दुर्भिक्षभयकारकः॥ ४॥

पौष वर्ष का फल—

शुभकृज्जगतः पौषो निवृत्तवैराः परस्परं क्षितिपाः।
द्वित्रिगुणो धान्यार्घः पौष्टिककर्मप्रसिद्धिश्च॥ ५॥

पौष वर्ष में संसार का शुभ होता है, राजा लोग पारस्परिक द्वेष त्याग देते हैं, धान्य का मौल्य द्विगुणित या त्रिगुणित हो जाता है और पौष्टिक कर्मकी सिद्धि होती है।

यहाँ पर गर्ग—

प्रशान्तव्याधिदुर्भिक्षदुर्वर्षाग्नितस्करः। सर्वलक्षणसम्पन्नः पौषः संवत्सरोत्तमः॥ ५॥

माघ नामक वर्ष का फल—

पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम्।
आरोग्यवृष्टिधान्यार्घसम्पदो मित्रलाभश्च॥ ६॥

माघ नामक वर्ष में पितरों की पूजा की वृद्धि, सब प्राणियों को तुष्टि, आरोग्य, सुन्दर वृष्टि, धान्यों के मौल्य में समता और मित्रों का लाभ होता है।

यहाँ पर गर्ग—

क्षेमारोग्यं सुभिक्षं च सर्वगं शिवमेव च। पितृपूजाः प्रवर्तन्ते माघे राज्ञां च सम्भवः॥ ६॥

फाल्गुन नामक वर्ष का फल—

फाल्गुनवर्षे विन्द्यात्क्वचित्क्वचित्क्षेमवृष्टिसस्यानि ।
दौर्भाग्यं प्रमदानां प्रबलाश्चौरा नृपाश्चोग्राः ॥ ७ ॥

फाल्गुन वर्ष में किसी-किसी स्थान में मंगल कार्य और धान्य होता है, किन्तु सर्वत्र मंगल कार्य और धान्य की उत्पत्ति नहीं होती । तथा स्त्रियों की अभाग्यता, चोरों की प्रबलता और राजाओं की उग्रता बढ़ती है ।

यहाँ पर गर्ग—

नारीदौर्भाग्यकृच्चौरः फाल्गुनः सस्यवर्धदः । क्वचित्क्षेमं सुभिक्षं च क्वचित्क्षेमकारकः ॥७॥

चैत्र वर्ष का फल—

चैत्रे मन्दा वृष्टिः प्रियमन्नं क्षेममवनिपा मृदवः ।
वृद्धिश्च कोशधान्यस्य भवति पीडा च रूपवताम् ॥ ८ ॥

चैत्र वर्ष में थोड़ी वृष्टि, दुर्लभ अन्न, लोगों में कुशलता, राजाओं में कोमलता, एकत्रित किये हुये धान्यों की वृद्धि और सुन्दर मनुष्यों को पीड़ा होती है ।

यहाँ पर गर्ग—

मृदुप्रचारा राजानः प्रियमन्नं जनस्य च । क्षेमारोग्यं च मृदुता चैत्रवर्षस्तथा मृदुः ॥ ८ ॥

वैशाख वर्ष का फल—

वैशाखे धर्मरता विगतभयाः प्रमुदिताः प्रजाः सनृपाः ।
यज्ञक्रियाप्रवृत्तिर्निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ॥ ९ ॥

वैशाख वर्ष में राजाओं के साथ सब प्रजागण धर्मनिरत, भयरहित, आनन्दयुक्त और यज्ञकर्म में प्रवृत्त होते हैं तथा सब धान्यों की वृद्धि होती है ।

यहाँ पर गर्ग—

ईतयः प्रशमं यान्ति सन्धिं कुर्वन्ति पार्थिवाः । वैशाखे तु सस्यजन्या वृष्टयः सम्भवन्ति हि ॥

ज्येष्ठ वर्ष का फल—

ज्येष्ठे जातिकुलधनश्रेणीश्रेष्ठा नृपाः सधर्मज्ञाः ।
पीड्यन्ते धान्यानि च हित्वा कङ्गुं शमीजातिम् ॥ १० ॥

ज्येष्ठ वर्ष में अच्छे कुल में उत्पन्न, अति धनी, बहुतों में प्रधान, राजा लोग, धर्म को जानने वाले और कंगनी तथा शमी के अतिरिक्त सब धान्य पीड़ित होते हैं ।

यहाँ पर गर्ग—

वृक्षगुल्मलतासस्यक्षेमवर्षविनाशनः । नृपाश्चादीन्सिजनो ज्येष्ठो ज्येष्ठनृपान्तकृत् ॥ १० ॥

आषाढ़ वर्ष का फल—

आषाढे जायन्ते सस्यानि क्वचिद्वृष्टिरन्यत्र ।
योगक्षेमं मध्यं व्यग्राश्च भवन्ति भूपालाः ॥ ११ ॥

आषाढ़ वर्ष में कहीं-कहीं पर धान्य और कहीं-कहीं पर वर्षा का अभाव होता

है, योगक्षेम (अलब्ध का लाभ, लब्ध का पालन) मध्यम रूप से होता है तथा राजा लोग अपने काम में व्यग्र रहते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

दुर्भिक्षाक्षेमजननश्चाषाढोऽन्योन्यभेदकृत्। भूपाव्युद्धजननो मध्यमक्षेमकारकः ॥ ११ ॥

श्रावण वर्ष का फल—

श्रावणवर्षे क्षेमं सम्यक् सस्यानि पाकमुपयान्ति।

क्षुद्रा ये पाखण्डाः पीड्यन्ते ये च तद्भक्ताः ॥ १२ ॥

श्रावण नामक वर्ष में सब धान्य अच्छी तरह पक जाते हैं, तथा क्षुद्र (क्रूर), पाखण्डी गण (वेदनिन्दक) और उनके भक्त लोग पीडित होते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

श्रावणः सस्यसम्पन्नः क्षेमारोग्यकरः शिवः। धान्यं समर्घतां याति सम्यग्वर्षति वासवः ॥
क्षुद्रान् पाखण्डिनः सर्वान् तद्भक्तांश्चोपतापयेत् ॥ १२ ॥

भाद्रपद नामक वर्ष का फल—

भाद्रपदे वल्लीजं निष्पत्तिं याति पूर्वसस्यं च।

न भवत्यपरं सस्यं क्वचित्सुभिक्षं क्वचिच्च भयम् ॥ १३ ॥

भाद्रपद वर्ष में वल्लीज (मूँग आदि अन्न) और पहले के बोये हुए धान्य पक जाते हैं। परन्तु इस वर्ष के आरम्भ के बाद के बोये हुये धान्य नहीं होते हैं तथा संसार में कहीं-कहीं पर सुभिक्ष और कहीं-कहीं पर भय होता है।

यहाँ पर गर्ग—

प्रौष्ठपादः सस्यजननो नाशयत्यपरं च यत्। करोति च क्वचित्क्षेमं क्वचिदक्षेमकारकः ॥१३॥

अश्वयुज वर्ष का फल—

आश्वयुजेऽब्देऽजस्रं पतति जलं प्रमुदिताः प्रजाः क्षेमम्।

प्राणचयः प्राणभृतां सर्वेषामन्नबाहुल्यम् ॥ १४ ॥

अश्वयुज (आश्विन) वर्ष में बहुत वृष्टि, सर्वथा सानन्द प्रजा, सब प्राणियों में प्राणचय (अत्यधिक बल की वृद्धि) और अन्न की अधिकता होती है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

पर्याप्तसस्याश्वजलक्षेमश्चाश्वयुजः शिवः। सम्प्रवृत्तोत्सवः श्रीमान् सर्वकामसुखावहः ॥

समाससंहिता में संक्षेप से सब वर्षों का फल—

फाल्गुनचैत्राषाढा मध्याः सौम्योऽधमस्तथा ज्येष्ठः।
वैशाखपौषमाघाः शुभफलदाः श्रावणाद्याश्च ॥ १४ ॥

नक्षत्रों में संचारवश गुरु के विशेष फल—

उदगारोग्यसुभिक्षक्षेमकरो वाक्पतिश्चरन् भानाम्।

याम्ये तद्विपरीतो मध्येन तु मध्यफलदायी ॥ १५ ॥

नक्षत्रों के उत्तर में चलते हुये बृहस्पति संसार में सुभिक्ष और क्षेम करता है, दक्षिण में विपरीत फल (दुर्भिक्ष और अक्षेम) करता है और नक्षत्रों के मध्य में चलता हुआ बृहस्पति मध्यम फल करता है ॥ १५ ॥

नक्षत्रों में संचार वश गुरु के विशेष फल—

विचरन् भद्वयमिष्टस्तत्सार्द्धं वत्सरेण मध्यफलः ।
सस्यानां विध्वंसी विचरेदधिकं यदि कदाचित् ॥ १६ ॥

यदि बृहस्पति एक वर्ष के अन्दर दो नक्षत्रों में विचरण करे तो शुभ फल, ढाई नक्षत्रों में विचरण करे तो मध्यम फल और यदि कदाचित् ढाई से भी अधिक नक्षत्रों में विचरण करे तो धान्यों का नाश करने वाला होता है ॥ १६ ॥

बृहस्पति के वर्ण का फल—

अनलभयमनलवर्णे व्याधिः पीते रणागमः श्यामे ।
हरिते च तस्करेभ्यः पीडा रक्ते तु शस्त्रभयम् ॥ १७ ॥
धूमाभेऽनावृष्टिस्त्रिदशगुरौ नृपवधो दिवा दृष्टे ।
विपुलेऽमले सुतारे रात्रौ दृष्टे प्रजाः स्वस्थाः ॥ १८ ॥

यदि बृहस्पति अग्निवर्ण का हो तो अग्नि का भय, पीतवर्ण का हो तो व्याधि, श्यामवर्ण का हो तो युद्ध, हरा हो तो चोरों से पीड़ा, लालवर्ण का हो तो शस्त्र का भय और धूम्रवर्ण का हो तो अनावृष्टि करता है। यदि बृहस्पति दिन में दिखाई दे तो राजा का नाश और ताराओं से सुन्दर रात्रि में बृहस्पति का विपुल निर्मल बिम्ब दिखाई दे तो प्रजाओं को सर्वथा स्वस्थ करता है।

यहाँ पर पराशर—

कदाचिद्यत्र दृश्येत दिवा देवपुरोहितः। राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति ॥

संवत्सर पुरुष के अङ्ग विभाग से नक्षत्र और फल—

रोहिण्योऽनलभं च वत्सरतनुर्नाभिस्त्वषाढाद्वयं
सार्पं हृत्पितृदैवतं च कुसुमं शुद्धैः शुभं तैः फलम् ।
देहे क्रूरनिपीडितेऽग्न्यनिलजं नाभ्यां भयं क्षुत्कृतं
पुष्पे मूलफलक्षयोऽथ हृदये सस्यस्य नाशो ध्रुवम् ॥ १९ ॥

संवत्सरपुरुष के रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्र शरीर, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नाभि, आश्लेषा हृदय और मघा पुष्प है। यदि संवत्सरपुरुष के ये शरीर आदि अङ्ग शुद्ध (पापग्रह से रहित) हों तो शुभ फल देते हैं। यदि देह (रोहिणी और कृत्तिका) में पाप ग्रह हो तो अग्नि और वायु का भय, नाभि (पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा) में पाप ग्रह हो तो दुर्भिक्ष का भय, पुष्प (मघा) में पाप ग्रह हो तो

मूल (मूल पदार्थ) और फल (आम्र आदि) का क्षय तथा हृदय (अश्लेषा नक्षत्र) में पाप ग्रह हो तो धान्यों का नाश होता है।

यहाँ पर कश्यप—

कृत्तिका रोहिणी चोभे संवत्सरतनु स्मृता। आषाढाद्वितयं नाभी सार्पं हृत्कुसुमं मघा॥
क्रूरग्रहहते देहे दुर्भिक्षानलमारुताः। क्षुद्भयं तु भवेन्नाभ्यां पुष्पे मूलफलक्षयः॥
हृदये सस्यहानिः स्यात्सौम्यैः पुष्टिः प्रकीर्तिता॥ १९॥

षष्ट्यब्दानयनप्रकार—

गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकालाद्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः।
नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कृत्वा विभाजयेच्छून्यशरागरामैः॥ २०॥
लब्धेन युक्तं शकभूपकालं संशोध्य षष्ट्या विषयैर्विभज्य।
युगानि नारायणपूर्वकाणि लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः स्युः॥२१॥
एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग्द्वादशकं क्रमेण।
हृत्वा चतुर्भिर्वसुदेवताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम्॥ २२॥

शकादित्य (शालिवाहन) नृप के समय से जितने वर्ष बीते हों उनको ग्यारह से गुणा कर गुणनफल को फिर चार से गुणा करे, उस गुणनफल में ८५८९ जोड़ कर ३७५० से भाग देने से जो लब्धि मिले उसमें शकाब्द जोड़ कर ६० का भाग देने से जो शेष बचे उसमें पाँच का भाग देवे, लब्ध गत युग और शेष वर्तमान युग के वर्ष आदि होंगे एवं उक्त वर्षों की संख्या को १२ से भाग दे और भाग फल को नवगुणित अङ्क में मिलाकर ४ का भाग करने पर जो लब्धि हो, उतनी संख्या के नक्षत्रों में बृहस्पति की मान्यता समझे, परन्तु गणना के समय २४ वें नक्षत्र से गणना करनी चाहिए, अर्थात् १ लब्धि हो तो २५ वाँ (पूर्वाभाद्रपदा) और २ लब्धि हो तो २६ वाँ (उत्तराभाद्रपदा) नक्षत्र समझना चाहिए।

उदाहरण—जैसे शाके १८७६ में संवत्सर का आनयन करना है तो १८७६ को ११ से गुणा कर गुणनफल २०६३६ को फिर ४ से गुणा किया तो ८२५४४ इतना हुआ, इसमें ३७५० का भाग देने से लब्ध वर्ष २४, वर्ष शेष ११३३ को १२ से गुणा कर गुणनफल १३५९६ में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध मास ३, मासशेष २३४६ को ३० से गुणा कर गुणनफल ७०३८० में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध दिन १८, दिनशेप २८८० को ६० से गुणा कर गुणनफल १७२८०० में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध घटी ४६, घटीशेष ३०० को ६० से गुणा कर गुणनफल १८००० में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध पला ४, पलाशेष ३००० 'अर्धाधिके रूपं ग्राह्यम्' इस नियम से लब्ध पला ५ हुआ। अतः वर्ष आदि लब्धि = (२४। ३।१८।४६।५) इतनी हुई, इसमें इष्ट शकाब्द १८७६ जोड़ा तो १९००।३।१८।४६।५ हुआ। इसके वर्षस्थान १९०० में ६० का भाग देने से लब्धि ३१ और शेष षष्ट्यब्द

प्रमाण—४०।३।१८।४६।५ रहा, अतः ४०वां संवत्सर के अग्रिमस्थ ४१वां संवत्सर 'प्लवङ्ग' नाम का इष्ट शकाब्द १८७६ में सिद्ध हुआ। इस ४०।३।१८।४६।५ में ५ का भाग देने से लब्धि ८ और शेष ०।३।१८।४६।५ रहा। अतः नवम युग (सोम) में वर्ष आदि ०।३।१८।४६।५ बीता है॥ २०–२२॥

पूर्वकथित बारह युगों के अधिपति—

विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः॥२३॥

विष्णु, सुरेज्य (बृहस्पति), बलभित् (इन्द्र), हुताश (अग्नि), त्वष्टा (प्रजापति), उत्तरप्रोष्ठपदाधिप (अहिर्बुध्न्य), पितृ, विश्वेदेव, सोम, शक्रानल (इन्द्राग्नि), अश्वि (अश्विनीकुमार), भग (सूर्य) ये बारह पूर्वकथित बारह युगों के स्वामी हैं।

समाससंहिता में—

विष्णुसुरेज्यशक्रहुतवहत्वष्टाहिर्बुध्न्यपित्र्यविश्वानि।
सौम्यमथैन्द्राग्न्याख्यं स्वाश्विनमपि भाग्यमन्त्यं च॥ २३॥

प्रत्येक युग के अन्दर होनेवाले पाँच-पाँच वर्षों के नाम और देवता—

संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क इदादिकः शीतमयूखमाली।
प्रजापतिश्चाप्यनुवत्सरः स्यादिद्वत्सरः शैलसुतापतिश्च॥ २४॥

संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर, इद्वत्सर ये प्रत्येक युग में पाँच-पाँच संवत्सर होते हैं। इनके स्वामी क्रम से अग्नि, सूर्य, चन्द्र, प्रजापति और शिव हैं। जैसे संवत्सर का स्वामी अग्नि, परिवत्सर का स्वामी सूर्य, इदावत्सर का स्वामी चन्द्र, अनुवत्सर का स्वामी प्रजापति और इद्वत्सर का स्वामी शिव है॥ २४॥

पूर्वोक्त पाँच संवत्सरों का फल—

वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वितीये प्रभूततोया कथिता तृतीये।
पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थं स्वल्पोदकं पञ्चममब्दमुक्तम्॥ २५॥

संवत्सर नामक वर्ष में मध्यम रूप से (जैसे श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक इन चारों मासों में समान) वृष्टि होती है, परिवत्सर नामक वर्ष में आद्य भाग में (श्रावण, भाद्र में), इदावत्सर नामक वर्ष में चारों मासों में बहुत वृष्टि होती है, अनुवत्सर नामक वर्ष में अन्त में (आश्विन और कार्तिक में) वृष्टि होती है और इद्वत्सर नामक वर्ष में थोड़ी वृष्टि होती है॥ २५॥

द्वादश युगों के उत्तम आदि भाग—

चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषां विष्ण्विन्द्रजीवानलदैवतानि।
चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विन्द्यात्॥२६॥

पूर्वकथित बारह युगों में विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि जिनके देवता हैं वे

उत्तम, मध्य के चार (प्रजापति, उत्तरप्रोष्ठपदाधिप, पिता और विश्वेदेव) जिनके देवता हैं वे मध्यम और अन्त के चार (सोम, शक्रानल, अश्वि और सूर्य) जिनके देवता हैं वे अशुभ हैं।

यहाँ पर समासंहिता में—

चत्वारि युगान्याद्यौ शुभानि मध्यानि मध्यमफलानि।
चत्वार्यन्त्यानि न शोभनानि वर्षैर्विशेषोऽत्र॥ २६॥

षष्ट्यब्दों में प्रथम प्रभव नामक वर्ष का प्रवृत्तिकाल—

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः।
षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रपद्यते भूतहितस्तदाब्दः॥ २७॥

जब धनिष्ठा के प्रथम अंश में स्थित होकर बृहस्पति माघ मास में उदित होता है उस समय से षष्ट्यब्दों में प्रथम प्रभव नामक वर्ष का प्रारम्भ होता है। यह वर्ष प्राणियों के लिये हितकारी होता है॥ २७॥

प्रभव संवत्सर का फल—

क्वचित्त्ववृष्टिः पवनाग्निकोपः सन्तीतयः श्लेष्मकृताश्च रोगाः।
संवत्सरेऽस्मिन् प्रभवे प्रवृत्ते न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि॥२८॥

यद्यपि प्रभव संवत्सर में कहीं कहीं पर अवृष्टि, कहीं कहीं पर वायु का प्रकोप, कहीं कहीं पर अग्नि का कोप, कहीं कहीं पर अतिवृष्टि आदि छै ईतियों का भय और कहीं कहीं पर कफजन्य रोग होते हैं, तथापि संसारस्थित प्राणियों को विशेष कष्ट का अनुभव नहीं होता है॥ २८॥

विभव आदि चार संवत्सरों के नाम और फल—

तस्माद्द्वितीयो विभवः प्रदिष्टः शुक्लस्तृतीयः परतः प्रमोदः।
प्रजापतिश्चेति यथोत्तराणि शस्तानि वर्षाणि फलान्यथैषाम्॥ २९॥
निष्पन्नशालीक्षुयवादिसस्यां भयैर्विमुक्तामुपशान्तवैराम्।
संहृष्टलोकां कलिदोषमुक्तां क्षत्रं तथा शास्ति च भूतधात्रीम्॥ ३०॥

इसके बाद दूसरे वर्ष का नाम विभव, तीसरे का शुक्ल, चौथे का प्रमोद और पाँचवें वर्ष का नाम प्रजापति है। ये चारों वर्ष उत्तरोत्तर शुभ फल देने वाले हैं। इन वर्षों में राजाओं की शासनपद्धति ऐसी होती है जिससे धान्य, ईख, यव आदि अन्न अच्छी तरह पककर सुन्दर फल देने वाले होते हैं तथा सब प्राणी निर्भय, द्वेषरहित, आनन्दयुत और कलि के दोष (अधर्म, व्याधि, दारिद्र्य, शोक, कलह, मृत्यु आदि) से विमुक्त होते हैं॥ २९-३०॥

द्वितीय युगान्तर्गत पांच संवत्सरों के नाम और फल—

आद्योऽङ्गिराः श्रीमुखभावसाह्वौ युवा सुधातेति युगे द्वितीये।
वर्षाणि पञ्चैव यथाक्रमेण त्रीण्यत्र शस्तानि समे परे द्वे॥ ३१॥

त्रिष्वाद्यवर्षेषु निकामवर्षी देवो निरातङ्कभयश्च लोकः।
अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः किन्त्वत्र रोगाः समरागमश्च ॥ ३२ ॥

द्वितीय युग के अन्तर्गत अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ये पांच वर्ष होते हैं। इनमें प्रथम तीन (अङ्गिरा, श्रीमुख और भाव) शुभ और शेष (युवा और धाता) मध्यम हैं। इनमें आदि के तीन वर्षों में देव (इन्द्र) पर्याप्त वर्षा करते हैं और सब लोग निर्भय रहते हैं। अन्त के दो वर्षों में मध्यम रूप से सुवृष्टि होती है, पर इनमें रोग और युद्ध होता है ॥ ३१-३२ ॥

तृतीययुगान्तर्गत पांच संवत्सरों के नाम और फल—

शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं वर्षं द्वितीयं बहुधान्यमाहुः।
प्रमाथिनं विक्रममप्यथान्यद्वृषं च विन्द्याद्गुरुचारयोगात् ॥ ३३ ॥
आद्यं द्वितीयं च शुभे तु वर्षे कृतानुकारं कुरुतः प्रजानाम्।
पापः प्रमाथी वृषविक्रमौ तु सुभिक्षदौ रोगभयप्रदौ च ॥ ३४ ॥

तृतीय (ऐन्द्र) युग में ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष ये पाँच वर्ष बृहस्पति के सञ्चारवश होते हैं। इनके प्रथम (ईश्वर) और द्वितीय (बहुधान्य) वर्ष शुभ हैं, तथा इनमें प्रजा गण कृत युग की तरह (धर्म में निरत, सुखी और दीर्घजीवी) होते हैं। प्रमाथी नाम का तृतीय वर्ष पापफल देने वाला होता है। वृष और विक्रम नामक वर्ष सुभिक्ष तो करता है किन्तु रोग और भय देने वाला भी होता है ॥ ३३-३४ ॥

चतुर्थयुगान्तर्गत पांच संवत्सरों के नाम और फल—

श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्वं यच्चित्रभानुं कथयन्ति वर्षम्।
मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसंज्ञं रोगप्रदं मृत्युकरं नतश्च ॥ ३५ ॥
तारणं तदनु भूरिवारिदं सस्यवृद्धिमुदितं च पार्थिवम्।
पञ्चमं व्ययमुशन्ति शोभनं मन्मथप्रबलमुत्सवाकुलम् ॥ ३६ ॥

चतुर्थ (हुताश) युग के अन्तर्गत चित्रभानु नामक प्रथम वर्ष शुभ फल देने वाला, द्वितीय सुभानु नामक वर्ष मध्यम फल देने वाला और तृतीय नत नाम का वर्ष रोगप्रद और मृत्यु का देने वाला होता है। चतुर्थ तारण नामक वर्ष में बहुत जल, धान्यों की वृद्धि और राजाओं में आनन्द की वृद्धि होती है, पञ्चम व्यय नामक वर्ष शुभ है, इसमें काम की प्रबलता और उत्सव (विवाहादि मङ्गलकार्य) होते हैं ॥३५-३६॥

पञ्चमयुगान्तर्गत पांच संवत्सरों के नाम और फल—

त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः संवत्सरोऽन्यः खलु सर्वधारी।
तस्माद्विरोधी विकृतः खरश्च शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषाः ॥ ३७ ॥

पञ्चम (त्वाष्ट्र) युग के अन्तर्गत सर्वजित, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर ये

पाँच संवत्सर होते हैं, इनमें दूसरा (सर्वधारी) शुभ और शेष (सर्वजित्, विरोधी, विकृत और खर) भय देने वाले होते हैं ॥ ३७ ॥

षष्ठयुगान्तर्गत पाँच संवत्सरों के नाम और फल—

नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा मन्मथोऽस्य परतश्च दुर्मुखः ।
कान्तमत्र युग आदितस्त्रयं मन्मथः समफलोऽधमोऽपरः ॥ ३८ ॥

षष्ठ (प्रोष्ठपद) युग में नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें आदि के तीन (नन्दन, विजय और जय) शुभ, मन्मथ मध्यम और शेष (दुर्मुख) अशुभ है ॥ ३८ ॥

सप्तमयुगान्तर्गत पाँच संवत्सरों के नाम और फल—

हेमलम्ब इति सप्तमे युगे स्याद्विलम्बि परतो विकारि च ।
शर्वरीति तदनु प्लवः स्मृतो वत्सरो गुरुवशेन पञ्चमः ॥ ३९ ॥

ईतिप्राया प्रचुरपवना वृष्टिरब्दे तु पूर्वे
मन्दं सस्यं न बहुसलिलं वत्सरेऽतो द्वितीये ।
अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः स्यात्तृतीयश्चतुर्थो
दुर्भिक्षाय प्लव इति ततः शोभनो भूरितोयः ॥ ४० ॥

सप्तम (पितृसंज्ञक) युग में हेमलम्ब, विलम्बी, विकारी, शर्वरी, प्लव ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम (हेमलम्ब) संवत्सर में अधिकतर अतिवृष्टि आदि छै ईतियों का भय और अधिक वायु के प्रकोप से युत वृष्टि होती है। दूसरे (विलम्बी) संवत्सर में थोड़ा धान्य और अधिक वृष्टि होती है। तृतीय संवत्सर बहुत उद्वेग (शोष) करने वाला और अधिक जल देने वाला होता है। चौथा (शर्वरी) संवत्सर दुर्भिक्ष करने वाला होता है। पाँचवाँ (प्लव) संवत्सर शुभ फल और बहुत वृष्टि देने वाला होता है ॥ ३९–४० ॥

अष्टमयुगान्तर्गत पाँच संवत्सरों के नाम और फल—

वैश्वे युगे शोभकृदित्यथाद्यः संवत्सरोऽतः शुभकृद्द्वितीयः ।
क्रोधी तृतीयः परतः क्रमेण विश्वावसुश्चेति पराभवश्च ॥ ४१ ॥
पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानामेषां तृतीयो बहुदोषदोऽब्दः ।
अन्त्यौ समौ किन्तु पराभवेऽग्निः शस्त्रामयार्तिर्द्विजगोभयं च ॥ ४२ ॥

अष्टम (वैश्व) युग में शोभकृत्, शुभकृत्, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम (शोभकृत्) और द्वितीय (शुभकृत्) संवत्सर प्रजाओं को आनन्द देने वाले होते हैं। तृतीय (क्रोधी) संवत्सर बहुत अशुभकारी है। अन्त्य के चतुर्थ (विश्वावसु) और पञ्चम (पराभव) संवत्सर मध्यम फल देने वाले होते हैं,

किन्तु पराभव संवत्सर में अग्नि का भय, शस्त्र से पीड़ा, रोग से पीड़ा, ब्राह्मणों और गौओं को भय होता है ॥ ४१-४२ ॥

नवमयुगान्तर्गत पाँच संवत्सरों के नाम और फल—

आद्यः प्लवङ्गो नवमे युगेऽब्दः स्यात्कीलकोऽन्यः परतश्च सौम्यः ।
साधारणो रोधकृदित्यथाब्दः शुभप्रदौ कीलकसौम्यसञ्ज्ञौ ॥४३॥
कष्टः प्लवङ्गो बहुशः प्रजानां साधारणेऽल्पं जलमीतयश्च ।
यः पञ्चमो रोधकृदित्यथाब्दश्चित्रं जलं तत्र च सस्यसम्पत् ॥४४॥

नवम (सौम्य) युग में प्लवङ्ग, कीलक, सौम्य, साधारण, रोधकृत् ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें कीलक और सौम्य नामक संवत्सर शुभप्रद हैं। प्लवङ्ग संवत्सर में प्रजाओं को कष्ट होता है। साधारण संवत्सर में थोड़ा जल और अनावृष्टि आदि ईति का भय होता है। रोधकृत् संवत्सर में चित्रजल (कहीं-कहीं पर वृष्टि और कहीं पर अवृष्टि) और धान्य की उत्पत्ति होती है ॥ ४३-४४ ॥

दशमयुगान्तर्गत पाँच संवत्सरों के नाम और फल—

इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं यत्तत्राद्यवर्षं परिधाविसञ्ज्ञम् ।
प्रमाद्यथानन्दमतः परं यत् स्याद्राक्षसं चानलसञ्ज्ञितं च ॥ ४५ ॥
परिधाविनि मध्यदेशनाशो नृपहानिर्जलमल्पमग्निकोपः ।
अलसस्तु जनः प्रमादिसञ्ज्ञे डमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ॥ ४६ ॥
तत्परः सकललोकनन्दनो राक्षसः क्षयकरोऽनलस्तथा ।
ग्रीष्मधान्यजननोऽत्र राक्षसो वह्निकोपमरकप्रदोऽनलः ॥ ४७ ॥

दशम (शाकाग्नि) युग में परिधावी, प्रमादी, विक्रम, राक्षस, अनल ये पाँच संवत्सर होते हैं। परिधावी संवत्सर में मध्यदेश का नाश, राजा का मरण, थोड़ी वर्षा और अग्निभय होता है। प्रमादी संवत्सर में आलसी मनुष्य, डमर (सशस्त्र कलह), रक्त पुष्प और रक्त बीज वाले वृक्षों का नाश होता है। विक्रम संवत्सर में सब मनुष्यों को आनन्द होता है। राक्षस और अनल संवत्सर में सब लोगों का नाश होता है पर राक्षस संवत्सर में ग्रीष्म धान्य (यव, गेहूँ, चना आदि) की उत्पत्ति और अनल संवत्सर में अग्निकोप और मरक (मरी) होती है ॥ ४५-४७ ॥

एकादशयुगान्तर्गत पाँच संवत्सरों के नाम और फल—

एकादशे पिङ्गलकालयुक्तसिद्धार्थरौद्राः खलु दुर्मतिश्च ।
आद्ये तु वृष्टिर्महती सचौरा श्वासो हनुकम्पयुतश्च कासः ॥ ४८ ॥
यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं सिद्धार्थसञ्ज्ञे बहवो गुणाश्च ।
रौद्रोऽतिरौद्रः क्षयकृत्प्रदिष्टो यो दुर्मतिर्मध्यमवृष्टिकृत्सः ॥ ४९ ॥

एकादश (आश्विन) युग में पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम (पिङ्गल) संवत्सर में अतिवृष्टि, चोरों का भय, श्वास और ठोढ़ी को कम्पित करने वाली खाँसी होती है। कालयुक्त संवत्सर में अनेक फल होते हैं। सिद्धार्थसंज्ञक संवत्सर में बहुत गुण (सम्पत्ति आदि) होते हैं। रौद्र संवत्सर में अतिशय अशुभ फल और प्रजाओं का नाश होता है। दुर्मति संवत्सर में मध्यमवृष्टि होती है ॥ ४८-४९ ॥

द्वादशयुगान्तर्गत पाँच संवत्सरों के नाम और फल—

भाग्ये युगे दुन्दुभिसञ्ज्ञमाद्यं सस्यस्य वृद्धिं महतीं करोति।
अङ्गारसञ्ज्ञं तदनु क्षयाय नरेश्वराणां विषमा च वृष्टिः ॥५०॥
रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं यस्मिन् भयं दंष्ट्रिकृतं गदाश्च।
क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं राष्ट्राणि शून्यीकुरुते विरोधैः ॥५१॥

द्वादश (भाग्य) युग में प्रथम दुन्दुभि नामक संवत्सर में धान्य की अधिक वृद्धि होती है। द्वितीय अङ्गार संवत्सर में राजाओं का नाश और अत्यन्त भयङ्कर वृष्टि होती है। तृतीय रक्ताक्ष नामक संवत्सर में दंष्ट्री (सूकर आदि) का भय और रोग होता है। चतुर्थ क्रोध नामक संवत्सर में लोगों को बहुत क्रोध होता है ॥५०-५१॥

द्वादशयुगान्तर्गत पञ्चम वर्ष का नाम और फल—

क्षयमिति युगस्यान्त्यस्यान्त्यं बहुक्षयकारकं
जनयति भये तद्विप्राणां कृषीवलवृद्धिदम्।
उपचयकरं विट्शूद्राणां परस्वहृतां तथा
कथितमखिलं षष्ट्यब्दे यत्तदत्र समासतः ॥ ५२ ॥

बारहवें युग का अन्तिम क्षय नामक संवत्सर बहुत प्रकार से लोगों का नाश करने वाला, ब्राह्मणों को भय देने वाला, किसानों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरे के धन का अपहरण करने वालों को बढ़ाने वाला होता है। शास्त्रान्तर में षष्ट्यब्दों का जो फल वर्णित है उसको संक्षेप से मैंने (वाराहमिहिर ने) यहाँ पर बृहस्पतिचाराध्याय में कहा है।

यहाँ पर समाससंहिता में—

ऐन्द्रे तृतीयमशुभं द्वितीयवर्जानि पञ्चमे तु युगे। पित्र्ये युगे तृतीयं चतुर्थमपि पापदं वर्षम् ॥
वैश्वे तृतीयमशुभं शुभदान्युक्तानि चावशेषाणि। सौम्ये द्वितीयवर्षं शुभावहं यत्तृतीयं तु ॥
)प्रथितं शुभमैन्द्राग्नौ तृतीयवर्षं तथाश्विदैवत्ये। भाग्ये प्रथमं वर्षं षष्ट्यब्दस्यैष सङ्क्षेपः ॥५२॥

बृहस्पति के बिम्ब का लक्षण और फल—

अकलुषांशुजटिलः पृथुमूर्तिः कुमुदकुन्दकुसुमस्फटिकाभः।
ग्रहहतो न यदि सत्पथवर्ती हितकरोऽमरगुरुर्मनुजानाम् ॥ ५३ ॥

निर्मल किरण वाला, जटिल (सघन किरण वाला), विशाल बिम्ब वाला, कुमुद

पुष्प, कुन्द पुष्प या स्फटिक मणि के समान कान्ति वाला, मह युद्ध में अविजित हो कर सत्पथ (ग्रहनक्षत्रों के उत्तरमार्ग) में रत बृहस्पति मनुष्यों का हितकारी होता है ॥५२॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां बृहस्पतिचाराध्यायोऽष्टमः ॥ ८ ॥

अथ शुक्रचाराध्यायः

शुक्र के नव वीथि, तीन मार्ग और छै मण्डल होते हैं। उनमें मतान्तर से प्रथम वीथियों के नक्षत्र कहते हैं—

नागगजैरावतवृषभगोजरद्गवमृगाजदहनाख्याः ।
अश्विन्याद्याः कैश्चित्त्रिभाः क्रमाद्वीथयः कथिताः ॥ १ ॥

अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रों में क्रम से नाग, गज, ऐरावत, वृष, गो, जरद्गव, मृग, अज, दहन ये नव वीथियाँ होती हैं। जैसे अश्विनी, भरणी और कृत्तिका में नागवीथि, रोहिणी, मृगशिर और आर्द्रा में गजवीथि, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा में ऐरावतवीथि, मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में वृषवीथि, हस्त, चित्रा और स्वाती में गोवीथि, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा में जरद्गववीथि, मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा में मृगवीथि, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में अजवीथि तथा पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती में दहन नाम की वीथि होती है।

यहाँ पर देवल—

अश्विन्यादित्रिभी· सर्वा नागाद्या दहनान्तिका·। वीथयो भृगुपुत्रस्य नव प्रोक्ताः पुरातनैः ॥

यहाँ पर कश्यप—

त्रिष्वश्विन्यादिषु यदा चरति भृगुनन्दन । नागवीथीति सा ज्ञेया प्रथमान्या निबोधत ॥
रोहिण्यादिगजा ज्ञेयाऽदित्याद्यैरावती स्मृता। मघाद्या वृषभा ज्ञेया हस्ताद्या गौः प्रकीर्तिता ॥
जारद्गवी विशाखाद्या मूलाद्या मृगवीथिका। अजवीथी विष्णुभाद्याऽजाद्या तु दहना स्मृता ॥

स्फुटार्थं चक्र—

वीथियाँ	नाग	गज	ऐरावत	वृष	गो	जरद्गव	मृग	अज	दहन
न	अश्विनी	रोहिणी	पुनर्वसु	मघा	हस्त	विशा.	मूल	श्रवण	पू. भा.
क्ष	भरणी	मृगशि	पुष्य	पू. फा	चित्रा	अनुरा	पू. पा.	धनिष्ठा	उ. भा.
त्र	कृत्तिका	आर्द्रा	आश्लेषा	उ. फा	स्वाती	ज्येष्ठा	उ. पा.	शतभि	रेवती

अपने मत से वीथियों के नक्षत्र—

नागा तु पवनयाम्यानलानि पैतामहात् त्रिभास्तिस्रः ।
गोवीथ्यामश्विन्यः पौष्णं द्वे चापि भाद्रपदे ॥ २ ॥

जारद्गव्यां श्रवणात् त्रिभं मृगाख्या त्रिभं च मैत्राद्यम् ।
हस्तविशाखात्वाष्ट्राण्यजेत्याषाढाद्वयं दहना ॥ ३ ॥

अपने मत से वीथियों में नक्षत्रविभाग कहते हैं—स्वाती, भरणी और कृत्तिका में नागवीथि, रोहिणी, मृगशिर और आर्द्रा में गजवीथि; पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा में ऐरावतवीथि; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में वृषवीथि, अश्विनी, रेवती, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा इन चार नक्षत्रों में गोवीथि, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में जारद्गववीथि, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल मे मृगवीथि, हस्त, विशाखा और चित्रा में अजवीथि तथा पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा इन दो नक्षत्रों में दहनवीथि होती है ॥

पूर्वोक्त वीथियों में मार्ग का विभाग—

तिस्रस्तिस्रस्तासां क्रमादुदङ्मध्ययाम्यमार्गस्थाः ।
तासामप्युत्तरमध्यदक्षिणेन स्थितैकैका ॥ ४ ॥

नाग आदि तीन-तीन वीथियाँ क्रम से उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्ग में स्थित होती हैं। जैसे नाग, गज और ऐरावत उत्तर मार्ग में; वृष, गो और जरद्गव मध्य मार्ग में तथा मृग, अज और दहन दक्षिण मार्ग में स्थित होती हैं। इन तीन-तीन वीथियों में भी एक-एक क्रम से उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्ग में स्थित हैं। जैसे नाग उत्तर मार्ग में, गज मध्य मार्ग में, ऐरावत दक्षिण मार्ग में, वृष उत्तर मार्ग में, गो मध्य मार्ग में, जरद्गव दक्षिण मार्ग में, मृग उत्तर मार्ग मे, अज मध्य मार्ग मे और दहन दक्षिण मार्ग में स्थित है। अत. नाग उत्तरोत्तर मार्ग मे, गज उत्तर मध्य मार्ग में, ऐरावत उत्तर दक्षिण मार्ग में, वृष मध्योत्तर मार्ग में, गो मध्यमध्य मार्ग मे, जरद्गव मध्य दक्षिण मार्ग में, मृग दक्षिणोत्तर मार्ग में, अज दक्षिण मध्य मार्ग में और दहन दक्षिण-दक्षिण मार्ग में स्थित है।

यहाँ पर गर्ग—

कृत्तिका भरणी स्वाती नागवीथी प्रकीर्तिता । रोहिण्याद्यास्त्रिभास्तिस्रो गजैरावतवार्षभाः ॥
अहिर्बुध्न्याश्विपौष्णं च गोवीथीति प्रकीर्तिता । श्रवणत्रितयं ज्ञेया वीथी जारद्गवीति सा ॥
मैत्रत्रिभा मृगाख्या स्याद्धस्तचित्राविशाखिका । अजवीथी तु दहनापाढयुग्ममिति स्मृता ॥
पूर्वोत्तरा नागवीथी गजवीथी तदुत्तरा । ऐरावती ततो याम्या एतास्तूत्तरतः स्मृताः ॥
आर्षभी तु चतुर्थी स्याद्गोवीथी पञ्चमी स्मृता । षष्ठी जारद्गवी ज्ञेया तिस्रस्ता मध्यमाश्रिताः ॥
सप्तमी मृगवीथी स्यादजवीथी तथाष्टमी । दहना नवमी ज्ञेया दक्षिणं मार्गमाश्रिताः ॥

समाससंहिता में—

वीथी नागा नाम्ना स्वातिर्भरणी च कृत्तिका चैव ।
स्वायम्भुवत्रिभा. स्युर्गजवीथ्यैरावती वृषभा ॥
एकपदादिचतुष्कं गौः स्याज्जारद्गवी त्रिभा श्रवणात् ।
मैत्रत्रिभं मृगाऽजा हस्तत्रिभा विशाखा च ॥

द्वे चापाढे दहना तिस्र उदग्वीथय. क्रमाद्धुभदाः ।
मध्या मध्यास्तिस्रो याम्या पापा मृगाद्यास्ता ॥ ४ ॥

मतान्तर से मार्ग की कल्पना—

वीथीमार्गानपरे कथयन्ति यथास्थितान् भमार्गस्य ।
नक्षत्राणां तारा याम्योत्तरमध्यमास्तद्वत् ॥ ५ ॥

किसी का मत है कि नक्षत्रमार्ग में, जिस तरह वीथी के मार्ग स्थित हैं उसी तरह दक्षिण उत्तर और मध्यमार्ग की कल्पना करनी चाहिए। जैसे नक्षत्रमार्ग के दक्षिण में स्थित योग तारागण दक्षिणमार्गस्थित, उत्तर में उत्तरमार्गस्थित और मध्य में मध्यमार्गस्थित होता है। अथवा नक्षत्रमार्ग से दक्षिण में स्थित ग्रह दक्षिणमार्गगत, उत्तर में उत्तरमार्गगत और मध्य में मध्यमार्गस्थित होता है।

यहां पर कश्यप—

नक्षत्राणां त्रयो मार्गा दक्षिणोत्तरमध्यमाः। उदक्स्थास्तारका सौम्यो मध्यमो मध्यमाः स्मृताः॥
दक्षिणा दक्षिणो मार्गो नक्षत्रेषु प्रकीर्तितः। नक्षत्रात्सौम्यगः सौम्यमार्गस्थो ग्रह उच्यते॥
दक्षिणे दक्षिणो मार्गो मध्ये मध्य इति स्मृतः॥ ५॥

मतान्तर से मार्ग की कल्पना—

उत्तरमार्गो याम्यादि निगदितो मध्यमस्तु भाग्याद्यः ।
दक्षिणमार्गोऽषाढादि कैश्चिदेवं कृता मार्गाः ॥ ६ ॥

किसी का मत है कि भरणी आदि नव नक्षत्र (भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मघा) उत्तरमार्ग में, पूर्वाफाल्गुनी आदि नव नक्षत्र (पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल) मध्यमार्ग में और पूर्वाषाढा आदि नव नक्षत्र (पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती और अश्विनी) दक्षिणमार्ग में स्थित है।

यहां पर गर्ग—

अश्वयुग्भोगपर्यन्तेऽषाढादौ नवके गणे। वर्तमानः सदा क्रूरो दक्षिणे पथि वर्तते॥
शुक्रो निरृतिपर्यन्ते भाग्यादौ नवके गणे। वर्तमानश्च मध्यस्थो मध्यमे पथि वर्तते॥
भरण्यादौ मघान्ते च तृतीये नवके गणे। वर्तमानः शुभो ज्ञेय उत्तरे पथि वर्तते॥ ६॥

मतान्तर कहने का कारण—

ज्योतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम् ।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ॥ ७ ॥

ज्योतिषशास्त्र आगमशास्त्र है, इसको आगम के बिना नहीं जान सकते, अतः इसमें स्वयं सन्देह (यह ठीक है या नहीं इत्यादि) करना हमारे लिये योग्य नहीं है। यतः सब ऋषि त्रिकालदर्शी थे, नहीं कह सकते कि किस ऋषि का कैसा आगम था, अतः हमारे लिये सब माननीय होने के कारण बहुतों का मत संग्रह करके यहां कहता हूं॥ ७॥

उत्तर आदि वीथियों में स्थित शुक्र का फल—

उत्तरवीथिषु शुक्रः सुभिक्षशिवकृद्गतोऽस्तमुदयं वा।
मध्यासु मध्यफलदः कष्टफलो दक्षिणस्थासु॥ ८॥

यदि उत्तरवीथी में स्थित शुक्र का उदय या अस्त हो तो सुभिक्ष और मङ्गल रने वाला, मध्यवीथी में हो तो मध्यम फल देने वाला तथा दक्षिणवीथी में कष्ट ने वाला होता है।

यहां पर गर्ग—

दयास्तमयं कुर्यान्मार्गमुत्तरमाश्रितः। सुभिक्षं च सुवृष्टिं च योगक्षेमं विनिर्दिशेत्॥
दयास्तमयं कुर्यान्मध्यमं मार्गमाश्रितः। मध्यमं चार्घमर्घ्यं च योगक्षेमं विनिर्दिशेत्॥
दयास्तमयं कुर्याद्दक्षिणं मार्गमाश्रितः। धान्यस्य सङ्ग्रहं कृत्वा केदारेषु तिलान् वपेत्॥८॥

वीथियों का विशेष फल—

अत्युत्तमोत्तमोनं सममध्यन्यूनमधमकष्टफलम्।
कष्टतरं सौम्याद्यासु वीथिषु यथाक्रमं ब्रूयात्॥ ९॥

नाग आदि नव वीथियों में क्रम से अत्युत्तम, उत्तम, ऊन (कुछ कम शुभ फल), सम, मध्यम, न्यून (किञ्चित् शुभफल), अधम, कष्ट और कष्टतम फल होते हैं। जैसे नागवीथी में अत्युत्तम, गजवीथी में उत्तम, ऐरावतवीथी में ऊन, वृषवीथी में सम, गोवीथी में मध्यम, जरद्गववीथी में न्यून, मृगवीथी में अधम, अजवीथी में कष्ट और दहनवीथी में कष्टतम फल होता है॥ ९॥

शुक्र के छै मण्डलों में प्रथम मण्डल का लक्षण और फल—

भरणीपूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं सुभिक्षकरमाद्यम्।
वङ्गाङ्गमाहिषबाह्लिककलिङ्गदेशेषु भयजननम्॥ १०॥
अत्रोदितमारोहेद् ग्रहोऽपरो यदि सितं ततो हन्यात्।
भद्राश्वशूरसेनकयौधेयककोटिवर्षनृपान्॥ ११॥

भरणी से चार नक्षत्र (भरणी, कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा) प्रथम मण्डल के होते हैं। यदि इस मण्डल में शुक्र का उदय या अस्त हो तो संसार में सुभिक्ष तथा अङ्ग, वङ्ग, महिष, वाह्लीक और कलिङ्ग देशों में भय होता है। यदि प्रथम मण्डल में उदित शुक्र के ऊपर कोई ग्रह हो तो भद्राश्व, शूरसेनक, यौधेयक और कोटिवर्ष देशों के राजाओं का नाश होता है॥ १०-११॥

द्वितीय मण्डल का लक्षण और फल—

भचतुष्टयमार्द्राद्यं द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै।
विप्राणामशुभकरं विशेषतः क्रूरचेष्टानाम्॥ १२॥

अन्येनात्राक्रान्ते म्लेच्छाटविकश्वजीविगोमन्तान् ।
गोनर्दनीचशूद्रान् वैदेहांश्चानयः स्पृशति ॥ १३ ॥

आर्द्रा से चार नक्षत्र (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा) तक द्वितीय मण्डल होता है। यदि इस मण्डल में शुक्र का उदय या अस्त हो तो अधिक वृष्टि और धान्यों की विशेष उत्पत्ति होती है। पर ब्राह्मणों के लिये अशुभकारी और दुष्टों के लिये तो विशेष अशुभकारी है । यदि इसमें उदित शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो म्लेच्छ मनुष्य, वन में रहने वाले, कुत्तों से आजीविका करने वाले, गौ रखने वाले, गोनर्द (पतञ्जलि की जन्मभूमि चिदम्बरम् में निवास करने वाले), अधम कर्म करने वाले, शूद्र, विदेह के देश (मिथिला) में निवास करनेवाले इन सबों को अनीति स्पर्श करती है (ये सब उपद्रवयुक्त होते हैं)॥ १२-१३ ॥

तृतीय मण्डल का लक्षण और फल—

विचरन् मघादिपञ्चकमुदितः सस्यप्रणाशकृच्छुक्रः ।
क्षुत्तस्करभयजननो नीचोन्नतिसङ्करकरश्च ॥ १४ ॥
पित्राद्येऽवष्टब्धो हन्त्यन्ये नाविकान् शबरशूद्रान् ।
पुण्ड्रापरान्त्यशूलिकवनवासिद्रविडसामुद्रान् ॥ १५ ॥

मघा से पाँच नक्षत्र (मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा) तक तृतीय मण्डल होता है। इसमें उदित शुक्र धान्य को नाश करने वाला, दुर्भिक्ष और चोरों का भय करने वाला, अधम कर्म करने वालों की उन्नति करने वाला तथा वर्णसंकर की उत्पत्ति करने वाला होता है। यदि इस मण्डल में स्थित शुक्र अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो नाविक, शबर, शूद्र, पुण्ड्र, पश्चिम शूलिक देश और वन में रहने वाले, द्रविड तथा समुद्रतीर में रहने वालों का नाश करता है ॥ १४-१५ ॥

चतुर्थ मण्डल का लक्षण और फल—

स्वात्याद्यं भत्रितयं मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम् ।
ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षाभिवृद्धये मित्रभेदाय ॥ १६ ॥
अत्राक्रान्ते मृत्युः किरातभर्तुः पिनष्टि चेक्ष्वाकून् ।
प्रत्यन्तावन्तिपुलिन्दतङ्गणान् शूरसेनांश्च ॥ १७ ॥

स्वाती से तीन नक्षत्र (स्वाती, विशाखा और अनुराधा) तक चतुर्थ मण्डल होता है। यदि इसमें शुक्र का उदय या अस्त हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिये सुभिक्ष तथा उन्नति करने वाला होता है। पर मित्रों में परस्पर द्वेष उत्पन्न कराता है। यदि इस मण्डल में स्थित शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो किरातों के स्वामी की मृत्यु, इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न, प्रत्यन्त (म्लेच्छ देश), अवन्ती, पुलिन्द, तङ्गण और शूरसेन देश में निवास करने वालों का नाश करता है ॥ १६-१७ ॥

पञ्चम मण्डल का लक्षण और फल—

ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षं क्षुत्तस्कररोगदं प्रबाधयते।
काश्मीराश्मकमत्स्यान् सचारुदेवीनवन्तींश्च ॥ १८ ॥
अत्रारोहेद् द्रविडाभीराम्बष्ठत्रिगर्तसौराष्ट्रान्।
नाशयति सिन्धुसौवीरकांश्च काशीश्वरस्य वधः ॥ १९ ॥

ज्येष्ठा से पाँच नक्षत्र (ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा और श्रवण) तक पञ्चम मण्डल होता है। यदि इसमें शुक्र का उदय या अस्त हो तो दुर्भिक्ष, चोर और रोग का भय होता है तथा काश्मीर, अश्मक, मत्स्य, चारुदेवी नदी के तट और अवन्तीदेशवासियों को पीडित करता है। यदि इस मण्डल में स्थित शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो द्रविड, आभीर (गवार), अम्बष्ठ, त्रिगर्त, सौराष्ट्र, सिन्धु और सौवीरकदेशवासियों का तथा काशिराज का नाश करता है ॥ १८–१९ ॥

षष्ठ मण्डल का लक्षण और फल—

षष्ठं षण्नक्षत्रं शुभमेतन्मण्डलं धनिष्ठाद्यम्।
भूरिधनगोकुलाकुलमनल्पधान्यं क्वचित्सभयम् ॥ २० ॥
अत्रारोहेच्छूलिकगान्धारावन्तयः प्रपीड्यन्ते।
वैदेहवधः प्रत्यन्तयवनशकदासपरिवृद्धिः ॥ २१ ॥

धनिष्ठा से छै नक्षत्र (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती और अश्विनी) तक षष्ठ मण्डल है। इसमें यदि शुक्र का उदय या अस्त हो तो शुभ होता है, पृथ्वी बहुत धन, गौ और धान्यों से व्याप्त होती है, परन्तु कहीं-कहीं पर भय की मात्रा रहती है। यदि इस मण्डल में शुक्र किसी ग्रह से आक्रान्त हो तो शूलिक, गान्धार, अवन्ती इन देशों में स्थित मनुष्यों को पीडा होती है। विदेह देशस्थित जनों का मरण होता है तथा गुहा में निवास करने वाले, यवन, शक और दासों की वृद्धि होती है ॥ २०–२१ ॥

मण्डलों का विशेष फल—

अपरस्यां स्वात्याद्यं ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम्।
पित्र्याद्यं पूर्वस्यां शेषाणि यथोक्तफलदानि ॥ २२ ॥

पूर्वोक्त मण्डलों में स्वाती आदि (चतुर्थ) और ज्येष्ठा आदि (पञ्चम) मण्डल पश्चिम दिशा में शुभ करने वाले होते हैं। मघा आदि (तृतीय) मण्डल पूर्व दिशा में शुभद होता है। शेष तीन मण्डलों (प्रथम, द्वितीय और षष्ठ) का यथोक्त फल समझना चाहिये।

समाससंहिता में—

आद्यरोहितदास्रविरोचनोर्ध्वदण्डतीचमान्येताति षण्मण्डलानि।
भरणीरौद्रमघानिलशक्रधनिष्ठादिसंप्रवृत्तेषु। चारोदयः शुभो मण्डलेषु हिवैन्द्रपित्र्याद्ये ॥

दिवादृष्ट शुक्र के विशेष फल—

दृष्टोऽनस्तमितेऽर्के भयकृत् क्षुद्रोगकृत्समस्तमहः ।
अर्द्धदिवसे च सेन्दुर्नृपबलपुरभेदकृच्छुक्रः ॥ २३ ॥

यदि शुक्र सूर्यास्त से पहले दिखाई दे तो भय करता है, दिनभर दिखाई दे तो दुर्भिक्ष और रोग करता है तथा मध्याह्न काल में चन्द्र के साथ दिखाई दे तो राजा, सेना, नगर इनमें भेदभाव उत्पन्न करता है ।

यहाँ पर पराशर—

अह्नः सर्वं यदा शुक्रो दृश्यतेऽथ महाग्रहः । तदा त्वागन्तुभिर्ग्रामा बाध्यन्ते नगराणि च ॥२३॥

कृत्तिका नक्षत्र को भेदन करने से शुक्र का फल—

भिन्दन् गतोऽनलर्क्षं कूलातिक्रान्तवारिवाहाभिः ।
अव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा सरिद्भिर्भवति धात्री ॥ २४ ॥

यदि कृत्तिका नक्षत्र का भेदन करते हुए शुक्र गमन करे तो किनारा काटने वाली, जल धारण करने वाली नदियों के द्वारा ऊबड़-खाबड़ स्थल लुप्त होकर पृथ्वी समान हो जाती है अर्थात् नदी की बाढ़ से पृथ्वी भर जाती है ॥ २४ ॥

रोहिणीशकट-भेदन करने पर शुक्र का फल—

प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा ।
केशास्थिशकलशबला कापालमिव व्रतं धत्ते ॥ २५ ॥

यदि रोहिणीशकट का भेदन करते हुये शुक्र गमन करे तो पातकी (ब्रह्महत्या करने वाले की तरह) होकर पृथ्वी केश और अस्थिखण्डों से शबल (विचित्र वर्ण की) होकर कापालिक की तरह व्रत धारण करती है । जिस तरह ब्रह्महत्या करने वाले मनुष्य पापशान्ति के लिये मनुस्मृति आदि के अनुसार केश और अस्थिखण्डों को धारण करके कापालिक-व्रत धारण करते हैं उसी तरह केश और अस्थिखण्डों से व्याप्त होकर पृथ्वी कापालिक की तरह व्रत धारण करती है अर्थात् पृथ्वी पर अत्यधिक मरी पड़ती है ।

ब्रह्मसिद्धान्त में—

विक्षेपोऽशाद्द्वितयादधिको वृषभस्य सप्तदशभागे ।
यस्य ग्रहस्य याम्यो भिनत्ति शकटं स रोहिण्या ॥

तथा भानुभट्ट—

वृषस्यांशे सप्तदशे विक्षेपो यस्य दक्षिणः । अंशद्वयाधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः ॥२५॥

मृगशिर और आर्द्रा नक्षत्र का भेद करने पर शुक्र का फल—

सौम्योपगतो रसमस्यसस्यसङ्क्षयायोशनाः प्रभुदृष्टः ।
आर्द्रागतस्तु कोशलकलिङ्गहा सलिलनिकरकरः ॥ २६ ॥

यदि शुक्र मृगशिरा नक्षत्र में आवे तो रस (मधुर आदि) और धान्यों का नाश करता है। यदि आर्द्रा नक्षत्र में आवे तो कोसल तथा कलिङ्ग देश का नाश और अतिवृष्टि करता है॥ २६॥

पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र में स्थित शुक्र का फल—

अश्मकवैदर्भाणां पुनर्वसुस्थे सिते महाननयः।
पुष्ये पुष्टा वृष्टिर्विद्याधरगणविमर्दश्च॥ २७॥

यदि शुक्र पुनर्वसु नक्षत्र में स्थित हो तो अश्मक और विदर्भ देश में अनय (उपद्रव) होता है। यदि शुक्र पुष्य नक्षत्र में स्थित हो तो अधिक वृष्टि तथा विद्याधरों के युद्ध में विमर्द होता है॥ २७॥

आश्लेषा और मघा नक्षत्र में स्थित शुक्र का फल—

आश्लेषासु भुजङ्गमदारुणपीडावहश्चरन् शुक्रः।
भिन्दन् मघां महामात्रदोषकृद्भूरिवृष्टिकरः॥ २८॥

आश्लेषा नक्षत्र में गमन करता हुआ शुक्र लोगों को सर्पों से अत्यन्त पीडा करता है। तथा मघा नक्षत्र को भेदन करते हुये शुक्र हस्तिपति को पीडित और अतिवृष्टि करता है।

यहाँ पर गणितकारोक्त भेदलक्षण—

छादयति योगतारां मात्रार्द्धोनाधिकाल्पविक्षेपात्।
स्फुटविक्षेपो यस्याधिकोनको भवति समदिक्स्थः॥
विक्षेपेऽल्पे सौम्ये तृतीयतारां भिनत्ति पित्र्यस्य।
इन्दुर्भिनत्ति पुष्यं पौष्णं वारुणमविक्षिप्तः॥ २८॥

पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र को भेदन करते हुये शुक्र का फल—

भाग्ये शबरपुलिन्दप्रध्वंसकरोऽम्बुनिवहमोक्षाय।
आर्यम्णे कुरुजाङ्गलपाञ्चालघ्नः सलिलदायी॥ २९॥

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र को भेदन करता हुआ शुक्र शबर-पुलिन्द जनों का नाश और अतिवृष्टि करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का भेदन करता हुआ शुक्र कुरु देश में निवास करने वाले, जाङ्गल (स्वल्पोदक स्थान) में निवास करने वाले और पञ्चालियों का नाश तथा वृष्टि करता है॥ २९॥

हस्त और चित्रा में स्थित शुक्र का फल—

कौरवचित्रकराणां हस्ते पीडा जलस्य च निरोधः।
कूपकृदण्डजपीडा चित्रास्थे शोभना वृष्टिः॥ ३०॥

हस्त नक्षत्र में स्थित शुक्र कौरवों और चित्रकारों को पीडित करता तथा अवृष्टि करता है एवं चित्रा नक्षत्र में स्थित शुक्र कुआँ बनाने वालों और पक्षियों को पीडित करता तथा सुन्दर वृष्टि करता है॥ ३०॥

स्वाती और विशाखा नक्षत्र में स्थित शुक्र का फल—

स्वातौ प्रभूतवृष्टिर्दूतवणिग्नाविकान् स्पृशत्यनयः।
ऐन्द्राग्नेऽपि सुवृष्टिर्वणिजां च भयं विजानीयात् ॥ ३१ ॥

स्वाती नक्षत्र में स्थित शुक्र अतिवृष्टि तथा दूत, वाणिज्य कर्म करने वाले, नाव चलाने वाले इनमें उपद्रव फैलाता है। विशाखा नक्षत्र में स्थित शुक्र सुन्दर वृष्टि तथा वाणिज्य कर्म करने वालों को पीड़ित करता है ॥ ३१ ॥

अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र में स्थित शुक्र का फल—

मैत्रे क्षत्रविरोधो ज्येष्ठायां क्षत्रमुख्यसन्तापः।
मौलिकभिषजां मूले त्रिष्वपि चैतेष्वनावृष्टिः ॥ ३२ ॥

अनुराधा नक्षत्र में स्थित शुक्र क्षत्रियों में विरोध, ज्येष्ठा में क्षत्रियों में प्रधान का नाश और मूल में स्थित शुक्र प्रधान वैद्यों का नाश करता है तथा इन तीनों नक्षत्रों में जब तक शुक्र बैठा रहता है तब तक अनावृष्टि करता है ॥ ३२ ॥

पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण और धनिष्ठा में स्थित शुक्र का फल—

आप्ये सलिलजपीडा विश्वेशे व्याधयः प्रकुप्यन्ति।
श्रवणे श्रवणव्याधिः पाखण्डिभयं धनिष्ठासु ॥ ३३ ॥

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में स्थित शुक्र जल में उत्पन्न जीवों को पीड़ित, उत्तराषाढ़ा में रोगों की उत्पत्ति, श्रवण में कर्णपीड़ा और धनिष्ठा में स्थित शुक्र पाखण्डियों में भय उत्पन्न करता है ॥ ३३ ॥

शतभिषा और पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र में स्थित शुक्र का फल—

शतभिषजि शौण्डिकानामजैकभे द्यूतजीविनां पीडाम्।
कुरुपाञ्चालानामपि करोति चास्मिन् सितः सलिलम् ॥ ३४ ॥

शतभिषा नक्षत्र में स्थित शुक्र शौण्डिकों (मद्यविक्रेता = कलवारों) को पीड़ित करता है। पूर्वभाद्रपदा में स्थित शुक्र जुआड़ी लोग, कुरु तथा पञ्चाब देश में स्थित जनों को पीड़ित और वृष्टि करता है ॥ ३४ ॥

उत्तरभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्र में स्थित शुक्र का फल—

आहिर्बुध्न्ये फलमूलतापकृद्यायिनां च रेवत्याम्।
अश्विन्यां हयपानां याम्ये तु किरातयवनानाम् ॥ ३५ ॥

उत्तरभाद्रपदा में स्थित शुक्र फल-मूलों को, रेवती में पथिकों को, अश्विनी में अश्वपालकों को तथा भरणी में स्थित शुक्र किरात तथा यवनों को पीड़ित करता है।

यहाँ पर कश्यप—

भेदयेद् कृत्तिकां शुक्रो बहुतोयं विमुञ्चति। रोहिण्यां मरणं घोरं गृध्राकुलमयाकुलम् ॥
मृगे तु सर्वसस्यानां क्षयं कुर्याद्भृगोः सुतः। आर्द्रासु च कलिङ्गानां कोशलानां भयावहः ॥

पुनर्वसौ विदर्भाणां पीडदस्युगणास्तथा । पुष्ये पुष्टिं समायान्ति जनाः सस्यानि वृष्टयः ॥
आश्लेषासूरगा भेदात्पीडयेद्भृगुजैः प्रजाः । मघाभेदकरः शुक्रो महामात्रांश्च पीडयेत् ॥
भाग्ये शबरविध्वंसं बहुवृष्टिं प्रमुञ्चति । आर्यम्णे तु कुरुक्षेत्रं पाञ्चालांश्चोपतापयेत् ॥
हस्ते चित्रकराणां तु पीडा वृष्टिक्षयो भवेत् । सुवृष्टिं कूपकृत्पीडा चित्राभेदं यदा भजेत् ॥
स्वातिभेदे सुवृष्टिं च वणिङ्नाविकपीडितः । विशाखायां सुवृष्टिं च मैत्रे मित्रं विरुध्यति ॥
ऐन्द्रे पौरविरोधः स्यान्मूले तु भिषजां भयम् । आप्ये वैश्वे व्याधिभयं वैष्णवे कर्णवेदना ॥
धनिष्ठासु कुकर्मस्थान् वारुणे शौण्डिकक्षयम् । प्रोष्ठपादे पूर्वभक्तानहिर्बुध्न्ये फलक्षयः ॥
मार्थिनां सनुपालां च पौष्णे क्षैर्यमहद्भयम् । अश्विन्यां हयपं हात्कृदरण्यां कृषिजीविनाम् ॥३५॥

कृष्णचतुर्दशी, अमा और अष्टमी तिथि में शुक्र के उदयास्त का फल—

चतुर्दशीं पञ्चदशीं तथाष्टमीं तमिस्रपक्षस्य तिथिं भृगोः सुतः ।
यदा व्रजेद्दर्शनमस्तमेति वा तदा मही वारिमयीव लक्ष्यते ॥३६॥

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, अमावास्या और कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि में शुक्र का उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जल से परिपूर्ण होती है।

यहाँ पर कश्यप—

कृष्णपक्षे ह्यमावास्याचतुर्दश्यष्टमीषु च । उदयं भार्गवः कुर्याद्यदा वृष्टिं प्रमुञ्चति ॥

यहाँ पर पराशर—

कार्तिके तु यदा मासि कुरुतेऽस्तमयोदयौ । तदाक्षौं नवन्ति पूर्णां देवो भुवि न वर्षति ॥
वर्तमानो यदा शुक्रो कृत्तिकासु बृहस्पतिः । उदेति तु तदा देवस्तां समां वर्षते समाम् ॥
अस्तोदये तु शुक्रस्य यदि चन्द्रदिवाकरौ । अवृत्तिमार्गं कुर्वाते तदा वर्षति भार्गवः ॥
अवार्युके भे विचरन् यदि वर्षति भार्गवः । वायुकरंगनो व्यक्तं षोडशार्चिर्न वर्षति ॥३६॥

परस्पर सप्तम राशि में स्थित गुरु और शुक्र का फल—

गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः परस्परं सप्तमराशिगौ यदा ।
तदा प्रजा रुग्भयशोकपीडिता न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोज्झितम् ॥३७॥

यदि बृहस्पति और शुक्र परस्पर सप्तम राशि में स्थित हों तो रोग और अनेक प्रकार के भय से प्रजागण पीड़ित होते हैं, तथा अवृष्टि होती है।

यहाँ पर पराशर—

उदयास्तमयस्थौ तु यदा शुक्रबृहस्पती । पूर्वसन्ध्यागतौ स्यातां जनयेतां तदा भयम् ॥

ऋषिपुत्रेण च भृगुगुरू अपरपूर्वकाष्ठस्थावभिहितौ—

पृष्ठतस्तु सितो यत्र पुरस्ताच्च बृहस्पतिः । न च कश्चिद्ग्रहो मध्ये बुधो वाप्यत्र दृश्यते ॥
एकभर्तांसमानौ प्रेक्षमाणौ परस्परम् । ते दिशौ पीडिते विन्द्यात् त्रीन् पक्षानभियोजयेत् ॥

भद्रबाहु में—

प्रत्यूषे प्राक्स्थितः शुक्रः पृष्ठतश्च बृहस्पतिः । यदाऽन्योन्यं निरीक्षेत तदा चक्रं प्रवर्तते ॥
धर्मार्थकामा लुप्यन्ते प्रस्ताः वार्णसङ्कराः । नृपाणां च समुद्योगो यतः शुक्रस्ततो जयः ॥

अवृष्टिश्च भये रोगं दुर्भिक्षं च तदा भवेत्। आढकेन तु धान्यस्य ग्राहकः स्यात्तदा प्रिय.॥
यदा तु पृष्ठतः शुक्रः पुरतश्च बृहस्पतिः। यदा वालोकयेतां तौ तावदेव फलं भवेत्॥

तथा गर्गः—

अन्योन्यमस्तसंस्थौ तु यदि शुक्रबृहस्पती। पूर्वसन्ध्यागतौ घोरं जनयेतां महद्भयम्॥३७॥

शुक्र के आगे स्थित ग्रहों का फल—

यदा स्थिता जीवबुधारसूर्यजाः सितस्य सर्वेऽग्रपथानुवर्तिनः।
नृनागविद्याधरसङ्गरास्तदा भवन्ति वाताश्च समुच्छ्रितान्तकाः॥३८॥
न मित्रभावे सुहृदे व्यवस्थिताः क्रियासु सम्यग्न रताः द्विजातयः।
न चाल्पमप्यम्बु ददाति वासवो भिनत्ति वज्रेण शिरांसि भूभृताम्॥३९॥

यदि शुक्र के आगे बृहस्पति, बुध, मंगल और शनि हों तो मनुष्य, नाग और विद्याधरों में युद्ध, भयङ्कर वायु से वृक्षादिकों का नाश, मित्रों में परस्पर मित्रता का अभाव, ब्राह्मणों में कर्म का अभाव, वर्षा का बिलकुल अभाव और वज्रपातों से पर्वतों का नाश होता है॥ ३८–३९॥

शुक्र के आगे स्थित केवल शनैश्चर का फल—

शनैश्चरे म्लेच्छबिडालकुञ्जराः खरा महिष्योऽसितधान्यशूकराः।
पुलिन्दशूद्राश्च सदक्षिणापथाः क्षयं व्रजन्त्यक्षिमरुद्भवोद्भवैः॥४०॥

यदि शुक्र के आगे शनैश्चर गमन करे तो म्लेच्छ जाति, बिल्ली, हाथी, गदहा, भैंस, काले धान्य, सूकर, निषाद, शूद्र और दक्षिण दिशा में स्थित जन नेत्र रोग तथा वायु के विकार से नष्ट होते हैं॥ ४०॥

शुक्र के आगे स्थित मंगल का फल—

निहन्ति शुक्रः क्षितिजेऽग्रतः प्रजां हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करैः।
चराचरं व्यक्तमथोत्तरापथं दिशोऽग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत्॥४१॥

यदि शुक्र के आगे मङ्गल गमन करे तो अग्नि, शस्त्र, क्षुधा, अवृष्टि और चोरों से प्रजाओं का, उत्तर दिशा में स्थित जङ्गम तथा स्थावर प्राणियों का, अग्नि तथा विद्युत् और धूलि से दिशाओं का नाश होता है॥ ४१॥

शुक्र के आगे स्थित गुरु का फल—

बृहस्पतौ हन्ति पुरःस्थिते सितः सितं समस्तं द्विजगोसुरालयान्।
दिशं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा गले गदा भूरि भवेच्च शारदम्॥४२॥

यदि शुक्र के आगे गुरु गमन करे तो सफेद वस्तु, ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं के गृह और पूर्व दिशा का नाश करता है, मेघ से ओले की वृष्टि होती है, लोगों के गले में रोग होता है तथा शारदीय धान्य अधिक होता है॥ ४२॥

शुक्र के आगे स्थित बुध का फल—

सौम्योऽस्तोदययोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थितस्तोयकृ-
द्रोगान् पित्तजकामलांश्च कुरुते पुष्णाति च ग्रैष्मिकान्।
हन्यात्प्रव्रजिताग्निहोत्रिकभिषग्रङ्गोपजीव्यान् हयान्
वैश्यान् गाः सह वाहनैर्नरपतीन् पीतानि पश्चादिशम्॥ ४३॥

यदि शुक्र के आगे बुध गमन करे तो वृष्टि, लोगों में पित्तज और कामला रोगों की उत्पत्ति तथा ग्रीष्म में उत्पन्न होने वाले धान्यों को पुष्ट करता है एवं वनवासी, अग्निहोत्री, वैद्य, योद्धा, घोड़ा, वैश्य, गौ, वाहन, राजा, पीली सब वस्तुएँ और पश्चिम दिशा का नाश करता है॥ ४३॥

शुक्र के वर्ण का लक्षण फल—

शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च रक्ते कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये।
हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपः पतति न सलिलं खाद्भस्मरूक्षासिताभे॥

यदि शुक्र का वर्ण अग्नि के समान हो तो अग्नि का भय, रक्त हो तो शस्त्रकोप, कसौटी पर घिसे हुये सुवर्ण की रेखा के समान हो तो रोग, तोते के समान या पीला हो तो श्वास और कास रोग की उत्पत्ति तथा भस्म की तरह रूक्ष या काला वर्ण हो तो अवृष्टि होती है॥ ४४॥

और भी शुक्र के वर्ण का लक्षण और फल—

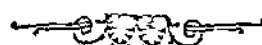
दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत्स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः।
सुगतिरविकृतो जयान्वितः कृतयुगरूपकरः सिताह्वयः॥ ४५॥

यदि दही, कुमुदपुष्प या चन्द्र की तरह कान्ति वाला, स्पष्ट विस्तृत किरण वाला, विपुल मूर्त्ति वाला, सुन्दर गति वाला (अवक्री), विकाररहित और विजयी शुक्र हो तो प्रजाओं को कृतयुग की तरह (व्याधि, दारिद्र्य और शोक से रहित) करता है।

कहा भी है—

कुन्दाकारनिभः स्निग्धो मार्गस्थो रजतप्रभः।
भार्गवो विस्तृतार्चिश्च प्रजाभावकरः स्मृतः॥
प्रावृषि शुक्रः प्राच्यां दिशि स्थितोऽर्थं जलं सृजति नित्यम्।
धान्यं च भूरि कुरुते तृणं च बहु जायते तत्र॥
अपरां निषेव्यमाणः काणं शुक्रो जलं सृजति भूरि।
धान्यं कुरुते चाल्पं तृणं न बहु जायते तत्र॥ ४५॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां शुक्रचाराध्यायो नवमः॥ ९॥



अथ शनैश्चरचाराध्यायः

नक्षत्रों में स्थित शनैश्चर का संक्षिप्त फल—

श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणीभाग्योपगः सुतोऽर्कस्य ।
प्रचुरसलिलोपगूढां करोति धात्रीं यदि स्निग्धः ॥ १ ॥
अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमकृन्न चातिजलम् ।
क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले प्रत्येकमपि वक्ष्ये ॥ २ ॥

यदि शनैश्चर श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी या पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित होकर निर्मल मूर्ति वाला हो तो पृथ्वी वृष्टि के जल से परिपूर्ण होती है। यदि आश्लेषा, शतभिषा या ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित हो तो सुन्दर क्षेम और थोड़ी वृष्टि होती है। यदि मूल में स्थित हो तो दुर्भिक्ष, युद्ध और वर्षा का अभाव होता है। इस तरह संक्षेप से फल कह कर प्रत्येक नक्षत्र के फल कहते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

याम्यवायव्यसावित्ररौद्रश्रवणसंस्थितः । भवेत् स्निग्धवपुः सौरो भाद्रे चैवातिवर्षदः ॥
सार्पवारुणमाहेन्द्रनक्षत्रेषु च संस्थितः । स्निग्धः सौरः क्षेमकरो नातिवृष्टिं प्रमुञ्चति ॥
क्षुच्छस्त्रावृष्टिदो मूले सूर्यपुत्रः समास्थितः ॥ १-२ ॥

अश्विनी और भरणी नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

तुरगतुरगोपचारककविवैद्यामात्यहार्कजोऽश्विगतः ।
याम्ये नर्तकवादकगेयज्ञक्षुद्रनैकृतिकान् ॥ ३ ॥

यदि शनैश्चर अश्विनी नक्षत्र में स्थित हो तो घोड़ा, घोड़े का उपचारक, कवि, वैद्य और मन्त्रियों का नाश करता है। यदि भरणी नक्षत्र में स्थित हो तो नाचने, बजाने, गानेवाले, अन्याय पथ पर चलनेवाले तथा निषाद इन सबों का नाश करता है ॥ ३ ॥

कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

बहुलास्थे पीड्यन्ते सौरेऽग्न्युपजीविनश्चमूपाश्च ।
रोहिण्यां कोशलमद्रकाशिपाञ्चालशाकटिकाः ॥ ४ ॥

यदि कृत्तिका नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो अग्नि से आजीविका चलानेवालों और सेनापति का नाश करता है। यदि रोहिणी नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो कोशल, मद्र, काशी तथा पाञ्चाल देश में रहनेवाले मनुष्यों और गाड़ी से आजीविका चलानेवालों का नाश करता है ॥ ४ ॥

मृगशिर और आर्द्रा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

मृगशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च ।
रौद्रस्थे पारतरमठास्तैलिकरजकचौराश्च ॥ ५ ॥

यदि मृगशिर नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो वत्स देश में रहने वाले मनुष्य, याजक, यजमान, प्रधान मनुष्य और मध्यदेश को पीडित करता है। यदि शनैश्चर आर्द्रा में स्थित हो तो पारतर देश में रहने वाले, मद्र देश में रहने वाले, तेली, रजक (धोबी, रंगरेज) और चोरों को पीडित करता है ॥ ५ ॥

पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

आदित्ये पाश्चनदप्रत्यन्तसुराष्ट्रसिन्धुसौवीराः।
पुष्ये घाण्टिकघौषिकयवनवणिक्कितवकुसुमानि ॥ ६ ॥

यदि पुनर्वसु नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो पञ्जाब, गुहा, सौराष्ट्र, सिन्धु के समीप तथा सौवीर देश में रहने वाले इन सबों को पीडित करता है। यदि शनैश्चर पुष्य नक्षत्र में स्थित हो तो घंटा बजाने वाले, घोषिक (ढींढोरा पीटने वाले अथवा घोष-गुहा-में निवास करने वाले), यवन, वणिक्, किरात, धूर्त और पुष्पों को पीडित करता है ॥ ६ ॥

आश्लेषा और मघा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

सार्पे जलरुहसर्पाः पित्र्ये वाह्लीकचीनगान्धाराः।
शूलिकपारतवैश्याः कोष्ठागाराणि वणिजश्च ॥ ७ ॥

यदि आश्लेषा नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो जल में उत्पन्न प्राणियों और सर्पों को पीडित करता है। यदि मघा नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो वाह्लीक, चीन, गान्धार, शूलिक और पारत देश में रहने वाले मनुष्य, वैश्य, कोष्ठागार, वणिक्, किरात इनको पीडित करता है।

यहाँ पर गर्ग—

भुजङ्गकच्छपग्राहनागमत्स्यसरीसृपान्। हन्यादर्कसुतस्तिष्ठन्नक्षत्रे सर्पदैवते ॥ ७ ॥

पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनि का फल—

भाग्ये रसविक्रयिणः पण्यस्त्रीकन्यकामहाराष्ट्राः।
आर्यम्णे नृपगुडलवणभिक्षुकाम्बूनि तक्षशिला ॥ ८ ॥

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनैश्चर रस (मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय) बेचने वाले, वेश्या, कुमारी, महाराष्ट्र देश में निवास करने वाले मनुष्य इन सबों को पीडित करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा, गुड़, नमक, भिक्षुक, जल और तक्षशिला नगरी को पीडित करता है ॥ ८ ॥

हस्त नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

हस्ते नापितचाक्रिकचौरभिषक्सूचिका द्विपग्राहाः।
बन्धक्यः कौशलका मालाकाराश्च पीड्यन्ते ॥ ९ ॥

हस्त नक्षत्र में स्थित शनैश्चर, हजाम, चक्रिक (कुम्भार, तेली आदि), चोर, वैद्य, शिल्पी, हाथी पकड़ने वाले, वेश्या, कोशल देश में निवास करने वाले, माली इन सबों को पीडित करता है ॥ ९ ॥

चित्रा और स्वाती नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

चित्रास्थे प्रमदाजनलेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डानि ।
स्वातौ मागधचरदूतसूतपोतप्लवनटाद्याः ॥ १० ॥

यदि शनैश्चर चित्रा नक्षत्र में स्थित हो तो स्त्रीगण, लेखक, चित्रकार, भाण्ड (अनेक प्रकार के बैरों के धन = भाण्ड वणिङ्मूलधने भूषाश्वभूषयोरिति मेदिनी) इन सबों को पीडित करता है। यदि स्वाती नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो मागध (कीर्ति गाने वाले या मगध देश में रहनेवाले), गुप्तचर, दूत, सारथी, नाव पर चलने वाले, नट आदि इन सबों को पीडित करता है ॥ १० ॥

विशाखा में स्थित शनैश्चर का फल—

ऐन्द्राग्नाख्ये त्रैगर्तचीनकौलूतकुङ्कुमं लाक्षा ।
सस्यान्यथ माञ्जिष्ठं कौसुम्भं च क्षयं याति ॥ ११ ॥

यदि विशाखा नक्षत्र में शनि बैठा हो तो त्रिगर्त, चीन और कुलूत देश में रहने वाले मनुष्य, कुंकुम, लाख, धान्य, मंजीठ और कुसुम्भ के पुष्पों को नाश करता है ॥ ११ ॥

अनुराधा में स्थित शनैश्चर का फल—

मैत्रे कुलूततङ्गणखसकाश्मीराः समन्त्रिचक्रचराः ।
उपतापं यान्ति च घाण्टिका विभेदश्च मित्राणाम् ॥ १२ ॥

यदि शनैश्चर अनुराधा नक्षत्र में स्थित हो तो कुलूत, तङ्गण, खस (नेपाल), काश्मीर इन देशों में स्थित मनुष्य, मन्त्री और चक्रचर (कुम्भार तेली-आदि), घण्टा बजाने वाले और शिल्पियों को पीडित करता है तथा मित्रों में परस्पर भेदभाव उत्पन्न कराता है १२ ॥

ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

ज्येष्ठासु नृपपुरोहितनृपसत्कृतशूरगणकुलश्रेण्यः ।
मूले तु काशिकोशलपाञ्चालफलौषधीयोधाः ॥ १३ ॥

ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा, पुरोहित, राजाओं से पूजित, शूर, गण (सन्यासियों के मठ), प्रधान कुल और जनसङ्घियों को पीडित करता है। मूल में स्थित शनैश्चर काशी, कोशल, पञ्जाब इन देशों में रहने वाले मनुष्य, फल, औषध और युद्ध करने वालों को पीडित करता है ॥ १३ ॥

पूर्वाषाढा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

आप्येऽङ्गवङ्गकोशलगिरिव्रजा मगधपुण्ड्रमिथिलाश्च ।
उपतापं यान्ति जना वसन्ति ये ताम्रलिप्त्यां च ॥ १४ ॥

पूर्वाषाढा में स्थित शनैश्चर अङ्ग, वङ्ग, कोशल, गिरिव्रज, मगध, पुण्ड्र, मिथिला और ताम्रलिप्ती देश में निवास करने वाले मनुष्यों को पीडित करता है ॥ १४ ॥

उत्तराषाढा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

विश्वेश्वरेऽर्कपुत्रश्चरन् दशार्णान्निहन्ति यवनांश्च।
उज्जयिनीं शवरान् पारियात्रिकान् कुन्तिभोजांश्च॥ १५॥

उत्तराषाढा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर दशार्ण देश में रहने वाले मनुष्य, यवन, उज्जयिनी देश, शवर जाति, पारियात्र (पर्वत पर रहने वाले) और कुन्तिभोज देश में स्थित मनुष्यों को पीडित करता है॥ १५॥

श्रवण और धनिष्ठा में स्थित शनैश्चर का फल—

श्रवणे राजाधिकृतान् विप्राग्र्यभिषक्पुरोहितकलिङ्गान्।
वसुभे मगधेशजयो वृद्धिश्च धनेष्वधिकृतानाम्॥ १६॥

श्रवण नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा के अधिकारी, प्रधान ब्राह्मण, वैद्य और पुरोहितों को पीडित करता है। धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर हो तो मगधेश्वर की विजय और धनाधिकारी की वृद्धि होती है॥ १६॥

शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

साजे शतभिषजि भिषक्कविशौण्डिकपण्यनीतिवृत्तीनाम्।
आहिर्बुध्न्ये नद्यो यानकराः स्त्रीहिरण्यं च॥ १७॥

यदि शनि शतभिषा या पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र में स्थित हो तो वैद्य, कवि, शौण्डिक (मद्य बेचनेवाले), खरीद-बिक्री करने वाले और नीतिशास्त्र जाननेवाले पीडित होते हैं। यदि उत्तराभाद्रपदा में शनैश्चर बैठा हो तो नदीतीर में निवास करने वाले, रथाधिकारी, शिल्पी, स्त्री और सुवर्ण का नाश करता है॥ १७॥

रेवती नक्षत्र में स्थित शनैश्चर का फल—

रेवत्यां राजभृताः क्रौञ्चद्वीपाश्रिताः शरत्सस्यम्।
शवराश्च निपीड्यन्ते यवनाश्च शनैश्चरे चरति॥ १८॥

यदि रेवती नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो राजा के आश्रय में रहनेवाले, क्रौञ्च द्वीप में रहने वाले, शारदीय धान्य, शबर जाति और यवन पीडित होते हैं॥ १८॥

विशाखा में गुरु, कृत्तिका में शनि और एकर्क्षगत दोनों ग्रहों का फल—

यदा विशाखासु महेन्द्रमन्त्री सुतश्च भानोर्दहनर्क्षयातः।
तदा प्रजानामनयोऽतिघोरः पुरप्रभेदो गतयोर्भमेकम्॥ १९॥

जब विशाखा नक्षत्र में गुरु और कृत्तिका नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो उस समय प्रजाओं में भयंकर अनीति उत्पन्न होती है। तथा जब एक नक्षत्र में दोनों बैठे हों तो उस समय नगरों में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है।

यहाँ पर पराशर—

कृत्तिकासु शनैश्चारी विशाखासु बृहस्पतिः। तिष्ठेद्यदा तदा घोरः प्रजानामनयो भवेत्॥

एकं नक्षत्रमासाद्य दृश्यते युगपद्यदि। अन्योन्यभेदं जानीयात्तदा पुरनिवासिनाम् ॥

तथा देवल—

मीने धनुषि कन्यायां मिथुने सगुरुः शनिः। तिष्ठेद्यदा तदा घोरं प्रजानामनयो भवेत् ॥

शनैश्चर के वर्ण का लक्षण और फल—

अण्डजहा रविजो यदि चित्रः क्षुद्भयकृद्यदि पीतमयूखः।
शस्त्रभयाय च रक्तसवर्णो भस्मनिभो बहुवैरकरश्च ॥ २० ॥

यदि शनैश्चर का वर्ण अनेक वर्णों का हो तो पक्षियों का नाश, पीला हो तो दुर्भिक्ष, रक्त वर्ण का हो तो युद्ध और भस्म के सदृश वर्ण का हो तो प्रजाओं में द्वेष होता है।

पराशर—

नीलपीतं क्षुध, रक्तभस्मचित्रवर्णश्शस्त्रवैरकरोऽण्डजाभिहन्ता। यद्वर्णस्तद्वर्णविनाशी भवति ॥ २० ॥

फिर वर्ण का लक्षण और उसका फल—

वैदूर्यकान्तिविमलः शुभकृत्प्रजानां बाणातसीकुसुमवर्णनिभश्च शस्तः।
यं चापि वर्णमुपगच्छति तत्सवर्णान् सूर्यात्मजः क्षपयतीति मुनिप्रवादः ॥ २१ ॥

यदि शनैश्चर का वर्ण वैदूर्यमणि के समान निर्मल हो तो प्रजाओं को शुभ करने वाला होता है। बाण या अतसी पुष्प के समान काला हो तो भी शुभ है। तथा शनैश्चर जिस तरह के वर्ण को धारण करे उसके समान वर्ण वाले मनुष्यों का नाश करता है। जैसे श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मण का, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रिय का, पीत वर्ण का हो तो वैश्य का तथा कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्र का नाश करता है। इस प्रकार प्राचीन मुनियों का वचन है।

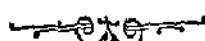
यहाँ पर गर्ग—

भवत्यर्कात्मजे रूक्षे श्यावपीतारुणप्रभे। तदात्मकानां भावानां क्षुच्छस्त्राग्निकृतं भयम् ॥

तथा पराशर—

पाण्डुः स्निग्धोऽमलः श्यामो विस्तृतार्चिः शनैश्चरः।
मार्गस्थश्च प्रसन्नश्च नक्षत्रादित दृश्यते ॥ २१ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां शनैश्चरचाराध्यायो दशमः ॥ १० ॥



गार्गीयं शिखिचारं पाराशरमसितदेवलकृतं च ।
अन्यांश्च बहून् दृष्ट्वा क्रियतेऽयमनाकुलश्चारः ॥ १ ॥

गर्ग, पराशर, असित, देवल और अन्य आचार्यों के भी किये हुये केतुचार को देख कर यह अनाकुल (निःसन्देहात्मक) केतुचार को कहते हैं ॥ १ ॥

केतु के उदय और अस्त का लक्षण—

दर्शनमस्तमयो वा न गणितविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम् ।
दिव्यान्तरिक्षभौमास्त्रिविधाः स्युः केतवो यस्मात् ॥ २ ॥

गणित के द्वारा केतु का अस्त या उदय नहीं जान सकते क्योंकि दिव्य (आकाश में उत्पन्न), आन्तरिक्ष (ग्रह और नक्षत्र स्थान से भिन्न स्थान में उत्पन्न), भौम (पृथ्वी पर उत्पन्न) ये तीन प्रकार के केतु होते हैं। इसलिए उत्पात रूप होने के कारण गणित से इसका उदयास्त नहीं जाना जा सकता है ॥ २ ॥

दिव्य से भिन्न केतु का लक्षण—

अहुताशेऽनलरूपं यस्मिंस्तत्केतुरूपमेवोक्तम् ।
खद्योतपिशाचालयमणिरत्नादीन् परित्यज्य ॥ ३ ॥

खद्योत, पिशाचालय (यक्ष का स्थान), मणि (चन्द्रकान्त इत्यादि), रत्न (मरकत इत्यादि), आदि (काच आदि) इनको छोड़ कर अग्नि से भिन्न जिस किसी स्थान में अग्नि के समान रूप देखने मे आवे वहाँ केतु का रूप समझना चाहिये ॥ ३ ॥

दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम केतु का लक्षण—

ध्वजशस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षास्ते ।
दिव्या नक्षत्रस्था भौमाः स्युरतोऽन्यथा शिखिनः ॥ ४ ॥

ध्वज, शस्त्र, गृह, वृक्ष, घोडा, हाथी आदि में जिस केतु का दर्शन हो वह आन्तरिक्ष नक्षत्रों में दिव्य और इनसे भिन्न स्थानों में भौम केतु होता है ॥ ४ ॥

मतान्तर से केतुओं की संख्या—

शतमेकाधिकमेके सहस्रमपरे वदन्ति केतूनाम् ।
बहुरूपमेकमेव प्राह मुनिर्नारदः केतुम् ॥ ५ ॥

कोई एक सौ एक, दूसरे एक सहस्र और नारद मुनि अनेक रूप वाला केवल एक ही केतु कहते हैं ।

यहाँ पर गर्ग—

अतीतोदयचाराणामशुभानां च दर्शने । आगन्तूनां सहस्रं स्याद् ग्रहाणां तद्विबोध मे ॥

यहाँ पर नारद—

दिव्यान्तरिक्षगो भौम एकः केतुः प्रकीर्तितः । शुभाशुभफलं लोके ददात्यस्तमयोदयैः ॥५॥

६, १० बृ० सं०

मतान्तर कहकर अपना सिद्धान्त—

यद्येको यदि बहवः किमनेन फलं तु सर्वथा वाच्यम्।
उदयास्तमयैः स्थानैः स्पर्शैराधूमनैर्वर्णैः ॥ ६ ॥

एक या अनेक केतु हों इसका मुझे कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु उदय, अस्त, उसके स्थान, स्पर्श (ग्रह या नक्षत्र के साथ स्पर्श) और आधूमन (श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण वर्णों) के द्वारा केवल मुझे फल कहना है ॥ ६ ॥

केतु के दर्शन से फल का निश्चय—

यावन्त्यहानि दृश्यो मासास्तावन्त एव फलपाकः।
मासैरब्दांश्च वदेत्प्रथमात्पक्षत्रयात्परतः ॥ ७ ॥

जितने दिन तक केतु देखने में आवे अस्त के ४५ दिन बाद से उतने मास तक और जितने मास तक देखने में आवे अस्त के ४५ दिन बाद से उतने वर्ष तक फल देता है।

यहाँ पर गर्ग—

यावन्त्यहानि दृश्य स्यात्तावन्मासान् फलं भवेत्।
मासांस्तु यावद्दृश्येत तावतोऽब्दांश्च वैकृतम् ॥
त्रिपक्षात्परतः कर्म प्रवर्ततेऽस्य शुभाशुभम्।
सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद्बुधः ॥

तथा वृद्धगर्ग—

यावतो दिवसांस्तिष्ठेत्तावन्मासान्विनिर्दिशेत्। त्रिपक्षात्परतश्चापि कर्म केतोः प्रवर्तस्मात्कालात्परं ब्रूयात्फलमस्य शुभाशुभम्। सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुधः ॥

समाससंहिता में—

केचित्केतुसहस्रं शतमेकसमन्वितं वदन्त्येके।
नारदमत एकोऽयं त्रिस्थानसमुद्भवो विविधरूपः ॥
दिव्यग्रहर्क्षजातास्तीव्रफला मन्दफलकराः भौमाः।
प्राजिध्वजादितुङ्गेषु चान्तरिक्षा न चान्यशुभाः ॥
उदयास्तमयाधूमनसंयोगाकारमार्गदिग्यातैः ।
फलनिर्देशो दिवसैर्मासा मासैस्तु वर्षाणि ॥ ७ ॥

शुभ केतु का लक्षण—

ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वृजुरचिरसंस्थितः शुक्लः।
उदितोऽथवाऽभिवृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः केतुः ॥ ८ ॥

यदि छोटा, पतला, निर्मल, स्निग्ध, सरल, थोड़े ही दिनों में अदृश्य, श्वेत और उदय काल में वृष्टि हो तो वह केतु सुभिक्ष और सुख देने वाला होता है ॥ ८ ॥

अशुभ केतु का लक्षण और उसका फल—

उक्तविपरीतरूपो न शुभकरो धूमकेतुरुत्पन्नः ।
इन्द्रायुधानुकारी विशेषतो द्वित्रिचूलो वा ॥ ९ ॥

उक्त लक्षण से भिन्न लक्षण वाले केतु शुभ करने वाले नहीं होते । तथा इन्द्रधनु, दो या तीन शिखा वाले केतु विशेष कर अशुभ फल देते हैं ।

समाससंहिता में—

अचिरस्थितोऽभिवृष्टस्त्वृजु स्मित स्निग्धमूर्तिरुदगुदितः ।
ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः केतुर्लोकस्य भावाय ॥
न शुभो विपरीतोऽतो विशेषतः शक्रचापसङ्काशः ।
द्वित्रिचतुश्चूलो वा दक्षिणसंस्थश्च मृत्युकरः ॥ ९ ॥

पच्चीस प्रकार के सूर्यपुत्र केतु का लक्षण और फल—

हारमणिहेमरूपाः किरणाख्याः पञ्चविंशतिः सशिखाः ।
प्रागपरदिशोर्दृश्या नृपतिविरोधावहा रविजाः ॥ १० ॥

मुक्ताहार, मणि (चन्द्रकान्त आदि) और सुवर्ण के समान वर्ण वाले शिखा सहित केतु पच्चीस प्रकार के हैं । ये सूर्यपुत्र केतु पूर्व और पश्चिम तरफ दृश्य होते हैं । इनमें से एक का भी दर्शन हो तो राजाओं में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है ।

यहाँ पर गर्ग—

शुद्धस्फटिकसङ्काशमृणालरजतप्रभाः । मुक्ताहारसुवर्णाभाः सशिखाः पञ्चविंशतिः ॥
किरणाख्या रवेः पुत्रा दृश्यन्ते प्राग्दिशि स्थिताः । तथा चापरभागस्था नृपतेर्भयदाश्च ते ॥

पच्चीस प्रकार के अग्निपुत्र केतु का लक्षण और फल—

शुकदहनबन्धुजीवकलाक्षाक्षतजोपमा हुताशसुताः ।
आग्नेय्यां दृश्यन्ते तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः ॥ ११ ॥

तोता, अग्नि, बन्धुजीवक (काला पुष्प), लाख या रक्त के समान वर्ण वाले अग्नि के पुत्र पच्चीस प्रकार के केतु हैं, ये अग्निकोण में दृश्य होते हैं । इनका दर्शन होने पर अग्नि का भय होता है ।

यहाँ पर गर्ग—

नानावर्णाग्निसङ्काशा दीप्तिमन्तो विचूलिनः । सृजन्त्यग्निमिवाकाशात्सर्वे ज्योतिषमाशनाः ॥
तेऽग्निपुत्रा महाज्ञेया लोकेऽग्निभयवेदिनः । आग्नेय्यां दिशि दृश्यन्ते पञ्चविंशत्प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥

पच्चीस प्रकार के यमपुत्र केतु का लक्षण और फल—

वक्रशिखा मृत्युसुता रूक्षाः कृष्णाश्च तेऽपि तावन्तः ।
दृश्यन्ते याम्यायां जनमरकावेदिनस्ते च ॥ १२ ॥

कुटिल शिखा वाले, रूक्ष और काले यम के पुत्र पच्चीस प्रकार के केतु हैं । ये दक्षिण दिशा में उदित होते हैं । इनका दर्शन होने से पृथ्वी पर मरी पड़ती है ।

यहाँ पर गर्ग—

कृष्णा रूक्षा वक्रशिखा दृश्यन्ते याम्यदिक्स्थिताः ।
पञ्चविंशा मृत्युसुताः प्रजाक्षयकराः स्मृताः ॥ १२ ॥

बाईस प्रकार के भूमिपुत्र केतु का लक्षण और फल—

दर्पणवृत्ताकारा विशिखाः किरणान्विता धरातनयाः ।
क्षुद्भयदा द्वाविंशतिरैशान्यामम्बुतैलनिभाः ॥ १३ ॥

वृत्ताकार, दर्पण के समान, शिखा रहित, किरणों से युक्त, जल और तेल के समान, बाईस प्रकार के भूमिपुत्र केतु हैं। ये ईशान कोण में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने से दुर्भिक्ष होता है।

यहाँ पर गर्ग—

समस्तवृत्ता विशिखा रश्मिभिः परिवारिताः। अम्बुतैलप्रतीकाशा द्वाविंशद्भूसुताः स्मृता ॥
ऐशान्यां दिशि दृश्यन्ते दुर्भिक्षभयदास्तु ते ॥ १३ ॥

तीन प्रकार के चन्द्रपुत्र केतु का लक्षण और फल—

शशिकिरणरजतहिमकुमुदकुन्दकुसुमोपमाः सुताः शशिनः ।
उत्तरतो दृश्यन्ते त्रयः सुभिक्षावहाः शिखिनः ॥ १४ ॥

चन्द्र किरण, चाँदी, हिम, कुमुद या कुन्द पुष्प के समान वर्ण वाले तीन प्रकार के चन्द्रपुत्र केतु हैं। ये उत्तर दिशा में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने पर सुभिक्ष होता है।

यहाँ पर गर्ग—

चन्द्ररश्मिसवर्णाभा हिमकुन्देन्दुसप्रभा । त्रयस्ते शशिनः पुत्राः सौम्याशास्था. शुभावहा ॥

ब्रह्मदण्डसंज्ञक केतु का लक्षण और फल—

ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः ।
अनियतदिक्सम्प्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥ १५ ॥

ब्रह्मा का पुत्र, तीन शिखा वाला, तीन वर्णों से युक्त एक केतु है, यह सब दिशाओं में उदय होता है, तथा जब इसका दर्शन होता है उस समय सब प्रदेशों का नाश होता है।

यहाँ पर गर्ग—

एको ब्रह्मसुत भूरित्रिवर्णत्रिशिखान्वितः । सर्वास्वाशासु दृश्य. स्याद् ब्रह्मदण्ड. क्षयावहः ॥

एक सौ एक केतु कह कर ८९९ और कहते हैं—

शतमभिहितमेकसमेतमेतदेकेन विरहितान्यस्मात् ।
कथयिष्ये केतूनां शतानि नव लक्षणैः स्पष्टैः ॥ १६ ॥

इस तरह एक सौ एक केतुओं के लक्षण कहे गये हैं फिर आठ सौ निन्यानवे तरह के उनके स्पष्ट लक्षण कहते हैं ॥ १६ ॥

चौरासी प्रकार के शुक्रपुत्र केतु का लक्षण और फल—

सौम्यैशान्योरुदयं शुक्रसुता यान्ति चतुरशीत्याख्याः।
विपुलसिततारकास्ते स्निग्धाश्च भवन्ति तीव्रफलाः॥ १७॥

विस्तीर्ण, शुक्ल और निर्मल शरीरवाले चौरासी प्रकार शुक्रपुत्र केतु हैं। ये उत्तर और ईशान कोण में उदित होते हैं, तथा इनका दर्शन होने से तीव्र (अशुभ) फल होता है।

यहाँ पर गर्ग—

स्थूलैकतारकाः श्वेताः स्नेहवन्तश्च सप्रभाः। अर्चिष्मन्तः प्रसन्नाश्च तीव्रेण वपुषाऽन्विताः॥
एते विसर्पका नाम शुक्रपुत्राः पुरोदया। अशीतिश्चतुरश्चैव लोकक्षयकराः स्मृताः॥१७॥

साठ प्रकार के शनैश्वरपुत्र केतु का लक्षण और फल—

स्निग्धाः प्रभासमेता द्विशिखाः षष्टिः शनैश्चराङ्गरुहाः।
अतिकष्टफला दृश्याः सर्वत्रैते कनकसंज्ञाः॥ १८॥

निर्मल, कान्ति से युक्त, दो शिखा वाले शनैश्वर के पुत्र साठ प्रकार के केतु हैं। ये कनकसंज्ञक और सब दिशाओं में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने से बहुत अशुभ फल होते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

सुस्निग्धा रश्मिसंयुक्ता द्विशिखाः सहतारकाः। षष्टिस्ते कनका घोराः शनैश्चरसुता ग्रहाः॥१८॥

पैंसठ प्रकार के गुरुपुत्र केतु का लक्षण और फल—

विकचा नाम गुरुसुताः सितैकताराः शिखापरित्यक्ताः।
षष्टिः पञ्चभिरधिका स्निग्धा याम्याश्रिताः पापाः॥१९॥

श्वेत, एक तारे वाले, शिखा रहित, निर्मल शरीर वाले पैंसठ प्रकार के बृहस्पति-पुत्र केतु हैं, ये विकचसंज्ञक और दक्षिण दिशा में उदित होते हैं, इनका दर्शन होने से पाप (अशुभ) फल होता है।

यहाँ पर गर्ग—

शुक्लाः स्निग्धाः प्रसन्नाश्च महारूपाः प्रभान्विताः।
एकतारा वपुष्मन्तो विशिखा रश्मिभिर्वृताः॥
एते बृहस्पतेः पुत्राः प्रायशो दक्षिणाश्रयाः।
नामतो विकचा घोराः पञ्चषष्टिर्भयावहाः॥ १९॥

पचास बुधपुत्र केतुओं का लक्षण और फल—

नातिव्यक्ताः सूक्ष्मा दीर्घाः शुक्ला यथेष्टदिक्प्रभवाः।
बुधजास्तस्करसंज्ञाः पापफलास्त्वेकपञ्चाशत्॥ २०॥

अस्पष्ट, सूक्ष्म शरीर वाले, लम्बे, श्वेत, सब दिशाओं में उदित होने वाले, तस्कर संज्ञक बुध के पुत्र पचास केतु हैं। इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है।

यहाँ पर गर्ग—

अलब्धतिसमा रूक्षाः केचिदप्यचतारकाः। सपाण्डुवर्णाः श्वेताभाः सूक्ष्मा रश्मिभिरावृताः॥
एते बुधात्मजा ज्ञेयास्तस्कराख्या भयावहाः। एकाधिकास्ते पञ्चाशद्घोरपयचरा ग्रहाः॥

साठ प्रकार के मङ्गलपुत्र केतु का लक्षण और फल—

क्षतजानलानुरूपास्त्रिचूलतारा कुजात्मजाः षष्टिः।
नाम्ना च कौङ्कुमास्ते सौम्याशासंस्थिता पापाः॥ २१॥

रक्त या अग्नि के समान कान्ति वाले, तीन शिखा और तीन तारे वाले साठ प्रकार के मङ्गल-पुत्र केतु हैं, ये उत्तर दिशा में उदित होते हैं, इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है।

यहाँ पर गर्ग—

त्रिशिखाश्च त्रितारश्च रक्ता लोहितरश्मयः। प्रायशश्चोत्तरामाशां सेवन्ते नित्यमेव ते॥
लोहितात्मजा ज्ञेया ग्रहाः षष्टिः समासतः। नामतः कौङ्कुमा ज्ञेया राज्ञां सङ्ग्रामकारकाः॥

तैंतीस प्रकार के राहुपुत्र केतु का लक्षण और फल—

त्रिंशत्त्र्यधिका राहोस्ते तामसकीलका इति ख्याताः।
रविशशिगा दृश्यन्ते तेषां फलमर्कचारोक्तम्॥ २२॥

राहु के पुत्र तामस कीलक संज्ञक तैंतीस प्रकार के केतु हैं, ये सूर्य और चन्द्र मण्डल में दिखाई देते हैं। इनका फल सूर्यचाराध्याय में 'तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवः' इत्यादि पद्य में कहा गया है।

यहाँ पर गर्ग—

कृष्णाभाः कृष्णपर्यन्ताः सङ्कुलाः कृष्णरश्मयः। राहुपुत्रास्त्रयस्त्रिंशत्कीलकाश्चातिदारुणाः॥
रविमण्डलगाश्चैते दृश्यन्ते चन्द्रगास्तथा।

यहाँ पराशर—

अपर्वण्येव दृश्यन्ते द्वादिरकाककीलकाः। रवेरेवाङ्गिरा मध्ये द्वायोः काककीलकौ॥
अङ्गिराः तरुणो धन्वी दृश्यते पुरुषाकृतिः। काकः काकाकृतिर्वापि त्रिकोणो वापि लक्ष्यते॥
मण्डलं कीलके मध्ये मण्डलस्यासितो ग्रहः। महान्तरविशेषाय परस्य तस्य भूयते॥

एक सौ बीस अग्निपुत्र केतु का लक्षण और फल—

विंशत्याधिकमन्यच्छतमग्नेर्विश्वरूपसंज्ञानाम्।
तीव्रानलभयदानां ज्वालामालाकुलतनूनाम्॥ २३॥

अतिशयजाज्वल्यमान मूर्तिवाले अग्नि के पुत्र एक सौ बीस प्रकार के केतु हैं, ये विश्वरूपसंज्ञक और बड़ा भयङ्कर अग्निभय देने वाले हैं।

यहाँ पर गर्ग—

नानावर्णा हुताशाभा दीप्तिमन्तो विचूलिनः। सुवर्णपतिमिवाकारास्ते सर्वे ज्योतिर्विनाशनाः॥
तेऽग्निपुत्रा ग्रहा ज्ञेया लोकेऽग्निभयवेदिनः। विंशं ग्रहशतं घोरं विश्वरूपेति नामतः॥२३॥

सतहत्तर वायुपुत्र केतु का लक्षण और फल—

श्यामारुणा विताराश्चामररूपा विकीर्णदीधितयः।
अरुणाख्या वायोः सप्तसप्ततिः पापदाः परुषाः॥ २४॥

श्याम वर्ण लेकर लोहित वर्ण, ताराओं से रहित, चामर के समान, विस्तृत किरण और रूक्ष सतहत्तर वायुपुत्र केतु हैं, ये अरुण संज्ञक और पाप फल देने वाले हैं।

यहाँ पर गर्ग—

अतारारूपप्रतिमा धूमरक्तसवर्णिन.। वातरूपा इवाभान्ति शुष्कविस्तीर्णरश्मयः॥
सप्ततिः सप्त चैवान्ये वायुपुत्रान् प्रचक्षते। लोकविध्वंसना रूक्षा नामतस्त्वरुणा ग्रहाः॥

प्रजापति के पुत्र आठ और ब्रह्मा के पुत्र एक सौ चार प्रकार के केतु का लक्षण और फल—

तारापुञ्जनिकाशा गणका नाम प्रजापतेरष्टौ।
द्वे च शते चतुरधिके चतुरस्रा ब्रह्मसन्तानाः॥ २५॥

तारापुञ्ज के समान प्रजापति के पुत्र आठ प्रकार के केतु हैं, ये गणकसंज्ञक और अनिष्ट फल देने वाले हैं। तथा चतुर्मुखाकार ब्रह्मा के पुत्र चतुरस्रसंज्ञक एक सौ चार केतु हैं, ये भी अनिष्ट फल देने वाले हैं। ये दोनों केतु सब दिशाओं में उदित होते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

तारापुञ्जप्रतीकाशास्तारामण्डलसंस्थिता.। प्राजापत्या ग्रहास्त्वष्टौ गणका भयवेदिनः॥
व्यक्ता वा चतुरस्रा वा सशिखाः श्वेतरश्मयः। द्वे शते चतुरश्चैव ब्रह्मजा भयदाश्च ते॥

बत्तीस प्रकार के वरुणपुत्र केतु का लक्षण और फल—

कङ्का नाम वरुणजा द्वात्रिंशद्वंशगुल्मसंस्थानाः।
शशिवत्प्रभासमेतास्तीव्रफलाः केतवः प्रोक्ताः॥ २६॥

वंश और गुल्म (लता) के समान आकृति वाले, वरुण के पुत्र, कङ्कसंज्ञक और चन्द्र के समान कान्ति वाले बत्तीस प्रकार के केतु हैं। ये सब दिशाओं में उदित होते हैं, तथा इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है।

यहाँ पर गर्ग—

वंशगुल्मप्रतीकाशा महान्तः पूर्णरश्मयः। काकतुण्डनिभैश्चापि रश्मिभिः केचिदावृताः॥
मयूखानुद्धरन्तीव सुस्निग्धाः सौम्यदर्शनाः। एते कङ्कफलाः प्रोक्ता द्वात्रिंशद्वारुणा ग्रहाः॥

छियानवे प्रकार के कालपुत्र केतु का लक्षण और फल—

षण्णवतिः कालसुताः कबन्धसंज्ञाः कबन्धसंस्थानाः।
पुण्ड्रा भयप्रदाः स्युर्विरूपताराश्च ते शिखिनः॥ २७॥

काल के पुत्र, कबन्धसंज्ञक, छिन्न शिर वाले पुरुष के समान आकृति वाले और असपष्ट तारा वाले छियानवे प्रकार के केतु हैं। ये सब दिशाओं में उदित होते हैं तथा इनका दर्शन होने से पुण्ड्र देश में शुभ अन्य देश में अशुभ फल होता है।

यहाँ पर गर्ग—

तारापुञ्जविरूपाश्च कबन्धाकृतिमस्थिता.। पीताल्पमन्नवर्णाश्च भस्मकर्बुररश्मयः॥

कालपुत्राः कबन्धाश्च नवतिः पट् च ते स्मृताः । लोके मृत्युकरा घोरा: पुण्ड्राणामभयप्रदाः ॥

नव प्रकार के विदिशा पुत्र केतु का लक्षण और फल—

शुक्लविपुलैकतारा नव विदिशां केतवः समुत्पन्नाः ।
एवं केतुसहस्रं विशेषमेषामतो वक्ष्ये ॥ २८ ॥

श्वेत वर्ण, विस्तृत और एक तारा वाले, विदिशा के पुत्र नव प्रकार के केतु हैं। ये विदिशा में उत्पन्न होते हैं तथा इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है। इस तरह एक सहस्र केतु हैं, आगे इनकी विशेषता कहते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

शुक्लैकतारा विपुला विदिक्पुत्रा नव ग्रहा । विदिक्षु संस्थितास्ते च दृश्यन्ते भयदायकाः ॥

वसा-केतु का लक्षण और फल—

उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी वसाकेतुः ।
सद्यः करोति मरकं सुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते ॥ २९ ॥

उत्तर तरफ विस्तृत, स्थूल, निर्मल और पश्चिम दिशा में उदित होने वाला वसा नामक केतु है। इसके उदय काल से ही पृथ्वी पर मरी पड़ती है तथा उत्तम सुभिक्ष होता है ॥ २९ ॥

अस्थि-केतु और शस्त्र-केतु का लक्षण और फल—

तल्लक्षणोऽस्थिकेतुः स तु रूक्षः क्षुद्भयावहः प्रोक्तः ।
स्निग्धस्ताद्दक्प्राच्यां शस्त्राख्यो डमरमरकाय ॥ ३० ॥

पूर्व कथित वसा केतु की तरह उदगायतादि लक्षणों से युत और रूक्ष अस्थि-केतु है। यह दुर्भिक्ष करने वाला होता है। तथा वसा केतु के लक्षणों से युत, निर्मल और पूर्व दिशा में उदित होने वाला शस्त्र-केतु है, यह शस्त्रयुद्ध कराने वाला, और मनुष्यों को मारने वाला होता है ॥ ३० ॥

कपाल-केतु का लक्षण और फल—

दृश्योऽमावास्यायां कपालकेतुः सधूम्ररश्मिशिखः ।
प्राग्नभसोऽर्द्धविचारी क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः ॥ ३१ ॥

धूम्र वर्ण की किरणों वाला, अमावास्या में पूर्व तरफ उदित होने वाला और आकाश के अर्द्ध भाग में विचरण करने वाला कपाल-केतु है। इसका दर्शन होने से पृथ्वी पर दुर्भिक्ष, मरकी, अवृष्टि और रोग उत्पन्न होता है ॥ ३१ ॥

रौद्र-केतु का लक्षण और फल—

प्राग्वैश्वानरमार्गे शूलाग्रः श्यावरूक्षताम्रार्चिः ।
नभसस्त्रिभागगामी रौद्र इति कपालतुल्यफलः ॥ ३२ ॥

पूर्व और अग्निकोण में उदित होने वाला शूलाग्र (तीन शिखा वाला), कपिश, रूक्ष या ताम्र के समान किरण वाला और आकाश के तीन भाग में गमन करने वाला रौद्र-केतु है। यह कपाल केतु की तरह फल देता है।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

ज्येष्ठामूलमनूराधा या वीथी सम्प्रकीर्तिता। तां च वीथीं समारुह्य केतुश्चेत्क्रीडते भृशम्॥
दक्षिणाभिनतां कृत्वा शिखां घोरां भयङ्करीम्। शूलाग्रसदृशीं तीक्ष्णां श्यावताम्रारुणप्रभाम्॥
पूर्वेण चोदितश्चैव नक्षत्राण्युपधूपयेत्। घोरं प्रजासु सृजति फलं मासे त्रयोदशे॥
त्रिभागं नभसो गत्वा ततो गच्छत्यदर्शनम्। यावतो दिवसांस्तिष्ठेत्तावद्वर्षाणि तद्भयम्॥
शस्त्राग्निभयरोगैश्च दुर्भिक्षमरणैर्हता। पूर्णमाणा प्रजा सर्वा विद्रवन्ति दिशो दश॥३२॥

चल-केतु का लक्षण और फल—

अपरस्यां चलकेतुः शिखया याम्याग्रयाङ्गुलोच्छ्रितया।
गच्छेद्यथायथोदक् तथा तथा दैर्घ्यमायाति॥ ३३॥
सप्तमुनीन् संस्पृश्य ध्रुवमभिजितमेव च प्रतिनिवृत्तः।
नभसोऽर्द्धमात्रमित्वा याम्येनास्तं समुपयाति॥ ३४॥
हन्यात्प्रयागकूलाद्यावदवन्तीं च पुष्करारण्यम्।
उदगपि च देविकामपि भूयिष्ठं मध्यदेशाख्यम्॥ ३५॥
अन्यानपि च स देशान् क्वचित्क्वचिद्धन्ति रोगदुर्भिक्षैः।
दश मासान् फलपाकोऽस्य कैश्चिदष्टादश प्रोक्तः॥ ३६॥

पश्चिम दिशा में उदित होने वाला, दक्षिण दिशा में एक अङ्गुल उच्छ्रित शिखा वाला, जैसे जैसे उत्तर तरफ जाय वैसे वैसे दीर्घ होने वाला, सप्तर्षि, ध्रुवतारा और अभिजित नक्षत्र को स्पर्श करके लौटने वाला और आकाश के अर्द्ध भाग में जा कर दक्षिण दिशा में अस्त होने वाला चल केतु है। इसका दर्शन होने से प्रयाग से ले कर अवन्ती तक के देश, पुष्करारण्य नामक स्थान और उत्तर दिशा में देविका नदी तक के देश का नाश होता है। तथा मध्य देश का विशेष कर नाश होता है। एवं अन्य देशों का भी रोग और दुर्भिक्ष के द्वारा नाश होता है। इसका फल दर्शन काल से ले कर दश मास तक होता है और किसी का मत है कि दर्शन काल से ले कर अठारह मास पर्य्यन्त होता है।

यहाँ पर गर्ग—

क्षुच्छस्त्रमरकव्याधिभयैः सम्पीडयेत् प्रजा। मासान् दश तथाष्टौ च चलकेतुः सुदारुणः॥

श्वेत-केतु का लक्षण और फल—

प्रागर्द्धरात्रदृश्यो याम्याग्रः श्वेतकेतुरन्यश्च।
क इति युगाकृतिरपरे युगपत्तौ सप्तदिनदृश्यौ॥ ३७॥
स्निग्धौ सुभिक्षशिवदावथाधिकं दृश्यते कनामा यः।
दश वर्षाण्युपतापं जनयति शस्त्रप्रकोपकृतम्॥ ३८॥

श्वेत-केतु पूर्व दिशा में अर्द्धरात्रि के समय उदय होने वाला और दक्षिण स्थित शिखा वाला है, तथा अन्य कसंज्ञक केतु गाड़ी के जुए के समान आकृति वाला और पश्चिम दिशा में अस्त होने वाला है। यदि निर्मल हो कर ये दोनों सात दिन तक दिखाई दें तो सुभिक्ष और कल्याण करते हैं। यदि सात दिन से अधिक कनामक केतु दिखाई दे तो दश वर्ष तक शस्त्र के कोप से मनुष्यों को पीड़ित करता है ॥ ३७-३८ ॥

श्वेत का लक्षण और फल—

श्वेत इति जटाकारो रूक्षः श्यावो वियत्त्रिभागगतः।
विनिवर्त्ततेऽपसव्यं त्रिभागशेषाः प्रजाः कुरुते ॥ ३९ ॥

श्वेत नामक केतु जटा के सदृश, रूक्ष, कपिश और आकाश के तीन भाग तक जा कर बायीं तरफ से हो कर लौट आता है। इसका दर्शन होने से प्रजा का तृतीयांश मात्र शेष रहता है अर्थात् दो भाग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

रश्मि-केतु का लक्षण और फल—

आधूम्रया तु शिखया दर्शनमायाति कृत्तिकासंस्थः।
ज्ञेयः स रश्मिकेतुः श्वेतसमानं फलं धत्ते ॥ ४० ॥

धूम्र वर्ण की शिखा वाला और कृत्तिका नक्षत्र में स्थित होने पर दिखाई देने वाला रश्मि केतु है। इसका दर्शन होने से यह श्वेत की तरह फल (त्रिभाग शेष प्रजा) करता है ॥ ४० ॥

ध्रुव केतु का लक्षण और फल—

ध्रुवकेतुरनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विष्वक्।
दिव्यान्तरिक्षभौमो भवत्ययं स्निग्ध इष्टफलः ॥ ४१ ॥
सेनाङ्गेषु नृपाणां गृहतरुशैलेषु चापि देशानाम्।
गृहिणामुपस्करेषु च विनाशिनां दर्शनं याति ॥ ४२ ॥

अनिश्चित गमन, प्रमाण, वर्ण और आकृति वाला, सब दिशाओं में दिखाई देने वाला, दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम भेद से तीन प्रकार का होने वाला, निर्मल तथा शुभ फल देने वाला है। यह ध्रुव केतु नाश होने वाले राजाओं के सेनाङ्ग (अश्व, लगाम आदि) में, नाश होने वाले देशों के गृह, वृक्ष और पर्वत में तथा नाश होने वाले गृहस्थों के उपकरण द्रव्य में दिखाई देता है ॥ ४१-४२ ॥

कुमुद नामक केतु का लक्षण और फल—

कुमुद इति कुमुदकान्तिर्वारुण्यां प्राक्शिखो निशामेकाम्।
दृष्टः सुभिक्षमतुलं दश किल वर्षाणि स करोति ॥ ४३ ॥

कुमुद पुष्प की तरह कान्ति वाला, पश्चिम दिशा में उदित होने वाला, पूर्व की तरफ शिखा वाला और केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला कुमुद केतु है। इसका दर्शन होने से दश वर्ष तक पृथ्वी पर सुभिक्ष होता है ॥ ४३ ॥

मणि-केतु का लक्षण और फल—

सकृदेकयामदृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः।
ऋज्वी शिखाऽस्यशुक्ला स्तनोद्गता क्षीरधारेव ॥ ४४ ॥
उदयन्नेव सुभिक्षं चतुरो मासान् करोत्यसौ सार्द्धान्।
प्रादुर्भावं प्रायः करोति च क्षुद्रजन्तूनाम् ॥ ४५ ॥

पश्चिम दिशा में एक प्रहर मात्र शेष रात्रि में एक बार दिखाई देने वाला और दुग्ध धारा की तरह स्पष्ट शिखा वाला मणि केतु है। यह केतु उदय काल से ही साढ़े चार महीने तक सुभिक्ष और अधिकतर नकुल आदि क्षुद्र जन्तुओं की उत्पत्ति करता है॥

जल-केतु का लक्षण और फल—

जलकेतुरपि च पश्चात् स्निग्धः शिखयाऽपरेण चोन्नतया।
नव मासान् स सुभिक्षं करोति शान्तिं च लोकस्य ॥ ४६ ॥

पश्चिम दिशा में दिखाई देने वाला, निर्मल और पश्चिमोन्नत शिखा वाला जल केतु है। यह उदित हो तो नव मास तक सुभिक्ष और लोगों का कुशल करता है॥

भव-केतु का लक्षण और फल—

भवकेतुरेकरात्रं दृश्यः प्राक् सूक्ष्मतारकः स्निग्धः।
हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया शिखया ॥ ४७ ॥
यावत एव मुहूर्तान् दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान्।
तावदतुलं सुभिक्षं रूक्षे प्राणान्तिकान् रोगान् ॥ ४८ ॥

पूर्व दिशा में केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला, सूक्ष्म तारा से युत और सिंह की पूँछ की तरह दक्षिणावर्त शिखा से युत भव केतु है। यह निर्मल मूर्ति का हो कर जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक सुभिक्ष और रूक्ष मूर्ति का हो कर जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक प्राणान्तिक रोग की उत्पत्ति करता है ४७-४८॥

पद्म-केतु का लक्षण और फल—

अपरेण पद्मकेतुर्मृणालगौरो भवेन्निशामेकाम्।
सप्त करोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि ॥ ४९ ॥

पूर्व दिशा में केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला और मृणाल की तरह गौर पद्म केतु है। यह उदित हो तो सात वर्ष तक सुभिक्ष और लोगों में आनन्द-मङ्गल करता है॥ ४९॥

आवर्त-केतु का लक्षण और फल—

आवर्त्त इति निशार्द्धे सव्यशिखोऽरुणनिभोऽपरे स्निग्धः।
यावत् क्षणान् स दृश्यस्तावन्मासान् सुभिक्षकरः ॥ ५० ॥

पश्चिम दिशा में राज्यर्ध-समय में उदित होने वाला, दक्षिणस्थ शिखा वाला, रक्तवर्ण, निर्मल शरीर वाला आवर्त केतु है। यह जितने क्षण तक दिखाई देता है उतने मास तक सुभिक्ष करता है ॥ ५० ॥

संवर्त्त केतु का लक्षण और फल—

पश्चात् सन्ध्याकाले संवर्त्तो नाम धूम्रताम्रशिखः ।
आक्रम्य वियत्त्र्यंशं शूलाग्रावस्थितो रौद्रः ॥ ५१ ॥
यावत एव मुहूर्त्तान् दृश्यो वर्षाणि हन्ति तावन्ति ।
भूपान् शस्त्रनिपातैरुदयर्क्षं चापि पीडयति ॥ ५२ ॥

पश्चिम दिशा में सन्ध्याकाल में आकाश के तीसरे भाग तक जाकर दिखाई देने वाला धूम्र या ताम्र वर्ण की तीन शिखा वाला संवर्त्त केतु है। यह जितने क्षण तक दिखाई देता है उतने वर्ष तक युद्ध के द्वारा राजाओं का नाश करता है तथा उदय-कालिक नक्षत्र को पीड़ित करता है।

यहाँ पर गर्ग—

येषां नक्षत्रविषये रूक्ष सज्वाललोहितः । दृश्यते चतुर्मूर्तिश्च तेषां विन्द्यान्महाभयम् ॥
अवर्षं शस्त्रकोपं च व्याधिं दुर्भिक्षमेव च । कुर्यान्नृपतिपीडाश्च स्वचक्रपरचक्रतः ॥
यत्रोत्तिष्ठति नक्षत्रे प्रवासं यत्र गच्छति । धूपयेद्वा स्पृशेद्वापि हन्याद्देशांस्तदाश्रितान् ॥
यस्याभिषेकनक्षत्रं जन्मभं कर्मभं तथा । देशर्क्षं पीडयेद्वापि सशाम्युपरमो भवेत् ॥
स्निग्धः प्रसन्नो विमल प्रदक्षिणशिखस्तथा । दृश्यते येषु देशेषु शिवं तेषु विनिर्दिशेत् ॥
गगनार्द्धचरः सद्यः प्रधानदेशान् विनाशयेदचिरात् ।
निखिलगगनानुचारी त्रैलोक्यविनाशकः केतुः ॥ ५१–५२ ॥

अशुभ केतु के नक्षत्रों के साथ स्पर्श और धूपन से अशुभ फल—

ये शस्तास्तान् हित्वा केतुभिराधूपितेऽथवा स्पृष्टे ।
नक्षत्रे भवति वधो येषां राज्ञां प्रवक्ष्ये तान् ॥ ५३ ॥

शुभ केतुओं को छोड़ कर अन्य केतुओं से धूपित या स्पृष्ट नक्षत्र होने पर जिन-जिन राजाओं का नाश होता है उनको कहते हैं ॥ ५३ ॥

केतु से अश्विनी से रोहिणी तक धूपित या स्पृष्ट होने पर फल—

अश्विन्यामश्मकपं भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात् ।
बहुलासु कलिङ्गेशं रोहिण्यां शूरसेनपतिम् ॥ ५४ ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट अश्विनी नक्षत्र हो तो अश्मक देशाधिपति, भरणी हो तो किरातों के अधिपति, कृत्तिका हो तो कलिङ्ग देश के अधिपति और रोहिणी नक्षत्र हो तो शूरसेन देश के स्वामी का नाश करता है ॥ ५४ ॥

केतु से धूपित या स्पृष्ट मृगशिरा से पुष्य तक के नक्षत्रों का फल—

औशीनरमपि सौम्ये जलजाजीवाधिपं तथार्द्रासु ।
आदित्येऽश्मकनाथान् पुष्ये मगधाधिपं हन्ति ॥ ५५ ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट मृगशिरा हो तो उशीनर देश के स्वामी, आर्द्रा हो तो मत्स्य देश के स्वामी, पुनर्वसु हो तो अश्मक देश के स्वामी और पुष्य हो तो मगधाधिपति का नाश करता है ॥ ५५ ॥

केतु से धूपित या स्पृष्ट आश्लेषा से हस्त तक के नक्षत्रों का फल—

असिकेशं भौजङ्गे पित्र्येऽङ्गं पाण्ड्यनाथमपि भाग्ये ।
औज्जयिनिकमार्यम्णे सावित्रे दण्डकाधिपतिम् ॥ ५६ ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट आश्लेषा नक्षत्र हो तो असिकेश्वर, मघा हो तो अङ्ग-देशाधिपति, पूर्वाफाल्गुनी हो तो पाण्ड्यदेशाधिपति, उत्तराफाल्गुनी हो तो उज्जयिनी के पति और हस्त नक्षत्र हो तो दण्डक वन के स्वामी का नाश होता है ॥ ५६ ॥

केतु से धूपित या स्पृष्ट चित्रा और स्वाती का फल—

चित्रासु कुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं समादिशेत्तज्ज्ञः ।
काश्मीरककाम्बोजौ नृपती प्राभञ्जने न स्तः ॥ ५७ ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट चित्रा नक्षत्र हो तो कुरुक्षेत्राधिपति का मरण केतुफलज्ञ पण्डित को कहना चाहिये। तथा स्वाती नक्षत्र हो तो काश्मीर और कम्बोज देश के स्वामी का नाश कहना चाहिये ॥ ५७ ॥

केतु से धूपित या स्पृष्ट विशाखा से ज्येष्ठा तक के नक्षत्रों का फल—

इक्ष्वाकुरलकनाथश्च हन्यते यदि भवेद्विशाखासु ।
मैत्रे पुण्ड्राधिपतिर्ज्येष्ठासु च सार्वभौमवधः ॥ ५८ ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट विशाखा नक्षत्र हो तो अलकाधिपति, अनुराधा हो तो पुण्ड्राधिपति और ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो सार्वभौम राजा का नाश होता है ॥५८॥

केतु से धूपित या स्पृष्ट मूल से उत्तराषाढा तक के नक्षत्रों का फल—

मूलेऽन्ध्रमद्रकपती जलदेवे काशिपो मरणमेति ।
यौधेयकार्जुनायनशिबिचैद्यान् वैश्वदेवे च ॥ ५९ ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट मूल नक्षत्र हो तो अन्ध्र और मद्रक देश के अधिपति, पूर्वाषाढा हो तो काशी के स्वामी और उत्तराषाढा नक्षत्र हो तो यौधेयक, अर्जुनायन, शिबि और चैद्य देश के अधिपति का नाश होता है ॥ ५९ ॥

केतु से धूपित या स्पृष्ट श्रवण से रेवती तक नक्षत्रों का फल—

हन्यात् कैकयनाथं पाञ्चनदं सिंहलाधिपं वाङ्गम् ।
नैमिषनृपं किरातं श्रवणादिषु षट्स्विमान् क्रमशः ॥ ६० ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट श्रवण नक्षत्र हो तो केकय देश के स्वामी, धनिष्ठा हो तो पञ्जाब के स्वामी, शतभिषा हो तो सिंहल देश के स्वामी, पूर्वभाद्रपदा हो तो नैमिषारण्य के स्वामी और रेवती हो तो किरातों के स्वामी का नाश होता है ॥ ६० ॥

केतु का विशेष फल—

उल्काभिताडितशिखः शिखी शिवः शिवतरोऽतिघृष्टो यः।
अशुभः स एव चोलावगाणसितहूणचीनानाम् ॥ ६१ ॥

जो केतु उल्का से ताडित हो वह शुभ करने वाला होता है। जो घृष्टि युक्त हो वह अतिशय शुभ करने वाला होता है, तथा वही केतु चोल, अवगाण, सितहूण और चीन देश में स्थित मनुष्यों का अशुभ करने वाला होता है ॥ ६१ ॥

केतु का अन्य विशेष फल—

नम्रा यतः शिखिशिखाभिसृता यतो वा
ऋक्षं च यत् स्पृशति तत्कथितांश्च देशान्।
दिव्यप्रभावनिहतान् स यथा गरुत्मान्
भुङ्क्ते गतो नरपतिः परभोगिभोगान् ॥ ६२ ॥

केतु की शिखा जिस दिशा में नम्र हो, जिस दिशा में फैलती हो या जिस नक्षत्र को स्पर्श करती हो वहाँ पर स्थित अन्य भोगी जनों से युक्त अत्यधिक पराक्रमों से निर्जित ग्रामों को उसी तरह राजा लोग भोगते हैं, जैसे गरुड़, दिव्य प्रभाव से नष्ट उत्कृष्ट सर्पों के अङ्गों को भोग करता है।

यहाँ पर पराशर—

यस्यां दिशि समुत्तिष्ठेत्तां दिशं नाभियोजयेत्। यत· शिखा यतो धूमस्ततो यायान्नराधिपः॥
प्रतिलोमे यतः केतोर्जयार्थी याति पार्थिवः। सामात्यवाहनबलः स नाशमधिगच्छति ॥
दृष्टा षोडश वासरान्न शुभदः केश्चिरप्रदिष्टः शिखी सर्वारम्भफलप्रदो हि नियतं चैत्रेऽथवा माघवे।
ऋक्षं यत्परिमुक्तपीडितहतं यच्चाऽऽशिखाभेदितं तत्सर्वं परिवर्ज्यं शुद्धमपरं पाणिग्रहे वास्तुषु॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां केतुचाराध्याय एकादशः ॥ ११ ॥

अथ अगस्त्यचाराध्यायः

अगस्त्य मुनि का वर्णन—

भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलः स्तम्भितो
वातापिर्मुनिकुक्षिभित् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः।
पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
तस्यागस्त्यमुनेः पयोयुतिकृतश्चारः समासादयम् ॥ १ ॥

सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये बढ़े हुये शिखर वाले विन्ध्याचल पर्वत को जिन्होंने रोक लिया, मुनियों के पेट को फाड़ने वाला और देवताओं के शत्रु वातापी राक्षस को जिन्होंने पचा डाला, समुद्र को जिन्होंने पी लिया और तपोरूप समुद्र से दक्षिण दिशा

को जिन्होंने भूषित किया, जल राशि को निर्मल करने वाले उन अगस्त्य मुनि का संक्षेप से यहाँ वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥

अगस्त्य मुनि के वर्णन में अद्भुत समुद्र का वर्णन—

समुद्रोऽन्तः-शैलैर्मकरनखरोत्खातशिखरैः
कृतस्तोयोच्छित्त्या सपदि सुतरां येन रुचिरः।
पतन्मुक्तामिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहैः
सुरान् प्रत्यादेष्टुं मितमुकुटरत्नानिव पुरा ॥ २ ॥

पहले तत्क्षण जल प्रवाह से, मकर के नखों से उत्पाटित शिखर वाले अन्तर्गत पर्वतों से, तथा परिमित रत्नों से युत मुकुट वाले देवताओं को तिरस्कार करने के लिये इधर उधर अनेक पतित मुक्ताओं से मिश्रित श्रेष्ठ मणि और रत्नों से युत जल प्रवाहों से समुद्र को जिन्होंने अतिशय सुन्दर बनाया ॥ २ ॥

प्रकारान्तर से समुद्र का वर्णन—

येन चाम्बुहरणेऽपि विद्रुमैर्भूधरैः समणिरत्नविद्रुमैः।
निर्गतैस्तदुरगैश्च राजितः सागरोऽधिकतरं विराजितः ॥ ३ ॥

जिस अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल होने पर भी मणि, रत्न और प्रवालों से युत वृक्ष तथा पंक्ति से पृथक् स्थित सर्पों से रहित पर्वतों से समुद्र अतिशय शोभित हुआ ॥ ३ ॥

प्रकारान्तर से समुद्र का वर्णन—

प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः क्षिप्तरत्ननिकरो महोदधिः।
आपदां पदगतोऽपि यापितो येन पीतसलिलोऽमरश्रियम् ॥ ४ ॥

अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल होने के कारण विपत्तिग्रस्त होने पर भी समुद्र ने जलाभाव के कारण चञ्चल मत्स्य, जलहस्ती, सर्प तथा इधर उधर बिखरे हुये रत्न और मणियों से सुशोभित होकर स्वर्गीय शोभा प्राप्त की ॥ ४ ॥

प्रकारान्तर से समुद्र का वर्णन—

प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः सलिलेऽपहृतेऽपि पतिः सरिताम्।
सतरङ्गसितोत्पलहंसभृतः सरसः शरदीव बिभर्ति रुचिम् ॥ ५ ॥

जल नष्ट होने पर भी चलित मत्स्य, शुक्ति और शंख से युत समुद्र शरद् ऋतु में तरङ्ग, श्वेत कुवलय और हंस से युत सरोवर की शोभा धारण करता है। (यहाँ पर चलित मत्स्य = तरङ्ग, शुक्ति = श्वेत कुवलय, शंख = हंस है) ॥ ५ ॥

समुद्र का वर्णन करते हुये अगस्त्य का वर्णन—

तिमिसिताम्बुधरं मणिवारकं स्फटिकचन्द्रमनम्बुशरद्द्युति।
फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहं कुटिलगेशवियच्च चकार यः ॥ ६ ॥

मात्स्य रूप मेघ, मणि रूप तारा, स्फटिक मणि रूप चन्द्र, जलाभाव रूप शारदीय द्युति और सर्पों के फणा पर स्थित मणि (चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त आदि) के किरण रूप केतु ग्रह हैं, जिसमें ऐसे कुटिलेश (समुद्र) को जिन्होंने बना दिया ॥ ६ ॥

समुद्र वर्णन के बाद विन्ध्याचल का वर्णन—

दिनकररथमार्गविच्छित्तयेऽभ्युद्यतं यच्चलच्छृङ्ग-
मुद्भ्रान्तविद्याधरांसावसक्तप्रियाव्यग्रदत्ताङ्कदेहाव-
लम्बाम्बरात्युच्छ्रितोद्धूयमानध्वजैः शोभितं
करिकटमदमिश्ररक्तावलेहानुवासानुसारि-
द्विरेफावलीनोत्तमाङ्गैः कृतान् बाणपुष्पैरिवोत्तंसकान्
धारयद्भिर्मृगेन्द्रैः सनाथीकृतान्तर्दरीनिर्झरम् ।
गगनतलमिवोल्लिखन्तं प्रवृद्धैर्गजाकृष्टफुल्लद्रुम-
त्रासविभ्रान्तमत्तद्विरेफावलीहृष्टमन्द्रस्वनैः
शैलकूटैस्तरक्षर्क्षशार्दूलशाखामृगाध्यासितैः
रहसि मदनसक्तया रेवया कान्तयेवोपगूढं सुराध्या-
सितोद्यानमम्भोशनानभ्रमूलानिलाहारविप्रान्वितं
विन्ध्यमध्यस्तम्भयद्यश्च तस्योदयः श्रूयताम् ॥ ७ ॥

सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये उद्यत होने में कम्पायमान शृङ्ग होने से भयभीत, विद्याधर के कन्धे में सक्त और व्यग्र विद्याधरी गण से दिये हुये विद्याधर के शरीर में लगे हुये कम्पायमान और अत्युन्नत ध्वज रूप वस्त्र से शोभित। हस्ती के मद से युक्त रक्त के आस्वादन से उत्पन्न सुगन्धि को खोजने में उद्यत भ्रमर गणों से युक्त शिर वाले मानो बाण पुष्पों से रचित शिरोमाला धारण करने वाले सिंहों से युक्त गुहा गत निर्झर वाला। बढ़े हुये गजों से आकृष्ट होने पर कम्पित प्रफुल्लित वृक्षों पर चञ्चल और आनन्द से मधुर शब्द करते हुये भ्रमर पंक्ति वाले तथा वन के अश्व, भालू, व्याघ्र और वानरों से युक्त पर्वत शृङ्गों से मानो आकाश को उल्लिखित करता हुआ। निर्जन स्थान में मदन वृक्ष से युक्त होने के कारण मानो मदनातुर प्रिया रेवा नदी से युक्त, देवताओं से सेवित उद्यान वाला तथा जलहारी, निराहारी, मूलाहारी, वाताहारी ब्राह्मण मुनियों से सेवित विन्ध्याचल को जिन्होंने रोका उन अगस्त्य मुनि के उदय के सम्बन्ध में सुनो ॥ ७ ॥

अगस्त्योदय का प्रभाव—

उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसमायोगमलप्रदूषितानि ।
हृदयानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बूनि भवन्ति निर्मलानि ॥ ८ ॥

जिस तरह खलों की सङ्गति रूप मल से दूषित हृदय वाला मनुष्य भी सज्जनों के दर्शन से निर्मल हृदय का हो जाता है। उसी तरह वर्षा ऋतु में कीचड़ मिला हुआ जल अगस्त्य मुनि के दर्शन से निर्मल हो जाता है ॥ ८ ॥

विन्ध्यवर्णन के बाद शरद् ऋतु का वर्णन—

पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम् ।
ताम्बूलरक्तोत्कपिताग्रदन्ती विभाति योषेव शरत्सहासा ॥ ९ ॥

ताम्बूल से रक्त ओठों के मध्य विराजमान दन्तपंक्तिवाली, हासयुत स्त्री की तरह दोनों पार्श्वों में स्थित लाल वर्ण के चक्रवाकों के मध्य शब्दायमान हंसपंक्ति से विराजमान नदियों के द्वारा शरद् ऋतु शोभित है ॥ ९ ॥

शरद् का वर्णन—

इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता शरद् भ्रमत्षट्पदपङ्क्तिभूषिता ।
सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति सस्मरा ॥ १० ॥

भ्रमण करते हुये भ्रमर की पंक्तियों से भूषित, नील कमल के निकट स्थित श्वेत कमल से युत नदियों से शोभित शरद् मानो भ्रूलता के साथ कटाक्ष चलाने वाली मदनातुरा स्त्री की तरह शोभित है ॥ १० ॥

शरद् का और भी वर्णन—

इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभूतिं द्रष्टुं तरङ्गवलया कुमुदं निशासु ।
उन्मीलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म वापी विलोचनमिवासिततारकान्तम् ॥

तरङ्ग रूप कङ्कन वाली वापी रूप कामिनी रात्रि में मेघ चले जाने से बढ़ी हुई चन्द्र की शोभा को देखने के लिये मानो भ्रमरयुक्त कुमुद रूप कृष्ण तारा से युक्त नेत्र को खोलती है ॥ ११ ॥

पृथ्वी की शोभा का वर्णन—

नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता ।
रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च भूर्यच्छतीवार्घमगस्त्यनाम्ने॥ १२ ॥

अनेक प्रकार के विचित्र कमल, हंस, चक्रवाक, कारण्डव आदि से भूषित तड़ाग रूप हस्त के द्वारा पृथ्वी मानो अनेक रत्न, पुष्प और फलों से अगस्त्य मुनि को अर्घ देती है ॥ १२ ॥

अगस्त्य मुनि की प्रधानता—

सलिलममरपाज्ञयोज्झितं यद्घनपरिवेष्टितमूर्तिभिर्भुजङ्गैः ।
फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्यदर्शनेन ॥१३॥

मेघों से परिवेष्टित मूर्ति वाले सर्पों के फणा से उत्पन्न विष रूप अग्नि से दूषित इन्द्र की आज्ञा से पतित जल भी अगस्त्य मुनि के दर्शन से श्रेयाकर हो जाता है॥१३॥

अगस्त्य मुनि के प्रभाव का वर्णन—

स्मरणादपि पापमपाकुरुते किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः ।
मुनिभिः कथितोऽस्य यथार्थविधिः कथयामि तथैव नरेन्द्रहितम् ॥१४॥

जिनका स्मरण करने से भी पाप नष्ट हो जाते हैं, उन वरुण के पुत्र अगस्त्य की स्तुति का फल कहाँ तक कहूँ, गर्ग आदि मुनियों के द्वारा जिस प्रकार उनकी अर्घ-विधि कही गई है उसी तरह राजाओं के हित के लिये मैं कहता हूँ।

यहाँ पर समाससंहिता में—

भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलस्तम्भितो
वातापीर्मुनिकुक्षिभूत् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः ।
पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
तस्यागस्त्यमुनेः पयस्त्युनिकृतश्चारः समासादयम् ॥ १४ ॥

अगस्त्य मुनि के उदय का लक्षण—

संख्याविधानात्प्रतिदेशमस्य विज्ञाय सन्दर्शनमादिशेज्ज्ञः ।
तच्चोज्जयिन्यामगतस्य कन्यां भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥१५॥

गणित के द्वारा प्रत्येक देश में इनका दर्शन जानकर पण्डितों को कहना चाहिये। वह दर्शन सिंह राशि के तेईस अंश पर जब स्पष्ट सूर्य जाते हैं तब होता है।

समाससंहिता में—

सप्तभिरंशैः कन्यामप्राप्ते रोमके तु दिवसकरे। इतरयोऽगस्त्योऽवन्त्यां तत्समपूर्वापरेऽप्येवम् ॥

अर्घदान लक्षण—

ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालैर्नैशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्याम् ।
सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां प्रयतः प्रयच्छेत् ॥ १६ ॥

सूर्य के किरणों से रात्रि के अन्धकार कुछ नष्ट होने पर ज्योतिषी से बताई हुई दक्षिण दिशा में पृथ्वी पर संयत होकर राजा पृथ्वी पर अगस्त्य मुनि के लिये अर्घ देवे॥

किन वस्तुओं से अर्घ देना चाहिये—

कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च रत्नैश्च सागरभवैः कनकाम्बरैश्च ।
धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यैर्दध्यक्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च॥१७॥

शारदीय सुगन्धित पुष्प, फल, समुद्र से उत्पन्न रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, धेनु, वृष, पायस युत भोजन, द्रव्य, दधि, सुगन्धित धूप और चन्दन युत अर्घ देवे ॥ १७ ॥

अर्घ का फल—

नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानो दधानः प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षः ।
भवति यदि च दद्यात्सप्तवर्षाणि सम्यग्जलनिधिरशनायाः स्वामितां याति भूमेः

यदि श्रद्धावान् राजा इस प्रकार अर्घ देने की विधि को धारण करे तो नीरोग होता है और शत्रुओं को जीतता है। यदि इस प्रकार सात वर्ष तक भक्तिपूर्वक अर्घ देता रहे तो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी (चक्रवर्ती राजा) होता है ॥ १८ ॥

ब्राह्मण, स्त्री, वैश्यों और शूद्रों को अर्घ देने का फल—

द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः प्राप्नोति वेदान् प्रमदाश्च पुत्रान् ।
वैश्यश्च गां भूरि धनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे ॥१९॥

यदि अपनी शक्ति के अनुसार लब्ध वस्तु से अर्घ दे तो ब्राह्मण वेदों को, स्त्री पुत्रों को, वैश्य गौओं को, शूद्र बहुत धनों को प्राप्त करता है तथा माह्मणादि सब वर्ण रोगक्षय और धार्मिक फल को प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥

अगस्त्य के वर्ण का लक्षण और फल—

रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं धूम्रो गवामशुभकृत्स्फुरणो भयाय ।
माञ्जिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥२०॥

यदि अगस्त्य रूक्ष हो तो रोग, कपिल हो तो अवृष्टि, धूम्रवर्ण हो तो गौओं के लिये अनिष्ट फल, कम्पमान हो तो भय, लोहित वर्ण हो तो दुर्भिक्ष और युद्ध तथा सूक्ष्म हो तो नगर का अवरोध करते हैं ॥ २० ॥

अगस्त्य के वर्ण का लक्षण और फल—

शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तर्पयन्निव महीं किरणाग्रैः ।
दृश्यते यदि तदा प्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढ्या ॥२१॥

सुवर्ण रजत या स्फटिक के समान अपने किरणों से पृथ्वी को तृप्त करते हुये अगस्त्य मुनि दिखाई दें तो पृथ्वी अधिक धान्य, निर्भीक तथा रोगरहित मनुष्यों से युत होती है ।

यहाँ पर गर्ग—

शङ्खकुन्देन्दुगोक्षीरमृणालरजतप्रभः । दृश्यते यद्यगस्त्यः स्यात्सुभिक्षक्षेमकारकः ॥
वैश्वानरार्चिप्रतिमैर्मांसशोणितकर्दमैः । रणै भयैश्च विविधैः किञ्चिच्छेषायते प्रजा ॥२१॥

शुभाशुभ उदयास्तलक्षण—

उल्कया विनिहतः शिखिना वा क्षुद्भयं मरकमेव विधत्ते ।
दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के रोहिणीमुपगतेऽस्तमुपैति ॥ २२ ॥

यदि अगस्त्य मुनि उल्का या केतु से आहत हों तो पृथ्वी पर दुर्भिक्ष और मरी पड़ती है । अगस्त्य मुनि सूर्य हस्तगत हों तो उदित और रोहिणीगत हों तो अस्त होते हैं ।

यहाँ पर पराशर—

हस्तस्थे सवितर्युदेति रोहिणीसंस्थे प्रविशति ।

और भी—

हन्यादुल्का यदागस्त्यं केतुर्वाप्युपधूपयेत् । दुर्भिक्षं जनमारश्च तदा जगति जायते ॥
सुस्निग्धवर्णः श्वेतश्च शातकुम्भसमप्रभः । मुनिः क्षेमसुभिक्षाय प्रजानामभयाय च ॥२२॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामगस्त्यचाराध्यायो द्वादशः ॥ १२ ॥

अथ सप्तर्षिचाराध्यायः

सप्तर्षियों के दिक् संस्थान लक्षण—

सैकावलीव राजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव ।
नाथवतीव च दिग्यैः कौबेरी सप्तभिर्मुनिभिः ॥ १ ॥

एकावली (भूषण विशेष) से शोभित, श्वेत कमल की माला से भूषित, मुस्कान युत और स्वामी सहित कामिनी की तरह सात मुनियों से युत उत्तर दिशा शोभित है। यहाँ मुनिपंक्तियों के कुटिल होने के कारण इसमें पूर्वोक्त सब विशेषण उत्पन्न होते हैं ॥१॥

ध्रुव के वश भ्रमण करते हुये सप्तर्षियों से उत्तर दिशा भी नाचती हुई लक्षित होती है—

ध्रुवनायकोपदेशान्नरीनर्त्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च ।
यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ॥ २ ॥

ध्रुव नक्षत्र रूप नायक के उपदेश से भ्रमण करने वाले सप्तर्षियों से उत्तर दिशा मानो बारम्बार नाचती है। वृद्ध गर्ग के मत से उनका संचार कहता हूँ।

यहाँ पर भट्ट महागुप्त—

ध्रुवयोर्बद्धं सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम् ।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलक्षिप्तम् ॥
तेषां मुनीनां चारमहं वृद्धगर्गमतात् कथयिष्ये ।
वृद्धगर्गो नाम महामुनिस्तन्मतात्तत्कृतात्शास्त्रात् ॥ २ ॥

सप्तर्षियों का चार नक्षत्र—

आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ ३ ॥

जब युधिष्ठिर राजा पृथ्वी पर राज्य करते थे उस समय मघा नक्षत्र में सप्तर्षि थे। शकाब्द में २५२६ मिलाने से युधिष्ठिर का गताब्द काल होता है।

यहाँ पर वृद्ध गर्ग—

कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम् । मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः ॥

१८७५ शकाब्द में नक्षत्र लाने का उदाहरण—

एक नक्षत्र में सप्तर्षि सौ (१००) वर्ष रहते हैं—

अत $\frac{२५२६+१८७५}{१००} = \frac{४४०१}{१००}$, लब्धि ४४ शेष १।

अतः गत नक्षत्र उत्तराभाद्रपदा और वर्तमान नक्षत्र रेवती का १ वर्ष भुक्त और ९९ वर्ष भोग्य हैं ॥ ३ ॥

नक्षत्रभोग प्रमाण और नक्षत्रों में स्थिति—

एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम् ।
प्रागुदयतोऽप्यविवराद्दजून्नयति तत्र संयुक्ताः ॥ ४ ॥

एक एक नक्षत्र में सौ सौ वर्ष सप्तर्षि रहते हैं। जिस नक्षत्र का पूर्व दिशा में उदय होने से सप्तर्षि मण्डल स्पष्ट दिखाई दे उसी नक्षत्र में उनकी स्थिति समझनी चाहिये। 'प्रागुत्तरतश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीकाः।' ऐसा पाठ होने से ईशान कोण में सदा साध्वी अरुन्धती के साथ उदित होते हैं ऐसा अर्थ समझना चाहिये॥ ४॥

यहाँ पर कश्यप—

शतं शतं तु वर्षाणामेकैकस्मिन् महर्षयः। नक्षत्रे निवसन्त्येते ससाध्वीका महातपाः॥

सप्तर्षियों का संस्थान स्थल—

पूर्वे भागे भगवान्मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात्।
तस्याङ्गिरास्ततोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च॥ ५॥
पुलहः क्रतुरिति भगवानासन्ना अनुक्रमेण पूर्वाद्यात्।
तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रितारुन्धती साध्वी॥ ६॥

पूर्व दिशा में भगवान् मरीचि, उनसे पश्चिम में वसिष्ठ, वसिष्ठ से पश्चिम में अङ्गिरा, अङ्गिरा के बाद अत्रि, अत्रि के समीप पुलस्त्य, इनके बाद पुलह, पुलह के बाद क्रतु इस तरह पूर्व दिशा से लेकर क्रम से सप्तर्षियों की स्थिति है। इनके मध्य में अरुन्धती वसिष्ठ के आश्रित है॥ ५-६॥

इनका शुभाशुभ फल—

उल्काशनिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वाः।
हन्युः स्वं स्वं वर्गं विपुलाः स्निग्धाश्च तद्वृद्ध्यै॥ ७॥

उल्का, वज्र या धूम आदि से हत, विवर्ण, ज्योतिरहित या स्वल्प बिम्ब वाला सप्तर्षि मण्डल हो तो अपने अपने वर्ग का नाश करता है। तथा विपुल और निर्मल बिम्ब वाला हो तो अपने अपने वर्ग की वृद्धि करता है।

यहाँ पर वृद्ध गर्ग—

उल्कया केतुना वापि धूमेन रजसापि वा। हता विवर्णाः स्वल्पा वा किरणैः परिवर्जिताः॥
स्वं स्वं वर्गं तदा हन्युर्मुनयः सर्व एव ते। विपुलाः स्निग्धवर्णाश्च स्ववर्गपरिपोषकाः॥

इनका अपना वर्ग—

गन्धर्वदेवदानवमन्त्रौषधिसिद्धयक्षनागानाम्।
पीडाकरो मरीचिर्ज्ञेयो विद्याधराणां च॥ ८॥
शकयवनदरदपारतकाम्बोजांस्तापसान्वनोपेतान्।
हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसम्पन्नः॥ ९॥
अङ्गिरसो ज्ञानयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः।
अत्रेः कान्तारभवा जलजान्यम्भोनिधिः सरितः॥ १०॥

रक्षःपिशाचदानवदैत्यभुजङ्गाः स्मृताः पुलस्त्यस्य ।
पुलहस्य तु मूलफलं क्रतोस्तु यज्ञाः सयज्ञभृतः ॥ ११ ॥

यदि मरीचि पीडित हों तो गन्धर्व, देव, राक्षस, मन्त्र, ओषधि, सिद्ध, यक्ष, नाग और विद्याधरों को पीडित करते हैं। तथा निर्मल और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि वसिष्ठ पीडित हों तो शक, यवन, दरद, पारत, काम्बोज, तपस्वी और वनवासियों को पीडित करते हैं। तथा किरणों से सम्पन्न हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अङ्गिरा पीडित हों तो ज्ञानी, बुद्धिमान् और ब्राह्मणों को पीडित करते हैं। तथा निर्मल और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अत्रि पीडित हों तो वन तथा जल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य, समुद्र और नदियों को पीडित करते हैं, तथा विपुल और स्निग्ध हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि पुलस्त्य पीडित हों तो राक्षस, पिशाच, दानव, दैत्य और सर्पों को पीडित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि पुलह पीडित हों तो मूल और फलों को पीडित करते हैं, तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि क्रतु पीडित हों तो यज्ञ, और यज्ञकर्ताओं को पीडित करते हैं, स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं।

यहाँ पर वृद्ध गर्ग—

देवदानवगन्धर्वाः सिद्धपन्नगराक्षसाः । नागा विद्याधराः सर्वे मरीचेः परिकीर्तिताः ॥
यवनाः पारताश्चैव काम्बोजा दरदाः शकाः । वसिष्ठस्य विनिर्दिष्टास्तापसा वनमाश्रिताः ॥
धीमन्तो ब्राह्मणा ये च ज्ञानविज्ञानपारगाः । रूपलावण्यसंयुक्ता मुनेरङ्गिरसः स्मृताः ॥
कान्तारजास्तथाम्भोजा अत्रेर्ये सरिदाश्रिताः । पिशाचा दानवा दैत्या भुजङ्गा राक्षसास्तथा ॥
पुलस्त्यस्य विनिर्दिष्टाः पुष्पं मूलं फलं च यत् । तत्सर्वं पुलहस्योक्तं यज्ञा यज्ञभृतश्च ये ॥
क्रतोरेव विनिर्दिष्टा वेदज्ञा ब्राह्मणास्तथा ॥ ८-११ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सप्तर्षिचाराध्यायस्त्रयोदशः ॥ १३ ॥

अथ कूर्मविभागाध्यायः

नक्षत्रों का विभाग—

नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा ।
भारतवर्षे मध्यप्रागादिविभाजिता देशाः ॥ १ ॥

कृत्तिका आदि तीन तीन नक्षत्रों के एक एक वर्ग द्वारा मेरु के दक्षिण भाग में स्थित भारतवर्ष को मध्यस्थित कल्पना करके तथा अन्य देशों को पूर्व आदि क्रम से रखकर नव भाग किये हैं।

यहाँ पर गर्ग—

कृत्तिकाद्यैस्त्रिनक्षत्रैर्नवभिर्नवभिः क्षितिः । कल्पिता मध्यदेशादौ प्रागादिक्रमयोगतः ॥

हस्तिकाद्यत्रिनक्षत्रो मध्यदेशे गणो यदा। पापैरुपहतो हन्ति मध्यदेशाखिलांस्तदा॥
रौद्राधिको हन्ति पूर्वां सर्पाद्यः पूर्वदक्षिणाम्। आर्यम्णाद्यस्तथा याम्यां स्वात्याद्यो दक्षिणापराम्॥
ज्येष्ठाद्यः पश्चिमामाशां वैश्वाद्यश्चापरोत्तराम्।
वारुण्याद्यो हन्ति सौम्यां पौष्णाद्यः शूलिनो दिशम्॥ १॥

मध्यदेश का विभाग—

भद्रारिमेदमाण्डव्यसाल्वनीपोज्जिहानसंख्याताः।
मरुवत्सघोषयामुनसारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः॥ २॥
माथुरकोपज्योतिषधर्मारण्यानि शूरसेनाश्च।
गौरग्रीवोद्देहिकपाण्डुगुडाश्वत्थपाञ्चालाः॥ ३॥
साकेतकङ्ककुरुकालकोटिकुकुराश्च पारियात्रनगः।
औदुम्बरकापिष्ठलगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम्॥ ४॥

भद्र, अरिमेद, माण्डव्य, साल्व, नीप, उज्जिहान, संख्यात, मरु, वत्स, घोष, यामुन, सारस्वत, मत्स्य, माध्यमिक, माथुर, उपज्योतिष, धर्मारण्य, शूरसेन, गौरग्रीव, उद्देहिक, पाण्डु, गुड, अश्वत्थ, पांचाल, साकेत, कंक, कुरु, कालकोटि, कुकुर, पारियात्र नग, औदुम्बर, कापिष्ठल और हस्तिनापुर ये देश कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (भारतवर्ष) में स्थित हैं॥ २–४॥

पूर्व दिशा में स्थित देशों के नाम—

अथ पूर्वस्यामञ्जनवृषभध्वजपद्ममाल्यवद्गिरयः।
व्याघ्रमुखसुह्मकर्वटचान्द्रपुराः शूर्पकर्णाश्च॥ ५॥
खसमगधशिबिरगिरिमिथिलसमतटोड्राश्ववदनदन्तुरकाः।
प्राग्ज्योतिषलौहित्यक्षीरोदसमुद्रपुरुषादाः॥ ६॥
उदयगिरिभद्रगौडकपौण्ड्रोत्कलकाशिमेकलाम्बष्ठाः।
एकपदताम्रलिप्तककोशलका वर्धमानाश्च॥ ७॥

अञ्जन, वृषभध्वज, पद्म और माल्यवान् गिरि, व्याघ्रमुख, सुह्म, कर्वट, चान्द्रपुर, शूर्पकर्ण, खस, मगध, शिबिरगिरि, मिथिला, समतट, ओड्र (उड़ीसा), अश्ववदन, दन्तुरक, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य नद, क्षीरोद समुद्र, पुरुषाद, उदयगिरि, भद्र, गौडक, पौण्ड्र, उत्कल, काशी, मेकल, अम्बष्ठ, एकपद, ताम्रलिप्तक, कोशलक, वर्धमान ये देश आर्द्रा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पूर्व दिशा) में स्थित हैं॥ ५–७॥

आग्नेय दिशा में स्थित देशों के नाम—

आग्नेय्यां दिशि कोशलकलिङ्गवङ्गोपवङ्गजठराङ्गाः।
शौलिकविदर्भवत्सान्ध्रचेदिकाश्चोर्ध्वकण्ठाश्च॥ ८॥

यूपनालिकेरचर्मद्वीपा विन्ध्यान्तवासिनस्त्रिपुरी ।
श्मश्रुधरहेमकुड्यव्यालग्रीवा महाग्रीवाः ॥ ९ ॥
किष्किन्धकण्टकस्थलनिषादराष्ट्राणि पुरिकदाशार्णाः ।
सह नग्नपर्णशबरैराश्लेषाद्ये त्रिके देशाः ॥ १० ॥

कोशल, कलिङ्ग, वंग, उपवंग, जठरांग, शौलिक, विदर्भ, वत्स, आन्ध्र, चेदिक, ऊर्ध्वकण्ठ, यूप, नालिकेर, चर्मद्वीप, विन्ध्याचल के समीप, त्रिपुरी, श्मश्रुधर, हेमकूट, व्यालग्रीव, महाग्रीव, किष्किन्धा, कण्टकस्थल, निषादराष्ट्र, पुरिक, दाशार्ण, नग्नशवर, पर्णशवर ये देश आश्लेषादि तीन नक्षत्रों के वर्ग (आग्नेय) में स्थित हैं ॥ ८–१० ॥

दक्षिण दिशा में स्थित देशों के नाम—

अथ दक्षिणेन लङ्का कालाजिनसौरिकीर्णतालिकटाः ।
गिरिनगरमलयदर्दुरमहेन्द्रमालिन्द्यभरुकच्छाः ॥ ११ ॥
कङ्कटकङ्कणवनवासिशिबिकफणिकारकोङ्कणाभीराः ।
आकरवेणावर्त्तकदशपुरगोनर्दकेरलकाः ॥ १२ ॥
कर्णाटमहाटविचित्रकूटनासिक्यकोल्लगिरिचोलाः ।
क्रौञ्चद्वीपजटाधरकावेर्यो रिष्यमूकश्च ॥ १३ ॥
वैदूर्यशंखमुक्ताऽत्रिवारिचरधर्मपट्टनद्वीपाः ।
गणराज्यकृष्णवेल्लूरपिशिकशूर्पाद्रिकुसुमनगाः ॥ १४ ॥
तुम्बवनकार्मणेयकयाम्योदधितापसाश्रमा ऋषिकाः ।
काञ्चीमरुचीपट्टनचेर्यार्यकसिंहला ऋषभाः ॥ १५ ॥
बलदेवपट्टनं दण्डकावनतिमिङ्गिलाशना भद्राः ।
कच्छोऽथ कुञ्जरदरी सताम्रपर्णीति विज्ञेयाः ॥ १६ ॥

लंका, कालाजिन, सौरिकीर्ण, तालिकट, गिरिनगर, मलय पर्वत, दर्दुर, महेन्द्र, मालिन्द्य, भरुकच्छ, कंकट, कंकण, वनवासी, शिविक, फणिकार, कोङ्कण, आभीर, आकर, वेण, आवर्त्तक, दशपुर, गोनर्द, केरल, कर्णाट, महाटवी, चित्रकूट पर्वत, नासिक्य देश, कोल्लगिरि, चोल, क्रौंचद्वीप, जटाधर, कावेरी नदी, ऋष्यमूक पर्वत, वैदूर्य, शंखमुक्ताकर देश, अत्र्याश्रम, वारिचर, धर्मपुर द्वीप, गणराज्य, कृष्णवेल्लूर, पिशिक, शूर्पाद्रि, कुसुम नग, तुम्बवन कार्मणेयक, दक्षिण समुद्र, तापसाश्रम, ऋषिक, काञ्ची, मरुचीपट्टन, चेर्य, आर्यक, सिंहल, ऋषभ, बलदेव, पट्टन, दण्डकावन, तिमिङ्गिलाशन, भद्र, कच्छ, कुञ्जरदरी, ताम्रपर्णी ये देश उत्तर फाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (दक्षिण) में स्थित हैं ॥ ११–१६ ॥

नैर्ऋत्य कोण में स्थित देशों के नाम—

नैर्ऋत्यां दिशि देशाः पह्लवकाम्बोजसिन्धुसौवीराः ।
वडवामुखारवाम्बष्ठकपिलनारीमुखानर्ताः ॥ १७ ॥
फेणगिरियवनमार्गरकर्णप्रावेयपारशवशूद्राः ।
बर्बरकिरातखण्डक्रव्यादाभीरचंचूकाः ॥ १८ ॥
हेमगिरिसिन्धुकालकरैवतकसुराष्ट्रबादरद्रविडः ।
स्वात्याद्ये भत्रितये ज्ञेयश्च महार्णवोऽत्रैव ॥ १९ ॥

पह्लव, काम्बोज, सिन्धु, सौवीर, वडवामुख, अरव, अम्बष्ठ, कपिल, नारीमुख, आनर्त, फेणगिरि, यवन, मार्गर, कर्णप्रावेय, पारशव, शूद्र, बर्बर, किरात, खण्ड, क्रव्याद, आभीर, चन्चूक, हेमगिरि, सिन्धुनद, कालक, रैवतक, सुराष्ट्र, बादर, द्रविड ये देश स्वाति आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (नैर्ऋत्यकोण) में स्थित हैं ॥ १७-१९ ॥

पश्चिम दिशा में स्थित देशों के नाम—

अपरस्यां मणिमान् मेघवान् वनौघः क्षुरार्पणोऽस्तगिरिः ।
अपरान्तकशान्तिकहैहयप्रशस्ताद्रिवोक्काणाः ॥ २० ॥
पञ्चनदरमठपारततारक्षितिजृङ्गवैश्यकनकशकाः ।
निर्मर्यादा म्लेच्छा ये पश्चिमदिक्स्थितास्ते च ॥ २१ ॥

मणिमान्, मेघवान्, वनौघ, क्षुरार्पण, अस्तगिरि, अपरान्तक, शान्तिक, हैहय, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद, रमठ, पारत, तारक्षिति, जृङ्ग, वैश्य, कनक, शक, अन्य मर्यादाहीन पश्चिम दिशा में निवास करने वाले म्लेच्छ जाति—ये सब ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पश्चिम) में स्थित हैं ॥ २०-२१ ॥

वायव्य कोण में स्थित देशों के नाम—

दिशि पश्चिमोत्तरस्यां माण्डव्यतुषारतालहलमद्राः ।
अश्मककुलूतहलडाः स्त्रीराज्यनृसिंहवनखस्थः ॥ २२ ॥
वेणुमती फल्गुलुका गुलुहा मरुकुच्छचर्मरङ्गाख्याः ।
एकविलोचनशूलिकदीर्घग्रीवास्यकोशाश्च ॥ २३ ॥

माण्डव्य, तुषार, ताल, हल, मद्र, अश्मक, कुलूत, हलड, स्त्रीराज्य, नृसिंहवन, खस्थ, वेणुमती नदी, फल्गुलुका, गुलुहा, मरुकुच्छ, चर्मरङ्ग, एकविलोचन, शूलिक, दीर्घग्रीव, आस्यकेश ये सब देश उत्तराषाढा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (वायव्य कोण) में स्थित हैं ॥ २२-२३ ॥

उत्तर दिशा में स्थित देशों के नाम—

उत्तरतः कैलासो हिमवान् वसुमान् गिरिर्धनुष्मांश्च ।
क्रौञ्चो मेरुः कुरवस्तथोत्तराः क्षुद्रमीनाश्च ॥ २४ ॥
कैकयवसातियामुनभोगप्रस्थार्जुनायनाग्नीध्राः ।
आदर्शान्तर्द्वीपित्रिगर्ततुरगाननाः श्वमुखाः ॥ २५ ॥
केशधरचिपिटनासिकदासेरकवाटधानशरधानाः ।
तक्षशिलपुष्कलावतकैलावतकण्ठधानाश्च ॥ २६ ॥
अम्बरमद्रकमालवपौरवकच्छारदण्डपिङ्गलकाः ।
माणहलहूणकोहलशीतकमाण्डव्यभूतपुराः ॥ २७ ॥
गान्धारयशोवतिहेमतालराजन्यखचरगव्याश्च ।
यौधेयदासमेयाः श्यामाकाः क्षेमधूर्ताश्च ॥ २८ ॥

कैलाश, हिमवान्, वसुमान्, धनुष्मान्, क्रौञ्च, मेरुगिरि, उत्तरकुरु, क्षुद्रमीन कैकय, वसाति, यामुन, भोगप्रस्थ, अर्जुनायन, आग्नीध्र, आदर्श, आन्तर्द्वीपी, त्रिगर्त तुरगानन, श्वमुख, केशधर, चिपिटनासिक, दासेरक, वाटधान, शरधान, तक्षशील पुष्कलावत, कैलावत, कण्ठधान, अम्बर, मद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दण्डपिंगलक, माणहल, हूण, कोहल, शीतक, माण्डव्य, भूतपुर, गान्धार, यशोवती नगरी हेमताल, राजन्य, खचर, गव्य, यौधेय, दासमेय, श्यामक, क्षेमधूर्त—ये सब देश शत भिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (उत्तर दिशा) में स्थित हैं ॥ २४-२८ ॥

ईशान कोण में स्थित देशों के नाम—

ऐशान्यां मेरुकनष्टराज्यपशुपालकीरकाश्मीराः ।
अभिसारदरदतङ्गणकुलूतसैरिन्ध्रवनराष्ट्राः ॥ २९ ॥
ब्रह्मपुरदार्वडामरवनराज्यकिरातचीनकौणिन्दाः ।
भल्लाः पटोलजटासुरकुनटखसघोषकुचिकाख्याः ॥ ३० ॥
एकचरणानुविद्धाः सुवर्णभूर्वसुधनं दिविष्ठाश्च ।
पौरवचीरनिवासित्रिनेत्रमुञ्जाद्रिगान्धर्वाः ॥ ३१ ॥

मेरुक, नष्टराज्य, पशुपाल, कीर, काश्मीर, अभिसार, दरद, तङ्गण, कुलूत, सैरिन्ध्र, वनराष्ट्र, ब्रह्मपुर, दार्वडामर, वनराज्य, किरात, चीन, कौणिन्द, भल्ल, पटोल, जटासुर, कुनट, खस, घोष, कुचिक, एकचरण, अनुविद्ध, सुवर्णभू, वसुधन, दिविष्ट, पौरव चीरनिवासी, त्रिनेत्र, मुञ्जाद्रि, गन्धर्व ये सब देश रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (ईशान कोण) में स्थित हैं ।

समाससंहिता में—

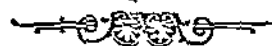
मत्रयमाग्नेयाद्यं मध्यं प्राक्प्रभृति च प्रदक्षिणतः । कथयामि प्रविभागं रौद्राद्यागादिदेशानाम् ॥
मध्यमुदक्पाञ्चाला वङ्गा यमुनान्तरं कुरुक्षेत्रम् । उदगपि च पारियात्रात्परमथवाऽयोग्यमत्स्याश्च॥
सारस्वतयामुनवत्सघोषसंख्याननीपमाण्डव्याः । भद्रारिमोदनैमिपसाल्वोऽज्योतिषाश्चाथाः ॥
औदुम्बरोऽय कुकुरोजिह्मानगजसाह्वकङ्कपाण्डुगुडाः । मध्यमिकोहैहिक्कालकोटिकापिष्टलाश्चेति
मध्येयं प्रविभागः शेषर्क्षाणां तथादिशेद्देशान् । प्रख्यातदेशमध्यानन्यांश्चैवाभिधास्यामि ॥
आर्द्रादिकाशिकौशलमिथिलोत्कलवर्धमानपाण्ड्योड्राः ।
लौहित्यमगधसमतटमेककलाम्बष्ठताम्रलिप्ताख्याः ॥
आश्लेषाद्ये त्रिपुरी निषादराष्ट्राणि चेदिकदशार्णाः । शूलिकविन्ध्यान्तःस्था वत्सांध्रविदर्भकालिङ्गाः॥
आर्यम्णाद्ये वैदिकोङ्कणवनवासिकोष्ठगिरिमलयाः ।
उज्जयिनीमरुकच्छा दिशा च याम्यार्णवो यावत् ॥
स्वात्याद्ये सिन्धुसौवीरकापिलवनितास्यमार्गरानर्ताः ॥
बर्बरयवनसुराष्ट्रककाम्बोजद्रविडरैवतकाः । ज्येष्ठादितोऽपरांतकशकहैहयजूङ्गपाञ्चनदकतकाः ॥
निर्मर्यादा म्लेच्छाः शान्तिकवोकाणवैश्याश्च । विश्वेशादिशूलिकतालनूपारकनेत्रमाण्डव्याः ॥
स्त्रीराज्यचर्मरङ्गारमकलहहाल्कफालगुलुका । शतभिषगाद्ये केकयगान्धारादर्दायामुनाम्रीध्राः॥
दासेयश्चिपिटनासार्जुनायना दंडपिङ्गलका । पौष्णाद्ये काश्मीरत्रिगर्त्तदरदाभिसारचीनखलाः ॥
तङ्गणकिरातकीरा महापुरजटा सुराश्चेति ॥ २९-३१ ॥

नव वर्गों का फल—

वर्गैराग्नेयाद्यैः क्रूरग्रहपीडितैः क्रमेण नृपाः ।
पाञ्चालो मागधिकः कालिङ्गश्च क्षयं यान्ति ॥ ३२ ॥
आवन्तोऽथानर्त्तो मृत्युं चायाति सिन्धुसौवीरः ।
राजा च हारहौरो मद्रेशोऽन्यश्च कौणिन्दः ॥ ३३ ॥

आग्नेय आदि नव वर्ग पापग्रह से पीडित हों तो क्रम से पाञ्चाल, मगध, कलिङ्ग, अवन्ती, आनर्त्त, सिन्धु, सौवीर, हारहौर, मद्र और कौलिन्द देश के राजाओं का नाश होता है ॥ ३२-३३ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां कूर्मविभागाध्यायश्चतुर्दशः ॥ १४ ॥



अथ नक्षत्रव्यूहाध्यायः

किस नक्षत्र के आश्रित कौन-कौन पदार्थ हैं इनका निरूपण,
उसमें पहले कृत्तिका नक्षत्रगत पदार्थ—

आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः ।
आकरिकनापितद्विजघटकारपुरोहिताब्दज्ञाः ॥ १ ॥

श्वेत, पुष्प, अग्निहोत्री, मन्त्र जानने वाले, यज्ञशास्त्र को जानने वाले, वैयाकरण,

खान, आवरिक, हज्जाम, ब्राह्मण, कुंभार, पुरोहित, ज्यौतिषी—ये सब कृत्तिका नक्षत्र-गत पदार्थ हैं ॥ १ ॥

रोहिणीनक्षत्रगत पदार्थ—

रोहिण्यां सुव्रतपण्यभूपधनियोगयुक्तशाकटिकाः।
गोवृषजलचरकर्षकशिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः ॥ २ ॥

सुव्रत, पण्यवृत्ती, राजा, योगी, गाड़ी से आजीविका चलाने वाले, गौ, बैल, जल में रहने वाले जन्तु, किसान, पर्वत, ऐश्वर्ययुत ये सब पदार्थ रोहिणी नक्षत्र गत हैं॥२॥

मृगशिरानक्षत्रगत पदार्थ—

मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचरविहंगाः।
मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुका लेखहाराश्च ॥ ३ ॥

सुगन्धि युक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न द्रव्य, पुष्प, फल, रत्न, वनवासी, पक्षी, मृग, सोमरस पान करने वाले, गान विद्या जानने वाले, कामी, पत्रवाहक—ये सब पदार्थ मृगशिर नक्षत्रगत हैं ॥ ३ ॥

आर्द्रानक्षत्रगत पदार्थ—

रौद्रे वधबन्धानृतपरदारस्तेयशाठ्यभेदरताः।
तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्राभिचारवेतालकर्मज्ञाः ॥ ४ ॥

वध करने वाले, प्राणियों को बाँधने वाले, असत्य भाषण करने वाले, परस्त्रीगामी, चोर, शठ[1] (धूर्त), भेद कराने वाले, भूसी वाले धान्य, क्रूर, मन्त्र को जानने वाले, अभिचारज्ञ (वशीकरण आदि कर्मों को जानने वाले), वेताल के उत्थापन का कर्म जानने वाले ये सब आर्द्रा नक्षत्रगत हैं ॥ ४ ॥

पुनर्वसुनक्षत्रगत पदार्थ—

आदित्ये सत्यौदार्यशौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुताः।
उत्तमधान्यं वणिजः सेवाभिरताः सशिल्पिजनाः ॥ ५ ॥

सत्य भाषण करने वाले, दानी, शौच युत (शुद्ध), दूसरे के धनादि का लोभ नहीं करने वाले, कुलीन, सुन्दर, बुद्धिमान्, यशस्वी, धनी, उत्तम धान्य, वणिक्, सेवक, शिल्पी ये सब पुनर्वसु नक्षत्र गत पदार्थ हैं ॥ ५ ॥

पुष्यनक्षत्रगत पदार्थ—

पुष्ये यवगोधूमाः शालीक्षुवनानि मन्त्रिणो भूपाः।
सलिलोपजीविनः साधवश्च यज्ञेष्टिसक्ताश्च ॥ ६ ॥

यव, गेहूँ, धान्य, ईख (गन्ना), वन, मन्त्री, राजा, जल से आजीविका चलाने वाले (धीवर आदि), सज्जन, याज्ञिक (पुत्रकाम्य आदि यज्ञ कराने वाले) ये सब पदार्थ पुष्य नक्षत्र गत हैं ॥ ६ ॥

---

१. मनसा वचसा यश्च दृश्यतेऽकार्यतत्परः। कर्मणा विपरीतश्च स शठः सद्भिरिष्यते ॥

आश्लेषानक्षत्रगत पदार्थ—

अहिदेवे कृत्रिमकन्दमूलफलकीटपन्नगविषाणि ।
परधनहरणाभिरतास्तुषधान्यं सर्वभिषजश्च ॥ ७ ॥

कृत्रिम द्रव्य, कन्द, मूल, फल, कीट, सर्प, विष, दूसरे के धन को हरने वाले, भूसी वाले धान्य, सब प्रकार की औषध करने वाले ये सब आश्लेषा नक्षत्रगत हैं ॥७॥

मघानक्षत्रगत पदार्थ—

पित्र्ये धनधान्याढ्याः कोष्ठागाराणि पर्वताश्रयिणः ।
पितृभक्तवणिक्शूराः क्रव्यादाः स्त्रीद्विषो मनुजाः ॥ ८ ॥

धनी, धान्यागार, पर्वत पर रहने वाले, पिता माता के सेवक, व्यापारी, शूर, मांसाहारी, स्त्रीद्वेषी ये सब मघा नक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ ८ ॥

पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रगत पदार्थ—

प्राक्फल्गुनीषु नटयुवतिसुभगगान्धर्वशिल्पिपण्यानि ।
कार्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाश्चापि ॥ ९ ॥

नाचने वाले, स्त्री, सबों के प्रिय, गानविद्या जानने वाले, शिल्पी, विक्रय या क्रय-द्रव्य, कार्पास (रुई), नमक, शहद, तेल, बालक ये सब पदार्थ पूर्व-फाल्गुनी नक्षत्रगत हैं ॥ ९ ॥

उत्तरफल्गुनीनक्षत्रगत पदार्थ—

आर्यम्णे मार्दवशौचविनयपाखण्डिदानशास्त्ररताः ।
शोभनधान्यमहाधनकर्मानुरताः समनुजेन्द्राः ॥ १० ॥

कोमल हृदय वाले, शुद्ध (दूसरे के धनादि को नहीं चाहने वाले), नीतिज्ञ, पाखंडी (वेदनिन्दक), दानी, शास्त्रों में निरत, सुन्दर धान्य, अतिशय धनी, कर्म में निरत राजा ये सब उत्तरफल्गुनी-नक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ १० ॥

हस्तनक्षत्रगत पदार्थ—

हस्ते तस्करकुञ्जररथिकमहामात्रशिल्पिपण्यानि ।
तुषधान्यं श्रुतयुक्ता वणिजस्तेजोयुताश्चात्र ॥ ११ ॥

चोर, हाथी, रथ पर चलने वाले, हस्तिसाधनपति, शिल्पी, क्रय विक्रय द्रव्य, भूसी वाले धान्य, सुनने वाले, वणिक्, तेजस्वी ये सब हस्त नक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥११॥

चित्रानक्षत्रगत पदार्थ—

त्वाष्ट्रे भूषणमणिरागलेख्यगान्धर्वगन्धयुक्तिज्ञाः ।
गणितपटुतन्तुवायाः शालाक्या राजधान्यानि ॥ १२ ॥

अलङ्कार को जानने वाले, मणि के लक्षण को जानने वाले, रागज (रंगरेज),

लेखक, गान विद्या जानने वाले, सुगन्धियुत द्रव्य बनाने वाले, गणितज्ञ, जुलाहा, नेत्र रोग चिकित्सक, राजा के उपयोगी धान्य ये सब चित्रानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ १२ ॥

स्वातीनक्षत्रगत पदार्थ—

स्वातौ खगमृगतुरगा वणिजो धान्यानि वातबहुलानि ।
अस्थिरसौहृदलघुसत्वतापसाः पण्यकुशलाश्च ॥ १३ ॥

पक्षी, मृग, अश्व, खरीदने बेचने वाले, धान्य, छोटे जन्तु, तपस्वी, क्रय-विक्रय में कुशल ये सब स्वातीनक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ १३ ॥

विशाखानक्षत्रगत पदार्थ—

इन्द्राग्निदैवते रक्तपुष्पफलशाखिनः सतिलमुद्गाः ।
कर्पासमापचणकाः पुरन्दरहुताशभक्ताश्च ॥ १४ ॥

रक्त पुष्प, रक्त फल, वृक्ष, तिल, मूंग, कपास (रुई), चना, इन्द्र के भक्त, अग्नि-भक्त ये सब विशाखानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ १४ ॥

अनुराधानक्षत्रगत पदार्थ—

मैत्रे शौर्यसमेता गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः ।
ये साधवश्च लोके सर्वं च शरत्समुत्पन्नम् ॥ १५ ॥

बली, समूहों में प्रधान, साधुओं के भक्त, संघ में बैठने वाले, वाहन से चलने वाले, जनपदों के साधु, शारदीय धान्य आदि ये सब अनुराधानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥१५॥

ज्येष्ठानक्षत्रगत पदार्थ—

पौरन्दरेऽतिशूराः कुलवित्तयशोऽन्विताः परस्वहृतः ।
विजिगीषवो नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः ॥ १६ ॥

अति शूर, कुलीन, धनी, यशस्वी, दूसरे के धन अपहरण करने वाले, दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाले राजा, सेनापति ये सब ज्येष्ठानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ १६ ॥

मूलनक्षत्रगत पदार्थ—

मूले भेषजभिषजो गणमुख्याः कुसुममूलफलवार्ताः ।
बीजान्यतिधनयुक्ताः फलमूलैर्ये च वर्त्तन्ते ॥ १७ ॥

औषध, वैद्य, समूह में प्रधान, पुष्प, मूल और फल से आजीविका चलाने वाले, सब प्रकार के बीज, अतिधनी, फलाहारी, कन्दाहारी ये सब मूलनक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥१७॥

पूर्वाषाढानक्षत्रगत पदार्थ—

आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधनयुक्ताः ।
सेतुकरवारिजीवकफलकुसुमान्यम्बुजातानि ॥ १८ ॥

कोमल हृदय वाले, जल-मार्ग से चलने वाले (धीवर, जल में रहने वाले प्राणी आदि), सत्य भाषण करने वाले, दूसरे के धन आदि को नहीं चाहने वाले, धनी,

पुल बनाने वाले, जल से आजीविका चलाने वाले, जल से उत्पन्न फल और पुष्प ये सब पूर्वाषाढानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ १८ ॥

उत्तराषाढानक्षत्रगत पदार्थ—

विश्वेश्वरे महामात्रमल्लकरितुरगदेवतासक्ताः।
स्थावरयोगा भोगान्विताश्च ये तेजसा युक्ताः ॥ १९ ॥

महामात्र (मुख्य मन्त्री = महामात्राः प्रधानानि इत्यमरः), मल्ल बाहुयुद्ध में कुशल, हाथी, घोड़ा, देवताओं के भक्त, स्थावर (वृक्ष आदि), युद्ध में कुशल, भोगी, तेजस्वी ये सब उत्तराषाढानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ १९ ॥

श्रवणनक्षत्रगत पदार्थ—

श्रवणे मायापटवो नित्योद्युक्ताश्च कर्मसु समर्थाः।
उत्साहिनः सधर्मा भागवताः सत्यवचनाश्च ॥ २० ॥

मयापटु (मायावी, प्रपञ्ची), सदा सब कार्मों को करने में उद्यत, उत्साही, धर्मी, भगवान् का भक्त, सत्य भाषण करने वाले ये सब श्रवणनक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥२०॥

धनिष्ठानक्षत्रगत पदार्थ—

वसुभे मानोन्मुक्ताः क्लीबाश्चलसौहृदाः स्त्रियां द्वेष्याः।
दानाभिरता बहुवित्तसंयुताः शमपराश्च नराः ॥ २१ ॥

अहङ्काररहित, नपुंसक, अस्थिर मित्रता करने वाले, स्त्रीद्वेषी, दानी, बहुत धनी, जितेन्द्रिय ये सब धनिष्ठानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ २१ ॥

शतभिषानक्षत्रगत पदार्थ—

वरुणेशे पाशिकमत्स्यबन्धजलजानि जलचराजीवाः।
सौकरिकरजकशौण्डिकशाकुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन् ॥ २२ ॥

पाशिक (जाल से प्राणियों को मारने वाले), मछली मारने वाले, जल में उत्पन्न होने वाले सब द्रव्य, जलचर जन्तुओं से आजीविका करने वाले, सुअर को रखने वाले (डोम आदि), धोबी, मद्य बेचने वाले (कलवार आदि), पक्षियों को मारने वाले ये सब शतभिषानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ २२ ॥

पूर्वभाद्रपदानक्षत्रगत पदार्थ—

आजे तस्करपशुपालहिंस्रकीनाशनीचशठचेष्टाः।
धर्मव्रतैर्विरहिता नियुद्धकुशलाश्च ये मनुजाः ॥ २३ ॥

चोर, पशुपालक, क्रूर, कीनाश (क्षुद्र = कृतान्ते पुंसि कीनाशः क्षुद्रकर्षकयोस्त्रिषु इत्यमरः), नीच जन, शठ (परोपकार से विमुख), विधर्मी, व्रतों से रहित, बाहु युद्ध को जानने वाले ये सब पूर्वाभाद्रपदानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ २३ ॥

उत्तराभाद्रपदानक्षत्रगत पदार्थ—

आहिर्बुध्न्ये विप्राः क्रतुदानतपोयुता महाविभवाः ।
आश्रमिणः पाखण्डा नरेश्वराः सारधान्यं च ॥ २४ ॥

ब्राह्मण, यज्ञ करने वाले, दानी, तपस्वी, अति धनी, आश्रमी (चतुर्थाश्रम में रहने वाले), पाखण्डी (वेदनिन्दक), राजा, उत्तम धान्य ये सब उत्तराभाद्रपदानक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ २४ ॥

रेवतीनक्षत्रगत पदार्थ—

पौष्णे सलिलजफलकुसुमलवणमणिशङ्खमौक्तिकाब्जानि ।
सुरभिकुसुमानि गन्धा वणिजो नौकर्णधाराश्च ॥ २५ ॥

जल से उत्पन्न होने वाले द्रव्य, फल और फूल, नमक, रत्न, शङ्ख, मोती, कमल आदि सुगन्धयुक्त फूल, सुगन्धियुत द्रव्य, खरीदने बेचने वाले, नाविक ये रेवतीनक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ २५ ॥

अश्विनीनक्षत्रगत पदार्थ—

अश्विन्यामश्वहराः सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः ।
तुरगारोहा वणिजो रूपोपेतास्तुरगरक्षाः ॥ २६ ॥

घोड़े को चुराने वाले, सेनापति, वैद्य, सेवक, घोड़ा, घोड़े पर चढ़ने वाले, खरीदने-बेचने वाले, सुन्दर, अश्वरक्षक ये सब अश्विनीनक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ २६ ॥

भरणीनक्षत्रगत पदार्थ—

याम्येऽसृक्पिशितभुजः क्रूरा वधबन्धताडनासक्ताः ।
तुषधान्यं नीचकुलोद्भवा विहीनाश्च सत्त्वेन ॥ २७ ॥

रक्त मिश्रित मांस खाने वाले, क्रूर, वध, बन्धन और ताडन करने वाले, भूसी वाले धान्य, नीच कुल में उत्पन्न, उदारता आदि गुणों से रहित ये सब भरणीनक्षत्रगत पदार्थ हैं ॥ २७ ॥

ब्राह्मण आदि जातियों के नक्षत्र—

पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि ।
सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥ २८ ॥
आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रवदन्ति तानि ।
मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः ॥ २९ ॥
सौम्यैन्द्रचित्रावसुदैवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि ।
सार्पं विशाखा श्रवणो भरण्यश्चण्डालजातेरभिनिर्दिशन्ति ॥३०॥

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा और कृत्तिका ब्राह्मणों के। उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा और पुष्य क्षत्रियों के। रेवती, अनुराधा, मघा और रोहिणी

वैश्यों के। पुनर्वसु, हस्त, अभिजित् और अश्विनी क्रय-विक्रय करने वालों के। मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा क्रूर मनुष्यों के। मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा सेवकों के। तथा आश्लेषा, विशाखा, श्रवण और भरणी चाण्डालों के स्वामी हैं ॥२८-३०॥

पापग्रहों का प्रयोजन—

रविरविसुतभोगमागतं क्षितिसुतभेदनवक्रदूषितम्।
ग्रहणगतमथोल्कया हतं नियतमुपाकरपीडितं च यत् ॥ ३१ ॥
तदुपहतमिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्यययातमेव वा।
निगदितपरिवर्गदूषणं कथितविपर्ययगं समृद्धये ॥ ३२ ॥

रवि और शनि से मुक्त, मङ्गल के भेदन या वक्र गमन से दूषित, ग्रहण कालिक, उल्का से हत, चन्द्रकिरण से पीडित (चन्द्रमा जिस नक्षत्र की योगतारा को आच्छादित या उसके दक्षिण भाग में होकर गमन करे) या स्वाभाविक उत्तम गुण से रहित नक्षत्र को मुनि लोग पीडित कहते हैं। इस तरह पीडित नक्षत्र पूर्वोक्त अपने वर्ग का नाश और उक्त से भिन्न लक्षणयुत हो तो उनकी वृद्धि करता है।

यहाँ पर कश्यप—

शनैश्चरस्य सूर्यस्य यद्वर्क्षं भोगमागतम्। धरित्रीतनयेनापि भिन्नं वक्रप्रदूषितम् ॥
राहुग्रस्तमथोल्काभिर्हतमुत्पातदूषितम्। चन्द्रेण पीडितं यच्च प्रकृतेरन्यथा स्थितम् ॥
तच्चोपहतकं विन्द्याद्यवर्गं हन्ति सर्वदा। स्ववर्गमन्यथा नित्यं पुष्णाति निरुपद्रवम् ॥३१-३२॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां नक्षत्रव्यूहाध्यायः पञ्चदशः ॥ १५ ॥



अथ ग्रहभक्तियोगाध्यायः

किस देश में किन व्यक्तियों का कौन ग्रह स्वामी है, इसको कहते हैं, उनमें पहले सूर्य के देश और व्यक्ति—

प्राङ्नर्मदार्द्धशोणोड्रवङ्गसुह्माः कलिङ्गवाह्लीकाः।
शकयवनमगधशबरप्राग्ज्योतिषचीनकाम्बोजाः ॥ १ ॥
मेकलकिरातविटका बहिरन्तःशैलजाः पुलिन्दाश्च।
द्रविडानां प्रागर्द्धं दक्षिणकूलं च यमुनायाः ॥ २ ॥
चम्पोदुम्बरकौशाम्बिचेदिविन्ध्याटवीकलिङ्गाश्च।
पुण्ड्रा गोलांगूलश्रीपर्वतवर्द्धमानानि ॥ ३ ॥

इक्षुमतीत्यथ तस्करपारतकान्तारगोपबीजानाम् ।
तुपधान्यकटुकतरुकनकदहनविषसमरशूराणाम् ॥ ४ ॥
भेपजभिपक्चतुष्पदकृषिकरनृपहिंस्रयायिचौराणाम् ।
व्यालारण्ययशोयुततीक्ष्णानां भास्करः स्वामी ॥ ५ ॥

नर्मदा नदी के पूर्वभाग, शोण नद, उड्र, वङ्ग, सुह्म, कलिङ्ग, वाल्हीक, शक, यवन, मगध, शबर, प्राग्ज्यौतिप, चीन, कम्बोज, मेकल, किरात, विटक, पर्वत के बाहर और मध्य में रहने वाले, पुलिन्द जन, द्रविड का पूर्वार्ध, यमुना के दक्षिण तट, विन्ध्याचल के मध्य भाग, कलिङ्ग देश में स्थित जन, पुण्ड्र, गोलांगूल, श्रीपर्वत, वर्द्धमान, इक्षुवती नदी, तस्कर, पारतदेशवासी, वन, गौ को पालन करने वाले, बीज, भूसीवाले धान्य, कटुक द्रव्य, वृक्ष, सुवर्ण, अग्नि, विप, युद्ध में शूर, ओपधी, वैद्य, चतुष्पद पशु, किसान, राजा, क्रूर, संग्राम में जीतने की इच्छा रखने वाले, चोर, सर्प, निर्जन स्थान, यशस्वी, तीक्ष्ण (निम्ब आदि या जन) इन सबों के स्वामी सूर्य हैं।

यहाँ पर काश्यप—

मागर्द्ध नर्मदायाश्च शोणः शवरमागधाः । उड्रा वङ्गाः कलिङ्गाश्च बाल्हीका यवनाः शकाः ॥
काम्बोजा मेकलाः सुह्मा प्राग्ज्योतिषकिरातकाः । चीना. सर्वे सुशैलेयाः पार्वता बहिरन्तजाः ॥
यमुनाया याम्यकूलं कौशाम्ब्यौदुम्बराणि च । विन्ध्याटवी च पुण्ड्राश्च वर्द्धमानाश्च पर्वताः ॥
श्रीपर्वतश्चेदिपुरं गोलाङ्गूलं तथैव च । इक्षुमत्याश्रिता ये च जना शूरा मदोत्कटाः ॥
कान्तारमथ गोपाश्च कन्दरास्तस्करास्तथा । समरे विषमाः शूरास्तरव' कटुका अपि ॥
चतुष्पदा भेपजं च धान्यं वा भिषजस्तथा । अरण्यवासिव्यालाश्च कार्षका वाल्कास्तथा ॥
गौरपत्यं च किञ्जल्कं पुंसञ्ज्ञा ये च जन्तवः । सर्वेषां भास्कर- स्वामी तेजस्तेजस्विनामपि ॥ १-५ ॥

चन्द्र के प्रदेश और व्यक्ति—

गिरिसलिलदुर्गकोशलभरुकच्छसमुद्ररोमकतुषाराः ।
वनवासितङ्गणहलस्त्रीराज्यमहार्णवद्वीपाः ॥ ६ ॥
मधुररसकुसुमफलसलिललवणमणिशङ्खमौक्तिकाब्जानाम् ।
शालियवौषधिगोधूमसोमपाक्रन्दविप्राणाम् ॥ ७ ॥
सितसुभगतुरगरतिकरयुवतिचमूनाथभोज्यवस्त्राणाम् ।
शृङ्गिनिशाचरकार्षकयज्ञविदां चाधिपश्चन्द्रः ॥ ८ ॥

पर्वतदुर्ग, जलदुर्ग, कोशलदेशवासी मनुष्य, भरुकच्छ, समुद्र, रोमक, तुषार, वनवासी, तङ्गण, हल, स्त्रीराज्य, महासागर के अन्तर्गत द्वीप, मधुर रस, सब पुष्प और फल, जल, नमक, मणि, शङ्ख, मोती, जल से उत्पन्न होने वाली वस्तु (कमल आदि), धान्य, यव, ओषधी, गेहूँ, सोमरस पीने वाले मनुष्य, आक्रन्द (पार्ष्ण रक्षकों

के अन्तर्गत राज), ब्राह्मण, श्वेत वर्ण की सब वस्तुएँ, सब जनों का प्रिय, अश्व, कामी, स्त्री, सेनापति, भोजनसामग्री, वस्त्र, शृङ्गी पशु, निशाचर, किसान, याज्ञिक इन सबों के स्वामी चन्द्र हैं।

यहाँ पर काश्यप—

पर्वता जलदुर्गाश्च कोशलास्तङ्गणा हलाः। स्त्रीराज्यं भरुकच्छश्च तुषारा वनवासिनः॥
मौक्तिकं मणिशङ्खाब्जमौषधं कुसुमं फलम्। द्वीपा महार्णवे ये च मधुरा लवणादयः॥
गोधूमाः शालयः शुक्तिकार्पकाश्च यवा अपि। सोमपा ब्राह्मणा ये च यन्त्रास्तु सुरासवम्॥
स्त्रीसौभाग्यसमेताश्च लास्यहास्येंगितानि च। निशाचराधिपश्चन्द्रो हृष्टानां च प्रकीर्तितः॥६-८॥

मंगल के प्रदेश और व्यक्ति—

शोणस्य नर्मदाया भीमरथायाश्च पश्चिमार्द्धस्थाः।
निर्विन्ध्या वेत्रवती सिप्रा गोदावरी वेणा॥ ९॥
मन्दाकिनी पयोष्णी महानदी सिन्धुमालतीपाराः।
उत्तरपाण्ड्यमहेन्द्राद्रिविन्ध्यमलयोपगाश्चोलाः॥ १०॥
द्रविडविदेहान्ध्राश्मकभासापरकौङ्कणाः समन्त्रिपिकाः।
कुन्तलकेरलदण्डककान्तिपुरम्लेच्छसङ्करिणः॥ ११॥
नासिक्यभोगवर्धनविराटविन्ध्याद्रिपार्श्वगा देशाः।
ये च पिबन्ति सुतोयां तापीं ये चापि गोमतीसलिलम्॥ १२॥
नागरकृषिकरपारतहुताशनाजीविशस्त्रवार्त्तानाम्।
आटविकदुर्गकर्वटवधिकनृशंसावलिप्तानाम्॥ १३॥
नरपतिकुमारकुञ्जरदाम्भिकडिम्भाभिघातपशुपानाम्।
रक्तफलकुसुमविद्रुमचमूपगुडमद्यतीक्ष्णानाम्॥ १४॥
कोशभवनाग्निहोत्रिकधात्वाकरशाक्यभिक्षुचौराणाम्।
शठदीर्घवैरबह्वाशिनां च वसुधासुतोऽधिपतिः॥ १५॥

शोण नद, नर्मदा नदी और भीमरथा नदी के पश्चिम भाग में स्थित देश, निर्विन्ध्या, वेत्रवती, सिप्रा, गोदावरी, वेणा, गंगा, पयोष्णी, सिन्धु, मालती और पारा नदी, उत्तर पाण्ड्य, महेन्द्र पर्वत, विन्ध्याचल और मलयगिरि के समीपगत देश, चोल, द्रविड, विदेह, अन्ध्र, अश्मक, भासापर, कौङ्कण, समन्त्रिपिक, कुन्तल, केरल, दण्डकारण्य, कान्तिपुर, म्लेच्छ, सङ्कर जाति, नासिक्य, भोगवर्द्धन, तर्कराट, विन्ध्याचल के समीपस्थ देश, तापी और गोमती नदी के मधुर जल पीने वाले, नागर जन, किसान, पारत, अग्निहोत्री, सोनार, शस्त्र से आजीविका चलाने वाले, वनवासी, दुर्ग, कर्वटदेशवासी जन, वधिक, पापी, कामों में असंलग्न, राजा, बालक, हाथी,

दाम्भिक, बालकों को मारने वाले, पशुपालक, रक्त फल, रक्त पुष्प, प्रवाल, सेनापति, गुड, मदिरा, तीक्ष्ण (निम्ब आदि), कोश भवन, अग्निहोत्री, धातुओं की खान, शाक्य (रक्तपट), भिक्षु, चोर, शठ (परकार्य से विमुख), दृढद्वेष, अधिक भोजन इन सबों का स्वामी मङ्गल है।

यहाँ पर काश्यप—

महेन्द्रविन्ध्यमलया. सिप्रा वेणा महानदी । गोदावर्या नर्मदाया भीमायाः पश्चिमा दिशः ॥
चेदिका. कौङ्कणा दुर्गा द्रविडा वेत्रवत्नदी । मन्दाकिनी पयोष्णी च मालती सिन्धुपारका ॥
पाण्ड्याश्चोत्तरदेशस्था विदेहाश्चाश्मकास्तथा। भासापराः कुन्तलाश्च केरला दण्डकास्तथा ॥
नागराः पौरवाश्चैव कार्पका. शस्त्रवृत्तयः । हुताशनाजीविनो ये कुञ्जराः पशुपास्तथा ॥
साङ्ग्रामिका नृशंसाश्च सङ्कराश्चोपघातकाः । कुमारा भूमिजस्योक्ता दाम्भिकास्तस्करास्तथा९-१५

बुध के प्रदेश और व्यक्ति—

लौहित्यः सिन्धुनदः सरयूर्गाम्भीरिका रथाख्या च ।
गङ्गाकौशिक्याद्याः सरितो वैदेहकाम्बोजाः ॥ १६ ॥
मथुरायाः पूर्वार्द्धं हिमवद्गोमन्तचित्रकूटस्थाः ।
सौराष्ट्रसेतुजलमार्गपण्यविलपर्वताश्रयिणः ॥ १७ ॥
उदपानयन्त्रगान्धर्वलेख्यमणिरागगन्धयुक्तिविदः ।
आलेख्यशब्दगणितप्रसाधकायुष्यशिल्पज्ञाः ॥ १८ ॥
चरपुरुषकुहकजीवकशिशुकविशठसूचकाभिचाररताः ।
दूतनपुंसकहास्यज्ञभूततन्त्रेन्द्रजालज्ञाः ॥ १९ ॥
आरक्षकनटनर्तकघृततैलस्नेहबीजतिक्तानि ।
व्रतचारिरसायनकुशलवेसराश्चन्द्रपुत्रस्य ॥ २० ॥

लौहित्य और सिन्धु नद, सरयू, गाम्भीरिका, रथाख्या, गङ्गा, कौशिकी, विपाशा, सरस्वती और चन्द्रभागा नदी, मथुरा के पूर्वार्ध भाग, हिमालय पर्वत, गोमन्त पर्वत और चित्रकूट पर्वत के प्रान्त में स्थित मनुष्य, सौराष्ट्र देश स्थित मनुष्य, सेतु (पुल) के आश्रय में रहने वाले, जलमार्ग के आश्रय में रहने वाले, पण्यवृत्ती, बिल में निवास करने वाले, पर्वत पर रहने वाले, वापी, कूप, तड़ाग आदि, यन्त्र को जानने वाले, गान विद्या जानने वाले, लेखक, मणि के लक्षण को जानने वाले, रंगरेज, सुगन्धि द्रव्य बनाने वाले, चित्रकार, वैयाकरण, ज्यौतिषी, आयुष्य (रसायन, वाजीकरण आदि को जानने वाले), शिल्पी, गुप्तचर, कुहक (प्रसेन आदि के दर्शन से जीवनयात्रा चलाने वाले), बालक, कवि, शठ (परोपकार से विमुख), चुगलखोर, अभिचार (वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण, मारण आदि को जानने वाले), दूत, नपुंसक, हँसी उड़ाने वाले, भूत-प्रेत के तन्त्र को जानने वाले, इन्द्रजाल को जानने

वाले, रचक, नाचने वाले, घृत, तेल, स्नेह (तिल अखोट आदि), बीज, तिक्त (निम्बादि), व्रती (ब्रह्मचारी आदि), रसायन को जानने वाले, वेसर (अश्व विशेष) इन सबों का स्वामी बुध है।

यहाँ पर काश्यप—

चित्रकूटगिरी रम्यो हिमवान् कौशिकी तथा। मथुरायाश्च पूर्वार्द्धं लौहित्यः सिन्धुरेव च। गांभीरिका च सरयू रथाख्या गंडकी नदी। गान्धर्वा लेखहाराश्च तथोदाराश्च कृत्रिमाः॥ वैदेहाः सर्वजलजा काम्बोजाश्च सुराष्ट्रिकाः। गन्धयुक्तिविदो ये च सौगन्धिपदलेपकाः॥ सुवर्णरजतं रत्नं मातङ्गतुरगादि यत्। पौरा जनपदाः सौम्याः सोमपुत्रवशे स्थिताः॥

बृहस्पति के प्रदेश और व्यक्ति—

सिन्धुनदपूर्वभागो मथुरापश्चार्द्धभरतसौवीराः।
स्रुघ्नोदीच्यविपाशासरिच्छतद्रू रमठशाल्वाः॥ २१॥
त्रैगर्तपौरवाम्बष्ठपारता वाटधानयौधेयाः।
सारस्वतार्जुनायनमत्स्यार्द्धग्रामराष्ट्राणि॥ २२॥
हस्त्यश्वपुरोहितभूपमन्त्रिमाङ्गल्यपौष्टिकासक्ताः।
कारुण्यसत्यशौचव्रतविद्यादानधर्मयुताः॥ २३॥
पौरमहाधनशब्दार्थवेदविदुषोऽभिचारनीतिज्ञाः।
मनुजेश्वरोपकरणं छत्रध्वजचामराद्यं च॥ २४॥
शैलेयककुष्ठमांसीतगररससैन्धवानि वल्लीजम्।
मधुररसमधूच्छिष्टानि चोरकश्चेति जीवस्य॥ २५॥

सिन्धु नद के पूर्व भाग, मथुरा के पश्चिमार्द्ध, भरत, सौवीर, स्रुघ्न, उत्तर दिशा में रहने वाले, विपाशा नदी, शतद्रु नदी, रमठ, शाल्व, त्रैगर्त, पौरव, अम्बष्ठ, पारत, वाटधान, यौधेय, सारस्वत, अर्जुनायन और मत्स्य देशों के ग्राम और राष्ट्र का आधा, हाथी, घोड़ा, पुरोहित, राजा, मन्त्री, मङ्गल कार्य (विवाह, उपनयन आदि) में सक्त, पौष्टिक कार्य संलग्न, दयालु, सत्य भाषण करने वाले, शौचयुत (शुद्ध = दूसरे के धनादि को नहीं चाहने वाले), तपस्वी, विद्वान्, दानी, धर्मी, ग्राम में उत्पन्न होने वाले, वैयाकरण, अर्थ को जानने वाले, वेद को जानने वाले, अभिचारज्ञ, नीतिशास्त्र को जानने वाले, राजा के उपकरण (आयुध, सन्नाह आदि), छत्र, ध्वजा, चामर आदि, सुगन्ध द्रव्य, कुष्ट, मांसीतगर, रस (बोल), नमक, मूंग आदि, मधुर रस, मधूच्छिष्ट (सिक्थक = मोम), चोरक, सुगन्ध द्रव्य इन सबों का स्वामी गुरु है।

यहाँ पर काश्यप—

त्रैगर्तसिन्धुसौवीराः शतद्रुमधुरे अपि। स्रुघ्नोदीच्यविपाशाश्च पारताम्बष्ठकास्तथा॥ राजा पुरोहितो मन्त्री माङ्गल्यं पौष्टिकं मतम्। कारुण्यं कर्म सिद्धानां विद्याशौचतपस्विनाम्॥

मत्स्याश्च वाटधानाश्च यौधेयाश्चार्जुनायना। सारस्वताश्च रमठा हस्त्यश्वरथजधामराः॥
शब्दार्थविदुष पौरा नीतिज्ञाः शीलसंयुताः। मांसीतगरकुष्ठं च शैलेयं लवणं रसाः॥
मधुरस्वादवल्लीज विप्राणां चाधिपो गुरुः ॥ २१–२५ ॥

शुक्र के प्रदेश और व्यक्ति—

तक्षशिलमार्त्तिकावतबहुगिरिगान्धारपुष्कलावतकाः।
प्रस्थलमालवकैकयदाशार्णोशीनराः शिवयः॥ २६ ॥
ये च पिबन्ति वितस्तामिरावतीं चन्द्रभागसरितं च।
रथरजताकरकुञ्जरतुरगमहामात्रधनयुक्ताः ॥ २७ ॥
सुरभिकुसुमानुलेपनमणिवज्रविभूषणाम्बुरुहशय्याः।
वरतरुणयुवतिकामोपकरणमृष्टान्नमधुरभुजः ॥ २८ ॥
उद्यानसलिलकामुकयशःसुखौदार्यरूपसम्पन्नाः।
विद्वदमात्यवणिग्जनघटकृच्चित्राण्डजास्त्रिफलाः ॥ २९ ॥
कौशेयपट्टकम्बलपत्रौर्णिकरोध्रपत्रचोचानि।
जातीफलागुरुवचापिप्पल्यश्चन्दनं च भृगोः ॥ ३० ॥

तक्षशिला नगरी, मार्तिकावत देश, बहुगिरि, गान्धार, पुष्कलावतक, प्रस्थल, मालव, कैकय, दाशार्ण, उशीनर, शिवि, वितस्ता, ऐरावती और चन्द्रभागा नदी के जल पीने वाले, रथ, चान्दी, आकर (अर्थोत्पत्ति स्थान), हाथी, घोड़ा, महामात्र (हस्ती के अधिप), धनी, सुगन्ध द्रव्य, पुष्प, चन्दन, मणि (पद्मराग आदि), वज्र (हीरक), भूषण, अम्बुरुह (कमल आदि), शय्या, प्रधान, युवा, स्त्री, कामोपकरण (पुष्प, धूप, माला, चन्दन आदि), मृष्ट (शोधित) अन्न को भोजन करने वाले, मधुर भोजन करने वाले, उद्यान, जल, कामी, यशस्वी, सुखी, दाता, सुन्दर, विद्वान्, मन्त्री, क्रय-विक्रय से जीवनयात्रा चलाने वाले, कुम्भार, चित्राण्डज (नाना प्रकार के पक्षी), फलत्रय (एला, लवङ्ग, कक्कोल), कौशेयपट (नेत्रपट), कम्बल, पत्रौर्णिक (धौतकौशेय), रोध्र (एक प्रकार का सुगन्ध द्रव्य), पत्र (सुगन्ध पत्र), चोच (नारिकेल), जाती फल (जाय फल), अगुरु, वचा (वच), पिप्पली (पीपर) चन्दन इन सबों का स्वामी शुक्र है।

यहाँ पर काश्यप—

चन्द्रभागां वितस्तां चैरावतीं च पिबन्ति ये। पुष्करावतकैकेया गान्धारप्रस्थलारतया॥
दशार्णा मालवास्तक्षशिला मौक्तिकमेव च। धनाढ्या कुञ्जरा अश्वा प्रस्थलं च विलेपनम्॥
सुरूपसुभगोद्यानकामुका कामचारिणः। वेसरा मधुरा हृद्याः सलिलाशयजीविनः॥
तरुणा योषितः क्रीडाविदुषो जनगोष्ठिकाः। चित्राण्डजाश्च कौशेयंपत्रौर्णं काशिकौशिकाः॥
पिप्पल्यश्चन्दनं जातिफलमामलकानि च। गन्धपत्रस्य लोध्रस्य शुक्रश्चाधिपतिः स्मृतः॥

शनि के देश और व्यक्ति–

आनर्त्तार्बुदपुष्करसौराष्ट्राभीरशूद्ररैवतकाः।
नष्टा यस्मिन् देशे सरस्वती पश्चिमो देशः॥ ३१॥
कुरुभूमिजाः प्रभासं विदिशा वेदस्मृती महीतटजाः।
खलमलिननीचतैलिकविहीनसत्त्वोपहतपुंस्त्वाः॥ ३२॥
बान्धनशाकुनिकाशुचिकैवर्त्तविरूपवृद्धसौकरिकाः।
गणपूज्यस्खलितव्रतशबरपुलिन्दार्थपरिहीनाः॥ ३३॥
कटुतिक्तरसायनविधवयोषितो भुजगतस्करमहिष्यः।
खरकरभचणकवातलनिष्पावाश्चार्कपुत्रस्य॥ ३४॥

आनर्त, अर्बुद, पुष्कर, सौराष्ट्र, आभीर, शूद्र, रैवतक, सरस्वती नदी जहाँ पर अलक्षित हुई है वह प्रदेश (पश्चिम प्रदेश), कुरु भूमि में उत्पन्न मनुष्य (स्थानेश्वर में निवास करने वाले), प्रभास क्षेत्र, विदिशा नगरी, वेदस्मृती नदी, मही नदी के तट में उत्पन्न मनुष्य, खल, मलिन, नीच, तेली, निर्बल नपुंसक, बन्धनस्थान स्थित, पक्षियों को मारने वाले, अशुचि में रत (अपवित्र), धीवर, कुरूप, वृद्ध, सूअर पालने वाले (डोम), सद्वियों में प्रधान, नियम को नहीं पालन करने वाले, शबर, पुलिन्द (म्लेच्छ जाति), दरिद्र, कटु द्रव्य (मरीच आदि), तिक्त (निम्ब आदि), रसायन, विधवा स्त्री, सर्प, चोर, महिषी (भैंस), गदहा, ऊँट, चना, वातल (मटरा राजमाष आदि), धान्य इन सबों का स्वामि शनि है।

यहाँ पर काश्यप–

अर्बुदो रैवतगिरिः सौराष्ट्रा भीरुकास्तथा। सरस्वतीपश्चिमाद्या प्रभासं कुरुजाङ्गलम्॥
आनर्त्तशूद्रा विदिशा खलतैलिकनीचकाः। वेदस्मृती सौकरिका मलिनश्च महीतटम्॥
दुःशीलशाकुना हीनाः पशुबन्धनकास्तथा। पाखण्डिनश्च वैतण्डा निर्ग्रन्थाः शबराः क्रूराः॥
विरूपाः कटुतिक्तानि रसायनविषादिनः। पुलिन्दास्तस्कराः सर्पा महिषोष्ट्रखराः शुनी॥
चणका वातला वृद्धाः पुंस्त्वसत्त्वविवर्जिताः। काकगृध्रशृगालाना वृकाणां च प्रभुः शनिः॥

राहु के प्रदेश और व्यक्ति–

गिरिशिखरकन्दरदरीविनिविष्टा म्लेच्छजातयः शूद्राः।
गोमायुभक्षशूलिकवोक्काणाश्वमुखविकलाङ्गाः॥ ३५॥
कुलपांसनहिंस्रकृतघ्नचौरानिःसत्यशौचदानाश्च।
खरचरनियुद्धवित्तीव्ररोषगर्भाशया नीचाः॥ ३६॥
उपहतदाम्भिकराक्षसनिद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे।
धर्मेण च सन्त्यक्ता माषतिलाश्चार्कशशिशत्रोः॥ ३७॥

पर्वत के शिखर, कन्दरा (पर्वतीय नीच स्थान) और दरी (गुहा) में रहने वाले, म्लेच्छ जाति, शूद्र, सियार खाने वाले, शूलिक, चोकाण, अश्वमुख, अङ्गहीन मनुष्य, कुल में कलङ्क लगाने वाले, क्रूर, कृतघ्न (उपकार को नहीं मानने वाले), चोर, मिथ्या व्यवहार करने वाले, शौचरहित, कृपण, गदहा, गुप्तचर, बाहुयुद्ध को जानने वाले, अति क्रोधी, गर्त में रहने वाले, नीच, उपहत (कुत्सित पुरुष), मिथ्याधर्मी, राक्षस, अधिक सोने वाले सब जन्तु, धर्महीन, उड़द, तिल इन सबों का स्वामी राहु है।

यहाँ पर काश्यप—

बुभुक्षितास्तीक्ष्णरोषा विभिन्नाः कुलपांसनाः ।
नीचा म्लेच्छोत्सादकाश्च गर्त्तस्थाः पारदारिकाः ॥

सत्यधर्मविहीनाश्च गिरिस्थाः कन्दराश्रिताः । प्रतापसत्यहीनाश्च शृगालादा महाशनाः ॥
तिलाश्च बाहुयुद्धज्ञा माषाश्चौरा खराश्वराः । यज्ञान् हिंसन्ति ये नित्यं राहुस्तेषामधीश्वरः ॥

केतु के प्रदेश और व्यक्ति—

गिरिदुर्गपह्लवश्वेतहूणचोलावगाणमरुचीनाः ।
प्रत्यन्तधनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेताः ॥ ३८ ॥
परदारविवादरताः पररन्ध्रकुतूहला मदोत्सिक्ताः ।
मूर्खाधार्मिकविजिगीषवश्च केतोः समाख्याताः ॥ ३९ ॥

गिरिदुर्ग, पह्लव, श्वेत, हूण, चोल, आवगाण, मरुभूमि, चीन, गुहा में निवास करने वाले, धनी, महेच्छ (उदार), व्यवसायी, पराक्रमी, परस्त्रीगामी, विवादी दूसरे का दोष सुनने के लिये उत्कण्ठित, मत्त (पागल), मूर्ख, अधार्मिक, जीतने की इच्छा रखने वाला इन सबों का स्वामी केतु है।

यहाँ पर काश्यप—

प्राकाराभ्युच्छ्रिताः शृङ्गगिरिस्था विजिगीषवः । प्रत्यन्तवासाभिरताः परच्छिद्रविशारदाः ॥
मूर्खा विज्ञानहीनाश्च निर्मर्यादा नरास्तथा । परदाररता नीचाः केतोरिति विनिर्दिशेत् ॥

तथा समासस‍ंहिता में—

भानोरङ्गकलिङ्गवङ्गयमुना श्रीपर्वता पारता
बाह्लीकोत्कटसुह्मशोणमगधाः प्राङ्नर्मदाद्धांशकाः ।
कौशाम्बी शबरान्ध्रपौण्ड्र्यवना याम्याश्रिता मेखला-
श्चीनोदुम्बरवर्द्धमानविकटाश्चापेक्षुमध्याश्रिताः ॥
जलपर्वतदुर्गकोशला वनिताराज्यतुषारतङ्गणाः ।
वनवासहलाः सरस्वती शीतांशोर्भृगुकच्छरोमकाः ॥
क्षितिजस्य महानदी पयोष्णी वेणा वेत्रवती च मालती ।
मत्स्यद्रविडारमकाःप्रचोला भीमार्द्धे स्वपरे च ये स्थिताश्च ॥
पारेविन्ध्य पश्चिम शोणमार्गो गोदावर्या कृष्णनद्रिर्महेन्द्रः ।

सिप्रा सिन्धुर्मुनिजस्येति देशा वैदेहाख्याः कोङ्कणाः केरलाश्च ॥
सौम्यस्य सौराष्ट्रिकभोजदेशा गङ्गाश्रिताश्चोत्तरकूलनद्यः।
विन्ध्यार्द्धमन्त्यं मथुरापुरस्तात्सुवास्तुसिन्धुद्रिगुहाश्रिताश्च ॥
जीवस्य सारस्वतमत्स्यशाल्वाः प्राक्सिन्धुभागो मथुरापुरार्द्धम्।
सूक्ष्मः शतद्रूः रमठा विपाशा त्रैगर्तयौधेयकपारताश्च ॥
देशा भृगोस्तक्षशिला वितस्ता गान्धारकाः कैकयमालवाश्च।
दाशार्णकौशीनरचन्द्रभागाश्रेयाह्नमिश्रास्थलमालकाख्याः।
सरस्वती यत्र गता प्रणाशं वेदस्मृती मालवकाः सुराष्ट्राः।
पाश्चात्यदेशा विदिशा मही च सौरेः स्मृता पुष्करमर्बुदश्च ॥
राहोः कुनखकुलपांसननीचशूद्रा बोक्काणशूलिकनिषुदविदुप्रकोपाः।
गोमायुभक्ष्यगिरिदुर्गनिवासिनश्च गर्भस्थहिंस्रपरदाररताः खलाश्च ॥
शिखिनो धनसस्थितावगाना म्लेच्छपह्लवचोलहूणचीनाः।
व्यवसायपराक्रमोपपन्ना परदारानुरता मदोत्कटाश्च ॥ ३८-३९ ॥

इनका प्रयोजन—

उदयसमये यः स्निग्धांशुर्महान् प्रकृतिस्थितो
यदि च न हतो निर्घातोल्कारजोग्रहमर्दनैः।
स्वभवनगतः स्वोच्चप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः
स भवति शिवस्तेषां येषां प्रभुः परिकीर्तितः ॥ ४० ॥

उदय समय में निर्मल, विपुल, स्वभाव स्थित, निर्घात, उल्का, धूलि तथा ग्रहयुद्ध से अहत, अपनी राशि में स्थित, उच्चगत या शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र) से दृष्ट ग्रह जिनका स्वामी हो उनके लिये शुभ करने वाला होता है ॥ ४० ॥

तथा इनका और प्रयोजन—

अभिहितविपरीतलक्षणे क्षयमुपगच्छति तत्परिग्रहः।
डमरभयगदातुराजना नरपतयश्च भवन्ति दुःखिताः ॥४१॥
यदि न रिपुकृतं भयं नृपाणां स्वसुतकृतं नियमादमात्यजं वा।
भवति जनपदस्य चाप्यवृष्ट्या गमनमपूर्वपुराद्रिनिम्नगासु ॥४२॥

जो ग्रह पूर्वोक्त शुभ लक्षणों से विपरीत लक्षण युत हो वह अपने परिग्रह वर्ग का दमरयुद्ध और रोग से नाश करता है। तथा राजाओं को दुःखी करता है। इस तरह के उत्पात होने पर यदि राजा या लोगों को शत्रु, पुत्र या निश्चित करके मन्त्री का भय न हो तो उनका तथा लोगों का अवृष्टि होने के कारण अपूर्व पुर, पर्वत और नदियों में गमन होता है। अर्थात् इस तरह के उत्पात होने पर राजा या लोगों को शत्रु, पुत्र या मन्त्री का भय अवश्य होता है। यदि किसी तरह उन आपत्तियों

से मुक्त हो जाय तो अवृष्टि के कारण अन्न, शाक, जल के लिये जहाँ पर कभी नहीं गया था उन पुर, पर्वत और नदियों में जाना पड़ता है।

यहाँ पर गर्ग—

स्निग्धरश्मिविशालश्च प्रकृतिस्थश्च यो ग्रहः। ग्रहयुद्धरजोधूमनिर्घातोल्काघनाहतः॥ स यदा स्वोच्चराशिस्थो मित्रभे स्वगृहेऽपि वा। स्थित शुभग्रहैर्दृष्टः स पुष्णाति परिग्रहम्॥ स्वमन्यथा हन्ति वर्गं जननाशं करोति च। नृपाणां भयदः शोककरश्चावृष्टिभयकारकः॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां ग्रहभक्तियोगाध्यायः षोडशः॥ १६॥

अथ ग्रहयुद्धाध्यायः

उसमें पहले उपोद्‌घात—

युद्धं यथा यदा वा भविष्यमादिश्यते त्रिकालज्ञैः।
तद्विज्ञानं करणे मया कृतं सूर्यसिद्धान्तात्॥ १॥

जिस समय जिस प्रकार से ताराग्रहों का युद्ध त्रिकालज्ञों ने कहा है उसको सूर्यसिद्धान्त से लेकर मैंने करण (पञ्चसिद्धान्तिका) में कहा है॥ १॥

युद्ध का कारण—

वियति चरतां ग्रहाणामुपर्युपर्यात्ममार्गसंस्थानम्।
अतिदूराद् दृग्विषये समतामिव सम्प्रयातानाम्॥ २॥
आसन्नक्रमयोगाद्भेदोल्लेखांशुमर्दनासव्यैः।
युद्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम्॥ ३॥

आकाश में चलते हुये, ऊपर ऊपर अपने अपने मार्ग में स्थित, अति दूर से देखने से समान की तरह प्रतीत होने वाले ग्रहों के पराशर आदि मुनियों ने आसन्नक्रम योग के भेद से भेद, उल्लेख, अंशुमर्दन, अपसव्य ये चार प्रकार के ग्रहयुद्ध कहे हैं।

विशेष—अध स्थित बिम्ब से ऊर्ध्वस्थित बिम्ब आच्छादित होने से भेद, एक बिम्ब परिधि से दूसरे की बिम्ब परिधि स्पर्श करे तो उल्लेख, आसन्न स्थित दोनों ग्रहों के परस्पर किरण का संयोग होने से अंशुमर्दन और ठीक दक्षिणोत्तर में स्थित होने से अपसव्य नामक ग्रहयुद्ध होता है॥

यहाँ पर पराशर—

भेदनमारोहणमुल्लेखनं रश्मिसंसर्गश्चेति, ग्रहयुद्धं चतुर्विधमाचक्षते कुशलाः, तेषां पूर्वःपूर्वो गरीयान्।

यहाँ पर गर्ग—

छादनं रोधनं चैव रश्मिमर्दस्तथैव च। अपसव्यं ग्रहाणां च चतुर्धा युद्धमुच्यते॥

यहाँ पर काश्यप—

सर्वमध्येऽप्य शीघ्रेन्दुरततस्तस्यैव चात्मजः। भार्गवो रविभौमौ च जीवो मन्दः शनैश्चरः॥

दीप्रगा मन्दगाश्चेति काले लेकर्वगामिनः । ततो योगो भवेदेषां यलोऽशकैमाश्रिताः ॥
उपर्युपरि संस्थास्ते दृश्यन्ते युगपत्स्थिताः । भेदोल्लेखांशुमर्दाश्चापसव्यश्च ; तथापरः ॥
चतुष्प्रकार संयोगो युद्धे तु दिविचारिणाम् ॥ २-३ ॥

चार प्रकार के युद्धों का फल—

भेदे वृष्टिविनाशो भेदः सुहृदां महाकुलानां च ।
उल्लेखे शस्त्रभयं मन्त्रिविरोधः प्रियान्नत्वम् ॥ ४ ॥
अंशुविरोधे युद्धानि भूभृतां शस्त्ररुक्क्षुदवमर्दाः ।
युद्धे चाप्यपसव्ये भवति युद्धानि भूपानाम् ॥ ५ ॥

यदि भेद युद्ध हो तो वर्षा का नाश तथा मित्र और उत्तम कुलोत्पन्न मनुष्यों में परस्परभेद होता है। उल्लेखयुद्ध हो तो शस्त्रभय, मन्त्रियों में विरोध और दुर्भिक्ष होता है। अंशुविरोधयुद्ध हो तो, राजाओं में परस्पर युद्ध, शस्त्र, रोग और क्षुधाओं से मनुष्य को अत्यन्त पीड़ा होती है। तथा अपसव्ययुद्ध (कोई ग्रह किसी ग्रहके दक्षिण पार्श्व से आगे होकर वामपार्श्वगत हो तो) राजाओं में परस्पर युद्ध होता है ॥ ४-५ ॥

ग्रहों की यायी, नागर और आक्रन्द संज्ञा—

रविराक्रन्दो मध्ये पौरः पूर्वेऽपरे स्थितो यायी ।
पौरा बुधगुरुरविजा नित्यं शीतांशुराक्रन्दः ॥ ६ ॥
केतुकुजराहुशुक्रा यायिन एते हता घ्नन्ति ।
आक्रन्दयायिपौरान् जयिनो जयदाः स्ववर्गस्य ॥ ७ ॥

सूर्य मध्यान्ह समय में आक्रन्द, पूर्व में पौर और पश्चिम में यायी होता है। बुध, बृहस्पति, और शनि, सदा पौर, चन्द्र आक्रन्द तथा केतु, मंगल, राहु और शुक्र यायीसंज्ञक हैं। ये ग्रह पीड़ित हों तो आक्रन्द, यायी और पौरों का नाश करते हैं, जैसे यदि आक्रन्दसंज्ञकग्रह पीड़ित हों तो आक्रन्द (रक्षक आदि = आरावे रुदिते त्रातर्य्याक्रन्द इत्यमरः) का, यायीसंज्ञक पीड़ित हो तो यायी (गमन करने वालों) का और पौर संज्ञक ग्रह पीड़ित हो तो पुरवासियों का नाश करता है। तथा विजयी हों तो अपने वर्ग की विजय करते हैं ॥ ६-७ ॥

— यहाँ पर विशेष—

पौरे पौरेण हते पौराः पौरान् नृपान्विनिघ्नन्ति ।
एवं याय्याक्रन्दा नागरयायिग्रहाश्चैव ॥ ८ ॥

यदि पौर ग्रह से पौर ग्रह पीड़ित हो तो पुरवासी राजाओं से पुरवासी राजा का नाश होता है। इसी तरह यायी ग्रह से आक्रन्द ग्रह पीड़ित हो तो यायी मनुष्य से

आक्रन्द मनुष्य का और। आक्रन्द ग्रह से यायी पीड़ित हो तो आक्रन्द से यायी का नाश होता है। तथा नागर ग्रह से यायी पीड़ित हो तो नागर मनुष्य से यायी का और यायी ग्रह से नागर ग्रह पीड़ित हो तो यायी मनुष्य से नागर मनुष्य का नाश होता है ॥ ८ ॥

पराजित ग्रहों का लक्षण—

दक्षिणदिक्स्थः परुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृत्तोऽणुः ।
अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥ ९ ॥

दक्षिण दिशा में स्थित, रूक्ष, कम्पायमान, दूसरे ग्रह के पास में नहीं जाकर लौटने वाला, सूक्ष्म बिम्ब वाला, अन्य ग्रह से आक्रान्त, विकारयुत, किरण रहित, विवर्ण इन लक्षणों से युत ग्रह पराजित होते हैं।

यहाँ पर पराशर—

दशभिर्लक्षणैर्ग्रहं जितं विन्द्यात्, विवर्णः परुषः सूक्ष्मो याम्याशामार्गस्थोऽधिरूढो निष्प्रभो विकृतोऽभिहतोऽप्राप्य निवृत्तो वेपनश्च। अन्यथा विजयी।

यहाँ पर गर्ग—

अरश्मिर्लोहितः श्याम परुषः सूक्ष्म एव च। अपसव्यगतो यश्च घ्रक्रान्तः पतितस्तथा ॥
च्युतः स्थानाद्धतो यश्च प्रतिस्तब्धस्तथैव च। निष्प्रभो विकृतश्चापि जवेनाभिहतश्च यः ॥
अप्राप्य वा निवृत्तो यो वेपनः कृष्ण एव च। लक्षणैः सप्तदशभिर्ग्रहं विन्द्यात्पराजितम् ॥

विजयी ग्रहों का लक्षण—

उक्तविपरीतलक्षसम्पन्नो जयगतो विनिर्देश्यः ।
विपुलः स्निग्धो द्युतिमान् दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः ॥ १० ॥

पूर्वोक्त लक्षण से विपरीत लक्षणयुत (उत्तर दिशा में स्थित, स्निग्ध, कम्पन से रहित, दूसरे ग्रह को प्राप्त करने वाला, ऊपर में स्थित और तेजस्वी) हो, तथा दक्षिण में स्थित होने पर भी यदि विपुल, निर्मल, कान्तियुत बिम्ब वाला ग्रह हो तो विजयी होता है।

यहाँ पर गर्ग—

द्युतिमान् रश्मिसम्पन्नः प्रसन्नो रजतप्रभः। बृहद्रूपधरश्चैव यः समेत्य ग्रहो भवेत् ॥
प्रभावर्णाधिको यश्च ग्रहमावृत्य तिष्ठति। तादृशं जयिनं विन्द्याद्ग्रह ग्रहसमागमे ॥

यहाँ पर पुलिशाचार्य—

सर्वे जयिन उदक्स्था दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्रः ॥ १० ॥

विजयी ग्रहों का और लक्षण—

द्वावपि मयूखयुक्तौ विपुलौ स्निग्धौ समागमे भवतः ।
तत्रान्योन्यं प्रीतिर्विपरीतावात्मपक्षघ्नौ ॥ ११ ॥

यदि समागम-समय में दोनों ग्रह किरणयुक्त, विपुल या स्निग्ध हों तो दोनों ग्रहों के वर्गों में प्रीति और विपरीत हों तो अपने २ पक्षों का नाश करते हैं॥ ११॥

यहाँ पर विशेष—

युद्धं समागमो वा यद्यव्यक्तौ स्वलक्षणैर्भवतः।
भुवि भूभृतामपि तथा फलमव्यक्तं विनिर्देश्यम्॥ १२॥

युद्ध (भौम आदि ग्रहों का परस्पर युद्ध) और समागम (चन्द्र के साथ सम्मेलन) यदि अपने-अपने उक्त लक्षणों से अव्यक्त (अप्रकाशित) हो (जैसे युद्ध में कौन ग्रह विजयी और कौन ग्रह पराजित है इसका ज्ञान न होता हो तथा समागम में ग्रह से चन्द्रमा न उत्तर न दक्षिण किन्तु मध्य में हो कर गमन करता हो, तो पृथ्वी पर राजाओं को भी अव्यक्त सन्दिग्धात्मक) फल कहना चाहिये॥ १२॥

सब ग्रहों से पराजित मङ्गल का फल—

गुरुणा जितेऽवनिसुते बाह्लीका यायिनोऽग्निवार्ताश्च।
शशिजेन शूरसेनाः कलिङ्गशाल्वाश्च पीड्यन्ते॥ १३॥
सौरिणारे विजिते जयन्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति।
कोष्ठागारम्लेच्छक्षत्रियतापश्च शुक्रजिते॥ १४॥

यदि मङ्गल बृहस्पति से पराजित हो तो वाल्हीक देश में निवास करने वाले, विजय की इच्छा करने वाले, अग्नि से जीवनयात्रा चलाने वाले ये सब पीड़ित होते हैं। यदि बुध से पराजित हो तो शूरसेन, कलिङ्ग और शाल्व देश में रहने वाले मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि शनैश्चर से पराजित हो तो नगरों में निवास करने वाले विजयी और प्रजा गण दुखी होते हैं। यदि शुक्र से पराजित हो तो कोष्ठागार (अन्तर्गृह = पुंसि कोष्ठोऽन्तर्जठरं कुसूलोऽन्तर्गृहन्तया-इत्यमरः), म्लेच्छ जाति और क्षत्रिय पीड़ित होते हैं॥ १३–१४॥

सब ग्रहों से पराजित बुध का फल—

भौमेन हते शशिजे वृक्षसरिचापसाश्मकनरेन्द्राः।
उत्तरदिक्स्थाः क्रतुदीक्षिताश्च सन्तापमायान्ति॥ १५॥
गुरुणा जिते बुधे म्लेच्छशूद्रचौरार्थयुक्तपौरजनाः।
त्रैगर्तपार्वतीयाः पीड्यन्ते कम्पते च मही॥ १६॥
रविजेन बुधे ध्वस्ते नाविकयोधाब्जसधनगर्भिण्यः।
भृगुणा जितेऽग्निकोपः सस्याम्बुदयायिविध्वंसः॥ १७॥

यदि मङ्गल से बुध पराजित हो तो नदी, तपस्वी, अश्मक देश में निवास

करने वाले, राजा, उत्तर दिशा में निवास करने वाले और यज्ञ में दीक्षित मनुष्य पीडित होते हैं। यदि बृहस्पति से पराजित हो तो म्लेच्छ जाति, शूद्र जाति, चोर, धनी, पुरों में रहने वाले, त्रिगर्त देश में रहने वाले और पर्वत पर निवास करने वाले पीडित होते हैं, तथा भूकम्प होता है। यदि शनैश्चर से पीडित हो तो नाव चलाने वाले, योध (शत्रु वृत्ति वाले), जल से उत्पन्न वस्तु, धनी और गर्भिणी स्त्री पीडित होती है। यदि शुक्र से पराजित बुध हो तो अग्नि का प्रकोप, धान्य, मेघ और गमन करने वाले राजाओं का नाश होता है ॥ १५-१७ ॥

सब ग्रहों से पराजित बृहस्पति का फल—

जीवे शुक्राभिहते कुलूतगान्धारकैकया भद्राः ।
शाल्वा वत्सा वङ्गा गावः सस्यानि पीड्यन्ते ॥ १८ ॥
भौमेन हते जीवे मध्यो देशो नरेश्वरा गावः ।
सौरेण चार्जुनायनवसातियौधेयशिबिविप्राः ॥ १९ ॥
शशिसनयेनापि जिते बृहस्पतौ म्लेच्छसत्यशस्त्रभृतः ।
उपयान्ति मध्यदेशश्च सङ्क्षयं यच्च भक्तिफलम् ॥ २० ॥

यदि शुक्र से बृहस्पति पराजित हो तो कुलूत, गान्धार, कैकय, मद्र, शाल्व, वत्स, और वङ्ग देश में निवास करने वाले मनुष्य, गौ तथा धान्य-पीडित होते हैं। यदि मङ्गल से पराजित हो तो मध्य देश, राजा और गौ पीडित होती है। शनि से पराजित हो तो अर्जुनायन, वस, यौधेय, शिबि इन देशों में निवास करने वाले और ब्राह्मण पीडित होते हैं। यदि बुध से पराजित हो तो म्लेच्छ जन, सत्य भाषण करने वाले, शस्त्र धारण करने वाले और मध्य देश का नाश होता है। तथा गुरुभक्ति का फल (ग्रहभक्तियोगाध्यायोक्तगुरुभक्तिफल) का भी नाश होता है ॥१८-२०॥

सब ग्रहों से पराजित शुक्र का फल—

शुक्रे बृहस्पतिजिते यायी श्रेष्ठो विनाशमुपयाति ।
ब्रह्मक्षत्रविरोधः सलिलं च न वासवस्त्यजति ॥ २१ ॥
कोशलकलिङ्गवङ्गा वत्सा मत्स्याश्च मध्यदेशयुताः ।
महतीं व्रजन्ति पीडां नपुंसकाः शूरसेनाश्च ॥ २२ ॥
कुजविजिते भृगुतनये बलमुख्यवधो नरेन्द्रसङ्ग्रामाः ।
सौम्येन पार्वतीयाः क्षीरविनाशोऽल्पवृष्टिश्च ॥ २३ ॥
रविजेन सिते विजिते गणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम् ।
जलजाश्च निपीड्यन्ते सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ॥ २४ ॥

यदि बृहस्पति से शुक्र पराजित हो तो यायी (नायक) और प्रधान जनों का

नाश, ब्राह्मण और क्षत्रियों में परस्पर विरोध, अवृष्टि, कोशल, कलिङ्ग, वङ्ग, वत्स, मत्स्य और मध्य देश में निवास करने वाले मनुष्य, नपुंसपक तथा शूरसेन देश में स्थित मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि मङ्गल से पराजित हो तो सेनापति का मरण और राजाओं में परस्पर युद्ध होता है। यदि बुध से पराजित हो तो पर्वत पर निवास करने वालों का नाश, गौओं के दूध का नाश और थोड़ी वृष्टि होती है। यदि शनैश्चर से पराजित शुक्र हो तो सङ्घियों में प्रधान, शस्त्र से आजीविका चलाने वाले, क्षत्रिय वर्ग और जल में उत्पन्न वस्तु पीड़ित होती है। तथा सामान्य भक्तिफल और स्वभक्तिफल का भी नाश करता है ॥ २१–२४ ॥

सब ग्रहों से पराजित शनि का फल—

असिते सितेन निहतेऽर्घवृद्धिरहिविहगमानिनां पीडा।
क्षितिजेन तङ्गणान्ध्रोड्रकाशिवाह्लीकदेशानाम् ॥ २५ ॥
सौम्येन पराभूते मन्देऽङ्गवणिग्विहङ्गपशुनागाः।
सन्ताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला महिषकशकाश्च ॥ २६ ॥

यदि शुक्र से पराजित शनि हो तो सब द्रव्यों में मौल्य की वृद्धि, सर्प, पक्षी और मानियों को पीड़ा होती है। यदि मङ्गल से पराजित हो तो तङ्गण, आन्ध्र, उड्र, काशी और वाह्लीक देश में निवास करने वालों को पीडा होती है। यदि बुध से पराजित हो तो अङ्ग देश में निवास करने वाले, क्रय-विक्रय से आजीविका चलाने वाले, पक्षी, पशु और हाथी पीड़ित होते हैं। यदि गुरु से पराजित शनि हो तो अधिक स्त्री वाला देश, महिषक देश में रहने वाले और शक देश में रहने वाले पीड़ित होते हैं ॥ २५–२६ ॥

यहाँ पर विशेष—

अयं विशेषोऽभिहितो हतानां कुजज्ञवागीशसितासितानाम्।
फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्यद्यथा तथा घ्नन्ति हताः स्वभक्तीः ॥

मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि के ये विशेष फल कहे हैं, अवशिष्ट फल ग्रह की भक्ति से कहना चाहिये। जिस तरह व्यक्त या अव्यक्त रूप से ग्रह पीड़ित होते हैं उसी प्रकार व्यक्त या अव्यक्त करके अपनी भक्ति को नाश करते हैं।

यहाँ पर पराशर—

ग्रहस्य ये यस्य हताः स्वदेशाः पीडांसमृच्छन्ति त एव तस्य।
सम्प्राप्तवीर्यस्य जये समर्था भवन्ति तस्यर्द्धिचतुष्पदाढ्याः ॥ २७ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां ग्रहयुद्धाध्यायः सप्तदश: ॥ १७ ॥

अथ राशिग्रहसमागमाध्यायः

पहले चन्द्र का गतिलक्षण और फल—

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः।
प्रदक्षिणं तच्छुभकृन्नृपाणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः॥ १॥

यदि नक्षत्र या ग्रहों के निकट वर्ती हो कर चन्द्रमा प्रदक्षिण क्रम से उत्तर तरफ हो कर जावे तो राजाओं का शुभ और दक्षिण तरफ हो कर जावे तो अशुभ करने वाला होता है।

विशेष—यह समागम जिन नक्षत्रों का शर चन्द्र शर से अल्प या तुल्य है उन्हीं का होता है। जैसे कृत्तिका, रोहिणी, पुष्य, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा ज्येष्ठा, शतभिषा, रेवती इन नक्षत्रों का शर चन्द्र शर से अल्प होने के कारण चन्द्र के साथ समागम होता है। जिन नक्षत्रों का उत्तर शर चन्द्र शर से अधिक है उन के सदा दक्षिण तरफ हो कर और जिन का दक्षिण शर चन्द्र शर से अधिक है उनके सदा उत्तर हो कर चन्द्र गमन करता है।

यहाँ पर ऋषि पुत्र—

दक्षिणेनापसव्यं स्यादुत्तरेण प्रदक्षिणम्। ग्रहाणां चन्द्रमा ज्ञेयो नक्षत्राणां तथैव च॥

तथा वृद्धगर्ग—

नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा तूत्तरगः शशी। तत्प्रदक्षिणमित्याहुर्भवेत्क्षेमसुवृष्टये॥
नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा दक्षिणतो व्रजेत्। अपसव्यं तदेव स्याद्वृष्टिभयलक्षणम्॥१॥

मङ्गल के उत्तर गत चन्द्र का फल—

चन्द्रमा यदि कुजस्य यात्युदक्पार्वतीयबलशालिनां जयः।
क्षत्रियाः प्रमुदिताः सयायिनो भूरिधान्यमुदिता वसुन्धरा॥ २॥

यदि मङ्गल के उत्तर तरफ हो कर चन्द्र गमन करे तो पर्वत पर निवास करने वाले और बलशालियों की विजय होती है, यायी मनुष्यों के साथ क्षत्रिय गण प्रमुदित होते हैं तथा पृथ्वी अधिक धान्यों से युत होती है॥ २॥

बुध के उत्तर गत चन्द्र का फल—

उत्तरतः स्वसुतस्य शशाङ्कः पौरजयाय सुभिक्षकरश्च।
सस्यचयं कुरुते जनहार्दिं कोशचयं च नराधिपतीनाम्॥ ३॥

यदि बुध के उत्तर तरफ हो कर चन्द्र गमन करे तो पुरवासी राजाओं की विजय, सुभिक्ष, धान्यों की वृद्धि, लोगों को आन्तरिक तुष्टि और राजाओं के कोश की वृद्धि होती है॥ ३॥

बृहस्पति के उत्तर गत चन्द्र का फल—

बृहस्पतेरुत्तरगे शशङ्के पौरद्विजक्षत्रियपण्डितानाम्।
धर्मस्य देशस्य च मध्यमस्य वृद्धिः सुभिक्षं मुदिताः प्रजाश्च॥ ४॥

यदि बृहस्पति के उत्तर तरफ होकर चन्द्र-गमन करे तो पुरवासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, पण्डित, धर्म, मध्यदेश इन सबों की वृद्धि, सुभिक्ष और संपूर्ण प्रजा हर्षयुत होती है ॥ ४ ॥

शुक्र के उत्तरगत चन्द्र का फल—

भार्गवस्य यदि यात्युदक् शशी कोशयुक्तगजवाजिवृद्धिदः ।
यायिनां च विजयो धनुष्मतां सस्यसम्पदपि चोत्तमा तदा ॥ ५ ॥

यदि शुक्र के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो कोश, हाथी और घोड़ों की वृद्धि, धनुर्धारी, पापी और जीवने की इच्छा रखने वालों की विजय तथा धान्यों की अच्छी उत्पत्ति होती है ॥ ५ ॥

शनैश्चर के उत्तरगत चन्द्र का फल—

रविजस्य शशी प्रदक्षिणं कुर्याच्चेत्पुरभूभृतां जयः ।
शकबाह्लिकसिन्धुपह्लवा मुदमाजो यवनैः समन्विताः ॥ ६ ॥

यदि शनैश्चर के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो पुरवासी और राजाओं की विजय तथा शक, वाह्लिक, सैन्धव और पह्लवदेशवासी मनुष्य हर्षयुत होते हैं ॥ ६ ॥

यहाँ पर विशेष—

येषामुदग्गच्छति भग्रहाणां प्रालेयरश्मिर्निरुपद्रवश्च ।
तद्द्रव्यपौरेतरभक्तिदेशान् पुष्णाति याम्येन निहन्ति तानि ॥७॥

जिन नक्षत्र या ग्रहों के उत्तर तरफ होकर उत्पातरहित चन्द्र गमन करे उन नक्षत्र या ग्रहों के द्रव्यों की पुष्टि और दक्षिण तरफ होकर गमन करे तो हानि करता है ॥ ७ ॥

यहाँ पर और विशेष—

शशिनि फलमुदक्स्थे यद्ग्रहस्योपदिष्टं भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम् ।
इति शशिसमवायाः कीर्तिता भग्रहाणां न खलु भवति युद्धं साकमिन्दोर्ग्रहर्क्षैः॥

ग्रहों के उत्तरगत चन्द्र के जो फल कहे गये हैं उनके विपरीत फल ग्रहों के दक्षिणगत चन्द्र के होते हैं। इस तरह चन्द्र के साथ ग्रह या नक्षत्रों के रहने से समागम, रवि के साथ अस्त और कुजादि ग्रहों के परस्पर संयोगादि को युद्ध कहते हैं।

यहाँ पर आचार्य विष्णुचन्द्र—

दिवसकरेणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहितानाम् ।
कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम् ॥
पैत्रोक्तमादित्यस्य जयपराजयं ते गोष्ठवासना याद्याः ॥ ८ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां शशिग्रहसमागमाध्यायोऽष्टादश ॥ १८ ॥

अथ ग्रहवर्षफलाध्यायः

उसमें पहले सूर्य का वर्षफल—

सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता वनानि दैवाद्धिभक्षयिपुदंष्ट्रिसमावृतानि ।
नद्यश्च नैव हि पयः प्रचुरं स्रवन्ति रुग्भेषजानि न तथातिबलान्वितानि ॥१॥
तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेपि काले नात्यम्बुदा जलमुचोचलसन्निकाशाः ।
नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरं नभश्च सीदन्ति तापसकुलानि सगोकुलानि ॥२॥
हस्त्यश्वपत्तिमदसह्यबलैरुपेता बाणासनासिमुशलातिशयाश्चरन्ति ।
घ्नन्तो नृपा युधि नृपानुचरैश्च देशान् संवत्सरे दिनकरस्य दिनेऽथ मासे॥३॥

सूर्य के वर्ष, मास या दिन में पृथ्वी पर सब जगह अल्प धान्य, दैववश भक्षण की इच्छा करनेवाले दंष्ट्रीगण (सर्प, सूअर आदि जन्तुओं) से संयुत वन, नदियों में अल्प जल, रोगनाश के लिये वीर्ययुत ओषधि का अभाव, शिशिर काल (माघ, फाल्गुन) में भी सूर्य का भयङ्कर ताप, पर्वत के समान मेघ से भी अधिक वृष्टि का अभाव, आकाशस्थित नक्षत्र और चन्द्र में दीप्ति का अभाव, तपस्वीगण शोकयुत और गौओं के समुदाय दुखी होते हैं। संग्राम में हाथी, घोड़ा, पदातियों से युत असह्य सैन्य, धनु, खड्ग और मुशलों से युत मन्त्री आदि के साथ होकर राजा लोग देशों को नाश करते हुये विचरण करते हैं।

यहाँ पर यवनेश्वर—

अब्दाधिपं स्वगमीरितं यदुग्रस्वभावप्रभवं जनानाम् ।
तदेव तन्मासदिनर्तुयुक्तं सदीश्वरस्थानविकल्पितं च ॥
दिवाकराब्दे रणविग्रहोग्रचित्तीश्वरस्तीव्रविषज्वराग्नि ।
अवर्षशुष्कद्रुमशुष्कसस्यप्रचण्डवह्निप्रविपासिरोगाः ॥

उसी प्रकार समाससंहिता में—

तीक्ष्णोऽर्कः स्वल्पसस्यश्च गतमेघोऽवितस्करः ।
बहूरगव्याधिगणो भास्कराब्दो रणाकुलः ॥ १-२ ॥

चन्द्र का वर्षफल—

व्याप्तं नभः प्रचलिताचलसन्निकाशैर्व्यालाञ्जनालिगवलच्छविभिः पयोदैः ।
गां पूरयद्भिरखिलाममलाभिरद्भिरुत्कण्ठकेन गुरुणा ध्वनितेन चाशाः ॥४॥
तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्त्यतीव फुल्लद्रुमाण्युपवनान्यलिनादितानि ।
गावः प्रभूतपयसो नयनाभिरामा रामा रतैरविरतं रमयन्ति रामान् ॥५॥
गोधूमशालियवधान्यवरेक्षुवाटा भूः पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराढ्या ।
चित्यङ्किता क्रतुवरेष्टिविघुष्टनादा संवत्सरे शिशिरगोरभिसम्प्रवृत्ते ॥६॥

चन्द्र के वर्ष, मास या दिन में चलित पर्वत, सर्प, कज्जल, भ्रमर और गवल (महिषश्रृङ्ग) के समान निर्मल जल से पृथ्वी को पूर्ण करते हुये तथा विरही जनों के औत्सुक्यजनक गौरवयुत ध्वनियों से दिशाओं को पूर्ण करते हुये मेघों से आच्छादित आकाश, कमल और कुमुद से युत जल, प्रफुल्लित वृक्ष और शब्दायमान भ्रमरों से युत उपवन, अधिक दूध देने वाली गौ, नेत्रों से सुन्दरी स्त्री निरन्तर अपने पति को आनन्द देने वाली, गेहूँ, शाली, यव, श्रेष्ठ धान्य और इक्षुवाटों से युत, नागरिक आकरों (अर्थोत्पत्ति स्थानों) से युत, अग्नि स्थानों से व्याप्त तथा श्रेष्ठ यज्ञ और इष्टि (पुत्रकाम्यादि यज्ञ) से समन्वित पृथ्वी राजा से परिपालित होती है।

यहाँ पर यवनेश्वर—

सम्पन्नसस्यक्षुपशाप्यशालिप्ररूढगुल्मो बहुवर्षधारः।
रक्तौषधिक्षेदपटुप्रसेकश्चान्द्रो रतिस्त्रीसुखवर्धनोऽब्दः॥

यहाँ पर समासंहिता में—

बहुवर्षोतिसस्यश्च गवां क्षीरप्रदायकः। चन्द्राब्दः कामिनामिष्टश्चिर्यङ्कितमहीतलः॥४–६॥

मङ्गल का वर्षफल—

वातोद्धतश्चरति वह्निरतिप्रचण्डो ग्रामान्वनानि नगराणि च सन्दिधक्षुः।
हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति निःस्वीकृता विपशवो भुवि मर्त्यसंघाः॥
अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽपि मुञ्चन्ति न क्वचिदपः प्रचुरं पयोदाः।
सीम्नि प्रजातमपि शोषमुपैति सस्यं निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति॥८॥
भूपा न सम्यगभिपालनसक्तचित्ताः पित्तोत्थरुक्प्रचुरता भुजगप्रकोपः।
एवंविधैरुपहता भवति प्रजेयं संवत्सरेऽवनिसुतस्य विपन्नसस्या॥९॥

मङ्गल के संवत्सर, मास या दिन में वायु से संचालित, ग्राम, वन और नगरों को दग्ध करने की इच्छा रखने वाली भयङ्कर अग्नि चलती है। चोरों से निर्धन किये हुये पीड़ित मनुष्यगण हाहाकार करते हैं। आकाश में संगठित मूर्ति वाले मेघ कहीं भी अधिक वृष्टि नहीं करते। नीच स्थान में उत्पन्न धान्य सूख जाते हैं तथा पके हुये धान्य भी वज्रपात आदि उत्पातों से नष्ट हो जाते हैं। राजा लोग धर्मपालन में तत्पर नहीं रहते हैं। पैत्तिक रोगों की अधिकता होती है। सर्पों से लोगों को पीड़ा होती है। इस तरह मङ्गल के स्वामित्व में प्रजागण पीड़ित और धान्यों का नाश होता है।

यहाँ पर यवनेश्वर—

रणप्रचण्डः क्षितिपोऽल्पसस्यो विशुष्कवारिद्रुमशष्पशीर्णः।
अङ्गारकाब्दः प्रचुरोरगाग्निरातङ्कचौर्यं प्रचुरवृष्टिरुष्टः॥

यहाँ पर समासंहिता में—

अग्नितस्कररोगाढ्यो नृपविग्रहदायकः। गतसस्यो बहुव्यालो भौमाब्दो स्वल्पदो मृगान्॥

बुध का वर्षफल—

मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां गान्धर्वलेख्यगणितास्त्रविदां च वृद्धिः।
पिप्रीषया नृपतयोऽद्भुतदर्शनानि दित्सन्ति तुष्टिजननानि परस्परेभ्यः॥
वार्त्ता जगत्यवितथा विकला त्रयी च सम्यक्चरत्यपि मनोरिव दण्डनीतिः।
अध्यक्षरस्त्वभिनिविष्टधियोऽपि केचिदान्वीक्षिकीषु च परं पदमीहमानाः॥
हास्यज्ञदूतकविबालनपुंसकानां युक्तिज्ञसेतुजलपर्वतवासिनां च।
हार्दिं करोति मृगलाञ्छनजः स्वकेऽब्दे मासेऽथवा प्रचुरता भुवि चौषधीनाम्॥

बुध के वर्ष, मास या दिन में प्रपञ्चों में कुशल, इन्द्रजाल विद्या को जानने वाले, आश्चर्य देखने वाले, अर्थोत्पत्तिस्थान को जानने वाले, नगरों में रहने वाले, गान विद्या जानने वाले, लेखक, गणितज्ञ और अस्त्र विद्या जानने वाले उन्नतियुत होते हैं। राजा लोग परस्पर प्रीति बढ़ाने की इच्छा से आश्चर्यजनक और हर्षोत्पादक द्रव्य परस्पर एक दूसरे को देने की इच्छा करते हैं। वार्त्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य) अवितथा (सफल) होती है। त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) का अत्यधिक पाठ होता है। मनु राजा से रचित दण्डनीति नामक पुस्तकोक्त नीति की तरह नीति चलती है। अर्थात् जिस तरह मनु राजा प्रजारक्षण करते थे उसी तरह उस वर्ष राजा अपनी प्रजा की रक्षा करते हैं।

कहा भी है—गोरक्षाकृषिवाणिज्यं सेवावर्जं परिग्रहम्। दर्शनं जीवनं चैव वार्त्ता तु जीवन स्मृतम्॥ ऋचो यजूंषि सामानीत्येषा त्रयभिधीयते। त्रय्यां धर्मस्थितिर्वृत्तो दण्डनीत्यां च रक्षणम्॥

कोई अध्यात्म विद्या (योगशास्त्र) में और कोई आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या) में निरत होते हैं। हास्यज्ञ, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिज्ञ, सेतु (स्थल), जल और पर्वत पर निवास करने वाले प्रसन्न होते हैं। तथा पृथ्वी पर ओषधियों की अधिकता होती है।

यहाँ पर यवनेश्वर—

सन्धानदानप्रवत क्षितीश रक्षाव्ययतीर्थोध्वरभीर्द्धिजौघः।
निराधिरत्यल्पसमसस्यवर्षो बौध सुहास्नेहविवर्धनोऽब्दः॥

यहाँ पर समाससंहिता में—

प्रह्वाद्यस्य सरयानां जनानां च कलाविदाम्। वृद्धिप्रदोऽब्दो बौधस्तु भूपसाम्यकर. क्षितौ॥

बृहस्पति का वर्षफल—

ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरे द्युगामी विपुलो यज्ञमुषां मनांसि भिन्दन्।
विचरत्यनिशं द्विजोत्तमानां हृदयानन्दकरोऽध्वरांशभाजाम्॥ १३॥
क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेकद्विपपत्त्यश्वधनोरुगोकुलाढ्या।
क्षितिपैरभिपालनप्रवृद्धा द्युचरस्पर्द्धिजना तदा विभाति॥ १४॥
विविधैर्वियदुन्नतैः पयोदैर्वृतमुर्वीं पयसाभितर्पयद्भिः।
सुरराजगुरोः शुभे तु वर्षे बहुसस्या क्षितिरुत्तमर्द्धियुक्ता॥ १५॥

गुरु के शुभ वर्ष, मास या दिन में यज्ञों में रात्रिवर्जित काल में श्रेष्ठ ब्राह्मण से उच्चरित, विस्तीर्ण, स्वर्ग तक पहुँचने वाली, यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों के मन को भेदन करने वाली और इन्द्रादि के मन को प्रसन्न करने वाली वेदध्वनि होती है। राजाओं से अच्छी तरह परिरक्षित, उत्तम धान्य, बहुत हाथी, पदाति, घोड़ा, धन और विस्तृत गोकुलों से पृथ्वी परिपूर्ण होती है। देवता के समान मनुष्य होते हैं। सदा भूमि को जल से परिपूर्ण करते हुये, उन्नत, विविध मेघों से आकाश व्याप्त होता है। तथा बहुत तरह के धान्य और समृद्धि से युत पृथ्वी होती है।

विशेष—यहाँ पर शुभ वर्ष इसलिये कहा है कि बृहस्पतिचारोक्त पिङ्गलकालयुत और रौद्रनामक बृहस्पति के वर्ष अशुभ हैं। अतः इस वर्ष का स्वामी होने पर बृहस्पति का सम्पूर्ण फल नहीं होता है, किन्तु प्रभव, शुक्ल, प्रमोद आदि वर्षों का स्वामी होने पर बृहस्पति का सम्पूर्ण फल होता है।

यहाँ पर यवनेश्वर—

सुवर्णयज्ञोत्सवसम्प्रदानो नीरुग्भयो धर्मपरोऽवनीशः।
स्फीतावृषाधैर्बहुसस्यकर्मा गुरोः स्वकर्मप्रयतप्रजोऽब्दः॥

यहाँ समासंहिता में—

बहुयज्ञोऽतिसस्यश्च गोगजाश्वहितस्तथा। पुरन्दरगुरोरब्दो बहुसस्यप्रदः शिवः॥१३-१५॥

शुक्र का वर्षफल—

शालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधराभधाराधरोज्झितपयःपरिपूर्णवप्रा।
श्रीमत्सरोरुहतताम्बुतडागकीर्णा योषेव भात्यभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी॥१६॥
क्षत्रं क्षितौ क्षपितभूरिबलारिपक्षमुद्घुष्टनैकजयशब्दविराविताशम्।
संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गा गां पालयन्त्यवनिपा नगराकराढ्याम्॥१७॥
पेपीयते मधु मधौ सह कामिनीभिर्जेगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम्।
बोभुज्यतेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्नमब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः॥

शुक्र के वर्ष, मास या दिन में शाली और इक्षु (ईख = गन्ना) से युत, पर्वत के समान मेघों से गिरे हुये जल से परिपूर्ण तट वाली, सुन्दर कमल और जल से परिपूर्ण तालाब से व्याप्त, अतः विविध वर्णों से युत पृथ्वी सम्पूर्ण भूषणों से युत स्त्री की तरह शोभित होती है। पृथ्वी पर शत्रुपक्ष के बहुत सेनाओंको नाश करने से उद्घोषित जयशब्दों से सब दिशाओं को पूर्ण करने वाले राजवर्ग होते हैं। आनन्द युत सज्जन गण, विनष्ट दुर्जन गण और अर्थोत्पतिस्थानों से युत पृथ्वी होती है। वसन्त समय में स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक बार बार मद्यपान करती हैं, बासुरी और वीणा के साथ श्रवणसुखद गीत गाती हैं। अभ्यागत, मित्र और बन्धुओं के साथ बार बार भोजन करती हैं। तथा सब जगह कामदेव का जय जयकार होता है।

यहाँ पर यवनेश्वर—

पर्याप्तसौख्यस्फुटसस्यमेघाः प्रल्हवल्लीवरशष्पपुष्पः ।
काममकामः क्षितिपो मुदाढ्यः शौक्रोऽङ्गनाहर्षवसुप्रदोऽब्दः ॥

यहाँ पर समाससंहिता में—

सस्याढ्यो धर्मबहुलो गतातङ्को बहूदकः ।
कामिनां कामदः कामं सिताब्दो नृपशर्मदः ॥१९-१८॥

शनि का वर्षफल—

उद्वृत्तदस्युगणभूरिरणाकुलानि राष्ट्राण्यनेकपशुवित्तविनाकृतानि ।
रोरूयमाणहतबन्धुजनैर्जनैश्च रोगोत्तमाकुलकुलानि बुभुक्षया च ॥१९॥
वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्षमारुग्णनैकविटपं च धरातलं द्यौः ।
नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनद्धा तोयाशयाश्च विजलाः सरितोपि तन्व्यः॥
जातानि कुत्रचिदतोयतया विनाशमृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि ।
सस्यानि मन्दमभिवर्षति वृत्रशत्रुर्वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते ॥२१॥

शनि के वर्ष, मास या दिन में चोरों से सम्बन्धित युद्धों से व्याप्त, पशु और धानों से रहित, संग्राम में बन्धुजनों के मरण से बार बार रोते हुये मनुष्यों से युत, प्रधान रोग तथा क्षुधा से व्याकुल राष्ट्र होते हैं। वायु से उड़ाये गये मेघों से रहित आकाश होता है। अनेक तरह नष्ट वृक्षों से युत पृथ्वी होती है, सूर्य और चन्द्रकिरणों से रहित आकाश होता है। धूलियों से स्थगित वापी, कूप और तालाब होते हैं। तथा नदियों में अत्यन्त कम जल होता है। इन्द्र अल्प वर्षा करता है, इस लिये कहीं कहीं पर जल के विना धान्य नष्ट हो जाते हैं और कहीं कहीं पर जल से सिक्त होकर पुष्ट होते हैं।

यहाँ पर यवनेश्वर—

क्षुद्राल्पवर्षः प्रबलानिलाग्निर्विपन्नसस्यश्चलितक्षितीशः ।
मृत्युक्षुधातङ्कभयोपसृष्टः शनैश्चरोऽब्दः पशुरुग्दगोत्रः ॥

यहाँ पर समाससंहिता में—

दुर्भिक्षमरकं रोगान् करोति पवनं तथा ।
शनैश्चरोऽब्दो दोषांश्च विग्रहांश्चैव भूभुजाम् ॥
संवत्सरेऽर्कं सञ्चरन्मासायेषु च ।
फलं महत्त्व शक्रस्य बलयुक्तस्य नान्यथा ॥१९-२१॥

वर्षफल में विशेषता—

अणुरपटुमयूखो नीचगोऽन्यैर्जितो वा
न सकलफलदाता पुष्टिदोऽतोऽन्यथा यः ।

यदशुभमशुभेऽब्दे मासजं तस्य वृद्धिः
शुभफलमपि चैवं याप्यमन्योन्यतायाम् ॥२२॥

जो ग्रह सूक्ष्म, अस्पष्ट किरण वाला, नीचस्थानस्थित या ग्रहयुद्ध में पराजित हो वह सम्पूर्ण फल देने वाला नहीं होता है। इससे विपरीतलक्षणयुत होने से सम्पूर्ण फल देने वाला होता है। अशुभ वर्ष में रवि, मंगल और शनि के अशुभ मासफल की वृद्धि होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अशुभ ग्रह के वर्ष में अशुभ ग्रह का मासाधिपतित्व होने पर अत्यन्त अशुभ फल होता है। तथा वर्षाधिप, मासाधिप दोनों शुभग्रह हों तो शुभ फल की वृद्धि और एक शुभ दूसरा अशुभ हो तो याप्य (अल्प फल) होता है।

यहाँ पर देवल—

बली वर्षपतिः पुष्टं फलं यच्छति शोभनम्। विबलश्च तथानिष्टं वर्षमासदिनात्मकम् ॥२२॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां ग्रहवर्षफलाध्याय एकोनविंशतितमः ॥ १९ ॥

अथ ग्रहशृङ्गाटकाध्यायः

ताराग्रहों के उदयास्तवश दिशाफल—

यस्यां दिशि दृश्यन्ते विशन्ति ताराग्रहा रविं सर्वे।
भवति भयं दिशि तस्यामायुधकोपक्षुधातङ्कैः ॥१॥

जिस दिशा में सब ताराग्रह (मङ्गल, बुध, गुरु शुक्र और शनि) दिखाई दें तथा जिस दिशा में रवि में प्रविष्ट (अस्त) हों उस दिशा में शस्त्रकोप, क्षुधा (दुर्भिक्ष) और आतङ्क (उपद्रव) का भय होता है।

यहाँ पर काश्यप—

भूमिपुत्रादयः सर्वे यस्यामस्तमिते रवौ।
दृश्यन्तेऽस्तमये वापि यत्र यान्ति रवेस्ततः॥
दुर्भिक्षं शस्त्रकोपं च जनानां मरकं भवेत्।
अन्योन्यं भूमिपाः सर्वे विनिघ्नन्ति प्रजास्तथा ॥ १ ॥

ताराग्रहों का संस्थान-प्रदर्शन—

चक्रधनुः शृङ्गाटकदण्डपुरप्रासवज्रसंस्थानाः।
क्षुद्वृष्टिकरा लोके समराय च मानवेन्द्राणाम् ॥ २ ॥

यदि ग्रहसंस्थान (ग्रह की आकृति) चक्र, धनु, शृङ्गाटक (त्रिकोण), दण्ड, पुर, प्रास (आयुधविशेष), कुन्त, वज्र, या मध्य में कृश और दोनों तरफ

विस्तीर्ण हो तो पृथ्वी पर सब जगह दुर्भिक्ष, अवृष्टि, मनुष्यों में और राजाओं में युद्ध होता है ॥

यहाँ पर काश्यप—

विहायोर्कं च संस्थानं दृश्यन्ते ये ग्रहा यदा। तदा न तत्फलं मूयाह्लोके नाशुभदाश्च ते ॥२॥

आकाश के विभागवश शुभाशुभ फल—

यस्मिन् खांशे दृश्या ग्रहमाला दिनकरे दिनान्तगते ।
तत्रान्यो भवति नृपः परचक्रोपद्रवश्च महान् ॥ ३ ॥

सूर्य के अस्तसमय में जिस देश के आकाशभाग में ग्रहमाला दिखाई दे वहाँ पर अन्य राजा का आगमन और दूसरे राजा का उपद्रव होता है ॥ ३ ॥

नक्षत्रस्थित ग्रहों का फल—

यस्मिन्नृक्षे कुर्युः समागमं तज्जनान् ग्रहा हन्युः ।
अविभेदिनः परस्परमलमयूखाः शिवास्तेषाम् ॥ ४ ॥

जिस नक्षत्र के साथ ग्रहों का समागम होता है, उस नक्षत्र के नक्षत्रकूर्म और नक्षत्रव्यूह में उक्त जनों का नाश करता है। यदि वे दोनों (ग्रह, नक्षत्र) परस्पर निर्मल किरण वाले हों तो उनका कुशल करते हैं।

यहाँ पर समाससंहिता में—

सर्वे यदा दिनकरं विशन्ति कुर्युर्ग्रहास्तदा पीडाम्। क्षुच्छस्त्रभयातङ्कैरपरैश्च परस्पराघातैः॥
अत्यर्चिष प्रसन्ना सम्भृतकिरणा प्रदक्षिणावर्ताः। सुस्निग्धामलतनवः क्षेमसुभिक्षावहास्ते स्युः

ग्रहों के ६ योग—

ग्रहसंवर्तसमागमसम्मोहसमाजसन्निपाताख्याः ।
कोशश्चेत्येतेषामभिधास्ये लक्षणं सफलम् ॥ ५ ॥

ग्रहसंवर्त, ग्रहसमागम, ग्रहसम्मोह, ग्रहसमाज, ग्रहसन्निपात और ग्रहकोश ये ६ योग हैं। इनका लक्षण और फल कहते हैं ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त ६ योगों का लक्षण—

एकर्क्षे चत्वारः सह पौरैर्यायिनोऽथवा पञ्च ।
संवर्त्तो नाम भवेच्छिखिराहुयुतः स सम्मोहः ॥ ६ ॥
पौरः पौरसमेतो यायी सह यायिना समाजाख्यः ।
यमजीवसङ्गमेऽन्यो यद्यागच्छेत्तदा कोशः ॥ ७ ॥
उदितः पश्चादेकः प्राक् चान्यो यदि स सन्निपाताख्यः ।
अविकृततनवः स्निग्धा विपुलाश्च समागमे धन्याः ॥ ८ ॥

एक नक्षत्र में पौर के साथ पापी ग्रह मिल कर चार या पाँच संख्यक हों तो संवर्त, केतु या राहु हो तो सम्मोह, पौरग्रह के साथ पौरग्रह या पापी ग्रह के साथ

पापी ग्रह हो तो समाज, शनैश्चर और गुरु के संयोग में कोई दूसरा ग्रह आ जाय तो कोश, एक ग्रह पश्चिम दिशा में और दूसरा पूर्व दिशा में उदित होकर दोनों एक नक्षत्रगत हों तो सन्निपात तथा उक्त पाँचों लक्षणों से भिन्न लक्षणयुक्त होने से समागम होता है। इस समागम में ताराग्रह निर्विकार शरीर वाले, निर्मल और विपुल बिम्ब वाले शुभ होते हैं अन्यथा अशुभ होते हैं।

यहाँ पर समाससंहिता में—

ग्रहकोशसन्निपातौ संवर्त्तसमागमौ समाजश्च। सम्मोहश्चेति तेषां लक्षणमस्तात्समादेश्यम्॥
सूर्यजगुरुसंयोगे द्वावन्येऽपरः समागच्छेत्। स हि भवति कोशसञ्ज्ञो दुर्भिक्षभयावहो लोके॥

एक उदितः प्रतीच्यामपरः प्राच्यां ग्रहोदितो यदि च।
अन्योन्यमयोवाभिर्विलिखेत्स हि सन्निपाताख्यः॥
सह पौरेण च पौरो यायी सह यायिना ग्रहो यश्च।
दृश्येत समायुक्तः सह समाजाख्यः समुद्दिष्टः॥

अथ यायिनागराख्याश्चत्वारः पञ्च वा सह भवेयुः। एकर्क्षे संवर्तः शिखिराहुयुतः स सम्मोहः॥

संवर्त्त और समागमयोग में मध्यम फल—

समौ तु संवर्त्तसमागमाख्यौ सम्मोहकोशौ भयदौ प्रजानाम्।
समाजसंज्ञे सुसमा प्रदिष्टा वैरप्रकोपः खलु सन्निपाते॥ ६॥

सम्मोह और कोश में प्रजाओं को भय, समाज में सुसम (पूर्व से पश्चात् अधिक फल) और सन्निपात में परस्पर द्वेष होता है।

यहाँ पर काश्यप—

संवर्तसङ्गमौ मध्यौ सम्मोहो भयदः स्मृतः। कोशश्चानिष्टफलदः समाजाख्यः सुमध्यमः॥
सन्निपाते महावैरमन्योन्यमुपजायते।

यहाँ पर समाससंहिता में—

संवर्त्तसमागमयो साम्यं मोहे भयानि कोशे च। सुसमा समाजसञ्ज्ञे वैराण्यथ सन्निपाताख्ये॥

यहाँ पर समाससंहिता में विशेष—

दुर्भिक्षरोगतस्करशस्त्रावृष्टिवधं ग्रहाः कुर्युः। आनलवीथ्यां ज्ञेया अजवीथ्यां नेत्रपरिहानिः॥
शस्त्रभयं मृगवीथ्यां जारद्गव्यां क्षुधं च रोगांश्च। पशुनाशं गोवीथ्यामृषभाख्यायां च नृपपीडा॥
सुसुभिक्षमिरावत्यां गजवीथ्यां च प्रभूतसवामोदा। अतिजलमोक्षं कुर्युर्नागाख्यायां च सर्वे तु।
ग्रहोदये प्रवासे च सोमसूर्यग्रहे तथा। विचार्य वीथीमार्गांश्च लोके ब्रूयाच्छुभाशुभम्॥१॥

इति 'विमला'हिन्दी टीकायां ग्रहशृङ्गाटकाध्यायो विंशः॥ २०॥

अथ गर्भलक्षणाध्यायः

गर्भलक्षण कहने का प्रयोजन—

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम् ।
यस्मादतः परीक्ष्यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन ॥ १ ॥

संसार का प्राण अन्न है, वह अन्न वर्षाऋतु के अधीन है अतः यत्नपूर्वक वर्षा ऋतु की परीक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥

गर्भ का लक्षण—

तल्लक्षणानि मुनिभिर्यानि निबद्धानि तानि दृष्ट्वेदम् ।
क्रियते गर्गपराशरकाश्यपवज्रादिरचितानि ॥ २ ॥

गर्ग, पराशर, काश्यप, वज्र आदि मुनियों के द्वारा निबद्ध गर्भलक्षण को देख कर मैं वर्षाकाल का लक्षण कर रहा हूँ ॥ २ ॥

गर्भलक्षण जानने वाले दैवज्ञों की प्रशंसा—

दैवविदविहितचित्तो द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति ।
तस्य मुनेरिव वाणी न भवति मिथ्याम्बुनिर्देशे ॥ ३ ॥

जो दैवज्ञ रात-दिन गर्भलक्षण में अविच्छिन्नचित्त होकर लगे रहते हैं, मुनि की तरह उनकी वाणी वृष्टि-ज्ञान में मिथ्या नहीं होती है ॥ ३ ॥

शास्त्र की प्रशंसा—

किं वातः परमन्यच्छास्त्रज्यायोऽस्ति यद्विदित्वैव ।
प्रध्वंसिन्यपि काले त्रिकालदर्शी कलौ भवति ॥ ४ ॥

इस ज्योतिषशास्त्र से कौन शास्त्र अच्छा है ? कोई नहीं। जिसको जान कर इस विनाशी कलिकाल में भी मनुष्य त्रिकालदर्शी होते हैं ॥ ४ ॥

दूसरे का मत—

केचिद्वदन्ति कार्त्तिकशुक्लान्तमतीत्य गर्भदिवसाः स्युः ।
न च तन्मतं बहूनां गर्गादीनां मतं वक्ष्ये ॥ ५ ॥

किसी का मत है कि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते हैं, यह सबका मत नहीं है, अतः गर्ग आदि आचार्यों का मत कहते हैं।

यहाँ पर सिद्धसेन—

शुक्लपक्षमतिक्रम्य कार्तिकस्य विचारयेत् । गर्भाणां सम्भवं सम्यक् सस्यसम्पत्तिकारणम् ॥

गर्ग आदि आचार्यों का मत—

मार्गशिरःसितपक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढाम् ।
पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम् ॥ ६ ॥

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से जब चन्द्रमा पूर्वाषाढा नक्षत्र में स्थित हो उस समय से गर्भों का लक्षण जानना चाहिये। यहाँ पर वा शब्द चार्थक है।

यहाँ पर गर्ग—

शुक्लादौ मार्गशीर्षस्य पूर्वाषाढाभ्युपस्थिते। निशाकरे तु गर्भाणां तत्रादौ लक्षणं वदेत्॥

यहाँ पर काश्यप—

सितादौ मार्गशीर्षस्य प्रतिपद्दिवसे तथा। पूर्वाषाढागते चन्द्रे गर्भाणां धारणं भवेत्॥६॥

गर्भ का प्रसव-काल—

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत्स चन्द्रवशात्।
पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति॥७॥

चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में स्थित होने से गर्भस्थिति होती है, चन्द्र के वश १९५ वें दिन में उसका प्रसव होता है।

विशेष—चान्द्रमान से १९५ दिन लेने से उस दिन वह नक्षत्र नहीं आता है अतः सावन मान से १९५ वां दिन लेना चाहिये। सावन मान से १९५ वें दिन में ठीक वही नक्षत्र आता है।

समाससंहिता में स्पष्ट वचन—

पौषासितपक्षाद्यैः श्रावणशुक्लादयो विनिर्देश्याः। सार्द्धैः षड्भिर्मासैर्गर्भविपाकः स नक्षत्रे॥७॥

फिर गर्भका प्रसवकाल—

सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्ले कृष्णा द्युसम्भवा रात्रौ।
नक्तंप्रभवाश्चाहनि सन्ध्याजाताश्च सन्ध्यायाम्॥८॥

८ यदि गर्भ शुक्ल पक्ष में हो तो कृष्ण पक्ष में, कृष्ण पक्ष में हो तो शुक्ल पक्ष में, दिन में हो तो रात्रि में, रात्रि में हो तो दिन में, पूर्व सन्ध्या में हो तो पश्चिम सन्ध्या में और पश्चिम सन्ध्या में हो तो पूर्व सन्ध्या में प्रसव होता है।

यहां पर गर्ग—

दिवा भवति यो गर्भो रात्रौ स इति पच्यते। शुक्लपक्षे समुद्भूतः कृष्णे पक्षे च वर्षति॥
पौर्णमास्यानयोत्पन्नः सामावास्यां प्रवर्षति। अमावास्यां समुद्भूतः पूर्णमास्यां प्रवर्षति॥
पूर्वसन्ध्यासमुद्भूतः पश्चिमायां प्रवर्षति। पश्चिमायां समुद्भूतः पूर्वसन्ध्यां प्रवर्षति॥
पूर्वार्द्धे यः समुद्भूतः पश्चाद्रात्रौ प्रवर्षति। निशायां पश्चिमे यश्च स पूर्वाह्णे प्रसूयते॥
दिनार्द्धे तु समुत्पन्नः स निशार्द्धे प्रसूयते॥८॥

गर्भों का विशेष लक्षण और काल का निर्देश—

मृगशीर्षाद्या गर्भा मन्दफलाः पौषशुक्लजाताश्च।
पौषस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेच्छ्रावणस्य सितम्॥९॥
माघसितोत्था गर्भाः श्रावणकृष्णे प्रसूतिमायान्ति।
माघस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेद्भाद्रपदशुक्लम्॥१०॥

फाल्गुनशुक्लसमुत्था भाद्रपदस्यासिते विनिर्देश्याः ।
तस्यैव कृष्णपक्षोद्भवास्तु ये तेऽश्वयुक्शुक्ले ॥ ११ ॥
चैत्रसितपक्षजाताः कृष्णेऽश्वयुजस्य वारिदा गर्भाः ।
चैत्रासितसम्भूताः कार्तिकशुक्लेऽभिवर्षन्ति ॥ १२ ॥

मार्गशीर्ष शुक्ल और पौष शुक्ल में स्थित गर्भ मन्द फल (अल्प वृष्टि) देने वाला होता है । यहां पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से मास ग्रहण करना चाहिये, जैसे चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से वैशाख कृष्ण अमान्त तक एक मास, वैशाख शुक्ल प्रतिपदा से ज्येष्ठ कृष्ण अमान्त तक दूसरा मास इत्यादि । यदि पौष कृष्ण पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण शुक्ल पक्ष में, माघ शुक्ल में गर्भ हो तो श्रावण कृष्ण में, माघ कृष्ण में गर्भ हो तो भाद्र शुक्ल में, फाल्गुन शुक्ल में गर्भ हो तो भाद्र कृष्ण में, फाल्गुन कृष्ण में गर्भ हो तो आश्विन शुक्ल में चैत्र शुक्ल में गर्भ हो तो आश्विन कृष्ण में, और चैत्र कृष्ण में गर्भ हो तो कार्तिक शुक्ल में प्रसव (वृष्टि) होता है ।

यहाँ पर गर्ग—

माघेन श्रावणं विन्याद्भाद्रपदं फाल्गुनेन तु । चैत्रेणाश्वयुजं माद्वैशाखेन तु कार्तिकम् ॥
शुक्लपक्षेण कृष्णं तु कृष्णपक्षेण चेतरम् । रात्र्यह्नोश्च विपर्यासं कार्यं काले विनिश्चयम् ॥

मेघ और वायु का लक्षण—

पूर्वोद्भूताः पश्चादपरोत्थाः प्राग्भवन्ति जीमूताः ।
शेषास्वपि दिक्ष्वेवं विपर्ययो भवति वायोश्च ॥ १३ ॥

यदि गर्भ काल में मेघ पूर्व दिशा में हो तो प्रसव काल में पश्चिम दिशा में, पश्चिम दिशा में हो तो पूर्व दिशा में, दक्षिण दिशा में हो तो उत्तर दिशा में, उत्तर दिशा में हो तो दक्षिण दिशा में, आग्नेय कोण में हो तो वायव्य कोण में, वायव्य कोण में हो तो आग्नेय कोण में, ईशान कोण में हो तो नैर्ऋत्य कोण में और गर्भ काल में नैर्ऋत्य कोण में मेघ हो तो प्रसव काल में ईशान कोण में मेघ होता है । इसी तरह वायु का भी दिग्वैपरीत्य समझना चाहिये । जैसे गर्भ काल में पूर्व तरफ का वायु हो तो प्रसव काल में पश्चिम तरफ का इत्यादि समझना चाहिये ।

यहाँ पर पराशर—

अथ माघेन श्रावणं फाल्गुनेन भाद्रपदं चैत्रेणाश्वयुजं वैशाखेन तु कार्तिकम् ।
शुक्लेन कृष्णं कृष्णेन शुक्लं दिवसेन रात्रिं रात्र्या दिवसं गर्भाः प्रवर्षन्ति ॥१३॥

गर्भ-सम्भव लक्षण—

ह्लादिमृदूदक्शिवशक्रादिग्भवो मारुतो वियद्विमलम् ।
स्निग्धसितबहुलपरिवेषपरिवृतौ हिममयूखार्कौ ॥ १४ ॥
पृथुबहुलस्निग्धघनं घनसूचीक्षुरकलोहिताभ्रयुतम् ।
काकाण्डमेचकाभं वियद्विशुद्धेन्दुनक्षत्रम् ॥ १५ ॥

सुरचापमन्द्रगर्जितविद्युत्प्रतिसूर्यका शुभा सन्ध्या।
शशिशिवशक्राशास्थाः शान्तरवाः पक्षिमृगसंघाः ॥ १६ ॥
विपुलाः प्रदक्षिणचराः स्निग्धमयूखा ग्रहा निरुपसर्गाः।
तरवश्च निरुपसृष्टाङ्कुरा नरचतुष्पदा हृष्टाः ॥ १७ ॥
गर्भाणां पुष्टिकराः सर्वेषामेव योऽत्र तु विशेषः।
स्वर्तुस्वभावजनितो गर्भविवृद्ध्यै तमभिधास्ये ॥ १८ ॥

गर्भ स्थिति काल में आह्लाद जनक, सुखस्पर्श और उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न वायु, निर्मल आकाश, स्निग्ध और श्वेत परिवेष से व्याप्त चन्द्र और सूर्य, आकाश में विस्तृत और स्निग्ध मेघ, सूच्याकार, क्षुराकार और लोहित मेघों, काक के अण्डे के समान, मयूर के कण्ठ के समान, निर्मल चन्द्र और नक्षत्रों से युत आकाश, इन्द्रधनु, मेघों के मधुर शब्द, विद्युत् और प्रति सूर्य से युक्त पूर्वापरा सन्ध्या, सूर्य के अभिमुख होकर उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में स्थित पक्षी और मृग, नक्षत्रों के उत्तर मार्ग में होकर निर्मल उत्पात रहित ग्रहों का गमन, बाधा रहित वृक्षों का अङ्कुर, मनुष्य और पशु हर्षित, इन सब गुणों से युत गर्भ का समय हो तो गर्भ पुष्ट होता है। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से वैशाख के अन्त तक गर्भ की परीक्षा करनी चाहिये तथा गर्भ की वृद्धि के लिये ऋतु के स्वभाव से उत्पन्न अवशिष्ट लक्षणों को आगे कहता हूँ।

यहाँ पर पराशर—

अथ गर्भसंस्थासु माघादिषु चतुर्षु मासेषु या शुचौ धारणा। नभोनभस्यौ प्रावृट् तस्या अनु वर्षा येषु प्रसवन्ति। तत्र चापाभ्रविद्युत्स्तनयित्नुवर्षाणि गर्भास्तांस्त्वचये-प्रशस्तानप्रशस्तांश्च। प्रशस्तानाञ्च यस्मिन् काले सूर्येन्दुनक्षत्राश्रयाणां वर्षालिङ्गानां प्रादुर्भावः। पञ्चरूपता गर्भाणां धारणा मासेन शुद्धिरिति ॥ १४–१८ ॥

ऋतु के वश गर्भ लक्षण—

पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः।
नात्यर्थं मृगशीर्षे शीतं पौषेऽतिहिमपातः ॥ १९ ॥
माघे प्रबलो वायुस्तुषारकलुषद्युती रविशशाङ्कौ।
अतिशीतं सघनस्य च भानोरस्तोदयौ धन्यौ ॥ २० ॥
फाल्गुनमासे रूक्षश्चण्डः पवनोऽभ्रसम्प्लवाः स्निग्धाः।
परिवेषाश्चासकलाः कपिलस्ताम्रो रविश्च शुभः ॥ २१ ॥
पवनघनवृष्टियुक्ताश्चैत्रे गर्भाः शुभाः सपरिवेषाः।
घनपवनसलिलविद्युत्स्तनितैश्च हिताय वैशाखे ॥ २२ ॥

पौष और मार्गशीर्ष में दोनों सन्ध्या रक्त और परिवेष युत मेघ शुभ होता है

तथा मार्गशीर्ष में अल्प शीत और पौष में हिम का गिरना शुभ होता है। माघ मास में प्रबल भयङ्कर वायु, सूर्य और चन्द्र हिम युक्त होकर मलिन कान्ति वाले, अति शीत और मेघ रहित सूर्य का उदयास्त शुभ है। फाल्गुन मास में रूक्ष और भयङ्कर वायु, मेघों का उदय, सूर्य और चन्द्र का निर्मल तथा अखण्ड परिवेष, कपिल या ताम्र वर्ण का सूर्य शुभ है। चैत्र मास में वायु, मेघ, वृष्टि और परिवेष युत गर्भ शुभ होता है। वैशाख मास में मेघ, वायु, जल, विद्युत् और मेघ के गर्जन युत गर्भ शुभ होता है।

यहाँ पर काश्यप—

शीतमभ्रं तथा वायुश्चन्द्रार्कपरिवेषणम्। माघे मासि परीक्षेत श्रावणे वृष्टिमादिशेत्॥
फाल्गुने चाभ्रसङ्घातं वृष्टिस्तनितमेव च। पुरो वाताश्च ये प्रोक्ता मासि भाद्रपदे शुभम्॥
बहुपुष्पफला वृक्षा वाता शर्करवर्षिणः। शीतवर्षं तथाभ्राणि चैत्रेणाश्वयुजं वदेत्॥
वहन्ति मृदवो वाता. पुरः शीघ्रं प्रदक्षिणाः। वैशाखे तानि रूपाणि कार्तिके मासि वर्षति॥

समाससंहिता में—

शस्तानि मृगान्मासात्शीतहिमवायुमेघकृतानि।
स्तनिततडिज्जलमारुतघनतापान्यतिशयं तु वैशाखे॥
कृष्णेन शुक्लपक्ष सितेन कृष्णो निशा दिनोत्थेन।
राज्यहः सन्ध्यायां सन्ध्यादिव्यत्ययाज्जलदाः॥ १९-२२॥

गर्भकालिक मेघों का लक्षण—

मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः।
जलचरसत्त्वाकारा गर्भेषु घनाः प्रभूतजलाः॥ २३॥
तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिता मन्दमारुता जलदाः।
रुषिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यम्भः प्रसवकाले॥ २४॥

मोती या चाँदी के समान श्वेत अथवा तमाल वृक्ष, नील कमल या अञ्जन के समान अति कृष्ण, अथवा जलचर जन्तु के समान कान्ति वाले गर्भकालिक मेघ हों तो बहुत वृष्टि देने वाले होते हैं। अति भयङ्कर सूर्य किरण से तापित, अल्प वायु से युत गर्भकालिक मेघ १९५ वें दिन (प्रसवकाल) में रुष्ट की तरह होकर धारा-प्रवाह अतिवृष्टि करते हैं।

समास संहिता में—

पृथुघनबहुला जलदा जलचरसत्त्वान्विताः शुभा गर्भाः।
स्निग्धसितबहुलपरिवेषपरिवृतौ हिमकरोष्णकरौ॥
नृपगमृगा मुदिता निरुपहतास्तरव। वियदमलं च यदि भवति तदा सुसमा॥
स्निग्धतडित्प्रतिसूर्यकमरस्यशक्रधनुःप्रथमापरमध्ये।
शान्तरवा मृगपक्षिमनुष्याः शक्रशशीश्वरदिक्पवनाश्च॥ २३-२४॥

गर्भनाश का लक्षण—

गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपांसुपातदिग्दाहाः।
क्षितिकम्पखपुरकीलककेतुग्रहयुद्धनिर्घाताः ॥ २५ ॥
रुधिरादिवृष्टिवैकृतपरिघेन्द्रधनूंषि दर्शनं राहोः।
इत्युत्पातैरेतैस्त्रिविधैश्चान्यैर्हतो गर्भः ॥ २६ ॥

यदि गर्भ काल में उल्कापात, विद्युत, धूलि की वृष्टि, दिशाओं में जलन, भूकम्प गन्धर्व नगर, भामम, कीलक आदि केतुओं का दर्शन, ग्रह युद्ध, निर्घात (शब्द), रुधिर आदि (रुधिर, मांस, वसा, घृत, तैल आदि) की विकार युत वृष्टि, परिघ (४९ अध्याय के १९ वें श्लोक में परिघ का लक्षण), इन्द्रधनु, राहु, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण का दर्शन गर्भ के नाश करने वाले होते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

अश्मवर्षं तमोवर्षं मांसशोणितवर्षणम्। उल्कानिर्घातकम्पश्च वज्रपातस्तथैव च ॥
परिवेषाः परिघयो वासवस्य धनूंषि च। अनभ्रस्तनितं वर्षं दिशां दाहस्तथैव च ॥
अनार्तवं पुष्पफलं वारुणीयेषु वर्षणम्। ग्रहयुद्धेषु घोरेषु हतान् गर्भान् विनिर्दिशेत् ॥

यहाँ पर पराशर—

तेषां ग्रहाणामुदयास्तमयोल्कानिर्घाताशनिपातगन्धर्वनगरदिग्दाहार्करश्मिवर्णविकारभूचलनप्रादुर्भावो वर्षास्ववर्षाय ॥ २५-२६ ॥

यहाँ पर विशेष—

स्वर्तुस्वभावजनितैः सामान्यैर्यैश्च लक्षणैर्वृद्धिः।
गर्भाणां विपरीतैस्तैरेव विपर्ययो भवति ॥ २७ ॥

ऋतुओं के स्वभाव जनित (पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषा इत्यादि पद्योक्त) और सामान्य (ह्लादिमृदुदक्शिवशक्रदिग्भवो मारुत इत्यादि पद्योक्त) लक्षणों से युत गर्भ की वृद्धि अन्यथा हानि होती है ॥ २७ ॥

गर्भकालिक नक्षत्र वश अधिक वृष्टि का योग—

भद्रपदाद्वयविश्वाम्बुदेवपैतामहेष्वथर्क्षेषु।
सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवति ॥ २८ ॥

सब ऋतुओं में पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, रोहिणी, इन पाँच नक्षत्रों में बढ़ा हुआ गर्भ प्रसवकाल में अधिक वृष्टि करता है ॥ २८ ॥

गर्भकालिक नक्षत्र वश बहुत दिन तक वृष्टि का योग—

शतभिषगाश्लेषार्द्रास्वातिमघासंयुतः शुभो गर्भः।
पुष्णाति बहून् दिवसान् हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधैः ॥ २९ ॥

शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती या मघा नक्षत्र में उत्पन्न गर्भ बहुत दिन

तक पुष्ट रहता है। तथा उक्त पाँचों नक्षत्रों में धरे हुए गर्भ जितने दिन त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) से हत हों उतने दिन तक वर्षा नहीं होती है।

समास संहिता में त्रिविध उत्पात का लक्षण—

दिव्यं ग्रहर्क्षजातं भुवि भौमं स्थिरचरोद्भवं यच्च। दिग्दाहोल्कामारुतपरिवेषाद्यं वियत्प्रभवम् ॥

यहाँ पर गर्ग—

प्राजापत्यं मघाश्लेषा रौद्रं चानिलवारुणम्। आषाढाद्वितयं चैव तथा भाद्रपदाद्वयम् ॥
नक्षत्रदशकं चैतद्यदि स्याद्ग्रहदूषितम्। न गर्भाः सम्पदं यान्ति योगक्षेमं न कल्पते ॥
उल्कयाभिहतं वापि केतुना वाप्यधिष्ठितम्। न गर्भाः सम्पदं यान्ति वासवश्च न वर्षति ॥

पूर्वोक्त योगों में दिन संख्या—

मृगमासादिष्वष्टौ षट् षोडश विंशतिश्चतुर्युक्ता।
विंशतिरथ दिवसत्रयमेकतमर्क्षेण पञ्चभ्यः ॥ ३० ॥

उक्त पाँच नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में मार्गशीर्ष में गर्भ की पुष्टि हो तो प्रसव समय से ८ दिन, पौष में ६ दिन, माघ में १६ दिन, फाल्गुन में २० दिन, चैत में २० दिन और वैशाख में ३ दिन तक वृष्टि होती है।

यहां पर ऋषिपुत्र—

माघे षोडशसंख्यास्तु षोडशाष्टौ च फाल्गुने। विंशतिश्चैत्रमासे तु त्रयश्चेन्द्राग्निदैवते।
अष्टौ सौम्येऽथ षट् पौषे संख्यास्तासु च वर्षति ॥ ३० ॥

निमित्तों के वश वर्षा के प्रदेश—

पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं तदर्द्धार्द्धमेकहान्यातः।
वर्षति : पञ्चनिमित्ताद्रूपेणैकेन यो गर्भः ॥ ३१ ॥

वक्ष्यमाण पाँच निमित्तों (इसी अध्याय के सैंतीसवें श्लोकोक्त निमित्तों) से युत गर्भ, प्रसवकाल में सौ योजन तक बरसता है। चार निमित्तों से युत गर्भ पचास योजन तक, तीन निमित्तों से युत गर्भ पच्चीस योजन तक, दो निमित्तों से युत गर्भ साढ़े बारह योजन तक और एक निमित्त से युत गर्भ पाँच योजन तक, प्रसवकाल में बरसता है ॥ ३१ ॥

निमित्तयुत गर्भवश जल की संख्या—

द्रोणः पञ्चनिमित्ते गर्भे त्रीण्याढकानि पवनेन।
षड् विद्युता नवाभ्रैः स्तनितेन द्वादश प्रसवे ॥ ३२ ॥

पाँचों निमित्तों से युत गर्भ एक द्रोण बरसता है। वायु से युत गर्भ तीन आढक, विद्युत् से युत गर्भ छै आढक, मेघों से युत गर्भ नौ आढक और मेघों के गर्जन से युत गर्भ प्रसवकाल में बारह आढक बरसता है।

वृष्टि के आढक और द्रोण के परिमाण जानने के लिये पराशर—

आढकाश्चतुरो द्रोणमपां विन्द्यात्प्रमाणतः।
धनुःप्रमाणं मेदिन्या विन्द्याद्द्रोणातिवर्षणम् ॥

समे विंशांगुलानाहे द्विचतुष्कांगुलोच्छ्रिते । भाण्डे वर्षति सम्पूर्णे ज्ञेयमाढकवर्षणम् ॥

यहाँ पर आचार्य—

हस्तविशालं कुण्डकमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः ।
पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम् ॥

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

वाते तु आढकं विन्द्यात्स्तनिते द्वादशाढकम् ॥
नवाढकं तथाभ्रेषु द्योतितेषु षडाढकम् ॥
निमित्तपञ्चकोपेते द्रोणं वर्षति वासवः ॥ ३२ ॥

यहाँ पर वृष्टि के विशेष योग—

क्रूरग्रहसंयुक्ते करकाशनिमत्स्यवर्षदा गर्भाः ।
शशिनि रवौ वा शुभसंयुतेक्षिते भूरिवृष्टिकराः ॥ ३३ ॥

यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युत हो तो उपल, वज्र और मछली से युत वृष्टि होती है। यदि वहाँ पर (गर्भकालिक नक्षत्र में) चन्द या रवि स्थित होकर शुभग्रह (बुध, बृहस्पति और शुक्र) से युत या दृष्ट हो तो बहुत वर्षा देने वाला गर्भ होता है ॥ ३३ ॥

गर्भसम्भव का विशेष लक्षण—

गर्भसमयेऽतिवृष्टिर्गर्भाभावाय निर्निमित्तकृता ।
द्रोणाष्टांशेऽभ्यधिके वृष्टे गर्भः स्रुतो भवति ॥ ३४ ॥

यदि गर्भसमय में निमित्त रहित अति वृष्टि हो तो गर्भ का नाश होता है। तथा यदि पचीस पल या उससे अधिक वृष्टि हो तो गर्भ स्राव हो जाता है।

गर्भकालिक निमित्त—

प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसङ्क्रमे च ।
पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चान्द्रौ ॥

यहाँ पर विशेष—

गर्भः पुष्टः प्रसवे ग्रहोपघातादिभिर्यदि न वृष्टः ।
आत्मीयगर्भसमये करकामिश्रं ददात्यम्भः ॥ ३५ ॥

पुष्ट गर्भ ग्रहोपघात आदि (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) कारणों से जलप्रद न हो तो आत्मीय गर्भ(फिर द्वितीय गर्भग्रहण)काल में उपलमिश्रित वृष्टि करता है ॥३५॥

दृष्टान्त के द्वारा विशेष—

काठिन्यं याति यथा चिरकालधृतं पयः पयस्विन्याः ।
कालातीतं तद्वत्सलिलं काठिन्यमुपयाति ॥ ३६ ॥

जिस तरह बहुत समय तक रखा हुआ गौओं का दूध कठिन हो जाता है उसी तरह बहुत समय बीतने पर जल कठिन होकर उपल के रूप में हो जाता है ॥ ३६ ॥

गर्भपुष्टि के लक्षण—

पवनसलिलविद्युद्गर्जिताऽभ्रान्वितो यः
स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः ।
विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभूरि
प्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति ॥ ३७ ॥

यदि वायु, जल, विद्युत, मेघ का शब्द और मेघों से युत गर्भ हो तो प्रसवकाल में बहुत वृष्टिप्रद होता है। इस तरह के गर्भसमय में यदि बहुत वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अधिक वृष्टि नहीं होती ॥ ३७ ॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां गर्भलक्षणाध्याय एकविंशः ॥ २१ ॥



अथ गर्भधारणाध्यायः

गर्भधारण के लक्षण—

ज्यैष्ठसितेऽष्टम्याद्याश्चत्वारो वायुधारणा दिवसाः ।
मृदुशुभपवनाः शस्ताः स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च ॥ १ ॥

ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी से चार दिन तक गर्भधारण के दिन होते हैं। इन दिनों सुखस्पर्श, शुभ (उत्तर, ईशान या पूर्वदिशा में उत्पन्न) वायु, निर्मल मेघयुत आकाश शुभ होते हैं ॥ १ ॥

गर्भधारण में विशेष—

तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे भचतुष्टये क्रमान्मासाः ।
श्रावणपूर्वा ज्ञेयाः परिस्रुता धारणास्ताः स्युः ॥ २ ॥

यदि ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में स्वाती आदि चार नक्षत्रों (स्वाती विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा) में वृष्टि हो तो क्रम से श्रावण आदि चार मासों (श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक) में अवृष्टि होती है। जैसे ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में स्वाती में वृष्टि हो तो श्रावण में, विशाखा में वृष्टि हो तो भाद्रपद में, अनुराधा में वृष्टि हो तो आश्विन में और ज्येष्ठा में वृष्टि हो तो कार्तिक में वृष्टि का अभाव होता है ॥ २ ॥

यहाँ पर काश्यप—

ज्येष्ठस्य शुक्लाष्टम्यां तु नक्षत्रे भगदैवते। चत्वारो धारणाः प्रोक्ता मृदुवातसमीरिताः ॥
नीलाञ्जननिभैर्मेघैर्विद्युत्स्थगितमारुतैः। विस्फुलिङ्गरजोधूम्रैरदृश्यौ शशिदिवाकरौ ॥

एकरूपा. शुभा ज्ञेया अशुभाः सान्तराः स्मृताः । अनार्यैस्तस्करैर्घोरैः पीडा चैव सरीसृपैः ॥
ततः स्वात्यादिनक्षत्रैश्चतुर्भिः श्रावणादयः । परिपूर्णा. शुभास्ताः स्युः सौम्याः शिवसुभिक्षकाः
स्वातौ तु श्रावणं हन्याद्दृष्टेऽप्यैन्द्राग्निदैवते । भाद्रपदे त्ववृष्टिः स्यान्मैत्रे चाश्वयुजे स्मृता ॥
ऐन्द्रे तु कार्तिके त्वेवं वृष्टे वृष्टिं निहन्ति च । एतेषु यदि नो वृष्टिस्तदा सौभिक्षलक्षणम् ॥

फिर विशेष लक्षण—

यदि ताः स्युरेकरूपाः शुभास्ततः सान्तरास्तु न शिवाय ।
तस्करभयदाश्चोक्ताः श्लोकाश्चाप्यत्र वासिष्ठाः ॥ ३ ॥

यदि ये चारों गर्भधारण के दिन एक रूप के हों तो शुभ और असमान हों तो चोरों से भय देने वाले होते हैं । आगे इसी अर्थ को पुष्ट करने वाले वसिष्ठ के पद्य लिखते हैं ॥

वसिष्ठ के पद्य—

सविद्युतः सपृषतः सपांशूल्करमारुताः ।
सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना धारणाः शुभधारणाः ॥ ४ ॥
यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाः शुभाशाः प्रत्युपस्थिताः ।
तदापि सर्वसस्यानां वृद्धिं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥ ५ ॥
सपांशुवर्षाः साप्श्च शुभा बालक्रिया अपि ।
पक्षिणां सुस्वरा वाचः क्रीडा पांशुजलादिषु ॥ ६ ॥
रविचन्द्रपरीवेषाः स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः ।
वृष्टिस्तदापि विज्ञेया सर्वसस्यार्थसाधिका ॥ ७ ॥
मेघाः स्निग्धाः संहताश्च प्रदक्षिणगतिक्रियाः ।
तदा स्यान्महती वृष्टिः सर्वसस्याभिवृद्धये ॥ ८ ॥

यदि विद्युत, उल्कण, धूलियों से युत वायु, मेघाच्छन्न रवि-चन्द्र और उत्तर, ईशान कोण या पूर्व दिशा की विद्युत् युत गर्भधारण के दिन हों तो सब धान्यों की वृद्धि पण्डितों को कहनी चाहिये । धूलि की वृष्टि, जल, बालकों की सुन्दर चेष्टाएँ, पक्षियों के मधुर शब्द, धूलि या जल में उनकी क्रीडा और स्निग्ध, विकार रहित, परिवेषसहित रवि-चन्द्रों से युत गर्भ धारण दिन हों तो सब धान्यों को सिद्ध करने वाली वृष्टि होती है । स्निग्ध, सघन और प्रदक्षिण करके (पूर्व दिशा से दक्षिण, दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर और उत्तर से पूर्व) में गमन करने वाला मेघ गर्भधारण दिन में हो तो शुभ होता है ॥ ४-८ ॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां गर्भधारणाध्यायो द्वाविंशः ॥ २२ ॥



अथ प्रवर्षणाध्यायः

प्रवर्षण का लक्षण—

ज्येष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन ।
शुभमशुभं वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तज्ज्ञैः ॥ १ ॥

ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा बीत जाने पर पूर्वाषाढ़ा आदि सब नक्षत्रों में वृष्टि हो तो जल का शुभाशुभ परिमाण कहना चाहिये। अर्थात् वृष्टि हो तो शुभ, और, अवृष्टि हो तो अशुभ कहना चाहिये ॥ १ ॥

यहाँ पर गर्ग—

ज्येष्ठे मूलमतिक्रम्य मासि प्रतिपदग्रतः। वर्षासु वृष्टिज्ञानार्थं निमित्तान्युपलक्षयेत् ॥ १ ॥

जल का प्रमाण—

हस्तविशालं कुण्डकमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः ।
पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम् ॥ २ ॥

एक हाथ तुल्य व्यास वाले और एक हाथ गहरे वर्तुलाकार कुण्ड में वृष्टि के जल का मापन करना चाहिये, जल से पूर्ण इस कुण्ड में पचास पल (एक आढक) तुल्य जल होता है। पचास पल का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण होता है ॥ २ ॥

समाससंहिता में—

ज्येष्ठस्य पौर्णमासीमतीत्यभूमुद्रया यथा वृष्टे। आप्याद्यैर्जलमान मानधमानेन हस्तमिते ॥

वर्षण का प्रमाण—

येन धरित्री मुद्रा जनिता वा विन्दवस्तृणाग्रेषु ।
वृष्टेन तेन वाच्यं परिमाणं वारिणः प्रथमम् ॥ ३ ॥

जिस वृष्टि से पृथ्वी पर धूलि मिट जाय या तृणाग्र में जलकण दिखाई दें उससे जल का प्रमाण कहना चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्रों में से जिस नक्षत्र में वृष्टि हो उसी नक्षत्र के परिमाण (इसी अध्याय के छठे श्लोक से उक्त) तुल्य वृष्टि कहना चाहिये ॥ ३ ॥

वर्षणप्रमाण में मतान्तर—

केचिद्यथाभिवृष्टं दशयोजनमण्डलं वदन्त्यन्ये ।
गर्गवसिष्ठपराशरमतमेतद्द्वादशान्न परम् ॥ ४ ॥

कोई कोई मुनि (कश्यप आदि) का मत है कि प्रवर्षणकाल (ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के अनन्तर पूर्वाषाढ़ा आदि सत्ताईस नक्षत्रयुत काल) में किसी एक प्रदेश में भी वृष्टि हो तो वर्षाकाल में सुन्दर वृष्टि होती है। (अन्य देवल आदि) का मत है कि यदि प्रवर्षणकाल में कम से कम दश योजन तक वृष्टि हो तो वर्षाकाल में

उत्तम वृष्टि होती है। गर्ग, वसिष्ठ और पराशर का मत है कि प्रवर्षणकाल में बारह योजन तक वृष्टि होने से वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होती है।

यहाँ पर कश्यप—

प्रवर्षणे यथा देशं वर्षणं यदि दृश्यते। वर्षाकालं समासाद्य वासवो बहु वर्षति॥

यहाँ पर देवल—

प्रवर्षणे यदा वृष्टं दशयोजनमण्डलम्। वर्षाकालं समासाद्य वासवो बहु वर्षति॥

यहाँ पर गर्ग—

आषाढादिषु वृष्टेषु योजनद्वादशात्मके। प्रवृष्टे शोभनं वर्षं वर्षाकाले विनिर्दिशेत्॥४॥

फिर भी विशेष—

येषु च भेष्वभिवृष्टं भूयस्तेष्वेव वर्षति प्रायः।
यदि नाप्यादिषु वृष्टं सर्वेषु तदा त्वनावृष्टिः॥ ५॥

प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढा आदि नक्षत्रों में से जिस किसी नक्षत्र में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में उसी नक्षत्र में फिर फिर वृष्टि होती है। यदि प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढा आदि सब नक्षत्रों में वृष्टि न हो तो प्रसवकाल में अनावृष्टि होती है॥ ५॥

नक्षत्रों में वृष्टि का प्रमाण—

हस्ताप्यसौम्यचित्रापौष्णधनिष्ठासु षोडश द्रोणाः।
शतभिषगैन्द्रस्वातिषु चत्वारः कृत्तिकासु दश॥ ६॥
श्रवणे मघानुराधाभरणीमूलेषु दश चतुर्युक्ताः।
फल्गुन्यां पञ्चकृतिः पुनर्वसौ विंशतिर्द्रोणाः॥ ७॥
ऐन्द्राग्न्याख्ये वैश्वे च विंशतिः सार्पभे दश त्र्यधिकाः।
आहिर्बुध्न्यार्यम्णप्राजापत्येषु पञ्चकृतिः॥ ८॥
पञ्चदशाजे पुष्ये च कीर्त्तिता वाजिभे दश द्वौ च।
रौद्रेऽष्टादश कथिता द्रोणा निरुपद्रवेष्वेते॥ ९॥

हस्त, पूर्वाषाढा, मृगशिरा, चित्रा, रेवती या धनिष्ठा नक्षत्र में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में सोलह द्रोण वृष्टि होती है। इसी तरह शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वाती में चार द्रोण; कृत्तिका में दश द्रोण; श्रवण, मघा, अनुराधा, भरणी और मूल में चौदह द्रोण; पूर्वफाल्गुनी में पचीस द्रोण, पुनर्वसु में बीस द्रोण, विशाखा और उत्तराषाढा में बीस द्रोण, आश्लेषा में तेरह द्रोण, उत्तरभाद्रपदा, उत्तर फाल्गुनी और रोहिणी में पचीस द्रोण, पूर्वभाद्रपदा और पुष्य में पन्द्रह द्रोण, अश्विनी में बारह द्रोण; तथा आर्द्रा में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अठारह द्रोण वृष्टि होती है।

विशेष—यदि नक्षत्र निरुपद्रव हों तो उक्त द्रोणतुल्य वृष्टि समझनी चाहिये।

समाससंहिता में—

दश युक्ता द्विकृतखतिथिरसाष्टदिग्विषयरामजलतिथिभिः।
तिथिरसरसैश्च विरसाः सदशकृताः षड्विहीनाश्च॥
जलपट्कदशकसहिता जलरसयुक्ताः षड्नाश्च।
विषयतिथिषट्कसहिताश्चाश्विन्यादिषु जलद्रोणाः॥ ६-९॥

यहाँ पर विशेष—

रविरविसुतकेतुपीडिते भे क्षितितनयत्रिविधाद्भुताहते च।
भवति च न शिवं न चापि वृष्टिः शुभसहिते निरुपद्रवे शिवं च॥१०॥

सूर्य, शनैश्चर, केतु, मङ्गल या त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) से यदि नक्षत्र पीडित हों तो अमङ्गल और वृष्टि का अभाव होता है। यदि उपद्रव रहित होकर बुध, बृहस्पति या शुक्र से युत नक्षत्र हो तो मङ्गल कृति और वृष्टि होती है।

यहाँ पर गर्ग—

सूर्यसौराहते वाच्यं नक्षत्रे भौमघातिते। उत्पातैस्त्रिविधैर्वापि राहुणा केतुनापि च॥
अवृष्टिमशुभं विन्द्याद्विपरीते शुभं वदेत्॥ १०॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां प्रवर्षणाध्यायस्त्रयोविंशः॥ २३॥



अथ रोहिणीयोगाध्यायः

इसमें पहले आगमप्रदर्शन—

कनकशिलाचयविवरजतरुकुसुमासङ्गिमधुकरानुरुते।
बहुविहगकलहसुरयुवतिगीतमन्द्रस्वनोपवने॥ १॥
सुरनिलयशिखरिशिखरे बृहस्पतिर्नारदाय यानाह।
गर्गपराशरकाश्यपमयाश्च यान् शिष्यसङ्घेभ्यः॥ २॥
तानवलोक्य यथावत् प्राजापत्येन्दुसम्भ्रयोगार्थान्।
स्वल्पग्रन्थेनाहं तानेवाभ्युद्यतो वक्तुम्॥ ३॥

सुवर्ण-पाषाण के समुदाय में उत्पन्न वृक्षों के पुष्पों पर बैठे हुये भ्रमरों के शब्दों से संयुत, नाना प्रकार के पक्षियों के आलाप से मिश्रित विद्याधरियों के गीत से उत्पन्न मधुर शब्दों से युत और सुमेरु पर्वत पर स्थित उपवन में नारद के लिये बृहस्पति तथा अपने शिष्यों के लिये गर्ग, पराशर, काश्यप और मयासुर ने रोहिणीचन्द्र-समागम के सम्बन्ध में जो कहा है, उसको थोड़े पद्यों के द्वारा कहने के लिये मैं उद्यत हुआ हूँ॥ १-३॥

रोहिणीयोग विचार करने का समय—

आषाढमासाद्यतमिस्रपक्षे क्षपाकरेणोपगतं समीक्ष्य ।
वक्तव्यमिष्टं जगतोऽशुभं वा शास्त्रोपदेशाद्ग्रहचिन्तकेन ॥ ४ ॥
योगो यथानागत एव वाच्यः स धिष्ण्ययोगः करणे मयोक्तः ।
चन्द्रप्रमाणद्युतिवर्णमार्गैरुत्पातवातैश्च फलं निगद्यम् ॥ ५ ॥

आषाढ के कृष्णपक्ष में रोहिणी-चन्द्र का समागम देख कर ग्रहचिन्तक दैवज्ञों को शास्त्र में कथित प्रकार के द्वारा संसार का शुभाशुभ कहना चाहिये। भूत के प्रयोजनाभाव होने के कारण आगे का ही रोहिणीयोग कहना चाहिये, यह योग पञ्च-सिद्धान्तिका में मैंने (वराहमिहिर ने) कह दिया है। चन्द्रबिम्बप्रमाण, चन्द्र की कान्ति, चन्द्र का वर्ण, चन्द्र का मार्ग, अनेक तरह के उत्पात और वायु के द्वारा संसार का शुभाशुभ कहना चाहिये।

पञ्चसिद्धान्तिका में—

बुद्ध्वा शशिविक्षेपं कृत्वा ताराशशाङ्कविवरं च। संसाध्य च वक्तव्यः पश्चाच्चारासमायोगः॥४-५॥

रोहिणीयोग में विधान—

पुरादुदक्प्राक् पुरतोऽपि वा स्थलं त्र्यहोषितस्तत्र हुताशतत्परः ।
ग्रहान् सनक्षत्रगणान् समालिखेत् सधूपपुष्पैर्बलिभिश्च पूजयेत् ॥ ६ ॥
सरत्नतोयौषधिभिश्चतुर्दिशं तरुप्रवालापिहितैः सुपूजितैः ।
अकालमूलैः कलशैरलङ्कृतं कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसेद्द्विजः ॥ ७ ॥

नगर से उत्तर या पूर्व दिशा में ब्राह्मण हवन करते हुये तीन दिन उपवास करे। बाद अश्विनी आदि सब नक्षत्रों के साथ सूर्य आदि सब ग्रहों को लिख कर धूप, पुष्प और बलि से उनका पूजन करे। रत्न, जल और औषधि से पूर्ण, पल्लव से आच्छादित, अनेक तरह से पूजित, अकाल मूल (अग्निपाक के द्वारा श्याम वर्ण से रहित अधोभाग वाले) कलशों से अलङ्कृत चारों दिशाएँ और कुशों से आच्छादित स्थण्डिल पर बैठे।

कुङ्कुम अ.

यहाँ पर गर्ग—

के समय मेकम्प दिशं प्रागुत्तरां शुचिः। विविक्ते प्रस्थले देशे देवतायतनेऽपि वा॥
वैवज्ञः कृतशौचो जितेन्द्रियः। निमित्तकुशलो धीरः शुक्लाम्बरसमावृतः॥
असितधर्मी संयतव्रतः। ततोऽष्टम्याः परे यस्मिन् दिने संयुज्यते शशी॥
द्विपमहिषप्रयत्नेन च ततो निमित्तान्युपलक्षयेत्॥ ६-७॥

बिजली, इन्द्रधनु

कलश और होम की व्यवस्था—

आकाश लाल दावाग्नि,महाव्रतेन बीजानि सर्वाणि निधाय कुम्भे ।
समय में शुभ होता है।शरदर्भतोयैर्होमो मरुद्वारुणसोममन्त्रैः ॥ ८ ॥

१५, १६ बृ० सं०

बाद महामत नामक मन्त्र से अभिमन्त्रित सब बीजों को कलश में डाल कर सुवर्ण और कुशायुत जल से परिपूर्ण करे। तथा वायु, वरुण और चन्द्र के मन्त्र से हवन करे ॥ ८ ॥

पताका से वायु की परीक्षा—

श्लक्ष्णां पताकामसितां विदध्याद्दण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रितां च ।
आदौ कृते दिग्ग्रहणे नभस्वान् ग्राह्यस्तया योगगते शशाङ्के ॥ ९ ॥

बारह हाथ ऊँचे बाँस पर पतली और दण्डप्रमाण (चार हाथ लम्बी) पताका बाँधे। पहले दिग्ज्ञान करके रोहिणीयोग में स्थित चन्द्र के समय में उस पताका द्वारा किस तरफ की वायु है इसका ज्ञान करना चाहिये ॥ ९ ॥

वायु से शुभाशुभ फल—

तत्रार्द्धमासाः प्रहरैर्विकल्प्या वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशैः ।
सव्येन गच्छञ्छुभदः सदैव-यस्मिन् प्रतिष्ठा बलवान् स वायुः ॥१०॥

वहाँ वर्षा के निमित्त प्रहर से पक्ष और प्रहरांश से दिन की कल्पना करनी चाहिये। जैसे रोहिणीगत चन्द्र के दिन सूर्योदय से लेकर अग्रिम सूर्योदय तक आठ प्रहरों में से प्रथम प्रहर से लेकर स्थापित पताका द्वारा वायु की परीक्षा करे। यदि दिन के प्रथम प्रहर में सुन्दर वायु चले तो श्रावण कृष्ण में, द्वितीय प्रहर में चले तो श्रावण शुक्ल में, तृतीय प्रहर में वायु चले तो भाद्र कृष्ण में, चतुर्थ प्रहर में वायु चले तो भाद्र शुक्ल में, रात्रि के प्रथम प्रहर में वायु चले तो आश्विन कृष्ण में, द्वितीय प्रहर में वायु चले तो आश्विन शुक्ल में, तृतीय प्रहर में वायु चले तो कार्तिक कृष्ण में और चतुर्थ प्रहर में सुन्दर वायु चले तो कार्तिक शुक्ल में सुन्दर वृष्टि होती है। यदि सूर्योदय से आधे प्रहर तक सुन्दर वायु चले तो श्रावण कृष्णादि के साढ़े सात रोज, उसके आधे काल तक में सवा चार रोज इत्यादि वृष्टि कहनी चाहिये। कोई पक्ष की जगह मास का ग्रहण करते हैं। अतः आधे प्रहर की जगह पक्ष और उसके आधे की जगह साढ़े सात रोज इत्यादि ग्रहण करना चाहिये। यदि पताका सव्य होकर चले तो सदा शुभ करने वाली होती है। जिस वा स्थिरता हो उसी से शुभाशुभ फल कहना चाहिये।

यहाँ पर गर्ग—

दिनार्द्धमथवा वायुर्द्वौ मासौ तत्र वर्षति । चतुर्भागेन मासं तु ...ऽऽ ॥
पूर्वे चैवार्द्धदिवसे पूर्वौ मासौ तु वर्षति । अहस्तु पश्चिमे भागे पश्चि... भ्रमरों के शब्दों
अथ पूर्वं व्यतिक्रम्य भाग तत्पश्चिमं ततः । मध्याह्ने वाति चेद्वायुर्म... के गीत से उत्पन्न
भाद्रपदोऽश्वयुक् चैव मासावेतौ तु मध्यमौ । एतयोरपि निर्दैश्या ...द के लिये बृहस्पति

तथा ऋषिपुत्र— ...सुर ने रोहिणीचन्द्र-

दिनार्द्धं वाति चेद्वायुः पूर्वं पश्चिममेव वा । मासद्वयं तदा व... रा कहने के लिये मैं
समयं दिवसं वायुर्यदि वाति सुलक्षणः । मासास्तु श्रावणाद्या

वायन्तं मारुतं चापि यो वायुः प्रतिवायति। तत्र यो बलवान् वायुस्तस्यैव फलमादिशेत् ॥१०॥

बीजाङ्कुर द्वारा शुभाशुभ फल—

वृचे तु योगेऽङ्कुरितानि यानि सन्तीह बीजानि धृतानि कुम्भे।
येषां तु योंऽशोऽङ्कुरितस्तदंशस्तेषां विवृद्धिं समुपैति नान्यः ॥११॥

रोहिणी में स्थित चन्द्र के समय घड़े में दिये हुये बीजों में से जिनके जितने अंश अङ्कुरित हों उतने की उस वर्ष में वृद्धि होती है ॥ ११ ॥

रोहिणी योग के समय शुभ शकुन—

शान्तपक्षिमृगराविता दिशो निर्मलं वियदनिन्दितोऽनलः।
शस्यते शशिनि रोहिणीगते मेघमारुतफलानि वच्म्यतः ॥ १२ ॥

शान्त, मधुर बोलनेवाले पक्षी और जङ्गली जानवरों से शब्दायमान दिशा, निर्मल आकाश और सुन्दर वायु शुभ है। अब इसके अनन्तर मेघ और वायु का फल कहते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

योगे समुद्गता वाता ह्लादयन्तः सुखप्रदाः। प्रदक्षिणाः श्रेष्ठतमाः पूर्वपूर्वोत्तरा इति ॥१२॥

रोहिणी योग के समय शुभ योग—

क्वचिदसितसितैः सितैः क्वचिच्च क्वचिदसितैर्भुजगैरिवाम्बुवाहैः।
वलितजठरपृष्ठमात्रदृश्यैः स्फुरिततडिद्रसनैर्वृतं विशालैः ॥ १३ ॥
विकसितकमलोदरावदातैररुणकरद्युतिरञ्जितोपकण्ठैः।
छुरितमिव वियद्घनैर्विचित्रैर्मधुकरकुङ्कुमकिंशुकावदातैः॥ १४ ॥

पेट की तरफ से कुण्डलाकार होने के कारण पृष्ठ मात्र दिखाई देने वाले सर्पों की तरह अतः कहीं पर कृष्णश्वेत कहीं-कहीं पर केवल श्वेत, कहीं पर केवल कृष्ण विशाल और चमकती हुई बिजली के समान जीभ वाले, विकसित कमल के अन्दर के समान स्वच्छ कान्ति वाले, प्रान्त भाग में लोहित वर्ण की तरह कान्ति वाले तथा भ्रमर, कुङ्कुम और पुष्प की तरह स्वच्छ कान्तिवाले मेघों से युत आकाश रोहिणी योग के समय में शुभ होता है ॥ १३–१४ ॥

रोहिणी योग के समय में और शुभ योग—

असितघननिरुद्धमेव वा चलिततडित्सुरचापचित्रितम्।
द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं वनमिव दावपरीतमम्बरम् ॥ १५ ॥

बिजली, इन्द्रधनु और कृष्ण वर्ण के मेघों से युत होने के कारण विचित्र वर्ण का आकाश मानो दावाग्नि, हाथी और भैंसों से आकुलित वन की तरह रोहिणी योग के समय में शुभ होता है ॥ १५ ॥

१५, १६ वृ० सं०

यदि आषाढ कृष्ण चतुर्थी के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र में मेघ वृष्टि करे तो उस वर्ष में वर्षा अच्छी होती है। यदि वृष्टि नहीं करे तो अवृष्टि होती है ॥ १४ ॥

आषाढ की पूर्णिमा में ईशान की हवा का फल—

आषाढ्यां पौर्णमास्यां तु यदैशानोऽनिलो भवेत्।
अस्तं गच्छति तीक्ष्णांशौ सस्यसम्पत्तिरुत्तमा ॥ १५ ॥

यदि आषाढ की पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त काल में ईशान कोण की हवा चले तो पृथ्वी पर धान्य उत्तम रूप से होता है ॥ १५ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामाषाढीयोगाध्यायः षड्विंश. ॥ २६ ॥

अथ वातचक्राध्यायः

पूर्वी वायु का फल—

पूर्वः पूर्वसमुद्रवीचिशिखरप्रस्फालनाघूर्णित-
श्चन्द्रार्कांशुसटाकलापकलितो वायुर्यदाकाशतः।
नैकान्तस्थितनीलमेघपटला शारदसंवर्धिता
वासन्तोत्कटसस्यमण्डिततला सर्वा मही शोभते ॥ १ ॥

जिस आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन पूर्वी समुद्र के तरङ्गाग्र भाग से चालित होने के कारण घूमती हुई तथा सूर्य और चन्द्र के किरण रूप जटा से शोभित वायु आकाश से चलती है उस वर्ष में सब जगह नील वर्ण वाले मेघों से युत, शारदीय धान्यों की समृद्धि से मण्डित और वसन्त ऋतु के अति समृद्धि युत धान्यों से भूषित सारी पृथ्वी शोभित होती है ॥ १ ॥

आग्नेय दिशा की वायु का फल—

यदाग्नेयो वायुर्मलयशिखरास्फालनपटुः
प्लवत्यस्मिन् योगे भगवति पतङ्गे प्रवसति।
तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशिखरालिङ्गिततला
स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैर्वमति वसुधा भस्मनिकरम् ॥ २ ॥

यदि आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन अस्त समय में अप्रतिहत गति वाली आग्नेय कोण की वायु चले तो उस वर्ष में सर्वत्र अग्नि की ज्वाला से व्याप्त पृष्ठ वाली, प्रज्वलित पृथ्वी अपने शारीरिक उष्ण उच्छ्वास के द्वारा भस्मों को वमन करती है। अर्थात् पृथ्वी पर वृष्टि का अभाव, अग्नि का भय, प्रजाओं का नाश आदि उपद्रव होते हैं ॥ २ ॥

दक्षिण दिशा के वायु का फल—

तालीपत्रलतावितानतरुभिः शाखामृगान्नर्तयन्

योगेऽस्मिन् प्रवति ध्वनिः सपरुषो वायुर्यदा दक्षिणः ।

तद्द्योगसमुत्थितस्तु गजवच्चालाङ्कुशैर्घट्टिताः

कीनाशा इव मन्दवारिकणिका मुञ्चन्ति मेघास्तदा ॥ ३ ॥

इस योग में आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में तालपत्र, लताओं की विस्तृति और वृक्षों से वानरों को नचाते हुये, कठोर शब्द वाले दक्षिण तरफ की हवा चले तो ताल रूप अङ्कुश से ताड़ित हस्ती की तरह मेघ कृपण मनुष्य की तरह थोड़ी जलबिन्दु छोड़ता है, अर्थात् उस वर्ष में थोड़ी वृष्टि होती है ॥ ३ ॥

नैर्ऋत्य कोण की हवा का फल—

सूक्ष्मैलालवलीलवङ्गनिचयान् व्याघूर्णयन् सागरे

भानोरस्तमये प्रवत्यविरतो वायुर्यदा नैर्ऋतः ।

क्षुत्तृष्णावृतमानुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा

मत्ता प्रेतवधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा लक्ष्यते ॥ ४ ॥

इस योग में 'आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में' समुद्र के समीप छोटी इलायची, लवली और लौंग के वृक्षों को घुमाते हुये यदि नैर्ऋत्य तरफ की हवा चले तो भूख, प्यास से भरे हुये मनुष्यों की हड्डियों के टुकड़े की विस्तृति के भार से व्याप्त पृथ्वी उन्मत्त और अति चञ्चल प्रेत वधू की तरह दिखाई देती है ॥ ४ ॥

पश्चिम दिशा की हवा का फल—

यदा रेणूत्पातैः प्रविचलसटाटोपचपलः

प्रवातः पश्चाच्चेद्दिनकरकरापातसमये ।

तदा सस्योपेता प्रवरनिकरावद्धसमरा

क्षितिः स्थानस्थानेष्वविरतवसामांसरुधिरा ॥ ५ ॥

इस योग में (आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में) धूलि को उड़ाने से चलित केशर के आवेग से चञ्चल और भयङ्कर हवा चले तो उस वर्ष में धान्यों से युत, प्रधानों (राजाओं) के युद्धों से व्याप्त, जगह-जगह पर निरन्तर वसा, मांस और रक्त से व्याप्त पृथ्वी होती है ॥ ५ ॥

वायव्य कोण की हवा का फल—

आषाढीपर्वकाले यदि किरणपतेरस्तकालोपपत्तौ

वायव्यो वृद्धवेगः पवनघनवपुः पन्नगाद्यानुकारी ।

जानीयाद्वारिधाराप्रमुदितमुदितामुक्तमण्डूककण्ठां

सस्योद्भासैकचिह्नां सुखबहुलतया भाग्यसेनामिवोर्वीम् ॥ ६ ॥

इस योग में (आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में) सघन शरीर वाला (धूली के संयोग और सार्वदिक होने के कारण), सर्पों के टुकड़ों का अनुकरण करने वाला यदि वायव्य कोण की हवा चले तो उस वर्ष में जल की धारा से आनन्दित, अति शब्द करने वाले मेढकों से युत, धान्यों की बीजोत्पत्ति रूप चिह्नों से मण्डित पृथ्वी पर सुखों की अधिकता होने के कारण भाग्य सेना की तरह पृथ्वी को जानना चाहिये ॥ ६ ॥

उत्तर दिशा की हवा का फल—

मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले ग्रीष्मावसाने रवौ
वात्यामोदिकदम्बगन्धसुरभिर्वायुर्यदा चोत्तरः ।
विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकान्तिकलनामत्तास्तदा तोयदा
उन्मत्ता इव नष्टचन्द्रकिरणां गां पूरयन्त्यम्बुभिः ॥ ७ ॥

ग्रीष्म के अन्त में (आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन) मेरु से आच्छादित सूर्य के किरण होने पर (सूर्यास्त समय में) अति सुगन्ध वाले कदम्ब पुष्पों के गन्ध से सुगन्धित उत्तर तरफ की हवा चले तो उस वर्ष में बिजली से उत्पन्न सम्पूर्ण कान्तियों का स्वरूप ज्ञान होने के कारण उद्यम युत तथा उन्मत्त की तरह मेघ मेघों से नष्ट चन्द्र किरण वाली पृथ्वी को जल से पूर्ण करता है ॥ ७ ॥

ईशान कोण की हवा का फल—

ऐशानो यदि शीतलोऽमरगणैः संसेव्यमानो भवेत्
पुन्नागागरुपारिजातसुरभिर्वायुः प्रचण्डध्वनिः ।
आपूर्णोदकयौवना वसुमती सम्पन्नसस्याकुला
धर्मिष्ठाः प्रणतारयो नृपतयो रक्षन्ति वर्णांस्तदा ॥ ८ ॥

आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में देवताओं के सेवन योग्य, शीतल, भयङ्कर शब्द वाले, पुन्नाग, अगुरु और पारिजात के फूलों से सुगन्धित ईशान कोण की हवा चले तो उस वर्ष में पूर्ण जल रूप यौवन से युत और पके हुये धान्यों से व्याप्त पृथ्वी होती है तथा धर्मात्मा और शत्रुओं को अपने वश में करने वाले राजा लोग ब्राह्मण आदि वर्णों की सुचारु रूप से रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥

अनार्ष पद्य—

नष्टचन्द्रार्ककिरणं नष्टतारं न चेन्नभः ।
न तां भद्रपदां मन्ये यत्र देवो न वर्षति ॥ ९ ॥

यदि चन्द्र और सूर्य के किरणों से तथा ताराओं से रहित आकाश नहीं हुआ तो उसको भाद्रपद नहीं कहना चाहिये। क्योंकि उसमें मेघ वृष्टि नहीं करता है ॥ ९ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां वातचक्राध्यायः सप्तविंश ॥ २७ ॥

अथ सद्योवर्षणाध्यायः

वर्षा प्रश्न में चन्द्र की स्थिति वश वर्षा का ज्ञान—

वर्षाप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो
लग्नं यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे।
सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भः
प्रावृट्काले सृजति न चिराचन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥ १ ॥

कृष्ण पक्ष में वर्षा प्रश्न करने पर यदि जलचर राशि में स्थित हो कर चन्द्रमा लग्न में बैठा हो या शुक्ल पक्ष में जलचर राशि में स्थित हो कर केन्द्र (चतुर्थ, सप्तम या दशम) में बैठा हो और इन दोनों योगों में यदि चन्द्रमा शुभग्रह से दृष्ट हो तो बहुत जल्दी अधिक वृष्टि और पापग्रह से दृष्ट हो तो थोड़ी वृष्टि होती है ॥ १ ॥

प्रश्न कर्ता की चेष्टावश वर्षा का ज्ञान—

आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्सञ्ज्ञकं वा
तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्योन्मुखो वा।
प्रष्टा वाच्यः सलिलमचिरादस्ति निःसंशयेन
पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्दः ॥ २ ॥

यदि वर्षा प्रश्न में प्रश्न कर्ता गीली वस्तु, जल, जल संज्ञक वस्तु (क्षीर, अब्ज इत्यादि) का स्पर्श करे, जल के समीप में स्थित हो, जल सम्बन्धी किसी कार्य में लगा हो या किसी अन्य के द्वारा जल शब्द सुनने में आवे तो शीघ्र निःसन्देह वृष्टि होती है ॥ २ ॥

सूर्य की किरण से वर्षा ज्ञान—

उदयशिखरिसंस्थो दुर्निरीक्ष्योऽतिदीप्त्या
द्रुतकनकनिकाशः स्निग्धवैडूर्यकान्तिः।
तदहनि कुरुतेऽम्भस्तोयकाले विवस्वान्
प्रतपति यदि चोच्चैः खं गतोऽतीव तीक्ष्णम् ॥ ३ ॥

वर्षा समय में उदयाचल पर्वत पर स्थित, अत्यन्त तीक्ष्ण किरण होने के कारण बड़ी कठिनता से देखने के लायक, गलित सुवर्ण के समान और निर्मल वैदूर्य मणि की तरह कान्ति वाला सूर्य जिस दिन दिखाई दे उसी दिन वृष्टि करता है। तथा जिस दिन मध्याह्न काल में अति तीक्ष्ण किरण वाला सूर्य हो उस दिन भी वर्षा करता है ॥ ३ ॥

और वर्षा का योग—

विरसमुदकं गोनेत्राभं वियद्विमला दिशो
लवणविकृतिः काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः ।
पवनविगमः पोप्लूयन्ते झषाः स्थलगामिनो
रसनमसकृन्मण्डूकानां जलागमहेतवः ॥ ४ ॥

स्वाद रहित जल, गौ के नेत्र के समान या काक के अण्डे के समान आकाश, निर्मल दिशा, नमक में विकार (पानी आदि आ जाना), वायु का निरोध, अतिशय उछल-उछल कर जल से सूखे में मछलियों का आना, मेढकों का बार-बार शब्द करना ये सब वृष्टि के कारण हैं ॥ ४ ॥

और भी वर्षा का योग—

मार्जारा भृशमवनिं नखैर्लिखन्तो लोहानां मलनिचयः सविस्रगन्धः ।
रथ्यायां शिशुरचिताश्च सेतुबन्धाः सम्प्राप्तं जलमचिरान्निवेदयन्ति ॥५॥

यदि बिल्ली बार-बार अपने नाखून से भूमि को खोदे, लोहों में विस्र (कच्चे मांस) की गन्ध से युत मल हो जाय या मार्ग में बालकों से रचित पुल दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि होगी ऐसा कहना चाहिये ॥ ५ ॥

और भी वर्षा का योग—

गिरयोऽञ्जनचूर्णसन्निभा यदि वा बाष्पनिरुद्धकन्दराः ।
कृकवाकुविलोचनोपमाः परिवेषाः शशिनश्च वृष्टिदाः ॥ ६ ॥

यदि अञ्जन चूर्ण के समान पर्वत, बाष्प से भरी हुई गुफा, जल में रहने वाले मुर्गे के नेत्र के समान (अति लोहित) चन्द्र किरण हो तो शीघ्र वृष्टि होती है ॥ ६ ॥

और भी वर्षा का योग—

विनोपघातेन पिपीलिकानामण्डोपसङ्क्रान्तिरहिव्यवायः ।
द्रुमावरोहश्च भुजङ्गमानां वृष्टेर्निमित्तानि गवां प्लुतं च ॥ ७ ॥

यदि बिना कारण चीटियाँ अपने अण्डों को एक जगह से दूसरी जगह ले जायँ, सर्पों का मैथुन हो, सर्प वृक्ष पर चढ़े या गौ बिना कारण उछले हो तो शीघ्र वृष्टि होगी ॥ ७ ॥

गिरगिट आदि के वश वर्षा—

तरुशिखरोपगताः कृकलासा गगनतलस्थितदृष्टिनिपाताः ।
यदि च गवां रविवीक्षणमूर्ध्वं निपतति वारि तदा न चिरेण ॥ ८ ॥

यदि वृक्ष के शिखर पर स्थित हो कर कृकलास (गिरगिट) आकाश की तरफ देखता हो और गायें ऊपर को दृष्टि करके सूर्य को देखती हों तो शीघ्र वृष्टि होती है ॥८॥

पशुओं की चेष्टा से वृष्टिज्ञान—

नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहाद्धुन्वन्ति श्रवणान् खुरानपि ।
पशवः पशुवच्च कुकुरा यद्यम्भः पततीति निर्दिशेत् ॥ ९ ॥

यदि पशु घर से बाहर होने की इच्छा न करें और कान तथा पाँव हिलावें तो वृष्टि कहनी चाहिये। अथवा पशु की तरह कुत्ता चेष्टा करे तो भी वृष्टि कहनी चाहिये॥९॥

कुत्ते की चेष्टा से वृष्टि ज्ञान—

यदा स्थिता गृहपटलेषु कुकुरा रुदन्ति वा यदि विततं वियन्मुखाः ।
दिवा तडिद्यदि च पिनाकिदिग्भवा तदा क्षमा भवति समैव वारिणा ॥१०॥

जब घर के आच्छादन (छतों पर) में स्थित हो कर आकाश की तरफ देखता हुआ कुत्ता भूंके तथा ईशान कोण में बिजली दिखाई दे तब जल से पृथ्वी समान हो जाती है अर्थात् अधिक वृष्टि होती है ॥ १० ॥

चन्द्र से वृष्टि ज्ञान—

शुककपोतविलोचनसन्निभो मधुनिभश्च यदा हिमदीधितिः ।
प्रतिशशी च यदा दिवि राजते पतति वारि तदा नचिरेण च ॥११॥

जिस समय तोता या कबूतर के नेत्र के समान या शहद की तरह चन्द्र हो या आकाश में दूसरा चन्द्र दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि होती है ॥ ११ ॥

मेघ के गर्जन आदि से वृष्टि ज्ञान—

स्तनितं निशि विद्युतो दिवा रुधिरनिभा यदि दण्डवत् स्थिताः ।
पवनः पुरतश्च शीतलो यदि सलिलस्य तदाऽऽगमो भवेत् ॥ १२ ॥

यदि रात में मेघ का गर्जन हो, दिन में रुधिर के समान दण्डाकार बिजली दिखाई दे तथा पूर्व दिशा की ठंडी हवा चले तो वर्षा का आगम होता है ॥ १२ ॥

लता आदियों से वृष्टि ज्ञान—

वल्लीनां गगनतलोन्मुखाः प्रवालाः स्नायन्ते यदि जलपांसुभिर्विहङ्गाः ।
सेवन्ते यदि च सरीसृपास्तृणाग्राण्यासन्नो भवति तदा जलस्य पातः॥१३॥

यदि लताओं के नये पत्ते ऊर्ध्व मुख के हों, जल या धूलि से पक्षी स्नान करें या सरीसृप (कृमिजाति = सांप आदि) तृण के प्रान्त भाग पर स्थित हों तो शीघ्र वर्षा होती है ॥ १३ ॥

संध्या कालिक मेघ के वर्ण से वृष्टि ज्ञान—

मयूरशुकचापचातकसमानवर्णा यदा
जपाकुसुमपङ्कजद्युतिमुषश्च सन्ध्याधनाः ।
जलोर्मिनगनक्रकच्छपवराहमीनोपमाः
प्रभूतपुटसञ्चया न तु चिरेण यच्छन्त्यपः ॥ १४ ॥

मयूर, तोता, चाष (नीलकंठ), चातक, जपापुष्प या कमल के समान कान्ति वाले तथा जल के आवर्त्त (भंवर), पर्वत, नक्र (नाक), कछुआ, सूअर या मछली के समान आकृति वाले मेघ हों तो शीघ्र वृष्टि करते हैं ॥ १४ ॥

मेघ से वृष्टि का ज्ञान—

पर्यन्तेषु सुधाशशाङ्कधवला मध्येऽञ्जनालित्विषः
स्निग्धा नैकपुटाः क्षरज्जलकणाः सोपानविच्छेदिनः ।
माहेन्द्रीप्रभवाः प्रयान्त्यपरतः प्राग्वाम्बुपाशोद्भवा
ये ते वारिमुचस्त्यजन्ति नचिरादम्भः प्रभूतं भुवि ॥ १५ ॥

यदि चारों तरफ चूना या चन्द्र के समान श्वेत, मध्य में कज्जल या भ्रमर के समान कान्ति वाले, निर्मल, ऊपर २ स्थित, जल बिन्दु छोड़ते हुये और सीढ़ी की तरह स्थित मेघ पूर्व दिशा में उत्पन्न हो कर पश्चिम की तरफ या पश्चिम में उत्पन्न हो कर पूर्व दिशा की तरफ गमन करे तो पृथ्वी पर शीघ्र अधिक वृष्टि करता है ॥१५॥

उदयास्त समय में इन्द्रधनु आदि के दर्शन से वृष्टि ज्ञान—

शक्रचापपरिघप्रतिसूर्या रोहितोऽथ तडितः परिवेषः ।
उद्गमास्तसमये यदि भानोरादिशेत्प्रचुरमम्बु तदाशु ॥ १६ ॥

यदि सूर्य के उदय या अस्त समय में इन्द्रधनु, परिघ (४७ वें अध्याय के १९ वें श्लोक में), दूसरा सूर्य, रोहित (४७ अ० २० श्लोक में), या सूर्य, चन्द्र का परिवेष दिखाई दे तो शीघ्र अधिक वृष्टि होती है ॥ १६ ॥

आकाश के वर्ण आदि से वृष्टि ज्ञान—

यदि तित्तिरपत्रनिभं गगनं मुदिताः प्रवदन्ति च पक्षिगणाः ।
उदयास्तमये सवितुर्द्युनिशं विसृजन्ति घना नचिरेण जलम् ॥१७॥

यदि उदय या अस्त समय तित्तिर के पंख के समान आकाश हो और आनन्दित हो कर पक्षी गण शब्द करें तो क्रम से दिन और रात्रि में शीघ्र अति वृष्टि होती है। जैसे उदय काल में उक्त लक्षण हो तो दिन में और अस्त काल में हो तो रात्रि में अति वृष्टि होती है ॥ १७ ॥

सूर्य के किरण से वृष्टि ज्ञान—

यद्यमोघकिरणाः सहस्रगोरस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः ।
भूसमं च रसते यदाम्बुदस्तन्महद्भवति वृष्टिलक्षणम् ॥ १८ ॥

यदि हजार, अमोघ (३० अध्याय ११ वें श्लोक में), अस्ताचल पर्वत के हाथ की तरह उन्नत सूर्य के किरण दिखाई दें और मेघ पृथ्वी के निकट आकर गर्जे तो वर्षा होने का उत्तम योग होता है।

समाससंहिता में—

वृष्टिकाले शान्ता वाल्पदिवस्था विहङ्गा वा ।
दर्पणलोहकलङ्को लवणक्लेदोऽतितीक्ष्णकिरणोऽर्कः ॥
पोद्वहन्ते मत्स्या दिक्ष्वैशान्यां तडिच्च दिवा । उत्कर्णपुच्छवदना गावस्तापोऽम्भसां पवननाशः ॥
अञ्जनपुञ्जश्यामा गिरयो बाष्पावृता यदि वा ।
यदि जलपांशुस्नानं विहगानां मैथुनं द्विजिह्वानाम् ॥
वृक्षारोहणमथवा पिपीलिकाण्डोपसङ्क्रान्तिः । कृकवाकुशुककपोतकलविङ्कविलोचनोऽर्केन्द्वोः ॥
स्निग्धः परिवेषो वा वियदमलं वाल्कनिनिचयम् ।
मधुमदृशः शीतांशुः प्रतिचन्द्रः शीतमारुतः पूर्वः ॥
ऊर्ध्वाङ्कुराश्च वल्यस्सद्योवर्षाय कीर्त्यन्ते । स्निग्धाः समसितरेखा यथाभ्रवृन्दानि कल्पितान्येव ॥
यच्छन्त्यपो मयूखा यदि चेन्द्रोर्वा रवेर्दीप्ताः ॥

तथा पराशर—

बलवत्सु महद्वर्षमल्पेष्वल्पाम्बुशीकरम् । मध्येषु मध्यमं ब्रूयाद्विमिश्रेषु निमित्तवत् ॥
उल्कानिर्घातभूकम्पपांसुवर्षाणि केतवः । अपसव्या ग्रहाश्चैव नित्यं वर्षासु वर्षदाः ॥ १८ ॥

ग्रह स्थिति वश वृष्टि ज्ञान—

प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात्सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः ।
सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च जलाऽऽगमनाय ॥ १९ ॥

यदि वर्षा काल में शुक्र से सप्तम राशि में स्थित होकर चन्द्रमा शुभग्रह से देखा जाता हो अथवा शनैश्चर से नवम या पञ्चम में स्थित होकर शुभग्रह से देखा जाता हो तो जल के आगमन के लिये होता है ॥ १९ ॥

और वर्षा का योग—

प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसङ्क्रमे च ।
पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चार्द्राम् ॥ २० ॥

ग्रहों के उदय या अस्तकाल में, चन्द्र के साथ समागम होने पर, मण्डल (शुक्रचारोक्त मण्डल) में प्रवेश होने पर, पक्ष के अन्त में, सूर्य के दक्षिणायनान्त और उत्तरायणान्त (कर्क और मकर संक्रान्ति) में तथा सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में स्थित होने पर निश्चय करके वृष्टि होती है ॥ २० ॥

दो ग्रहों के योग से फल—

समागमे पतति जलं ज्ञशुक्रयोर्ज्ञजीवयोर्गुरुसितयोश्च सङ्गमे ।
यमारयोः पवनहुताशजं भयं ह्यदृष्टयोरसहितयोश्च सद्ग्रहैः ॥ २१ ॥

बुध-शुक्र, बुध-गुरु, गुरु-शुक्र और शनि-मंगल की युति हो तथा उस पर शुभग्रह की दृष्टि या योग न हो तो वायु और अग्नि का भय होता है ॥ २१ ॥

ग्रहों के वश से वृष्टि ज्ञान—

अग्रतः पृष्ठतो वाऽपि ग्रहाः सूर्यावलम्बिनः ।
यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव ॥ २२ ॥

यदि सूर्य से मन्दगति ग्रह आगे और शीघ्रगति ग्रह पीछे हों तो पृथ्वी को जल से समुद्र की तरह कर देते हैं ॥ २२ ॥

जुगनू के द्वारा वृष्टि ज्ञान—

प्रविशति यदि खद्योतो जलदसमीपेषु रजनीषु ।
केदारपूरमधिकं वर्षति देवस्तदा नचिरात् ॥ २३ ॥

यदि रात्रि में जुगनू मेघ के समीप तक जाय तो शीघ्र मेघ धान्य के खेतों को पूर्ण करने वाली वृष्टि करता है ॥ २३ ॥

सियार के द्वारा वृष्टि ज्ञान—

वर्षत्यपि रटति यदा गोमायुश्च प्रदोषवेलायाम् ।
सप्ताहं दुर्दिनमपि तदा पयो नात्र सन्देहः ॥ २४ ॥

यदि प्रदोष समय में वर्षा हो या सियार भूंकें तो निश्चय करके सात रोज तक दुर्दिन और वृष्टि होती है ॥ २४ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सद्योवर्षणाध्यायोऽष्टाविंशः ॥ २८ ॥



अथ कुसुमलताध्यायः

इस अध्याय का प्रयोजन—

फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम् ।
सुलभत्वं द्रव्याणां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम् ॥ १ ॥

वृक्षों में फल और फूलों की वृद्धि देख कर द्रव्यों की सुलभता तथा धान्यों की निष्पत्ति जाननी चाहिये ॥ १ ॥

किस वस्तु से किसकी वृद्धि होती है—

शालेन कलमशाली रक्ताशोकेन रक्तशालिश्च ।
पाण्डूकः क्षीरिकया नीलाशोकेन सूकरकः ॥ २ ॥

शाल वृक्ष पर फल और फूलों की वृद्धि से कलम शाली (जड़हन धान्य आदि) रक्त अशोक से रक्त धान्य, दूधी से पाण्डूक और नील अशोक पर फल, फूलों की वृद्धि से सूकरक (धान्य विशेष) की वृद्धि जाननी चाहिये ॥ २ ॥

यव आदि धान्यों की वृद्धि—

न्यग्रोधेन तु यवकस्तिन्दुकवृद्ध्या च षष्टिको भवति ।
अश्वत्थेन ज्ञेया निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ॥ ३ ॥

वट वृक्ष से यव, तिन्दुक (तेंदुआ) से साठी धान्य और पीपल से सब धान्यों की वृद्धि देखनी चाहिये ॥ ३ ॥

तिल, माष आदि धान्यों की वृद्धि—

जम्बूभिस्तिलमाषाः शिरीषवृद्ध्या च कङ्गुनिष्पत्तिः ।
गोधूमाश्च मधूकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन ॥ ४ ॥

जामुन से तिल, माष आदि, शिरीष (सिरस) से प्रियङ्गु (ककुनी=कौनी), महुए से गेहूँ और सप्तपर्ण वृक्ष पर फल, फूल की वृद्धि से यव की वृद्धि जाननी चाहिये ॥४॥

कपास आदि की वृद्धि—

अतिमुक्तककुन्दाभ्यां कर्पासं सर्षपान् वदेदशनैः ।
बदरीभिश्च कुलत्थांश्चिरबिल्वेनादिशेन्मुद्गान् ॥ ५ ॥

वासन्ती लता और कुन्द पुष्पों में फल, पुष्पों की वृद्धि से कपास, असना से सरसों, बेर से कुलथी और करञ्ज में फल-पुष्पों की वृद्धि से मूंग की वृद्धि जाननी चाहिये ॥५॥

अल्सी आदि की वृद्धि—

अतसी वेतसपुष्पैः पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेयाः ।
तिलकेन शङ्खमौक्तिकरजतान्यथ चेङ्गुदेन शणाः ॥ ६ ॥

वेतस वृक्ष में फल-पुष्पों की वृद्धि से अलसी (तीसी), पलास से कोदों, तिलक से शंख, मोती और चाँदी की तथा इङ्गुदी वृक्षों में फल-पुष्पों से सन की वृद्धि जाननी चाहिये ॥ ६ ॥

हाथी आदि की वृद्धि—

करिणश्च हस्तिकर्णैरादेश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन ।
गावश्च पाटलाभिः कदलीभिरजाविकं भवति ॥ ७ ॥

हस्तिकर्ण वृक्ष पर फल-पुष्पों की वृद्धि से हाथी, अश्वकर्ण से घोड़ा, पाटला से गाय और कदली वृक्ष पर फल-पुष्पों की वृद्धि से बकरी, भेड़ आदि की वृद्धि होती है ॥७॥

सोना आदि की वृद्धि—

चम्पककुसुमैः कनकं विद्रुमसम्पच्च बन्धुजीवेन ।
कुरबकवृद्ध्या वज्रं वैदूर्यं नन्दिकावर्त्तैः ॥ ८ ॥

चम्पा फूल की वृद्धि से सोना, बन्धुजीव से मूंगा, कुरवक से वज्र और नन्दिकावर्त्त से वैदूर्य मणि की वृद्धि होती है ॥ ८ ॥

केशर आदि की वृद्धि—

विन्ध्याच सिन्धुवारेण मौक्तिकं कारुकाः कुसुम्भेन ।
रक्तोत्पलेन राजा मन्त्री नीलोत्पलेनोक्तः ॥ ९ ॥

सिन्दुवार से मोती, कुसुम्भ से केशर, रक्त कमल से राजा और नील कमल से मन्त्री की वृद्धि देखनी चाहिये ॥ ९ ॥

व्यापारादि की वृद्धि—

श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पात्पद्मैर्विप्राः पुरोहिताः कुमुदैः ।
सौगन्धिकेन बलपतिरर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः ॥ १० ॥

सुवर्ण पुष्प से व्यापारी, कमल से ब्राह्मण, कुमुद से पुरोहित, सुगन्ध वस्तु से सेनापति और आक से सोने की वृद्धि देखनी चाहिये ॥ १० ॥

मनुष्य आदि का कुशल—

आम्रैः क्षेमं भल्लातकैर्भयं पीलुभिस्तथारोग्यम् ।
खदिरशमीभ्यां दुर्भिक्षमर्जुनैः शोभना वृष्टिः ॥ ११ ॥

आम की वृद्धि से मनुष्यों का कुशल, भल्लातक से भय, पीलु से आरोग्य, खैर तथा शमी से दुर्भिक्ष और अर्जुन वृक्ष से सुन्दर वृष्टि कहनी चाहिये ॥ ११ ॥

सुभिक्ष आदि का ज्ञान—

पिचुमन्दनागकुसुमैः सुभिक्षमथ मारुतः कपित्थेन ।
निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं भवति कुटजेन ॥ १२ ॥

निम्ब और नागकेसर पर पुष्पों की वृद्धि से सुभिक्ष, कपित्थ से वायु, निचुल से अवृष्टि का भय और कुटज से व्याधि भय का ज्ञान करना चाहिये ॥ १२ ॥

ईख आदि की वृद्धि—

दूर्वाकुशकुसुमाभ्यामिक्षुर्वह्निश्च कोविदारेण ।
श्यामालताभिवृद्ध्या बन्धक्यो वृद्धिमायान्ति ॥ १३ ॥

दूब और कुश के पुष्पों की वृद्धि से ईख (गन्ना), कचनार से आग, और श्याम लता की वृद्धि से वेश्या, व्यभिचारिणी आदि स्त्री की वृद्धि होती है १३ ॥

वृक्ष के पत्तों से वृष्टि ज्ञान—

यस्मिन् काले स्निग्धनिश्छिद्रपत्राः सन्दृश्यन्ते वृक्षगुल्मा लताश्च ।
तस्मिन्वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा रूक्षैश्छिद्रैरल्पमम्भः प्रदिष्टम् ॥ १४ ॥

जिस समय वृक्ष गुल्म (फैली लता) और लताओं के पत्ते चिकने तथा छिद्र रहित दिखाई दें उस समय सुन्दर वृष्टि होती है। यदि वे (पत्ते) रूक्ष और छिद्र युत हों तो थोड़ी वृष्टि होती है।

यहां पर पराशर—

अच्छिद्रपत्रा सुस्निग्धाः फलपुष्पसमन्विता । निर्दिशन्ति शुभं वृक्षा विपरीतं विगर्हिताः ॥ १४ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां कुसुमलताध्याय एकोनत्रिंश ॥ २९ ॥

अथ सन्ध्यालक्षणाध्यायः

सन्ध्या का लक्षण—

अर्द्धास्तमितातुदिवात् सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्।
तावत् सन्ध्याकालश्चिह्नैरेतैः फलं चास्मिन्॥ १॥

अर्द्धास्त सूर्य विम्ब के बाद आकाश में नक्षत्र गण अच्छी तरह नहीं दिखाई देने तक एक संध्या (सायं सन्ध्या) और नक्षत्रों के स्वल्प कान्ति होने के बाद अर्द्धोदित सूर्य विम्ब होने तक दूसरी (सायं संध्या) होती है। लक्षणों के द्वारा इसका फल आगे कहते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

अहोरात्रस्य यः सन्धिः सा च सन्ध्या प्रकीर्त्तिता। द्विनाडिका भवेत्सा तु यावद्‌ज्योतिदर्शनम्॥

फलादेश के आधार वस्तु—

मृगशकुनिपवनपरिवेषपरिधिपरिघाभ्रवृक्षसुरचापैः।
गन्धर्वनगररविकरदण्डरजः स्नेहवर्णैश्च॥ २॥

अरण्यवासी पशु, पक्षी, वायु, रवि चन्द्र के परिवेष, प्रतिसूर्य, परिघ, मेघरेखा, वृक्षाकार मेघ, इन्द्रधनु, गन्धर्वनगर, सूर्य की रश्मि, दण्ड (रविकिरण, जल और वायु का संधान), धूली इन सबों के सन्ध्याकालिक स्नेह और वर्णों से फल कहना चाहिये॥ २॥

मृग के लक्षण से फल—

भैरवमुच्चैर्विरुवन् मृगोऽसकृद्ग्रामघातमाचष्टे।
रविदीप्तो दक्षिणतो महास्वनः सैन्यघातकरः॥ ३॥

बार बार ऊँचा भयकर शब्द करने वाला मृग ग्रामों के नाश का सूचक है। तथा सेना के दक्षिण भाग में स्थित सूर्याभिमुख हो कर भयंकर शब्द करे तो सेनाओं को नष्ट करता है॥ ३॥

मृग के लक्षण से और फल—

अपसव्ये सङ्ग्रामः सव्ये सेनासमागमः शान्ते।
मृगचक्रे पवने वा सन्ध्यायां मिश्रगे वृष्टिः॥ ४॥

यदि संध्या काल में सेनाओं के वाम भाग में सूर्याभिमुख हो कर मृग समूह या वायु हो तो संग्राम, दक्षिण में सूर्याभिमुख नहीं हो कर स्थित हो तो सेनाओं का समागम और दोनों तरफ स्थित हो तो वृष्टि होती है॥ ४॥

संध्या का लक्षण और फल—

दीप्तमृगाण्डजविरुता प्राक् सन्ध्या देशनाशमाख्याति।
दक्षिणदिक्स्थैर्विरुता ग्रहणाय पुरस्य दीप्तास्यैः॥ ५॥

सूर्याभिमुख हुये मृग और पक्षियों के शब्द युत प्रातः संध्या देश का नाश करती है। तथा सूर्याभिमुख हो कर दक्षिण दिशा में स्थित मृग और पक्षियों के शब्द युत सन्ध्या शत्रुओं से नगर के ग्रहण को कराती है ॥ ५ ॥

संध्याकाल में वायु का लक्षण और फल—

गृहतरुतोरणमथने सपांसुलोष्टोत्करेऽनिले प्रबले।
भैरवरावे रूक्षे खगपातिनि चाशुभा सन्ध्या ॥ ६ ॥

गृह, वृक्ष, और तोरण (पुरद्वार) को कम्पित करती हुई, धूली और मृत्खण्डों से युत, प्रबल, भयंकर, रूक्ष तथा आकाश से पक्षियों को गिराती हुई सन्ध्या समय की हवा अशुभ फल देने वाली होती है ॥ ६ ॥

संध्याकाल का लक्षण—

मन्दपवनावघट्टितचलितपलाशद्रुमा विपवना वा।
मधुरस्वरशान्तविहङ्गमृगरुता पूजिता सन्ध्या ॥ ७ ॥

मन्द मन्द चलती हुई हवा से कम्पित पत्रों से युक्त वृक्ष, वायु से रहित, या मधुर शब्द करने वाले, शान्त पक्षी और मृगों से युक्त संध्या शुभ होती है ॥ ७ ॥

संध्याकाल का और लक्षण—

सन्ध्याकाले स्निग्धा दण्डतडिन्मत्स्यपरिघिपरिवेषाः।
सुरपतिचापैरावतरविकिरणाश्चाशु वृष्टिकराः ॥ ८ ॥

दण्ड, विद्युत्, मछली की आकृति वाला मेघ, प्रतिसूर्य, परिघ, इन्द्रधनु ऐरावत (४७ अध्याय २० पद्य), सूर्यकिरण ये सब यदि संध्या काल में निर्मल हों तो वृष्टि करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

संध्याकाल में सूर्यकिरण का लक्षण और फल—

विच्छिन्नविषमविध्वस्तविकृतकुटिलापसव्यपरिवृत्ताः।
तनुह्रस्वविकलकलुषाश्च विग्रहावृष्टिदाः किरणाः ॥ ९ ॥

सन्ध्या काल में खण्ड खण्ड, विषम, वर्ण रहित, विकृत, कुटिल, अप्रदक्षिण क्रम से परिवेष्टित, सूक्ष्म, छोटा, शक्तिरहित तथा मलिन सूर्य का किरण हो तो मनुष्यों में परस्पर विरोध और वृष्टि को करता है ॥ ९ ॥

सूर्यकिरण का विशेष लक्षण और फल—

उद्द्योतिनः प्रसन्ना ऋजवो दीर्घाः प्रदक्षिणावर्ताः।
किरणाः शिवाय जगतो वितमस्के नभसि भानुमतः ॥ १० ॥

यदि अन्धकार रहित आकाश में तेज युत, निर्मल, स्पष्ट, दीर्घ और दक्षिणावर्त क्रम से परिवेष्टित सूर्य का किरण हो तो संसार का कल्याण करने वाला होता है ॥१०॥

पूर्वोक्त अमोघ किरणों का लक्षण और फल—

शुक्लाः करा दिनकृतो दिवादिमध्यान्तगामिनः स्निग्धाः।
अव्युच्छिन्ना ऋजवो वृष्टिकरास्ते त्वमोघाख्याः ॥ ११ ॥

सम्पूर्ण आकाश को व्याप्त करने वाले, निर्मल, अखण्डित और स्पष्ट सूर्य के किरण अमोघ संज्ञक (शुभ फल देने वाले) हैं ॥ ११ ॥

और किरण का फल—

कल्माषवभ्रुकपिला विचित्रमाञ्जिष्ठहरितशबलाभाः।
त्रिदिवानुबन्धिनोऽवृष्टयेऽल्पभयदास्तु सप्ताहात् ॥ १२ ॥

कल्माष (पीला, श्वेत और काला वर्ण मिश्रित), थोड़े पीले, पीले, विचित्र, मंजिष्ठ (मजीठ) की तरह हरे, काला-श्वेत दोनों मिले हुये और सम्पूर्ण आकाशमण्डल को व्याप्त करके स्थित सूर्य के किरण दिखाई दें तो उसके सात दिन बाद से वृष्टि और थोड़ा भय करते हैं ॥ १२ ॥

ताम्रादि वर्ण के सूर्य किरण का फल—

ताम्रा बलपतिमृत्युं पीतारुणसन्निभाश्च तद्व्यसनम्।
हरिताः पशुसस्यवधं धूमसवर्णा गवां नाशम् ॥१३॥
माञ्जिष्ठाभाः शस्त्राग्निसम्भ्रमं बभ्रवः पवनवृष्टिम्।
भस्मसदृशास्त्ववृष्टिं तनुभावं शबलकल्माषाः ॥१४॥

सूर्यकिरण यदि ताम्रवर्णकी हो तो सेनापतिकी मृत्यु पीले और लालरंग सदृश हो तो सेनापति को कष्ट, हरे रंग के समान हो तो पशु तथा धान्य का नाश, धूम्रवर्ण की हो तो गायोंका नाश, मजीठ वर्णकी हो तो शस्त्र तथा अग्नि से भय, पीले हो तो वायु के झकोरों से युक्त वर्षा, भस्म समान हो तो अनावृष्टि, सफेद, काले, नीले, पीले ये सब मिले हुये वर्ण की तरह हो तो बहुत ही कम वर्षा होती है ॥ १३–१४ ॥

सन्ध्या-कालिक धूलि का लक्षण और फल—

बन्धूकपुष्पाञ्जनचूर्णसन्निभं सान्ध्यं रजोऽभ्येति यदा दिवाकरम्।
लोकस्तदा रोगशतैर्निपीड्यते शुक्लं रजो लोकविवृद्धिशान्तये ॥१५॥

यदि बन्धूक पुष्प या अञ्जन की तरह होकर धूली सूर्य की तरफ जाय तो लोग सैकड़ों रोगों से पीड़ित होते हैं, तथा श्वेत वर्ण की होकर धूली सूर्य की तरफ जाय तो लोगों की वृद्धि और शान्ति के लिये होती है।

यहाँ पर पराशर—

बन्धुजीवनिकाशेन तपनीयनिभेन वा। उदये रजसा सूर्यः संवृतः शस्त्रमावहेत् ॥
शंखचूर्णनिकाशेन रजसा संवृतो रविः। राज्ञां विजयमाख्याति वृद्धिं जनपदस्य च ॥ १५ ॥

दण्ड का लक्षण और फल—

रविकिरणजलदमरुतां सङ्घातो दण्डवत्स्थितो दण्डः।
स विदिक्स्थितो नृपाणामशुभो दिक्षु द्विजादीनाम् ॥ १६ ॥

सूर्यकिरण, मेघ, वायु ये तीनों मिल कर दण्ड की तरह स्थित हों तो उसको दण्ड कहते हैं, यह दण्ड कोणों में स्थित हो तो राजाओं का और दिशाओं में स्थित हो तो चारो वर्णों का अशुभ करता है ॥ १६ ॥

दण्ड का विशेष फल—

शस्त्रभयातङ्ककरो दण्डः प्राह्णमध्यसन्धिषु दिनस्य।
शुक्लाद्यो विप्रादीन् यदभिमुखस्तां निहन्ति दिशम् ॥ १७ ॥

यदि यह दण्ड सूर्योदय, मध्याह्न या सूर्यास्त काल में दिखाई दे तो शस्त्रभय और उपद्रव करता है। तथा श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मणों का, रक्तवर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है। एवं यह जिस दिशा के सम्मुख स्थित हो उस दिशा का नाश करता है। सूर्य के समीप का इसका भाग मूल और दूसरी तरफ मुख होता है ॥ १७ ॥

मेघवृक्ष का लक्षण और फल—

दधिसदृशाग्रो नीलो भानुच्छादी खमध्यगोऽभ्रतरुः।
पीतच्छुरिताश्च घना घनमूला भूरिवृष्टिकराः ॥ १८ ॥

दही के समान अग्रभाग वाले, नील वर्ण के भाग से सूर्य को आच्छादित करने वाले, आकाश के मध्य में स्थित, पीले रङ्ग से रँगे और मूल की तरफ सघन मेघवृक्ष हों तो अधिक वृष्टि करता है ॥ १८ ॥

मेघवृक्ष के द्वारा गमन करने वाले राजा का शुभाशुभ फल—

अनुलोमगोऽभ्रवृक्षे शमं गते यायिनो नृपस्य वधः।
बालतरुप्रतिरूपिणि युवराजामात्ययोर्मृत्युः ॥ १९ ॥

शत्रु के ऊपर चढ़ाई करने वाले विजयेच्छु राजा के पीछे-पीछे कुछ दूर जाकर यदि मेघवृक्ष नष्ट हो जाय तो उस राजा का मरण होता है। यदि वही मेघवृक्ष बाल (छोटे) वृक्ष की तरह हो तो युवराज और मन्त्री का मरण होता है ॥ १९ ॥

फिर सन्ध्या का लक्षण और फल—

कुवलयवैदूर्याम्बुजकिञ्जल्काभा प्रभञ्जनोन्मुक्ता।
सन्ध्या करोति वृष्टिं रविकिरणोद्भासिता सद्यः ॥ २० ॥

नील कमल, वैदूर्य मणि या कमल के केशर की तरह कान्ति वाली, वायु से रहित और सूर्य के किरणों से प्रकाशित सन्ध्या हो तो उसी रोज वृष्टि करती है ॥ २० ॥

फिर सन्ध्या का लक्षण और फल—

अशुभाकृतिघनगन्धर्वनगरनीहारधूमपांसुयुता।
प्रावृषि करोत्यवग्रहमन्यर्चा शस्त्रकोपकरी ॥ २१ ॥

गन्धर्व नगर, हिम, धूम और धूली से युक्त सन्ध्या वर्षाकाल में अवृष्टि तथा अन्य ऋतु में शस्त्र-कोप करती है ॥ २१ ॥

शिशिर आदि ऋतुओं में सन्ध्या का लक्षण और फल—

शिशिरादिषु वर्णाः शोणपीतसितचित्रपद्मरुधिरनिभाः।
प्रकृतिभवाः सन्ध्यायां स्वर्त्तौ शस्ता विकृतिरन्या ॥ २२ ॥

शिशिर ऋतु में लाल, वसन्त ऋतु में पीला, ग्रीष्म ऋतु में श्वेत, वर्षा ऋतु में चित्र, शरद् ऋतु में कमल की तरह और यदि हेमन्त ऋतु में रुधिर की तरह सन्ध्या का वर्ण हो तो शुभ अन्यथा अशुभ फल होता है।

यहाँ पर गर्ग—

वसन्ते मधुवर्णाभाऽथवा रुधिरसन्निभा। ग्रीष्मे श्वेता रजोध्वस्ता पांसुवर्णा च शस्यते ॥
नीललोहितशुक्लाभा सन्ध्या वर्षासु वार्षिका। माञ्जिष्ठवर्णा शरदि पीयूषाभा च शस्यते ॥
हेमन्ते बभ्रुवर्णा च पिङ्गला चापि पूजिता। शिशिरे शोणवर्णा च सन्ध्या क्षेमसुखप्रदा ॥
स्निग्धा प्रसन्ना विमला सप्रभा नाकुलापि वा। सन्ध्या यथर्तुवर्णाभा शान्तद्विजमृगा शुभा ॥

मेघ आदि के द्वारा फल—

आयुधभृन्नररूपं छिन्नाभ्रं परभयाय रविगामि।
सितखपुरेऽर्काक्रान्ते पुरलाभो भेदने नाशः ॥ २३ ॥

यदि सन्ध्याकाल में शस्त्र लिये हुए पुरुष की तरह मेघखण्ड दिखाई दे तो शत्रु का भय, सूर्य से आच्छादित और श्वेत वर्ण का गन्धर्व-नगर दिखाई दे तो पुर का लाभ और सूर्य से भेदित गन्धर्व-नगर हो तो पुर का नाश होता है ॥ २३ ॥

मेघ के वर्णों से फल—

सितसितान्तघनवारणं रवेर्भवति वृष्टिकरं यदि सव्यतः।
यदि च वीरणगुल्मनिभैर्घनैर्दिवसभर्त्तुरदीप्तदिगुद्भवैः ॥ २४ ॥

शुक्ल और शुभ्र (स्वच्छ) किरण वाले या वीरण (गांडर) के समान कान्ति वाले शान्त दिशा में उत्पन्न मेघ सूर्य के दक्षिण भाग को आच्छादित करे तो वृष्टि करता है ॥ २४ ॥

परिघ के वश शुभाशुभ फल—

नृपविपत्तिकरः परिघः सितः क्षतजतुल्यवपुर्बलकोपकृत्।
कनकरूपधरो बलवृद्धिदः सवितुरुद्गमकालसमुत्थितः ॥ २५ ॥

सूर्योदयकाल में उत्पन्न मेघरेखा यदि शुक्ल वर्ण की हो तो राजा का नाश, रक्तवर्ण की हो तो सेना का नाश और सुवर्ण की तरह कान्ति वाली हो तो सेनाओं की वृद्धि करती है ॥ २५ ॥

परिधि के वश शुभाशुभ फल—

उभयपार्श्वगतौ परिधी रवेः प्रचुरतोयकरौ वपुषान्वितौ।
अथ समस्तककुप्परिचारिणः परिधयोऽस्ति कणोऽपि न वारिणः ॥२६॥

यदि सूर्य के दोनों तरफ परिधि (प्रतिसूर्य) दिखाई दे तो अधिक वृष्टि होती है। तथा यदि परिधि सब दिशाओं को व्याप्त करके स्थित हो तो जल का एक कण भी नहीं गिरता है अर्थात् अवृष्टि होती है ॥ २६ ॥

संध्याकालिक मेघों का लक्षण और फल—

ध्वजातपत्रपर्वतद्विपाश्वरूपधारिणः ।
जयाय सन्ध्ययोर्घना रणाय रक्तसन्निभाः ॥ २७ ॥
पलालधूमसञ्चयस्थितोपमा बलाहकाः ।
बलान्यरूक्षमूर्त्तयो विवर्धयन्ति भूभृताम् ॥ २८ ॥
विलम्बिनो द्रुमोपमाः खरारुणप्रकाशिनः ।
घनाः शिवाय सन्ध्ययोः पुरोपमाः शुभावहाः ॥ २९ ॥

यदि संध्याकाल में ध्वज, छत्र, पर्वत, हाथी या घोड़े की तरह रक्त वर्ण का मेघ दिखाई दे तो युद्ध के लिये होता है। यदि पलाल (पुआरा = पोआर = भूस = भूसा), धुएँ की तरह निर्मल शरीर वाला मेघ हो तो राजाओं की सेनाओं की वृद्धि करता है। यदि दोनों संध्याओं में लटके हुये, वृक्ष की तरह, अतिलोहित वर्णों से प्रकाशित और पुर की तरह मेघ दिखाई दे तो शुभ करता है ॥ २७–२९ ॥

सन्ध्याकाल का विशेष लक्षण और फल—

दीप्तविहङ्गशिवामृगघुष्टा दण्डरजःपरिघादियुता च ।
प्रत्यहमर्कविकारयुता या देशनरेशसुभिक्षवधाय ॥ ३० ॥

यदि सन्ध्याकाल में सूर्य के सम्मुख स्थित हुये पक्षी, शृगाल और मृगों के शब्दों से दण्ड, धूलि, परिघ आदि (इन्द्रधनु, गन्धर्व-नगर या हिम) से अथवा प्रतिदिन विकारयुक्त सूर्य से युक्त सन्ध्या हो तो देश, राजा और सुभिक्ष का नाश करती है।

कहा भी है—

प्रतिसूर्यः शक्रधनुर्दण्डकः परिवेषणम्। तथैरावतसंध्याश्च स्निग्धा ये चार्करश्मयः ॥
विद्युतो भूरिकाराश्च वर्णा ये च प्रदक्षिणाः। सन्ध्यासु यदि दृश्यन्ते सद्यो वर्षणलक्षणम् ॥ इति

यहाँ पर काश्यप—

दिनरात्र्यन्तरं सन्ध्या सूर्यस्यार्द्धं प्रदृश्यते। यावच्च तावदारभ्य शुभा वाप्यशुभापि वा ॥
नभोऽमलं शुभदिशः पद्मरागसमप्रभाः। मारुतो वाति सुरभिः सुखदो मृदुशीतलः ॥
एषा सन्ध्या शुभा ज्ञेया विपरीताऽशुभा स्मृता। रूक्षा च सविकारार्का क्रव्यादखरनादिता ॥
स्निग्धा दण्डपरीवेषा सुरचापविभूषिता। क्षिप्रं वर्षेत्तदा सन्ध्या जयाऽऽरोग्यविवृद्धिदा ॥

पूर्वोक्त फलों का समय—

प्राची तत्क्षणमेव नक्तमपरा सन्ध्या त्र्यहाद्वा फलं
सप्ताहात्परिवेषरेणुपरिघाः कुर्वन्ति सद्यो न चेत् ।
तद्वत्सूर्यकरेन्द्रकार्मुकतडित्प्रत्यर्कमेघानिला-
स्तस्मिन्नेव दिनेऽष्टमेऽथ विहगाः सप्ताहपाका मृगाः ॥३१॥

पूर्व सन्ध्या अपने फल को उसी समय में देती है। सायं सन्ध्या रात्रि या तीन दिन में, परिवेष, धूलि, परिघ, अमोघ सूर्य के किरण, इन्द्रधनु, प्रतिसूर्य, मेघ और वायु उसी समय या सात दिन में, पक्षी उसी समय या आठ दिन में और मृग सात दिन में शुभाशुभ फल करते हैं ॥ ३१ ॥

पूर्वोक्त फलों का प्रदेश—

एकं दीप्त्या योजनं भाति सन्ध्या विद्युद्भासा षट् प्रकाशीकरोति ।
पञ्चाब्दानां गर्जितं याति शब्दो नास्तीयत्ता केचिदुल्कानिपाते ॥३२॥

सन्ध्या अपनी कान्ति से प्रकाश करती है और उतनी ही दूर तक फल देती है। तथा विद्युत छ योजन तक और मेघों का गर्जन पाँच योजन तक प्रकाश करता है और उतनी ही दूर तक फल देता है। कोई कोई (देवल आदि) आचार्य का मत है कि उल्कापात होने से प्रदेश की इयत्ता नहीं है किन्तु सर्वत्र फल देने वाला होता है।

यहाँ पर देवल—

सन्ध्या तु योजनं याति विद्युद्भासा षडेव हि। मेघशब्दस्तु पञ्चानां योजनानां फलप्रदः ॥
उल्का सर्वत्र फलदा शुभा वाऽप्यशुभापि वा ॥ ३२ ॥

पूर्वोक्त फलों का प्रदेश—

प्रत्यर्कसञ्ज्ञः परिघिस्तु तस्य त्रियोजनाभः परिघस्य पञ्च ।
षट्पञ्चदृश्यं परिवेषचक्रं दशामरेशस्य धनुर्विभाति ॥ ३३ ॥

प्रतिसूर्य नामक परिधि का तीन योजन तक, परिघ का पाँच योजन तक, परिवेषचक्र का पाँच या छ योजन तक और इन्द्रधनुष का दश योजन तक प्रकाश जाता है और उतनी ही दूर तक ये सब फल भी देते हैं ॥ ३३ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सन्ध्यालक्षणाध्यायस्त्रिंशत्तमः ॥ ३० ॥



अथ दिग्दाहलक्षणाध्यायः

वर्णभेद से दिग्दाह का फल—

दाहो दिशां राजभयाय पीतो देशस्य नाशाय हुताशवर्णः ।
यश्चारुणः स्यादपसव्यवायुः सस्यस्य नाशं स करोति दृष्टः ॥१॥

यदि दिग्दाह पीत वर्ण का हो तो राजभय के लिये, अग्नि वर्ण का हो तो देश-नाश के लिये और बायीं तरफ लोहित वर्ण का वायु दिखाई दे तो धान्यों का नाश करता है ॥ १ ॥

दिग्दाह का लक्षण और फल—

योऽतीव दीप्त्या कुरुते प्रकाशं छायामपि व्यञ्जयतेऽर्कवद्यः ।
राज्ञो महद्वेदयते भयं स शस्त्रप्रकोपं क्षतजानुरूपः ॥२॥

जो दिग्दाह अपनी अत्यधिक कान्ति से प्रकाशित होता है और सूर्य की तरह दृश्यमान द्रव्य की छाया को भी प्रकाशित करता है वह राजा को अधिक भय देता है। तथा यदि वह रक्त वर्ण का हो तो शस्त्र का भय करता है ॥ २ ॥

सब दिशाओं में दिग्दाह का फल—

प्राक्क्षत्रियाणां सनरेश्वराणां प्राग्दक्षिणे शिल्पिकुमारपीडा ।
याम्ये सहोग्रैः पुरुषैस्तु वैश्या दूताः पुनर्भूप्रमदाश्च कोणे ॥ ३ ॥
पश्चात्तु शूद्राः कृषिजीविनश्च चौरास्तुरङ्गैः सह वायुदिक्स्थे ।
पीडां व्रजन्त्युत्तरतश्च विप्राः पाखण्डिनो वाणिजकाश्च शार्व्याम् ॥४॥

यदि पूर्व दिशा में दिग्दाह दिखाई दे तो वह राजा के साथ सब क्षत्रियों को पीड़ित करता है। आग्नेय कोण में दिखाई दे तो शिल्पी (लोहार, सोनार आदि) और कुमारों को पीड़ित करता है। दक्षिण में दिखाई दे तो क्रूर मनुष्य, वैश्य, दूत और पुनर्भू स्त्री (जो अक्षतयोनि होकर दोबारा शादी करती है) को पीड़ित करता है।

पुनर्भू का लक्षण—

पुनर्भूः सोच्यते भूयो याऽक्षतस्त्वाद्यथाविधि ॥

पश्चिम दिशा में दिखाई दे तो शूद्र और किसानों को पीड़ित करता है। वायव्य कोण में दिखाई दे तो घोड़े के साथ चोरों को पीड़ित करता है। उत्तर दिशा में दिखाई दे तो ब्राह्मणों को पीड़ित करता है। तथा ईशान कोण में दिग्दाह दिखाई दे तो पाखण्डी और बनियों को पीड़ित करता है।

यहाँ पर काश्यप—

प्राच्यां दिशि प्रदीप्तायां श्रेणीनां भयमादिशेत् ।
आग्नेय्यां तु कुमाराणां वैश्यानां दक्षिणे तथा ॥

नैर्ऋत्यां च स्त्रियो हन्ति शूद्रान् पश्चिमतस्तथा। वायव्यायां चौरभयं विप्राणामुत्तरे तथा॥
पाखण्डिवणिजां पीडा ऐशानी यदि दीप्यते॥ ३-४॥

दिग्दाह का शुभ लक्षण—

नभः प्रसन्नं विमलानि भानि प्रदक्षिणं वाति सदागतिश्च।
दिशां च दाहः कनकावदातो हिताय लोकस्य सपार्थिवस्य॥ ५॥

प्रसन्न (निर्मल) आकाश, विमल (निर्मल) नक्षत्र, दक्षिणावर्त्त क्रम से घूमता हुआ वायु और सुवर्ण की तरह दिग्दाह हो तो राजा के साथ सब लोगों का हित करने वाला होता है॥ ५॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां दिग्दाहलक्षणाध्याय एकत्रिंशः॥ ३१॥



अथ भूकम्पलक्षणाध्यायः

भूकम्पलक्षण में मतभेद—

क्षितिकम्पमाहुरेके बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतम्।
भूभारखिन्नदिग्गजविश्रामसमुद्भवं चान्ये॥ १॥

किसी (काश्यप आदि) का मत है कि जल में रहने वाले बड़े प्राणियों के धक्के से भूकम्प होता है। तथा अन्य (गर्ग आदि) का मत है कि पृथ्वी के भार से थके हुये दिग्गजों के विश्राम से भूकम्प होता है।

यहाँ पर काश्यप—

वारुणस्योपरि पृथ्वी सशैलवनकानना। स्थिता जलजसत्त्वाश्च सङ्क्षोभाच्चालयन्ति ताम्॥

यहाँ पर गर्ग—

चत्वारः पृथिवीं नागा धारयन्ति चतुर्दिशम्। वर्धमानः सुवृद्धश्चातिवृद्धश्च पृथुश्रवाः॥
वर्धमानो दिशं पूर्वां सुवृद्धो दक्षिणां दिशम्। पश्चिमामतिवृद्धस्तु सौम्याशां तु पृथुश्रवाः॥
नियोगाद्ब्रह्मणो ह्येते धारयन्ति वसुन्धराम्। ये श्वसन्ति यदा श्रान्ता स वायुः श्वसितो महान्॥
वेगान्महीं चालयन्ति भावाभावाय देहिनाम्॥ १॥

भूकम्पलक्षण में मतान्तर—

अनिलोऽनिलेन निहतः क्षितौ पतन् सस्वनं करोत्यन्ये।
केचित्त्वदृष्टकारितमिदमन्ये प्राहुराचार्याः॥ २॥

किसी (वसिष्ठ आदि) का मत है कि वायु एक दूसरे से टकराकर पृथ्वी पर गिरते हुए शब्द के साथ भूकम्प करता है। दूसरे (वृद्ध गर्ग आदि) का मत है कि प्रजाओं के अदृष्ट (धर्माधर्म) के द्वारा भूकम्प होता है।

यहाँ पर वसिष्ठ—

यदा तु बलवान्वायुरन्तरिक्षानिलाहतः। पतत्याशु स निर्घातो भवेदनिलसम्भवः॥
सत्त्व योगाच्चिरतरश्चरत्यन्याहता क्षितिः। सोऽभिघातसमुत्थः स्यात्सनिर्घातमहीचलः॥

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

प्रजा धर्मरता यत्र तत्र कम्पं शुभं वदेत् । जनानां श्रेयसे नित्यं विसृजन्ति सुरोत्तमाः ॥
विपरीतस्थिता यत्र जनास्तत्राशुभं तथा । विसृजन्ति प्रजानां तु दुःखशोकाभिवृद्धये ॥

पराशर आदि मुनियों का मत—

गिरिभिः पुरा सपक्षैर्वसुधा प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च ।
आकम्पिता पितामहमाहामरसदसि सव्रीडम् ॥ ३ ॥
भगवन्नाम ममैतत्त्वया कृतं यदचलेति तन्न तथा ।
क्रियतेऽचलैश्चलद्भिः शक्ताहं नास्य खेदस्य ॥ ४ ॥
तस्याः सगद्गदगिरं किञ्चित्स्फुरिताधरं विनतमीषत् ।
साश्रुविलोचनमाननमालोक्य पितामहः प्राह ॥ ५ ॥
मन्युं हरेन्द्र धात्र्याः क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्गाय ।
शक्रः कृतमित्युक्त्वा मा भैरिति वसुमतीमाह ॥ ६ ॥
किन्त्वनिलदहनसुरपतिवरुणाः सदसत्फलावबोधार्थम् ।
प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु दिननिशोः कम्पयिष्यन्ति ॥ ७ ॥

पूर्वकाल में आकाश से गिरते हुए और पृथ्वी से उड़ते हुए पंख वाले पर्वतों के द्वारा कम्पित पृथ्वी देवताओं की सभा में लज्जा के साथ ब्रह्माजी से बोली—(हे भगवान् ! आपने मेरा नाम अचला रक्खा है, पर चलायमान, भ्रमण करते हुए पर्वतों के द्वारा वह (नाम) वैसा नहीं रहा अर्थात् मैं चलायमान हूँ, इसलिये इस दुःख को सहन करने के लिये मैं समर्थ नहीं हूँ । उस (पृथ्वी) का गद्गद वाणी वाला, कुछ-कुछ फड़कते हुए अधरवाला, नम्र और अश्रुयुत नेत्र वाला मुख देख कर ब्रह्माजी ने कहा—हे इन्द्र ! पृथ्वी की आपत्ति को हरण करो और पर्वतों के पंख को नाश करने के लिये वज्र का प्रहार करो । इन्द्र ने स्वीकार करके पृथ्वी से कहा भय मत करो । किन्तु शुभाशुभ फल जानने के लिये वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण दिन और रात के क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ भाग में तुझे कम्पित करेंगे। जैसे दिन के पूर्वार्द्ध में वायु, उत्तरार्द्ध में अग्नि, रात्रि के पूर्वार्द्ध में इन्द्र और उत्तरार्द्ध में वरुण तुझे कम्पित करेंगे ।

कहा भी है—रात्रौ दिवा च पूर्वाह्णे वायव्यं कम्प उच्यते । मध्याह्ने चार्द्धरात्रे च हौताश कम्प उच्यते ॥ दिवारात्रौ तृतीयेंऽशे माहेन्द्रश्चाभिगीयते । चतुर्थे वर्तमानेंऽशे वारुणं निर्दिशेद्बुध ॥

यहाँ पर गर्ग—

कृत्वा चतुर्धाहोरात्रं द्विधाहोऽथ द्विधा निशाम् । दैवतत्रययोगाच्च चतुर्धा भगणं तथा ॥
पूर्वे दिनार्द्धे वायव्य आग्नेयोऽर्द्धे तु पश्चिमे । ऐन्द्रः पूर्वे च राज्यर्द्धे पश्चिमार्द्धे तु वारुणः ॥
चत्वार एवमेते स्युरहोरात्रविकल्पजाः । निमित्तभूता लोकानामुल्कानिर्घातभूचलाः ॥३-७॥

वायव्य कम्प के लक्षण—

चत्वार्यार्यम्णाद्यान्यादित्यं मृगशिरोऽश्वयुक् चेति।
मण्डलमेतद्वायव्यमस्य रूपाणि सप्ताहात् ॥ ८ ॥

धूमाकुलीकृताशे नभसि नभस्वान् रजः क्षिपन् भौमम्।
विरुजन्द्रुमांश्च विचरति रविरपटुकरावभासी च ॥ ९ ॥

वायव्ये भूकम्पे सस्याम्बुवनौषधीक्षयोऽभिहितः।
श्वयथुश्वासोन्मादज्वरकासभवो वणिक्पीडा ॥ १० ॥

रूपायुधभृद्वैद्यास्त्रीकविगान्धर्वपण्यशिल्पिजनाः।
पीड्यन्ते सौराष्ट्रककुरुमगधदशार्णमत्स्याश्च ॥ ११ ॥

उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मृगशिरा, अश्विनी ये सात नक्षत्र वायव्य मण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी नक्षत्र मे भूकम्प हो तो इसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। धूम से व्याप्त दिशा वाला आकाश होता है, पृथ्वी से धूलि उड़ाती हुई और वृक्षों को तोड़ती हुई हवा चलती है और सूर्य के किरण मन्द हो जाते हैं। वायव्य भूकम्प होने से धान्य, जल और वनौषधियों का नाश होता है। तथा बनियों को शोथ, दमा, उन्माद, ज्वर और खाँसी से उत्पन्न पीडा होती है। वेश्या, शस्त्रजीवी, वैद्य, स्त्री, कवि, गान विद्या जानने वाले, व्यापारी, शिल्पी तथा सौराष्ट्र, कुरु, मगध, दशार्ण और मत्स्यदेशवासी मनुष्यों को पीडित करता है।

यहाँ पर गर्ग—

प्रथमेऽह्नि चतुर्भागे निर्घातोल्कामहीचलाः। सौम्यादित्यार्यमहस्तचित्रास्वात्यश्विनीषु च ॥
भवन्त्यनिलजाः सर्वे लक्षणान्यवधारय। धूमव्याप्ता दिशः सर्वा नभस्वान् प्रक्षिपन् रजः ॥
द्रुमांश्च भञ्जंश्चरति रविस्तपति शीतलः। सप्तमेऽहनि कम्पः स्याद्भूमेरनिलसम्भवः ॥८-११॥

आग्नेय मण्डल के लक्षण—

पुष्याग्नेयविशाखाभरणीपित्र्याजभाग्यसञ्ज्ञानि।
वर्गो हौतभुजोऽयं करोति रूपाण्यथैतानि ॥ १२ ॥

तारोल्कापातावृतमादीप्तमिवाम्बरं सदिग्दाहम्।
विचरति मरुत्सहायः सप्तार्चिः सप्तदिवसान्तः ॥ १३ ॥

आग्नेयेऽम्बुदनाशः सलिलाशयसङ्क्षयो नृपतिवैरम्।
दद्रूविचर्चिकाज्वरविसर्पिकाः पाण्डुरोगश्च ॥ १४ ॥

दीप्तौजसः प्रचण्डाः पीड्यन्ते चाश्मकाङ्गबाह्लीकाः।
तङ्गणकलिङ्गवङ्गद्रविडाः शबरा अनेकविधाः ॥ १५ ॥

पुष्य, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वभाद्रपदा, पूर्वफाल्गुनी ये सात नक्षत्र

आग्नेय मण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी नक्षत्र में भूकम्प हो तो इसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। सात दिन के मध्य में दिग्दाह के साथ तारा तथा उल्का के गिरने से व्याप्त अतः प्रज्वलित की तरह आकाश होता है। तथा वायु की सहायता से अग्नि विचरण करती है। आग्नेय भूकम्प में मेघ और जलाशयों (वापी, कूप और तालाब) का नाश, राजाओं में परस्पर द्वेष, दाह, विचर्चिका, ज्वर, विसर्पिका और पाण्डु रोग होता है। तेजस्वी, क्रोधी मनुष्य, अश्मक, अङ्ग, वाह्लीक, तङ्गण, कलिङ्ग, वङ्ग, द्रविण और शबर देश वासियों को अनेक प्रकार से पीड़ित करता है।

यहाँ पर गर्ग—

द्वितीयेऽह्नि चतुर्भागे निर्घातोल्कामहीचलाः। पित्र्यभाग्याजपुष्याग्निविशाखायमदैवतैः।
भवन्त्यनिलजास्ते च लक्षणानि निबोध मे। तारोल्कापातदिग्दाहैरादीप्तं लक्ष्यते नभः॥
मरुत्सहायः सतार्चिः महाहान्तश्चरत्यपि। सप्तमेऽहनि विज्ञेयः कम्पश्चानलसम्भवः।

इन्द्रमण्डल के लक्षण—

अभिजिच्छ्रवणधनिष्ठाप्राजापत्यैन्द्रवैश्वमैत्राणि।
सुरपतिमण्डलमेतद्भवन्ति चाप्यस्य रूपाणि॥ १६॥
चलिताचलवर्ष्माणो गम्भीरविराविणस्तडिद्वन्तः।
गवलालिकुलाहिनिभा विसृजन्ति पयः पयोवाहाः॥ १७॥
ऐन्द्रं स्तुतकुलजातिख्यातावनिपालगणपविध्वंसि।
अतिसारगलग्रहवदनरोगकुच्छर्दिकोपाय॥ १८॥
काशियुगन्धरपौरवकिरातकीराभिसारहलमद्राः।
अर्बुदसुराष्ट्रमालवपीडाकरमिष्टवृष्टिकरम्॥ १९॥

अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, अनुराधा ये सात नक्षत्र इन्द्रमंडल के हैं। यदि इनमें से किसी नक्षत्र में भूकम्प हो तो उसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। जैसे पर्वत के समान शरीर वाले, गम्भीर शब्द करने वाले, बिजली वाले, महिषशृङ्ग, भ्रमरकुल और सर्पों के समान कान्ति वाले मेघ वर्षा करते हैं। ऐन्द्र कम्प में प्रधान कुल में उत्पन्न मनुष्य, यशस्वी, राजा और संघियों में प्रधान का नाश करता है। तथा अतिसार, कण्ठरोग, मुखरोग और कफ के रोग होते हैं। काशी, युगन्धर, पौरव, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्बुद, सुराष्ट्र और मालवदेशवासी मनुष्यों को पीड़ित करता है। प्रयोजन के अनुसार वृष्टि करता है।

यहाँ पर गर्ग—

निशार्द्धे तु यदा पूर्वं उल्कानिर्घातभूचलाः। मैत्रेन्द्रवैश्वश्रवणाभिजिद्रोहिणिवासवैः॥
स्यादिन्द्रसम्भवः कम्पो लक्षणानि च मे शृणु। वर्षन्ति बहवो मेघा वराहमहिषोपमाः॥
मुञ्चन्तो मधुरान् रावान् विद्युद्भासितभूतलाः। सप्तमेऽहनि सम्प्राप्ते कम्पः स्यादिन्द्रसंभवः॥

वरुणमण्डल के लक्षण—

पौष्णाप्यार्द्राश्लेषामूलाहिर्बुध्न्यवरुणदेवानि ।
मण्डलमेतद्वारुणमस्यापि भवन्ति रूपाणि ॥ २० ॥
नीलोत्पलालिभिन्नाञ्जनत्विषो मधुररात्रिणो बहुलाः ।
तडिदुद्भासितदेहा धाराङ्कुरवर्षिणो जलदाः ॥ २१ ॥
वारुणमर्णवसरिदाश्रितघ्नमतिवृष्टिदं विगतवैरम् ।
गोनर्दचेदिकुकुरान् किरातवैदेहकान् हन्ति ॥ २२ ॥

रेवती, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तरभाद्रपदा, शतभिषा ये सात नक्षत्र वरुणमण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी नक्षत्र में भूकम्प हो तो इसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। जैसे वारुण कम्प में समुद्र और नदी के तट में रहने वालों का नाश, अतिवृष्टि, परस्पर द्वेष रहित मनुष्य तथा गोनर्द, चेदी, कुकुर, किरात और वैदेह देश में रहने वाले मनुष्यों का नाश करता है।

यहाँ पर गर्ग—

निशायां पश्चिमे भागे निर्घातोल्का महीचलाः । पौष्णाप्यार्द्रोरगा मूलाहिर्बुध्न्यं वरुणं तथा ॥
कम्पो वारुण एभिः स्याच्छृणु तस्यैव लक्षणम् । वर्षन्ति जलदास्तत्र नीलाञ्जनचयोपमाः ॥
विद्युद्भासितदेहाश्च मधुरस्वरभूषिताः । सप्तमेऽहनि सम्प्राप्ते कम्पः स्याद्वारुणस्ततः ॥२०-२२॥

फलप्रदान काल का नियम—

षड्भिर्मासैः कम्पो द्वाभ्यां पाकं च याति निर्घातः ।
अन्यानप्युत्पातान् जगुरन्ये मण्डलैरेतैः ॥ २३ ॥

भूकम्प का फल छ महिने में और निर्घात का फल दो महिने में होता है। गर्ग आदि मुनियों का मत है कि अन्य (निर्घात, उल्कापात आदि) उत्पातों का फल मण्डल के साथ ही होता है।

यहाँ पर गर्ग—

निर्घातोल्कामहीकम्पाः स्निग्धगम्भीरनिस्वनाः । मेघाः स्तनितशब्दाश्च सूर्येन्दुग्रहणे तथा ॥
परिवेषेन्द्रचापं च गन्धर्वनगरं तथा । मण्डलैरेव बोद्धव्याः शुभाशुभफलप्रदाः ॥

यहाँ पर समास संहिता में आचार्य—

आर्यम्णपूर्वं मघचतुष्टयं च शशाङ्कमादित्यमथाश्विनी च ।
वायव्यमेतत्पवनोऽत्र चण्डो मासद्वयेनाशुभदः प्रजानाम् ॥
अजैकपादं बहुलाभरण्यो भाग्यं विशाखा गुरुभं मघा च ।
क्षुदग्निशस्त्रामयकोपकारि पक्षैस्त्रिभिर्मण्डलमग्निसञ्ज्ञम् ॥
प्राजापत्यं वैष्णवं मैत्रमैन्द्रं विश्वेशं स्याद्वासवं चाभिजिच्च ।
ऐन्द्रं ह्येतन्मण्डलं सप्तरात्रात् कुर्यात्तोयं हृष्टलोकं प्रशान्तम् ॥

आहिर्बुध्न्यं वारुणं मूलमाद्यं पौष्णं सार्पं मन्मथारीश्वरं च ।
सद्यः पाकं वारुणं नाम शस्तं तोयप्रायं हृष्टलोकं प्रशान्तम् ॥ २३ ॥

उल्का आदि उत्पातों के फल का नियम—

उल्का हरिश्चन्द्रपुरं रजश्च निर्घातभूकम्पककुप्प्रदाहाः ।
वातोऽतिचण्डो ग्रहणं रवीन्द्वोर्नक्षत्रतारागणवैकृतानि ॥ २४ ॥
व्यभ्रे वृष्टिर्वैकृतं वातवृष्टिर्धूमोऽनग्निर्विस्फुलिङ्गार्चिषो वा ।
वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये विशेद्वा रात्रावैन्द्रं कार्मुकं दृश्यते वा ॥२५॥
सन्ध्याविकारः परिवेषखण्डा नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादः ।
अन्यच्च यत्स्यात्प्रकृतेः प्रतीपं तन्मण्डलैरेव फलं निगाद्यम् ॥२६॥

उल्का, गन्धर्वपुर, धूलि, निर्घात, भूकम्प, दिग्दाह, भयङ्कर वायु, सूर्य-चन्द्र का ग्रहण, विकारयुक्त नक्षत्र और तारागण, बिना बादल की वर्षा, विकार युत वायु के साथ वृष्टि, अग्नि की चिनगारीदार लपट, वन में रहने वाले पशुओं का गाँव में आना, रात्रि में इन्द्रधनुष दिखाई देना, सन्ध्या में विकार, परिवेषखण्ड, नदियों की गति में वैपरीत्य, आकाश में तुरही का बजना, और भी प्रकृति के विरुद्ध लक्षण होना, इन सबों का फल उसके मण्डल से ही कहना चाहिये ॥२४–२६॥

वेला मण्डल के वश से कम्पों का निष्फलत्व—

हन्त्यैन्द्रो वायव्यं वायुश्चाप्यैन्द्रमेवमन्योन्यम् ।
वारुणहौतभुजावपि वेलानक्षत्रजाः कम्पाः ॥ २७ ॥

इन्द्र के मण्डल में उत्पन्न कम्प वायव्य कम्प का, वायव्य मण्डल में उत्पन्न क इन्द्र कम्प का, वारुण मण्डल में उत्पन्न कम्प अग्नि कम्प का, अग्नि मण्डल में उत कम्प वारुण कम्प का, वेलाजात कम्प नक्षत्र कम्प का और नक्षत्रजात कम्प वेलाज कम्प का नाश करता है। यदि वायव्य मण्डलान्तर्गत वायव्य वेला में कम्प हो अपने फल को पुष्ट करता है, इसी प्रकार मण्डल का अन्य भी फल जानना चाहिये अन्यथा नहीं ॥ २७ ॥

वेला मण्डल के वश कम्पोक्त फल में विशेषता—

प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनान्याग्नेयवायुमण्डलयोः ।
क्षुद्भयमरकावृष्टिभिरुपताप्यन्ते जनाश्चापि ॥ २८ ॥

यदि आग्नेय मण्डल और वायव्य वेला में या वायव्य मण्डल और आग्ने वेला में भूकम्प हो तो विख्यात राजाओं का मरण या मरण तुल्य कष्ट होता है तथा मनुष्यगण दुर्भिक्ष, मृत्यु और अवृष्टि से पीडित होते हैं ॥ २८ ॥

वेला मण्डल के भेद से कम्पोक्त फल में विशेषता—

वारुणपौरन्दरयोः सुभिक्षशिववृष्टिहार्दयो लोके।
गावोऽतिभूरिपयसो निवृत्तवैराश्च भूपालाः॥ २९॥

यदि वारुण मण्डल और ऐन्द्र वेला में या ऐन्द्र वेला और वारुण मण्डल में भूकम्प हो तो लोगों में सुभिक्ष, कुशल, वृष्टि और चित्त में शान्ति होती है। तथा गौ अधिक दूध देती है और राजा लोग परस्पर द्वेष रहित होते हैं।

यहाँ पर काश्यप—

ऐन्द्रश्चानिलजं हन्ति वायव्यश्चापि शक्रजम्। आग्नेयो हौतभुजं हन्ति चाम्भिर्वारुणसम्भवम्॥
वारुणमिमिश्रितो यत्र वेलामण्डलसम्भवः। दुर्भिक्षव्याधिरोगैस्तु पीड्यन्ते तत्र जन्तवः॥
माहेन्द्रवारुणे यत्र वेलामण्डलसम्भवः। सुभिक्षक्षेमधर्माणां तत्र वृष्टिः प्रतिष्ठिता॥

एवमुक्तपरिशेषाणां विशेषफलं नास्ति पराशरे तन्त्रे विशेषतरं पठ्यते—

योऽन्यस्मिन्नक्षत्रे भागे चान्यत्र भूचलो भवति।
स भवेद्व्यामिश्रफलस्तन्मे गदितो निरोध त्वम्॥
कुरुशाल्वमत्स्यनैषधपुण्ड्रान्ध्रकलिङ्गविन्ध्यपादस्थान्।
वाय्वाग्नेयः कम्पः सानलजीवान् भजति मैत्र्याम्॥
मात्स्यशकर्चीनपह्लवयौधेयकपर्दियवद्रोमान्। शरदण्डमगधवन्धकिविनाशनः शक्रवायव्यः॥
आवन्तिका पुलिन्दा विदेहकाश्मीरदरदवासान्ताः।
वाह्याश्रिताश्च वायव्यवारुणे प्राप्नुयुः पीडाम्॥
ऐक्ष्वाकवाऽश्मरथ्यान् पटच्चरामीरचीनमरुकुरसान्।
ऐन्द्राग्नेयः कम्पा हिनस्ति राज्ञश्च समुदीर्णान्॥
सरितः सरः समुद्राश्रितांश्च गोनर्दभद्रनाराज्यम्। क्षत्रियगणांश्च हन्यात्कम्पो वरुणाग्निदैवस्य॥
काश्याभिसारकाश्युतकच्छद्वीपार्यदेशजाः पुरुषाः।
गणपूजिताः कुलाग्रया नृपाश्च वरुणेन्द्रवध्याः स्युः॥ २९॥

अनुक्त फल काल का निर्णय—

पक्षैश्चतुर्भिरनिलस्त्रिभिरग्निर्देवराट् च सप्ताहात्।
सद्यः फलति च वरुणो येषु न कालोऽद्भुतेषूक्तः॥ ३०॥

भङ्कम्पुरण आदि उपद्रवों में जिसका फलकाल नहीं कहा गया है वह यदि वायव्य मण्डल में हो तो दो मास में, आग्नेय मण्डल में हो तो तीन पक्ष (डेढ़ मास) में, इन्द्र मण्डल में हो तो सात दिन में और वारुण मण्डल में हो तो उसी रोज फल देता है॥ ३०॥

मण्डल के वश भूकम्प का प्रदेश—

चलयति पवनः शतद्वयं शतमनलो दशयोजनान्वितम्।
सलिलपतिरशीतिसंयुतं कुलिशधरोऽप्यधिकं च षष्टितः॥ ३१॥

यदि वायु मण्डल में भूकम्प हो तो दो सौ योजन तक, अग्नि मण्डल में हो तो दश योजन तक, वारुण मण्डल में हो तो एक सौ अस्सी योजन तक और ऐन्द्र मण्डल में भूकम्प हो तो साठ से अधिक योजन तक पृथ्वी को कम्पित करता है।

यहाँ पर काश्यप—

वायव्ये मण्डले नित्यं योजनानां शतद्वयम्। दशाधिकमथाग्नेये ऐन्द्रे षष्ट्याधिकं शतम्॥
शतं चाशीतिसंयुक्तं वारुणे मण्डले चलेत्॥ ३१॥

भूकम्प होने के बाद फिर आसन्न काल में भूकम्प का फल प्रदर्शन—

त्रिचतुर्थसप्तमदिने मासे पक्षे तथा त्रिपक्षे च।
यदि भवति भूमिकम्पः प्रधाननृपनाशनो भवति॥ ३२॥

यदि भूकम्प होने के बाद तीसरे, चौथे, सातवें, तीसवें, पन्द्रहवें या पैंतालीसवें दिन में फिर भूकम्प हो तो प्रधान राजा का नाश करता है॥

यहाँ पर गर्ग—

अर्द्धमासे चतुर्थेऽह्नि तृतीये वाथ सप्तमे। कस्मात्पुनर्यदा कम्पो मासे सार्द्धे यदापि वा॥
उत्पद्यते जने यत्र तत्र विन्द्यान्महद्भयम्॥ ३२॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां भूकम्पलक्षणाध्यायो द्वात्रिंशः॥ ३२॥



अथोल्कालक्षणाध्यायः

उल्का का स्वरूप—

दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः।
धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः॥ १॥

स्वर्ग में शुभ फल भोग कर गिरते हुये प्राणियों का स्वरूप उल्का है। धिष्ण्या, उल्का, अशनि, बिजली, तारा ये पाँच उल्का के भेद हैं। विशेष—गर्ग आदि आचार्यों का मत है कि—लोकपाल लोगों की परीक्षा करके शुभाशुभ फल ज्ञान के लिये अस्त्रों को छोड़ते हैं उसी का नाम उल्का है।

यहाँ पर गर्ग—

अस्त्राणि संसृजन्त्येते शुभाशुभनिवेदिनः। लोकपाला महात्मानो लोकानां ज्वलितानि तु॥

स्वल्पसंहिता में आचार्य—

अस्त्राणि लोकपाला लोकाभावाय सन्त्यजन्त्युल्का।
केषांचित्पुण्यकृतां सह्योल्काविच्युतिः स्वर्गात्॥ १॥

फल के समय का निर्णय—

उल्का पक्षेण फलं तद्वद्धिष्ण्याशनिस्त्रिभिः पक्षैः।
विद्युदहोभिः षड्भिस्तद्वत्तारा विपाचयति॥ २॥

उल्का १५ दिन में, धिष्ण्या १५ दिन में, अशनि तीन पक्ष (पैंतालिस दिन) में, बिजली ६ दिन में इसी तरह तारा ६ दिन में फल देती है।

समास सहिता में—

उल्काय पक्षरूपा धिष्ण्योल्का विद्युतोऽशनिस्तारा।
धिष्ण्योल्के पक्षफले तत्त्रिगुणाश्चाशनिः षडह्निकेऽन्ये॥
फलपादकरी तारा धिष्ण्यार्द्धं पुष्कलं दोषाः॥ २॥

फल भाग का निरूपण—

तारा फलपादकरी फलार्द्धदात्री प्रकीर्त्तिता धिष्ण्या।
तिस्रः सम्पूर्णफला विद्युदथोल्काशनिश्चेति॥ ३॥

तारा फल का चतुर्थांश, धिष्ण्या फल का आधा तथा विद्युत, उल्का, अशनि ये तीनों सम्पूर्ण फल को देती है॥ ३॥

अशनि का लक्षण—

अशनिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरुपशुषु।
निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना॥ ४॥

अशनि अधिक शब्द करती हुई पृथ्वी को विदारण करती हुई और चक्र की तरह भ्रमण करती हुई मनुष्य, हाथी, घोड़ा, मृग, पत्थर, घर, वृक्ष या पशुओं पर गिरती है।

समास संहिता में—

अशनिः प्राणिषु निपतति दारयति धरातलं बृहच्छब्दा॥ ४॥

विद्युत् का लक्षण

विद्युत्सत्त्वत्रासं जनयन्ती तटतटस्वना सहसा।
कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता॥ ५॥

विद्युत् प्राणियों को भय उपजाती हुई, तटतट (तर तर) शब्द करती हुई, कुटिल और विस्तृत शरीर वाली, प्राणियों या काष्ठ राशियों पर प्रज्वलित होकर बहुत जल्दी गिरती है।

समास संहिता में—

विद्युत्तटतटशब्दा ज्वालामालाकुला पतति॥ ५॥

धिष्ण्या का लक्षण—

धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा धनूंषि दश दृश्यतेऽन्तराभ्यधिकम्।
ज्वलिताङ्गारनिकाशा द्वौ हस्तौ सा प्रमाणेन॥ ६॥

धिष्ण्या पतली और छोटी पूँछ वाली, प्रज्वलित अग्नि के समान, दो हाथ लम्बी तथा दश धनुष प्रमाण प्रदेश के बीच में अधिक दिखाई देती है।

समास संहिता में—

धिष्ण्या सिता द्विहस्ता धनूंषि दश याति कृशदेहा॥ ६॥

तारा का लक्षण—

तारा हस्तं दीर्घा शुक्ला ताम्राब्जतन्तुरूपा वा ।
तिर्यगधश्चोर्ध्वं वा याति वियत्युह्यमानेव ॥ ७ ॥

तारा एक हाथ लम्बी, श्वेत, ताम्र या कमल सूत्र के समान (अति सूक्ष्म), आकाश में आकृष्ट होती हुई, तिरछी, नीचे और ऊपर की तरफ जाती है।

समास संहिता में—

तारा तु हस्तमात्रा यात्यूर्ध्वमधः स्थिता सिता ताम्रा ॥ ७ ॥

उल्का का लक्षण—

उल्का शिरसि विशाला निपतन्ती वर्धते प्रतनुपुच्छा ।
दीर्घा च भवति पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ॥ ८ ॥

उल्का विशाल शिर वाली, पुरुष के प्रमाण तुल्य (साढ़े तीन हाथ) लम्बी, और गिरती हुई बढ़ती है। इनके अनेक प्रकार के भेद हैं।

समास संहिता में—

उल्काप्रतो विशाला बहुप्रकारा पुरुषमात्रा ॥ ८ ॥

उल्का के भेद—

प्रेतप्रहरणखरकरभनक्रकपिदंष्ट्रिलाङ्गलमृगाभाः ।
गोधाहिधूमरूपाः पापा या चोभयशिरस्का ॥ ९ ॥

यह प्रेत, शस्त्र, गदहा, ऊँट, नाक, बन्दर, दंष्ट्री (सुअर आदि), हल, मृग, गोह, साँप, धूम के समान या दो शिर वाली होती है। ये सब पाप फल देने वाली होती हैं॥

उल्का का और भेद—

ध्वजझषगिरिकरिकमलेन्दुतुरगसन्तप्तरजतहंसाभाः ।
श्रीवृक्षवज्रशङ्खस्वस्तिकरूपाः शिवसुभिक्षाः ॥ १० ॥

ध्वज, मत्स्य, हाथी, पर्वत, कमल, चन्द्रमा, घोड़ा, तपी हुई चूली, हंस, श्री वृक्ष (नारियल), वज्र (हीरा या शस्त्र), शंख या स्वस्तिक (राजगृह की तरह) रूप वाली उल्का दिखाई दे तो लोगों का कुशल और सुभिक्ष करती है।

यहाँ पर काश्यप—

नरेभतुरगाश्वारमवृक्षेषु च पतेत्सदा। ज्वलन्ती चक्रवद् दृश्या स्वशना रावसंयुता॥
विद्युत्त्रासकरी भीमा ह्लादयन्ती तटत्तटा। बृहच्छायोऽतिसूक्ष्मा च जीवेषु च पतेत्सदा॥
धनूंषि दश या दृश्या सा च धिष्ण्या प्रकीर्तिता।
ज्वलिताङ्गारसदृशी द्वौ हस्तौ सा प्रमाणतः॥
पद्मताम्राकृतिश्चैव हस्तमात्रायता गता। तिर्यगूर्ध्वमधो याति सोह्यमानेव तारका॥
उल्का मूर्धनि विस्तीर्णा पतन्ती वर्धते तु सा। तनुपुच्छा नृमात्रा तु बहुभेदसमावृता॥

आयुधप्रेतसदृशी जम्बुकोष्ट्रखराकृतिः। धूम्रवर्णा तु पापाख्या विशीर्णा या तु मध्यमा ॥
ध्वजपद्मेभहंसाभा पर्वताश्वसमप्रभा। श्रीवृक्षशङ्खसदृशी या चोल्का सा शिवप्रदा ॥१०॥

उल्का का और भी लक्षण—

अम्बरमध्याद्बह्वयो निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय।
यम्भ्रमती गगनोपरि विभ्रममाख्याति लोकस्य ॥ ११ ॥

आकाश मध्य में बहुत तरह की होकर गिरती हुई उल्का राजा और राष्ट्र के नाश के लिये होती है। तथा जो उल्का आकाश में बार-बार भ्रमण करती है, वह लोगों को विपत्ति को कहती है ॥ ११ ॥

उल्का का और लक्षण—

संस्पृशती चन्द्रार्कौ तद्विसृता वा सभूप्रकम्पा च।
परचक्रागमनृपभयदुर्भिक्षावृष्टिभयजननी ॥ १२ ॥

जो उल्का सूर्य या चन्द्र को स्पर्श करती है अथवा सूर्य या चन्द्र से निकल कर भूकम्प करती हुई गिरती है वह दूसरे राजा का आगमन, राजभय, दुर्भिक्ष और अवृष्टि करती है ॥ १२ ॥

उल्का का और भी लक्षण—

पौरेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं दिवाकरहिमांश्वोः।
उल्का शुभदा पुरतो दिवाकरविनिःसृता यातुः ॥ १३ ॥

यदि उल्का सूर्य और चन्द्रमा के प्रदक्षिण क्रम से गमन करे तो क्रम से पुर में रहने वाले और बाहर रहने वाले का नाश करती है। जैसे—सूर्य के प्रदक्षिण क्रम से गमन करे तो पुरवासियों का और चन्द्र के प्रदक्षिण क्रम से गमन करे तो बाहर रहने वालों का नाश करती है। जो उल्का सूर्य किरण से निकल कर गमन करने वालों के आगे गिरती है वह शुभ फल देने वाली होती है ॥ १३ ॥

उल्का का और भी लक्षण—

शुक्ला रक्ता पीता कृष्णा चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी।
क्रमशश्चैतान् हन्युर्मूर्धोरःपार्श्वपुच्छस्थाः ॥ १४ ॥

सफेद, लाल, पीली और काली उल्का क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों का नाश करने वाली होती है। जैसे—सफेद उल्का ब्राह्मणों का, लाल क्षत्रियों का, पीली वैश्यों का और काली शूद्रों का नाश करती है। तथा जो शिर से ठहरती है वह ब्राह्मणों का, जो छाती से ठहरती है वह क्षत्रियों का, जो बगल से ठहरती है वह वैश्यों का जो पूँछ से ठहरती है वह शूद्रों का नाश करती है ॥ १४ ॥

उल्का का और भी लक्षण—

उत्तरदिगादिपतिता विप्रादीनामनिष्टदा रूक्षा।
ऋज्वी स्निग्धाखण्डा नीचोपगता च तद्वृद्ध्यै ॥ १५ ॥

उत्तर आदि दिशाओं में पतित उल्का क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों को अशुभ फल देती है। जैसे—उत्तर दिशा में गिरे तो ब्राह्मणों को, पूर्व में गिरे तो क्षत्रियों को, दक्षिण में गिरे तो वैश्यों को और पश्चिम में गिरे तो शूद्रों को अशुभ फल देती है। यदि यह उल्का सीधी, चिकनी, अखण्ड और आकाश के नीचे भाग में जाने वाली हो, तो ब्राह्मण आदि वर्णों की वृद्धि करती है॥ १५॥

उल्का के और भी लक्षण—

श्यावारुणनीलासृग्दहनासितभस्मसन्निभा रूक्षा।
सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय॥ १६॥

श्याव (वानर के समान='श्यावः स्यात् कपिशः' इत्यमरः), रक्त, नील, रुधिर, के समान, अग्नि के समान, काली, भस्म की तरह, रूक्ष, सन्ध्याकाल में उत्पन्न, दिन में उत्पन्न वक्र या खण्डित उल्का पुरवासियों को शत्रु के आगमन से भय कराती है॥१६॥

उल्का का और भी लक्षण—

नक्षत्रग्रहघातैस्तद्भक्तीनां क्षयाय निर्दिष्टा।
उदये भ्रती रवीन्द्वोः पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा॥ १७॥

यदि उल्का नक्षत्र या ग्रह का उपघात करे तो नक्षत्र व्यूह में उक्त उस नक्षत्र या ग्रह के भक्तियों का नाश करती है। यदि सूर्य या चन्द्र को उदय या अस्त समय में हनन करे तो क्रम से पुरवासियों और बाहर रहने वालों का नाश करती है। जैसे—सूर्य हत हो तो पुरवासियों का और चन्द्र हत हो तो बाहर रहने वालों का नाश करती है।

यहाँ पर काश्यप—

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव यद्युल्काध्वस्तधूमिताः। तद्देशनाथनाशाय लोकानां सम्भ्रमाय च॥

यहाँ पर समाससंहिता में—

उदगादिषु विप्रादीन् सितलोहितकृष्णवर्णा च। भ्रन्ति ग्रहर्क्षघातैस्तद्भक्तीनां च नाशाय॥१७॥

उल्का से हत नक्षत्रों का फल—

भाग्यादित्यधनिष्ठामूलेषूल्काहतेषु युवतीनाम्।
विप्रक्षत्रियपीडा पुष्यानिलविष्णुदेवेषु॥ १८॥
ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम्।
क्षिप्रेषु कलाविदुषां पीडा साधारणे च हते॥ १९॥

पूर्वफल्गुनी, पुनर्वसु, धनिष्ठा या मूल नक्षत्र की योग तारा यदि उल्का से हत हो तो युवती स्त्रियों को पीड़ा होती है। पुष्य, स्वाती या श्रवण नक्षत्र की योग तारा यदि उल्का से हत हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों को पीड़ा होती है।

उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा या रेवती नक्षत्र की योगतारा यदि उल्का से हत हो तो राजाओं को पीड़ा होती

है। पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपदा, भरणी, मघा, आर्द्रा, श्लेषा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र की योग तारा यदि उल्का से हत हो तो चोरों को पीड़ा होती है। तथा अश्विनी, हस्त, अभिजित्, कृत्तिका या विशाखा नक्षत्र की योग तारा यदि उल्का से हत हो तो कलाओं को जानने वालों को पीड़ा होती है॥ १८-१९॥

देवमूर्ति आदि पर उल्का गिरने का फल—

कुर्वन्त्येताः पतिता देवप्रतिमासु राजराष्ट्रभयम्।
शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडाम्॥ २०॥
आशाग्रहोपघाते तद्देश्यानां खले कृषिरतानाम्।
चैत्यतरौ सम्पतिता सत्कृतपीडां करोत्युल्का॥ २१॥
द्वारि पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहितः।
ब्रह्मायतने विप्रान् विनिहन्याद्गोमिनो गोष्ठे॥ २२॥

उल्का यदि देवता की मूर्ति पर गिरे तो राजा और राष्ट्र को भय, इन्द्र के ऊपर गिरे तो राजाओं को भय और घर पर गिरे तो गृहपति को पीड़ित करता है। दिक्पति ग्रह यदि उल्का से हत हों तो उस दिशा में रहने वाले मनुष्यों को, खलिहान में गिरे तो किसानों को और छोटे मंदिर के पास के वृक्ष पर उल्का गिरे तो पूज्य व्यक्तियों को पीड़ित करता है। पुरद्वार पर यदि उल्का गिरे तो पुर का, द्वार के किवाड़ पर गिरे तो पुरवासियों का, ब्रह्मा के मन्दिर पर गिरे तो ब्राह्मणों का और गोष्ठ (गायों के स्थान = गोठ) पर गिरे तो गायों को पालन करने वालों का नाश करती है॥ २०-२२॥

यहाँ पर विशेष—

क्ष्वेडास्फोटितवादितगीतोत्कुष्टस्वना भवन्ति यदि।
उल्कानिपातसमये भयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य॥ २३॥

यदि उल्कापात के समय में क्ष्वेडा (वीरों का गर्जन = 'क्ष्वेडा तु सिंहनादः स्या'-दित्यमरः), आस्फोटन (छाती पर एक भुजा रख कर दूसरे हाथ से ताडन का शब्द), वाद्य और गान का उद्घोषित शब्द हो तो राजा और राष्ट्र दोनों को भय के लिये होता है॥ २३॥

यहाँ पर विशेष—

यस्याश्चिरं तिष्ठति खेऽनुषङ्गो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय।
या चोह्यते तन्तुधृतेव खस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा॥२४॥

जिस उल्का की आसक्ति आकाश में अधिक देर तक रहे, जो दण्डाकार दिखाई दे, जो आकाश में डोरी से बँधी हुई की तरह स्थिर रहे, जो इन्द्रधनुष की तरह दिखाई दे वह सब राजभय के लिये होती है॥ २४॥

यहाँ पर विशेष—

श्रेष्ठिनः प्रतीपगा तिर्यगा नृपाङ्गनाम् ।
हन्त्यधोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥ २५ ॥
बर्हिपुच्छरूपिणी लोकसङ्क्षयावहा ।
सर्पवत् प्रसर्पती योषितामनिष्टदा ॥ २६ ॥
हन्ति मण्डला पुरं छत्रवत् पुरोहितम् ।
वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषकारिणी ॥ २७ ॥
व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी ।
खण्डशोऽथवा गता स्वना च पापदा ॥ २८ ॥

विपरीत (जहाँ से आयी हो वहाँ ही लौट) जाने वाली उल्का सेठों का, तिरछी चलने वाली रानियों का, नीचे मुख वाली राजाओं का और ऊपर जाने वाली उल्का ब्राह्मणों का नाश करती है। जो उल्का मोर पूँछ की तरह हो वह लोगों का नाश करती है। और जो सर्प की तरह चलती है वह स्त्रियों को अशुभ फल देने वाली होती है। मण्डलाकृति वाली उल्का नगर का और छत्राकृति वाली पुरोहित का नाश करती है तथा वंशगुल्माकारा (बाँस की झाड़ के समान वाली) उल्का राष्ट्रमर्द करती है। सर्प या सूअर की तरह चिनगारियों की माला पहनी हुई (चिनगारियों से व्याप्त शरीर वाली), खण्ड-खण्ड और शब्द सहित उल्का पाप फल देने वाली होती है ॥ २५–२८ ॥

यहाँ पर और विशेष—

सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं नभसि विलीना जलदान् हन्ति ।
पवनविलोमा कुटिलं याता न भवति शस्ता विनिवृत्ता वा ॥ २९ ॥

इन्द्र धनुष की तरह तथा आकाश में उत्पन्न होकर शीघ्र विलीन होने वाली उल्का मेघों का नाश करती है। तथा वायु के प्रतिकूल टेढ़ी होकर चलने वाली और उत्पन्न होकर नीचे की तरफ नहीं चलने वाली शुभ नहीं होती है ॥ २९ ॥

यहाँ पर और विशेष—

अभिभवति यतः पुरं बलं वा भवति भयं तत एव पार्थिवस्य ।
निपतति च यया दिशा प्रदीप्ता जयति रिपूनचिरात्तया प्रयातः ॥३०॥

जिस ओर से आकर उल्का पुर या सेना के ऊपर गिरती है उसी दिशा में राजा को भय होता है और जिस दिशा को प्रकाशित करती हुई गिरती है उस दिशा में गमन करने वाला राजा शीघ्र शत्रुओं का नाश करता है।

— यहाँ पर काश्यप—

पार्थिवे प्रियते दीप्ता पतत्युल्का मह्रास्वनाः। तां दिशं सिद्धपले सिद्धिं विजयं लभते चिरात् ॥
अत्र तात्कालिकलग्नग्रहसंयोगाच्छकुनितश्चवशाच्च फलमूह्यम्।

समास सहिता में—

क्रूरग्रहर्क्षमंशगतिविकरणप्रभजनैर्दीप्तैः। दीप्ताण्डजमृगविरुतैर्निर्घातक्षितिविभेदैश्च ॥३०॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामुल्कालक्षणाध्यायस्त्रयस्त्रिंशः ॥ ३३ ॥



अथ परिवेषलक्षणाध्यायः

परिवेष का स्वरूप प्रदर्शन—

संमूर्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः।
नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ॥ १ ॥

वायु के द्वारा मण्डलीभूत सूर्य और चन्द्र के किरण स्वरूप, मेघ वाले आकाश में प्रतिबिम्बित होकर अनेक वर्ण के दिखाई देते हैं, उसी का नाम परिवेष है ॥ १ ॥

परिवेषों के वर्ण और उनके अधिपति—

ते रक्तनीलपाण्डुरकापोताभ्राभशबलहरितशुक्लाः।
इन्द्रयमवरुणनिर्ऋतिश्वसनेशपितामहाग्निकृताः ॥ २ ॥

वे परिवेष इन्द्र, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु, शिव, ब्रह्मा और अग्नि कृत क्रम से रक्त, नील, थोड़ा सा श्वेत, कबूतर के रङ्ग, मेघ वर्ण, शबल (कृष्णश्वेत), हरे और श्वेत वर्ण के होते हैं। जैसे—इन्द्र कृत रक्त, यम कृत नील, वरुण कृत थोड़ा श्वेत, निर्ऋति कृत कबूतर के रङ्ग, वायु कृत मेघ वर्ण, शिव कृत शबल, ब्रह्मा कृत हरा और अग्नि कृत श्वेत वर्ण का होता है ॥ २ ॥

कुबेर कृत परिवेष का वर्ण—

धनदः करोति मेचकमन्योन्यगुणाश्रयेण चाप्यन्ये।
प्रविलीयते मुहुरल्पफलः सोऽपि वायुकृतः ॥ ३ ॥

कुबेर मेचक (मयूर कण्ठ सदृश नील) वर्ण का परिवेष करता है। अन्य (इन्द्र आदि) मिले हुए रङ्ग के परिवेष करते हैं। जो परिवेष बारबार उत्पन्न होकर नष्ट हो जाय, वह वायुकृत थोड़ा फल देने वाला होता है।

यहाँ पर काश्यप—

सितपीतेन्द्रनीलाभा रक्तकापोतसन्निभाः। शबला वह्निवर्णाश्च विज्ञेयास्ते शुभप्रदाः ॥
ऐन्द्रयाम्यायनैर्ऋत्यवारुणाः सौम्यवह्निजाः। ईशायादयेन भावेन वायव्यः सोऽपि कष्टदः ॥३॥

ऋतु के वश परिवेष का शुभ फल—

चापशिखिरजततैलक्षीरजलाभः स्वकालसम्भूतः ।
अविकलवृत्तः स्निग्धः परिवेषः शिवसुभिक्षकरः ॥ ४ ॥

नीलकण्ठ, मयूर, चाँदी, तेल, दूध और जल के समान कान्ति वाला परिवेष यदि क्रम से स्वकाल (शिशिर आदि ऋतुओं) में उत्पन्न—जैसे शिशिर ऋतु में नील कण्ठ की तरह कान्तिवाला, वसन्त में मयूर की तरह कान्ति वाला, ग्रीष्म में चाँदी की तरह कान्तिवाला, वर्षा ऋतु में तेल की तरह कान्ति वाला, शरद् ऋतु में दूध की तरह कान्ति वाला और हेमन्त ऋतु में जल के समान कान्ति वाला होकर अखण्ड मण्डलाकार और निर्मल हो तो लोगों का कुशल और सुभिक्ष करता है ।

यहाँ पर काश्यप—

शिशिरे चापवर्णश्च वसन्ते शिखिसन्निभः । ग्रीष्मे रजतसङ्काशः प्रावृट्तैलसमप्रभः ॥
गोक्षीरसदृशः शरदः परिवेषः शरत्स्मृतः । हेमन्ते जलसङ्काशः स्वकाले शुभदः स्मृतः ॥४॥

अशुभ परिवेष का लक्षण—

सकलगगनानुचारी नैकाभः क्षतजसन्निभो रूक्षः ।
असकलशकटशरासनशृङ्गाटकवत् स्थितः पापः ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण आकाश में गमन करने वाला (उदय से अस्त तक स्थिर रहने वाला), अनेक वर्ण वाला, रक्त वर्ण वाला, रूक्ष, अखण्डित तथा गाड़ी, धनुष या त्रिभुज की तरह आकृति वाला परिवेष अशुभ फल देने वाला होता है ॥ ५ ॥

परिवेष के वर्ण से शुभाशुभ फल—

शिखिगलसमेऽतिवर्षं बहुवर्णे नृपवधो भयं धूम्रे ।
हरचापनिभे युद्धान्यशोककुसुमप्रभे चापि ॥ ६ ॥

मयूर कण्ठ की तरह नील वर्ण का परिवेष अतिवृष्टि, अनेक वर्ण का परिवेष राजा का नाश, धूम्र वर्ण का परिवेष भय, इन्द्र धनुष की तरह और अशोक पुष्प की तरह अति लोहित कान्ति वाला परिवेष युद्ध करता है ॥ ६ ॥

परिवेष से वृष्टि का ज्ञान—

वर्णेनैकेन यदा बहुलः स्निग्धः क्षुराभ्रकाकीर्णः ।
स्वर्त्तौ सद्यो वर्षं करोति पीतश्च दीप्तार्कः ॥ ७ ॥

एक वर्ण वाला, अधिक निर्मल और उस्तुरे के समान मेघों से व्याप्त परिवेष अपने ऋतु में दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि करता है । यदि पीत वर्ण का परिवेष हो और उस समय सूर्य के किरण तीक्ष्ण हों तो भी वृष्टि शीघ्र करता है ॥ ७ ॥

भय करने वाला परिवेष का लक्षण—

दीप्तमृगविहङ्गरुतः कलुषः सन्ध्यात्रयोत्थितोऽतिमहान् ।
भयकृत्तडिदुल्काद्यैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण ॥ ८ ॥

यदि सूर्य की तरफ मुख किये हुये मृग और पक्षी गण के शब्द युत, रूक्ष, तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, मध्याह्न और सायं) में उत्पन्न और अतिविस्तृत परिवेष दिखाई दे तो भय करने वाला होता है।

यहाँ पर गर्ग—

उदयास्तमयोर्मध्ये सूर्याचन्द्रमसोर्द्वयोः। परिवेषः प्रदृश्येत तद्राष्ट्रमवसीदति ॥ ८ ॥

परिवेष के द्वारा राजा का नाश—

प्रतिदिनमर्कहिमांश्वोरहर्निशं रक्तयोर्नरेन्द्रवधः।
परिविष्टयोरभीक्ष्णं लग्नास्तमयस्थयोस्तद्वत् ॥ ९ ॥

यदि प्रत्येक दिन सूर्य का और रात्रि में चन्द्र का रक्त वर्ण का परिवेष दिखाई दे तो राजा का नाश करता है। तथा सदा उदय या अस्त काल में सूर्य या चन्द्र का परिवेष दिखाई दे तो भी राजा का नाश करता है।

यहाँ पर गर्ग—

। सूर्ये परीवेषो रात्रौ चन्द्रे यदा भवेत्। एकस्मिन्नेवहोरात्रे तदा नश्यति पार्थिवः ॥
विधिना नित्यं सप्ताहं परिविष्यते। सर्वभूतविनाशः स्यात्तस्मिन्नुत्पातदर्शने ॥

तथा समाससंहिता में—

शक्रचापविकारसन्निभः परुषमूर्त्तिरतिबहुलः। सकलगगनानुचारी बहुवर्णश्चावलम्बी च॥
द्वित्रिगुणः खण्डो वा सन्ध्यात्रयमुपितो ग्रहच्छादी। परिवेषः पापफलो ग्रहरोधी हन्ति तद्भक्तीः॥
स्निग्धो मधुघृतशिखिचापपत्रनीलोत्पलाब्जरजतनिभः।
क्षेमसुभिक्षाय भवेत्परिवेषोऽर्कस्य शशिनो वा ॥ ९ ॥

परिवेश के द्वारा सेनापति आदि को भय—

सेनापतेर्भयकरो द्विमण्डलो नातिशस्त्रकोपकरः।
त्रिप्रभृति शस्त्रकोपं युवराजभयं नगररोधम् ॥ १० ॥

दो मण्डल वाला परिवेष सेनापति को भय करने वाला होता है, किन्तु अधिक शस्त्र भय करने वाला नहीं है। तीन आदि (तीन, चार, पाँच) मण्डल वाला परिवेष शस्त्र कोप, युवराज को भय और शत्रुओं से नगर का अवरोध कराता है।

यहाँ पर गर्ग—

द्विमण्डलपरीवेषः सेनापतिभयङ्करः। युद्धं सुदारुणं कुर्याद्दृश्यते मण्डलैस्त्रिभिः ॥ १० ॥

परिवेष के वश वृष्टि आदि का योग—

वृष्टिस्त्र्यहेण मासेन विग्रहो वा ग्रहेन्दुभनिरोधे।
होराजन्माधिपयोर्जन्मर्क्षे वाऽशुभो राज्ञः ॥ ११ ॥

यदि भौमादि कोई ग्रह, चन्द्र, कोई नक्षत्र ये तीनों एक परिवेष में गत हों तो तीन दिन में वृष्टि और एक मास में लड़ाई होती है। जिस राजा का जन्मलग्नेश, जन्मराशीश या जन्मनक्षत्र परिवेष में हो उस राजा को अशुभ फल होता है।

यहाँ पर गर्ग—

त्रीणि यत्रावरुध्येरसत्र चन्द्रमा ग्रहः। त्र्यहेण वर्षतीन्द्रश्च मासाद्वा जायते भयम् ॥११॥

परिवेष गत ग्रहों का फल—

परिवेषमण्डलगतो रवितनयः क्षुद्रधान्यनाशकरः।
जनयति च वातवृष्टिं स्थावरकृषिकृन्निहन्ता च ॥ १२ ॥
भौमे कुमारबलपतिसैन्यानां विद्रवोऽग्निशस्त्रभयम्।
जीवे परिवेषगते पुरोहितामात्यनृपपीडा ॥ १३ ॥
मन्त्रिस्थावरलेखकपरिवृद्धिश्चन्द्रजे सुवृष्टिश्च।
शुक्रे यायिक्षत्रियराज्ञीपीडा क्षियं चान्नम् ॥ १४ ॥
क्षुदनलमृत्युनराधिपशस्त्रेभ्यो जायते भयं केतौ।
परिविष्टे गर्भभयं राहौ व्याधिर्नृपभयं च ॥ १५ ॥

यदि परिवेष मण्डल में शनि पड़ा हो तो छोटे धान्यों (कौनी आदि) का वायु युत वृष्टि, स्थावर (वृक्ष आदि) की हानि और किसानों का नाश कर मंगल पड़ा हो तो कुमार, सेनापति और सेनाओं को व्याकुल, अग्निभय और श. करता है। बृहस्पति पड़ा हो तो पुरोहित, मन्त्री और राजाओं को पीड़ा होती है। बुध पड़ा हो तो मन्त्री, स्थावर (वृक्ष आदि) और लेखक की वृद्धि तथा सुन्दर वृष्टि होती है। शुक्र पड़ा हो तो गमन करने वाले क्षत्रियों तथा रानियों को पीड़ा और दुर्भिक्ष होता है। केतु पड़ा हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि, मरण, राजा और शस्त्र का भय होता है। तथा परिवेष मंडल में यदि राहु पड़ा हो तो गर्भभय, व्याधि और राजभय होता है।

समास संहिता में—

बलपपुरोहितनरपतिकृषिकृत्पीडा क्रमेण परिविष्टैः।
कुजगुरुसितार्कपुत्रैः सौम्येन तु मन्त्रिपरिवृद्धिः ॥
केतोः शस्त्रोद्योगो राहोः परिवेषणेन रोगभयम्।
युद्धदुर्भिक्षनृपतेर्नाशः व्याध्यादिभिः क्रमशः ॥ १२–१५ ॥

दो आदि ग्रहों के परिवेष स्थित होने से फल—

युद्धानि विजानीयात्परिवेषाभ्यन्तरे द्वयोर्ग्रहयोः।
दिवसकृतः शशिनो वा क्षुदवृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम् ॥ १६ ॥
याति चतुर्षु नरेन्द्रः सामात्यपुरोहितो वशं मृत्योः।
प्रलयमिव विद्धि जगतः पञ्चादिषु मण्डलस्थेषु ॥ १७ ॥

यदि सूर्य या चन्द्र के परिवेष में दो ताराग्रह स्थित हों तो युद्ध, तीन हों तो दुर्भिक्ष और अवृष्टि का भय, चार हों तो मन्त्री और पुरोहित के साथ राजा की मृत्यु

और सूर्य या चन्द्र के परिवेष में पाँच आदि ग्रह हों तो संसार का प्रलय ही जानना चाहिये ॥ १६-१७ ॥

तारग्रह और नक्षत्रों का अलग-अलग परिवेष फल—

तारग्रहस्य कुर्यात् पृथगेव समुत्थितो नरेन्द्रवधम्।
नक्षत्राणामथवा यदि केतोर्नोदयो भवति ॥ १८ ॥

यदि केतु का उदय न हुआ हो तब ताराग्रह या नक्षत्र अलग-अलग परिवेष युत हों तो राजा का नाश करते हैं।

यहाँ पर काश्यप—

परिवेषाभ्यन्तरगौ द्वौ ग्रहौ यायिनागरौ। युद्धं च भवति विप्र घोररूपं सुदारुणम् ॥
मण्डलान्तरिताः पञ्च जगतः सङ्क्षयावहाः। अथ ताराग्रहस्यैव नक्षत्राणामथापि वा ॥
परिवेषो यदा दृश्यस्तदा नरपतेर्वधः। यदि केतूदयो न स्यादन्यथा तद्वदेत्फलम् ॥ १८ ॥

तिथि क्रम से परिवेष का फल—

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रहा भवेत् प्रतिपदादिषु क्रमशः।
श्रेणीपुरकोशानां पञ्चम्यादिष्वशुभकारी ॥ १९ ॥
युवराजस्याष्टम्यां परतस्त्रिषु पार्थिवस्य दोषकरः।
पुररोधो द्वादश्यां सैन्यक्षोभस्त्रयोदश्याम् ॥ २० ॥
नरपतिपत्नीपीडां परिवेषोऽभ्युत्थितश्चतुर्दश्याम्।
कुर्यात्तु पञ्चदश्यां पीडां मनुजाधिपस्यैव ॥ २१ ॥

प्रतिपदा आदि चार तिथियों में यदि परिवेष दिखाई दे तो ब्राह्मण आदि चार वर्णों का नाश होता है। जैसे—प्रतिपदा में परिवेष दिखाई दे तो ब्राह्मणों का, द्वितीया में दिखाई दे तो क्षत्रियों का, तृतीया में दिखाई दे तो वैश्यों का और चतुर्थी में दिखाई दे तो शूद्रों का नाश होता है। यदि पञ्चमी में परिवेष दिखाई दे तो श्रेणी (समान जातियों के संघ) का, षष्ठी में दिखाई दे तो नगर का और सप्तमी में दिखाई दे तो कोश का अशुभ करने वाला होता है। यदि अष्टमी में परिवेष दिखाई दे तो युवराज का तथा नवमी, दशमी और एकादशी में दिखाई दे तो राजा का अशुभ करने वाला होता है। द्वादशी में नगर का अवरोध और त्रयोदशी में सेनाओं में आकुलता होती है। यदि चतुर्दशी में परिवेष दिखाई दे तो रानी को और पूर्णिमा में राजा को पीड़ा होती है ॥ १९-२१ ॥

परिवेष में रेखा के वश शुभाशुभ फल—

नागरकाणामभ्यन्तरस्थिता यायिनां च बाह्यस्था।
परिवेषमध्यरेखा विज्ञेयाक्रन्दसाराणाम् ॥ २२ ॥

१६, २० बृ० सं०

रक्तः श्यामो रूक्षश्च भवति येषां पराजयस्तेषाम् ।
स्निग्धः श्वेतो द्युतिमान् येषां भागो जयस्तेषाम् ॥ २३ ॥

यदि परिवेष के अन्दर रेखा दिखाई दे तो नगर वासियों का, बाहर दिखाई दे तो गमन करने वाले विजयेच्छु राजाओं का और परिवेष के मध्य में रेखा दिखाई दे तो आक्रन्द ('आक्रन्दो दारुणे रणे' इत्यमरः। भयङ्कर युद्ध) की सार वस्तुओं (सेनाओं) का शुभाशुभ करने वाली होती है। जिसके भाग में लाल, काला या रूक्ष वर्ण का परिवेष हो उसकी पराजय होती है। जैसे—परिवेष के अन्दर लाल, काला, रूक्ष हो तो नगरवासियों की, बाहर में हो तो गमन करने वाले विजयेच्छु राजाओं की और परिवेषके मध्यमें लाल, काला या रूक्ष दिखाई दे तो सेनाओंकी पराजय होती है। तथा जिनका भाग निर्मल, श्वेत और कान्ति युक्त हो उनकी विजय होती है ॥ २२-२३ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां परिवेषलक्षणाध्यायश्चतुस्त्रिंशः ॥ ३४ ॥

अथ इन्द्रायुधलक्षणाध्यायः

इन्द्र धनुष का स्वरूप—

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे ।
वियति धनुः संस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ॥ १ ॥

मेघ युत आकाश में वायु से सूर्य किरण टकरा कर अनेक वर्णयुत धनुषाकार जो दिखाई देता है, लोग उसीको इन्द्र धनुष कहते हैं ॥ १ ॥

दूसरे का मत और शुभाशुभ फल—

केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासोद्भूतमाहुराचार्याः ।
तद्यायिनां नृपाणामभिमुखमजयावहं भवति ॥ २ ॥

किसी (काश्यप आदि) आचार्य का मत है कि नागराज के कुल में उत्पन्न सर्पों के निःश्वास से यह (इन्द्रधनुष) उत्पन्न होता है। यदि इसको सम्मुख करके राजा लोग गमन करें तो उनकी पराजय होती है।

यहाँ पर काश्यप—

अनन्तकुलजाता ये पन्नगा कामरूपिणः। तेषां निश्वाससम्भूतमिन्द्रचापं प्रचक्षते ॥२॥

इन्द्र धनुष के वर्ण से फल—

अच्छिन्नमवनिगाढं द्युतिमत् स्निग्धं घनं विविधवर्णम् ।
द्विरुदितमनुलोमं च प्रशस्तमम्भः प्रयच्छति च ॥ ३ ॥

अखण्ड, पृथ्वी में लगा हुआ, उज्ज्वल, निर्मल, अविकल, अनेक वर्ण युत, दो बार उदित या पश्चिम में स्थित इन्द्र धनुष दिखाई दे तो शुभ फल और बहुत वृष्टि करने वाला होता है।

विशेष—यहाँ पर कोई कोई अनुलोम का अर्थ एक दक्षिण दिशा में और दूसरा उत्तर दिशा में स्थित ऐसा कहते हैं।

यहाँ पर ऋषिपुत्र—

द्विरुत्तरमविच्छिन्नं स्निग्धमिन्द्रायुधं महत्। पृष्ठतो विजयाय स्याद्विच्छिन्नं परुषं न तु॥

यहाँ पर नन्दी—

बहुवर्णमविच्छिन्नं द्विरवृतं स्निग्धममरपतिचापम्। पश्चात्पार्श्वे वापि प्रयाणकाले रिपुवधाय॥

यहाँ पर वृहस्पति—

नीलताम्रमविच्छिन्नं द्विगुणं सिद्धमायतम्। पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि जयायेन्द्रधनुर्भवेत्॥

यहाँ पर गर्गोक्तमयूरचित्र—

पूर्वस्यां दिशि सङ्ग्रामे भवन्तीन्द्रधनुर्यदि। पश्चिमे च प्रयातानां जयस्तत्र न संशयः॥
येषां प्रवृत्ते सङ्ग्रामे पश्चादिन्द्रधनुर्भवेत्। पूर्वेण तु प्रयातानां जयस्तत्र न संशयः॥
येषां प्रवृत्ते सम्रामे वामपार्श्वे च पृष्ठतः। धनुः प्रादुर्भवेदैन्द्रं जयस्तेषां न संशयः॥
येषां प्रवृत्ते सम्रामे पुरस्ताद्दक्षिणेन वा। धनुः प्रादुर्भवेदैन्द्रं वधं तेषां विनिर्दिशेत्॥
पश्चिमे तु दिशो भागे भवतीन्द्रधनुर्यदि। समेघगगनं स्निग्धं वैदूर्यविमलद्युति॥
विमुच निर्मला भाति पूर्वे वायुर्यदा भवेत्। ससरात्रं महावर्षं निर्दिशेद्दैवचिन्तकः॥ ३॥

विदिशा में स्थित इन्द्र धनुष का फल—

विदिगुद्भूतं दिक्स्वामिनाशनं व्यभ्रजं मरककारि।
पाटलपीतकनीलैः शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषाः॥ ४॥

विदिशा (ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य) में यदि इन्द्रधनुष दिखाई दे तो उस दिशा के स्वामी (८६ वें अध्याय के ३४ वें पद्य में उक्त) का नाश होता है। थोड़ा लाल, पीला और नीला इन्द्रधनुष हो तो क्रम से शस्त्र दोष, अग्नि दोष और दुर्भिक्ष करता है। जैसे थोड़ा लाल हो तो शस्त्रदोष, पीला हो तो अग्नि दोष और नीला हो तो दुर्भिक्ष करता है॥ ४॥

जल आदि में स्थित इन्द्रधनुष का फल—

जलमध्येऽनावृष्टिर्भुवि सस्यवधस्तरौ स्थिते व्याधिः।
वल्मीके शस्त्रभयं निशि सचिववधाय धनुरैन्द्रम्॥ ५॥

यदि जल में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो अनावृष्टि, पृथ्वी पर दिखाई दे तो धान्यों का नाश, वृक्ष पर दिखाई दे तो व्याधि, वल्मीक (बमई = दीवड़ा की भीड़) पर दिखाई दे तो शस्त्रभय और रात्रि में दिखाई दे तो मन्त्री का मरण होता है॥ ५॥

दिशा के वश फल—

वृष्टिं करोत्यवृष्ट्यां वृष्टिं वृष्ट्यां निवारयत्यैन्द्र्याम्।
पश्चात्सदैव वृष्टिं कुलिशभृतश्चापमाचष्टे॥ ६॥

यदि अनावृष्टि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो वृष्टि और वृष्टि

के समय दिखाई दे तो अनावृष्टि करता है। तथा पश्चिम दिशा में स्थित इन्द्रधनुष सदा वृष्टि को करता है ॥ ६ ॥

दिशा के वश इन्द्र धनुष का फल—

चापं मघोनः कुरुते निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपीडाम् ।
याम्यापरोदक्प्रभवं निहन्यात्सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च ॥७॥

यदि रात्रि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो राजा को पीड़ित करता है। तथा दक्षिण दिशा में दिखाई दे तो सेनापति, पश्चिम में प्रधान पुरुष और उत्तर में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो मन्त्री का नाश करता है।

यहाँ पर काश्यप—

अवृष्टी वर्षणं कुर्यादैन्द्रीं दिशमुपाश्रितम् । पश्चिमायां महद्वर्षं करोतीन्द्रधनु सदा ॥
रात्रौ चेद् दृश्यते पूर्वे भयं नरपतेर्भवेत् । याम्यायां बलमुख्यश्च विनाशमभिगच्छति ॥
पश्चिमायां प्रधानस्य सौम्यायां मन्त्रिणो वधः । स्निग्धवर्णैर्घनैः शुभैर्वारुण्यां दिशि दृश्यते ॥
बहूदकं सुभिक्षं च शिवं सस्यप्रदं भवेत् ॥ ७ ॥

इन्द्रधनुष के द्वारा ब्राह्मणादि वर्णों का अशुभ फल—

निशि सुरचापं सितवर्णाद्यं जनयति पीडां द्विजपूर्वाणाम् ।
भवति च यस्यां दिशि तद्देश्यं नरपतिमुख्यं न चिराद्धन्यात् ॥८॥

यदि रात्रि के समय श्वेत आदि (श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण) वर्ण का इन्द्रधनुष दिखाई दे तो ब्राह्मण आदि वर्णों का नाश करता है। जैसे श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मणों का, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है। तथा जिस दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई देता है उस दिशा के प्रधान राजा का शीघ्र नाश करता है ॥ ८ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामिन्द्रायुधलक्षणाध्यायः पञ्चत्रिंशः ॥ ३५ ॥

अथ गन्धर्वनगरलक्षणाध्यायः

दिशा के वश गन्धर्वनगर का फल—

उदगादिपुरोहितनृपबलपतियुवराजदोषदं खपुरम् ।
सितरक्तपीतकृष्णं विप्रादीनामभावाय ॥ १ ॥

यदि उत्तर आदि दिशाओं में गन्धर्व नगर दिखाई दे तो क्रम से पुरोहित, राजा, सेनापति और युवराज का अशुभ करता है। जैसे—उत्तर दिशा में दिखाई दे तो पुरोहित, पूर्वदिशा में राजा, दक्षिण में सेनापति और पश्चिम में दिखाई दे तो युवराज का अशुभ करता है। तथा श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मणों का, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है ॥ १ ॥

उत्तर दिशा और विदिशाओं में स्थित गन्धर्व नगर का फल—

नागरनृपतिजयावहमुदग्विदिक्स्थं विवर्णनाशाय ।
शान्ताशायां दृष्टं सतोरणं नृपतिविजयाय ॥ २ ॥

यदि उत्तर दिशा में गन्धर्व नगर स्थित हो तो राजाओं को विजय देने वाला होता है। विदिशा (ईशान, आग्नेय, वायव्य और नैर्ऋत्य) में स्थित हो तो संकर (नीच जाति) का नाश करता है। तथा शान्त दिशा में तारायुत दिखाई दे तो राजा के विजय के लिये होता है ॥ २ ॥

सब दिशाओं में सदा उत्पन्न गन्धर्व नगर का फल—

सर्वदिगुत्थं सततोत्थितं च भयदं नरेन्द्रराष्ट्राणाम् ।
चौराटविकान् हन्याद्धूमानलशक्रचापाभम् ॥ ३ ॥

यदि प्रतिदिन सब समय में गन्धर्व नगर दिखाई दे तो राजा, राष्ट्र दोनों को भय देने वाला होता है। तथा यदि धूम, अग्नि या इन्द्र धनुष की तरह कान्ति वाला हो तो चोर और वनवासियों का नाश करता है ॥ ३ ॥

श्वेत वर्ण युत और दीप्त दिशा में स्थित गन्धर्व नगर का फल—

गन्धर्वनगरमुत्थितमापाण्डुरमशनिपातवातकरम् ।
दीप्ते नरेन्द्रमृत्युर्वामेऽरिभयं जयः सव्ये ॥ ४ ॥

पाण्डुर (श्वेत = 'शुक्ल-शुभ्र-शुचि-श्वेत-विशद-श्येत-पाण्डुरा' इत्यमरः) वर्ण का गन्धर्व नगर दिखाई दे तो वज्रपात के साथ वायु करता है। दीप्त दिशा (८६ अध्याय के १२ वें पद्योक्त) में स्थित हो तो उस दिशा में स्थित राजा का मरण होता है। तथा वाम में शत्रु का भय और दक्षिण में जय करता है ॥ ४ ॥

पताका आदि के समान गन्धर्वनगर का फल—

अनेकवर्णाकृति खे प्रकाशते पुरं पताकाध्वजतोरणान्वितम् ।
यदा तदा नागमनुष्यवाजिनां पिबत्यसृग्भूरि रणे वसुन्धरा ॥ ५ ॥

जिस समय आकाश में अनेक वर्ण युत पताका, ध्वजा या पुरद्वार की तरह गन्धर्व नगर दिखाई देता है उस समय युद्ध में हाथी, मनुष्य और घोड़ों का रक्त पृथ्वी अधिक पान करती है।

यहाँ पर काश्यप—

बहुवर्णपताकाढ्यं गन्धर्वनगरं महत् । दृष्टं प्रजाक्षयकरं संग्रामे लोमहर्षणम् ॥ ५ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां गन्धर्वनगरलक्षणाध्यायः षट्त्रिंशः ॥ ३६ ॥



अथ प्रतिसूर्यलक्षणाध्यायः

प्रति सूर्य के वर्ण और शुभाशुभ फल—

प्रतिसूर्यकः प्रशस्तो दिवसकृदृतुवर्णसप्रभः स्निग्धः ।
वैदूर्यनिभः स्वच्छः शुक्लश्च क्षेमसौभिक्षः ॥ १ ॥

सूर्य के ऋतु वर्ण (तीसरे अध्याय के तेईसवें पद्य में उक्त) के सदृश वर्ण क प्रतिसूर्य होता है। यदि वह निर्मल, वैदूर्यमणि की तरह स्वच्छ और श्वेत हो तो क्षे और सुभिक्ष करता है ॥ १ ॥

प्रतिसूर्य के वर्ण और शुभाशुभ फल—

पीतो व्याधिं जनयत्यशोकरूपश्च शस्त्रकोपाय ।
प्रतिसूर्याणां माला दस्युभयातङ्कनृपहन्त्री ॥ २ ॥

पीत वर्ण का प्रतिसूर्य व्याधि करता है। अशोक पुष्प के समान लोहित व का प्रतिसूर्य शस्त्रकोप के लिये होता है। यदि प्रतिसूर्य की माला दिखाई दे तो चो का भय तथा उपद्रव और राजा का नाश करता है ॥ २ ॥

प्रतिसूर्य के वर्ण और शुभाशुभ फल—

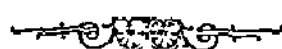
दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत् ।
उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ॥ ३ ॥

यदि सूर्य मण्डल की उत्तर दिशा में प्रतिसूर्य दिखाई पड़े तो वृष्टि होती है दक्षिण दिशा में प्रतिसूर्य दिखाई दे तो वायु करता है। दोनों तरफ दिखाई दे तो राजा का और नीचे की तरफ दिखाई पड़े तो लोगों का नाश करता है।

यहाँ पर काश्यप—

याम्ये वातप्रदो ज्ञेय उत्तरे वृष्टिदो रवेः । उभयोः पार्श्वयोर्भाति सलिलं भूरि यच्छति ॥
दीप्ताग्निवर्णः कनकप्रभो वा सन्ध्यासु चेद्भास्करमावृणोति ।
कम्पेत भूः खरप्रपतेन्महोल्का नृपो विनश्येत् सहित प्रजाभिः ॥
सन्ध्यासमीपे यदि भास्करस्य दृश्येत माला प्रतिसूर्यकाणाम् ।
सर्पा भवेयुः प्रचुराश्च चौरा रोगाश्च घोरा विविधप्रकाराः ॥
प्रत्यर्कमिन्द्रायुधमत्स्यदण्डा सविद्युदभ्राशनिवर्षवाताः ।
भवन्त्यभीक्ष्णं दिनरात्रिसन्धौ भयं तदा भूमिपतेर्वधः स्यात् ॥ ३ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां प्रतिसूर्यलक्षणाध्यायः सप्तत्रिंशः ॥ ३७ ॥



अथ रजोलक्षणाध्यायः

धूलि के लक्षण द्वारा राजा का नाश—

कथयन्ति पार्थिववधं रजसा घनतिमिरसञ्चयनिभेन ।
अविभाव्यमानगिरिपुरतरवः सर्वा दिशश्छन्नाः ॥ १ ॥

जब घने अन्धकार की तरह धूलि से पर्वत, पुर, वृक्ष और सब दिशायें व्याप्त हो जाने से कुछ भी नहीं दिखाई देता है, उस समय राजा का नाश कहना चाहिये ॥१॥

धूलि की उत्पत्ति और नाश के द्वारा फल—

यस्यां दिशि धूमचयः प्राक् प्रभवति नाशमेति वा यस्याम् ।
आगच्छति सप्ताहात् तत्रैव भयं न सन्देहः ॥ २ ॥

पहले जिस दिशा में धूलि की उत्पत्ति हो और जिस दिशा में नाश हो उन दोनों दिशाओं में सात दिन के अन्दर निःसन्देह भय होता है ॥ २ ॥

सघन धूलि के वर्ण का फल—

श्वेते रजोघनौघे पीडा स्यान्मन्त्रिजनपदानां च ।
न चिरात्प्रकोपमुपयाति शस्त्रमतिसङ्कुला सिद्धिः ॥ ३ ॥

सघन धूलि का समूह यदि श्वेत वर्ण का हो तो मन्त्री तथा राष्ट्र को पीड़ा, शीघ्र शस्त्र का प्रकोप और अति कठिनता से कार्य की सिद्धि होती है ॥ ३ ॥

एक या दो दिन धूलि से आच्छादित आकाश का फल—

अर्कोदये विजृम्भति यदि दिनमेकं दिनद्वयं वाऽपि ।
स्थगयन्निव गगनतलं भयमत्युग्रं निवेदयति ॥ ४ ॥

यदि सूर्यास्त के समय उत्पन्न होकर धूलि एक या दो दिन तक आकाश को ढकी हुई रहे तो वह उग्र भय को कहती है ॥ ४ ॥

एक रात्रि तक धूलि से व्याप्त आकाश का फल—

अनवरतसञ्चयवहं रजनीमेकां प्रधाननृपहन्तृ ।
क्षेमाय च शेषाणां विचक्षणानां नरेन्द्राणाम् ॥ ५ ॥

यदि बराबर इकट्ठी होकर धूलि एक रात्रि तक स्थित रहे तो प्रधान राजा की मृत्यु और शेष बुद्धिमान् राजाओं को शुभ करती है ॥ ५ ॥

धूलि से परचक्रागम का योग—

रजनीद्वयं विसर्पति यस्मिन् राष्ट्रे रजोघनं बहुलम् ।
परचक्रस्यागमनं तस्मिन्नपि सन्निबोद्धव्यम् ॥ ६ ॥

जिस देश में दो रात्रि तक बराबर घनीभूत धूलि फैलती है उस देश में निश्चय करके दूसरे राजा का आगमन कहना चाहिये ॥ ६ ॥

तीन आदि रात्रि तक धूलि गिरने का फल—

निपतति रजनीत्रितयं चतुष्कमप्यन्नरसविनाशाय ।
राज्ञां सैन्यक्षोभो रजसि भवेद् पञ्चरात्रभवे ॥ ७ ॥

यदि तीन या चार रात्रि तक बराबर धूलि गिरती रहे तो अन्न और रस के विनाश के लिये होती है। यदि पाँच रात्रि तक धूलि गिरे तो राजाओं की सेनाओं में खलबली मचती है ॥ ७ ॥

केत्वुदय के बाद धूलि गिरने का फल—

केत्वाद्युदयविमुक्तं यदा रजो भवति तीव्रभयदायि ।
शिशिरादन्यत्रर्तौ फलमविकलमाहुराचार्याः ॥ ८ ॥

यदि केतु आदि के उदय के बाद धूलि गिरे तो तीव्र भय देने वाली होती है। आचार्यों का मत है कि शिशिर ऋतु के अतिरिक्त अन्य सब ऋतुओं में ठीक-ठीक फल देती है ॥ ८ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां रजोलक्षणाध्यायोऽष्टत्रिंशः ॥ ३८ ॥

अथ निर्घातलक्षणाध्यायः

निर्घात का लक्षण—

पवनः पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति ।
भवति तदा निर्घातः स च पापो दीप्तविहगरुतः ॥ १ ॥

जब पवन से टकरा कर पवन आकाश से पृथ्वी पर गिरता है उस समय उसके गिरने से जो शब्द होता है उसका नाम निर्घात है। यदि वह सूर्याभिमुख स्थित पक्षियों के शब्द से युत हो तो दुष्ट फल देने वाला होता है।

यहाँ पर गर्ग—

यदान्तरिक्षे बलवान् मारुतो मारुताहतः । पतत्यधः स निर्घातो भवेदनिलसम्भवः ॥१॥

काल के द्वारा निर्घात का लक्षण—

अर्कोदयेऽधिकरणिकनृपधनियोधाङ्गनावणिग्वेश्याः ।
आप्रहरांशेऽजाविकमुपहन्याच्छूद्रपौरांश्च ॥ २ ॥
आमध्याह्नाद्राजोपसेविनो ब्राह्मणांश्च पीडयति ।
वैश्यजलदांस्तृतीये चौरान् प्रहरे चतुर्थे तु ॥ ३ ॥
अस्तं याते नीचान् प्रथमे यामे निहन्ति सस्यानि ।
रात्रौ द्वितीययामे पिशाचसङ्घान् निपीडयति ॥ ४ ॥

तुरगकरिणस्तृतीये विनिहन्यात्यायिनश्चतुर्थे च।
भैरवजर्जरशब्दो याति यतस्तां दिशं हन्ति ॥ ५ ॥

यदि सूर्योदय काल में निर्घात हो तो अधिकरणिक, राजा, धनी, शूर, स्त्री, व्यापारी और वेश्याओं का नाश करता है। यदि दिन के प्रथम प्रहर में निर्घात हो तो छाग, आविक (भेड पालने वाले), शूद्र और पुरवासियों का नाश करता है। द्वितीय प्रहर में राजा सेवक और ब्राह्मणों को पीडा होती है। तृतीय प्रहर में व्यापारी और मेघ का नाश करता है। चतुर्थ प्रहर में चोरों को पीड़ित करता है। रात्रि के प्रथम प्रहर में धान्यों का नाश करता है। द्वितीय प्रहर में पिशाच समूहों को पीड़ित करता है। तृतीय प्रहर में हाथी और घोड़ों का नाश करता है। यदि रात्रि के चतुर्थ प्रहर में निर्घात हो तो गमन करने वालों का नाश करता है। तथा जिस दिशा में भग्न भाण्ड की तरह भयङ्कर शब्द आता है उस दिशा का नाश करता है।

समास संहिता में—

निर्घातोऽहोरात्रेण हन्ति नृपपौरभृत्यराष्ट्रजनान्।
तस्करविप्रांश्चार्कोदयादिशं पतति यस्याम् ॥

यहाँ पर गर्ग—

यदा सूर्योदये प्राप्ते निर्घातः श्रूयते भुवि। क्षत्रिया योधमुख्याश्च पीड्यन्तेऽत्र न संशयः ॥
प्रहरांशे तथा वैश्यान् हन्याच्छोजीविनस्तथा। परिवृत्ते हरौ वेश्या अपराह्णे तु दस्यवः ॥
नीचचौरांश्च हन्यात्स अस्तमेति दिवाकरे। प्रथमे प्रहरे सस्यान्यर्द्धरात्रे तु राक्षसान् ॥
रात्रित्रिभागे वैश्यांश्च प्रत्यूषे चाहितो भवेत्। यां दिशं चाभिहन्येत निर्घातो भैरवः स्वनः ॥
तद्देश्यान् हन्ति देशांश्च सर्वदिग्भक्तयस्तथा ॥ २–५ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां निर्घातलक्षणाध्याय एकोनचत्वारिंशः ॥ ३९ ॥

अथ सस्यजातकाध्यायः

यहाँ पर आगम प्रदर्शन—

वृश्चिकवृषप्रवेशे भानोर्ये बादरायणेनोक्ताः।
ग्रीष्मशरत्सस्यानां सदसद्योगाः कृतास्त इमे ॥ १ ॥

वृश्चिक और वृष राशि में सूर्य का प्रवेश होने के समय ग्रीष्म और शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों के जो शुभाशुभ फल बादरायण मुनि ने कहे हैं, वे ये हैं ॥१॥

ग्रैष्मिक धान्यों की वृद्धि का योग—

भानोरलिप्रवेशे केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तैः।
बलवद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षिते ग्रैष्मिकविवृद्धिः ॥ २ ॥

सूर्य के वृश्चिक में प्रवेश होने के समय उससे (सूर्य से) केन्द्र स्थान (वृश्चिक, कुम्भ, वृष और सिंह) में शुभग्रह हों या जहाँ कहीं पर (केन्द्र से इतर स्थान) स्थित बली शुभग्रहों से वृश्चिक गत सूर्य देखा जाता हो तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की वृद्धि होती है।

यहाँ पर बादरायण—

वृश्चिकसंस्थे सूर्ये सौम्यैर्बलिभिर्निरीक्षिते वृद्धिम्।
तैरेव केन्द्रगैर्वा ग्रीष्मजधान्यस्य निर्दिशेन्महतीम्॥ २॥

ग्रहस्थिति वश ग्रैष्मिक धान्यों की वृद्धि—

अष्टमराशिगतेऽर्के गुरुशशिनोः कुम्भसिंहसंस्थितयोः।
सिंहघटसंस्थयोर्वा निष्पत्तिर्ग्रैष्मसस्यस्य ॥ ३॥

सूर्य के आठवीं राशि (वृश्चिक) में गत होने के समय कुम्भ राशि में गुरु और सिंह राशि में चन्द्रमा या सिंह राशि में गुरु और कुम्भ राशि में चन्द्रमा बैठा हो तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की निष्पत्ति (वृद्धि) होती है॥ ३॥

ग्रह स्थिति वश ग्रैष्मिक धान्यों की वृद्धि—

अर्कात्सिते द्वितीये बुधेऽथवा युगपदेव वा स्थितयोः।
व्ययगतयोरपि तद्वन्निष्पत्तिरतीव गुरुदृष्ट्या ॥ ४॥

यदि सूर्य से द्वितीय या द्वादश में शुक्र या बुध या दोनों एक साथ बैठे हों तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की निष्पत्ति होती है। यदि पूर्वोक्त योगों में बृहस्पति की दृष्टि हो तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की उत्तम निष्पत्ति होती है।

यहाँ पर बादरायण—

सूर्याद्बुधे द्वितीये शुक्रे वा युगपदेव तयोः। रिष्फायोरप्येवं निष्पत्तिर्गुरुदृशाऽतीव॥४॥

ग्रह स्थिति वश ग्रैष्मिक धान्यों की निष्पत्ति—

शुभमध्येऽलिनि सूर्याद्गुरुशशिनोः सप्तमे परा सम्पत्।
अल्यादिस्थे सवितरि गुरौ द्वितीयेऽर्द्धनिष्पत्तिः॥ ५॥

दो शुभ ग्रहों के मध्य में स्थित होकर सूर्य वृश्चिक राशि में स्थित हो और सूर्य से सप्तम में गुरु और चन्द्रमा हो तो धान्यों की उत्तम निष्पत्ति होती है। तथा वृश्चिक के आदि में सूर्य और उससे द्वितीय में गुरु हो तो धान्यों की आधी निष्पत्ति होती है॥

ग्रह स्थिति वश धान्यों की निष्पत्ति—

लाभहिबुकार्थयुक्तैः सूर्यादलिगात् सितेन्दुशशिपुत्रैः।
सस्यस्य परा सम्पत् कर्मणि जीवे गवां चाग्र्या॥ ६॥

यदि वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य से एकादश में शुक्र, चतुर्थ में चन्द्र और द्वितीय में बुध बैठा हो तो धान्यों की उत्तम निष्पत्ति होती है। यदि पूर्वोक्त योग में दशम स्थित गुरु हो तो गायों में उत्तम सम्पत्ति (दूध की अधिकता) होती है ॥ ६ ॥

ग्रह स्थिति वश धान्यों की निष्पत्ति—

कुम्भे गुरुर्गवि शशी सूर्योऽलिमुखे कुजार्कजौ मकरे ।
निष्पत्तिरस्ति महती पश्चात् परचक्रभयरोगम् ॥ ७ ॥

यदि कुम्भ में गुरु, वृष में चन्द्रमा, वृश्चिक के आदि में सूर्य तथा मकर में मङ्गल और शनि बैठा हो तो धान्यों की अधिक निष्पत्ति होती है। किन्तु बाद में परचक्र का आगमन और रोग का भय होता है ॥ ७ ॥

ग्रह स्थिति वश धान्यों की निष्पत्ति—

मध्ये पापग्रहयोः सूर्यः सस्यं विनाशयत्यलिगः ।
पापः सप्तमराशौ जातं जातं विनाशयति ॥ ८ ॥

यदि वृश्चिक राशि में स्थित होकर सूर्य दो पापग्रहों के मध्य में स्थित हो तो धान्यों का नाश करता है। तथा सप्तम राशि (वृष) में पापग्रह बैठा हो तो धान्यों की उत्पत्ति का भी नाश करता है।

यहाँ पर बादरायण—

क्रूरान्तःस्थः सूर्यो वृश्चिकसंस्थो विनाशयति सस्यम् ।
जातं जातं पापः सप्तमसंस्थो विनाशयति ॥ ८ ॥

ग्रह स्थिति वश धान्यों की निष्पत्ति—

अर्थस्थाने क्रूरः सौम्यैरनिरीक्षितः प्रथमजातम् ।
सस्यं निहन्ति पश्चादुप्तं निष्पादयेन्नक्रम् ॥ ९ ॥

यदि वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य से द्वितीय स्थान में पापग्रह स्थित होकर शुभग्रह से नहीं देखा जाता हो तो पहली बोई हुई खेती का नाश करता है, किन्तु बाद की बोई हुई खेती अच्छी तरह उपजती है ॥ ९ ॥

ग्रह स्थिति वश धान्यों की निष्पत्ति—

जामित्रकेन्द्रसंस्थौ क्रूरौ सूर्यस्य वृश्चिकस्थस्य ।
सस्यविपत्तिं कुरुतः सौम्यैर्दृष्टौ न सर्वत्र ॥ १० ॥

वृश्चिक स्थित सूर्य से सप्तम (वृष) में एक और सप्तम भिन्न केन्द्र (कुम्भ या ५) में दूसरा पापग्रह (मङ्गल शनि में से एक) हो तो धान्यों का नाश करता है। यदि वे दोनों पापग्रह (मङ्गल, शनि) शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र) से देखे जाते हों तो सर्वत्र नहीं किन्तु कहीं कहीं पर धान्यों का नाश करते हैं।

यहाँ पर बादरायण—

सूर्यात्सप्तमसंस्थः पापोऽन्यः केन्द्रगश्च हानिकरौ। सौम्यग्रहसन्दृष्टौ न तथा सर्वत्र निर्दिष्टौ ॥

ग्रह स्थिति वश धान्यों की निष्पत्ति—

वृश्चिकसंस्थादर्कात् सप्तमषष्ठोपगौ यदा क्रूरौ ।
भवति तदा निष्पत्तिः सस्यानामर्घपरिहानिः ॥ ११ ॥

वृश्चिक स्थित सूर्य से सप्तम और षष्ठ स्थान में दो पापग्रह मङ्गल और शनि बैठे हों तो धान्यों की निष्पत्ति होती है। किन्तु धान्यों का मौल्य मँहगा पड़ता है ॥ ११ ॥

शारदीय धान्यों की स्थिति का ज्ञान प्रकार—

विधिनानेनैव रविर्वृषप्रवेशे शरत्समुत्थानाम् ।
विज्ञेयः सस्यानां नाशाय शिवाय वा तज्ज्ञैः ॥ १२ ॥

पूर्व स्थिति की तरह वृष राशि गत सूर्य के समय शारदीय धान्यों का नाश या निष्पत्ति पण्डितों को जानना चाहिये।

यहाँ पर बादरायण—

य एव योगोऽभिहितो वृश्चिकस्थे दिवाकरे। वृषेऽपि ते शारदानां चिन्तनीया यथार्थतः ॥

रविचार वश ग्रैष्मिक धान्यों की समर्घता और महर्घता—

त्रिषु मेषादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितोऽपि वा विचरन् ।
ग्रैष्मिकधान्यं कुरुते समर्घमुभयोपयोग्यं च ॥ १३ ॥

मेष आदि तीन राशियों (मेष, वृष, मिथुन) में गमन करता हुआ सूर्य यदि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो ग्रीष्म में होने वाले धान्य सस्ते होते हैं तथा लोक परलोक दोनों के लिये उपयुक्त होते हैं, जैसे बहुत सस्ते धान्य होने के कारण बन्धु वर्गों के साथ खूब उपभोग करने से लोक और दानादि धर्म कार्य करने से परलोक दोनों बन जाते हैं। कहीं-कहीं पर 'अभयोपयोग्यम्' ऐसा पाठ मिलता है, इसका अर्थ यह है कि अभीति कारक होते है अर्थात् ऐसे समय में निर्भय मनुष्य रहते हैं॥१३।

इसी तरह शारदीय धान्यों का विचार—

कार्मुकमृगघटसंस्थः शारदसस्यस्य तद्वदेव रविः ।
संग्रहकाले ज्ञेयो विपर्ययः क्रूरदृग्योगात् ॥ १४ ॥

इसी तरह धनु, मकर और कुम्भ में स्थित सूर्य यदि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो शारदीय धान्यों की समर्घता तथा उभयोपयोग्यता (इहलोक और परलोक के लिये उपयुक्तता) समझनी चाहिये। मेषादि या धनुरादि तीन राशियों में स्थित सूर्य यदि पापग्रह से दृष्ट या युत हो तो उलटा फल (महर्घता और नोभयोपयोग्य) समझना चाहिये। अत संग्रह (विक्रय) काल में यही योग अच्छे होते हैं अर्थात् सूर्य के विपरीत योग में स्थित होने पर विक्रय करना चाहिये ॥ १४ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकाया निर्घातलक्षणाध्याय. चत्वारिंशः ॥ ४० ॥

अथ द्रव्याधिपाध्यायः

यहाँ पर आगम प्रदर्शन—

ये येषां द्रव्याणामधिपतयो राशयः समुद्दिष्टाः ।
मुनिभिः शुभाशुभार्थं तानागमतः प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥

मुनियों ने शुभाशुभ फल जानने के लिये जिन द्रव्यों के जो अधिप राशि कहे हैं, उनको आगम से लेकर मैं यहाँ कहता हूँ ॥ १ ॥

मेष राशि के द्रव्य—

वस्त्राविककुतुपानां मसूरगोधूमरालकयवानाम् ।
स्थलसम्भवौषधीनां कनकस्य च कीर्त्तितो मेषः ॥ २ ॥

वस्त्र, भेड़ के रोम से निर्मित वस्त्र, कुतुप (बकरी के रोम से निर्मित वस्त्र), मसूर, गेहूँ, राल्क, जौ और स्थल (जल से रहित भूमि) में उत्पन्न औषधियों का स्वामी मेष राशि है ।

यहाँ पर काश्यप—

मेषे सुवर्णस्थलजा गोधूमाजाविकास्तथा । ग्रहवर्गैर्हसंयोगे शोभने सफलं भवेत् ॥ २

वृष और मिथुन राशि के द्रव्य—

गवि वस्त्रकुसुमगोधूमशालियवमहिषसुरभितनयाः स्युः ।
मिथुनेऽपि धान्यशारदवल्लीशालूककर्पासाः ॥ ३ ॥

वस्त्र, पुष्प, गेहूँ, शालिधान्य, जौ, भैंस और बैल का स्वामी वृष है । धान्य, शारदीय लता, शालूक (कुमुद कन्द) और कपास का स्वामी मिथुन है ।

यहाँ पर काश्यप—

वृषे महिषगोवस्त्रशालयः पुष्पसम्भवा । मिथुने धान्यशालूकवल्लयः कार्पासशारदम् ॥ ३ ॥

कर्क और सिंह राशि के द्रव्य—

कर्किणि कोद्रवकदलीदूर्वाफलकन्दपत्रचोचानि ।
सिंहे तुषधान्यरसाः सिंहादीनां त्वचः सगुडाः ॥ ४ ॥

कोदो, केला, दूब, सब फल, कन्द (शकरकन्द आदि), पत्र (सुगन्धपत्र), चोच (नारियल) का स्वामी कर्क है । भूसी वाले धान्य, रस (मधुर आदि छै रस), सिंह आदि प्राणी, चाम और गुड़ का स्वामी सिंह है ।

यहाँ पर काश्यप—

कर्कटे फलदूर्वाश्च कोद्रव· कदली तथा । सिंहे धान्यं सर्वरसा· सिंहादीनां त्वचो गुडाः ॥

कन्या और तुला राशि के द्रव्य—

षष्ठेऽतसीकलायाः कुलत्थगोधूममुद्गनिष्पावाः ।
सप्तमराशौ माषा यवगोधूमाः ससर्षपाश्च ॥ ५ ॥

अतसी (अलसी = तिसी), कलाय (उड़द), कुलथी, गेहूँ, मूँग और निष्पाव (शालि धान्य या शिम्बि धान्य) का स्वामी कन्या है। मसूर, जौ, गेहूँ और सरसों का स्वामी तुला है।

यहाँ पर काश्यप—

कन्यायां मुद्गनीवारकुलत्था· सकला यवा· । तुले तु यवगोधूममाषाः सिद्धार्थकास्तथा ॥५॥

वृश्चिक और धनु राशि के द्रव्य—

अष्टमराशाविक्षुः सैक्यं लोहान्यजाविकं चापि ।
नवमे तु तुरगलवणाम्बरास्त्रतिलधान्यमूलानि ॥ ६ ॥

ईख (गन्ना), लता के फल, लोहा और छाग तथा भेड़-सम्बन्धी वस्तुओं का स्वामी वृश्चिक है। घोड़ा, नमक, वस्त्र, अस्त्र, तिल, धान्य और मूलोत्पन्न धान्यों का स्वामी धनु है।

यहाँ पर काश्यप—

अलिनीक्षुरस सैक्यमाजं लोहं सकास्यकम् । धान्य धनुषि वस्त्राणि लवण तुरगास्तथा ॥६॥

मकर और कुम्भ के द्रव्य—

मकरे तरुगुल्माद्यं सैक्येक्षुसुवर्णकृष्णलोहानि ।
कुम्भे सलिलजफलकुसुमरत्नचित्राणि रूपाणि ॥ ७ ॥

वृक्ष, गुल्म (सामयिक वृक्ष), आदि (लता बल्ली), सैक्य (बल्ली फल आदि), ईख (गन्ना), सोना और लोहे का स्वामी मकर है। जल में उत्पन्न वस्तु, फल, फूल, रत्न और चित्र वस्तु का स्वामी कुम्भ है।

यहाँ पर काश्यप—

मकरे सस्यसीस च सुवर्णगुडधातुजम् । कुम्भे कुसुमचित्राणि हंसाश्च जलजास्तथा ॥ ७ ॥

मीन राशि के द्रव्य—

मीने कपालसम्भवरत्नान्यम्बूद्भवानि वज्राणि ।
स्नेहाश्च नैकरूपा व्याख्याता मत्स्यजातं च ॥ ८ ॥

कपाल-सम्भव-रत्न (मुक्ताफल), जल में उत्पन्न वस्तु, हीरा, नाना प्रकार के तेल और मछली से उत्पन्न मुक्ता आदि का स्वामी मीन है।

यहाँ पर काश्यप—

पद्ममुक्ताफलादीना द्रव्याणां मीन ईश्वरः ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त द्रव्यों का शुभाशुभ फल—

राशेश्चतुर्दशायोयसप्तनवपञ्चमस्थितो जीवः ।
त्र्येकादशदशपञ्चाष्टमेषु शशिजश्च वृद्धिकरः ॥ ९ ॥

पट्सप्तमगो हानिं वृद्धिं शुक्रः करोति शेषेषु।
उपचयसंस्थाः क्रूराः शुभदाः शेषेषु हानिकराः॥ १०॥

जिस राशि से चतुर्थ, दशम, द्वितीय, एकादश, सप्तम, नवम या पञ्चम में बृहस्पति तथा द्वितीय, एकादश, दशम, पञ्चम या अष्टम में बुध बैठा हो उस राशि के कथित द्रव्यों की वृद्धि करता है। जिस राशि से षष्ठ या सप्तम में शुक्र हो उस राशि के कथित द्रव्यों की हानि और शेष स्थान (प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश या द्वादश) में स्थित हो तो उनकी वृद्धि करता है। तथा जिस राशि से पापग्रह (रवि, मङ्गल और शनैश्चर) उपचय (तृतीय, षष्ठ या एकादश) में स्थित हो उसके द्रव्यों की वृद्धि और शेष स्थान (प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम या द्वादश) में स्थित हो तो हानि करता है।

यहाँ पर काश्यप—

चतुःसप्तद्विपञ्चस्थो नवदिग्रुद्रगो गुरुः। यस्य राशेस्तदुक्तानां द्रव्याणां वृद्धिदः स्मृतः॥
शुक्रः षट्सप्तमस्थो वा हानिकृद्वृद्धिदोऽन्यग। व्येकादशदशार्याष्टसंस्थितः शशिजः शुभः॥
पापास्तूपचयस्थाश्च वृद्धिं कुर्वन्ति नान्यथा॥ १०॥

यहाँ पर विशेष—

राशेर्यस्य क्रूराः पीडास्थानेषु संस्थिता बलिनः।
तत्प्रोक्तद्रव्याणां महार्घता दुर्लभत्वं च॥ ११॥

जिस राशि से पीडास्थान (उपचयस्थान) में स्थित होकर पापग्रह (रवि, मङ्गल, शनि) बली (मित्रगृह, स्वगृह, उच्च या स्वनवांश में स्थित या शुभग्रहों से दृष्ट) हों तो उस राशि के कथित द्रव्य अधिक मूल्य वाले और अलभ्य होते हैं।

यहाँ पर काश्यप—

राशेरनिष्टस्थानेषु पापाश्च सबलाः स्थिताः। तद्द्रव्याणां नाशकरा दुर्लभास्ते भवन्ति हि॥

यहाँ पर और विशेष—

इष्टस्थाने सौम्या बलिनो येषां भवन्ति राशीनाम्।
तद्द्रव्याणां वृद्धिः सामर्थ्यं वल्लभत्वं च॥ १२॥

जिस राशि से इष्ट स्थान (पूर्व कथित वृद्धि स्थान) में बली होकर शुभग्रह (बुध, गुरु और शुक्र) स्थित हों तो उस राशि के कथित द्रव्य अल्प मूल्य से मिलने वाले और प्रिय होते हैं।

यहाँ पर काश्यप—

इष्टस्थाने स्थिताः सौम्या बलिनो येषु राशिषु। भवन्ति तद्भवानां च द्रव्याणां शुभदाः स्मृताः॥

यहाँ पर और भी विशेष—

गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः।
पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः॥ १३॥

गोचर पीडा में स्थित राशि (बृहस्पति आदि ग्रहों को उक्त चतुर्थ आदि शुभ स्थानों से भिन्न स्थान में स्थित होने पर राशि गोचर पीडा में स्थित रहती है, ऐसी राशि) यदि बली शुभग्रह (बुध, गुरु और शुक्र) से देखी जाती हो तो पीडा नहीं करती है। अर्थात् वे द्रव्य सम मूल्य में रहते हैं। यदि पापग्रह (रवि, मंगल और शनि) से देखी जाती हो तो उस राशि के कथित द्रव्य महर्घ और दुर्लभ होते हैं॥१३॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां द्रव्यनिश्चयाध्याय. एकचत्वारिंश. ॥ ४१ ॥

अथार्घकाण्डाध्यायः

इसमें पहले प्रयोजन का प्रदर्शन—

अतिवृष्ट्युल्कादण्डान् परिवेषग्रहणपरिधिपूर्वांश्च ।
दृष्ट्वाऽमावास्यायामुत्पातान् पौर्णमास्यां च ॥ १ ॥
ब्रूयादर्घविशेषान् प्रतिमासं राशिषु क्रमात्सूर्ये ।
अन्यतिथावुत्पाता ये ते डमराय ये राज्ञाम् ॥ २ ॥

मेषादि राशियों में सूर्य के गमन करने पर प्रति मास की अमावास्या और पूर्णिमा में अतिवृष्टि, उल्का, दण्ड, परिवेष, ग्रहण, परिधि आदि (रजोनिहार, दिग्दाह और गन्धर्वनगर रूप) उत्पातों को देख कर द्रव्यों के विशेष मौल्य का विचार करना चाहिये। अन्य (अमावास्या और पूर्णिमा से भिन्न तिथि में होने वाले उत्पात राजाओं को शस्त्र-कलह से पीडित करते हैं।

यहाँ पर काश्यप—

उल्कातिवृष्टिर्ग्रहणे सूर्येन्द्वोः परिवेषणम्। प्रतिसूर्यादयो येऽन्ये पक्षमासान्तसङ्क्षये॥
तिथौ निरीक्ष्य चोत्पातान् ब्रूयाल्लोके शुभाशुभम्। सुभिक्षदुर्भिक्षकृतान् विशेषोऽत्र विचारतः॥
प्रतिमासं विधानज्ञो नान्यस्मिन् दिवसे वदेत्। अन्यत्र ये भवन्त्येते ते सर्वे नृपदोषदा.॥

उत्पातयुत अमा और पूर्णिमा होने पर मेष या वृष राशि में स्थित सूर्य के समय में क्या करना चाहिये—

मेषोपगते सूर्ये ग्रीष्मजधान्यस्य संग्रहं कृत्वा ।
वनमूलफलस्य वृषे चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥ ३ ॥

मेष राशि में स्थित सूर्य के समय में ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों का तथा वृष राशि में स्थित सूर्य के समय में उसमें होने वाले मूल और फलों का संग्रह करे, उन (मेष और वृष) से चतुर्थ मास में उसको विक्रय करने से लाभ होता है ॥३॥

मिथुन राशि गत सूर्य के समय में क्या करना चाहिये—

मिथुनस्थे सर्वरसान् धान्यानि च संग्रहं समुपनीय ।
षष्ठे मासे विपुलं विक्रेता प्राप्नुयाल्लाभम् ॥ ४ ॥

मिथुन राशि गत सूर्य के समय में मधुर आदि सब रसों का संग्रह करके उससे छठे मास में विक्रय करने से बहुत लाभ होता है ॥ ४ ॥

कर्क राशि गत सूर्य के समय में क्या करना चाहिये—

कर्किण्यर्के मधुगन्धतैलघृतफाणितानि विनिधाय ।
द्विगुणा द्वितीयमासे लब्धिर्हीनाधिके छेदः ॥ ५ ॥

कर्क राशि गत सूर्य के समय में मधु, सुगन्ध, द्रव्य, तेल, घी और शक्कर का संग्रह करके दूसरे मास में विक्रय करने से दूना लाभ होता है। दो महीने से कम या ज्यादे में विक्रय करने से नाश होता है ॥ ५ ॥

सिंह राशि गत सूर्य के समय में क्या करना चाहिये—

सिंहे सुवर्णमणिचर्मवर्मशस्त्राणि मौक्तिकं रजतम् ।
पञ्चममासे लब्धिर्विक्रेतुरतोऽन्यथा छेदः ॥ ६ ॥

सिंह राशि गत सूर्य के समय में सोना, मणि, चमड़ा, शस्त्र, मोती और चाँदी का संग्रह करके पाँचवें मास में विक्रय करने से लाभ होता है। न्यूनाधिक काल में विक्रय करने से हानि होती है ॥ ६ ॥

कन्या राशि गत सूर्य के समय में क्या करना चाहिये—

कन्यागते दिनकरे चामरखरकरभवाजिनां क्रेता ।
षष्ठे मासे द्विगुणं लाभमवाप्नोति विक्रीणन् ॥ ७ ॥

कन्या राशि गत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पातों को देख कर चामर, गदहा, ऊँट और घोड़ों का संग्रह करके छठे मास में विक्रय करने से दूना लाभ होता है ॥ ७ ॥

तुला राशि गत सूर्य के समय में क्या करना चाहिये—

तौलिनि तान्तवभाण्डं मणिकम्बलकाचपीतकुसुमानि ।
आदद्याद्धान्यानि च वर्षार्द्धाद्द्विगुणिता वृद्धिः ॥ ८ ॥

तुला राशि गत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पातों को देख कर सूती तथा ऊनी वस्त्र, बर्तन, मणि, कम्बल, काँच, पीले वस्त्र, पुष्प और धान्यों का संग्रह करके छठे मास में विक्रय करने से दूना लाभ होता है ॥ ८ ॥

वृश्चिक राशि गत सूर्य के समय में क्या करना चाहिये—

वृश्चिकसंस्थे सवितरि फलकन्दकमूलविविधरत्नानि ।
वर्षद्वयमुषितानि द्विगुणं लाभं प्रयच्छन्ति ॥ ९ ॥

वृश्चिक राशि गत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पात होने पर फल, कन्द, मूल और अनेकप्रकार के रत्नों का संग्रह करके दो वर्ष बाद विक्रय करने से दूना लाभ होता है ॥ ९ ॥

धनु राशि गत सूर्य के समय में क्या करना चाहिये—

चापगते गृह्णीयात्कुङ्कुमशङ्खप्रवालकाचानि ।
मुक्ताफलानि च ततो वर्षार्द्धाद्वृद्धिगुणतां यान्ति ॥ १० ॥

धनु राशि गत सूर्य के समय में पूर्वोक्त उत्पात होने पर कुङ्कुम, शङ्ख, मूँगा, काँच और मोतियों का संग्रह करके ६ मास बाद विक्रय करने से दूना लाभ होता है ॥१०॥

मकर या कुम्भ राशि गत सूर्य के समय क्या करना चाहिये—

मृगघटसंस्थे सवितरि गृह्णीयाल्लोहभाण्डधान्यानि ।
स्थित्वा मासं दद्याल्लाभार्थी द्विगुणमाप्नोति ॥ ११ ॥

मकर या कुम्भ राशि गत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पात होने पर लोहा, बर्तन और धान्यों का संग्रह करके एक मास बाद बेचने से लाभार्थी बनिया दूना लाभ करता है ॥ ११ ॥

मीन राशि गत सूर्य के समय में क्या करना चाहिये—

सवितरि झषमुपयाते मूलफलं कन्दभाण्डरत्नानि ।
संस्थाप्य वत्सरार्द्धं लाभकमिष्टं समाप्नोति ॥ १२ ॥

मीन राशि गत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पात होने पर मूल, फल, कन्द, बर्तन और रत्नों का संग्रह करके ६ मास बाद बेचने से मनमाना लाभ होता है ॥ १२ ॥

यहाँ पर विशेष—

राशौ राशौ यस्मिन् शिशिरमयूखः सहस्रकिरणो वा ।
युक्तोऽधिमित्रदृष्टस्तत्रायं लाभको दिष्टः ॥ १३ ॥

जिस जिस राशि में स्थित चन्द्र या सूर्य अपने तात्कालिक अधिमित्र ग्रह से युत या दृष्ट हो उसी राशि में पूर्वोक्त लाभ होता है। अन्यत्र नहीं।

यहाँ पर काश्यप—

राशौ राशौ स्थितः सूर्यः शशी वा मित्रसंयुतः । अधिमित्रेण सन्दृष्टो यथा लाभप्रदः स्मृतः ॥

यहाँ पर और विशेष—

सवितृसहितः सम्पूर्णो वा शुभैर्युतवीक्षितः
शिशिरकिरणः सद्योऽर्धस्य प्रवृद्धिकरः स्मृतः ।
अशुभसहितः सन्दृष्टो वा हिनस्त्यथवा रविः
प्रतिगृहगतान् भावान् बुद्ध्वा वदेत्सदसत्फलम् ॥ १४ ॥

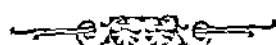
जिस राशि में सूर्य से युत चन्द्र या पूर्णचन्द्र शुभग्रह (बुध, बृहस्पति और शुक्र) से युत या दृष्ट हो उस राशि सम्बन्धी द्रव्य में मौल्य की वृद्धि करता है। तथा जिस राशि में पापग्रह (मङ्गल और शनि) से युत या दृष्ट हो उस

राशि सम्बन्धी द्रव्यों का नाश करता है। इसी प्रकार प्रत्येक राशि गत द्रव्यों को जानकर शुभाशुभ फल कहना चाहिये।

यहाँ पर काश्यप—

अत्रार्कशशिनौ सौम्यैः संयुक्तौ वा निरीक्षितौ। शुभग्रहस्थानगतौ सद्योऽर्घस्य विवृद्धिदौ॥
विपरीतस्थितावेतौ पापयुक्तौ निरीक्षितौ। अर्घहानिकरौ प्रोक्तौ मिश्रितौ मध्यमौ स्मृतौ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामर्घकाण्डाध्यायो द्विचत्वारिंशः॥ ४२॥



अथेन्द्रध्वजसम्पदध्यायः

इन्द्रध्वज उत्पत्ति प्रदर्शन—

ब्रह्माणमूचुरमरा भगवन् शक्ताः स्म नासुरान् समरे।
प्रतियोधयितुमतस्त्वां शरण्यशरणं समुपयाताः॥ १॥

सब देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा, हे भगवन्! राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिये हम समर्थ नहीं हैं, अतः आपकी शरण लेते हैं॥ १॥

देवताओं को ब्रह्मा का उपदेश—

देवानुवाच भगवान् क्षीरोदे केशवः स वः केतुम्।
यं दास्यति तं दृष्ट्वा नाजौ स्थास्यन्ति वो दैत्याः॥ २॥

भगवान् ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा—क्षीरसागर में भगवान् नारायण विराजमान हैं वे एक केतु (ध्वज) आपको देंगे जिसको देख कर राक्षस गण युद्ध में नहीं ठहरेंगे॥ २॥

भगवान् नारायण के पास जाकर देवताओं की स्तुति—

लब्धवराः क्षीरोदं गत्वा ते तुष्टुवुः सुराः सेन्द्राः।
श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभमणिकिरणोद्भासितोरस्कम्॥ ३॥
श्रीपतिमचिन्त्यमसमं समं ततः सर्वदेहिनां सूक्ष्मम्।
परमात्मानमनादिं विष्णुमविज्ञातपर्यन्तम्॥ ४॥
तैः संस्तुतः स देवस्तुतोष नारायणो ददौ चैषाम्।
ध्वजमसुरसुरवधूमुखकमलवनतुषारतीक्ष्णांशुम्॥ ५॥

इस तरह वर पाकर इन्द्र के साथ देवताओं ने क्षीरसागर जाकर भगवान् नारायण की इस तरह स्तुति की—श्रीवत्स चिन्ह से युत, कौस्तुभ मनि के किरणों से प्रकाशित वक्षःस्थल वाले, लक्ष्मीनाथ, अचिन्त्य, अनौपम्य, सब प्राणियों में गत होने के कारण सम, सब प्राणियों के द्वारा बड़ी कठिनता से जानने योग्य होने के कारण सूक्ष्म, परमात्मा, अनादि (उत्पत्ति रहित), विष्णु (व्यापक), अज्ञात

निधन वाले, इस तरह इन्द्र के साथ देवताओं से संस्तुत उस देव नारायण ने संतुष्ट होकर राक्षस और देवताओं के स्त्रियों के मुखरूप कमल-वन में क्रम से चन्द्र और सूर्य के समान (राक्षस के स्त्रियों के मुख कमल म्लान करने के कारण चन्द्र और देवताओं की स्त्रियों के मुख कमल को प्रफुल्लित करने के कारण सूर्य की तरह) ध्वज देवताओं को दिया ॥ ३-५ ॥

ध्वज का स्वरूप—

तं विष्णुतेजोद्भवमष्टचक्रे रथे स्थितं भास्वति रत्नचित्रे ।
देदीप्यमानं शरदीव सूर्यं ध्वजं समासाद्य मुमोद शक्रः ॥६॥

विष्णु के तेज से उत्पन्न, आठ चक्रों से युत, प्रकाशित तथा मणियों से भूषित रथ पर स्थित और शारदीय सूर्य की तरह प्रकाशमान ध्वज पाकर इन्द्र बहुत खुश हुये ॥६॥

ध्वज पाकर इन्द्र ने क्या किया—

स किङ्किणीजालपरिष्कृतेन स्रक्छत्रघण्टापिटकान्वितेन ।
समुच्छ्रितेनामरराड्ध्वजेन निन्ये विनाशं समरेऽरिसैन्यम् ॥७॥

किङ्किणियों (सूक्ष्म घण्टाओं) के समूह से भूषित, माला, छत्र, घण्टा और पिटक (ध्वजा में लगाने का एक प्रकार का भूषण) से युत उन्नत ध्वज के द्वारा युद्ध में शत्रु की सेना का नाश किया ।

यहाँ पर गर्ग—

असुरास्तं ध्वजं दृष्ट्वा ध्वजतेजःसमाहताः । विसञ्ज्ञास्समरे भग्ना पराभूता प्रदुद्रुवुः ॥
तान्वज्रेण सहस्राक्षो मासे भाद्रपदेऽसुरान् । घातयित्वा सज्येष्ठायामेकरात्रेण वाजिना ॥
स जित्वा श्रवणे स्वर्गं प्रययौ स द्विजः पथि ॥ ७ ॥

इन्द्र ने राजा वसु को दण्ड (ध्वज) दिया—

उपरिचरस्यामरपो वसोर्ददौ चेदिपस्य वेणुमयीम् ।
यष्टिं तां स नरेन्द्रो विधिवत् सम्पूजयामास ॥ ८ ॥

इन्द्र ने ऊपर गमन करने वाले (भूमि पर रहते हुये भी स्वर्ग जाने वाले) चेदि देश के राजा वसु को एक बाँस का दण्ड दिया, जिसका विधिपूर्वक चेदिपति राजा ने पूजन किया ॥ ८ ॥

इन्द्र की प्रसन्नता और ध्वज का माहात्म्य—

प्रीतो महेन मघवा प्राहैवं ये नृपाः करिष्यन्ति ।
वसुवद्वसुमन्तस्ते भुवि सिद्धाज्ञा भविष्यन्ति ॥ ९ ॥
मुदिताः प्रजाश्च तेषां भयरोगविवर्जिताः प्रभूतान्नाः ।
ध्वज एव चाभिधास्यति जगति निमित्तैः फलं सदसत् ॥ १० ॥

राजा वसु की पूजा से प्रसन्न होकर इन्द्र ने कहा—राजा वसु की तरह जो

राजा उत्पन्न करेगा वह अनेक प्रकार के रत्नों से युत पृथ्वी पर आदेश करने वाला राजा होगा। उस राजा के प्रजागण हर्षयुत, भय-रोग से रहित और बहुत अन्नों से युत होंगे। तथा संसार में कारणों के द्वारा ध्वज ही शुभाशुभ फल कहेगा ॥ ९–१० ॥

ध्वज का विधान—

पूजा तस्य नरेन्द्रैर्बलवृद्धिजयार्थिभिर्यथा पूर्वम्।
शक्राज्ञया प्रयुक्ता तामागमतः प्रवक्ष्यामि ॥ ११ ॥

पूर्व काल में इन्द्र की आज्ञा से बल की वृद्धि और जय की इच्छा रखने वाले राजाओं ने जिस तरह उस ध्वज का पूजन किया, शास्त्र से लेकर उसको मैं कहता हूँ ॥

ध्वज का विधान—

तस्य विधानं शुभकरणदिवसनक्षत्रमङ्गलमुहूर्त्तैः।
प्रास्थानिकैर्वनमियाद्दैवज्ञः सूत्रधारश्च ॥ १२ ॥

शुभ करण (९९ अध्याय के ४–५ श्लोक में उक्त), शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ शकुन और शुभ मुहूर्त (यात्रा में उक्त मुहूर्त) में ज्योतिषी और बढ़ई वन में गमन करे।

यहाँ पर शुभ मुहूर्त—

शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरञ्चिपङ्कजप्रभवाः ।
इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्यमयोनयश्चाह्नि ॥
रुद्राजाहिर्बुध्न्याः पूषादस्रान्तकाग्नियातारः ।
चन्द्रादितिगुरुहरिरविविश्वाष्ट्राप्यनिलाख्यका रात्रौ ॥
अह्नः पञ्चदशांशो रात्रिश्चैवं मुहूर्त इति ।
सञ्ज्ञा स च विज्ञेयश्छायायन्त्राम्बुभिर्युक्त्या ॥ १२ ॥

इन्द्र ध्वज के लिये—

उद्यानदेवतालयपितृवनवल्मीकमार्गचितिजाताः ।
कुब्जोर्ध्वशुष्ककण्टकिवल्लीवन्दाकयुक्ताश्च ॥ १३ ॥
बहुविहगालयकोटरपवनानलपीडिताश्च ये तरवः ।
ये च स्युः स्त्रीसञ्ज्ञा न ते शुभाः शक्रकेत्वर्थे ॥ १४ ॥

उद्यान (फुलवाड़ी), देवालय, श्मशान, वल्मीक (वमई = दिवढा भीढ़), मार्ग या यज्ञ भूमि में उत्पन्न, कुबड़ा, खड़े ही सूख गये, काँटेदार, लताओं से युत, वन्दा ..क से युत, बहुत पक्षियों के घोंसले वाले, वायु से टूटे हुये, आग से जले हुये और स्त्रीलिङ्ग नाम वाले (कदली, बदली आदि) वृक्षों के अतिरिक्त शुभ वृक्ष इन्द्र ध्वज के लिये काटे।

यहाँ पर गर्ग—

भ्रोष्ठपादे प्रतिपदि ध्वजार्थं पूर्वतो वनम्। गत्वा वृक्षं परीक्षेत वयःसारगुणान्वितम् ॥

ध्वज के लिये शुभ वृक्ष—

श्रेष्ठोऽर्जुनोऽजकर्णः प्रियकधवोदुम्बराश्च पञ्चैते ।
एतेषामेकतमं प्रशस्तमथवापरं वृक्षम् ॥ १५ ॥

अर्जुन (काहू), अजकर्ण, प्रियक, धव और गूलर ये पाँच वृक्ष ध्वज के लिये शुभ होते हैं, इन में एक या अन्य वक्ष्यमाण शुभ लक्षणों से युत वृक्ष ॥ १५ ॥

शुभ लक्षण से युत वृक्ष कैसा—

गौरासितक्षितिभवं सम्पूज्य यथाविधि द्विजः पूर्वम् ।
विजने समेत्य रात्रौ स्पृष्ट्वा ब्रूयादिमं मन्त्रम् ॥ १६ ॥

श्वेत या काली भूमि में उत्पन्न (शुभ लक्षण युत) वृक्ष के पास जाकर ब्राह्मण जन-रहित स्थान में रात्रि के समय विधि पूर्वक पूजन के बाद वृक्ष को स्पर्श करके वक्ष्यमाण मन्त्र बोले ॥ १६ ॥

दो श्लोकों से मन्त्र प्रदर्शन—

यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः ।
उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासपर्ययः ॥ १७ ॥
पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम ।
ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥

इस वृक्ष पर जितने जन्तु हैं सब के लिये शुभ हो, आप सबों के लिये मैं नमस्कार करता हूँ, इस बलि को ग्रहण करके आप सब दूसरी जगह वास करें । हे प्रधान वृक्ष ! आपके लिये शुभ हो, इन्द्र ध्वज के लिये राजा आप को पाने की इच्छा कर रहा है । अत मेरी की हुई पूजा ग्रहण करें ॥ १७–१८ ॥

बाद में क्या करना चाहिये—

छिन्द्यात्प्रभातसमये वृक्षमुदक्प्राङ्मुखोऽपि वा भूत्वा ।
परशोर्जर्जरशब्दो नेष्टः स्निग्धो घनश्च हितः ॥ १९ ॥

बाद सूर्योदय के समय उत्तर या पूर्व मुख होकर वृक्ष को काटे । परशु (फरसा = कुल्हार) का जर्जर शब्द निकलना शुभ नहीं है, किन्तु मधुर और घने शब्द का निकलना शुभ है ॥ १९ ॥

पतित वृक्ष का शुभाशुभ फल—

नृपजयदमविध्वस्तं पतनमनाकुञ्चितं च पूर्वोदक् ।
अविलग्नं चान्यतरौ विपरीतमतस्त्यजेत्पतितम् ॥ २० ॥

अखण्डित या अवक्र होकर और पूर्व या उत्तर दिशा में वृक्ष का गिरना राजा की विजय करने वाला होता है । इनसे भिन्न लक्षण युत होकर (खण्डित या वक्र होकर, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम या वायव्य कोण में) वृक्ष का गिरना अशुभ है ॥२०॥

इस के बाद क्या करना चाहिये—

छित्त्वाग्रे चतुरङ्गुलमष्टौ मूले जले क्षिपेद्यष्टिम्।
उद्धृत्य पुरद्वारं शकटेन नयेन्मनुष्यैर्वा॥ २१॥

इस वृक्ष के आगे से चार अङ्गुल और मूल से आठ अङ्गुल काट कर यष्टि (मध्यभाग) को जल में डाल दे। बाद में जल से निकाल कर गाड़ी या मनुष्यों के द्वारा पुरद्वार पर उसको लावे॥ २१॥

लकड़ी लाने के समय का फल—

अरभङ्गे बलभेदो नेम्या नाशो बलस्य विज्ञेयः।
अर्थक्षयोऽक्षभङ्गे तथाणिभङ्गे च वर्द्धकिनः॥ २२॥

लकड़ी लाने के समय गाडी का आरा टूट जाय तो सेनाओं में भेद, नेमि (हाल) टूट जाय तो सेनाओं का नाश, अक्ष (धुरा) टूट जाय तो धन का नाश और अणि (कुलावा) टूट जाय तो बढ़ई का नाश होता है॥ २२॥

किस काल में किस तरह प्रवेश कराना चाहिये—

भाद्रपदशुक्लपक्षस्याष्टम्यां नागरैर्वृतो राजा।
दैवज्ञसचिवकञ्चुकिविप्रप्रमुखैः सुवेषधरैः॥ २३॥
अहताम्बरसंवीतां यष्टिं पौरन्दरीं पुरं पौरैः।
स्रग्गन्धधूपयुक्तां प्रवेशयेच्छङ्खतूर्यरवैः॥ २४॥

भाद्र शुक्ल अष्टमी के दिन नगर में रहने वाले मनुष्य, ज्यौतिषी, मन्त्री, कञ्चुकी, सुन्दर वेषधारी प्रधान ब्राह्मणों के साथ होकर राजा पुरवासियों के द्वारा नवीन वस्त्र से ढकी हुई, माला, गन्ध और धूपों से युत यष्टि को शङ्ख और तुरही के शब्दों के साथ पुर में प्रवेश करावे।

यहाँ पर गर्ग—

प्रौष्ठपादे सिताष्टम्यां ज्येष्ठायोगे स्वलङ्कृताम्। यष्टिं पौरन्दरीं राजा नगरं सम्प्रवेशयेत्॥

कैसा नगर होना चाहिये—

रुचिरपताकातोरणवनमालालङ्कृतं प्रहृष्टजनम्।
संमार्जितार्चितपथं सुवेषगणिकाजनाकीर्णम्॥ २५॥
अभ्यर्चितापणगृहं प्रभूतपुण्याहवेदनिर्घोषम्।
नटनर्तकगेयज्ञैराकीर्णचतुष्पथं नगरम्॥ २६॥

मनोहर पताका, तोरण और वनमालाओं से भूषित, हर्षित मनुष्यों से युत, शोधित और सजाये हुये मार्गों से युत, सुन्दर वेष वाली वेश्याओं से व्याप्त, सजी हुई दुकानों से युत, अधिक पुण्याह और वेद के शब्दों से युत, नट, नाचने वाले और गान विद्या जानने वालों से व्याप्त चतुष्पथ (चौराहे) वाला नगर होना चाहिये।

पताका के वर्ण का फल—

तत्र पताकाः श्वेता भवन्ति विजयाय रोगदाः पीताः ।
जयदाश्च चित्ररूपा रक्ताः शस्त्रप्रकोपाय ॥ २७ ॥

उस नगर में श्वेत वर्ण की पताका विजय के लिये, पीत वर्ण की रोग देने वाली, अनेक वर्ण की विजय कराने वाली और रक्त वर्ण की पताका शस्त्र प्रकोप के लिये होती है ॥ २७ ॥

प्रवेश कराते समय शुभाशुभ फल—

यष्टिं प्रवेशयन्तो निपातयन्तो भयाय नागाद्याः ।
बालानां तलशब्दे सङ्ग्रामः सत्त्वयुद्धे वा ॥ २८ ॥

नगर में प्रवेश कराती हुई यष्टि को यदि हाथी, घोड़ा आदि कोई जीव गिरा दे तो भय के लिये, उस समय बालक तालियाँ बजावें या गायों में परस्पर लड़ाई हो तो युद्ध के लिये होती है ॥ २८ ॥

इसके बाद क्या करना चाहिये—

सन्तक्ष्य पुनस्तक्षा विधिवद्यष्टिं प्ररोपयेद्यन्त्रे ।
जागरमेकादश्यां नरेश्वरः कारयेत्तस्याम् ॥ २९ ॥
सितवस्त्रोष्णीषधरः पुरोहितः शाक्रवैष्णवैर्मन्त्रैः ।
जुहुयादग्निं सांवत्सरो निमित्तानि गृह्णीयात् ॥ ३० ॥

फिर बढ़ई विधिपूर्वक यष्टि को छील कर खराद पर चढ़ावे, राजा आगे आने वाली एकादशी में जागरण करे। श्वेत वस्त्र और पगड़ी बाँधे हुए पुरोहित इन्द्र दैवत और विष्णु दैवत मन्त्रों से अग्नि में हवन करे और सांवत्सर (ज्यौतिषी) अग्नि के शुभाशुभ चिन्हों को ग्रहण करे ॥ २९–३० ॥

अग्नि के शुभाशुभ का लक्षण—

इष्टद्रव्याकारः सुरभिः स्निग्धो घनोऽनलोऽर्चिष्मान् ।
शुभकृदतोऽन्योऽनिष्टो यात्रायां विस्तरोऽभिहितः ॥ ३१ ॥

अभिलषित द्रव्यों के समान, सुगन्ध युत, निर्मल, घना और लपटदार अग्नि शुभ करने वाली और इससे भिन्न लक्षण युत अग्नि अशुभ करने वाली होती है। इस सम्बन्ध को लेकर योगयात्रा नामक ग्रन्थ में मैंने विस्तार पूर्वक कहा है।

योगयात्रा में—

हुतेऽपि यत्नेऽपि कृशः कृशानुर्धातव्यकाष्ठाविमुखो नतार्चिः ।
वामे कृतावर्तशिखोऽतिधूम्रो विच्छिन्नसाकम्पविलीनमूर्त्तिः ॥
सिमिसिमायति चास्य हविर्हुतं सुरधनुःसदृशः कपिलोऽथवा ।
सुषिरपीतकपाण्डुहरिच्छविः परुषमूर्त्तिरनिष्टकरोऽनलः ॥

खरकरभकवानरानुरूपो निगडविभीषणशस्त्ररूपमुद्रा ।
शवरुधिरवसास्थिमज्जगन्धो हुतभुगनिष्टफलः स्फुलिङ्गदश्च ॥
चर्मविपाटनतुल्यनिनादो जर्जरदर्दुररूक्षरवो वा ।
आकुलयंश्च पुरोहितमस्थान् धूमलवैर्न शिवाय हुताशः ॥
हारकुन्दकुमुदेन्दुसन्निभः संहतोऽङ्गसुखदो महोदयः ।
अङ्कुशातपनिवारणाकृतिर्दूयतेऽल्प उपमानहव्यभुक् ॥
उत्थाय स्वयमुज्ज्वलार्चिरनलः स्वाहावसाने हवि-
र्भुङ्क्ते देहसुखप्रदक्षिणगतिः स्निग्धो महान् संहतः ।
निर्धूमः सुरभिः स्फुलिङ्गरहितो वातानुलोमो मृदु-
र्मुक्तेन्दीवरकाञ्चनद्युतिधरो यातुर्जयं संयति ॥
इष्टद्रव्यघटातपत्रतुरगश्रीवृक्षशैलाकृतिर्भेर्यब्दोदधिदुन्दुभीतशकटस्निग्धस्वनैः पूजितः ।
नेष्टः मोक्षविपर्यये हुतवहः स्निग्धो यथाभीष्टकः सम्बेऽङ्गे नृपतेर्दहत्यतिशुभः शेषं च लोकाद्वदेत्॥

और शुभ लक्षण—

स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः
स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो हुतभुग् नृपस्य ।
गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारां
धात्रीं समुद्ररशनां वशगां करोति ॥ ३२ ॥

यदि स्वाहा के अवसान (पूर्णाहुति देने के) समय स्वयं प्रज्वलित शिखा वाली निर्मल और दक्षिणावर्त्त क्रम से चलती हुई शिखा वाली अग्नि हो तो गङ्गा और यमुना के जलरूपी सुन्दर हार वाली, समुद्र रूपी मेखला (तगड़ी) वाली पृथ्वी को राजा अपने वश में करता है, अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा होता है ॥ ३२ ॥

अग्नि के और शुभ लक्षण—

चामीकराशोककुरण्टकाब्जवैदूर्यनीलोत्पलसन्निभेऽग्नौ ।
न ध्वान्तमन्तर्भवनेऽवकाशं करोति रत्नांशुहतं नृपस्य ॥ ३३ ॥

यदि सुवर्ण, अशोक, कुरण्टक, वैदूर्य मणि या नील कमल के समान कान्ति वाली अग्नि हो तो हवन कराने वाले राजा के भवन में ठहरने के लिये रत्नों की किरणों से नष्ट होकर अन्धकार अवकाश नहीं पाता है ॥ ३३ ॥

अग्नि के शब्द का फल—

येषां रथौघार्णवमेघदन्तिनां समस्वनोऽग्निर्यदि वापि दुन्दुभेः ।
तेषां मदान्धेभघटावघट्टिता भवन्ति याने तिमिरोपमा दिशः ॥३४॥

यदि अग्नि में समुद्र, मेघ, हाथी या नगाड़े के समान शब्द हो तो उस राजा के गमन करने के समय मदमत्त हाथियों से व्याप्त दिशायें अन्धकार की तरह हो जाती हैं अर्थात् उस राजा के पास हाथियों की अधिकता होती है ॥ ३४ ॥

अग्नि के और लक्षण—

ध्वजकुम्भहयेभभूभृतामनुरूपे वशमेति भूभृताम् ।
उदयास्तधराधराऽधरा हिमवद्विन्ध्यपयोधरा धरा ॥ ३५ ॥

पताका, घड़ा, घोड़ा या हाथियों के समान अग्नि हो तो उदयाचल और अस्ताचल रूप ओष्ठ वाली, हिमालय और विन्ध्याचल रूप स्तन वाली पृथ्वी उस राजा के वश में हो जाती है ॥ ३५ ॥

अग्नि के और लक्षण—

द्विरदमदमहीसरोजलाजाघृतमधुना च हुताशने सगन्धे ।
प्रणतनृपशिरोमणिप्रभाभिर्भवति पुरश्छुरितेव भूर्नृपस्य ॥ ३६ ॥

यदि अग्नि में हाथियों के मदजल, लाजा (खीलें = लाई = लावा) घी या शहद के समान सुगन्धि हो तो हवन कराने वाले राजा को प्रणाम करते हुये राजाओं के मुकुटों में जड़ी हुई मणियों की कान्ति से आगे की भूमि रँगी हुई सी दिखाई देती है ॥ ३६ ॥

पूर्वोक्त अग्नि लक्षण का जन्म आदि में भी विचार—

उक्तं यदुत्थिगुति शक्रकेतौ शुभाशुभं सप्तमरीचिरूपैः ।
तज्जन्मयज्ञग्रहशान्तियात्राविवाहकालेष्वपि चिन्तनीयम् ॥ ३७ ॥

इन्द्रध्वज उठाने के समय अग्नि के स्वरूप द्वारा जो शुभाशुभ फल कहे हैं उनका जन्म समय, यज्ञ काल, ग्रह शान्ति, यात्रा और विवाह काल में भी विचार करना चाहिये ॥ ३७ ॥

ध्वजा की उत्थापन विधि—

गुडपूपपायसाद्यैर्विप्रानभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च ।
श्रवणेन द्वादश्यामुत्थाप्योऽन्यत्र वा श्रवणात् ॥ ३८ ॥

गुड़, पूए (पिट्ठी), पायस और दक्षिणाओं से ब्राह्मणों की पूजा करके श्रवण नक्षत्र युत द्वादशी तिथि में या श्रवण नक्षत्र युत अन्य किसी तिथि में ध्वजा को उठावे ।

यहाँ पर गर्ग—

तत्र श्रवणयोगेन ध्वजोत्थानं प्रशस्यते । द्वादश्यां विजये वाथमुहूर्ते वा दिनेऽथवा ॥३८॥

शक्र कुमारी का लक्षण—

शक्रकुमार्यः कार्याः प्राह मनुः सप्त पञ्च वा तज्ज्ञैः ।
नन्दोपनन्दसञ्ज्ञे पादोनार्द्धध्वजोच्छ्रायात् ॥ ३९ ॥
षोडशभागाभ्यधिके जयविजये द्वे वसुन्धरे चान्ये ।
अधिका शक्रजनित्री मध्येऽष्टांशेन चैतासाम् ॥ ४० ॥

ध्वजा के ऊपर पांच या सात शक्र कुमारी बनाना चाहिये, ऐसा मनु ने कहा है। ध्वजा की ऊँचाई से चौथाई कम नन्दा, ध्वजा के आधा तुल्य उपनन्दा, ध्वजा से सोलहवां भाग अधिक जय और विजय, जय और विजय से सोलहवां भाग अधिक दो वसुन्धरा तथा सब के बीच में वसुन्धरा से आठवां भाग अधिक शक्र जनित्री बनावे।

यहाँ पर गर्ग—

शक्रकाष्ठकृता: पञ्च सप्त वा लक्षणान्विताः। इन्द्रध्वजस्य शोभार्थं कुमारी: कारयेद् द्विजः॥
अष्टाविंशत्करा यष्टिरष्टहस्ता ततोऽपरा। विष्कम्भश्चाङ्गुलैस्तस्याः षड्भिर्द्विगुणितैः स्मृतः॥
समप्रमनुलोमं वा तथं प्राक् शिरसान्वितम्। कुर्यादिन्द्रध्वजं शुभ्रं सारदारमयं शुभम्॥

इन्द्र ध्वज का आभूषण—

प्रीतैः कृतानि विबुधैर्यानि पुरा भूषणानि सुरकेतोः।
तानि क्रमेण दद्यात् पिटकानि विचित्ररूपाणि॥ ४१॥

पूर्व समय में हर्षित देवताओं ने इन्द्रध्वज को जो आभूषण दिये थे क्रमानुसार उन विचित्र रूप पिटकों (आभूषणों) से इस ध्वज को भूषित करें॥४१॥

आभूषण देने का क्रम—

रक्ताशोकनिकाशं चतुरस्रं विश्वकर्मणा प्रथमम्।
रशना स्वयम्भुवा शङ्करेण चानेकवर्णगा दत्ता॥ ४२॥
अष्टाश्रि नीलरक्तं तृतीयमिन्द्रेण भूषणं दत्तम्।
असितं यमश्चतुर्थं मसूरकं कान्तिमदयच्छत्॥ ४३॥
मञ्जिष्ठाभं वरुणः षडश्रि तत्पञ्चमं जलोर्मिनिभम्।
मायूरं केयूरं षष्ठं वायुर्जलदनीलम्॥ ४४॥
स्कन्दः स्वं केयूरं सप्तममददद्ध्वजाय बहुचित्रम्।
अष्टममनलज्वालासङ्काशं हव्यभुग्दत्तम्॥ ४५॥
वैदूर्यसदृशमिन्द्रो नवमं ग्रैवेयकं ददावन्यत्।
रथचक्राभं दशमं सूर्यस्त्वष्टा प्रभायुक्तम्॥ ४६॥
एकादशमुडुरुं विश्वेदेवाः सरोजसङ्काशम्।
द्वादशमपि च निवेशं मुनयो नीलोत्पलाभासम्॥ ४७॥
किञ्चिदथ ऊर्ध्वनिर्मितमुपरि विशालं त्रयोदशं केतोः।
शिरसि बृहस्पतिशुक्रौ लाक्षारससन्निभं ददतुः॥ ४८॥
यद्येन विभूषणममरेण विनिर्मितं ध्वजस्यार्थे।
तत्तद्दैवत्यं विज्ञातव्यं विपश्चिद्भिः॥ ४९॥

विश्व कर्मा ने लाल अशोक के समान कान्ति वाला, चौकोर प्रथम आभूषण इन्द्र ध्वज को दिया। ब्रह्मा और शंकर ने अनेक रंग वाली दूसरी रशना (तगड़ी) दी। इन्द्र ने नील और लाल वर्ण युत आठ कोने वाला तृतीय आभूषण दिया। यमराज ने काला, कान्तियुत मसूरक नामक चौथा आभूषण दिया। वरुण ने मंजीठ के समान कान्ति वाला, जलावर्त्त की तरह और छ कोन वाला पांचवां आभूषण दिया। वायु ने मयूर के पंख से व्याप्त और मेघ के समान नील वर्ण वाला छठा आभूषण केयूर दिया। कार्त्तिकेय ने अपना अनेक वर्ण का केयूर नामक सातवाँ आभूषण दिया। अग्नि ने अग्नि शिखा की तरह कान्ति वाला और गोलाकार आठवाँ आभूषण दिया। इन्द्र ने वैदूर्य मणि के समान कान्ति वाला नवम कंठ का भूषण दिया। त्वष्टा नामक सूर्य ने रथ के पहिये की तरह और कान्ति युत दशवां भूषण दिया। विश्वदेव ने कमल के समान उद्दंश सञ्ज्ञक ग्यारहवां भूषण दिया। मुनियों ने नील कमल के समान कान्ति वाला निवेश नामक बारहवां भूषण दिया। बृहस्पति और शुक्र ने कुछ नीचे ऊपर घना हुआ, आगे के भाग में विस्तृत और लाक्षारस के समान लोहित वर्ण का तेरहवां भूषण शिर में दिया। जिस जिस देवता ने इन्द्रध्वज के लिये जो २ भूषण बनाया वही उस भूषण के देवता हैं, यह पण्डितों को जानना चाहिये ॥ ४२-४९ ॥

पिटक का परिमाण—

ध्वजपरिमाणत्र्यंशः परिधिः प्रथमस्य भवति पिटकस्य ।
परतः प्रथमात् प्रथमादष्टांशाष्टांशहीनानि ॥ ५० ॥

ध्वजा के तृतीयांश प्रथम पिटक की परिधि, द्वितीय आदि बारह पिटक अपने से पूर्व पिटक से अष्टमांश कम करना चाहिये। जैसे—अष्टमांशोन-प्रथम द्वितीय, अष्टमांशोन-द्वितीय तृतीय, अष्टमांशोन-तृतीय चतुर्थ, अष्टमांशोन-चतुर्थ पञ्चम, अष्टमांशोन-पञ्चम षष्ठ, अष्टमांशोन-षष्ठ सप्तम, अष्टमांशोन-सप्तम अष्टम, अष्टमांशोन-अष्टम नवम, अष्टमांशोन-नवम दशम, अष्टमांशोन-दशम एकादश, अष्टमांशोन एकादश द्वादश, और अष्टमांशोन-द्वादश त्रयोदश पिटक बनाना चाहिये ॥ ५० ॥

पिटकों से भूषित करने का समय—

कुर्यादहनि चतुर्थे पूरणमिन्द्रध्वजस्य शास्त्रज्ञः ।
मनुना चागमगीतान् मन्त्रानेतान् पठेन्नियतः ॥ ५१ ॥

शास्त्रज्ञ (इन्द्रध्वज लक्षण को जानने वाले) चौथे (पूर्णिमा के) दिन पिटकों से इन्द्रध्वज को भूषित करें और नियत होकर मनु राजा द्वारा आगम से प्रतिपादित वक्ष्यमाण मन्त्रों को पढ़ें ॥ ५१ ॥

चार श्लोकों के द्वारा मन्त्र—

हरार्कवैवस्वतशक्रसोमैर्धनेशवैश्वानरपाशभृद्भिः ।
महर्षिसङ्घैः सदिगप्सरोभिः शुक्राङ्गिरःस्कन्दमरुद्गणैश्च ॥ ५२ ॥

यथा त्वमूर्जस्करणैकरूपैः समर्चितस्त्वाभरणैरुदारैः।
तथेह तान्याभरणानि यागे शुभानि सम्प्रीतमना गृहाण॥ ५३॥
अजोऽव्ययः शाश्वत एकरूपो विष्णुर्वराहः पुरुषः पुराणः।
त्वमन्तकः सर्वहरः कृशानुः सहस्रशीर्षः शतमन्युरीड्यः॥५४॥
कविं सप्तजिह्वं त्रातारमिन्द्रं सवितारं सुरेशम्।
ह्वयामि शक्रं वृत्रहणं सुषेणमस्माकं वीरा उत्तरा भवन्तु॥५५॥

महादेव, सूर्य, यम, इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, अग्नि, वरुण, महर्षिगण, सब दिशायें, अप्सरायें, शुक्र, बृहस्पति, कार्तिकेय और वायुओं के समुदायों के द्वारा जिस तरह प्रकाशमान, अनेक रूप वाले, श्रेष्ठ आभूषणों से पूजित हुये हैं। हे देव! उसी तरह इस यज्ञ में प्रसन्न मन होकर उन सब आभूषणों को ग्रहण करें। अज, अविनाशी, सर्वदा रहने वाले, एक रूप, व्यापक, वराह रूप, प्रधान पुरुष, चिरन्तन, यम स्वरूप, सब को संहार करने वाले, अग्नि, सहस्र शिर वाले, इन्द्र और स्तुति के योग्य तुम हो। विद्वान्, अग्नि, पालन करने वाले, इन्द्र, अच्छी तरह रक्षा करने वाले देवताओं के स्वामी, शक्र, वृत्रासुर को मारने वाले और सुषेण (सुन्दर सेनाओं से युत) तुम को मैं बुला रहा हूँ। हमारी वीर सेनायें संग्राम में विजयी हों॥ ५२-५५॥

पूर्वोक्त मन्त्रों को पढ़ने का समय—

प्रपूरणे चोच्छ्रयणे प्रवेशे स्नाने तथा माल्यविधौ विसर्गे।
पठेदिमान्नृपतिः सोपवासो मन्त्रान् शुभान् पुरुहूतस्य केतोः॥ ५६॥

इन्द्रध्वज को पिटकों से भूषित करने के समय, उठाने के समय, नगर में प्रवेश कराने के समय, स्नान कराने के समय, पुष्प माला पहनाने के समय और विसर्जन के समय व्रती होकर राजा पूर्वोक्त मन्त्रों को पढ़े॥ ५६॥

किस तरह का ध्वज उठाना चाहिये—

छत्रध्वजादर्शफलार्द्धचन्द्रैर्विचित्रमालाकदलीक्षुदण्डैः।
सव्यालसिंहैः पिटकैर्गवाक्षैरलङ्कृतं दिक्षु च लोकपालैः॥ ५७॥
अच्छिन्नरज्जुं दृढकाष्ठमातृकं सुश्लिष्टयन्त्रार्गलपादतोरणम्।
उत्थापयेच्छक्रध्वजं सहस्रचक्षुषः सारद्रुमाभग्नकुमारिकान्वितम्॥ ५८॥

छत्र, पताका, दर्पण, फल, अर्द्धचन्द्र, अनेक प्रकार की मालायें, केले का वृक्ष, ईख और दिक्पालों (इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर और महादेव) से युत— अखण्डित आठ रस्सियों से बँधा हुआ, मजबूत लकड़ी का बना हुआ, दो मातृका वाला, दृढ़ बँधा हुआ, यन्त्रार्गल वाला और सार युत वृक्षों से बनी हुई कुमारिकाओं से युत इन्द्र के लक्ष्म (ध्वज) को उठावे॥ ५७-५८॥

ध्वज उठाने का क्रम—

अविरतजनरावं मङ्गलाशीः प्रणामैः पटुपटहमृदङ्गैः शङ्खभेर्यादिभिश्च ।
श्रुतिविहितवचोभिः पापठद्भिश्च विप्रैरशुभविहतशब्दं केतुमुत्थापयेच्च ॥

मङ्गल आशीर्वाद और प्रणामों के द्वारा लगातार हुये मनुष्य के शब्दों से युत, ढोल, मृदङ्ग, शङ्ख और भेरी के शब्दों से युत, वेद विहित वाक्यों को बार-बार पढ़ते हुये ब्राह्मणों से युत तथा मङ्गल शब्दों से युत ध्वज को राजा उठावे ॥ ५९ ॥

किस तरह का राजा ध्वज को उठावे—

फलदधिघृतलाजाक्षौद्रपुष्पाग्रहस्तैः प्रणिपतितशिरोभिस्तुष्टवद्भिश्च पौरैः ।
धृतमनिमिषभर्तुः केतुमीशः प्रजानामरिनगरनताग्रं कारयेद्द्विड्वधाय ॥

फल, दही, घी, लाजा (लाई = खील = लावा), शहद और फूल हाथ में लिये, नत मस्तक वाले तथा मङ्गल शब्द बोलते हुये पुरवासियों के साथ प्रजाओं का स्वामी राजा अनिमिषों (देवताओं) के भर्ता (स्वामी) इन्द्र के ध्वज को शत्रु वध के लिये शत्रु के नगर की तरफ झुकावे ॥ ६० ॥

ध्वज का शुभ उत्थान—

नातिद्रुतं न च विलम्बितमप्रकम्पमध्वस्तमाल्यपिटकादिविभूषणं च ।
उत्थानमिष्टमशुभं यदतोऽन्यथा स्यात्तच्छान्तिभिर्नरपतेः शमयेत्पुरोधाः॥

अनतिशीघ्र, अविलम्ब, कम्पन रहित, अनष्ट माला और पिटक आदि भूषण वाले ध्वज का उठना शुभ है । इन से भिन्न लक्षण युत ध्वज का उठना अशुभ है । राज-पुरोहित को शान्ति के द्वारा विघ्नों को दूर करना चाहिये ।

यहाँ पर गर्ग—

अविध्वस्तमनाधूतमद्रुताजिह्ममूर्ध्वगम् । इन्द्रध्वजसमुत्थानं क्षेमसौभिक्षकारकम् ॥
निर्घातोल्कामहीकम्पा दीप्ताश्च मृगपक्षिणः । उच्छ्रीयमाणे चण्डा वा वायवः स्युर्भयाय ते ॥

ध्वज उठने पर शुभाशुभ फल—

क्रव्यादकौशिककपोतककाककङ्कैः केतुस्थितैर्महदुशन्ति भयं नृपस्य ।
चापेण चापि युवराजभयं वदन्ति श्येनो विलोचनभयं निपतन् करोति ॥
छत्रभङ्गपतने नृपमृत्युस्तस्कारान्मधु करोति निलीनम् ।
हन्ति चाप्यथ पुरोहितमुल्का पार्थिवस्य महिषीमशनिश्च ॥ ६३ ॥
राज्ञीविनाशं पतिता पताका करोत्यवृष्टिं पिटकस्य पातः ।
मध्याग्रमूलेषु च केतुभङ्गो निहन्ति मन्त्रिक्षितिपालपौरान् ॥ ६४ ॥
धूमावृते शिखिभयं तमसा च मोहो
व्यालैश्च भग्नपतितैर्न भवन्त्यमात्याः ।

ग्लायन्त्युदक्प्रभृति च क्रमशो द्विजाद्यान्
भङ्गे च बन्धकिवधः कथितः कुमार्याः ॥ ६५ ॥
रज्जूत्सङ्गच्छेदने बालपीडा राज्ञो मातुः पीडनं मातृकायाः।
यद्यत्कुर्युर्बालकाश्चारणा वा तत्तत्ताद्दग्भावि पापं शुभं वा ॥ ६६ ॥

यदि इन्द्र ध्वज पर मांस खाने वाला पक्षी, उल्लू, कबूतर, काक या उजली चिरह बैठे तो राजा को अन्यन्न मय, नीलकंठ बैठे तो युवराज को भय और बाज बैठे तो नेत्र भय करता है।

यदि ध्वज का छत्र भङ्ग हो जाय तो राजा की मृत्यु, उस पर मधुमक्खियाँ मुहाल (छत्ता) लगावें तो चोरों का उपद्रव, उल्का गिरे तो पुरोहित का नाश और वज्र पात हो तो राजा की प्रधान रानी का नाश होता है।

ध्वज का पताका गिरे तो रानी का नाश, पिटक गिरे तो अवृष्टि, ध्वज मध्य भाग से टूट जाय तो मन्त्री का नाश, आगे से टूट जाय तो राजा का नाश, मूल से टूट जाय तो पुरवासियों का नाश करता है।

यदि धुआँ से ध्वज व्याप्त हो जाय तो अग्नि भय, अन्धकार से व्याप्त हो जाय तो विकलता और वहाँ पर सर्प दब कर मर जायँ या गिरें तो मन्त्रियों का नाश होता है।

ध्वज के उत्तर दिशा में कोई उत्पात हो तो ब्राह्मणों को, पूर्व में क्षत्रियों को, दक्षिन में वैश्यों को और पश्चिम में कोई उत्पात हो तो शूद्रों को पीड़ित करता है।

तथा यदि शक्र-कुमारी टूटे तो वेश्याओं का नाश होता है।

यदि इन्द्र-ध्वज उठाने के समय रस्सा कहीं से टूट जाय तो बालकों को और मातृका (तोरण का पार्श्व वर्ती काष्ठ) टूट जाय तो राजमाता को पीड़ा होती है।

इन्द्र ध्वज के समीप चारण गण और बालकों की चेष्टा के द्वारा भावी अशुभ या शुभ फल होता है।

यहाँ पर गर्ग—

प्रहृष्टमनसः सर्वे क्रीडेयुर्मुदिता यदि। यदा जलेन गन्धैश्च त्रिन्धारसैभिश्चलच्चगम् ॥
अमेध्यै रक्तकैः केशैर्भस्मना क्रन्दनेन च। दुर्भिक्षपीडा विज्ञेया शस्त्रैश्चापि भयं वदेत् ॥

विसर्जन की विधि—

दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चितं समभिपूज्य नृपोऽहनि पञ्चमे।
प्रकृतिभिः सह शक्रम विसर्जयेद्वलभिदः स्वबलाभिविवृद्धये ॥ ६७ ॥

अपने बल वृद्धि के लिये चार दिन तक (द्वादशी से पूर्णिमा तक) पूजित, खड़े हुये इन्द्र के ध्वज का मन्त्रियों के साथ होकर राजा पांचवें दिन (प्रतिपदा के दिन) पूजन करके विसर्जन करे ॥ ६७ ॥

इन्द्र ध्वज पूजन करने वालों का प्रभाव—

उपरिचरवसुप्रवर्तितं नृपतिभिरप्यनुसन्ततं कृतम् ।
विधिमिममनुमन्य पार्थिवो न रिपुकृतं भयमाप्नुयादिति ॥६८॥

राजा उपरिचर वसु से चलाई हुई और सदा राजाओं से की हुई इस विधि को करके राजा शत्रु कृत भय को नहीं पाता है ॥ ६८ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामिन्द्रध्वजसम्पदाध्यायस्त्रिचत्वारिंशः ॥ ४३ ॥



अथ नीराजनाध्यायः

इस में पहले काल नियम प्रदर्शन—

भगवति जलधरपक्ष्मक्षपाकरार्केक्षणे कमलनाभे ।
उन्मीलयति तुरङ्गमकरिनरनीराजनं कुर्यात् ॥ १ ॥

मेघ रूप पलक, तथा चन्द्र-सूर्य रूप दोनों नेत्र वाले भगवान् कमल नाभ के नेत्र खोलने पर घोड़ा, हाथी और मनुष्यों को नीराजन (जल का स्पर्श) करना चाहिये ॥ १ ॥

नीराजन करने का समय—

द्वादश्यामष्टम्यां कार्तिकशुक्लस्य पञ्चदश्यां वा ।
आश्वयुजे वा कुर्यान्नीराजनसञ्ज्ञितां शान्तिम् ॥ २ ॥

कार्तिक या आश्विन के शुक्ल पक्ष की द्वादशी, अष्टमी, पूर्णिमा या अमावास्या के दिन नीराजन नामक शान्ति करनी चाहिये ॥ २ ॥

तोरण बनाने की विधि—

नगरोत्तरपूर्वदिशि प्रशस्तभूमौ प्रशस्तदारुमयम् ।
षोडशहस्तोच्छ्रायं दशविपुलं तोरणं कार्यम् ॥ ३ ॥

नगर के ईशान कोण में उत्तम भूमि पर प्रशस्त वृक्ष से सोलह हाथ ऊँचा और दश हाथ चौड़ा एक तोरण बनावे ॥ ३ ॥

शान्ति गृह का लक्षण—

सर्जोदुम्बरशाखाककुभमयं शान्तिसद्म कुशबहुलम् ।
वंशविनिर्मितमत्स्यध्वजचक्रालङ्कृतद्वारम् ॥ ४ ॥

विजयसार, गूलर या अर्जुनवृक्ष की, डालियों से युत तथा बाँसों से रचित मत्स्य, ध्वज और चक्रों से अलंकृत शान्ति गृह बनावे ॥ ४ ॥

घोड़ा आदियों का दीक्षा विधान—

प्रतिसरया तुरगाणां भल्लातकशालिकुष्ठसिद्धार्थान् ।
कण्ठेषु निबध्नीयात्पुष्ट्यर्थं शान्तिगृहगाणाम् ॥ ५ ॥

भिलावा, शाली धान्य, कूठ और श्वेत सरसों को प्रतिसरा (कुङ्कुमरञ्जित या पीले सूत्र) से पुष्टि के लिये शान्ति गृह में स्थित घोड़ों के गले में बाँधे ।

यहाँ पर काश्यप—

शालिवातकसिद्धार्थान् कुष्ठं भल्लातकं तथा। अश्वेषु कण्ठे बध्नीयात् सप्ताहं शान्तिमाचरेत्॥५॥

शान्ति का विधान—

रविवरुणविश्वदेवप्रजेशपुरुहूतवैष्णवैर्मन्त्रैः ।
सप्ताहं शान्तिगृहे कुर्याच्छान्तिं तुरङ्गाणाम् ॥ ६ ॥

शान्तिगृह में सूर्य, वरुण, विश्वेदेव, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु के मन्त्रों से सात, दिन तक घोड़ों की शान्ति करे ।

यहाँ पर काश्यप—

पौष्टिकैर्विविधैर्मन्त्रैः पुरोधा ज्वलनं हुनेत्। हुतान्ते भोजयेद्विप्रान् दक्षिणां विपुलां ददेत् ॥६॥

बाद घोड़ों को क्या करना चाहिये—

अभ्यर्चिता न परुषं वक्तव्या नापि ताडनीयास्ते ।
पुण्याहशङ्खतूर्यध्वनिगीतरवैर्विमुक्तभयाः ॥ ७ ॥

पुण्याहवाचन, शङ्खध्वनि, भेरी की ध्वनि तथा गीत के शब्दों से भय रहित, पूजित घोड़े को डराना और चाबुक आदि से मारना नहीं चाहिये ॥ ७ ॥

सात दिन के बाद क्या करना चाहिये—

प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि कुर्यादुदङ्मुखं तोरणस्य दक्षिणतः ।
कुशचीरावृतमाश्रममग्निं पुरतोऽस्य वेद्यां च ॥ ८ ॥

आठवें दिन तोरण के दक्षिण तरफ आगे स्थित वेदी में कुशा और वृक्ष वल्कल से ढकी हुई अग्नि का स्थापन करे ।

अन्य शास्त्रोक्त वेदी लक्षण—

यज्ञे चतुष्पदिकरा विवाहे वेदी द्विजानां द्विकरप्रमाणा ।
कार्या ततोऽङ्गुलहासक्रमेण राजन्यवैश्यवृषलान्त्यजानाम् ॥

तथा च—

सप्तहस्ता ब्राह्मणानां वेदी यज्ञे प्रकीर्तिता। षट्करा क्षत्रियाणां तु वैश्यानां पञ्च कीर्तिता॥
चतुर्हस्ता तु शूद्राणां विवाहेऽपि विनिश्चिता । अलाभे सर्ववर्गाणां चतुर्हस्ता प्रकीर्तिता ॥
स्वस्थानामतो न्यूना निर्दिष्टा मुनिभिः सदा। अतो न्यूनाधिका वेदी यजमानस्य मृत्युदा ॥

तथा च—

यज्ञे विवाहे वक्ष्यामि वेदिमानं समासतः । त्रिसप्तहस्तविस्तारा ब्राह्मणानां शुभावहा ॥

क्षत्रियाणां पञ्चदशी वैश्यानां नव सम्मिता । सप्तहस्ता तु शूद्राणां शिविरानां पञ्च कीर्तिता ॥
त्रिहस्ता व्यन्तराणां तु वेदी सर्वत्र कीर्तिता । पुरोऽपरोधे मर्त्यानां चातुर्वर्ण्यः प्रकीर्तिता ॥
पञ्च हस्ता कृता वेदी सर्वमाङ्गल्यदायिका ।

पूर्वोक्त परिमाण के शुभाशुभ लक्षण—

वेदीशुभाशुभविधानविधौ प्रदिष्टा दिक्स्थानमानाभ्यधिका न हीना ।
भ्रष्टा प्रमाणेन करोति भंगं दिग्भ्रष्टसंस्था न च सिद्धिदा स्यात् ॥
प्राग्भागहीना नगरस्य नेष्टा पुरोधसो दक्षिणभागवक्रा ।
नरेन्द्रजाया शुभदा परस्यामुदग्दलेशस्य नृपस्य मत्ये ॥

यहाँ पर काश्यप—

अष्टमेऽह्नि पुरस्कृत्य राजा पौरजनैर्वृतः । गच्छेच्छान्तिगृहं हृष्ट सेह्नतूर्यरवैः सह ॥ ८ ॥

सम्भारों का लक्षण—

चन्दनकुष्ठसमङ्गाहरितालमनःशिलाप्रियङ्गुवचाः ।
दन्त्यमृताञ्जनरजनीसुवर्णपुष्प्यग्निमन्थाश्च ॥ ९ ॥
श्वेतां सपूर्णकोशां कटम्भरात्रायमाणसहदेवीः ।
नागकुसुमं स्वगुप्तां शतावरीं सोमराजीं च ॥ १० ॥
कलशेष्वेतान् कृत्वा सम्भारानुपहरेद्बलिं सम्यक् ।
भक्ष्यैर्नानाकारैर्मधुपायसयावकप्रचुरैः ॥ ११ ॥

चन्दन, कूट, मजीठ, हरिताल, मैनशिल, कंगनी (कौन), वच, गुरुच, अंजन, हल्दी, सुवर्णपुष्पी, अग्निमन्था (अरणी), श्वेता (गिरिकर्णी = अपराजिता), पूर्णकोशा, महाश्वेता (उजला गला फल), त्रायमाण (चिरायते का फल), सहदेवी, नाग पुष्प, स्वगुप्ता (वयवांच = कवाछ), शतावरी, सोमवल्ली इन सब ओषधियों को बराबर लेकर पूर्ण कलश में देकर शहद, पायस, और यावकों (कुथियों) से युत अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों के साथ बलि देवे ॥ ९–११ ॥

सम्भारों का और लक्षण—

खादिरपलाशोदुम्बरकाश्मर्यश्वत्थनिर्मिताः समिधः ।
स्रुक्कनकाद्रजताद्वा कर्तव्या भूतिकामेन ॥ १२ ॥

खैर, ढाक, गूलर, गम्भारी और पीपल की लकड़ी की समिधा बनावे। तथा सम्पत्ति की इच्छा करने वाले राजा को सोना या चाँदी की स्रुवा बनानी चाहिये ॥१२॥

बाद में क्या करना चाहिये—

पूर्वाभिमुखः श्रीमान् वैयाघ्रे चर्मणि स्थितो राजा ।
तिष्ठेदनलसमीपे तुरगभिषग्दैवचित्सहितः ॥ १३ ॥

व्याघ्र के चर्म पर पूर्वाभिमुख होकर अग्नि के समीप में घोड़ा, वैद्य और ज्योतिषी के साथ श्रीमान् राजा बैठे ॥ १३ ॥

दैवज्ञ को क्या करना चाहिये—

यात्रायां यदभिहितं ग्रहयज्ञविधौ महेन्द्रकेतौ च।
वेदीपुरोहितानललक्षणमस्मिंस्तदवधार्यम् ॥ १४ ॥

यात्रा नामक पुस्तक के ग्रहयज्ञ विधि में तथा इन्द्रध्वजलक्षणाध्याय में वेदी, पुरोहित और अग्नि के जो लक्षण कहे हैं वह इस नीराजनाध्याय में समझना चाहिये।

यात्रा नामक पुस्तक के ग्रहयज्ञ विधि में—

ग्रहयज्ञमतो वक्ष्ये तत्र निमित्तानि लक्षयेद्वेधाम्। भङ्गो भानोनायां दिग्भ्रष्टायामसिद्धिश्च ॥
नगरपुरोहितदेवीसेनापतिपार्थिवक्षयं कुरुते। प्राग्दक्षिणापरोत्तरमध्यमभागेषु या विकला ॥

यहाँ पर पुरोहित—

कम्पोच्छ्वासविजृम्भणप्रचलनस्वेदाश्रुपातक्षुधोद्गाराद्यं च पुरोधसः स्मृतिविपच्चानिष्टमन्यच्छुभम्।
आज्यं केशपिपीलिकामलयुतं सत्त्वावलीढं च यत् तद्वेद्द शुभमन्ययोपकरणं द्रव्याण्यनूनानि च ॥

उसी प्रकार महेन्द्रकेतु में—

स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिरिति ॥

अग्नि का लक्षण—

उत्थाय स्वयमुज्ज्वलार्चिरनलः स्वाहावसाने हवि-
र्भुङ्क्ते देहसुरभदक्षिणगतिः स्निग्धो महान् संहतः।
निर्धूमः सुरभिः स्फुलिङ्गरहितो यात्रानुलोमो मृदु-
र्मुक्तेन्दीवरकाञ्चनद्युतिधरो वह्निः श्रियं यच्छति ॥
इष्टद्रव्यघटातपत्रतुरगश्रीवृक्षशैलाकृति-
र्मेर्दङ्गोदधिदुन्दुभीभगर्जितध्वनैः पूजितः।
नेष्टः प्रोक्तविपर्यये हुतवहः स्निग्धोऽन्यथापीष्टदः
सप्तेऽङ्गे नृपतेर्देहप्रतिहितः शेषं च लोकाद्वदेत् ॥ १४ ॥

बाद में क्या करना चाहिये—

लक्षणयुक्तं तुरगं द्विरदवरं चैव दीक्षितं स्नातम्।
अहतसिताम्बरगन्धस्रग्धूपाभ्यर्चितं कृत्वा ॥ १५ ॥
आश्रमतोरणमूलं समुपनयेत्सान्त्वयञ्छनैर्वाचा।
वादित्रशङ्खपुण्याहनिःस्वनापूरितदिगन्तम् ॥ १६ ॥

वक्ष्यमाण लक्षणों से युत घोड़ा और हाथी का अक्षत, श्वेत वस्त्र, माला, धूप आदि से पूजन कर अनेक प्रकार के वाद्य और पुण्याह शब्दों से युत अपने आश्रम के समीपस्थित तोरण के पास मधुर वाणियोंसे सान्त्वना देते हुए धीरे धीरे लावे ॥ १५-१६ ॥

घोड़ा और हाथियों की चेष्टा—

यद्यानीतस्तिष्ठेद्दक्षिणचरणं हयः समुत्क्षिप्य।
स जयति तदा नरेन्द्रः शत्रूनचिराद्विना यत्नात् ॥ १७ ॥

अस्यन्नेष्टो राज्ञः परिशेषं चेष्टितं द्विपहयानाम्।
यात्रायां व्याख्यातं तदिह विचिन्त्यं यथायुक्ति॥ १८॥

जिस राजा के द्वारा लाया हुआ घोड़ा दक्षिण चरण उठाकर सदा रहे तो वह राजा शीघ्र बिना परिश्रम शत्रु को जीतता है। यदि घोड़ा डर जाय तो राजा का शुभ नहीं होता। यहाँ घोड़ा का ग्रहण उपलक्षण मात्र है, अतः घोड़े की जगह हाथी को भी लेना चाहिये। हाथी और घोड़े की शेष चेष्टाओं का फल यात्रा नामक ग्रन्थ में जिस प्रकार मैंने कहा है, उसी प्रकार युक्ति पूर्वक यहाँ पर भी विचार करना चाहिये।

बाद में क्या करना चाहिये—

पिण्डमभिमन्त्र्य दद्यात्पुरोहितो वाजिने स यदि जिघ्रेत्।
अश्नीयाद्वा जयकृद्विपरीतोऽतोऽन्यथाभिहितः॥ १९॥

पुरोहित अश्व के पिण्ड को अभिमन्त्रित करके घोड़े को देवे। यदि घोड़ा उस अन्न के पिण्ड को सूँघे या कुछ खा जाय तो राजा की विजय करने वाला, अन्यथा पराजय करने वाला होता है॥ १९॥

नीराजन करने का प्रकार—

कलशोदकेषु शाखामाप्लाव्यौदुम्बरीं स्पृशेत्तुरगान्।
शान्तिकपौष्टिकमन्त्रैरेवं सेनां सनृपनागाम्॥ २०॥

गूलर की एक छोटी सी डाली को कलश के जल में डुबाकर शान्तिक और पौष्टिक मन्त्रों से घोड़ा, राजा, हाथी और सेनाओं को स्पर्श (सिक्त) करे॥ २०॥

बाद में क्या करना चाहिये—

शान्तिं राष्ट्रविवृद्ध्यै कृत्वा भूयोऽभिचारकैर्मन्त्रैः।
मृण्मयमरिं विभिन्द्याच्छूलेनोरःस्थले विप्रः॥ २१॥

फिर ब्राह्मण राष्ट्र की वृद्धि के लिये शान्ति करके अभिचार कर्म में उक्त आथर्वण मन्त्रों को पढ़कर मिट्टी की बनाई हुई शत्रु की मूर्ति के वक्ष स्थल को तीक्ष्ण शूल से फाड़े।

बाद में क्या करना चाहिये—

खलिनं हयाय दद्यादभिमन्त्र्य पुरोहितस्ततो राजा।
आरुह्योदक्पूर्वां यायान्नीराजितः सबलः॥ २२॥

बाद में पुरोहित खलीन (लगाम) को अभिमन्त्रित करके घोड़े के मुख में दे। फिर उस पर नीराजन किया हुआ राजा बैठकर सेनाओं के साथ ईशान कोण में गमन करे॥ २२॥

राजा किस प्रकार गमन करे—

मृदङ्गशङ्खध्वनिहृष्टकुञ्जरस्रवन्मदामोदसुगन्धिमारुतः।
शिरोमणिप्रान्तचलत्प्रभाचयैर्ज्वलन्निवस्थानिव चोपदात्यये॥२३॥

हंसपङ्क्तिभिरितस्ततोऽद्रिराट् सम्पतद्भिरिव शुक्लचामरैः।
मृष्टगन्धपवनानुवाहिभिर्धूयमानरुचिरस्रगम्बरः ॥२४॥
नैकवर्णमणिवज्रभूषितैर्भूषितो मुकुटकुण्डलाङ्गदैः।
भूरिरत्नकिरणानुरञ्जितः शक्रकार्मुकरुचं समुद्वहन् ॥२५॥
उत्पतद्भिरिव खं तुरङ्गमैर्दारयद्भिरिव दन्तिभिर्धराम्।
निर्जितारिभिरिवामरैर्नरैः शक्रवत्परिवृतो व्रजेन्नृपः ॥२६॥

मृदङ्ग और शङ्ख की ध्वनि से हर्षित होकर हाथियों के झरते हुये मद जलों की सुगन्धि से युत वायु वाला (क्योंकि शरद् ऋतु में सुगन्धित वायु चलती है) और मुकुट में जड़ी हुई मणियों के प्रान्त भाग में चलित किरणों से युत शारदीय सूर्य की तरह (क्योंकि शरद् ऋतु में सूर्य तेजस्वी होते हैं) राजा अथवा सुगन्धित वायु को सेवन करने वाले शुक्ल चामरों से कम्पमान सुन्दर माला और वस्त्र वाले मानों हंस पंक्तियों से व्याप्त और सुगन्धि युत वायुओं से युत हिमालय की तरह राजा। अथवा अनेक वर्ण वाले रत्न तथा हीराओं से व्याप्त मुकुट, कुण्डल और बाजू से भूषित होने के कारण इन्द्र धनु की कान्ति धारण किया हुआ राजा। अथवा उड़ते हुये घोड़े, पृथ्वी को विदारण करते हुये हाथी और शत्रु को जीतने वाले मनुष्यों के साथ मानो देवताओं से घिरे हुये इन्द्र के समान राजा गमन करे ॥ २३-२६ ॥

राजा किस प्रकार गमन करे—

सवज्रमुक्ताफलभूषणोऽथवा सितस्रगुष्णीषविलेपनाम्बरः।
धृतातपत्रो गजपृष्ठमाश्रितो घनोपरीवेन्दुतले भृगोः सुतः ॥ २७ ॥

अथवा हीरा, मोती से युत श्वेत माला, श्वेत पगडी, श्वेत चन्दन तथा श्वेत वस्त्रों से युत, छत्रधारी और हाथी पर बैठा हुआ राजा मेघ के ऊपर और चन्द्र के नीचे विराजमान शुक्र की तरह गमन करे। यहाँ मेघ के स्थान में हाथी, चन्द्र के स्थान में छत्र और शुक्र के स्थान में राजा को समझना चाहिये ॥ २७ ॥

सेनाओं की चेष्टा—

सम्प्रहृष्टनरवाजिकुञ्जरं निर्मलप्रहरणांशुभासुरम्।
निर्विकारमरिपक्षभीषणं यस्य सैन्यमचिरात्स गां जयेत् ॥ २८ ॥

जिस राजा के हर्षित मनुष्य, घोड़े और हाथियों से युत, निर्मल खड्ग आदि से प्रकाशमान, विकार रहित और शत्रु के लिये भयावह सेना गण हों वह शीघ्र पृथ्वी को जीतता है ॥ २८ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां नीराजनाध्यायश्चतुश्चत्वारिंशः ॥ ४४ ॥



अथ खञ्जनफलक्षणाध्यायः

इसमें प्रथम आगम प्रदर्शन—

खञ्जनको नामायं यो विहगस्तस्य दर्शने प्रथमे ।
प्रोक्तानि यानि मुनिभिः फलानि तानि प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥

खञ्जन नामक पक्षी के प्रथम दर्शन में गर्ग आदि मुनियों ने जो फल कहे हैं उनको मैं यहाँ पर कहता हूँ ॥ १ ॥

चार प्रकार के खञ्जन और उन का फल—

स्थूलोऽभ्युन्नतकण्ठः कृष्णगलो भद्रकारको भद्रः ।
आकण्ठमुखात्कृष्णः सम्पूर्णः पूरयत्याशाम् ॥ २ ॥
कृष्णो गलेऽस्य बिन्दुः सितकरटान्तः स रिक्तकृद्रिक्तः ।
पीतो गोपीत इति क्लेशकरः खञ्जनो दृष्टः ॥ ३ ॥

स्थूल शरीर वाला, उन्नत और काले गले वाला खञ्जन पक्षी भद्र संज्ञक है, यदि यह दिखाई दे तो शुभ होता है। जिसका मुख से लेकर कण्ठ तक काला हो वह खञ्जन पक्षी सम्पूर्ण संज्ञक है, यह सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करता है। जिसके गले में काली बिन्दी तथा श्वेत कपोल हो वह रिक्त संज्ञक खञ्जन सब शून्य करता है और पीला खञ्जन गोपीत संज्ञक है। यदि यह दिखाई दे तो क्लेश करता है।

यहाँ पर काश्यप—

स्थूलोऽभ्युन्नतकण्ठो यो भद्रः कृष्णगलः स्मृतः । कृष्णमूर्धा गलान्तं यः स सम्पूर्ण इति स्मृतः ॥
करटान्तौ सितौ यस्य कृष्णो बिन्दुर्गले तथा । स रिक्त इति निर्दिष्टः पीतो गोपीतकः स्मृतः ॥
नामानुरूपेण फलं विहगानां विनिर्दिशेत् ॥ २-३ ॥

स्थान के वश खञ्जन दर्शन का फल—

अथ मधुरसुरभिफलकुसुमतरुषु सलिलाशयेषु पुण्येषु ।
करितुरगभुजगमूर्ध्नि प्रासादोद्यानहर्म्येषु ॥ ४ ॥
गोगोष्ठसत्समागमयज्ञोत्सवपार्थिवद्विजसमीपे ।
हस्तितुरङ्गमशालाच्छत्रध्वजचामराद्येषु ॥ ५ ॥
हेमसमीपसिताम्बरकमलोत्पलपूजितोपलिप्तेषु ।
दधिपात्रधान्यकूटेषु च श्रियं खञ्जनः कुरुते ॥ ६ ॥

मधुर तथा सुगन्ध युत फल और फूलों से युत वृक्ष पर, पवित्र जलाशय में हाथी घोड़ा या सर्पों के मस्तक पर, देवालय फुलवाड़ी या कोठे पर, गाय, गोठ, सज्जनों के समागम स्थान, यज्ञ, विवाह आदि उत्सव स्थान, राजा या ब्राह्मणों के समीप, हाथी, घोड़ा, छत्र, ध्वजा, चामर आदि पर, सुवर्ण के समीप, कमल, नील

कमल, पूजित और लिपे हुये स्थान पर, दही के पात्र या धान्य के ढेर पर खञ्जन पक्षी दिखाई दे तो देखने वाले का शुभ होता है ॥ ४–६ ॥

स्थान के वश और खञ्जन दर्शन का फल—

पङ्के स्वाद्वन्नाप्तिर्गोरससम्पच्च गोमयोपगते।
शाद्वलगे वस्त्राप्तिः शकटस्थे देशविभ्रंशः ॥ ७ ॥
गृहपटलेऽर्थभ्रंशो वध्रे बन्धोऽशुचौ भवति रोगः।
पृष्ठे त्वजाविकानां प्रियसङ्गममावहत्याशु ॥ ८ ॥

यदि कीचड में बैठा हुआ खञ्जन दिखाई दे तो स्वादिष्ट भोजन मिलता है। गोबर पर दिखाई दे तो दूध, दही, घृत काफी मिलता है। दूब पर दिखाई दे तो वस्त्र लाभ होता है और गाडी पर दिखाई दे तो देश का नाश होता है। घर की छत पर खञ्जन दिखाई दे तो धन का नाश, चमडे की बनी हुई छेद वाली वस्तु पर दिखाई दे तो बन्धन, अपवित्र स्थान में दिखाई दे तो रोग, छाग या भेड़ के उपर दिखाई दे तो बहुत जल्दी मित्र समागम होता है ॥ ७–८ ॥

खञ्जन दर्शन के अशुभ स्थान—

महिषोष्ट्रगर्दभास्थिश्मशानगृहकोणशर्कराट्टस्थः।
प्राकारभस्मकेशेषु चाशुभो मरणरुग्भयदः ॥ ९ ॥

भैंस, ऊंट, गदहा, श्मशान, घर का कोना, मिट्टी का ढेला, अटारी, घेरे की दीवाल, भस्म और केश पर यदि खञ्जन दिखाई दे तो मरण और रोग भय रूप अशुभ फल होता है ॥ ९ ॥

खञ्जन दर्शन का शुभाशुभ फल—

पक्षौ धुन्वन्नशुभः शुभः पिबन् वारि निम्नगासंस्थः।
सूर्योदये प्रशस्तो नेष्टफलः खञ्जनोऽस्तमये ॥ १० ॥

दोनों पंखों को हिलाता हुआ खञ्जन दिखाई दे तो शुभ नहीं है। नदी में (कोई कोई 'वारिवाहस्थः=पानी वाले प्रदेश में' ऐसा पाठ मानते हैं) पानी पीता हुआ दिखाई दे तो शुभ होता है। यदि सूर्योदय काल में खञ्जन दिखाई दे तो शुभ और अस्त काल में अशुभ फल देने वाला होता है ॥ १० ॥

खञ्जन दर्शन से राजा का शुभाशुभ फल—

नीराजने निवृत्ते यया दिशा खञ्जनं नृपो यान्तम्।
पश्येत्तया गतस्य क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति ॥ ११ ॥

नीराजन करने के बाद राजा जिस दिशा में जाते हुये खञ्जन को देखे उस दिशा में गमन करने से शत्रु शीघ्र वश में हो जाता है ॥ ११ ॥

खात के ऊपर विश्राम का प्रदर्शन—

तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेति यस्मिन्
यस्मिंस्तु छर्दयति तत्र तलेऽस्ति काचम् ।
अङ्गारमप्युपदिशन्ति पुरीषणेऽस्य
तत्कौतुकापनयनाय खनेद्धरित्रीम् ॥ १२ ॥

जिस स्थान पर खञ्जन मैथुन करता है उस के नीचे निधि (खजाना), जहां पर वमन करता है उस के नीचे कांच और जहां पर टट्टी करता है उस के नीचे कोयला होता है। इस कौतुक को हटाने के लिये (परीक्षा के लिए) वहां की पृथ्वी खोदे।

यहाँ पर काश्यप—

मैथुनं कुरुते यत्र तत्र वै निधिमादिशेत् । भुक्त छर्दयते यत्र तत्र काचमधो भवेत् ।
पुरीषं यत्र कुरुते तत्राङ्गार विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

और शुभाशुभ फल—

मृतविकलविभिन्नरोगितः स्वतनुसमानफलप्रदः खगः ।
धनकृदभिनिलीयमानको वियति च बन्धुसमागमप्रदः ॥१३॥

यदि मरा हुआ खञ्जन दिखाई दे तो देखने वाले की मृत्यु, विकल दिखाई दे तो देखने वाले को वैकल्य और हण दिखाई दे तो देखने वाले को रोग होता है। यदि सम्मुख में होकर घर में प्रवेश करता हुआ दिखाई दे तो धन करने वाला और आकाश में उड़ता हुआ दिखाई दे तो बन्धु समागम होता है ॥ १३ ॥

शुभ खञ्जन दर्शन के बाद विधान—

नृपतिरपि शुभं शुभप्रदेशे खगमवलोक्य महीतले विदध्यात् ।
सुरभिकुसुमधूपयुक्तमर्घं शुभमभिनन्दितमेवमेति वृद्धिम् ॥ १४ ॥

राजा शुभ प्रदेश में शुभ लक्षण युत खञ्जन पक्षी को भी देखकर सुगन्ध युत पुष्प और धूप युत अर्घ देवें। इस तरह करने से सम्मानित शुभ फल की वृद्धि होती है ॥१४॥

अशुभ खञ्जन देखने के बाद विधान—

अशुभमपि विलोक्य खञ्जनं द्विजगुरुसाधुसुरार्चने रतः ।
न नृपतिरशुभं समाप्नुयान्न यदि दिनानि च सप्त मांसभुक् ॥ १५ ॥

अशुभ फल देने वाले खञ्जन को भी देख कर राजा यदि ब्राह्मण, गुरु, सज्जन और देवताओं के पूजन में निरत हो जाय तो अशुभ फल नहीं पाता है। परन्तु यदि सात दिन तक मांस भोजन न करे तब ॥ १५ ॥

फल होने की अवधि—

आवर्षात्प्रथमे दर्शने फलं प्रतिदिनं तु दिनशेषात् ।
दिक्स्थानमूर्त्तिलग्नर्क्षशान्तदीप्तादिभिश्चोह्यम् ॥ १६ ॥

खञ्जन के प्रथम दर्शन का फल एक वर्ष में होता है। बाद प्रति दिन दर्शन का फल उसी दिन होता है। दिशा, स्थान, शरीराकृति, लग्न, नक्षत्र, शान्त और दीप्त दिशा आदि के अनुसार शुभाशुभ देख कर अपनी बुद्धि से फल कहना चाहिये।

यहाँ पर काश्यप—

प्रथमे दर्शने पाकमाब्दर्थात् भवदेद्बुधः। प्रतिदैवसिके वाच्यं दर्शनेऽस्तनये फलम्॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां खञ्जनकलक्षणाध्यायः पञ्चचत्वारिंशः॥ ४५॥



अथोत्पाताध्यायः

आगमस्थ वस्तु का प्रदर्शन—

यानत्रेरुत्पातान् गर्गः प्रोवाच तानहं वक्ष्ये।
तेषां सङ्क्षेपोऽयं प्रकृतेरन्यत्वमुत्पातः॥ १॥

महर्षि गर्ग ने जिन उत्पातों का वर्णन अत्रिजी के सामने किया था, उन्हीं का संक्षेप रूप यहाँ है।

समास संहिता में—

यः प्रकृतिविपर्यासः सर्वः सङ्क्षेपतः स उत्पातः।
क्षितिगगनदिव्यजातो यथोत्तरं गुरुतरो भवति॥ १॥

उत्पात होने का कारण—

अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसञ्चयाद्भवति।
संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्त उत्पाताः॥ २॥

मनुष्यों के अविनय से पाप इकट्ठे होते हैं, उन पापों से उपद्रव होते हैं। दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम उत्पात उन उपद्रवों को सूचित करते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

अतिलोभादसत्याद्वा नास्तिक्याद्वाप्यधर्मतः। नरापचारान्नियतमुपसर्गः प्रवर्तते॥ २॥

उत्पात होने में और कारण—

मनुजानामपचारादपरक्ता देवताः सृजन्त्येतान्।
तत्प्रतिघाताय नृपः शान्तिं राष्ट्रे प्रयुञ्जीत॥ ३॥

मनुष्यों के अविनय से अप्रसन्न देवता गण उन उत्पातों को उत्पन्न करते हैं। उनके निवारण के लिये राजा शान्ति करावे।

यहाँ पर गर्ग—

ततोऽपचारो मर्त्यानामपरज्यन्ति देवताः।
ते सृजन्त्यद्भुतान् भावान् दिव्यभूम्यन्तरिक्षजान्॥
त एव सर्वलोकानामुत्पाता देवनिर्मिताः। विचरन्ति विनाशाय रूपैः सम्बोधयन्ति च॥

तान् शास्त्रनिर्गमाद्विप्राः पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा । प्रवदन्ति तु मर्त्येषु हितार्थं श्रद्धयान्विताः ॥
ते तु सम्बोधिता विप्रैः शान्त्यये मङ्गलानि च । श्रद्दधाना प्रकुर्वन्ति न ते यान्ति पराभवम् ॥
ये तु न प्रतिकुर्वन्ति क्रियामश्रद्धयान्विताः । नास्तिक्याद्यथवा कोपाद्विनश्यन्त्यथवाऽचिरात् ॥

दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम उत्पातों का लक्षण—

दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः ।
गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदान्तरिक्षं तत् ॥ ४ ॥
भौमं चरस्थिरभवं तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति ।
नाभसमुपैति मृदुतां शाम्यति नो दिव्यमित्येके ॥ ५ ॥

सूर्य आदि ग्रह और नक्षत्रों के विकार युत होने का नाम दिव्य, उल्का, निर्घात, विकार युत वायु, सूर्य चन्द्र का परिवेष, गन्धर्व नगर, इन्द्र धनुष, आदि (रोहत, ऐरावत, दण्ड और परिघ) से हुये उत्पातों का नाम आन्तरिक्ष, चलायमान वस्तु के स्थिर और स्थिर के चलायमान होने का नाम भौम उत्पात है। यह भौम उत्पात शान्ति से आहत होकर नष्ट हो जाता है, आन्तरिक्ष उत्पात शान्ति से कम हो जाता है और दिव्य उत्पात शान्ति से भी नष्ट नहीं होता। यह किसी आचार्य का मत है।

यहाँ पर गर्ग—

स्वर्भानुकेतुनक्षत्रग्रहताराार्कजेन्द्रजम् । दिवि चोत्पद्यते यच्च तद्दिव्यमिति कीर्तितम्
वाय्वभ्रसन्ध्यादिग्दाहपरिवेषतमांसि च । खपुरं चैन्द्रचापं च तद्दिव्यादन्तरिक्षजम्
भूमावुत्पद्यते यच्च स्थावरं वाथ जङ्गमम् । तदेकदैशिकं भौममुत्पातं परिकीर्तितम् ॥

समाससंहिता में—

दिव्यं ग्रहर्क्षजातं भुवि भौमं स्थिरचरोद्भवं यच्च । दिग्दाहोल्कापतनं परिवेषाद्यं वियत्प्रभवम् ॥

यहाँ पर कश्यप—

भौमं शान्तिहतं नाशमुपगच्छति मार्दवम् । नाभसं च शमं याति दिव्यमुत्पातदर्शनम् ॥

अपने मत का प्रदर्शन—

दिव्यमपि शममुपैति प्रभूतकनकान्नगोमहीदानैः ।
रुद्रायतने भूमौ गोदोहात् कोटिहोमाच्च ॥ ६ ॥

अधिक सुवर्ण, अन्न, गाय और पृथ्वी दान करने से दिव्य उत्पात भी शान्त हो जाता है, आन्तरिक्ष और भौम की बात ही क्या। अर्थात् वे दोनों तो शान्त होते ही हैं। तथा शिवालय में भूमि पर गोदोहन और कोटि संख्यक हवन से दिव्य उत्पात शान्त हो जाता है ॥ ६ ॥

दैव उत्पात के फल का स्थान—

आत्मसुतकोशवाहनपुरदारपुरोहितेषु लोके च ।
पाकमुपयाति दैवं परिकल्पितमष्टधा नृपतेः ॥ ७ ॥

अपना शरीर, पुत्र, खज़ाना, वाहन, नगर, स्त्री, पुरोहित, जनपद इन आठों में राजा दैव-कल्पित उत्पातों का फल पाता है।

यहाँ पर गर्ग—

पुरे जनपदे कोशे वाहनेऽथ पुरोहिते । पुत्रेष्वात्मनि भार्येषु पच्यते दैवमष्टधा ॥ ७ ॥

अथ लिङ्गवैकृतम्—

उत्पातों का प्रदर्शन—

अनिमित्तभङ्गचलनस्वेदाश्रुनिपातजल्पनाद्यानि ।
लिङ्गार्चायतनानां नाशाय नरेशदेशानाम् ॥ ८ ॥

शिवलिङ्ग, देव मूर्ति, और देव स्थानों का बिना कारण फटना, कम्पन होना, उनमें पसीना आना, उनका रोना, गिरना, उनमें शब्द होना आदि (उनका वमन करना और खिसकना) राजा और देश के नाश के लिये होता है।

यहाँ पर गर्ग—

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति वा । मुहुर्नुदन्ति रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति वा ॥
उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति पतन्ति वा । कूजन्ति विक्षिपन्ते च गात्रप्रहरणध्वजान् ॥
अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति वा ।
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम् ॥
प्रसर्पन्ति च जल्पन्ति वा चेष्टन्ते श्वसन्ति वा । समन्ता यत्र दृश्यन्ते गात्रैर्वापि विचेष्टिते ॥ ८ ॥

उत्पातों का प्रदर्शन—

दैवतयात्राशकटाक्षचक्रयुगकेतुभङ्गपतनानि ।
सम्पर्यासनसादनसङ्गाश्च न देशनृपशुभदाः ॥ ९ ॥

देव स्थानों में यात्रा के समय गाड़ी की धुरी, पहिया, युग (जुआ) या ध्वजा का भङ्ग होना, गिरना, उलटना, सादन या कहीं पर चिपट जाना देश और राजा के लिये शुभकारी नहीं हैं ॥ ९ ॥

विकृतवस्तु द्वारा फल प्रदर्शन—

ऋषिधर्मपितृब्रह्मप्रोद्भूतं वैकृतं द्विजातीनाम् ।
यद्रुद्रलोकपालोद्भूतं पशूनामनिष्टं तद् ॥ १० ॥
गुरुसितशनैश्चरोत्थं पुरोधसां विष्णुजं च लोकानाम् ।
स्कन्दविशाखसमुत्थं माण्डलिकानां नरेन्द्राणाम् ॥ ११ ॥
वेदव्यासे मन्त्रिणि विनायके वैकृतं चमूनाथे ।
धातरि सविश्वकर्मणि लोकाभावाय निर्दिष्टम् ॥ १२ ॥
देवकुमारकुमारीवनिताप्रेष्येषु वैकृतं यत्स्यात् ।
तन्नरपतेः कुमारककुमारिकास्त्रीपरिजनानाम् ॥ १३ ॥

रक्षःपिशाचगुह्यकनागानामेवमेव निर्दिष्टम् ।
मासैश्चाप्यष्टाभिः सर्वेषामेव फलपाकः ॥ १४ ॥

मुनि, धर्म, पिता और ब्रह्मा में उत्पन्न विकृति ब्राह्मणों को, महादेव और लोकपालों (इन्द्र आदियों) में उत्पन्न विकृति पशुओं को, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर में उत्पन्न विकृति पुरोहितों को, विष्णु में उत्पन्न विकृति मनुष्यों को, कार्तिकेय और विशाख देव में उत्पन्न विकृति मण्डलाधिप राजाओं को, वेदव्यास में उत्पन्न विकृति मन्त्री को, गणेश में उत्पन्न विकृति सेनापति को, ब्रह्मा और विश्वकर्मा में उत्पन्न विकृति मनुष्यों को, देव कुमारों में उत्पन्न विकृति राजकुमारों को, देवकुमारी में उत्पन्न विकृति राजकुमारियों को, देवाङ्गनाओं में उत्पन्न विकृति राजपत्नियों को, देवताओं के दास में उत्पन्न विकृति राजाओं के सेवकों को, इसी प्रकार राक्षसों में उत्पन्न विकृति राजकुमारों को, पिशाचों में उत्पन्न विकृति राजकुमारियों को, यक्षों में उत्पन्न विकृति राजपत्नियों को और नागों में उत्पन्न विकृति राजसेवकों को अशुभ फल देने वाली होती है। इन उत्पातों का फल आठ महीने में होता है ॥ १०–१४ ॥

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

बुद्ध्वा देवविकारं शुचिः पुरोधास्त्र्यहोषितः स्नातः ।
स्नानकुसुमानुलेपनवस्त्रैरभ्यर्चयेत्प्रतिमाम् ॥ १५ ॥
मधुपर्केण पुरोधा भक्ष्यैर्बलिभिश्च विधिवदुपतिष्ठेत् ।
स्थालीपाकं जुहुयाद्विधिवन्मन्त्रैश्च तल्लिङ्गैः ॥ १६ ॥

देवता में विकृति जानकर पवित्र, संयत, स्नान किया हुआ, तीन दिन तक व्रती पुरोहित विकार युक्त देवताओं का स्नान, पुष्प, चन्दन, वस्त्र, दही मिला हुआ भोजन पदार्थ और बलियों से विधिपूर्वक पूजन करे। तथा स्थालीपाक (चरु) का उस देवता का मन्त्र पढ़कर अग्नि में हवन करे ॥ १५–१६ ॥

काल प्रमाण और शान्ति का प्रभाव—

इति विबुधविकारे शान्तयः सप्तरात्रं
द्विजविबुधगणार्चा गीतनृत्योत्सवाश्च ।
विधिवदवनिपालैर्यैः प्रयुक्ता न तेषां
भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रुद्धः ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त देवविकार होने पर राजा सात रात्रि तक ब्राह्मण और देवताओं की पूजा, गीत, नृत्य, रात्रि जागरण आदि उत्सव करे। इस प्रकार जिन राजाओं से किया जाता है उनको पूर्वोक्त शान्ति और दक्षिणा से रुद्ध उत्पात का अनिष्ट फल नहीं होता।

इति लिङ्गवैकृतम् ।

अथाग्निवैकृतम्—

और उत्पात—

राष्ट्रे यस्यानग्निः प्रदीप्यते दीप्यते च नेन्धनवान्।
मनुजेश्वरस्य पीडा तस्य च राष्ट्रस्य विज्ञेया॥ १८॥

जिस राजा के राज्य में बिना अग्नि की ज्वाला दिखाई दे और काष्ठ युत अग्नि प्रज्वलित न हो तो उस राजा और देश को पीडा होती है॥ १८॥

उत्पातों का लक्षण और फल—

जलमांसार्द्रज्वलने नृपतिवधः प्रहरणे रणो रौद्रः।
सैन्यग्रामपुरेषु च नाशो वह्नेर्भयं कुरुते॥ १९॥

जल, मांस और गीली वस्तु में अकारण ज्वलन पैदा हो तो राजा की मृत्यु, मन्त्र आदि में ज्वलन पैदा हो तो भयंकर युद्ध और सेनाओं या नगर में अग्नि नहीं मिले तो अग्नि का भय होता है॥ १९॥

अन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

प्रासादभवनतोरणकेत्वादिष्वनलेन दग्धेषु।
तडिता वा षण्मासात् परचक्रस्यागमो नियमात्॥ २०॥

प्रासाद (देव गृह), घर, तोरण या ध्वज अग्नि के बिना या बिजली से दग्ध हो जायें तो छै मास बाद निश्चय दूसरे राजा की सेनाओं का आगम होता है॥ २०॥

फिर अन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

धूमोऽनग्निसमुत्थो रजस्तमश्चाह्निजं महाभयदम्।
व्यभ्रे निश्युडुनाशो दर्शनमपि चाह्नि दोषकरम्॥ २१॥

अग्नि के बिना धूम अथवा दिन में धूली या अन्धकार दिखाई दे तो अधिक भय होता है। तथा रात्रि के समय मेघ रहित आकाश में नक्षत्रों का अदर्शन और दिन में दर्शन हो तो अधिक भयकारी होता है।

यहाँ पर गर्ग—

अनिशानि तमांसि स्युर्यदि वा पांशवो रजः। धूमश्चानग्निना यत्र तत्र विन्द्यान्महद्भयम्॥

फिर अन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

नगरचतुष्पादण्डजमनुजानां भयकरं ज्वलनमाहुः।
धूमाग्निविस्फुलिङ्गैः शय्याम्बरकेशगैर्मृत्युः॥ २२॥

नगर, पशु, पक्षी या मनुष्यों में अग्नि के बिना ज्वलन पैदा हो तो अधिक भयकारी होता है। शय्या, वस्त्र या केशों में धूम, अग्नि की ज्वाला या अग्नि की चिनगारियाँ दिखाई दें तो स्वामी की मृत्यु होती है।

यहाँ पर गर्ग—

शयनासनयानेषु केशप्रावरणेषु च। दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गा वा धूमो वा मरणाय तत्॥२२॥

फिर अन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

आयुधज्वलनसर्पणस्वनाः कोशनिर्गमनवेपनानि वा ।
वैकृतानि यदि वायुधेऽपराण्याशु रौद्ररणसङ्कुलं वदेत् ॥ २३ ॥

खड्गादियों में जलन पैदा होना, उनका चलायमान होना, उनमें शब्द होना, उनका म्यान से निकल आना अथवा शस्त्र में अन्य किसी प्रकार का विकार पैदा होना ये सब शीघ्र राज्य में भयङ्कर संग्राम करते हैं ॥ २३ ॥

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

मन्त्रैराग्नेयैः क्षीरवृक्षात्समिद्भिर्होतव्योऽग्निः सर्षपैः सर्पिषा च ।
अग्न्यादीनां वैकृते शान्तिरेवं देयं चास्मिन् काञ्चनं ब्राह्मणेभ्यः ॥

(इसी अध्याय के १८ वें श्लोक से लेकर यहाँ तक अग्नि विकार जनित जो अशुभ फल कहे हैं उनकी शान्ति के लिये) आक की लकड़ी, सरसों और घृत से अग्नि में हवन करना चाहिये। इस तरह अशुभ फल की शान्ति होती है। इस उत्पात में ब्राह्मणों को सुवर्ण दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २४ ॥

इत्यग्निवैकृतम् ।

अथ वृक्षवैकृतम्—

वृक्ष वैकृत जन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

शाखाभङ्गेऽकस्माद्वृक्षाणां निर्दिशेद्रणोद्योगम् ।
हसने देशभ्रंशं रुदिते च व्याधिबाहुल्यम् ॥ २५ ॥

अचानक वृक्ष की शाखा टूट जाने से युद्ध की तैयारियाँ, वृक्षों के हँसने से देश का नाश और वृक्षों के रोने से व्याधि की अधिकता होती है ॥ २५ ॥

फिर उत्पातों का लक्षण और फल—

राष्ट्रविभेदस्त्वनृतौ बालवधोऽतीव कुसुमिते बाले ।
वृक्षात् क्षीरस्रावे सर्वद्रव्यक्षयो भवति ॥ २६ ॥

ऋतु वर्जित काल में वृक्षों में पुष्प और फलों की उत्पत्ति होने से राज्य में विभेद, छोटे वृक्ष में बहुत पुष्प आने से बालकों का नाश और वृक्षों से दूध निकलने पर द्रव्यों का नाश होता है।

यहाँ पर गर्ग—

स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमनार्तवम् । बालानां मरणं कुर्याद्बालानां फलपुष्पजम् ॥ २६ ॥

फिर उत्पातों का लक्षण और फल—

मद्ये वाहननाशः सङ्ग्रामः शोणिते मधुनि रोगः ।
स्नेहे दुर्भिक्षभयं महद्भयं निःसृते सलिले ॥ २७ ॥

वृक्ष से मद्य निकलने पर वाहनों (अश्वादिकों) का नाश, रक्त निकलने पर युद्ध, शहद निकलने पर रोग, तेल निकलने पर दुर्भिक्ष का भय और वृक्ष से जल निकलने पर अधिक भय होता है ॥ २७ ॥

फिर उत्पातों का लक्षण और फल—

शुष्कविरोहे वीर्यान्नसङ्क्षयः शोषणे च विरुजानाम्।
पतितानामुत्थाने स्वयं भयं दैवजनितं च ॥ २८ ॥

सूखे हुये वृक्षों में विरोह (पुनः अङ्कुर) होने से बल और अन्न का नाश तथा गिरे हुये वृक्षों के अपने आप उठने से दैव जनित भय होता है ॥ २८ ॥

फिर उत्पातों का लक्षण और फल—

पूजितवृक्षे ह्यनृतौ कुसुमफलं नृपवधाय निर्दिष्टम्।
धूमस्तस्मिन् ज्वालाऽथवा भवेन्नृपवधायैव ॥ २९ ॥

प्रधान वृक्ष में पुष्प और फलों की उत्पत्ति राजा के नाश के लिए और उस (प्रधान वृक्ष) पर धूप या अग्नि की ज्वाला भी राजा के नाश के लिये होती है ॥२९॥

फिर उत्पातों का लक्षण और फल—

सर्पत्सु तरुषु जल्पत्सु वापि जनसङ्क्षयो विनिर्दिष्टः।
वृक्षाणां वैकृत्ये दशभिर्मासैः फलविपाकः ॥ ३० ॥

वृक्षों को चलने या उनसे किसी प्रकार के शब्द निकलने पर मनुष्यों का नाश होता है। सब वृक्षों के विकार जन्य फल दश मास में पकते हैं ॥ ३० ॥

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

स्रग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य छत्रं विधायोपरि पादपस्य।
कृत्वा शिवं रुद्रजपोऽत्र कार्यो रुद्रेभ्य इत्यत्र षडेव होमा ॥ ३१ ॥
पायसेन मधुनापि भोजयेद्ब्राह्मणान् घृतयुतेन भूपतिः।
मेदिनी निगदितात्र दक्षिणा वैकृते तरुकृते हितार्थिभिः ॥ ३२ ॥

इस उत्पात में सुगन्ध द्रव्य, धूप और वस्त्रों से पूजित विकार युत वृक्ष के ऊपर छत्र रख कर एकादश रुद्रों के मन्त्रों का जप करे, 'रुद्रेभ्यः स्वाहा' इस मन्त्र से केवल छः बार हवन करे, घृत युत पायस से ब्राह्मणों को भोजन करावे और इस वृक्ष विकार जन्य उत्पात में प्राणियों के हित चिन्तक मुनियों ने दक्षिणा में पृथ्वी देने को कहा है ॥ ३१–३२ ॥ इति वृक्षवैकृतम्।

अथ सस्यवैकृतम्—

सस्य जन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

नालेऽब्जयवादीनामेकस्मिन् द्वित्रिसम्भवो मरणम्।
कथयति तदधिपतीनां यमलं जातं च कुसुमफलम् ॥ ३३ ॥

कमल, जौ आदि (गहूँ और धानी) के एक नाल में दो या तीन बाल की उत्पत्ति हो तो क्षेत्र के अधिपति का मरण होता है। तथा यमल पुष्प या फलों की उत्पत्ति हो तो भी उस के अधिपति का मरण होता है ॥ ३३ ॥

फिर अन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

अतिवृद्धिः सस्यानां नानाफलकुसुमसम्भवो वृक्षे ।
भवति हि यद्येकस्मिन् परचक्रस्यागमो नियमात् ॥ ३४ ॥

यदि धान्यों की अधिक वृद्धि तथा एक वृक्ष में अनेक प्रकार के फल और पुष्पों की उत्पत्ति हो तो निश्चय पर चक्र का आगम होता है ॥ ३४ ॥

फिर अन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

अर्धेन यदा तैलं भवति तिलानामतैलता वा स्यात् ।
अन्नस्य च वैरस्यं तदा तु विन्द्याद्भयं सुमहत् ॥ ३५ ॥

यदि तिल के परिमाण से आधे तेल का परिमाण हो या तिल से बिल्कुल तेल नहीं निकलता हो और अन्न में विरसता मालुम हो तो अति भय होता है ॥३५॥

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

विकृतकुसुमं फलं वा ग्रामादथवा पुराद्बहिः कार्यम् ।
सौम्योऽत्र चरुः कार्यो निर्वाप्यो वा पशुः शान्त्यै ॥ ३६ ॥
सस्ये च दृष्टा विकृतिं प्रदेयं तत्क्षेत्रमेव प्रथमं द्विजेभ्यः ।
तस्यैव मध्ये चरुमत्र भौमं कृत्वा न दोषं समुपैति तज्जम् ॥ ३७ ॥

विकार युत पुष्प और फलों को गाँव से बाहर कर देना चाहिये तथा सोम देव की चरु बनावे और शान्ति के लिये बकरा भी दान करना चाहिये। धान्यों में पूर्वोक्त विकार देख कर पहले उस क्षेत्र को ही ब्राह्मण के लिये दे देना चाहिये और उसी क्षेत्र के मध्य में पार्थिव चरु बनाने से भूमि से उत्पन्न दोष स्वामी को नहीं होता है ॥ ३६-३७ ॥

इति सस्यवैकृतम् ।

अथ वृष्टिवैकृतम्—

वृष्टि सम्बन्धी उत्पात का लक्षण और फल—

दुर्भिक्षमनावृष्टावतिवृष्टौ क्षुद्भयं परभयं च ।
रोगो ह्यनृतुभवायां नृपतिवधोऽनभ्रजातायाम् ॥ ३८ ॥

अनावृष्टि हो तो दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि हो तो दुर्भिक्ष तथा शत्रु भय, वर्षा ऋतु से भिन्न ऋतु में वृष्टि हो तो रोग और बिना मेघ की वृष्टि हो तो राजा की मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥

ऋतु सम्बन्धी उत्पात का लक्षण और फल—

शीतोष्णाविपर्यासो नो सम्यगृतुषु च सम्प्रवृत्तेषु ।
षण्मासाद्राष्ट्रभयं रोगभयं दैवजनितं च ॥ ३९ ॥

शीत और उष्ण में व्यत्यय होने से अर्थात् गर्मी के समय में ठण्डी और ठण्ड के समय में गर्मी के पड़ने से तथा जिस ऋतु का जो धर्म है वह ठीक २ नहीं होने से छै मास बाद राष्ट्र-भय और दैव-जनित (पूर्व-जन्मार्जित पाप के द्वारा) रोग-भय होता है ॥ ३९ ॥

वृष्टि सम्बन्धी उत्पात का लक्षण और फल—

अन्यर्त्तौ सप्ताहं प्रबन्धवर्षे प्रधाननृपमरणम्।
रक्ते शस्त्रोद्योगो मांसास्थिवसादिभिर्मरकः ॥ ४० ॥
धान्यहिरण्यत्वक्फलकुसुमाद्यैर्वर्षितैर्भयं विन्द्यात्।
अङ्गारपांसुवर्षे विनाशमायाति तन्नगरम् ॥ ४१ ॥

वर्षा से भिन्न ऋतु में लगातार एक सप्ताह तक वृष्टि होने पर प्रधान राजा का मरण, रक्त की वृष्टि होने पर युद्ध और मांस, हड्डी, वसा आदि (घृत और तेल) की वृष्टि होने पर मरी (मरकी) पड़ती है। धान्य, सोना, वृक्ष की छाल, फल, पुष्प, आदि (पत्र आदि) की वृष्टि हो तो भय, कोयले और धूली की वृष्टि हो तो नगर का नाश होता है ॥ ४०—४१ ॥

वृष्टि सम्बन्धी उत्पात का लक्षण—

उपला विना जलधरैर्विकृता वा प्राणिनो यदा वृष्टाः।
छिद्रं वाप्यतिवृष्टौ सस्यानामीतिसञ्जननम् ॥ ४२ ॥

यदि मेघ के विना ओलों की वृष्टि, विकार युत प्राणियों की वृष्टि या अतिवृष्टि होने भी कहीं कहीं पर छिद्र (अवृष्टि) हो तो धान्यों को ईति (अति वृष्टि आदि) का भय होता है ॥ ४२ ॥

वृष्टि सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

क्षीरघृतक्षौद्राणां दध्नो रुधिरोष्णवारिणां वर्षे।
देशविनाशो ज्ञेयोऽसृग्वर्षे चापि नृपयुद्धम् ॥ ४३ ॥

दूध, घी, शहद, रुधिर या गर्म जल की वृष्टि हो तो देश का नाश और रक्त की वृष्टि हो तो राजाओं में युद्ध होता है। (यह श्लोक अन्य पुस्तकों में नहीं है) ॥४३॥

छाया सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

यद्यमलेऽर्के छाया न दृश्यते दृश्यते प्रतीपा वा।
देशस्य तदा सुमहद्भयमायातं विनिर्देश्यम् ॥ ४४ ॥

निर्मल सूर्य किरण होने पर भी यदि वृक्ष आदि द्रव्यों की छाया नहीं दिखाई या उल्टी दिखाई दे तो देश में अति भय उत्पन्न होता है ॥ ४४ ॥

इन्द्र धनुष सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

व्यभ्रे नभसीन्द्रधनुर्दिवा यदा दृश्यतेऽथवा रात्रौ।

प्राच्यामपरस्यां वा तदा भवेत्क्षुद्भयं सुमहत् ॥ ४५ ॥

मेघ रहित आकाश में दिन या रात्रि में इन्द्र धनुष पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई दे तो अत्यन्त दुर्भिक्ष होता है ॥ ४५ ॥

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां यागः स्मृतो वृष्टिविकारकाले ।
धान्यान्नगोकाञ्चनदक्षिणाश्च देयास्ततः शान्तिमुपैति पापम् ॥४६॥

सूर्य, चन्द्रमा, मेघ और वायु के विकार-जन्य उत्पात के समय यज्ञ करना चाहिये। तथा शाली धान्य, भोज्यान्न, गाय और सोना की दक्षिणा ब्राह्मणों को देनी चाहिये। तब पाप की शान्ति होती है ॥ ४६ ॥

इति वृष्टिवैकृतम् ।

अथ जलवैकृतम् ।

नदी सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

अपसर्पणं नदीनां नगरादचिरेण शून्यतां कुरुते ।
शोषश्चाशोष्याणामन्येषां वा ह्रदादीनाम् ॥ ४७ ॥
स्नेहासृङ्मांसवहाः सङ्कुलकलुषाः प्रतीपगाश्चापि ।
परचक्रस्यागमनं नद्यः कथयन्ति षण्मासात् ॥ ४८ ॥

यदि नगर के मध्य या पास में बहती हुई नदियाँ दूर चली जाँय या नहीं सूखने वाले ह्रद आदि सूख जाँय तो शीघ्र प्राणियों से शून्य नगर हो जाता है। यदि नदियों में तेल, रुधिर या मांस बहने लगें या स्वच्छ और मलिन जल हो जाय तो छ मास बाद परचक्र का आगम होता है ॥ ४७–४८ ॥

कूप सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

ज्वालाधूमक्राथारुदितोत्क्रुष्टानि चैव कूपानाम् ।
गीतप्रजल्पितानि च जनमरकायोपदिष्टानि ॥ ४९ ॥

कूप में अग्नि की ज्वाला, धूआँ, जल का खौलना, रोने का शब्द, गीत या और किसी प्रकार के शब्द लोगों के मृत्यु के लिये होते हैं ॥ ४९ ॥

जलाशय सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

सलिलोत्पत्तिरखाते गन्धरसविपर्यये च तोयानाम् ।
सलिलाशयविकृतौ वा महद्भयं तत्र शान्तिमिमाम् ॥ ५० ॥

बिना खोदी हुई जमीन में जल निकलना, जल की गन्ध और रसों में विपर्यय होना तथा जलाशयों में विकार पैदा होना अधिक भय करने वाला होता है। इस की शान्ति का प्रकार आगे कहते हैं ॥ ५० ॥

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

सलिलविकारे कुर्यात्पूजां वरुणस्य वारुणैर्मन्त्रैः ।
तैरेव च जपहोमं शममेवं पापमुपयाति ॥ ५१ ॥

जल विकार होने पर वरुण के मन्त्रों से पूजा, जप और हवन करे। इस तरह करने से अशुभ फल का निवारण हो जाता है ॥ ५१ ॥

इति जलवैकृतम् ।

अथ प्रसववैकृतम् ।

प्रसव सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

प्रसवविकारे स्त्रीणां द्वित्रिचतुः प्रभृतिसम्प्रसूतौ वा ।
हीनातिरिक्तकाले च देशकुलसङ्क्षयो भवति ॥ ५२ ॥

स्त्रियों को किसी प्रकार का प्रसव विकार (घोड़ा, हाथी, बैल, सर्प आदि जन्तु की तरह जातक) होने पर, अथवा एक साथ दो, तीन, चार आदि बच्चे होने पर, वा प्रसवकाल (तत्कालमिन्दुसहितो द्विरसांशको य इत्यादि से निर्णीतकाल) से पहले या पीछे प्रसव होने पर देश और कुल का नाश होता है ॥ ५२ ॥

पशु के प्रसव सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

वडवोष्ट्रमहिषगोहस्तिनीषु यमलोद्भवे मरणमेषाम् ।
षण्मासात् सूतिफलं शान्त्यै श्लोकौ च गर्गोक्तौ ॥ ५३ ॥

घोड़ी, ऊँटनी, भैंस, गाय और हथिनी को एक साथ दो बच्चे हों तो उन (घोड़ा आदि) का नाश होता है। छै मास बाद प्रसव विकार का फल होता है। इसकी शान्ति के लिये आगे गर्गोक्त दो श्लोक दिये गये है।

यहाँ पर गर्ग—

अकाले प्रसवे चैव कालातीतेऽथवा पुनः । असंख्याजनने चैव युग्मस्य प्रसवे तथा ॥
अमानुषाणि काण्डानि सञ्जातव्यञ्जनानि वा । अनङ्गा ह्यधिकाङ्गा वा हीनाङ्गाः सम्भवन्ति वा ॥
विमुखाः पक्षिसंदृशास्तथार्धपुरुषाश्च वा । विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ॥
अप्राप्तवयसे गर्भे द्वौ चतुष्पात् त्रयोऽपि वा । अस्तुषा विनताश्चापि प्रजायन्तेऽनयो भवेत् ॥
वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते। विजन्यं विकृतं वापि षड्भिर्मासैर्नृपक्षयः ॥५३॥

प्रसव शान्ति का गर्गोक्त प्रकार—

नार्यः परस्य विषये त्यक्तव्यास्ता हितार्थिना ।
तर्पयेच्च द्विजान् कामैः शान्तिं चैवात्र कारयेत् ॥ ५४ ॥
चतुष्पदाः स्वयूथ्यैस्त्यक्तव्याः परभूमिषु ।
नगरं स्वामिनं यूथमन्यथा तु विनाशयेत् ॥ ५५ ॥

अपना हित चाहने वाला मनुष्य विकार युत स्त्रियों को अन्य देश में जाकर छोड़ आवे, इच्छानुसार ब्राह्मणों को प्रसन्न करे और इस उत्पात की शान्ति भी करे। विकार

युत चतुष्पदों को समूह से अलग अन्य स्थान पर जाकर छोड़ आवे। अन्यथा नगर, नगर के स्वामी और समूह का नाश करता है ॥ ५४–५५ ॥

इति प्रसववैकृतम्।

अथ चतुष्पदवैकृतम्—

चतुष्पद सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

परयोनावभिगमनं भवति तिरश्चामसाधु धेनूनाम्।
उक्षाणो वान्योन्यं पिबतिश्वा-वा, सुरभिपुत्रम् ॥ ५६ ॥
मासत्रयेण विन्द्यात्तस्मिन्निःसंशयं परागमनम्।
तत्प्रतिघातायैतौ श्लोकौ गर्गेण निर्दिष्टौ ॥ ५७ ॥

एक जाति के पशु दूसरे जाति के पशु के साथ मैथुन करें, गाय या बैल परस्पर एक दूसरे का स्तन पीवें तो तीन मास बाद निःसंशय पर चक्र का आगम होता है। इसके निवारण के लिये आगे गर्गोक्त दो श्लोक हैं।

यहाँ पर गर्ग—

वियोनिषु यदा यान्ति मिश्रीभावः प्रजायते। खरोष्ट्रहयमातङ्गा मनुष्या वा न साधु तत् ॥
अकालसत्ता दृश्यन्ते काले च विमदा यदि। मातङ्गोष्ट्रहयश्वानः पक्षिणो वा न साधु तत् ॥
धेनुं धेनुः पिबेद्यत्रानुड्वान ह्यनड्डुत्तथा। श्वा वा पिबेद्धेनुमथ धेनुः श्वानमथापि वा।
श्रातेषु त्रिषु मासेषु परचक्रागमं वदेत् ॥ ५६–५७ ॥

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

त्यागो विवासनं दानं तत्तस्याशु शुभं भवेत्।
तर्पयेद्ब्राह्मणांश्चात्र जपहोमांश्च कारयेत् ॥ ५८ ॥
स्थालीपाकेन धातारं पशुना च पुरोहितः।
प्राजापत्येन मन्त्रेण यजेद्बह्वन्नदक्षिणम् ॥ ५९ ॥

विकार युत पशुओं को छोड़ देने से या दूसरी जगह कर देने से शीघ्र चतुष्पद जन्य उत्पातों की शान्ति हो जाती है। इस उत्पात में ब्राह्मणों को सन्तुष्ट, जप और हवन करे। तथा चरू, पशु, प्राजापत्य मन्त्रों से ब्रह्मा का यज्ञ करे। और बहुत अन्न की दक्षिणा देवे ॥ ५८–५९ ॥

इति चतुष्पदवैकृतम्।

अथ वायव्यवैकृतम्—

वायव्य उत्पातों का लक्षण और फल—

यानं वाहवियुक्तं यदि गच्छेन्न व्रजेच वाह्ययुक्तम्।
राष्ट्रभयं भवति तदा चक्राणां सादभङ्गे च ॥ ६० ॥

यदि अश्व आदि वाहन, वाह (सवार) से अलग होकर भागे, सवार के साथ नहीं चले, और रथ का पहिया जमीन में गड़ जाय या टूट जाय तो राष्ट्र को भय होता है ॥

वाद्य सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

गीतरवतूर्यशब्दा नभसि यदा वा चरस्थिरान्यत्वम् ।
मृत्युस्तदा गदा वा विस्वरतूर्ये पराभिभवः ॥ ६१॥

यदि आकाश में गीत या तुरही का शब्द सुनाई पड़े या स्थिर पदार्थ चर और चर पदार्थ स्थिर दिखाई दे तो मरण और रोग होता है । अथवा तुरही बजने से विकार युत शब्द हो तो शत्रुओं से पराजय होती है ॥ ६१ ॥

तुरही के शब्द-जन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

अनभिहततूर्यनादः शब्दो वा ताडितेषु यदि न स्यात् ।
व्युत्पत्तौ वा तेषां परागमो नृपतिमरणं वा ॥ ६२ ॥

यदि बिना बजाये तुरही से शब्द होवे और बजाने से शब्द न निकले या अनेक प्रकार के शब्द निकले तो शत्रु सेनाओं का आगमन और राजा का मरण होता है ॥६२॥

गृह सामग्री आदि जन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

गोलाङ्गलयोः सङ्गे दर्वीशूर्पाद्युपस्करविकारे ।
क्रोष्टुकनादे च तथा शस्त्रभयं मुनिवचश्चेदम् ॥ ६३ ॥

बैल और हल का अचानक संयोग हो जाने, दर्वी (चमचा=करछुल), शूर्प (सूप=छाज), आदि गृह सामग्री में विकार उत्पन्न होने और शृगाल (गीदड़) के विकार युत शब्द होने से भय होता है, यह मुनि का वचन है ॥ ६३ ॥

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

वायव्येष्वेषु नृपतिर्वायुं शक्तुभिरर्चयेत् ।
आवायोरिति पञ्चर्चो जप्तव्याः प्रयतैर्द्विजैः ॥ ६४ ॥
ब्राह्मणान् परमान्नेन दक्षिणाभिश्च तर्पयेत् ।
बह्वन्नदक्षिणा होमाः कर्तव्याश्च प्रयत्नतः ॥ ६५ ॥

इन पूर्वोक्त वायव्य विकारों में सत्तू (सतुआ) से वायु देवता की पूजा करे। नियम युत होकर ब्राह्मण 'आवायो.' इत्यादि पाँच ऋचाओं का जप करे । पायस से ब्राह्मणों को तृप्त करे और प्रयत्न पूर्वक बहुत अन्न की दक्षिणा देकर हवन करे ॥६४-६५॥

इति वायव्यवैकृतम् ।

अथ मृगपक्ष्यादिवैकृतम् ।

पशु पक्षी आदि जन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

पुरपक्षिणो वनचरा वन्या वा निर्भया विशन्ति पुरम् ।
नक्तं वा दिवसचराः क्षपाचरा वा चरन्त्यहनि ॥ ६६ ॥
सन्ध्याद्वयेऽपि मण्डलमावघ्नन्तो मृगा विहङ्गा वा ।
दीप्तायां दिश्येयथवा क्रोशन्तः संहता भयदाः ॥ ६७ ॥

यदि नगर में रहने वाले पक्षी वन में और वन में रहने वाले पक्षी निर्भय होकर नगर में प्रवेश करें। या दिन में चलने वाले पक्षी रात्रि में, और रात्रि में चलने वाले पक्षी दिन में चलें। एवं सूर्य के उदय और अस्त समय में वन में रहने वाले पशु और पक्षी सूर्याभिमुख होकर मण्डल बाँधकर बैठें या सब इकट्ठे होकर अधिक शब्द करते हुये दिखाई दें तो भय देने वाले होते हैं॥ ६६-६७॥

श्येन पक्षी आदि जन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

श्येनाः प्ररुदन्त इव द्वारे क्रोशन्ति जम्बुका दीप्ताः।
प्रविशेन्नरेन्द्रभवने कपोतकः कौशिको यदि वा॥ ६८॥

यदि श्येन (बाज) अधिक रोते हुये की तरह दिखाई दे, सूर्य की तरफ मुख कर के शृगाल (गीदड़) पुरद्वार पर शब्द करे तथा राजभवन में कबूतर या उल्लू प्रवेश करे तो भय देने वाला होता है। कहीं कहीं पर श्यान की जगह श्वानः पाठ मिलता है।

यहाँ पर गर्ग—

श्येनगृध्रबलाकाश्च वामना मुण्डधारिणः। शब्दायन्त इवात्यर्थं प्रदीप्ताः सहशो यदि॥
रुदन्ति विविधं यत्र तदेवाशु विनश्यति। वल्मीकमं कपोता वा प्रविशन्ति वसन्ति वा॥
राजवेश्मन्युलूका वा तच्छून्यमचिराद्भवेत्॥ ६८॥

मुर्गा आदि पक्षी जन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

कुक्कुटरुतं प्रदोषे हेमन्तादौ च कोकिलालापाः।
प्रतिलोममण्डलचराः श्येनाद्याश्चाम्बरे भयदाः॥ ६९॥
गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु च पक्षिसङ्घसम्पातः।
मधुवल्मीकाम्भोरुहसमुद्भवश्चापि नाशाय॥ ७०॥

यदि प्रदोष समय में मुर्गा और हेमन्त ऋतु के आदि में कोयल बोलें तथा आकाश में बाज आदि माँस भक्षण करने वाले पक्षी वृत्ताकार मार्ग में प्रदक्षिण क्रम से चलें तो भय देने वाले होते हैं। घर, प्रधान वृक्ष, तोरण (पुरद्वार) या गृहद्वार पर पक्षियों के समुदाय गिरें तथा इन्हीं घर आदि पर मधु (शहद) का छत्ता, वल्मीक (बमई) और कमलों की उत्पत्ति नाश के लिये होती है॥ ६९-७०॥

कुत्ता आदि पशु-जन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

श्वभिरस्थिशवावयवप्रवेशनं मन्दिरेषु मरकाय।
पशुशस्त्रव्याहारे नृपमृत्युर्मुनिवचश्चेदम्॥ ७१॥

यदि कुत्ते हड्डी या शव के कोई अङ्ग घर में ले आवें तो मरी पड़ती है, तथा पशु या शस्त्र मनुष्य की तरह बोलें तो राजा की मृत्यु होती है, ऐसा मुनियों का वचन है।

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमान् सदक्षिणान्।

देवाः कपोत इति च जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः ॥ ७२ ॥
सुदेवा इति चैकेन देया गावः सदक्षिणाः ।
जपेच्छाकुनसूक्तं वा मनो वेदशिरांसि च ॥ ७३ ॥

मृग और पक्षियों में पूर्वोक्त विकार होने पर दक्षिणा के साथ हवन करे, पाँच ब्राह्मणों के द्वारा 'देवाः कपोत' इत्यादि मन्त्र का तथा एक ब्राह्मण के द्वारा 'सुदेवा' इत्यादि मन्त्र का जप करावे, दक्षिणा के साथ गोदान करे और शाकुन सूक्त या वेदशिरांसि इत्यादि मन्त्र का जप करे ॥ ७२-७३ ॥

इति मृगपक्ष्यादिवैकृतम् ।

अथ शक्रध्वजचन्द्रकीलकादिवैकृतम् ।

इन्द्रध्वज सम्बन्धी उत्पातों का लक्षण और फल—

शक्रध्वजेन्द्रकीलस्तम्भद्वारप्रपातभङ्गेषु ।
तद्वत्कपाटतोरणकेतूनां नरपतेर्मरणम् ॥ ७४ ॥

इन्द्रध्वज, इन्द्रकील और स्तम्भद्वार के गिरने या टूटने से तथा कपाट, तोरण और ध्वज के गिरने या टूटने से राजा का मरण होता है ॥ ७४ ॥

अकस्मात् तेज आदि उत्पातों के लक्षण और फल—

सन्ध्याद्वयस्य दीप्तिर्धूमोत्पत्तिश्च काननेऽनग्नौ ।
छिद्राभावे भूमेर्दरणं कम्पश्च भयकारी ॥ ७५ ॥

दोनों सन्ध्याओं में तेज का होना, वन या अग्नि रहित स्थान में धूम की उत्पत्ति होना, छिद्राभाव वाली भूमि का फट जाना या कम्पन होना भयकारी होता है ॥७५॥

राजा के व्यवहार से देश का नाश—

पाखण्डानां नास्तिकानां च भक्तः साध्वाचारप्रोज्झितः क्रोधशीलः ।
ईर्ष्युः क्रूरो विग्रहासक्तचेता यस्मिन् राजा तस्य देशस्य नाशः ॥७६॥

जिस देश में पाखण्डी और नास्तिक मनुष्यों का भक्त, सज्जनों के आचरणों से रहित, क्रोधी, परछिद्रान्वेषी, खल तथा सदा युद्ध की इच्छा रखने वाला राजा हो उस देश का नाश होता है ॥ ७६ ॥

बालकों की चेष्टा जन्य उत्पातों का फल—

प्रहर हर छिन्द्धि भिन्द्धीत्यायुधकाष्ठाश्मपाणयो बालाः ।
निगदन्तः प्रहरन्ते तत्रापि भयं भवत्याशु ॥७७॥

जिस स्थान पर शस्त्र, काठ (छड़ी आदि) और पत्थर हाथ में लेकर मारो, छीन लो, काटो, तोड़ डालो इत्यादि कहते हुये बालक गण एक दूसरे के ऊपर प्रहार करें तो वहाँ शीघ्र भय होता है ।

यहाँ पर पराशर—

यदि धनुरसिकाष्ठलोष्टहस्ता पुरशिशवो रणवासमाचरन्ति ।
प्रहरहरजहीत्युदारहन्ते भयमचिरात्तुमुलं निवेदयन्ति ॥ ७७ ॥

गृहस्वामी के चित्रजन्य उत्पातों का फल—

अङ्गारगैरिकाद्यैर्विकृतप्रेताभिलेखनं यस्मिन् ।
नायकचित्रितमथवा क्षये क्षयं याति नचिरेण ॥ ७८ ॥

जिस घर के दीवाल पर कोयले, गेरू आदि (पीले और नीले) रङ्गों से विकृत मृत पुरुषों के चित्र बनाये जायँ या कोयले आदि से बनाये हुये गृहस्वामी के चित्र दिखाई दें तो वह घर शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ७८ ॥

गृह विकार जन्य उत्पातों का लक्षण और फल—

लूतापटाङ्कशबलं न सन्ध्ययोः पूजितं कलहयुक्तम् ।
नित्योच्छिष्टस्त्रीकं च यद्गृहं तत् क्षयं याति ॥ ७९ ॥

जो घर मकरियों के जाल से व्याप्त हो, दोनों सन्ध्याओं में देवादि के पूजन से रहित हो, प्रतिदिन कलह युत हो और अपवित्र स्त्रियों से युत हो उसका नाश हो जाता है ॥ ७९ ॥

राक्षस दर्शन का फल—

दृष्टेषु यातुधानेषु निर्दिशेन्मरकमाशु सम्प्राप्तम् ।
प्रतिघाताय तेषां गर्गः शान्तिं चकारेमाम् ॥ ८० ॥

यदि प्रत्यक्ष में राक्षस दिखाई दे तो बहुत शीघ्र मरी पड़ती है। इन पूर्वोक्त उत्पातों के नाश के लिये गर्ग मुनि ने आगे कथित प्रकार की तरह शान्ति कही है।

पूर्वोक्त उत्पातों का शान्ति प्रकार—

महाशान्त्योऽथ बलयो भोज्यानि सुमहान्ति च ।
कारयेत महेन्द्रं च माहेन्द्रीं च समर्चयेत् ॥ ८१ ॥

पूर्वोक्त उत्पातों की अधिक शान्ति करनी चाहिये। बलि और अधिक भोज्य करना चाहिये। तथा इन्द्र और इन्द्राणी का अधिक पूजन करना चाहिये ॥ ८१ ॥

इति शक्रध्वजेन्द्रकीलादिवैकृतम् ॥

फल रहित उत्पातों का काल—

नरपतिदेशविनाशे केतोरुदयेऽथवा ग्रहेऽर्केन्द्वोः ।
उत्पातानां प्रभवः स्वर्तुभवश्चाप्यदोषाय ॥ ८२ ॥

राजा के विनाश, देश के ऊपर आपत्ति, केतु के उदय और सूर्य, चन्द्र के ग्रहण के समय उत्पन्न उत्पात तथा आगे कथित की तरह अपने ऋतु में उत्पन्न उत्पात दोष के लिये नहीं होते हैं ॥ ८२ ॥

—ऋतु स्वभाव से उत्पन्न उत्पात—

ये च न दोषान् जनयन्त्युत्पातास्तानृतुस्वभावकृतान् ।
ऋषिपुत्रकृतैः श्लोकैर्विद्यादेतैः समासोक्तैः ॥ ८३ ॥

जो उत्पात ऋतु स्वभाव जनित दोष को नहीं पैदा करता है संक्षेप में कहे हुये ऋषिपुत्र कृत आगे कथित पद्यों के द्वारा उनको जानना चाहिये ॥ ८३ ॥

वसन्त में स्वाभाविक उत्पात—

वज्राशनिमहीकम्पसन्ध्यानिर्घातनिःस्वनाः ।
परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमयोदयाः ॥ ८४ ॥
द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेहबहुपुष्पफलोद्गमाः ।
गोपक्षिमदवृद्धिश्च शिवाय मधुमाधवे ॥ ८५ ॥

वज्र (बिजली), अशनि (पत्थरों की वर्षा या उल्कापात), भूकम्प, दीप्ता सन्ध्या, निर्घात, शब्द, सूर्य-चन्द्र का परिवेष, धूली, धूम, रक्त वर्ण के रवि का उदयास्त, वृक्षों से भोजन, मधुरादि रस और तेल आदि की उत्पत्ति, गाय और पक्षियों में काम की वृद्धि ये सब उत्पात चैत्र और वैशाख में कल्याण के लिये होते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में स्वाभाविक उत्पात—

तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम् ।
अनग्निज्वलनस्फोटधूमरेण्वनिलाहतम् ॥ ८६ ॥
रक्तपद्मारुणा सन्ध्या नभः क्षुब्धार्णवोपमम् ।
सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत् ॥ ८७ ॥

सदा उल्कापात से मलिन आकाश, सूर्य-चन्द्र के पीले मण्डल, अग्नि के बिना ज्वाला का शब्द, धूप, धूली और वायु से आहत रक्तकमल की तरह लोहित वर्ण की सन्ध्या, तरङ्ग युत समुद्र की तरह आकाश, नदियों में जल का सूखना ये सब उत्पात, ग्रीष्म (ज्येष्ठ और आषाढ़) में शुभ होते हैं ॥ ८६-८७ ॥

वर्षा ऋतु में स्वाभाविक उत्पात—

शक्रायुधपरीवेषविद्युच्छुष्कविरोहणम् ।
कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं रसनं दरणं क्षितेः ॥ ८८ ॥
सरोनद्युदपानानां वृद्धयूर्ध्वतरणप्लवाः ।
सरणं चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम् ॥ ८९ ॥

इन्द्र धनुष, सूर्य चन्द्र का परिवेष, बिजली और सूखे वृक्षों में अङ्कुर निकलना, पृथ्वी का काँपना, उलटना, स्वरूप बदलना, शब्द करना, फटना, सरोवरों का बढ़ जाना, नदियों का ऊपर आना, वापी, कूप, तालाब आदि में अधिक जल होना, पर्वत और गृहों का चलायमान होना, ये सब उत्पात वर्षा ऋतु में शुभ हैं ॥ ८८-८९ ॥

शरद् ऋतु में स्वाभाविक उत्पात—

दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम् ।
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं च दिवाऽम्बरे ॥ ९० ॥
गीतवादित्रनिर्घोषा वनपर्वतसानुषु ।
सस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि स्मृताः ॥ ९१ ॥

दिव्य स्त्री, गन्धर्व, रथ तथा आश्चर्य करने वाली वस्तुओं का दर्शन, दिन के समय ग्रह नक्षत्र आदि का दर्शन, वन तथा पर्वतों में गीत और वाद्यों की ध्वनि, धान्य की वृद्धि और जल की हानि ये सब शरद् ऋतु में अपाप (शुभ) हैं ॥९०–९१॥

हेमन्त ऋतु में स्वाभाविक उत्पात—

शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् ।
रक्षोयक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥ ९२ ॥
दिशो धूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्वताः ।
उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ॥ ९३ ॥

वायु तथा तुषार (बर्फ) में ठण्ढापन, मृग और पक्षियों का शब्द, राक्षस, यक्ष आदि प्राणियों का दर्शन, मनुष्य के बिना वाणी, अन्धकार युत आकाश, वन, पर्वत और दिशा तथा उच्च में सूर्य का उदयास्त होना ये सब हेमन्त में शुभ हैं ॥९२–९३॥

शिशिर ऋतु में स्वाभाविक उत्पात—

हिमपातानिलोत्पाता विरूपाद्भुतदर्शनम् ।
कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम् ॥ ९४ ॥
चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु ।
पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥ ९५ ॥

हिमपात, वायु सम्बन्धी उत्पात, भयानक प्राणियों का आश्चर्य करने वाला दर्शन, काले अञ्जन की तरह रात और उल्कापात से पीला आकाश, स्त्रियों के गर्भ से नाना प्रकार के (घोड़ा आदि के अङ्ग सदृश) प्राणियों की उत्पत्ति, गाय, बकरी, घोड़ा, मृग और पक्षियों के गर्भ से विजातीय प्राणियों की उत्पत्ति, पत्र, लता और अङ्कुरों में विकार ये सब शिशिर ऋतु में शुभ होते हैं ॥ ९४-९५ ॥

यहाँ पर विशेष—

ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्तौ शुभप्रदाः ।
ऋतोरन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्ते चातिदारुणाः ॥ ९६ ॥

ये ऋतु स्वभाव जनित उत्पात अपने ऋतु में शुभ फल देने वाले होते हैं। पर अन्य ऋतु में दिखाई दें तो अति कष्ट देने वाले होते हैं ॥ ९६ ॥

सत्य बोलने वाले प्राणी—

उन्मत्तानां च या गाथाः शिशूनां यच्च भाषितम्।
स्त्रियो यच्च प्रभाषन्ते तस्य नास्ति व्यतिक्रमः॥ ९७॥

पागलों की गाथा (गीत आदि), बालकों का वचन और स्त्रियों की वाणी का उल्लंघन नहीं होता अर्थात् जो बोलते हैं, सब सत्य होते हैं॥ ९७॥

सत्य वाणी बोलने में कारण—

पूर्वं चरति देवेषु पश्चाच्चरति मानुषान्।
नाचोदिता वाग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती॥ ९८॥

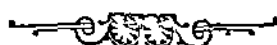
बिना प्रेरणा के नहीं बोलने वाली यह सत्य रूप सरस्वती पहले देवताओं में विचरण करती थी, बाद मनुष्यों को प्राप्त हुई॥ ९८॥

उत्पात शास्त्र को जानने वालों का प्रभाव—

उत्पातान् गणितविवर्जितोऽपि बुद्ध्वा विख्यातो भवति नरेन्द्रवल्लभश्च।
एतच्चन्मुनिवचनं रहस्यमुक्तं यज्ज्ञात्वा भवति नरस्त्रिकालदर्शी॥९९॥

गणित को नहीं जानने वाले मनुष्य भी पूर्वोक्त उत्पातों को जान कर यशस्वी और राजा के प्रिय होते हैं। यह मुनि का वचन गोपनीय कहा गया है, जिसको जान कर मनुष्य त्रिकालदर्शी होता है॥ ९९॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामुत्पाताध्यायः षट्चत्वारिंशः॥ ४६॥



अथ मयूरचित्रकाध्यायः

यहाँ पर पुनः मयूरचित्रक लिखने के सम्बन्ध में कारण—

दिव्यान्तरिक्षाश्रयमुक्तमादौ मया फलं शस्तमशोभनं च।
प्रायेण चारेषु समागमेषु युद्धेषु मार्गादिषु विस्तरेण॥ १॥

भूयो वाराहमिहिरस्य न युक्तमेतत्
कर्तुं समासकृदसाविति तस्य दोषः।
तज्ज्ञैर्न वाच्यमिदमुक्तफलानुगीति
यद्बर्हिचित्रकमिति प्रथितं वराङ्गम्॥ २॥

स्वरूपमेव तस्य तत्प्रकीर्तितानुकीर्तनम्।
ब्रवीम्यहं न चेदिदं तथाऽपि मेऽत्र वाच्यता॥ ३॥

पहले चार (चन्द्रग्रह समागम), युद्ध, मार्ग (शुक्रचार) और आदि (मण्डल)

में दिव्य तथा आन्तरिक्ष के आश्रय वश शुभाशुभ फल विस्तारपूर्वक मैंने (वाराहमिहिर ने) कहे हैं, फिर उसी फल प्रसङ्ग को लेकर यहाँ कहना संक्षेप करने वाले वाराहमिहिर के लिये ठीक नहीं है। क्योंकि विस्तार करना उनका दोष है। पर यहाँ पुनरुक्त दोष है, ऐसा पण्डितों को नहीं कहना चाहिये। अतः यह बर्हिचित्रक नामक प्रकरण संहिता का प्रसिद्ध अङ्ग है। पुनरुक्त फल होने से ही इस मयूरचित्रक का ठीक स्वरूप ज्ञात होगा, अर्थात् पूर्वफल कथन के अतिरिक्त पुनः यहाँ पर मयूरचित्रक का सम्बन्ध लेकर उसी फल का वर्णन कर देना ही उसका स्वरूप है अतः फिर नहीं कहने से भी मेरी निन्दा होगी ॥ १–३ ॥

ग्रहचारोक्त फल—

उत्तरवीथिगता द्युतिमन्तः क्षेमसुभिक्षशिवाय समस्ताः।
दक्षिणमार्गगता द्युतिहीनाः क्षुद्भयतस्करमृत्युकरास्ते ॥ ४ ॥

यदि प्रकाश युत होकर ग्रह उत्तर वीथियों (नाग, गज और ऐरावत संज्ञक वीथी) में गमन करें तो क्षेम, सुभिक्ष और कल्याण के लिये होते हैं। यदि प्रकाश हीन होकर दक्षिण मार्ग (मृग, अज और दहन संज्ञक वीथी) में गमन करें तो दुर्भिक्ष, चोरभय और मृत्यु को करते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

वर्णवन्तः स्वमार्गस्था नागवीथीविचारिणः। यदि ताराग्रहाः सन्ति सर्वलोकहितावहाः॥
वैश्वानरपथप्राप्ता एकनक्षत्रचारिणः। पञ्चताराग्रहाश्चैवदुर्भिक्षाशोकरस्य सङ्क्षयम् ॥ ४ ॥

शुक्र और गुरु के संचार वश फल—

कोष्ठागारगते भृगुपुत्रे पुष्यस्थे च गिरामधिपे ।
निर्वैराः क्षितिपाः सुखभाजः संहृष्टाश्च जना गतरोगाः ॥ ५ ॥

यदि कोष्ठागार (मघा नक्षत्र) में शुक्र और पुष्य नक्षत्र में बृहस्पति स्थित हो तो राजा लोग पारस्परिक द्वेष रहित और सुखी होते हैं तथा प्रजागण प्रसन्न और रोगरहित होते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

कोष्ठागारगते शुक्रे पुष्यस्थे च बृहस्पतौ। विन्द्यात्तदा सुखं लोके शान्तशस्त्रमनामयम् ॥५॥

चन्द्र आदि ग्रहों के संचार वश फल—

पीडयन्ति यदि कृत्तिकां मघां रोहिणीं श्रवणमैन्द्रमेव वा ।
प्रोज्झ्य सूर्यमपरे ग्रहास्तदा पश्चिमा दिगनयेन पीड्यते ॥ ६ ॥

यदि सूर्य को छोड़ कर अन्य (चन्द्रादि) ग्रह कृत्तिका, मघा, रोहिणी, श्रवण या ज्येष्ठा नक्षत्र को पीड़ित (दक्षिण मार्ग में गमन या योगतारा के भेदन से पीड़ित) करते हों तो अन्याय से पश्चिम दिशा पीड़ित होती है।

यहाँ पर गर्ग का वचन—

वैष्णवं पित्र्यमाग्नेयं ज्येष्ठामपि च रोहिणीम्। पीडयन्ति यदैतानि राहुपश्चात्तुचारिणः ॥

दुर्भिक्षं जायते लोके सस्यमन्नं न रोहति। शुष्यन्ति सरितः सर्वाः पर्जन्यश्च न वर्षति॥

चन्द्र आदि ग्रहों के संचार वश और फल—

प्राच्यां चेद्ध्वजवदवस्थिता दिनान्ते
प्राच्यानां भवति हि विग्रहो नृपाणाम्।
मध्ये चेद्भवति हि मध्यदेशपीडा
रूक्षैस्तैर्न तु रुचिमन्मयूखवद्भिः॥ ७॥

यदि संध्या समय में चन्द्र आदि ग्रह ध्वज की तरह पूर्व दिशा में दिखाई दें तो पूर्व दिशा में स्थित राजाओं में परस्पर विग्रह होता है। तथा आकाश मध्य में स्थित हों तो मध्य देश में पीड़ा होती है। पर इन चन्द्र आदि ग्रहों के रूखे रहने पर ही यह फल होता है, यदि निर्मल सुन्दर किरण वाले हों तो नहीं अर्थात् पूर्व दिशा या मध्य देश को पीडित नहीं करते हैं॥ ७॥

चन्द्र आदि ग्रहों के संचार वश और फल—

दक्षिणां ककुभमाश्रितैस्तु तैर्दक्षिणापथपयोमुचां क्षयः।
हीनरूक्षतनुभिश्च विग्रहः स्थूलदेहकिरणान्वितैः शुभम्॥ ८॥

यदि चन्द्र आदि ग्रह दक्षिण दिशा में स्थित हों तो दक्षिण दिशा में मेघों का नाश करते हैं। यदि ये ग्रह अल्प बिम्ब वाले और रूक्ष हों तो विग्रह तथा स्थूल बिम्ब वाले किरण युक्त हों तो शुभ होता है॥ ८॥

चन्द्र आदि ग्रहों के संचार वश और फल—

उत्तरमार्गे स्पष्टमयूखाः शान्तिकरास्ते तन्नृपतीनाम्।
ह्रस्वशरीरा भस्मसवर्णा दोषकराः स्युर्देशनृपाणाम्॥ ९॥

यदि चन्द्र आदि ग्रह स्पष्ट किरण वाले होकर उत्तर मार्ग में स्थित हों तो उत्तर दिशा में स्थित राजाओं में शान्ति करने वाले होते हैं। यदि अल्प बिम्ब वाले या भस्म के समान वर्ण वाले हों तो उस दिशा में स्थित राजाओं में दोष उत्पन्न करने वाले होते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

उत्तरोत्तरमार्गस्था रश्मिमालाधरा ग्रहाः। विष्पन्दन्त इवात्यर्थं जयमाहुरुपस्थितम्॥ ९॥

ग्रह और नक्षत्र बिम्बों के वश फल—

नक्षत्राणां तारकाः सग्रहाणां धूमज्वालाविस्फुलिङ्गान्विताश्चेत्।
आलोके वा निर्निमित्तं न यान्ति याति ध्वंसं सर्वलोकः सभूपः॥ १०॥

यदि ग्रह और नक्षत्रों के तारे धूम ज्वाला या अग्नि कणों से व्याप्त या बिना कारण प्रकाश रहित दिखाई दें तो उस देश में (ग्रह भक्ति या कूर्म विभाग में कथित उस ग्रह या नक्षत्र के देश में) स्थित राजा के साथ सब प्रजाओं का नाश होता है॥ १०॥

दो तीन आदि चन्द्र और सूर्य के दर्शन का फल—

दिवि भाति यदा तुहिनांशुयुगं द्विजवृद्धिरतीव तदाशु शुभा ।
तदनन्तरवर्णरणोऽर्कयुगे जगतः प्रलयस्त्रिचतुष्प्रभृति ॥११॥

जिस समय आकाश में दो चन्द्रमा दिखाई दें उस समय शीघ्र ब्राह्मणों की वृद्धि और शुभ होता है। यदि दो सूर्य दिखाई दें तो क्षत्रियों में संग्राम होता है, तथा तीन-चार आदि सूर्य दिखाई दें तो संसार का नाश होता है।

यहाँ पर गर्ग—

द्विचन्द्रं गगनं दृष्ट्वा विन्द्याद्ब्रह्मसमुत्थितम् । द्वौ वा सूर्यौ यदा स्यातां तदा क्षत्रं विरुध्यति॥
दृष्ट्वा त्रिचतुरः सूर्यानुदितान् सर्वतो दिशम् । शस्त्रेण जनमारेण तद्युगान्तरदर्शनम् ॥११॥

केतु के संचार वश फल—

मुनीनभिजितं ध्रुवं मघवतश्च भं संस्पृशन्
शिखी घनविनाशकृत् कुशलकर्महा शोकदः ।
भुजङ्गमथ संस्पृशेद्भवति वृष्टिनाशो ध्रुवं
क्षयं व्रजति विद्रुतो जनपदश्च बालाकुलः ॥ १२ ॥

यदि केतु सप्तर्षि मण्डल, अभिजित् नक्षत्र, ध्रुव तारा या ज्येष्ठा नक्षत्र को स्पर्श करे तो मेघों का नाश, अमङ्गल, कर्मों की हानि और शोक देने वाला होता है। यदि आश्लेषा नक्षत्र को स्पर्श करे तो निश्चय ही वृष्टि का नाश और क्षुधा पिपासा आदि से पीड़ित बालकों को साथ लेकर लोग वहाँ से चल कर नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

शनि के संचार वश फल—

प्राग्द्वारेषु चरन् रविपुत्रो नक्षत्रेषु करोति च वक्रम् ।
दुर्भिक्षं कुरुते महदुग्रं मित्राणां च विरोधमवृष्टिम् ॥ १३ ॥

यदि शनि प्राग्द्वार (कृत्तिका आदि सात नक्षत्रों) में विचरण करते हुये वक्री हो जाय तो दुर्भिक्ष, मित्रों में अत्यधिक विरोध और अवृष्टि करता है।

यहाँ पर गर्ग—

विलम्बितगतिः सौरः प्राग्द्वारेषु यदा भवेत् । महाभयानि चत्वारि विजानीयात्समन्ततः ॥
अनावृष्टिमथ घोरं दुर्भिक्षं मित्रविग्रहम् ॥ १३ ॥

शनि, मंगल या केतु से रोहिणी शकट को भेदित होने का फल—

रोहिणीशकटमर्कनन्दनो यदि भिनत्ति रुधिरोऽथवा शिखी ।
किं वदामि यदनिष्टसागरे जगदशेषमुपयाति सङ्क्षयम् ॥ १४ ॥

यदि रोहिणी शकट को शनि, मंगल या केतु भेद करे तो और अमंगल क्या कहूँ सम्पूर्ण विश्व अनिष्ट सागर में पड़ कर नाश होता है, अर्थात् उस समय अमंगल ही अमङ्गल चारों तरफ दिखाई देते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

रोहिणीशकटं भौमो भिनत्त्यर्कसुतोऽथवा। केतुर्वा जगतो मूयात्प्रलयं समुपस्थितम् ॥१४॥

केतूदय का फल—

उदयति सततं यदा शिखी चरति भचक्रमशेषमेव वा।
अनुभवति पुराकृतं तदा फलमशुभं सचराचरं जगत् ॥ १५ ॥

जिस समय केतु सदा दिखाई दे या सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल में विचरण करे उस समय चराचर के साथ सम्पूर्ण जगत् बरावर किये हुये पूर्वार्जित अशुभ फलों का अनुभव करता है ॥ १५ ॥

चन्द्र के संचार वश फल—

धनुःस्थायी रूक्षो रुधिरसदृशः क्षुद्भयकरो
बलोद्योगं चन्द्रः कथयति जयं ज्याऽस्य च यतः।
गवां शृङ्गो गोघ्नो निधनमपि सस्यस्य कुरुते
ज्वलन् धूमायन् वा नृपतिमरणायैव भवति ॥ १६ ॥

यदि चन्द्र धनुषाकार होकर रूक्ष और रक्तवर्ण का दिखाई दे तो दुर्भिक्ष और सेनाओं में परस्पर युद्ध का भय करता है। तथा इस चन्द्र की ज्या जिस तरफ रहती है उस तरफ के राजाओं की विजय होती है। गौ के शृङ्ग की तरह शृङ्ग हो तो गौ और धान्यों का नाश करता है तथा प्रज्वलित या धूम की तरह दिखाई दे तो राजाओं के मरण के लिये होता है ॥ १६ ॥

चन्द्र के सचार वश और फल—

स्निग्धः स्थूलः समशृङ्गो विशालस्तुङ्गश्चोदग्विचरन्नागवीथ्याम्।
दृष्टः सौम्यैरशुभैर्विप्रयुक्तो लोकानन्दं कुरुतेऽतीव चन्द्रः ॥ १७ ॥

यदि स्निग्ध, स्थूल, समान शृङ्ग वाला, विशाल और उन्नत होकर उत्तर तरफ नाग वीथी में स्थित चन्द्र शुभग्रह से देखा जाता हो और पापग्रह से युत न हो तो मनुष्यों को अतिशय आनन्द देता है ॥ १७ ॥

चन्द्र के संचार वश और फल—

पित्र्यमैत्रपुरुहूतविशाखात्वाष्ट्रमेत्य च युनक्ति शशाङ्कः।
दक्षिणेन न शुभः शुभकृत् स्याद्यद्युदक् चरति मध्यगतो वा ॥ १८ ॥

यदि चन्द्रमा मघा, अनुराधा, ज्येष्ठा, विशाखा और चित्रा नक्षत्र में जाकर दक्षिण मार्ग में होकर गमन करे तो अशुभ और उत्तर मार्ग या मध्य में होकर गमन करे तो शुभ करने वाला होता है ॥ १८ ॥

परिघ आदि संज्ञा के लक्षण—

परिघ इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करोदयेऽस्ते वा।
परिधिस्तु प्रतिसूर्यो दण्डस्त्वृजुरिन्द्रचापनिभः ॥ १९ ॥
उदयेऽस्ते वा भानोर्ये दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते।
सुरचापखण्डमृजु यद्रोहितमैरावतं दीर्घम् ॥ २० ॥

सूर्य के उदय या अस्त समय में तिरछी मेघ की रेखा परिघ संज्ञक, प्रतिसूर्य परिधि संज्ञक और स्पष्ट इन्द्र धनुष के समान रेखा दण्ड संज्ञक होती है। तथा उदय या अस्त समय में सूर्य के लम्बे किरण अमोघ संज्ञक, स्पष्ट इन्द्र धनुष के खण्ड रोहित संज्ञक और लम्बे सीधे इन्द्र धनुष ऐरावत संज्ञक होते हैं ॥ १९-२० ॥

सन्ध्या का लक्षण और उस समय बिम्बवर्ण से फल—

अर्धास्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्।
तेजः परिहानिमुखाद्भानोरर्धोदयो यावत् ॥ २१ ॥
तस्मिन् सन्ध्याकाले चिह्नैरेतैः शुभाशुभं वाच्यम्।
सर्वैरेतैः स्निग्धैः सद्यो वर्षं भयं रूक्षैः ॥ २२ ॥

अर्धास्त सूर्य बिम्ब के अनन्तर स्पष्ट रूप से ताराओं को दिखाई देने तक पश्चिमा सन्ध्या और ताराओं के प्रकाश हानि के समय से अर्धोदित सूर्यबिम्ब काल तक प्राक् संध्या होती है। इस संध्या समय में वक्ष्यमाण चिन्हों के द्वारा शुभाशुभ फल कहना चाहिये, जैसे सब आकाश स्थित बिम्ब गण स्निग्ध हों तो शीघ्र वर्षा और रूखे हों तो भय होता है ॥ २१-२२ ॥

वृष्टि ज्ञान प्रकार—

अच्छिन्नः परिघो वियच्च विमलं श्यामा मयूखा रवेः
स्निग्धा दीधितयः सितं सुरधनुर्विद्युच्च पूर्वोत्तरा।
स्निग्धो मेघतरुर्दिवाकरकरैरालिङ्गितो वा यदा
वृष्टिः स्याद्यदि वाऽर्कमस्तसमये मेघो महान् छादयेत् ॥ २३ ॥

अखण्डित परिघ, निर्मल आकाश, सूर्य को श्याम वर्ण किरणें, स्निग्ध दीधिति, श्वेत वर्ण के इन्द्र धनुष, पूर्वोत्तरा विद्युत, और स्निग्ध या सूर्य के किरणों से व्याप्त मेघ वृक्ष हो तो वर्षा होती है। अथवा यदि साय काल में बहुत बड़ा मेघ सूर्य बिम्ब को अच्छादित करे तो भी वृष्टि होती है ॥ २३ ॥

सूर्य के बिम्ब वश फल—

खण्डो वक्रः कृष्णो ह्रस्वः काकादिभिर्वा चिह्नैर्विद्धः।
यस्मिन् देशे रूक्षश्चार्कस्तत्राभावः प्रायो राज्ञः ॥ २४ ॥

जिस देश में खण्डित, कुटिल, कृष्ण, स्वल्प, काक आदि पक्षियों के चिन्हों से व्याप्त या रूक्ष सूर्य बिम्ब दिखाई दे तो प्रायः उस देश के राजा का नाश होता है।

यहाँ पर गर्ग—

खण्डो वा कृष्णवर्णो वा ह्रस्वः निष्प्रभकोऽथवा।
यत्रार्को दृश्यते तत्र राज्ञो मृत्युं विनिर्दिशेत् ॥ २४ ॥

पक्षियों के वश राजाओं का शकुन विचार—

वाहिनीं समुपयाति पृष्ठतो मांसभुक् खगगणो युयुत्सतः।
यस्य तस्य बलविद्रवो महानग्रगैस्तु विजयो विहङ्गमैः ॥ २५ ॥

युद्ध की इच्छा करने वाले जिस राजा की सेनाओं के पीछे होकर मांस खाने वाले पक्षी समूह गमन करें उस राजा की सेनाओं को युद्ध से भागना पड़ता है। यदि पक्षी गण सेनाओं के आगे होकर गमन करें तो विजय होती है ॥ २५ ॥

सूर्य बिम्ब के द्वारा फल—

भानोरुदये यदि वास्तमये गन्धर्वपुरप्रतिमा ध्वजिनी।
बिम्बं निरुणद्धि तदा नृपतेः प्राप्तं समरं सभयं प्रवदेत् ॥ २६ ॥

सूर्य के उदय या अस्त समय में पताका युत गन्धर्व नगर की प्रतिमा सूर्य बिम्ब को छादित करे तो राजा को भयङ्कर युद्ध की प्राप्ति होगी ऐसा कहना चाहिये।

तथा गर्ग—

आदित्ये सरथा सेना सन्ध्याकाले यदा भवेत्। मध्यासन्नं विजानीयाद्भूमिपस्य पराजयम् ॥

संध्या के वश दैविक शुभाशुभ फल—

शस्ता शान्तद्विजमृगघुष्टा स्निग्धाः मृदुपवना च।
पांशुध्वस्ता जनपदनाशं धत्ते रूक्षा रुधिरनिभा वा ॥ २७ ॥

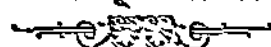
यदि सन्ध्याकाल में सूर्य के विरुद्ध दिशा में मुख करके पक्षीगण और जङ्गली पशु गण मधुर शब्द करें तथा निर्मल थोड़ी थोड़ी वायु चले तो शुभ होता है। यदि धूलियों से व्याप्त, रूक्ष और लोहित वर्ण की संध्या दिखाई दे तो देशों का नाश होता है ॥ २७ ॥

अपनी दक्षता का प्रदर्शन—

यद्विस्तरेण कथितं मुनिभिस्तदस्मिन् सर्वं मया निगदितं पुनरुक्तवर्जम्।
श्रुत्वापि कोकिलरुतं बलिभुग्विरौति यत्तत्स्वभावकृतमस्य पिकं न जेतुम् ॥

गर्ग आदि मुनियोंने विस्तार पूर्वक जिन विषयों को कहा है पुनरुक्त दोष रहते उन सब विषयों को इस मयूरचित्र नामक अध्याय में मैंने कहा है। इतने पर भी यदि दुर्जन गण बोलते ही रहें तो मेरी क्या हानि है? क्योंकि कोयल के शब्द सुन कर भी जो काक शब्द करता है वह स्वाभाविक शब्द है न कि कोयल को जीतने की इच्छा से ॥ २८ ॥

इति 'विमला' हिन्दी टीकायां मयूरचित्रकाध्यायः सप्तचत्वारिंशः ॥ ४७ ॥



अथ पुष्यस्नानाध्यायः

उसमें प्रथम आगम प्रदर्शन—

मूलं मनुजाधिपतिः प्रजातरोस्तदुपघातसंस्कारात् ।
अशुभं शुभं च लोके भवति यतोऽतो नृततिचिन्ता ॥ १ ॥

इस संसार में प्रजा रूप वृक्ष के मूल स्वरूप राजा है, यतः उस राजा का विघात होने से प्रजाओं का अशुभ और संस्कार से शुभ होता है अतः राजा के शुभ वृद्धि के लिये चिन्ता करनी चाहिये ॥ १ ॥

यहाँ पर आगम प्रदर्शन—

या व्याख्याता शान्तिः स्वयम्भुवा सुरगुरोर्महेन्द्रार्थे ।
तां प्राप्य वृद्धगर्गः प्राह यथा भागुरेः शृणुत ॥ २ ॥

जो शान्ति इन्द्र के लिये ब्रह्माजी ने बृहस्पति से कही थी, उसी को पाकर वृद्धगर्गाचार्य ने भागुरि से जिस तरह कही उसी तरह उस शान्ति को सुनो।

यहाँ पर वृद्धगर्ग—

देवाश्च दितिजैः सार्धं स्पर्धमाना हि मानिनः । परस्परं महद्युद्धं चक्रुः सर्वे सुरासुराः ॥
ततो दैत्यगणैः क्रुद्धैर्देवाः सर्वे विनिर्जिताः । ततोऽङ्गिराः सुरगुरुर्ध्यानसक्तोऽभवत्पुरा ॥
पुरन्दराभिषेकार्थं बृहस्पतिरकल्पयत् । तिष्यमात्मीयनक्षत्रं यस्य देवो बृहस्पतिः ॥
तेन चैवाभिषिक्तश्च देवराजः पुरन्दरः । ततो बलसमारूढो नाशयामास दानवान् ॥
देवाश्च हृष्टमनसः पुरीं प्राप्यामरावतीम् । पुष्यस्नानं बलतरं तदारभ्य प्रवर्त्तितम् ॥२॥

पुष्य स्नान करने की विधि—

पुष्यस्नानं नृपतेः कर्तव्यं दैववित्पुरोधाभ्याम् ।
नातः परं पवित्रं सर्वोत्पातान्तकरमस्ति ॥ ३ ॥

ज्यौतिषि और पुरोहित के द्वारा राजा को पुष्य स्नान करना चाहिये। इससे अधिक पवित्र और सब उत्पातों को नाश करने वाला दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥३॥

पुष्य स्नान करने का स्थान—

श्लेष्मातकाक्षकण्टकिकटुतिक्तविगन्धिपादपविहीने ।
कौशिकगृध्रप्रभृतिभिरनिष्टविहगैः परित्यक्ते ॥ ४ ॥
तरुणतरुगुल्मवल्लीलताप्रतानान्विते वनोद्देशे ।
निरुपहतपत्रपल्लवमनोज्ञमधुरद्रुमप्राये ॥ ५ ॥

श्लेष्मातक (लसौढ़ा), अक्ष (बहेड़ा), कण्टकी (खैर आदि), कटु, तिक्त (विम्बु आदि) और दुर्गन्धि युत वृक्षों से रहित, उल्लू, गिद्ध आदि अशुभ कारक पक्षियों से रहित, नूतन वृक्ष, गुल्म, लताओं के समुदाय से युत, पत्र, पल्लव, सुन्दर, मधुर (स्वादु युत) वृक्षों के समूह से युत वन के समीप में राजा को पुष्य स्नान करना चाहिये ॥ ४–५ ॥

पुण्य स्नान करने का और स्थान—

क्रकवाकुजीवजीवकशुकशिखिशतपत्रचापहारीतैः ।
क्रकरचकोरकपिञ्जलवञ्जुलपारावतश्रीकैः ॥ ६ ॥
कुसुमरसपानमत्तद्विरेफपुंस्कोकिलादिभिश्चान्यैः ।
विरुते वनोपकण्ठे क्षेत्रागारे शुचावथवा ॥ ७ ॥

मुर्गा, तीतर, तोता, मयूर, शतपत्र (कठफोरवा), चाप (नीलकण्ठ), हारीत (हारिल), क्रकर (करील, चकोर, कपिञ्जल, वञ्जुल, कबूतर, श्रीकण्ठ इन पक्षियों के शब्दों से युक्त पुष्पों के रसास्वादन से मत्त भ्रमर, श्रेष्ठ कोकिल आदि और अन्य सुन्दर पक्षियों के शब्दों से युत वन के समीप शुद्ध पुण्य भूमि में पुण्य स्नान करना चाहिये ॥ ६–७ ॥

पुण्य स्नान करने का और भी स्थान—

ह्रादिनीविलासिनीनां जलखगनखविक्षतेषु रम्येषु ।
पुलिनजघनेषु कुर्याद् दृग्मनसोः प्रीतिजननेषु ॥ ८ ॥

जलचर पक्षी रूप नखों से क्षत, दृष्टि और मन को आनन्ददायक नदी रूप कामिनियों के तट रूप सुन्दर जंघाओं पर (सुन्दर नदी तट पर) पुण्य स्नान करना चाहिये ॥ ८ ॥

पुण्य स्नान करने का और भी स्थान—

प्रोत्प्लुतहंसच्छत्रे कारण्डवकुररसारसोद्गीते ।
फुल्लेन्दीवरनयने सरसि सहस्राक्षकान्तिधरे ॥ ९ ॥

उड़ते हुये हंस रूप छत्र वाले कारण्डव, कुरर और सारस पक्षियों के ध्वनि रूप गाने से युत, खिले हुये नील कमल रूप नेत्रों से युत अत एव इन्द्र के समान कान्ति वाले सरोवर के तीर पर स्नान करना चाहिये ॥ ९ ॥

पुण्य स्नान करने का और भी स्थान—

प्रोत्फुल्लकमलवदनाः कलहंसकलप्रभाषिण्यः ।
प्रोत्तुङ्गकुड्मलकुचा यस्मिन्नलिनीविलासिन्यः ॥ १० ॥

खिले हुए कमल रूप मुख वाली, राजहंस के मधुर शब्द रूप वाक्य वाली और कमल के कली रूप ऊँचे स्तन वाली पुष्करिणी रूप स्त्री के जंघा (तट) पर पुण्य स्नान करना चाहिये ॥ १० ॥

पुण्य स्नान करने का और भी स्थान—

कुर्याद्गोरोमन्थजफेनलवशकृत्खुरक्षतोपचिते ।
अचिरप्रसूतहुङ्कृतवल्गितवत्सोत्सवे गोष्ठे ॥ ११ ॥

गायों के जुगाली करने से, गिरे, हुये फेन और गोबर खुरों से ताडित जहाँ पर हो तथा पैदा हुए बछड़ों के हुङ्कार और कूदना-फाँदना रूप उत्सव युत गोष्ठ स्थान में पुण्य स्नान करना चाहिये ॥ ११ ॥

पुण्य स्नान करने का और भी फल—

अथवा समुद्रतीरे कुशलागतरत्नपोतसम्बाधे ।
घननिचुललीनजलचरसितखगशबलीकृतोपान्ते ॥ १२ ॥

अथवा सकुशल आये हुये रत्न युत नावों से व्याप्त तथा घने निचुल (समुद्र फल) वृक्षों के ऊपर लीन जलचर और सफेद पक्षियों से चित्रित समीप भाग है जिसका ऐसे समुद्र के तीर में पुण्य स्नान में करना चाहिये ॥ १२ ॥

पुण्य स्नान करने का और भी फल—

क्षमया क्रोध इव जितः सिंहो मृग्याभिभूयते येषु ।
दत्ताभयएगमृगशावकेषु तेष्वाश्रमेष्वथवा ॥ १३ ॥

अथवा जहाँ पर शान्ति से क्रोध की तरह हरिणियों से सिंह जीत लिया गया हो अर्थात् हरिणी और सिंह साथ साथ रहते हों तथा अभयदान पाकर पक्षी और मृग के बच्चे निर्भय घूमते हैं ऐसे मुनियों के आश्रम में पुण्य स्नान करना चाहिये ॥१३॥

पुण्य स्नान करने का और भी फल—

काञ्चीकलापनूपुरगुरुजघनोद्वहनविघ्नितपदाभिः ।
श्रीमति मृगेक्षणाभिर्गृहेऽन्यभृतवल्गुवचनाभिः ॥ १४ ॥

अथवा करधनी, पायजेब और भारी जघाओं के भार से मन्दगति वाली तथा कोयल की तरह मधुर बोलने वाली मृगनयना स्त्रियों से शोभित गृह में पुण्य स्नान करना चाहिये ॥ १४ ॥

पुण्य स्नान का और भी फल—

पुण्येष्वायतनेषु च तीर्थप्रधानरम्यदेशेषु ।
पूर्वोदक्प्लवभूमौ प्रदक्षिणाम्भोवहायां च ॥ १५ ॥

अथवा पवित्र देवस्थान, तीर्थ, जलाशय, उपवन, सुन्दर देश, पूर्व या उत्तर तरफ नीची भूमि पर प्रदक्षिण क्रम से जहाँ जल बहता हो ऐसे स्थान में पुण्य स्नान करना चाहिये ।

वृद्ध गर्ग—

समुद्रतीरे सोद्याने नदीनां सङ्गमे शुभे । महाह्रदेऽथवा तीर्थे देवतायतने तथा ।
सर्वर्तुकुसुमोपेते वने द्विजवरैर्युते । गृहे रम्ये विविक्ते वा पुण्यस्नानं समाचरेत् ॥ १५ ॥

भूमि का लक्षण—

भस्माङ्गारास्थ्यूषरतुषकेशश्वभ्रकर्कटावासैः ।
श्वाविधमूषकविवरैर्वल्मीकैर्या च मन्त्यक्ता ॥ १६ ॥

धात्री घना सुगन्धा स्निग्धा मधुरा समा च विजयाय।
सेनावासेऽप्येवं योजयितव्या यथायोगम् ॥ १७ ॥

राख, कोयला, हड्डी, ऊपर, भूसी, केश, गड्ढा हो तथा केंकड़ा, बिल में रहने वाला जन्तु चूहा आदि और दीमक आदि से रहित, अन्तःसार वाली, सुगन्ध युत, निर्मल, मधुर और समभूमि विजय के लिये होती है। सेनाओं के निवास के लिये भी पूर्वोक्त भूमि युक्तिपूर्वक प्रयोग करनी चाहिये ॥ १६–१७ ॥

वहाँ पर विधान—

निष्क्रम्य पुरान्नक्तं दैवज्ञामात्ययाजकाः प्राच्याम् ।
कौबेर्यां वा कृत्वा बलिं दिगीशाधिपायां वा ॥ १८ ॥
लाजाक्षतदधिकुसुमैः प्रयतः प्रणतः पुरोहितः कुर्यात् ।
आवाहनमथ मन्त्रस्तस्मिन् मुनिभिः समुद्दिष्टः ॥ १९ ॥

दैवज्ञ, मन्त्री और याजक लोग रात में पुर से निकल कर पूर्वोक्त स्थान के पूर्व, उत्तर या ईशान कोण में नम्र होकर पुरोहित खील, अक्षत, दधि और पुष्पों के द्वारा बलि देवे, इसके बाद मुनियों से कथित आवाहन का मन्त्र पढ़े ॥ १८–१९ ॥

आवाहन का मन्त्र—

आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः ।
दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चाप्यन्येंऽशभागिनः ॥ २० ॥
आवाह्यैवं ततः सर्वानेवं ब्रूयात्पुरोहितः ।
श्वः पूजां प्राप्य यास्यन्ति दत्त्वा शान्तिं महीपतेः ॥ २१ ॥

जो देवता इसमें पूजा के इच्छुक हैं वे, दिशा, नाग, ब्राह्मण और अन्य अंश भोगी गण सब यहाँ आगमन करें। इस तरह पुरोहित सबका आवाहन करके वक्ष्यमाण रूप से प्रार्थना पूर्वक बोले—'आप सब आगामी प्रातःकाल में पूजा पाकर राजा को शान्ति प्रदान करके जायँगे ॥ २०–२१ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

आवाहितेषु कृत्वा पूजां तां शर्वरीं वसेयुस्ते ।
सदसत्स्वप्ननिमित्तं यात्रायां स्वप्नविधिरुक्तः ॥ २२ ॥

आवाहित देवता आदि की पूजा कर के सब (दैवज्ञ, मन्त्री, याजक) वह रात्रि वहां ही वितावें। बाद रात्रि में जो स्वप्न दिखाई दे तदनुसार शुभाशुभ फल जानना चाहिये, इस को जानने की विधि यात्रा नामक ग्रन्थ में कही गई है।

यहाँ पर यात्रा में—

दुकूलसुकामगिभृद्धरेन्द्र समन्वितैर्दैवज्ञपुरोहितोऽन्तः ।
स्वदेवतागारमनुप्रविश्य निवेशयेत्तत्र दिगीश्वरार्चाम् ॥

अभ्यर्च्य मन्त्रैस्तु पुरोहितस्तामधश्च तस्यां भुवि संस्कृतायाम् ।
दर्भैश्च कृत्वास्तरमक्षतैस्तां लिखेत्समन्तात्सितसर्षपैश्च ॥
प्राक्छीर्षां तु दूर्वामथ नागपुष्पीं कृत्वोपधानं शिरसि क्षितीशः ।
पुन्नागजातीपुष्पफलाभिधानानाशासु दद्याच्चतुरः क्रमेण ॥
यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवमावर्त्य मन्त्रं प्रयतस्त्रिरेतम् ।
लम्बैकमुग्दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम् ॥
नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च ।
वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥
भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन । इष्टानिष्टं समाचक्ष्व स्वप्ने स्वप्नस्य शाश्वतम् ॥
इत्थमन्त्रान् ततः स्मृत्वा शिवशक्तिपुरोगमान् । अभ्यर्थना ततस्तस्य कृत्वा सुप्रयतो नृपः ॥
एकतस्ते कुशास्तीर्णे सुप्तः प्रयतमानसः । निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥

इस के बाद का कर्तव्य—

अपरेऽहनि प्रभाते सम्भारानुपहरेद्यथोक्तगुणान् ।
गत्वावनिप्रदेशे श्लोकाश्चाप्यत्र मुनिगीताः ॥ २३ ॥

दूसरे दिन प्रातः काल उस पृथ्वी प्रदेश में जाकर उक्त गुणों से युत सामान एकत्रित करे । यहाँ पर मुनि (वृद्ध गर्ग) से कथित ये वक्ष्यमाण श्लोक हैं ॥ २३ ॥

वृद्ध गर्गोक्त पद्य—

तस्मिन्मण्डलमालिख्य कल्पयेत्तत्र मेदिनीम् ।
नानारत्नाकरवतीं स्थानानि विविधानि च ॥ २४ ॥
पुरोहितो यथास्थानं नागान् यक्षान् सुरान् पितॄन् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव मुनीन् सिद्धांश्च विन्यसेत् ॥ २५ ॥
ग्रहांश्च सर्वनक्षत्रै रुद्रांश्च सह मातृभिः ।
स्कन्दं विष्णुं विशाखं च लोकपालान् सुरस्त्रियः ॥ २६ ॥
वर्णकैर्विविधैः कृत्वा हृद्यैर्गन्धगुणान्वितैः ।
यथास्वं पूजयेद्विद्वान् गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ २७ ॥
भक्ष्यैरन्नैश्च विविधैः फलमूलामिषैस्तथा ।
पानैश्च विविधैर्हृद्यैः सुराक्षीरासवादिभिः ॥ २८ ॥

पूर्वोक्त शुभ लक्षण युत भूप्रदेश में एक मण्डल बना कर अनेक प्रकार के रत्नों के समुदाय से युत पृथ्वी की और बहुत तरह के स्थानों की कल्पना करे। बाद पुरोहित प्राधान्य क्रम से नाग, यक्ष, देव, पितर, गन्धर्व अप्सरा, मुनि और सिद्धों की स्थापना करे । तथा अश्विनी आदि सब नक्षत्रों के साथ ग्रह, ब्राह्मी आदि माताओं के साथ रुद्र, कार्तिकेय, विष्णु, विशाखा, लोकपाल और देवनाओं की

स्त्री (इन्द्राणी, गौरी, लक्ष्मी आदि) को मन को प्रसन्न करने वाली सुगन्धियों से युत नाना प्रकार के वर्णों से बना कर विद्वान् सुगन्धि युत द्रव्य, माला, चन्दन, भोज्याद्य, नाना प्रकार के फल, मूल, मांस, नाना प्रकार के चित्ताह्लादक पान वस्तु, मद्य, दुग्ध, आसव आदि से पूजा करे ॥ २४-२८ ॥

इसके बाद पूर्व स्थापित देवताओं की पूजा विधि—

कथयाम्यतः परमहं पूजामस्मिन्यथाभिलिखितानाम् ।
ग्रहयज्ञे यः प्रोक्तो विधिर्ग्रहाणां स कर्तव्यः ॥ २९ ॥
मांसौदनमद्याद्यैः पिशाचदितितनयदानवाः पूज्याः ।
अभ्यञ्जनाञ्जनतिलैः पितरो मांसौदनैश्चापि ॥ ३० ॥
सामयजुर्भिर्मुनयस्त्वृग्भिर्गन्धैश्च धूपमाल्ययुतैः ।
अश्लेपकवर्णैस्त्रिमधुरेण चाभ्यर्चयेन्नागान् ॥ ३१ ॥
धूपाज्याहुतिमाल्यैर्विबुधान् रत्नैः स्तुतिप्रणामैश्च ।
गन्धर्वानप्सरसो गन्धैर्माल्यैश्च सुसुगन्धैः ॥ ३२ ॥
शेषांस्तु सार्ववर्णिकवलिभिः पूजां न्यसेच्च सर्वेषाम् ।
प्रतिसरवस्त्रपताकाभूषणयज्ञोपवीतानि ॥ ३३ ॥

इस के बाद इस यज्ञ में अभीष्ट देवताओं की पूजन-विधि बताते हैं। यात्रा नामक पुस्तक के ग्रह यज्ञ प्रकरण में ग्रहों की पूजन विधि जो बताई गई है। उसी तरह यहाँ पर भी ग्रहों की पूजा करनी चाहिये। मांस, भात, मद्य आदि से पिशाच, दैत्य और दानवों की पूजा करनी चाहिये। अभ्यञ्जन (स्निग्ध पदार्थ), कज्जल, तिल, मांस और भात से पितरों की। साम तथा यजुर्वेदों के मन्त्र, सुगन्ध द्रव्य, धूप और मालाओं से मुनियों की। अश्लेपक (अमिश्रित) वर्ण और त्रिमधुर (मधु, घृत और शर्करा) से सर्पों की। धूप, घृत, हवन, माला, रत्न, स्तोत्र और प्रणामों से देवताओं की। सुगन्ध द्रव्य, माला और सुन्दर गन्धों से गन्धर्व तथा अप्सराओं की। सब वर्ण युतवलियों से शेष (यक्ष आदि) की पूजा करनी चाहिये। पूजन के बीच-बीच में सब को कुङ्कुम से रक्त किया हुआ सूत्र, वस्त्र, ध्वजा, भूषण और यज्ञोपवीत देना चाहिये।

यहाँ पर यात्रा में—

यात्रायां ग्रहयज्ञे तत्रार्चा ताम्रमयसवितुः ।
पालाशिकी समित् वैकङ्कतजाता तथा स्रुक् च ।
आकृष्णेन्ति च मन्त्रो रक्ता गन्धाः सहागुरुणा ॥
माषाऽतसीतिलाल्वकमुद्गान् चणकान् विहाय भोज्यविधिः ।
वकुलार्कागस्त्यपलाशशरयकीकुसुमपूजा च ॥

अष्टशतसमितेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणाहिताग्निभ्यः ।
देया वृषकनकमही सहस्रकिरणं समुद्दिश्य ॥ इत्यादि ॥ २९-३३ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

मण्डलपश्चिमभागे कृत्वाग्निं दक्षिणेऽथवा वेद्याम् ।
आदद्यात्सम्भारान् दर्भान् दीर्घानगर्भांश्च ॥ ३४ ॥
लाजाज्याक्षतदधिमधुसिद्धार्थकगन्धसुमनसो धूपः ।
गोरोचनाञ्जनतिलाः स्वर्तुजमधुराणि च फलानि ॥ ३५ ॥
सघृतस्य पायसस्य च तत्र शरावाणि तैश्च सम्भारैः ।
पश्चिमवेद्यां पूजां कुर्यात् स्नानस्य सा वेदी ॥ ३६ ॥

मण्डल के पश्चिम या दक्षिण भाग में वेदी बना कर उस पर अग्नि स्थापन कर के सामग्रियों को एकत्रित करे। लम्बे, अच्छिन्न और गर्भ रहित कुशाग्रों को लावे। खीर, घृत, अक्षत, दधि, मधु, सरसों, सुगन्ध द्रव्य, पुष्प, धूप, गोरोचन, कज्जल, तिल, स्व ऋतु के उत्पन्न मधुर फल यह सामग्री है। इस सामग्री में प्रत्येक के साथ-साथ घृत और खीर का शराव (मिट्टी का पात्र) देवे। इनसे वेदी के पश्चिम भाग में पूजा करे, क्योंकि वह पुण्य स्नान की वेदी है ॥ ३४-३६ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

तस्याः कोणेषु दृढान् कलशान् सितसूत्रवेष्टितग्रीवान् ।
सक्षीरवृक्षपल्लवफलापिधानान् व्यवस्थाप्य ॥ ३७ ॥
पुष्यस्नानविमिश्रेणापूर्णानम्भसा सरत्नांश्च ।
पुष्यस्नानद्रव्याण्यदद्याद्गर्गगीतानि ॥ ३८ ॥

इसके चारों कोणों में दृढ, सफेद सूत्र वेष्टित गले वाले दूध वाले, वृक्ष के पल्लव फलों से ढके चार कलशों को स्थापित करे। उन को पुण्य स्नान की ओषधियों से मिश्रित जल से, रत्नों से और गर्ग महर्षि के द्वारा प्रतिपादित पुण्य स्नान के द्रव्यों से परिपूर्ण करे।

यहाँ पर गर्ग—

कलशैर्हैमताम्रैश्च राजतैर्मृण्मयैस्तथा । सूत्रसंवेष्टितग्रीवैश्चन्दनागरुचर्चितैः ॥
प्रशस्तवृक्षपत्रैश्च फलपुष्पसमन्वितैः । पुण्यतोयेन सम्पूर्णै रत्नगर्भैर्मनोहरैः ॥ ३७-३८ ॥

पुष्य स्नान के द्रव्य—

ज्योतिष्मतीं त्रायमाणामभयामपराजिताम् ।
जीवां विश्वेश्वरीं पाठां समङ्गां विजयां तथा ॥ ३९ ॥
सहां च सहदेवीं च पूर्णकोशां शतावरीम् ।
अरिष्टिकां शिवां भद्रां तेषु कुम्भेषु विन्यसेत् ॥ ४० ॥

ब्राह्मीं क्षेमामजां चैव सर्ववीजानि काञ्चनीम्।
मङ्गल्यानि यथालाभं सर्वौषध्यो रसास्तथा॥ ४१॥
रत्नानि सर्वगन्धाश्च बिल्वं च सविकङ्कतम्।
प्रशस्तनाग्न्यश्चौषध्यो हिरण्यं मङ्गलानि च॥ ४२॥

ज्यौतिष्मती (कंगनी = मालकाकणी), त्रायमाणा (चिरायते का फल), अभया (हरें = हरीर), अपराजिता (विष्णुकान्ता), जीवा (जीवन्ती = डोढ़ी), विश्वेश्वरी (सोंठ), पाठा (पाढ़ = पाढ़रि), समङ्गा (रक्तमञ्जिष्ठा = पसरन), विजया (भंग), सहा (मुद्गपर्णी = वनमूङ), सहदेवी (सहदेई), पूर्णकोशा (नागर मोथा) शतावरी, अरिष्टिका (रीठा), शिवा (शमी), भद्रा (बला) इन ओषधियों को पूर्व स्थापित चारों कलशों में डाल दे। ब्राह्मी क्षेमा (काष्ठ-गुग्गुल), अजा (औषधि विशेष), सब प्रकार के बीज, काञ्चनी (हलदी = हरदी, निशाह्वा काञ्चनी पीता हरिद्रा वरवर्णनीत्यमरः), अन्य मङ्गल द्रव्य (दधि, अक्षत, पुष्प आदि) इन द्रव्यों में जितने की प्राप्ति हो उतने ही लेना चाहिये। सब औषधि, सब रस, रत्न, सब सुगन्ध द्रव्य, बेल, विकङ्कत (कंटाए = कंघी), प्रशस्त ओषधि (जया, जयन्ती, जीवन्ती, जीवपुत्रिका, पुनर्नवा, विष्णुक्रान्ता, चक्राङ्गा, वाराही और लक्ष्मणा), सुवर्ण आदि धातु, माङ्गलिक ओषधि (गोरोचन, सरसों, दूर्वा, हस्तिमद आदि) सब द्रव्यों को पूर्वस्थापित कलशों में डाल दे। ॥ ३९-४२ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

आदावनडुहश्चर्म जरया संहतायुषः।
प्रशस्तलक्षणभृतः प्राचीनग्रीवमास्तरेत्॥ ४३॥
ततो वृषस्य योधस्य चर्म रोहितमक्षतम्।
सिंहस्याथ तृतीयं स्याद्व्याघ्रस्य च ततः परम्॥ ४४॥
चत्वार्येतानि चर्माणि तस्यां वेद्यामुपास्तरेत्।
शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते पुष्ययुक्ते निशाकरे॥ ४५॥

पहले बूढ़ा होकर मरे हुये, प्रशस्त लक्षणों (इसी के ६१ वें अध्याय में कथित लक्षणों) से युत बैल का चर्म लेकर पूर्वाभिमुख करके बिछावे। इसके बाद लोहित वर्ण वाले योद्धा बैल का छिद्र रहित चर्म बिछावे, बाद तृतीय सिंह का चर्म और इसके बाद चतुर्थ व्याघ्र का चर्म बिछावे। पुष्य नक्षत्र गत चन्द्र के समय शुभ मुहूर्त में वेदी के ऊपर इन चारों चमड़ों को बिछावे ॥ ४३-४५ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

भद्रासनमेकतमेन कारितं कनकरजतताम्राणाम्।
क्षीरतरुनिर्मितं वा विन्यस्यं चर्मणामुपरि॥ ४६॥

त्रिविधस्तस्योच्छ्रायो हस्तः पादाधिकोऽर्धयुक्तश्च।
माण्डलिकानन्तरजित्समस्तराज्यार्थिनां शुभदः ॥ ४७ ॥

चमड़े के ऊपर सोना, चाँदी, ताँबा या दुधैले वृक्ष का बना हुआ सुन्दर आसन बिछावे। इस भद्रासन की ऊँचाई तीन प्रकार (एक हाथ पादाधिक हस्त=तीस अंगुल और डेढ़ हाथ) की होनी चाहिये। प्रथम माण्डलिक राजा का शुभ करने वाला, द्वितीय विजयेच्छु राजा का हित करने वाला और तृतीय चक्रवर्ती राजा बनने की इच्छा रखने वाले राजा का शुभकारी होता है ॥ ४६–४७ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

अन्तर्धाय हिरण्यं तत्रोपविशेन्नरेश्वरः सुमनाः।
सचिवाप्तपुरोहितदैवपौरकल्याणनामवृतः ॥ ४८ ॥

उस भद्रासन के मध्य में सुवर्ण देकर मन्त्री, विश्वस्त बन्धु, पुरोहित, दैवज्ञ और शुभ (जयराज, सिंहराज, बन्धुराज, व्याघ्रराज आदि) नामों से युत पुरवासियों के साथ प्रसन्न चित्त होकर राजा बैठे ॥ ४८ ॥

किस तरह का राजा होना चाहिये—

वन्दिजनपौरविप्रैः प्रघुष्टपुण्याहवेदनिर्घोषैः।
समृदङ्गशङ्खतूर्यैर्मङ्गलशब्दैर्हतानिष्टः ॥ ४९ ॥

बन्दिजन, पुरवासी तथा ब्राह्मणों के द्वारा उद्घोषित पुण्याह शब्द, वेद ध्वनि, मृदङ्ग, शङ्ख और तुरही के मङ्गल शब्दों से नष्ट हो गया है अनिष्ट जिसका ऐसा राजा उस आसन पर बैठे ॥ ४९ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

अहतक्षौमनिवसनं पुरोहितः कम्बलेन सञ्छाद्य।
कृतबलिपूजं कलशैरभिषिञ्चेत् सर्पिषा पूर्णैः ॥ ५० ॥

नवीन रेशमी वस्त्र पहने हुये और कर लिया है बलि और पूजा जिसने ऐसे राजा को कम्बल से आच्छादित करके पुरोहित घृत पूर्ण कलश से अभिषेक करे ॥ ५० ॥

कलश के प्रमाण—

अष्टावष्टाविंशतिरष्टशतं वापि कलशपरिमाणम्।
अधिकेऽधिके गुणोत्तरमयं च मन्त्रोऽत्र मुनिगीतः ॥ ५१ ॥

आठ, अट्ठाईस, एक सौ आठ या आठ सौ कलश का प्रमाण है। अधिक अधिक प्रमाण के कलश अधिक-अधिक गुण देते हैं। इस घृत के अभिषेक में मुनि (वृद्धगर्ग) के द्वारा प्रतिपादित आगे मन्त्र हैं ॥ ५१ ॥

वृद्ध गर्ग से प्रतिपादित मन्त्र—

आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम्।
आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ५२ ॥

भौमान्तरिक्षं दिव्यं वा यत्ते कल्मषमागतम् ।
सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु ॥ ५३ ॥

घृत तेज है, घृत प्रकृष्ट पाप को नाश करने वाला है। घृत देवताओं का आहार है। घृत में लोक (भूः आदि) स्थापित हैं, भौम (चराचरोद्भव), आन्तरिक्ष (उल्का, निर्घात, पवन, परिवेश, गन्धर्वपुर, इन्द्रचाप आदि से उत्पन्न), दिव्य (ग्रहनक्षत्रोद्भव) जो पाप तुम्हारे ऊपर आये हों वे सब घी के स्पर्श से नाश को प्राप्त हों ॥ ५२-५३ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

कम्बलमपनीय ततः पुष्यस्नानाम्बुभिः सफलपुष्पैः ।
अभिषिञ्चेन्मनुजेन्द्रं पुरोहितोऽनेन मन्त्रेण ॥ ५४ ॥

इसके बाद पुरोहित राजा के शरीर पर से कम्बल उतार कर फल-फूलों के साथ पुष्य स्नानीय जल से आगे कथित मन्त्र के द्वारा अभिषेक करे ॥ ५४ ॥

अभिषेक के मन्त्र—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥ ५५ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥ ५६ ॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
दनुश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥ ५७ ॥
देवपत्न्यश्च या नोक्ता देवमातर एव च ।
सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ ५८ ॥
नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः ।
संवत्सरा दिनेशाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ॥ ५९ ॥
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः ।
एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः ॥ ६० ॥
सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः ।
वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥ ६१ ॥
सरितश्च महाभागा नागाः किम्पुरुषास्तथा ।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ॥ ६२ ॥
सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च ।

मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥ ६३ ॥
भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः ।
सनातनस्त्व दक्षश्च जैगीषव्यो भगन्दरः ॥ ६४ ॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ॥ ६५ ॥
मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेफो विदूरथः ।
ऊर्वः संवर्त्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ॥ ६६ ॥
द्वैपायनो यवक्रीतो देवराजः सहानुजः ।
पर्वतास्तरवो वल्लयः पुण्यान्यायतनानि च ॥ ६७ ॥
प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ।
वाहनानि च दिव्यानि सर्वलोकाश्चराचराः ॥ ६८ ॥
अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् ।
एते चान्ये च बहवः पुण्यसङ्कीर्त्तनाः शुभैः ॥ ६९ ॥
तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणैः ।
यथाभिषिक्तो मघवानेतैर्मुदितमानसैः ॥ ७० ॥

देवता सब तुम्हारा अभिषेक करें—सिद्ध, पुरातन देव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव), साध्य, वायु के समुदाय, आदित्य, वसु, रुद्र, वैद्यों में श्रेष्ठ अश्विनी कुमार दोनों, अदिति, देवमाता, स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, श्री, सिनीवाली (दृश्यचन्द्रा), कुहू (अदृश्यचन्द्रा अमावस्या), दनु, सुरसा, विनता, कद्रू, देवपत्नी, देवमाता, दिव्य अप्सरायें ये सब तुम्हारा अभिषेक करें। अश्विनी आदि नक्षत्र, मुहूर्त, पक्ष, अहोरात्र की सन्धि, संवत्सर, सूर्यादि सात ग्रह, कला, काष्ठा, क्षण, लव ये सब काल के शुभ अवयव तुम्हारा अभिषेक करें। ये सब तथा अन्य भी वेद-मत परायण, शिष्य और स्त्रियों के साथ तपस्वी गण, तुम्हारा अभिषेक करें। विमान पर चलने वाले देवता गण, मनु, समुद्र, नदी, प्रधान नाग, किन्नर, वैखानस, श्रेष्ठ ब्राह्मण, आकाश मार्ग से गमन करने वाले, स्त्रियों के साथ सप्तर्षि गण, सब ध्रुव स्थान, मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष, जैगीषव्य, भगन्दर, एकत, द्वित, त्रित, जाबालि, कश्यप, दुर्वासा, दुर्विनीत, कण्व, कात्यायन, मार्कण्डेय, दीर्घतप, शुन शेफ, विदूरथ, ऊर्व, संवर्त्तक, च्यवन, अत्रि, पराशर, द्वैपायन (व्यास), यवक्रीत, भाइयों के साथ देवराज (इन्द्र), पर्वत, वृक्ष, लता, पुण्यगृह, प्रजापति, दिति, गौ, विश्व की मातायें, दिव्य वाहन, चराचर सब लोक, अग्नि, पितर, तारा, मेघ, आकाश, दिशा, जल ये सब

तथा अन्य भी पवित्र कीर्ति वाले, सब उत्पातों को नाश करने वाले, पवित्र जल से जिस तरह प्रसन्न चित्त होकर इन्द्र का अभिषेक किया था उसी तरह तुम्हारा अभिषेक करें॥ ५५-७०॥

इन मन्त्रों से अतिरिक्त मन्त्र—

इत्येतैश्चान्यैश्चाप्यथर्वकल्पाहितैः सरुद्रगणैः।
कौष्माण्डमहारौहिणकुबेरहृद्यैः समृद्धचा च॥ ७१॥

इन मन्त्रों के अतिरिक्त अथर्व कल्प में कथित मन्त्रों से, रुद्रगण (एकादशानुवाका रुद्राः) कौष्माण्ड (षडनुवाका मरुद्गणाः), महारोहिण और कुबेर हृदय नामक ऋचा से अभिषेक करें॥ ७१॥

इसके बाद का कर्तव्य—

आपोहिष्ठातिसृभिर्हिरण्यवर्णेति चतसृभिर्जप्तम्।
कार्पासिकवस्त्रयुगं बिभृयात्स्नातो नराधिपतिः॥ ७२॥

स्नान करके राजा आपोहिष्ठा इत्यादि तीन ऋचाओं और हिरण्यवर्ण इत्यादि चार ऋचाओं से अभिमन्त्रित वस्त्र पहने॥ ७२॥

इसके बाद का कर्तव्य—

पुण्याहशङ्खशब्दैराचान्तोऽभ्यर्च्य देवगुरुविप्रान्।
छत्रध्वजायुधानि च ततः स्वपूजां प्रयुञ्जीत॥ ७३॥

इसके बाद पवित्र होकर राजा देवता, गुरु और ब्राह्मणों की पूजा करके छत्र, ध्वज और खड्ग की पूजा करे, बाद में अभीष्ट देवता की पूजा करे॥ ७३॥

इसके बाद का कर्तव्य—

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषाभिर्ऋग्भिरेताभिः।
परिजप्तं वैजयिकं नवं विदध्यादलङ्कारम्॥ ७४॥

आयुष्यं, वर्चस्यं, रायस्पोष आदि छै ऋचाओं से अभिमन्त्रित विजय करने वाला नवीन आभूषण राजा पहने॥ ७४॥

इसके बाद का कर्तव्य—

गत्वा द्वितीयवेदीं समुपविशेच्चर्मणामुपरि राजा।
देयानि चैव चर्माण्युपर्युपर्येवमेतानि॥ ७५॥
वृषस्य वृषदंशस्य रुरोश्च पृषतस्य च।
तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परम्॥ ७६॥

बाद द्वितीय वेदी में जाकर राजा चमड़े के ऊपर बैठे, चमड़ों को आगे कथित की ह ऊपर-ऊपर रखे। जैसे सबसे पहले बैल का, बाद बिल्ली का, इसके बाद काले

मृग का, इसके बाद हरिण का, इसके बाद सिंह का और अन्त में व्याघ्र का चमड़ा रखे ॥ ७५-७६ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

मुख्यस्थाने जुहुयात् पुरोहितोऽग्निं समित्तिलघृताद्यैः ।
त्रिनयनशक्रबृहस्पतिनारायणनित्यगतिऋग्भिः ॥ ७७ ॥

पुरोहित मुख्य स्थान (दक्षिण स्थान) में लकड़ी, तिल, घृत आदि से रुद्र, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु और वायु सम्बन्धी ऋचा पढ़ कर अग्नि में आहुति देवे ॥ ७७ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

इन्द्रध्वजनिर्दिष्टान्यग्निनिमित्तानि दैवविद्ब्रूयात् ।
कृत्वाऽशेषसमाप्तिं पुरोहितः प्राञ्जलिर्ब्रूयात् ॥ ७८ ॥

दैवज्ञ इन्द्रध्वज में कथित अग्नि के लक्षण को बोले, सब समाप्ति के अनन्तर पुरोहित हाथ जोड़ कर बोले ।

अग्नि का लक्षण—

स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो हुतभुङ् नृपस्य ।
गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारां धात्रीं समुद्ररसनां वशगां करोति ॥ ७८ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवात् ।
सिद्धिं दत्त्वा तु विपुलां पुनरागमनाय च ॥ ७९ ॥

हे देवगण ! आप सब राजा से पूजा पाकर उनको महान् सिद्धि देकर फिर आगमन के लिये गमन करें ॥ ७९ ॥

इसके बाद राजा को क्या करना चाहिये—

नृपतिरतो दैवज्ञं पुरोहितं चार्चयेद्धनैर्बहुभिः ।
अन्यांश्च दक्षिणीयान् यथोचितं श्रोत्रियप्रभृतीन् ॥ ८० ॥

इसके बाद राजा बहुत प्रकार के धनों से दैवज्ञ और पुरोहित की पूजा करे। तथा अन्य दक्षिणा देने के लायक श्रोत्रिय आदि की भी यथोचित पूजा करे ।

यहाँ पर गर्ग—

दत्त्वा वित्तं ब्राह्मणेभ्यो गावो हेमपरिष्कृताः । वास्तु युग्यं महीं रूप्यं तेभ्यश्च बहुभोजनम् ॥
शङ्खभेरीरवैर्नन्दिवैर्गीतैश्चैव मनोहरैः । सम्प्रविश्य ततो राजा सचिवैः परिवारितः ॥
श्वेतकुञ्जरमारूढ श्वेतमश्वमथापि वा । श्वेतचन्दनलिप्ताङ्गः श्वेताम्बरधरः शुभः ॥
पुरस्ताद्द्विकरैर्द्दृत्तमाशीर्वादैश्च पूजितः ॥ ८० ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

दत्त्वाऽभयं प्रजानामाघातस्थानगान् विसृज्य पशून् ।
बन्धनमोक्षं कुर्यादभ्यन्तरदोषकृद्वर्जम् ॥ ८१ ॥

प्रजाओं को अभय दान देकर बध्य स्थान गत पशु (छाग) आदि को छोड़कर अभ्यन्तर (राजा के शरीर या अन्तःपुर) में जिन्होंने अपराध किया है उनके सिवाय सब बन्धन स्थान स्थित पुरुषों को मुक्त करें॥ ८१॥

पुष्य स्नान का माहात्म्य—

एतत्प्रयुज्यमानं प्रतिपुष्यं सुखयशोऽर्थवृद्धिकरम्।
पुष्यादिनार्घफलदा पौषी शान्तिः परा प्रोक्ता॥ ८२॥

प्रत्येक पुष्य नक्षत्र में किया हुआ यह स्नान सुख, यश और धन की वृद्धि करने वाला होता है। पुष्य नक्षत्र को छोड़कर अन्य नक्षत्र में यथा विधि यह स्नान करने से आधा फल देने वाला होता है। पर पुष्य नक्षत्र युत पूर्णिमा के दिन का यह स्नान सर्वोत्कृष्ट है॥ ८२॥

और किस समय पुष्य स्नान करना चाहिये—

राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु राहोः केतोश्च दर्शने।
ग्रहावमर्दने चैव पुष्यस्नानं समाचरेत्॥ ८३॥

राज्य में किसी प्रकार का उत्पात या उपसर्ग (उपद्रव) होने पर तथा केतु का दर्शन होने पर पुष्य स्नान करना चाहिये॥ ८३॥

पुष्य स्नान का और माहात्म्य—

नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति।
मङ्गलं चापरं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते॥ ८४॥

इस लोक में इस तरह का कोई उत्पात नहीं है जो इस स्नान से नष्ट न हो और ऐसा कोई माङ्गलिक कार्य नहीं है जो इस से अधिक फल देने वाला हो।

यहाँ पर गर्ग—

प्रतिपुष्येण यो राजा स्नायीत विधिपूर्वकम्। तस्य राष्ट्रे न सीदन्ति मर्त्या ये जन्तवो भुवि॥

पुष्य स्नान का और माहात्म्य—

अधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्म च काङ्क्षतः।
तत्पूर्वमभिषेके च विधिरेष प्रशस्यते॥ ८५॥

महाराजाधिराज पद की और पुत्र की इच्छा करने वाले राजा को उसके प्रथम अभिषेक में भी यही विधि प्रशस्त है॥ ८५॥

पुष्य स्नान का और माहात्म्य—

महेन्द्रार्थमुवाचेदं बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिः।
स्नानमायुःप्रजावृद्धिसौभाग्यकरणं परम्॥ ८६॥

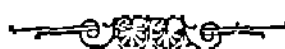
बहुत बड़ी कीर्तिवाले बृहस्पति ने इन्द्र के लिये यह स्नान कहा था। यह स्नान आयु और प्रजा की वृद्धि करने वाला तथा सौभाग्य करने वाला है॥ ८६॥

पुष्य स्नान का और माहात्म्य—

अनेनैव विधानेन हस्त्यश्वं स्नापयेत्ततः ।
तस्यामयविनिर्मुक्तं परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ८७ ॥

जो राजा इस पूर्वोक्त विधि से हाथी और घोड़ों को भी अभिषेक कराता है, रोग से मुक्त होकर उस के ये हाथी-घोड़े परम सिद्धि पाते हैं ॥ ८७ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पुष्यस्नानाध्यायोऽष्टचत्वारिंशः ॥ ४८ ॥



अथ पट्टलक्षणाध्यायः

यहाँ पर आगम प्रदर्शन—

विस्तरशो निर्दिष्टं पट्टानां लक्षणं यदाचार्यैः ।
तत्सङ्क्षेपः क्रियते मयाऽत्र सकलार्थसम्पन्नः ॥ १ ॥

प्राचीन आचार्यों ने विस्तार पूर्वक जो पट्टों (नरेन्द्र मुकुटों) का लक्षण कहा है यहाँ पर सकल अर्थ से युत उसी को संक्षेप करके कहते हैं ॥ १ ॥

मुकुट का प्रमाण और फल—

पट्टः शुभदो राज्ञां मध्येऽष्टावङ्गुलानि विस्तीर्णः ।
सप्त नरेन्द्रमहिष्याः षड् युवराजस्य निर्दिष्टः ॥ २ ॥
चतुरङ्गुलविस्तारः पट्टः सेनापतेर्भवति मध्ये ।
द्वे च प्रसादपट्टः पञ्चैते कीर्तिताः पट्टाः ॥ ३ ॥

मध्य में आठ अङ्गुल विस्तार वाला मुकुट राजा का, सात अङ्गुल विस्तार वाला रानी का, छै अङ्गुल विस्तार वाला युवराज का और चार अङ्गुल विस्तार वाला सेनापति का मुकुट शुभ करने वाला होता है। तथा दो अङ्गुल विस्तार वाला मुकुट प्रसाद पट्ट कहलाता है, यह मुकुट राजा किसी को पहना सकता है। इस तरह ये पाँच मुकुट कहे गये हैं ॥ २-३ ॥

फिर मुकुट का प्रमाण और फल—

सर्वे द्विगुणा यामा मध्यादर्धेन पार्श्वविस्तीर्णाः ।
सर्वे च शुद्धकाञ्चनविनिर्मिताः श्रेयसो वृद्ध्यै ॥ ४ ॥

सब पूर्वोक्त मुकुट के विस्तार से द्विगुणित दैर्घ्य और विस्तार का आधा पार्श्व का विस्तार होना चाहिये। ये शुद्ध सुवर्ण के बने हों तो श्रेय वृद्धि कारक होते हैं ॥ ४ ॥

फिर मुकुट का प्रमाण और फल—

पञ्चशिखो भूमिपतेस्त्रिशिखो युवराजपार्थिवमहिष्योः ।
एकशिखः सैन्यपतेः प्रसादपट्टो विना शिखया ॥ ५ ॥

पाँच शिखा वाला राजा का, तीन शिखा वाला युवराज तथा रानी का और एक शिखा वाला मकुट सेनापति का शुभकारी है। प्रसाद पट्ट बिना शिखा का बनाना चाहिये ॥ ५ ॥

मुकुट से शुभाशुभ ज्ञान—

क्रियमाणं यदि पत्रं सुखेन विस्तारमेति पट्टस्य ।
वृद्धिजयौ भूमिपतेस्तथा प्रजानां च सुखसम्पत् ॥ ६ ॥

यदि मुकुट के बनाये हुये पत्र अनायास फैल जायँ तो राजा की वृद्धि और विजय होती है, तथा प्रजा को सुख सम्पत्ति मिलती है ॥ ६ ॥

मुकुट से फिर शुभाशुभ ज्ञान—

जीवितराज्यविनाशं करोति मध्ये व्रणः समुत्पन्नः ।
मध्ये स्फुटितस्त्याज्यो विघ्नकरः पार्श्वयोः स्फुटितः ॥ ७ ॥

यदि बनाते हुये मुकुट के मध्य में छिद्र हो जाय तो प्राण-राज्य दोनों का नाश करता है। मध्य में फट जाय तो त्याग देना चाहिये तथा दोनों पार्श्व में फटा हो तो विघ्नकारी होता है।

यहाँ पर काश्यप—

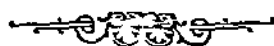
क्रियमाणं यदा पत्रं मध्ये स्फुटति भिद्यते । तदा नृपभयं प्रोक्तं यस्यार्थे वा प्रकल्पितम् ॥
सुलक्षणं प्रमाणस्थं मुकुटं च हितावहम् । सुरूपं दर्शनीयं च प्रजानां वृद्धिदं स्मृतम् ॥७॥

मुकुट में अशुभ लक्षण देखकर क्या करना चाहिये—

अशुभनिमित्तोत्पत्तौ शास्त्रज्ञः शान्तिमादिशेद्राज्ञः ।
शस्तनिमित्तः पट्टो नृपराष्ट्रविवृद्धये भवति ॥ ८ ॥

यदि मुकुट में अशुभ लक्षण दिखाई दे तो शास्त्र को जानने वाले पण्डित राजा को शान्ति कराने का आदेश करें। तथा शुभ लक्षण युत मुकुट राजा-राज्य दोनों की वृद्धि के लिये होता है ॥ ८ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पट्टलक्षणाध्याय एकोनपञ्चाशः ॥ ४९ ॥



अथ खड्गलक्षणाध्यायः

प्रथम खड्ग का प्रमाण और व्रणों से शुभाशुभ फल—

अङ्गुलशतार्धमुत्तम ऊनः स्यात्पञ्चविंशतिः खड्गः ।
अङ्गुलमानाज्ज्ञेयो व्रणोऽशुभो विषमपर्वस्थः ॥ १ ॥

पचास अङ्गुल प्रमाण खड्ग उत्तम, पचीस अङ्गुल का अधम और पचीस अङ्गुल से पचास अङ्गुल के भीतर का खड्ग मध्यम होता है। अङ्गुल मान को लेकर विषम

पर्व पर स्थित व्रण अशुभ है, जैसे प्रथम, तृतीय, पञ्चम आदि विषम अङ्गुल पर आये कथित लक्षण युत व्रण हो तो अशुभ होता है ॥ १ ॥

व्रणों का शुभ लक्षण—

श्रीवृक्षवर्धमानातपत्रशिवलिङ्गकुण्डलाब्जानाम् ।
सदृशा व्रणाः प्रशस्ता ध्वजायुधस्वस्तिकानां च ॥ २ ॥

बेल, वर्धमान, छत्र, शिवलिङ्ग, कुण्डल, कमल, पताका, खड्ग और शुभ वस्तुओं का व्रण (चिह्न) प्रशस्त है ॥ २ ॥

व्रणों का अशुभ लक्षण—

कृकलासकाककङ्कक्रव्यादकबन्धवृश्चिकाकृतयः ।
खड्गे व्रणा न शुभदा वंशानुगताः प्रभूताश्च ॥ ३ ॥

गिरगिट, काक, गिद्ध, मांस भोजी पक्षी, बिना शिर के पुरुष और बिच्छू की आकृति का व्रण शुभ नहीं होता है । तथा वंश (खड्ग के उच्च भाग में) अनुगत (स्थित) नाना आकृति वाले व्रण शुभ नहीं हैं ॥ ३ ॥

खड्ग का लक्षण—

स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो वंशच्छिन्नो न दृग्मनोऽनुगतः ।
अस्वन इति चानिष्टः प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः ॥ ४ ॥

फटा हुआ, छोटा, टूटा हुआ, वश प्रदेश से कटा हुआ, दृष्टि और मन से अप्रिय तथा शब्द रहित खड्ग अशुभकारी और इसके विपरीत लक्षणयुत खड्ग शुभकारी होता है ॥ ४ ॥

खड्ग की चेष्टा और फल—

क्वणितं मरणायोक्तं पराजयाय प्रवर्तनं कोशात् ।
स्वयमुद्गीर्णे युद्धं ज्वलिते विजयो भवति खड्गे ॥ ५ ॥

खड्ग से अचानक शब्द हो तो मरण, म्यान से नहीं निकलता हो तो पराजय, म्यान से अपने आप निकल जाय तो युद्ध और अनायास खड्ग प्रज्वलित हो तो विजय होती है ॥ ५ ॥

खड्ग के विषय में कुछ उपदेश—

नाकारणं विवृणुयान्न विघट्टयेच्च
पश्येन्न तत्र वदनं न वदेच्च मूल्यम् ।
देशं न चास्य कथयेत् प्रतिमानयेन्न
नैव स्पृशेन्नृपतिरप्रयतोऽसियष्टिम् ॥ ६ ॥

राजा अकारण खड्ग को म्यान से न निकाले, न चलावे, उसमें अपना

मुख न देखे, उसकी कीमत न बतावे, उसका उत्पत्ति स्थान न बतावे, अङ्गुलियों से न नापे और असंयत होकर उसको स्पर्श न करे ॥ ६ ॥

खड्ग का और लक्षण—

गोजिह्वासंस्थानो नीलोत्पलवंशपत्रसदृशश्च ।

करवीरपत्रशूलाग्रमण्डलाग्रा प्रशस्ताः स्युः ॥ ७ ॥

गाय के जीभ के समान आकृति वाला, नील कमल दल के सदृश, बाँस के पत्र सदृश, करवीर फूल के पत्र सदृश, शूल की तरह अग्र भाग वाला और वर्तुलाकार अग्र वाला खड्ग प्रशस्त है ॥ ७ ॥

खड्ग का और लक्षण—

निष्पन्नो न च्छेद्यो निकषैः कार्यः प्रमाणयुक्तः सः ।

मूले म्रियते स्वामी जननी तस्याग्रतश्छिन्ने ॥ ८ ॥

यदि खड्ग प्रमाण से अधिक हो जाय तो उसको काटना नहीं चाहिये, किन्तु घिसकर प्रमाण तुल्य करना चाहिये । यदि खड्ग के मूल भाग से काटे तो राजा और अग्रभाग से काटे तो उस की माता की मृत्यु होती है ।

यहाँ पर काश्यप—

उत्पन्नो न पुनश्छेद्यो निष्पन्नो यः प्रमाणतः । मुष्टया मङ्गे म्रियेत्स्वामी तदग्रे तस्य मातरम् ॥
तस्मान्न छेदयेत् खड्गमात्मनोऽशुभदं यतः । निघर्षणैः प्रमाणस्थः कार्यो येन शुभो भवेत् ॥ ८ ॥

खड्ग की मूठ को देख कर व्रण ज्ञान—

यस्मिन् त्सरुप्रदेशे व्रणो भवेत्तद्वदेव खड्गस्य ।

वनितानामिव तिलको गुह्ये वाच्यो मुखे दृष्ट्वा ॥ ९ ॥

जिस तरह स्त्रियों के मुख पर तिल देख कर गुह्य स्थानीय तिल बताया जाता है उसी तरह खड्ग की मूठ में दाग देख कर उसके मध्य में व्रण (छेद) कहना चाहिये ॥ ९ ॥

प्रश्न से खड्ग में व्रण ज्ञान का उपाय—

अथवा स्पृशति यदङ्गं प्रष्टा निस्त्रिंशभृत्तदवधार्य ।

कोशस्थस्यादेश्यो व्रणोऽस्ति शास्त्रं विदित्वेदम् ॥ १० ॥

यदि कोई खड्गधारी पुरुष आकर प्रश्न करे कि 'इस खड्ग में व्रण है या नहीं' तो उस समय वह प्रश्न कर्ता जिस अङ्ग का स्पर्श करता हो उसको निश्चय कर के वक्ष्यमाण शास्त्र को ज्ञान कर कोश स्थित खड्ग में व्रण कहना चाहिये ॥ १० ॥

खड्ग में व्रण ज्ञान का प्रकार—

शिरसि स्पृष्टे प्रथमेऽङ्गुले द्वितीये ललाटसंस्पर्शे ।

भ्रूमध्ये च तृतीये नेत्रे स्पृष्टे चतुर्थे च ॥ ११ ॥

यदि प्रश्न कर्ता शिर को स्पर्श करे तो खड्ग मूल से प्रथम अङ्गुल में, ललाट स्पर्श करे तो द्वितीय अङ्गुल में, भ्रू मध्य का स्पर्श करे तो तृतीय अङ्गुल में और नेत्र स्पर्श करे तो चतुर्थ अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये ॥ ११ ॥

व्रण ज्ञान का प्रकार—

नासौष्ठकपोलहनुश्रवणग्रीवांसके च पञ्चाद्याः ।
उरसि द्वादशसंस्थस्त्रयोदशे कक्षयोर्ज्ञेयः ॥ १२ ॥

नासिका स्पर्श करे तो पञ्चम अङ्गुल में, ओठ का स्पर्श करे तो छठे अङ्गुल में, गाल का स्पर्श करे तो सप्तम अङ्गुल में, ठोढी का स्पर्श करे तो अष्टम अङ्गुल में, कान का स्पर्श करे तो नवम अङ्गुल में, गरदन का स्पर्श करे तो दशम अङ्गुल में, कन्धे का स्पर्श करे तो एकादश अङ्गुल में, छाती का स्पर्श करे तो बारहवें अङ्गुल में और कोखों का स्पर्श करे तो तेरहवें अङ्गुल में, व्रण कहना चाहिये ॥ १२ ॥

खड्ग में व्रण ज्ञान का प्रकार—

स्तनहृदयोदरकुक्षीनाभौ तु चतुर्दशादयो ज्ञेयाः ।
नाभिमूले कट्यां गुह्ये चैकोनविंशतितः ॥ १३ ॥

स्तन का स्पर्श करे तो चौदहवें अङ्गुल में, हृदय का स्पर्श करे तो पन्द्रहवें अङ्गुल में, पेट का स्पर्श करे तो सोलहवें अङ्गुल में, कुक्षि का स्पर्श करे तो सत्रहवें अङ्गुल में, नाभि का स्पर्श करे तो अट्ठारहवें अङ्गुल में नाभि के मूल का स्पर्श करे तो उन्नीसवें अङ्गुल में, कटि प्रदेश का स्पर्श करे तो बीसवें अङ्गुल में और गुह्य स्थान का स्पर्श करे तो ईक्कीसवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये ॥ १३ ॥

खड्ग में व्रण ज्ञान का प्रकार—

ऊर्वोर्द्वाविंशे स्यादूर्वोर्मध्ये व्रणस्त्रयोविंशे ।
जानुनि च चतुर्विंशे जङ्घायां पञ्चविंशे च ॥ १४ ॥

ऊरू का स्पर्श करे तो बाईसवें अङ्गुल में, ऊरुद्वय के मध्य भाग का स्पर्श करे तो तेईसवें अङ्गुल में, जानु का स्पर्श करे तो चौबीसवें अङ्गुल में और जङ्घा का स्पर्श करे तो पच्चीसवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये ॥ १४ ॥

खड्ग में व्रण ज्ञान का प्रकार—

जङ्घामध्ये गुल्फे पार्ष्ण्यां पादे तदङ्गुलीष्वपि च ।
षड्विंशतिकाद्यास्त्रिंशदिति मतेन गर्गस्य ॥ १५ ॥

जङ्घाओं के मध्य भाग का स्पर्श करे तो छब्बीसवें अङ्गुल में, गुल्फ (टखना=पाँव की गाठी) का स्पर्श करे तो सत्ताईसवें अङ्गुल, एड़ी का स्पर्श करे तो अट्ठाईसवें अङ्गुल में, पाँव का स्पर्श करे तो उन्तीसवें अङ्गुल में और पाँव की अङ्गुली का स्पर्श करे तो तीसवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये। यह गर्गाचार्य के मत से कहे हैं।

यहाँ पर वर्ग—

शिरो ललाटं भ्रूमध्यं नेत्रघ्राणकपोलकम्। हनुश्रोत्रं तथा ग्रीवा स्कन्धो वक्षश्च कक्षकम्॥

स्तनौ हृत्कोडकुक्षी च नाभिस्तन्मूलमेव च। कटिगुह्योरुमध्यं च जानुजङ्घे तयोरधः॥

गुल्फं पार्ष्णिस्तथापादमङ्गुलिस्पर्शने ध्रुवम्। मूलात्प्रभृति खड्गेऽपि व्रणं त्रिंशाङ्गुलं वदेत्॥

पूर्वोक्त व्रणों का फल—

पुत्रमरणं धनाप्तिर्धनहानिः सम्पदश्च बन्धश्च।
एकाद्यङ्गुलसंस्थैर्व्रणैः फलं निर्दिशेत्क्रमशः॥ १६॥

एक आदि अङ्गुल में व्रण हो तो क्रम से पुत्र मरण आदि फल कहना चाहिये। जैसे प्रथम अङ्गुल में व्रण हो तो पुत्र का मरण, द्वितीय में धन की प्राप्ति, तृतीय में धन हानि, चतुर्थ में सम्पत्ति और पञ्चम में बन्धन कहना चाहिये॥ १६॥

षष्ठ आदि अङ्गुल में स्थित व्रण का फल—

सुतलाभः कलहो हस्तिलब्धयः पुत्रमरणधनलाभौ।
क्रमशो विनाशवनिताप्तिचित्तदुःखानि षट्प्रभृति॥ १७॥

षष्ठ आदि अङ्गुल में व्रण हो तो क्रम से सुत लाभ आदि फल कहना चाहिये जैसे छठे अङ्गुल में व्रण हो तो पुत्रलाभ, सातवें में कलह, आठवें में हाथी का लाभ, नवें में पुत्र मरण, दशवें में धनलाभ, ग्यारहवें में विनाश, बारहवें में स्त्री की प्राप्ति और तेरहवें अङ्गुल में व्रण हो तो मन में दुःख होता है॥ १७॥

चौदहवें आदि अङ्गुल में व्रण का फल—

लब्धिर्हानिः स्त्रीलब्धयो वधो वृद्धिमरणपरितोषाः।
ज्ञेयाश्चतुर्दशादिषु धनहानिश्चैकविंशे स्यात्॥ १८॥

यदि चौदहवें अंगुल में व्रण हो तो लाभ, पन्द्रहवें में हानि, सोलहवें में स्त्री लाभ, सत्रहवें में वध, अट्ठारहवें में वृद्धि, उन्नीसवें में मरण और बीसवें अंगुल में व्रण हो तो प्रसन्नता होती है। तथा इक्कीसवें अङ्गुल में व्रण हो तो धन हानि होती है॥१८॥

बाईसवें आदि अंगुल में व्रण का फल—

वित्ताप्तिरनिर्वाणं धनागमो मृत्युसम्पदोऽस्वत्वम्।
ऐश्वर्यमृत्युराज्यानि च क्रमात्त्रिंशदिति यावत्॥ १९॥

बाईसवें अंगुल में व्रण हो तो धन का लाभ, तेईसवें में मृत्यु, चौबीसवें में धन लाभ, पच्चीसवें में मरण, छब्बीसवें में सम्पत्ति, सत्ताइसवें में निर्धनता, अट्ठाइसवें में ऐश्वर्य, उनतीसवें में मरण और तीसवें अंगुल में व्रण हो तो राज्य लाभ होता है॥१९॥

तीस अगुलों के बाद व्रणों के फल का विचार—

परतो न विशेषफलं विषमसमस्थास्तु पापशुभफलदाः।
कैश्चिददफलाः प्रदिष्टास्त्रिंशत्परतोऽग्रमिति यावत्॥ २०॥

तीस अंगुल के बाद विशेष फल नहीं होता, किन्तु सामान्य रूप से विषम अंगुल में व्रण हो तो अशुभ और सम में शुभ फल कहना चाहिये। कोई कोई (पराशर आदि आचार्य) तीस अंगुल के बाद अग्रभाग तक फल रहित बताते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

अंगुलानि च पञ्चाशत्प्रधानः खड्ग उच्यते। तदर्धको निकृष्टः स्यात्तन्मध्ये मध्यमः स्मृतः॥
विषमाङ्गुलसंस्थो यो व्रणः सोऽनिष्टदः स्मृतः। शुभः समाङ्गुलस्थस्तु मध्यगो मध्यमः स्मृतः॥
त्रिंशद्यावद्विनिर्दिष्टमङ्गुलानां फलं ततः। षोडशाङ्गुलगो ज्ञेयो व्रणो मध्यफलप्रदः॥२०॥

खड्ग में गन्ध का लक्षण और फल—

करवीरोत्पलगजमदघृतकुङ्कुमकुन्दचम्पकसगन्धः।
शुभदोऽनिष्टो गोमूत्रपङ्कमेदःसदृशगन्धः॥ २१॥
कूर्मवसासृक्क्षारोपमश्च भयदुःखदो भवति गन्धः।
वैदूर्यकनकविद्युत्प्रभो जयारोग्यवृद्धिकरः॥ २२॥

करवीर, कमल, हाथी के मद, घृत, कुङ्कुम, कुन्द या चम्पा पुष्प के समान सुगन्धि हो तो शुभदायी होता है। गो मूत्र, पङ्क या मेद (हड्डी के अन्तर्गत तैल भाग) की तरह गन्ध हो तो अशुभ फलदायी होता है। कछुआ, मज्जा, रक्त या क्षार की तरह गन्ध हो तो भय और दुःख देने वाला होता है। वैदूर्य मणि, सुवर्ण या बिजली के समान खड्ग में कान्ति हो तो जय, आरोग्य और उन्नति कारक होता है॥२१-२२॥

शस्त्र पान प्रकार—

इदमौशनसं च शस्त्रपानं रुधिरेण श्रियमिच्छतः प्रदीप्ताम्।
हविषा गुणवत्सुताभिलिप्सोः सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च वित्तम्॥२३॥
वडवोष्ट्रकरेणुदुग्धपानं यदि पापेन समीहतेऽर्थसिद्धिम्।
झषपित्तमृगाश्वबस्तदुग्धैः करिहस्तच्छिदये सतालगर्भैः॥ २४॥

उत्कृष्ट लक्ष्मी की इच्छा करने वाले अपने शस्त्र को रुधिर से पान देवे, गुणवान् पुत्रों की इच्छा करने वाले घृत से, अपरिमित धन की इच्छा करने वाले जल से, पाप (वधादि) से अर्थ सिद्धि चाहने वाले घोड़ी, ऊँटनी, हथिनी के दूध से और हाथी के शुण्ड काटने की इच्छा वाले ताड़ के रस (ताड़ी) से मिश्रित मछली के पित्त तथा हरिणी, घोड़ी या छाग के दूध से शस्त्र को पान देवे॥ २३-२४॥

शस्त्र पान का और प्रकार—

आर्कं पयो हुडुविषाणमषीसमेतं
पारावताखुशकृता च युतः प्रलेपः।
शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं
पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः॥२५॥

शस्त्र पर तिल का तेल मलने के बाद आक के वृक्ष के गोंद और मेष के सींग के भस्म से मिली हुई कबूतर और चूहे की बीट को उसके ऊपर लेप करे, बाद तेज करके उससे पत्थर पर भी मारे तो वह नहीं टूटता है ॥ २५ ॥

शस्त्र पान का और प्रकार—

क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते पायितमायसं यत् ।
सम्यक् शितं चाश्मनि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम् ॥

केले की राख में मट्ठा मिलाकर उस में एक अहोरात्र तक लोहे को छोड़ दे, बाद उस को निकाल कर तेज बनावे फिर उससे पत्थर या अन्य लोहे पर भी मारे तो वह नहीं टूटता है ॥ २६ ॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां खड्गलक्षणाध्यायः पञ्चाशः ॥ ५० ॥



अथ अङ्गविद्याध्यायः

वहां पर प्रयोजन का प्रदर्शन—

दैवज्ञेन शुभाशुभं दिगुदितस्थानाहृतानीक्षता
वाच्यं प्रष्टृनिजापराङ्गघटनां चालोक्य कालं धिया ।
सर्वज्ञो हि चराचरात्मकतयाऽसौ सर्वदर्शी विभु-
श्चेष्टाव्याहृतिभिः शुभाशुभफलं सन्दर्शयत्यर्थिनाम् ॥ १ ॥

प्रश्न कर्त्ता की दिशा, उसकी वाणी, उसका स्थान और उससे लाई हुई वस्तु को देखते हुये, प्रश्नकर्त्ता के अपने और वहां पर स्थित दूसरे के अङ्ग की घटना देख कर तथा समय को अपनी बुद्धि से विचार कर दैवज्ञ शुभाशुभ फल कहे। क्योंकि वह काल चराचर सब प्राणियों का आत्मस्वरूप होने के कारण विभु और सब को देखने वाला है। वही चेष्टा और वचनों के द्वारा प्रश्नकर्ता को शुभाशुभ फल दिखाता है।

यहां पर पराशर—

इह खलु चराचराणां भूतानां कालोऽन्तरात्मा सर्वदा सर्वदर्शी शुभाशुभैर्यः फलसूचकः स विशेषेण प्राणिनां स्वपराङ्गेषु स्पर्शव्याहारेङ्गितचेष्टादिभिर्निमित्तैः फलमभिदर्शयति। तत्प्रयतो दैवज्ञोऽनुपहतमतिरवधार्य स्वशास्त्रार्थमनुसृत्य यशोधर्मानुग्रहार्थमर्थिनां शुभाशुभानामर्थानां भावाभावमभिनिर्दिशेत् ।

तत्र देशे दिशः कालं व्याहारं द्रव्यदर्शनम् ।
अङ्गमध्यङ्गसंस्पर्शं समीक्ष्य फलमादिशेत् ॥ १ ॥

प्रश्न करने का स्थान—

स्थानं पुष्पसुहासिभूरिफलभृत्सुस्निग्धकृत्तिच्छदा
सत्पक्षिच्युतशस्तसंज्ञिततरुच्छायोपगूढं समम् ।

देवर्षिद्विजसाधुसिद्धनिलयं सत्पुष्पसस्योक्षितं
सत्स्वादूदकनिर्मलत्वजनिताह्लादं च सच्छाद्वलम् ॥ २ ॥

जहाँ पुष्प रूप सुन्दर मुसुकान युत, बहुत से फलों से भरा हुआ, निर्मल छाल और पत्ते वाले, अशुभ पक्षियों से रहित और प्रशस्त संज्ञा वाले वृक्ष की छाया से आच्छादित तथा सम (बराबर) भूमि हो। देवता, ऋषि, ब्राह्मण, साधु या सिद्धों का स्थान हो, सुन्दर पुष्प और धान्यों से व्याप्त स्थान हो या सुन्दर, स्वादिष्ट, निर्मल जल से उत्पन्न, प्रसन्नता से युत सुन्दर दूर्वाओं से व्याप्त स्थान हो वहाँ प्रश्न करना शुभ है ॥ २ ॥

प्रश्न करने में अशुभ स्थान—

छिन्नभिन्नकृमिखातकण्टकिप्लुष्टरूक्षकुटिलैर्न सत्कुजैः।
क्रूरपक्षियुतनिन्द्यनामभिः शुष्कशीर्णबहुपर्णचर्मभिः ॥ ३ ॥

जहाँ कटा, फटा, कीड़ों से खाये, काँटेदार, जले हुये, रूखे और कुटिल वृक्ष हों तथा अशुभ पक्षियों (काक, गृद्ध, बक आदि) से युत, बहुत पत्र और खालों से रहित वृक्ष हो वहाँ प्रश्न करना अशुभ है ॥ ३ ॥

प्रश्न करने में और अशुभ स्थान—

श्मशानशून्यायतनं चतुष्पथं तथाऽमनोज्ञं विषमं सदोपरम्।
अवस्कराङ्गारकपालभस्मभिश्चितं तुषैः शुष्कतृणैर्न शोभनम् ॥४॥

श्मशान, शून्य देवगृह, चौराहा, चित्त में ग्लानि पैदा करने वाला, विषम (निम्नोन्नत), सदा ऊपर रहने वाला, अशुद्ध फूटे भाण्ड, कोयला, आदमी की खोपड़ी, भस्म, तुष और सूखे घास से व्याप्त स्थान में प्रश्न करना अशुभ है ॥ ४ ॥

प्रश्न करने में और अशुभ स्थान—

प्रव्रजितनग्ननापितरिपुबन्धनसौनिकैस्तथा श्वपचैः।
कितवयतिपीडितैर्युतमायुधमाध्वीकविक्रयैर्न शुभम् ॥ ५ ॥

जहाँ पर सन्यासी, नंगे आदमी, नाई (हजाम), शत्रु, बन्धन शाला, कसाई, चाण्डाल, धूर्त, यति ये रहते हों वहाँ प्रश्न नहीं करना चाहिये तथा शस्त्र और मद्य के विक्रय स्थान में भी प्रश्न करना अशुभ है ॥ ५ ॥

प्रश्न करने में दिशा और काल का लक्षण—

प्रागुत्तरेशाश्च दिशः प्रशस्ताः प्रष्टुर्न वायव्यमुयमाग्निरक्षः।
पूर्वाह्नकालेऽस्ति शुभं न रात्रौ सन्ध्याद्वये प्रश्नकृतोऽपराह्णे ॥६॥

पूर्व, उत्तर या ईशान कोण की तरफ मुंह करके प्रश्न करना शुभ और वायव्य, पश्चिम, दक्षिण, आग्नेय या नैर्ऋत्य कोण की तरफ मुख करके प्रश्न करना अशुभ है। तथा पूर्वाह्न समय में शुभ और रात्रि, दोनों सन्ध्यायें या अपराह्न में प्रश्न करना अशुभ है।

यहाँ पर पराशर—

छिन्नभिन्नशुष्ककृशवक्रकन्टकजाघदग्धकण्टकिकण्याद्‌द्विजनिषेवितामशस्तनामाङ्कितपादपच्छाये श्मशानशून्यायतनचत्वरोषररिपुनापितायुधनद्यविक्रयशालासु नैर्ऋताग्नेयवायव्यवायव्यासाभिमुखः प्रचोदयेत्तस्येष्टमर्थमनर्थाय विन्द्यात्।

वेलाः सर्वाः प्रशस्यन्ते पूर्वाह्णे परिपृच्छताम्। सन्ध्ययोरपराह्णे तु क्षपायां तु विगर्हिताः ॥६॥

प्रश्न कालिक शुभाशुभ लक्षण—

यात्राविधाने हि शुभाशुभं यत् प्रोक्तं निमित्तं तदिहापि वाच्यम्।
दृष्ट्वा पुरो वा जनताहृतं वा प्रष्टुः स्थितं पाणितलेऽथ वस्त्रे ॥ ७ ॥

यात्रा के विधान में जो शुभाशुभ निमित्त कहे गये हैं, उन निमित्तों को सम्मुख, किसी मनुष्य से लाये हुए, प्रश्न कर्ता के हस्त में या वस्त्र में देख कर शुभाशुभ फल कहना चाहिए। जैसे सरसों, दोना, जल और काजल देख कर शुभ तथा कपास, औषध और काले धान्य देख कर अशुभ कहना चाहिए।

यात्राविधाने निर्दिष्टं निमित्तं यच्छुभाशुभम्। तदेव दृष्ट्वा दैवज्ञो वाञ्छासिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥७॥

पुरुष, स्त्री और नपुंसक संज्ञक अंग—

अथाङ्गान्यूर्वोष्ठस्तनवृषणपादं च दशना
भुजौ हस्तौ गण्डौ कचगलनखाङ्गुष्ठमपि यत्।
सशङ्खं कक्षांसं श्रवणगुदसन्धीति पुरुषे
स्त्रियां भ्रूनासास्फिग्वलिकटिसुलेखाङ्गुलिचयम् ॥ ८ ॥

जिह्वा ग्रीवा पिण्डिके पार्ष्णियुग्मं जङ्घे नाभिः कर्णपाली कृकाटी।
वक्त्रं पृष्ठं जत्रुजान्वस्थिपार्श्वं हृत्ताल्वक्षी मेहनोरस्त्रिकं च ॥९॥

नपुंसकाख्यं च शिरो ललाटमाद्यैर्भवेत्सिद्धिरपरैश्चिरेण।
सिद्धिर्भवेन्नातु नपुंसकैर्ना लक्षस्तैर्मग्नकृशैश्च पूर्वैः ॥ १० ॥

ऊरू, ओठ, स्तन, अण्डकोश, पाँव, दाँत, बाहु, हाथ, गाल, केश, कण्ठ, नख, अंगूठा, शंख, काँख, कन्धा, कान, गुह्येन्द्रिय, दो अङ्गों के सन्धि स्थान ये सब पुरुष संज्ञक हैं।

भौंह, नाक, स्फिक् (नितम्ब), त्रिवली, कमर, कर मध्य की सुन्दर रेखा, अंगुली, जीभ, गर्दन, दोनों जंघाओं के पृष्ठ भाग, एड़ी, जंघा, नाभि, कर्णपाली, कृकाटी (गर्दन का पृष्ठ-भाग) ये सब स्त्री संज्ञक अंग हैं।

मुख, पृष्ठ, काँखों की सन्धि, जानु, हड्डी, बगल, हृदय, तालु, नेत्र, लिङ्ग, छाती, त्रिक (कटि का पश्चिम भाग), शिर, ललाट, ये सब नपुंसक अङ्ग हैं।

आद्य (पुरुष) संज्ञक अङ्ग स्पर्श करते हुये प्रश्न करे तो शीघ्र सिद्धि होती है। अपर (स्त्री संज्ञक) अङ्ग से देर में और नपुंसक संज्ञक अङ्ग स्पर्श करते हुये प्रश्न

करे तो कदापि सिद्धि नहीं होती है। यदि पुरुष सञ्ज्ञक या स्त्री संज्ञक अङ्ग रूखा, क्षत, भग्न या कृश हो तो कदापि सिद्धि नहीं होती है ॥ ८–१० ॥

अलग २ अङ्ग स्पर्श का फल—

स्पृष्टे वा चालिते वाऽपि पादाङ्गुष्ठेऽक्षिरुग्भवेत् ।
अङ्गुल्यां दुहितुः शोकं शिरोघाते नृपाद्भयम् ॥ ११ ॥

यदि प्रश्नकर्त्ता पांव के अंगूठे का स्पर्श करते हुये या उसको हिलाते हुये प्रश्न करे तो नेत्र रोग, अङ्गुली का स्पर्श करते हुये या हिलाते हुये प्रश्न करे तो कन्या को शोक और शिर पर आघात करते हुए प्रश्न करे तो राजा से भय होता है ॥

यहाँ पर पराशर—

अथ पृथक्पृथक् फल निर्देश.। तत्र पादाङ्गुष्ठे प्रचलयन् स्पृष्ट्वा वा पृच्छेत् मुखचक्षुरोगं विनिर्दिशेत्। अङ्गुलिं स्पृष्ट्वा दुहितृशोकं शिरोऽभिहन्यमानं राजतो भयम् ॥ ११ ॥

वक्षःस्थल आदि अङ्ग स्पर्श का फल—

विप्रयोगमुरसि स्वगात्रतः कर्पटाहृतिरनर्थदा भवेत् ।
स्यात्प्रियाप्तिरभिगृह्य कर्पटं पृच्छतश्चरणपादयोजितुः ॥ १२ ॥

यदि प्रश्न करने वाला छाती को छूते हुए प्रश्न करे तो विप्रयोग (किसी स्नेही से वियोग) होता है। अपने शरीर से कोई वस्त्र उतारते हुए प्रश्न करे तो अनर्थ होता है और वस्त्र को पकड़ कर एक पाव को दूसरे पांव पर रखते हुए प्रश्न करे तो प्रिय का लाभ होता है ॥

यहाँ पर पराशर—

उरः स्पृष्ट्वा विप्रयोगं स्वगात्राद्वस्त्रमुत्सृजेत्। तस्यानर्थागमं पादं पादेन संस्पृशेत् पटम् ॥
तमभिगृह्य वा पृच्छेद्विन्द्यात्प्रियसमागमम् ॥ १२ ॥

पाव के अंगूठे आदि अङ्ग स्पर्श का फल—

पादाङ्गुष्ठेन विलिखेद्भूमिं क्षेत्रोत्थचिन्तया ।
हस्तेन पादौ कण्डूयेत्तस्य दासीमयी च सा ॥ १३ ॥

यदि प्रश्नकर्त्ता पांव के अंगूठे से भूमि पर लिखे तो खेत की चिन्ता और दोनों हाथों से दोनों पांवों को खुजलावे तो दासी की चिन्ता कहनी चाहिये।

यहाँ पर पराशर—

अङ्गुष्ठेन लिखेद्भूमिं क्षेत्रचिन्तां विचिन्तयेत्। हस्तेन पादौ कण्डूयेत् कुर्याद्दासी कृतां स ताम् ॥

प्रश्न काल में ताल पत्र आदि के दर्शन का फल—

तालभूर्जपटदर्शनेऽशुकं चिन्तयेत्कचतुषास्थिभस्मगम् ।
व्याधिराश्रयति रज्जुजालकं वल्कलं च समवेक्ष्य बन्धनम् ॥ १४ ॥

यदि प्रश्न करने के समय ताड़ के वृक्ष के पत्ते, भोजपत्र या वस्त्र का दर्शन हो

तो वस्त्र की चिन्ता कहनी चाहिये। केश, तुष (धान्यों की भूसी), हड्डी या भस्म पर बैठा हुआ प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे तो व्याधि होती है। तथा प्रश्न काल में रस्सी का जाल और वृक्ष का छाल देखने से बन्धन होता है।

यहाँ पर पराशर—

तालभुर्जपत्रदर्शने वस्त्रार्थं केशास्थिभस्मान्याक्रम्य व्याधिभयं ब्रूयात्।
निगडजालरज्ज्वाश्रित्य वल्कलान्यधिष्ठाय दर्शने वा बन्धनभयम् ॥ १४ ॥

प्रश्न काल में पीपल आदि के दर्शन का फल—

पिप्पलीमरिचशुण्ठिवारिदै रोध्रकुष्ठवसनाम्बुजीरकैः।
गन्धमांसिशतपुष्पया वदेत्पृच्छतस्तगरकेण चिन्तयेत् ॥ १५ ॥
स्त्रीपुरुषदोषपीडितसर्वार्थसुतार्थधान्यतनयानाम्।
द्विचतुष्पदक्षितीनां विनाशतः कीर्तितैर्दृष्टैः ॥ १६ ॥

यदि प्रश्न काल में पीपल, मिर्च, सोंठ, मुस्ता (नागर मोथा), लोध, कूट, वस्त्र, नेत्रवाला, जीरा, गन्धमांसि (बाल छड), सौंफ और तगर के फूल का दर्शन हो तो क्रम से स्त्री के दोष, पुरुष के दोष, रोगी, सर्वनाश, अर्थनाश, पुत्र नाश, अर्थनाश, धान्यनाश, पुत्रनाश, द्विपदनाश, चतुष्पदनाश और भूमिनाश की चिन्ता कहनी चाहिए। जैसे पीपल के दर्शन से स्त्री दोष की, मिर्च के दर्शन से पुरुष दोष को, सोंठ के दर्शन से रोगी इत्यादि की चिन्ता कहनी चाहिये।

यहाँ पर पराशर—

पिप्पलीनां दर्शने प्रदुष्टस्त्रीकृतां चिन्तां मरिचस्य पापपुरुषकृतां शृङ्गवेरस्य मृतचिन्ताम्। अजाज्याः सुतनाशकृतां रोध्रस्यार्थनाशकृतां मुस्तस्य सर्वनाशकृतां कुष्ठस्य सुतनाशकृतां वस्त्रस्यार्थनाशकृतां ह्रीवेरस्य धान्यनाशकृतां तगरस्य भूमिनाशकृतां शतपुष्पया चतुष्पदनाशाय मांस्या द्विपदनाशकृताम् ॥ १५–१६ ॥

न्यग्रोधादि वश फल—

न्यग्रोधमधुकतिन्दुकजम्बूप्लक्षाम्रबदरजातिफलैः।
धनकनकपुरुषलोहांशुकरूप्योदुम्बराप्तिरपि करगैः ॥ १७ ॥

यदि प्रश्न काल में प्रश्नकर्ता के हाथ में बड़, महुआ, तिन्दू, जामुन, पाकड़, आम और बैर का फल हो तो क्रम से धन, सुवर्ण, द्विपद, लोहा, वस्त्र, चाँदी और औदुम्बर (ताँबा) की प्राप्ति कहनी चाहिए। जैसे बड़ का फल हाथ में हो तो धन की प्राप्ति, महुआ का फल हाथ में हो तो सुवर्ण की प्राप्ति इत्यादि कहनी चाहिये ॥ १७ ॥

धान्यों से पूर्ण पात्र आदि का फल—

धान्यपरिपूर्णपात्रं कुम्भः पूर्णः कुटुम्बवृद्धिकरौ।
गजगोशुनां पुरीषं धनयुवतिसुहृद्विनाशकरम् ॥ १८ ॥

यदि प्रश्न काल में धान्यों से परिपूर्ण पात्र या पूर्ण घट दिखाई दे तो कुटुम्बों

की वृद्धि होती है, यदि हाथी की लीद, गाय का गोबर और कुत्ते की विष्ठा दिखाई दे तो क्रम से धन का विनाश, युवती स्त्री का विनाश और मित्रों का विनाश कहना चाहिये ॥ १८ ॥

प्रश्न काल में पशु आदि के दर्शन का फल—

पशुहस्तिमहिषपङ्कजरजतव्याघ्रैर्लभेत सन्दृष्टैः ।
अविधनविसनमलयजकौशेयाभरणसङ्घातम् ॥ १९ ॥

यदि प्रश्न काल में पशु, हाथी, भैंस कमल, चाँदी और बाघ दिखाई दे तो क्रम से कम्बल आदि ऊनी वस्त्र, धन, रेशमी वस्त्र, चन्दन, रेशमी वस्त्र और आभूषण की प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥

मित्र आदि की चिन्ता का ज्ञान—

पृच्छा वृद्धश्रावकसुपरिभ्राड्दर्शने नृभिर्विहिता ।
मित्रद्यूतार्थभवा गणिकानृपसूतिकार्थकृता ॥ २० ॥

यदि प्रश्न काल में वृद्ध श्रावक (कापालिक) का दर्शन हो तो मित्र, द्यूत, और धन सम्बन्धी चिन्ता तथा उत्तम सन्यासी का दर्शन हो तो वेश्या, राजा और प्रसूता स्त्री के लिये चिन्ता कहनी चाहिये ॥ २० ॥

बौद्ध आदि के दर्शन का फल—

शाक्योपाध्यायार्हन्निर्ग्रन्थिनिमित्तनिगमकैवर्तैः ।
चौरचमूपतिवणिजां दासीयोधापणस्थवध्यानाम् ॥ २१

यदि प्रश्न काल में बौद्धमतानुयायी, उपाध्याय, अर्हत, निर्ग्रन्थी, दैवज्ञ, निगम और धीवर दिखाई दे तो क्रम से चोर, सेनापति, बनियाँ, दासी, योद्धा, दूकानदार और वध सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये ॥ २१ ॥

तापस आदि के दर्शन का फल—

तापसे शौण्डिके दृष्टे प्रोषितं पशुपालनम् ।
हृद्गतं पृच्छकस्य स्यादुञ्छवृत्तौ विपन्नता ॥ २२ ॥

यदि प्रश्न काल में तापस (तपस्वी) का दर्शन हो तो प्रवासी की और कलाल (मद्य बेचने वाले) का दर्शन हो तो पशुओं की रक्षा सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। यदि उञ्छ वृत्ति (गिरे हुये एक एक दाने को इकट्ठा करने वाले) का दर्शन हो तो विपत्ति की चिन्ता कहनी चाहिए ॥ २२ ॥

प्रश्न कालिक शब्द से चिन्ता का ज्ञान—

इच्छामि प्रष्टुं भण पश्यत्वार्यः समादिशेत्युक्ते ।
संयोगकुटुम्बोत्था लाभैश्वर्योद्गता चिन्ता ॥ २३ ॥

यदि प्रश्न करने के समय प्रश्नकर्ता के मुख से पहले पहल 'मैं पूछना चाहता हूँ आप कहिए' इस तरह का शब्द निकले तो सन्धि या कुटुम्ब सम्बन्धी, 'आप देखिये' इस तरह का शब्द निकले तो लाभ सम्बन्धी और 'आप आज्ञा दें' इस तरह का शब्द निकले तो ऐश्वर्य सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये ॥ २३ ॥

प्रश्न कालिक शब्द से और चिन्ता का ज्ञान—

निर्दिशेति गदिते जयाध्वजा प्रत्यवेक्ष्य मम चिन्तितं वद।
आशु सर्वजनमध्यगं त्वया दृश्यतामिति च बन्धुचौरजा ॥ २४ ॥

यदि प्रश्न काल में प्रश्न कर्ता के मुख से पहले पहल 'बताइये' ऐसा शब्द निकले तो जय या मार्ग सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। 'देख कर मेरे हृदय गत बात को बताइये' ऐसा निकले तो बन्धुकृत और 'आप शीघ्र देखिये' ऐसा शब्द निकले तो सब लोगों के मध्य गत प्रश्न कर्ता को चोर सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये ॥ २४ ॥

अङ्ग स्पर्श से चोर का ज्ञान—

अन्तःस्थेऽङ्गे स्वजन उदितो बाह्यजे बाह्य एव
पादाङ्गुष्ठाङ्गुलिकलनया दासदासीजनः स्यात्।
जङ्घे प्रेष्यो भवति भगिनी नाभितो हृत्स्वभार्या
पाण्यङ्गुष्ठाङ्गुलिचयकृतस्पर्शने पुत्रकन्ये ॥ २५ ॥

यदि प्रश्न काल में प्रश्न कर्ता भीतर के अङ्ग का स्पर्श करे तो अपना मनुष्य, बाहर के अङ्ग का स्पर्श करे तो बाहर के मनुष्य, पाँव के अंगूठे का स्पर्श करे तो दास, पाँव की अङ्गुली का स्पर्श करे तो दासी, जङ्घा का स्पर्श करे तो प्रेष्य (दूत), नाभि का स्पर्श करे तो बहन, हृदय का स्पर्श करे तो अपनी स्त्री, हाथ के अंगूठे का स्पर्श करे तो अपना पुत्र और हाथ की अङ्गुली का स्पर्श करे तो अपनी कन्या को चोर कहना चाहिये ॥ २५ ॥

पेट आदि के स्पर्श से चोर का ज्ञान—

मातरं जठरे मूर्ध्नि गुरुं दक्षिणवामकौ।
ग्राहू भ्राताऽथ तत्पत्नी स्पृष्टैवं चौरमादिशेत् ॥ २६ ॥

यदि प्रश्न काल में प्रश्न कर्ता पेट का स्पर्श करे तो माता, शिर स्पर्श करे तो गुरु, दक्षिण भुजा स्पर्श करे तो भाई और वाम भुजा स्पर्श करे तो भाभी को चोर कहना चाहिये ॥ २६ ॥

अङ्ग स्पर्श से प्रश्न कालिक शुभाशुभ ज्ञान—

अन्तरङ्गमवमुच्य बाह्यगस्पर्शनं यदि करोति पृच्छकः।
श्लेष्ममूत्रशकृतस्त्यजत्ययो पातयेत्करतलस्थवस्तु चेत् ॥ २७ ॥

भृशमवनामिताङ्गपरिमोटनतोऽप्यथवा
जनधृतरिक्तभाण्डमवलोक्य च चौरजनम् ।
हृतपतितक्षतास्मृतविनष्टविभग्नगतो-
न्मुषितमृताद्यनिष्टरवतो लभते न हृतम् ॥ २८ ॥

यदि प्रश्न काल में प्रश्न कर्ता भीतर के अंगों को छोड़ कर बाहर के अङ्गों का स्पर्श करे, कफ फेके, मूत्रोत्सर्ग या मलोत्सर्ग करे, अपने हाथ की वस्तु को गिरावे, अपने शरीर को झुकावे या अपने अङ्ग को तोड़े तो चोरी गई वस्तु नहीं पाता है। तथा किसी के हाथ में खाली पात्र या चोर को देख कर चोरी गई वस्तु नहीं पाता है। अथवा प्रश्न के समय हर लिया, गिर गया, कट गया, भूल गया, नष्ट हो गया, टूट गया, चोरी गया, मर गया आदि अनिष्ट शब्द उत्पन्न हों तो भी चोरी गई वस्तु *नहीं पाता है* ॥ २७–२८॥

पीडितों के मरण तथा प्रश्न कर्ता के भोजन का ज्ञान—

निगदितमिदं यत्तत्सर्वं तुषास्थिविषादिकैः
सह मृतकरं पीडार्त्तानां समं रुदितक्षुतैः ।
अवयवमपि स्पृष्ट्वान्तःस्थं दृढं मरुदाहरे-
दतिबहु तदा भुक्त्वाऽन्नं संस्थितः सुहितो वदेत् ॥२९॥

नष्ट चिन्ता में प्रतिपादित पूर्वोक्त (अन्तराङ्ग इत्यादि) स्थिति यदि तुष (धान्यों की भूसी), हड्डी, विष आदि देखने के साथ अथवा रोने या छींक के साथ हो तो रोगियों की मृत्यु होती है।

यदि भीतर के दृढ अङ्गों को स्पर्श करके श्वास निकालते हुये प्रश्न करे तो प्रश्न कर्ता अधिक अन्न खाकर प्रसन्न बैठा है, ऐसा दैवज्ञ को कहना चाहिए ॥ २९ ॥

ललाट आदि स्पर्श से भोजन ज्ञान—

ललाटस्पर्शनाच्छूकदर्शनाच्छालिजौदनम् ।
उरःस्पर्शात् षष्टिकाख्यं ग्रीवास्पर्शे च यावकम् ॥ ३० ॥

यदि प्रश्न कर्ता ललाट स्पर्श करे या शूक धान्य (यव आदि) का दर्शन करे तो साठी का चावल, छाती का स्पर्श करे तो षष्टिक (साठ रात में होने वाला) धान्य, गर्दन का स्पर्श करे तो यव इसने खाया है ऐसा कहना चाहिये ॥ ३० ॥

कुक्षि आदि स्पर्श से भोजन ज्ञान—

कुक्षिकुचजठरजानुस्पर्शे माषाः पयस्तिलयवागूः ।
आस्वादयते चोष्ठौ लिहते मधुरं रसं ज्ञेयम् ॥ ३१ ॥

यदि प्रश्न के समय कोख, स्तन, पेट, और जानु का स्पर्श करे तो क्रम से प्रश्न

कर्ता माष (उड़द), जल, तिल, और यव खाकर आया है, तथा ओठ को चबावे या चाटे तो मधुर रस खाकर आया है ऐसा कहना चाहिए ॥ ३१ ॥

ओष्ठ प्रान्त आदि स्पर्श से भोजन ज्ञान—

विसृक्के स्फोटयेजिह्वामाम्ले वक्त्रं विकूणयेत् ।
कटुकेऽथ कषायेऽथ हिक्केत् ष्ठीवेच सैन्धवे ॥ ३२ ॥

यदि प्रश्न के समय में सृक्क (ओष्ठ प्रान्त) में जिह्वा मारे तो प्रश्न कर्ता खट्टा, मुख सुजलावे तो कडुआ, हिचकी करे तो कषैला और थूके तो नमक खाया है ऐसा कहना चाहिये ॥ ३२ ॥

श्लेष्मत्याग आदि से भोजन का ज्ञान—

श्लेष्मत्यागे शुष्कतिक्तं तदल्पं श्रुत्वा क्रव्यादं वा प्रेक्ष्य वा मांसमिश्रम्।
भ्रूगण्डौष्ठस्पर्शने शाकुनं तद्भुक्तं तेनेत्युक्तमेतन्निमित्तम् ॥ ३३ ॥

यदि प्रश्न काल में कफ फेंके तो थोड़ी सूखी तीती वस्तु और मांस भोजी पक्षी को सुने या देखे तो मांस मिश्रित वस्तु तथा भ्रू, गाल या ओठ का स्पर्श करे तो प्रश्न कर्ता ने पक्षी का मांस खाया है ऐसा कहना चाहिये ॥ ३३ ॥

सिर आदि के स्पर्श से भोजन ज्ञान—

मूर्धगलकेशहनुशङ्खकर्णजङ्घं वस्ति च स्पृष्ट्वा ।
गजमहिषमेषशूकरगोशशमृगमहिषमांसयुग्भुक्तम् ॥ ३४ ॥

यदि प्रश्न काल में प्रश्न कर्ता, सिर, कण्ठ, ठोढी, केश, कनपटी, कान, जंघा और वस्ति (नाभि और लिङ्ग के बीच का स्थान) का स्पर्श करे तो क्रम से हाथी, भैंस, शूकर, मेष, गौ, खरगोश, मृग और भैंस के मांस से मिश्रित भोजन किया है ऐसा कहना चाहिये ॥ ३४ ॥

अशकुन दर्शन से भोजन ज्ञान—

दृष्टे श्रुतेऽप्यशकुने गोधामत्स्यामिषं वदेद्भुक्तम् ।
गर्भिण्या गर्भस्य च निपतनमेवं प्रकल्पयेत्प्रश्ने ॥ ३५ ॥

यदि प्रश्न काल में प्रश्न कर्ता अशकुन देखे या सुने तो गोह या मछली का मांस खाकर आया है ऐसा कहना चाहिये। इसी तरह गर्भिणी के प्रश्न में गर्भ स्राव की कल्पना करनी चाहिये, जैसे गर्भिणी के प्रश्न काल में अशकुन देखे या सुने तो गर्भस्राव कहना चाहिए ॥ ३५ ॥

गर्भ से क्या पैदा होगा—

पुंस्त्रीनपुंसकाख्ये दृष्टेऽनुमिते पुरःस्थिते स्पृष्टे ।
तज्जन्म भवति पानान्नपुष्पफलदर्शने च शुभम् ॥ ३६ ॥

यदि गर्भिणी के प्रश्न काल में प्रश्न कर्ता पुरुष, स्त्री या नपुंसक को देखे, उसकी

चिन्ता करे उसको सम्मुख स्थित देखे या उनका स्पर्श करे तो क्रम से उसीका जन्म कहना चाहिये अर्थात् पुरुष के दर्शन आदि से पुरुष का, स्त्री से स्त्री का और नपुंसक से नपुंसक का जन्म कहना चाहिये। इस समय आसव, अन्न, पुष्प, फल का दर्शन शुभ होता है ॥ ३६ ॥

गर्भ चिन्ता का ज्ञान—

अङ्गुष्ठेन भ्रूदरं चाङ्गुलिं वा स्पृष्ट्वा पृच्छेद्गर्भचिन्ता तदा स्यात्।
मध्वाज्याद्यैर्हेमरत्नप्रवालैरग्रस्थैर्वा मातृधात्र्यात्मजैश्च ॥ ३७ ॥

यदि स्त्री अपने अंगूठे से भ्रू युगल, पेट या अङ्गुलियों का स्पर्श करके प्रश्न करे या प्रश्न काल में मधु, घृत आदि (शोभन फल आदि), सुवर्ण, रत्न, मूँगा, मोती, धाई या पुत्र सम्मुख दिखाई दे तो गर्भ की चिन्ता कहनी चाहिये ॥ ३७ ॥

गर्भ और गर्भपात का ज्ञान—

गर्भयुता जठरे करगे स्याद्दुष्टनिमित्तवशात्तदुदासः।
कर्षति तज्जठरं यदि पीठोत्पीडनतः करगे च करेऽपि ॥ ३८ ॥

यदि प्रश्न काल में स्त्री पेट पर हाथ रख कर प्रश्न करे तो गर्भ कहना चाहिये। यदि उस समय अशकुन दिखाई दे, प्रश्न करने वाली पीठ को मल कर पेट को खुजलावे या हाथ में हाथ देकर प्रश्न करे तो गर्भपात कहना चाहिये ॥ ३८ ॥

गर्भ होगा या नहीं—

घ्राणाया दक्षिणे द्वारे स्पृष्टे मासोत्तरं वदेत्।
वामेऽब्दौ कर्ण एवं मा द्विचतुर्भः श्रुतिस्तने ॥ ३९ ॥

'गर्भ होगा या नहीं' इस तरह के प्रश्न काल में स्त्री यदि नासिका के दक्षिण द्वार (पिङ्गला नाडी) का स्पर्श करे तो एक मास बाद, वाम द्वार (इडा नाडी) का स्पर्श करे तो दो वर्ष में, दक्षिण कर्ण का स्पर्श करे तो दो मास बाद, वाम कर्ण का स्पर्श करे तो दो वर्ष बाद, दक्षिण स्तन का स्पर्श करे तो चार साल बाद और वाम स्तन का स्पर्श करे तो दो वर्ष में गर्भ स्थिति होगी ऐसा कहना चाहिये ॥ ३९ ॥

अङ्ग स्पर्श से सन्तान संख्या ज्ञान—

वेणीमूले त्रीन् सुतान् कन्यके द्वे कर्णे पुत्रान् पञ्च हस्ते त्रयं च।
अङ्गुष्ठान्ते पञ्चकं चानुपूर्व्या पादाङ्गुष्ठे पार्ष्णियुग्मेऽपि कन्याम् ॥४०॥

यदि 'मुझे कितनी सन्तान होगी' इस तरह के प्रश्न काल में स्त्री केशपाश का स्पर्श करे तो तीन लड़के और दो लड़कियाँ, कान का स्पर्श करे तो पांच लड़के, हाथ का स्पर्श करे तो तीन लड़के, कनिष्ठा अङ्गुलि का स्पर्श करे तो एक लड़का, अनामिका का स्पर्श करे तो दो लड़के, मध्यमा का स्पर्श करे तो तीन लड़के, तर्जनी का स्पर्श करे तो चार लड़के, अंगूठे का स्पर्श करे तो पांच लड़के और पांव के अंगूठे का या दोनों एड़ियों का स्पर्श करे तो केवल एक कन्या कहनी चाहिये ॥ ४० ॥

ऊरु आदि अङ्ग स्पर्श से सन्तान संख्या ज्ञान—

सव्यासव्योरुसंस्पर्शे स्रुते कन्यासुतद्वयम्।
स्पृष्टे ललाटमध्यान्ते चतुस्त्रितनया भवेत्॥ ४१॥

यदि पूर्वोक्त प्रश्नकाल में स्त्री दक्षिण ऊरु का स्पर्श करे तो दो लड़कियाँ, वाम ऊरु का स्पर्श करे तो दो लड़के, ललाट के मध्य का स्पर्श करे तो चार लड़कियाँ और ललाट के अन्त का स्पर्श करे तो तीन लड़कियाँ होती हैं॥ ४१॥

किस नक्षत्र में सन्तान पैदा होगी—

शिरोललाटभ्रूकर्णगण्डं हनुरदा गलम्।
सव्यापसव्यस्कन्धश्च हस्तौ चिबुकनालकम्॥ ४२॥
उरः कुचं दक्षिणमप्यसव्यं हृत्पार्श्वमेवं जठरं कटिश्च।
स्फिक्पायुसन्ध्यूरुयुगं च जानू जङ्घेऽथ पादाविति कृत्तिकादौ॥४३॥

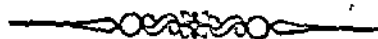
'सन्तान किस नक्षत्र में पैदा होगी' इस तरह के प्रश्नकाल में यदि स्त्री शिर, ललाट, भौं, कान, गाल, कनपटी, दाँत, गर्दन, दक्षिण स्कन्ध, वाम स्कन्ध, दोनों हाथ, ठोढ़ी, कण्ठ, छाती, दक्षिण स्तन, वाम स्तन, हृदय, दक्षिण बगल, वाम बगल, पेट, कमर, स्फिक् (कूला) और गुदा की सन्धि, दक्षिण ऊरु, वाम ऊरु, जानु, जंघा और पाँव स्पर्श करे तो क्रम से कृत्तिका आदि नक्षत्र में जन्म कहना चाहिये। जैसे शिर का स्पर्श करे तो कृत्तिका, ललाट का स्पर्श करे तो रोहिणी, भौं का स्पर्श करे तो मृगशिरा इत्यादि में जन्म कहना चाहिये॥ ४२-४३॥

उपसंहार—

इति निगदितमेतद्गात्रसंस्पर्शलक्ष्म
प्रकटमभिमतार्थ्यं वीक्ष्य शास्त्राणि सम्यक्।
विपुलमतिरुदारो वेत्ति यः सर्वमेत-
न्नरपतिजनताभिः पूज्यतेऽसौ सदैव॥ ४४॥

सब शास्त्रों को अच्छी तरह देख कर अभीष्ट सिद्धि के लिये यह अति स्पष्ट 'अवयव-स्पर्शन-लक्षण' कहा गया है। जो अतिशय बुद्धिमान् उदार दैवज्ञ इसको समस्त जान लेता है वह सदा राजा और प्रजा से पूजित रहता है॥ ४४॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामङ्गविद्याध्याय एकपञ्चाशत्तमः॥ ५१॥



अथ पिटकलक्षणाध्यायः

ब्राह्मण आदि वर्णों का पिटक लक्षण—

सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां क्रमेण पिटका ये।
ते क्रमशः प्रोक्तफला वर्णानां(१) नाग्रजातानाम् ॥ १ ॥

ब्राह्मण आदि चार वर्णों को क्रम से सफेद, लाल, पीली और काली फुन्सी आगे कथित फल देने वाली होती है, किन्तु ब्राह्मणों को छोड़ कर अर्थात् केवल सफेद फुन्सी ब्राह्मणों को। सफेद और लाल क्षत्रियों को। सफेद, लाल और पीली वैश्यों को तथा सफेद, लाल, पीली और काली फुन्सी शूद्रों को फल देने वाली होती है ॥ १ ॥

विशेष कर पिटक का फल—

सुस्निग्धव्यक्तशोभाः शिरसि धनचयं मूर्ध्नि सौभाग्यमारा-
द्दौर्भाग्यं भ्रूयुगोत्थाः प्रियजनघटनामाशु दुःशीलतां च।
तन्मध्योत्थाश्च शोकं नयनपुटगता नेत्रयोरिष्टदृष्टिं
प्रव्रज्यां शङ्खदेशेऽश्रुजलनिपतनस्थानगा रान्ति चिन्ताम् ॥ २ ॥

यदि सुन्दर, निर्मल और स्पष्ट कान्ति वाली फुन्सी शिर में हो तो धन संचय मस्तक में हो तो शीघ्र सौभाग्य, भ्रू युगल में हो तो दौर्भाग्य, भ्रू मध्य में हो तो शीघ्र इष्ट बन्धुओं का संयोग और दु:शीलता, नेत्रपुट में हो तो शोक, दोनों नेत्रों में हो तो इष्ट दर्शन, शंख स्थान में हो तो प्रव्रज्या (सन्यास) तथा अश्रुपात के स्थान में हो तो चिन्ता करती है ॥ २ ॥

विशेष कर पिटक का और फल—

घ्राणागण्डे वसनसुतदाश्चौष्ठयोरन्नलाभं
कुर्युस्तद्वच्चिबुकतलगा भूरि वित्तं ललाटे।
हन्वोरेवं गलकृतपदा भूषणान्यन्नपाने
श्रोत्रे तद्भूषणगणमपि ज्ञानमात्मस्वरूपम् ॥ ३ ॥

यदि नासिका में फुन्सी हो तो वस्त्र लाभ, गाल में हो तो पुत्र लाभ, ओंठ और ठोडी में हो तो अन्न लाभ, ललाट तथा हनु में हो तो अधिक धन लाभ, कण्ठ में हो तो भूषण, अन्न और पान वस्तु का लाभ तथा कान में हो तो कान के आभूषणों का लाभ और अध्यात्म ज्ञान होता है ॥ ३ ॥

---

(१) 'वर्णानामग्रजादीनाम्' इति पाठान्तरम्। अत्र पक्षे अग्रजादीनां=विप्रादीनाम्, वर्णानां (चतुर्णाम्) ये पिटकाः सितरक्तपीतकृष्णाः ते क्रमशः प्रोक्तफला इत्यन्वयः।

विशेष कर पिटक का और फल—

शिरःसन्धिग्रीवाहृदयकुचपार्श्वोरसि गता
अयोघातं घातं सुततनयलाभं शुचमपि ।
प्रियप्राप्तिं स्कन्धेऽप्यटनमथ भिक्षार्थमसकृ-
द्विनाशं कक्षोत्था विदधति धनानां बहुमुखम् ॥ ४ ॥

यदि शिर की सन्धि, गर्दन, हृदय, स्तन, बगल और छाती में फुन्सी हो तो क्रम से शस्त्र पीड़ा, आघात, पुत्र लाभ, शोक और प्रिय वस्तु की प्राप्ति होती है। तथा कन्धे में हो तो भिक्षा के लिये बार-बार भ्रमण, कोख में हो तो धनों का अनेक तरह से नाश होता है ॥ ४ ॥

विशेष कर पिटक का और फल—

दुःखशत्रुनिचयस्य विनाशं पृष्ठबाहुयुगजा रचयन्ति ।
संयमं च मणिबन्धनजाता भूषणाद्यमुपबाहुयुगोत्थाः ॥ ५ ॥

यदि पीठ में फुन्सी हो तो दुःख समूह का और बाँह में हो तो शत्रु समुदाय का नाश करती है। मणि बन्ध में हो तो हाथों का बन्धन और दोनों बाहु के समीप हो तो भूषण, आदि (अन्न, वस्त्र) का लाभ कराती है ॥ ५ ॥

विशेष कर पिटक का और फल—

धनाप्तिं सौभाग्यं शुचमपि कराङ्गुल्युदरगाः
सुपानान्नं नाभौ तदध इह चौरैर्धनहृतिम् ।
धनं धान्यं वस्तौ युवतिमथ मेढ्रे सुतनयान्
धनं सौभाग्यं वा गुदवृषणजाता विदधति ॥ ६ ॥

यदि हाथ में फुन्सी हो तो धन लाभ, अङ्गुलियों में हो तो सौभाग्य, पेट में हो तो शोक, नाभि में हो तो सुन्दर अन्न जल का लाभ, नाभि के नीचे हो तो चोरों से धन का हरण, वस्ति (नाभि और लिङ्ग के मध्य) में हो तो धन धान्य लाभ, लिङ्ग में हो तो स्त्री और सुन्दर पुत्रों की प्राप्ति, गुदा में हो तो धन लाभ तथा अण्ड कोश में हो तो सौभाग्य करती है ॥ ६ ॥

विशेष कर पिटक का और फल—

ऊर्वोर्यानाङ्गनालाभं जान्वोः शत्रुजनात् क्षतिम् ।
शस्त्रेण जङ्घयोर्गुल्फेऽध्वबन्धक्लेशदायिनः ॥ ७ ॥

यदि उरु में फुन्सी हो तो वाहन और स्त्री का लाभ, जानु में हो तो शत्रुओं से क्षति, जांघ में हो तो शस्त्र से विनाश, तथा गुल्फ (टखना = पाँव की गांठी) में हो तो मार्ग और बन्धन में कष्ट देती है ॥ ७ ॥

विशेष कर पिटक का और फल—

स्फिक्पार्ष्णिपादजाता धननाशागम्यगमनमध्वानम् ।
बन्धनमङ्गुलिनिचये ऽङ्गुष्ठे च ज्ञातिलोकतः पूजाम् ॥ ८ ॥

यदि स्फिक् (कुल्हा) में फुन्सी हो तो धन नाश, एड़ी में हो तो अगम्य स्थान में गमन, पाँव में हो तो भ्रमण, अङ्गुलियों में बन्धन और अंगूठे में हो तो बन्धुओं से पूजा सत्कार की प्राप्ति कराती है ॥ ८ ॥

यहाँ पर विशेष फल—

उत्पातगण्डपिटका दक्षिणतो वामतस्त्वभीघाताः ।
धन्या भवन्ति पुंसां तद्विपरीताश्च नारीणाम् ॥ ९ ॥

उत्पात (अङ्गस्पन्दन), गण्ड (एक प्रकार की फुन्सी) और फुन्सी दक्षिण में आघात तथा वाम में पुरुषों के शुभ होते हैं । इसके विपरीत स्त्रियों के, जैसे उत्पात, गण्ड और पिटक वाम में आघात तथा दक्षिण में शुभ होते हैं ॥ ९ ॥

अन्य चिन्हों के फल निर्देश प्रकार—

इति पिटकविभागः प्रोक्त आमूर्धतोऽयं
व्रणतिलकविभागोऽप्येवमेव प्रकल्प्यः ।
भवति मशकलक्ष्मावर्तजन्मापि तद्व-
द्विगदितफलकारि प्राणिनां देहसंस्थम् ॥ १० ॥

इस तरह सिर से लेकर प्रत्येक अङ्ग की फुन्सियों के फल कहे गये हैं । इसी तरह व्रण और तिल के फल को भी कल्पना करनी चाहिये । तथा प्राणियों के शरीर में मशक, चिन्ह और रोमावर्त्त जन्य फल भी पूर्वोक्तानुसार ही होते हैं ॥ १० ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पिटकलक्षणाध्यायः द्विपञ्चाशत्तम- ॥ ५२ ॥

॥ इति पूर्वार्द्धः समाप्तः ॥

अथोत्तरार्द्धः



अथ वास्तुविधाध्यायः

वहाँ पर प्रथम आगम प्रदर्शन—

वास्तुज्ञानमथातः कमलभवान्मुनिपरम्परायातम् ।
क्रियतेऽधुना मयेदं विदग्धसांवत्सरप्रीत्यै ॥ १ ॥

अब इसके बाद ब्रह्माजी के पास से मुनि परम्परागत इस वास्तु ज्ञान को चतुर दैवज्ञों की प्रसन्नता के लिये मैं कहता हूँ ॥ १ ॥

वास्तु ज्ञान की उत्पत्ति—

किमपि किल भूतमभवद्रुन्धानं रोदसी शरीरेण ।
तदमरगणेन सहसा विनिगृह्याधोमुखं न्यस्तम् ॥ २ ॥
यत्र च येन गृहीतं विबुधेनाधिष्ठितः स तत्रैव ।
तदमरमयं विधाता वास्तुनरं कल्पयामास ॥ ३ ॥

प्राचीन काल में अपने शरीर से पृथ्वी और आकाश को ढाँकने वाला कोई अपरिचित व्यक्ति उत्पन्न हुआ। उसको सहसा देवताओं ने पकड़कर नीचे मुख करके पृथ्वी पर स्थापित कर दिया। उस समय जो देवता जिस अङ्ग को पकड़े थे उन्होंने उस अङ्ग में अपना स्थान बना लिया, उस देवमय अपरिचित व्यक्ति को ब्रह्मा जी ने वास्तु पुरुष नाम से कल्पित किया।

यहाँ पर बृहस्पति—

पुरा कृतयुगे ह्यासीन्महद्भूतं समुत्थितम्। व्याप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः।
तद्दृष्ट्वा विस्मयं देवा गताः सेन्द्रा भयावृताः। ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तमयासुरम्॥
विनिक्षिप्तमधोवक्त्रं स्थितास्तत्रैव ते सुराः। तमेव वास्तुपुरुषं ब्रह्मा समभिकल्पयेत्॥

नृपों के गृह का प्रमाण—

उत्तममष्टाभ्यधिकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन ।
अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैर्घ्येण ॥ ४ ॥

राजगृह में १०८ हाथ विस्तार उत्तम है और चार गृह में आठ-आठ हाथ कम करके विस्तार होना चाहिये, तथा सपाद विस्तार दैर्घ्य होना चाहिये। जैसे उत्तम गृह में १०८ हाथ विस्तार, १३७ हाथ दैर्घ्य। द्वितीय में १०० हाथ विस्तार, १२५ हाथ दैर्घ्य, तृतीय गृह में ९२ हाथ विस्तार, ११५ हाथ दैर्घ्य। चतुर्थ गृह में ८४ हाथ

विस्तार, ११५ हाथ दैर्घ्य और पाँचवें गृह में ७६ हाथ विस्तार, ९५ हाथ दैर्घ्य होना चाहिये।

यहाँ पर काश्यप—

अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्ताराद्भूपमन्दिरम्। कार्यं प्रधानमन्यानि तथाष्टाष्टोनितानि तु॥—
विस्तारं पादसंयुक्तं दैर्घ्यं तेषां प्रकल्पयेत्। एवं पञ्च नृपः कुर्याद्गृहाणां च पृथक् पृथक्॥

सेनापति के गृह का प्रमाण—

षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुःषष्टिः।
एवं पञ्चगृहाणि षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम्॥ ५॥

सेनापति का प्रथम गृह का विस्तार ६४ हाथ का बनावे, शेष चार मकानों में छै-छै हाथ कम करके विस्तार रखना चाहिये और विस्तार से षष्ठांश अधिक दैर्घ्य बनाना चाहिये। जैसे प्रथम गृह का विस्तार ६४, दैर्घ्य ७४ हाथ १६ अंगुल। द्वितीय गृह का विस्तार ५८ हाथ, दैर्घ्य ६७ हाथ १६ अंगुल। तृतीय गृह का विस्तार ५२ हाथ, दैर्घ्य ६० हाथ १६ अंगुल। चौथे गृह का विस्तार ४६ हाथ, दैर्घ्य ५३ हाथ १६ अंगुल। पाँचवें गृह का विस्तार ४० हाथ, दैर्घ्य ४६ हाथ १६ अंगुल होना चाहिये॥ ५॥

मन्त्री के गृह का प्रमाण—

षष्टिश्चतुश्चतुर्भिर्हीना वेश्मानि पञ्च सचिवस्य।
स्वाष्टांशयुतो दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम्॥ ६॥

मन्त्री के गृह में पहले गृह का विस्तार ६० हाथ होता है। बाकी चार मकानों में चार चार हाथ कम करके बनाना चाहिये। जैसे पहले घर का विस्तार ६०,, दैर्घ्य ६६।१२। दूसरे घर का विस्तार ५६, दैर्घ्य ६३। तीसरे घर का विस्तार ५२ दैर्घ्य ५८।१२। चौथे घर का विस्तार ४८, दैर्घ्य ५४ और पाँचवें घर का विस्तार ४४, दैर्घ्य ४९।१२ होना चाहिये। इसके आधे विस्तार दैर्घ्य में राजमहिषी का गृह बनाना चाहिये। यथा प्रथम गृह का विस्तार ३०, दैर्घ्य ३३।६। द्वितीय गृह का विस्तार २८, दैर्घ्य ३१।१२। तृतीय गृह का विस्तार २६, दैर्घ्य २९।६। चतुर्थ गृह का विस्तार २४, दैर्घ्य २७। पञ्चम गृह का विस्तार २२, दैर्घ्य २४।१८ होना चाहिये।

युवराज और भृत्यों के गृह प्रमाण—

षड्भिः षड्भिश्चैवं युवराजस्यापवर्जिताऽशीतिः।
त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम्॥ ७॥

इसी प्रकार युवराज को पाँच घर बनाना चाहिये। जिसमें प्रथम गृह का विस्तार ८० हाथ का करना और बाकी चार मकानों में ६–६ हाथ कम करके विस्तार कल्पना करनी चाहिये। जैसे दूसरे घर का विस्तार ७४ तीसरे का ६८ चौथे का ६२ और पाँचवें का ५६ हाथ होना चाहिये। विस्तार में विस्तार का तीसरा

भाग जोड कर दैर्घ्य क्रम से १०६।१६, ९८।१६, ९०।१६, ८२।१६, और ७४।१६, कल्पना करे। इसी तरह युवराज के गृह का आधा विस्तार और दैर्घ्य युवराज के छोटे भाई और भृत्यों का होना चाहिये। यथा युवराजानुज का विस्तार ४०, ३७, ३४, ३१, २८, दैर्घ्य ५३।८, ४९।८, ४५।८, ४१।८, ३७।८ ॥ ७ ॥

सामन्त, प्रधान राजपुरुषों के गृह प्रमाण—

नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम् ।
नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम् ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त राजा के पाँच गृह और मन्त्री के पाँच गृह जो हैं उन दोनों के विस्तार के अन्तर तुल्य विस्तार और दैर्घ्य के अन्तर तुल्य दैर्घ्य लेकर माण्डलिक राजा और प्रधान राजपुरुष का घर बनाना चाहिये। एवं राजा और युवराज के गृह के अन्तर तुल्य कञ्चुकी, वेश्या और कलाज्ञाता का घर बनाना चाहिये ॥ ८ ॥

अधिकारी आदि के गृह प्रमाण—

अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषामेव कोशरतितुल्यम् ।
युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम् ॥ ९ ॥

अश्वशाला, गजशाला और गोशाला के अधिकारियों तथा और कार्यों के जो मालिक हैं, उन सबके लिये कोश या रति गृह के बराबर गृह बनाना चाहिये। तथा कर्मशाला में जो मालिक हैं उनका और दूतों का गृह युवराज और मन्त्री के गृह के दैर्घ्य विस्तार का जो अन्तर उसके बराबर दैर्घ्य विस्तार लेकर बनाना चाहिये ॥ ९ ॥

स्फुटार्थ चक्रम्

ज्ञातयः	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	प्रमाणम्
राज्ञः	१०८	०	१००	०	९२	०	८४	०	७६	०	विस्तारः
	१२५	०	१२५	०	११५	०	१०५	०	९५	०	दैर्घ्यम्
सेनापतेः	६४	०	५८	०	५२	०	४६	०	४०	०	विस्तारः
	७४	१६	६७	१६	६०	१६	५३	१६	४६	१६	दैर्घ्यम्
मन्त्रिणः	६०	०	५६	०	५२	०	४८	०	४४	०	विस्तारः
	६७	१२	६३	०	५८	१२	५४	०	४९	१२	दैर्घ्यम्
राजमहिषीणाम्	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	विस्तारः
	३३	१८	३१	१२	२९	६	२७	०	२४	१२	दैर्घ्यम्
युवराजस्य	८०	०	७४	०	६८	०	६२	०	५६		वस्तारः
	१०६	१६	९८	१६	९०	१६	८२	१६	७४	१६	दैर्घ्यम्

स्फुटार्थं चक्रम्

शालय-	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	प्रमाणम्
युवराजा	४०	०	३७	०	३४	०	३१	०	२८	०	विस्तारः
नुजस्य	५३	८	४९	८	४५	८	४१	८	३७	८	दैर्घ्यम्
साम-	४८	०	४४	०	४०	०	३६	०	३२	०	विस्तारः
न्तस्य	६७	१७	६२	०	५६	१२	५१	०	४५	१२	दैर्घ्यम्
कञ्चुकिवे-	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	२०	०	विस्तारः
श्याकला शानाम्	२८	८	२६	८	२४	८	२२	८	२०	८	दैर्घ्यम्
कर्माध्य-	२०	०	१८	०	१६	०	१४	०	१२	०	विस्तारः
क्षस्य	२९	४	२५	१६	२३	४	२८	१६	२५	४	दैर्घ्यम्
ज्यौतिषि पुरोहित-	४०	०	३६	०	३२	०	२८	०	२४	०	विस्तारः
वैद्यानाम्	४६	१६	४२	०	३७	८	३२	१६	२८	०	दैर्घ्यम्

राज–ज्यौतिषी आदि के गृह प्रमाण—

चत्वारिंशद्धीना चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति ।
षड्भागयुता दैर्घ्यं दैवज्ञपुरोधसोर्भिषजः ॥ १० ॥

ज्यौतिषी, वैद्य और पुरोहितों को गृह बनाने में प्रथम गृह का विस्तार ४०, द्वितीय का ३६, तृतीय का ३२, चौथे का २८ पाँचवें का २४ और सबके अपने-अपने छठे भाग जोड़ कर जो हो उतना दैर्घ्य होना चाहिये, यथा ४६।१६, ४२, ३६।८, ३२।१६, २८ ॥ १० ॥

गृह की ऊँचाई और एक शाल गृह के दैर्घ्य प्रमाण—

वास्तुनि यो विस्तारः स एव चोच्छ्रायनिश्चयः शुभदः ।
शालैकेषु गृहेष्वपि विस्तारादृद्विगुणितं दैर्घ्यम् ॥ ११ ॥

गृह में विस्तार के तुल्य ऊँचाई होनी चाहिये। तथा एक शाल वाले गृह में विस्तार से द्विगुणित दैर्घ्य होना चाहिये।

यहाँ पर काश्यप—

चतु शालगृहेष्वेवमुच्छ्रायो व्याससम्मितः। विस्तारं द्विगुणं दैर्घ्यमेकशालयुतस्य च ॥११॥

ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के गृह का विस्तार और दैर्घ्य—

चातुर्वर्ण्यव्यासो द्वात्रिंशत् सा चतुश्चतुर्हीना ।
आषोडशादिति परं न्यूनतरमतीवहीनानाम् ॥ १२ ॥

सदशांशं विप्राणां क्षत्रस्याष्टांशसंयुतं दैर्घ्यम्।
षड्भागयुतं वैश्यस्य भवति शूद्रस्य पादयुतम् ॥ १३ ॥

ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के गृहों का विस्तार क्रम से ३२ हाथ में चार-चार हाथ कम करके १६ हाथ पर्यन्त बनाना चाहिये। जैसे ३२, २८, २४, २० या १६ हाथ ब्राह्मणों के गृह का, २८, २४, २० या १६ हाथ क्षत्रियों के गृह का, २४, २० या १६ हाथ वैश्यों के गृह का तथा २० या १६ हाथ शूद्रों के गृह का विस्तार बनाना चाहिये। इससे कम विस्तार का गृह नीच जातियों को बनाना चाहिये। ब्राह्मणों के गृह का दैर्घ्य विस्तार से दशमांश अधिक, क्षत्रियों के अष्टमांश, वैश्यों के षष्ठांश और शूद्रों के गृह का दैर्घ्य विस्तार से चतुर्थांश अधिक होना चाहिये।

किरणाख्य तन्त्र में—

हस्तद्वात्रिंशता युक्तो विस्तारः स्याद्द्विजालये। विस्तारं सदशांशं तु दैर्घ्यं तस्य प्रकल्पयेत्॥
त्रयाणां क्षत्रियादीनां मानं यत्पूर्वचोदितम्। तच्चतुर्भिः करैस्तादर्व ह्रासयेदनुपूर्वशः॥
नृपाणामष्टांशषड्भागपाददैर्घ्यं क्रमाद्भवेत्॥ १२–१३॥

कोशगृह और राजपुरुष के गृह का प्रमाण—

नृपसेनापतिगृहयोरन्तरमानेन कोशरतिभवने।
सेनापतिचातुर्वर्ण्यविवरतो राजपुरुषाणाम् ॥ १४ ॥

राजा और सेनापति के गृह के अन्तर तुल्य कोश (खज़ाना) का घर और रतिभवन (क्रीडागृह) बनावे, तथा सेनापति और चारों वर्णों के गृह के अन्तर तुल्य राजपुरुषों का घर बनावे। जैसे सेनापति और ब्राह्मण के गृह के अन्तर तुल्य ब्राह्मण राजपुरुषों का, सेनापति और क्षत्रिय के गृह के अन्तर तुल्य क्षत्रिय राजपुरुषों का, सेनापति और वैश्य के गृह के अन्तर तुल्य वैश्य राजपुरुषों का तथा सेनापति और शूद्र के गृह के अन्तर तुल्य शूद्र राजपुरुषों का घर बनाना चाहिये ॥ १४ ॥

स्फुटार्थं चक्रम्

जातयः	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	प्रमाणम्
ब्राह्मणस्य	३२	०	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०	विस्तारः
	३५	५	३०	१९	१६	१०	२२	०	१७	१४	दैर्घ्यम्
क्षत्रियस्य	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०	×	×	विस्तारः
	३१	१२	२७	०	२२	१२	१८	०	×	×	दैर्घ्यम्
वैश्यस्य	२४	०	२०	०	१६	०	×	×	×	×	विस्तारः
	२८	०	२३	८	१८	१६	×	×	×	×	दैर्घ्यम्

स्फुटार्थं चक्रम्

ज्ञातय	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	हस्त	अङ्गुल	प्रमाणम्
शूद्रस्य	२०	०	१६	०	×	×	×	×	×	×	विस्तारः
	२५	०	२०	०	×	×	×	×	×	×	दैर्घ्यम्
कोशरति-भवनस्य	४४	०	४२	०	४०	०	३८	०	३६	०	विस्तारः
	६०	८	५७	८	५४	८	५१	८	४८	८	दैर्घ्यम्
राजपुरुषाणाम्	३२	०	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	विस्तार
	३९	११	३६	२१	३४	६	३१	१६	२९	२	दैर्घ्यम्

पारशव आदि के गृह का प्रमाण—

अथ पारशवादीनां स्वमानसंयोगदलसमं भवनम् ।
हीनाधिकं स्वमानादशुभकरं वास्तु सर्वेषाम् ॥ १५ ॥

पारशव (ब्राह्मण के वीर्य और शूद्रा के रज से उत्पन्न), आदि (भूर्जकण्टक=ब्राह्मण के वीर्य और वैश्या के रज से उत्पन्न), मूर्धावसिक्त (ब्राह्मण के वीर्य और क्षत्रिया के रज से उत्पन्न) को माता और पिता के वर्णजनित पूर्वोक्त मान के योगार्ध समान विस्तार दैर्घ्य लेकर गृह बनाना चाहिये। कथित मान से न्यूनाधिक मान वाला गृह सबको अशुभ करता है ॥ १५ ॥

पशु और संन्यासी के गृह प्रमाण—

पश्वाश्रमिणाममितं धान्यायुधवह्निरतिगृहाणां च ।
नेच्छन्ति शास्त्रकारा हस्तशतादुच्छ्रितं परतः ॥ १६ ॥

पशु, आश्रमी (सन्यासी) के गृह, धान्य गृह, आयुध गृह, अग्नि गृह, और क्रीडा गृह को अमित (परिमाण रहित) बनावे, अर्थात् जैसी इच्छा हो वैसा बनावे। सौ हाथ से अधिक ऊँचा गृह बनाने की इच्छा वास्तु-शास्त्रकार नहीं करते हैं। अर्थात् सौ हाथ से अधिक ऊँचा गृह बनाना अशुभ है।

यहाँ पर गर्ग—

शतहस्तोच्छ्रितं कार्यं चतु शालगृहं बुधै ।
अपि तावेकशालं तु शुभदं तत्प्रकीर्त्तितम् ॥ १६ ॥

सेनापति और राजा के गृह के द्वारा सब वस्तुओं की शाला

और उसके अलिन्द का ज्ञान—

सेनापतिनृपतीनां सप्ततिसहिते द्विधाकृते व्यासे ।
शाला चतुर्दशहृते पञ्चत्रिंशद्धृतेऽलिन्दः ॥ १७ ॥

सेनापति और राजा के गृह के व्याससमान के योग में सत्तर मिला कर दो जगह रखे; एक जगह चौदह का भाग देने से शाला (गृहाभ्यन्तर भाग) और दूसरी जगह पन्द्रह का भाग देने से अलिन्द (शाला की भित्ति के बाहर सोपान मार्ग) का प्रमाण होता है ॥ १७ ॥

ब्राह्मण आदि वर्णों की शाला और उसके अलिन्द के प्रमाण—

हस्तद्वात्रिंशादिषु चतुश्चतुस्त्रित्रिकत्रिकाः शालाः ।
सप्तदशत्रितयतिथित्रयोदशकृताङ्गुलाभ्यधिकाः ॥ १८ ॥
त्रित्रिद्विद्विद्विसमाः क्षयक्रमादङ्गुलानि चैतेषाम् ।
व्येका विंशतिरष्टौ विंशतिरष्टादश त्रितयम् ॥ १९ ॥

पूर्वोक्त ब्राह्मण आदि के क्रम से ३२, २८, २४, २० और १६ हाथ विस्तार वाले गृह में क्रम से ४ हाथ १७ अङ्गुल, ४ हाथ ३ अङ्गुल, ३ हाथ १५ अङ्गुल, ३ हाथ १३ अङ्गुल और ३ हाथ ४ अङ्गुल प्रमाण की शाला तथा क्रम से ३ हाथ १९ अङ्गुल, ३ हाथ ८ अङ्गुल, २ हाथ २० अङ्गुल, २ हाथ १८ अङ्गुल और २ हाथ ३ अङ्गुल प्रमाण का अलिन्द बनाना चाहिये ॥ १८–१९ ॥

वीथिका का प्रमाण और तदुपलक्षित वास्तु स्थान का नाम—

शालात्रिभागतुल्या कर्तव्या वीथिका बहिर्भवनात् ।
यद्यग्रतो भवति सा सोष्णीषं नाम तद्वास्तु ॥ २० ॥
सायाश्रयमिति पश्चात् सावष्टम्भं तु पार्श्वसंस्थितया ।
सुस्थितमिति च समन्ताच्छास्त्रज्ञैः पूजिताः सर्वाः ॥ २१ ॥

शाला के तृतीयांश तुल्य भवन के बाहर वीथिका (स्थला = कृत्रिम भूमि) बनानी चाहिये । यह जिस भवन के पूर्व में हो वह 'सोष्णीष', जिसके पश्चिम में हो वह 'सायाश्रय', जिसके उत्तर में हो वह 'सावष्टम्भ' और जिसके चारों तरफ हो वह 'सुस्थित' संज्ञक वास्तु कहलाती है । इन पूर्वोक्त सब वास्तुओं की शास्त्रज्ञों के द्वारा प्रशंसा की गई है ।

किरणाख्य तन्त्र में—

यः शालायास्तृतीयांशस्तेन कार्या तु वीथिका ।
यद्यग्रतो भवेद्वीथी सोष्णीषं नाम तद्गृहम् ॥
पश्चात्सायाश्रयं नाम सावष्टम्भं तु पार्श्वयोः ।
समन्ताद्यदि जाता सा तदा सुस्थितमुच्यते ॥ २०–२१ ॥

सब महलों की ऊँचाई का प्रमाण—

विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद्गृहोच्छ्रायः ।
द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम् ॥ २२ ॥

भवन के व्यास मान के षोडशांश में चार हाथ मिला कर जो हो उतनी प्रथम महल की ऊँचाई, उसमें उसका द्वादशांश हीन करके जो हो उतनी द्वितीय महल की ऊँचाई, उसमें उसका द्वादशांश हीन करके जो हो उतनी तृतीय महल की ऊँचाई इत्यादि बनानी चाहिये ॥ २२ ॥

पक्की ईंट और लकड़ी के गृह में भीत का प्रमाण—

व्यासात् षोडशभागः सर्वेषां सद्मनां भवति भित्तिः ।
पक्वेष्टकाकृतानां दारुकृतानां तु न विकल्पः ॥ २३ ॥

प्रत्येक पक्की ईंटों से बने गृह के व्यास के सोलहवें भाग तुल्य भीत का प्रमाण होना चाहिये। पर लकड़ी से बने गृह में इस तरह की व्यवस्था नहीं है, किन्तु इसमें अपनी सुविधानुसार भीत का प्रमाण बना लेना चाहिये।

यहाँ पर गर्ग—

विस्तारषोडशांशेन गृहभित्तिं प्रकल्पयेत् ।
हीनाधिका न कर्तव्या गृहभर्तुर्न शोभना ॥

किरणाख्य तन्त्र में—

पक्वेष्टानामयं व्यासो दारजाना यथेच्छया ।
द्विजादेव गृहं कार्यं तत् स्यात्कुम्भ स्वदिग्गतम् ॥
नवत्रयोदशाद्यैश्च करैर्ज्ञात्वा प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥

प्रधान द्वार की ऊँचाई और व्यास—

एकादशभागयुतः ससप्ततिर्नृपबलेशयोर्व्यासः ।
उच्छ्रायोऽङ्गुलतुल्यो द्वारस्यार्धेन विष्कम्भः ॥ २४ ॥

राजा और सेनापति गृह के विस्तार के एकादश भाग से युत विस्तार में ७० मिला कर जो हो तत्तुल्य अङ्गुल प्रधान द्वार की ऊँचाई और द्वार की ऊँचाई के आधे तुल्य उसका व्यास बनाना चाहिये ॥ २४ ॥

ब्राह्मण आदि चार वर्णों का द्वार प्रमाण—

विप्रादीनां व्यासात् पञ्चांशोऽष्टादशाङ्गुलसमेतः ।
साष्टांशो विष्कम्भो द्वारस्य त्रिगुण उच्छ्रायः ॥ २५ ॥

ब्राह्मण आदि वर्णों के गृह के व्यास के पञ्चमांश से युत अठारह अङ्गुल में उसका अष्टमांश मिला कर जो हो उतने अङ्गुल तुल्य द्वार का विस्तार और त्रिगुणित विस्तार तुल्य अंगुल ऊँचाई होनी चाहिये।

उदाहरण—ब्राह्मण के गृह विस्तार ३२ हाथ का पञ्चमांश ६ में १८ अंगुल युत किया तो २४ हुआ, इसमें इसका अष्टमांश ३ जोड़ने से २७ अंगुल द्वार का व्यास आया और इसके त्रिगुणित तुल्य ८१ उसकी ऊँचाई आई ॥ २५ ॥

शाखा उदुम्बर की मोटाई का प्रमाण—

उच्छ्रायहस्तसंख्यापरिमाणान्यङ्गुलानि बाहुल्यम् ।
शाखाद्वयेऽपि कार्यं सार्धं तत् स्यादुदुम्बरयोः ॥ २६ ॥

हस्त जाति ऊँचाई तुल्य अंगुल दोनों शाखाओं की मोटाई बनानी चाहिये। उस मोटाई को डेढ़ से गुणा करके जो हो तत्तुल्य अंगुल उदुम्बर (देहली=उदुम्बरस्तु देहल्यामिति मेदिनी) की मोटाई होनी चाहिये।

उदाहरण—जैसे राजा के गृह द्वार की ऊँचाई १८८ अंगुल को हस्तात्मक बनाने से $\frac{१८८}{२४} = ७\frac{५}{६}$=शाखाओं की मोटाई तथा डेढ़ गुणित मोटाई $\frac{४७}{६} + \frac{४७}{१२} = \frac{९४+४७}{१२} = \frac{१४१}{१२} = ११\frac{३}{४}$ = उदुम्बर की मोटाई आई ॥ २६ ॥

शाखा, औदुम्बर के पृथुत्व और स्तम्भ के अग्र मूल का प्रमाण—

उच्छ्रायात्सप्तगुणादशीतिभागः पृथुत्वमेतेषाम् ।
नवगुणितेऽशीत्यंशः स्तम्भस्य दशांशहीनोऽग्रे ॥ २७ ॥

राजा के द्वार की ऊँचाई को ७ से गुणा कर ८० का भाग देने से जो लब्धि आवे तत्तुल्य शाखा और औदुम्बर की विस्तृति बनानी चाहिये।

तथा स्तम्भ की ऊँचाई को ९ से गुणा कर ८० से भाग देने से जो लब्धि मिले तत्तुल्य स्तम्भ के मूल की मोटाई और अपना दशमा भाग हीन मोटाई तुल्य अग्र भाग की मोटाई बनानी चाहिये।

उदाहरण—राजा के द्वार की ऊँचाई १८८ अङ्गुल को ७ से गुणा कर ८० का भाग देने से लब्ध $= \frac{१८८ \times ७}{८०} = \frac{१३१६}{८०} = १६\frac{३६}{८०}$ तुल्य शाखा और उदुम्बर का विस्तार।

तथा—राजा के प्रथम महल की ऊँचाई तुल्य स्तम्भ की ऊँचाई १० हाथ १८ अङ्गुल है। इस को अङ्गुलात्मक बनाया तो $१० \times २४ + १८ = २५८$ हुआ। इस को ९ से गुणा कर ८० का भाग देने से लब्ध $= \frac{२५८ \times ९}{८०} = \frac{१२९ \times ९}{४०} = \frac{११६१}{४०} = २९\frac{१}{४०}$, तुल्य स्तम्भ के मूल की मोटाई आई। इसमें इसके दशांश हीन करने से $= \frac{११६१}{४०} - \frac{११६१}{४००} = \frac{११६१० - ११६१}{४००} = \frac{१०४४९}{४००} = २६\frac{४९}{४००}$, स्तम्भ के अग्र भाग की मोटाई ॥ २७ ॥

स्तम्भों के नाम—

समचतुरस्रो रुचको वज्रोऽष्टास्रिर्द्विवज्रको द्विगुणः ।
द्वात्रिंशता तु मध्ये प्रलीनको वृत्त इति वृत्तः ॥ २८ ॥

स्तम्भ के मध्य भाग समान चार कोण वाला हो तो रुचक, आठ कोण वाला हो तो वज्र, सोलह कोण वाला हो तो द्विवज्र, बत्तीस कोण वाला हो तो प्रलीनक और वर्तुलाकार हो तो वृत्त स्तम्भ कहलाता है। ये पांच स्तम्भ शुभ और शेष अशुभ फल देने वाले होते हैं।

किरणाख्य तन्त्र में—

वेदाश्रो रुचकः स्तम्भो वज्रोऽष्टाश्रियुतो मतः ।
द्विवज्रः षोडशाश्रिः स्याद्द्विगुणाश्रिः प्रलीनकः ॥
समन्तवृत्तो वृत्ताख्यः स्तम्भः प्रोक्तो द्विजोत्तमैः ॥ २८ ॥

स्तम्भ के ऊपर और नीचे की रचना—

स्तम्भं विभज्य नवधा वहनं भागो घटोऽस्य भागोऽन्यः ।
पद्मं तथोत्तरोष्ठं कुर्याद्भागेन भागेन ॥ १९ ॥

स्तम्भ के नव भाग करें, उनमें नीचे के प्रथम भाग का नाम वहन (उस भाग से भूमि को धारण करने के कारण), द्वितीय भाग का घट (घड़ा की आकृति के होने के कारण), तृतीय भाग का पद्म (पद्मा-कृति होने के कारण) और चतुर्थ भाग का नाम उत्तरोष्ठ (जहाँ पर शोभा के लिये विशेष रूप बनाते हैं) ।

किरणाख्य तन्त्र में—

विभज्य नवधा स्तम्भं कुर्यादुद्वहनं घटम् ।
कमलं चोत्तरोष्ठं तु भागे-भागे प्रकल्पयेत् ॥ २९ ॥

भारतुला, तुला और उपतुला का प्रमाण—

स्तम्भसमं बाहुल्यं भारतुलानामुपर्युपर्यासाम् ।
भवति तुलोपतुलानामूनं पादेन पादेन ॥ ३० ॥

स्तम्भ तुल्य मोटाई वाला (राज गृह में स्तम्भ की मोटाई २८ अङ्गुल है, तत्तुल्य मोटाई वाला) पञ्चम भाग का नाम भारतुला, इसके ऊपर षष्ठ भाग का नाम तुला और इस के ऊपर सप्तम भाग का नाम उपतुला है । राज गृह के अतिरिक्त भारतुला से चतुर्थांश कम करके मान रखना चाहिये । जैसे राजगृह में भारतुला का मान २१ अङ्गुल है तो राजगृह से अतिरिक्त गृह में $२१ - \frac{२१}{४} = \frac{८४-२१}{४} = \frac{६३}{४} = १५\frac{३}{४}$ इतना भारतुला आदि का मान बनाना चाहिये ॥ ३० ॥

सर्वतोभद्र वास्तु का लक्षण—

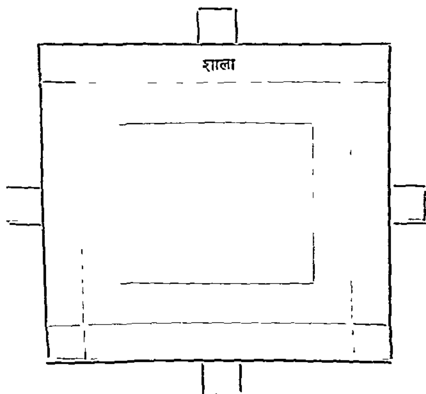
अप्रतिषिद्धालिन्दं समन्ततो वास्तु सर्वतोभद्रम् ।
नृपविबुधसमूहानां कार्यं द्वारैश्चतुर्भिरपि ॥ ३१ ॥

जिस वास्तु के चारों तरफ अलिन्द हो- उस को सर्वतोभद्र वास्तु कहते हैं । यह वास्तु चारों दिशाओं में, चार द्वारों से उपलक्षित, राजा और देवताओं के लिये बनाना चाहिये ।

यहाँ पर गर्ग—

अलिन्दानां व्यवच्छेदो नास्ति यत्र समन्ततः ।
तद्वास्तु सर्वतोभद्रं चतुर्द्वारसमायुतम् ॥ ३१ ॥

सर्वतोभद्रम्



नन्द्यावर्त्त वास्तु का लक्षण—

नन्द्यावर्तमलिन्दैः शालाकुड्यात् प्रदक्षिणान्तगतैः ।
द्वारं पश्चिममस्मिन् विहाय शेषाणि कार्याणि ॥ ३२ ॥

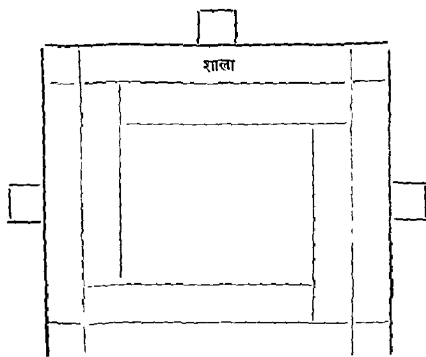
जिस वास्तु में शाला की भीत से आरम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से अलिन्द हो उसको नन्द्यावर्त्त वास्तु कहते हैं। इसमें पश्चिम दिशा को छोड़ कर शेष तीन दिशाओं में तीन द्वार रहते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

प्रदक्षिणं गतैः सर्वैः शालाभित्तेरलिन्दकैः ।
विना परेण द्वारेण नन्द्यावर्तमिति स्मृतम् ॥ ३२ ॥

वन्द्यावर्तम्

पूर्वा



वर्धमान वास्तु का लक्षण—

द्वारालिन्दोऽन्तगतः प्रदक्षिणोऽन्यः शुभस्ततश्चान्यः।
तस्मिंश्च वर्धमाने द्वारं तु न दक्षिणं कार्यम् ॥ ३२ ॥

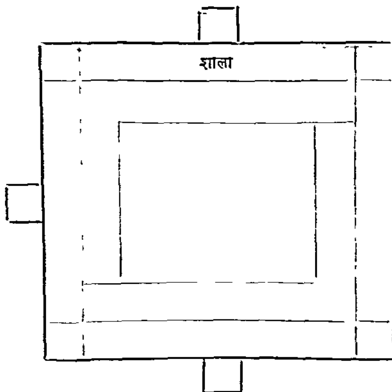
द्वारालिन्द (प्रधान भवन के द्वार का अलिन्द) के अन्तगत (दक्षिणोत्तर भित्ति संलग्न) हो और द्वितीय आलिन्द उस से प्रदक्षिण क्रम से गया हो तथा तृतीय अलिन्द उससे प्रदक्षिण क्रम से स्थित हो उसको वर्धमान वास्तु कहते हैं। इसके दक्षिण में द्वार नहीं रहता है।

यहाँ पर गर्ग—

द्वारालिन्दोऽन्तगस्तेषां ये त्रयो दक्षिणां गताः।
विहाय दक्षिणं द्वारं वर्धमानमिति स्मृतम् ॥ ३३ ॥

वर्धमानम्

पूर्व



स्वस्तिक वास्तु का लक्षण—

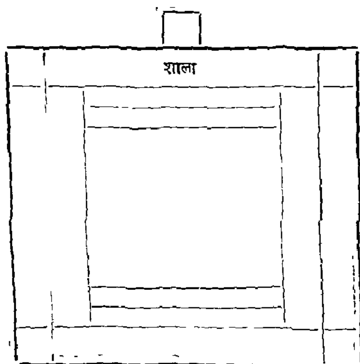
अपरोऽन्तगतोऽलिन्दः प्रागन्तगतौ तदुत्थितौ चान्यौ ।
तदवधिविधृतश्चान्यः प्राग्द्वारं स्वस्तिके शुभदम् ॥ ३४ ॥

स्वस्तिक वास्तु में पश्चिम का अलिन्द अन्तगत (दक्षिणोत्तर शाला संलग्न) बनाना चाहिये। पश्चिम अलिन्द से निकले हुये अन्य दो अलिन्द पूर्व दिशा की शाला से लगे हुये बनाने चाहिये। उन दोनों के मध्य में पूर्व का अलिन्द बनाना चाहिये। इस स्वस्तिक वास्तु में केवल पूर्व दिशा में द्वार बनाना शुभ है अन्य दिशा में नहीं।

यहाँ पर गर्ग—

पश्चिमोऽन्तगतोऽलिन्दः प्रागन्तौ द्वौ तदुत्थितौ ।
अन्यस्तन्मध्यविद्धतः प्राग्द्वारं स्वस्तिकं शुभम् ॥ ३४ ॥

स्वस्तिकम्



रुचक वास्तु का लक्षण—

प्राक्पश्चिमावलिन्दावन्तगतौ तदवधिस्थितौ शेषौ ।
रुचके द्वारं न शुभदमुत्तरतोऽन्यानि शस्तानि ॥ ३५ ॥

रुचक वास्तु में पूर्व और पश्चिम का अलिन्द अन्तगत (दक्षिणोत्तरशाला संलग्न) और शेष दो उन दोनों के मध्य में स्थित होता है। इस रुचक वास्तु में उत्तर दिशा का द्वार अशुभ और अन्य (पूर्व, पश्चिम और दक्षिण) द्वार शुभ होता है।

यहाँ पर गर्ग—

प्राक्पश्चिमावलिन्दौ यावन्तगौ तद्भवौ परौ।
सौम्यं द्वारं विना यत्स्याद्रुचकाख्यं तु तत्स्मृतम् ॥ ३५ ॥

रुचकम्

पूर्व

शाला

सर्वतोभद्र आदि पाँच चतुःशालों का फल—

श्रेष्ठं नन्द्यावर्तं सर्वेषां वर्धमानसञ्ज्ञं च।
स्वस्तिकरुचके मध्ये शेषं शुभदं नृपादीनाम्॥ ३६॥

नन्द्यावर्त और वर्धमान संज्ञक वास्तु सबके लिये श्रेष्ठ है। स्वस्तिक और रुचक संज्ञक वास्तु मध्यम है। शेष सर्वतोभद्र संज्ञक वास्तु राजा आदि (राजमन्त्री, राजाश्रित पुरुष और देवता) के लिए शुभ है, अन्य के लिये नहीं॥ ३६॥

हिरण्य आदि त्रिशालों का लक्षण और फल—

उत्तरशालाहीनं हिरण्यनाभं त्रिशालकं धन्यम्।
प्राक्शालया वियुक्तं सुक्षेत्रं वृद्धिदं वास्तु॥ ३७॥
याम्याहीनं चुल्ली त्रिशालकं वित्तनाशकरमेतत्।
पक्षघ्नमपरया वर्जितं सुतध्वंसवैरकरम्॥ ३८॥

जिसके उत्तर तरफ भीत (दीवाल) न हो और शेष तीन दिशाओं में हो उसको हिरण्य नामक त्रिशाल वास्तु कहते हैं, यह वास्तु प्रशस्त है। जिसके पूर्व तरफ भीत न हो और शेष तीन दिशाओं में हो उसको सुक्षेत्र नामक त्रिशाल वास्तु कहते हैं, यह वास्तु धन, पुत्र आदि की वृद्धि करती है। जिसके दक्षिण तरफ भीत न हो और शेष तीन दिशाओं में हो उसको चुल्ली नामक त्रिशाल वास्तु कहते हैं, यह वास्तु धन नाश करती है। जिसके पश्चिम तरफ भीत न हो और शेष तीन दिशाओं में हो उसको पक्षघ्न नामक त्रिशाल वास्तु कहते हैं, यह वास्तु पुत्र नाश और वैर को कर देती है।

किरणाख्य तन्त्र में—

शस्तं हिरण्यनाभाख्यं हीनं चोत्तरशालया । सुक्षेत्रं पूर्वतो हीनं शालया सुहृदिदं मतम् ॥
चुल्ली दक्षिणया हीनं धनार्थप्राणनाशनम् । पश्चादपरया हीनं पक्षघ्नं तत्सुतान्तकृत् ॥

द्विशाल वास्तुओं के नाम, उनके लक्षण और फल—

सिद्धार्थमपरयाम्ये यमसूर्यं पश्चिमोत्तरे शाले ।
दण्डाख्यमुदक्पूर्वे वाताख्यं प्राग्युता याम्या ॥ ३९ ॥
पूर्वापरे तु शाले गृहचुल्ली दक्षिणोत्तरे काचम् ।
सिद्धार्थेऽर्थावाप्तिर्यमसूर्ये गृहपतेर्मृत्युः ॥ ४० ॥
दण्डवधो दण्डाख्ये कलहोद्वेगः सदैव वाताख्ये ।
वित्तविनाशश्चुल्ल्यां ज्ञातिविरोधः स्मृतः काचे ॥ ४१ ॥

जिसके पश्चिम और दक्षिण में शाला हो उसको सिद्धार्थ, जिसके पश्चिम और उत्तर में हो उसको यमसूर्य, जिसके उत्तर और पूर्व में हो उसको दण्ड, जिसके पूर्व और दक्षिण में हो उसको वात, जिसके पूर्व और पश्चिम में हो उसको गृहचुल्ली और जिसके दक्षिण और उत्तर में हो उसको काच संज्ञक वास्तु कहते हैं। सिद्धार्थ वास्तु में धन की प्राप्ति, यमसूर्य में गृहस्वामी की मृत्यु, दण्ड में दण्ड से मृत्यु (या दण्ड और वध), वात में सदा कलह, गृहचुल्ली में धन का नाश और काच संज्ञक वास्तु में बन्धुओं से विरोध होता है ॥ ३९–४१ ॥

इक्यासी पद वाले क्षेत्र का प्रदर्शन—

एकाशीतिविभागे दश दश पूर्वोत्तरायता रेखाः ।
अन्तस्त्रयोदश सुरा द्वात्रिंशद्बाह्यकोष्ठस्थाः ॥ ४२ ॥

इक्यासी पद के क्षेत्र बनाने के लिये दश रेखा पूर्वापरा और दश रेखा दक्षिणोत्तरा बनानी चाहिये, इस तरह रेखायें करने से ८१ कोष्ठ का क्षेत्र बन जायगा। उसके बाहर तेरह और भीतर बत्तीस देवता होते हैं ॥ ४२ ॥

बाह्य कोष्ठ स्थित बत्तीस देवताओं के नाम—

शिखिपर्जन्यजयन्तेन्द्रसूर्यसत्या भृशोऽन्तरिक्षश्च ।
ऐशान्यादिक्रमशो दक्षिणपूर्वेऽनिलः कोणे ॥ ४३ ॥
पूषा वितथबृहत्क्षतयमगन्धर्वाख्यभृङ्गराजमृगाः ।
पितृदौवारिकसुग्रीवकुसुमदन्ताम्बुपत्यसुराः ॥ ४४ ॥
शोषोऽथ पापयक्ष्मा रोगः कोणे ततोऽहिमुख्यौ च ।
भल्लाटसोमभुजगास्ततोऽदितिर्दितिरिति क्रमशः ॥ ४५ ॥

पूर्वोक्त क्षेत्र में ईशान कोण से लेकर क्रम से शिखी, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य,

सत्य, भृश, अन्तरिक्ष ये देवता हैं। अग्नि कोण से लेकर क्रम से अनिल, पूषा, वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग ये देवता हैं। नैर्ऋत्य कोण से लेकर क्रम से पिता, दौवारिक, सुग्रीव, कुसुमदन्त, वरुण, असुर, शोष, पापयक्ष्मा ये देवता हैं। वायव्य कोण से लेकर क्रम से रोग, सर्प, मुख्य, भल्लाट, सोम, भुजग, अदिति, दिति ये देवता हैं॥ ४३–४५॥

अन्तर्गत तेरह देवताओं के नाम—

मध्ये ब्रह्मा नवकोष्ठकाधिपोऽस्यार्यमा स्थितः प्राच्याम्।
एकान्तरात् प्रदक्षिणमस्मात् सविता विवस्वांश्च॥ ४६॥
विबुधाधिपतिस्तस्मान्मित्रोऽन्यो राजयक्ष्मनामा च।
पृथिवीधरापवत्सावित्येते ब्रह्मणः परिधौ॥ ४७॥
आपो नामैशाने कोणे हौताशने च सावित्रः।
जय इति च नैर्ऋते रुद्र आनिलेऽभ्यन्तर पदेषु॥ ४८॥

पूर्वोक्त क्षेत्र के अन्तर्गत ये देवता विराजमान हैं। जैसे मध्य के नव कोष्ठों में ब्रह्मा, ब्रह्मा से पूर्व अर्यमा, प्रदक्षिण क्रम से एक पद व्यवहित करके सविता, विवस्वान्, इन्द्र, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर, आपवत्स ये आठ देवता एकान्तर से ब्रह्माजी की परिधि को व्याप्त करके विराजमान हैं। तथा ईशान कोण में पर्जन्य के नीचे आप, आग्नेय कोण में अन्तरिक्ष के नीचे सावित्र, नैर्ऋत्य कोण में दौवारिक के नीचे जय और वायव्य कोण में पापयक्ष्मा के नीचे रुद्र स्थित हैं॥ ४६–४८॥

इस पूर्वोक्त क्षेत्र में स्थित देवताओं की पदसंख्या—

आपस्तथापवत्सः पर्जन्योऽग्निर्दितिश्च वर्गोऽयम्।
एवं कोणे कोणे पदिकाः स्युः पञ्च पञ्च सुराः॥ ४९॥
बाह्या द्विपदाः शेषास्ते विबुधा विंशतिः समाख्याताः।
शेषाश्चत्वारोऽन्ये त्रिपदा दिक्ष्वर्यमाद्यास्ते॥ ५०॥

इस क्षेत्र के ईशान कोण में आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि, दिति ये पाँच देवता एकपदिक (एक एक पद के स्वामी) हैं। इसी तरह प्रत्येक कोण में पाँच पाँच देवता एकपदिक हैं। जैसे आग्नेय कोण में सविता, सवित्र, अनल वा अनिल, अन्तरिक्ष, पूषा। नैर्ऋत्य कोण में इन्द्र, जय, दौवारिक, पिता, मृग और वायव्य कोण में राजयक्ष्मा, रुद्र, पापयक्ष्मा, रोग, नाग ये पाँच देवता एकपदिक हैं। शेष बाह्य कोष्ठ स्थित देवता द्विपदिक हैं, ये कुल बीस होते हैं। जैसे पूर्व में जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश। दक्षिण में वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज। पश्चिम में सुग्रीव, कुसुमदन्त, वरुण, असुर, शोष और उत्तर में मुख्य, भल्लाट, सोम, भुजग, अदिति ये द्विपदिक देवता हैं। ब्रह्मा से पूर्व आदि दिशाओं में शेष अर्यमा आदि चार देवता (अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर) त्रिपदिक हैं।

यहाँ पर पराशर—

तत्र बहिर्देवताः प्रागपर्जन्यकरग्रहमहेन्द्ररविसत्यभृशान्तरिक्षपवनाः ।
दक्षिणतः पूषावितथबृहत्क्षतयमभृङ्गगन्धर्वमृगपितरश्चेति ॥
पश्चिमतो दौवारिकसुग्रीवपुष्पदन्तासुरवारुणयक्ष्मरोगशोषाश्चेति ।
उदङ्नागराजमुख्यभल्लाटसोमादितिकुबेरनागहुतवहाः ॥
तन्मध्ये ब्रह्मा तत्पुरतोऽर्यमा दक्षिणतो विवस्वान्मित्रः ।
प्रत्युदक् पृथ्वीधर इति ब्राह्मपदानुपङ्क्तिनोऽष्टावन्ये ॥
आपापवत्सावैशान्यां सवित्रसवितारावाग्नेय्यां जयेन्द्रौ ।
नैरृत्यां रुद्रवायू वायव्यामिति सर्वदेवताः पञ्चचत्वारिंशदिति ॥
तथान्यैः सहैतेषां पदानामसाहस्यम् ।

तथा च—

रुद्रा हुताशनश्चैव पिता चानल एव च । एते कोणगता देवा एकाशीतिपदे स्थिताः ॥
चतुःषष्टिपदेऽप्येवं पापयक्ष्माऽत्र न स्थितः । एभ्योऽन्ये सदृशा ज्ञेया सुराः सर्वपदाश्रिताः ॥

वास्तु पुरुष के अङ्ग विभाग से देवता का स्थापन—

पूर्वोत्तरदिङ्मूर्धा पुरुषोऽयमवाङ्मुखोऽस्य शिरसि शिखी ।
आपो मुखे स्तनेऽस्यार्यमा ह्युरस्यापवत्सश्च ॥ ५१ ॥
पर्जन्याद्या बाह्या दृक्श्रवणोरःस्थलांसगा देवाः ।
सत्याद्याः पञ्च भुजे हस्ते सविता च सावित्रः ॥ ५२ ॥
वितथो बृहत्क्षतयुतः पार्श्वे जठरे स्थितो विवस्वांश्च ।
ऊरू जानु च जङ्घे स्फिगिति यमाद्यैः परिगृहीताः ॥ ५३ ॥
एते दक्षिणपार्श्वे स्थानेष्वेवं च वामपार्श्वस्थाः ।
मेढ्रे शक्रजयन्तौ हृदये ब्रह्मा पिताऽङ्घ्रिगतः ॥ ५४ ॥

यह वास्तु पुरुष ईशान कोण में शिर करके अधोमुख होकर स्थित है। इसके शिर में अग्नि, मुख में आप, स्तन में अर्यमा और छाती में आपवत्स स्थित हैं। बाह्य कोष्ठ स्थित पर्जन्य आदि देवता नेत्र, कान, छाती और कन्धे में स्थित हैं। जैसे नेत्र में पर्जन्य, कान में जयन्त, छाती में इन्द्र और कन्धे में सूर्य स्थित हैं। तथा भुजा में सत्य आदि पाँच देवता (सत्य, भृश, अन्तरिक्ष, अनिल और पूषा)। हाथ में वितथ और बृहत्क्षत। पेट में विवस्वान्। ऊरु में यम। जानु में गन्धर्व। जंघा में भृङ्गराज और कुल्ले में मृग स्थित है। ये सब देवता दक्षिण अङ्ग के हैं। इसी तरह वामपार्श्व के सब अङ्गों में देवता हैं। जैसे वाम स्तन पृथ्वीधर। नेत्र में दिति। कान में अदिति। छाती में भुजग। कन्धे में सोम। बाहु में भल्लाट,

मुख्य, अहि, रोग और पापयक्ष्मा। हाथ में रुद्र और राजयक्ष्मा। वाम में शोष और असुर। ऊरु में वरुण। जानु में कुसुमदन्त। जंघा में सुग्रीव तथा कुल्ले में दौवारिक स्थित है। इसी तरह लिङ्ग में शक्र और जयन्त, हृदय में ब्रह्मा और पाँव में पिता स्थित हैं। इस तरह इक्यासी पद में नगर, ग्राम, गृह आदि के सम्बन्ध में वास्तु पुरुष के अङ्गों का विभाग करना चाहिये ॥ ५१–५४ ॥

चौंसठ पद के क्षेत्र और उसमें देवताओं का न्यास क्रम—

अष्टाष्टकपदमथवा कृत्वा रेखाश्च कोणगास्तिर्यक्।
ब्रह्मा चतुष्पदोऽस्मिन्नर्धपदा ब्रह्मकोणस्थाः ॥ ५५ ॥
अष्टौ च बहिष्कोणेष्वर्धपदास्तदुभयस्थिताः सार्धाः।
उक्तेभ्यो ये शेषास्ते द्विपदा विंशतिस्ते हि ॥ ५६ ॥

अथवा चौंसठ पद का क्षेत्र बनावे (नव पूर्वापरा और नव दक्षिणोत्तरा रेखा खींचकर चौंसठ पद का क्षेत्र बनावे) फिर इसके चारों कोनों में कर्णाकार दो दो रेखायें खींचने से यह क्षेत्र बन जायगा। इस क्षेत्र में चार पदों का स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के चारों कोनों में आठ देवता (आप, आपवत्स, सविता, सवित्र, इन्द्र, जयन्त, राजयक्ष्मा और रुद्र) और बाहर के चारों कोनों में आठ देवता (शिखी, अन्तरिक्ष, अनिल वा अनल, मृग, पिता, पापयक्ष्मा, रोग और दिति) अर्धपदीय हैं। इनके दोनों तरफ पर्जन्य, भृश, पूषा, भृङ्गराज, दौवारिक, शोष, नाग और अदिति सार्धपदीय (डेढ़ पद के स्वामी) हैं। तथा शेष बीस देवता (जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, सुग्रीव, कुसुमदन्त, वरुण, असुर, मुख्य, भल्लाट, सोम, भुजग, अर्यमा, विवस्वान्, मित्र, पृथ्वीधर ये बीस देवता) द्विपदीय हैं।

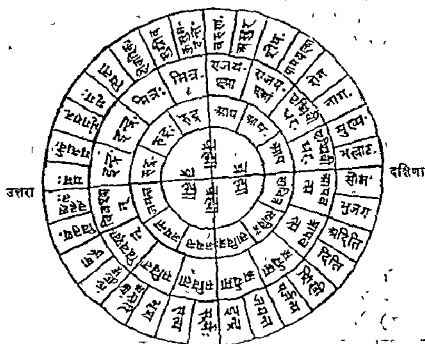
विशेष—यहाँ पर केवल चतुरस्र क्षेत्र में वास्तु नर का प्रदर्शन किया है। किन्तु वृत्त, त्रिकोण, षट्कोण आदि आकृति वाले भी गृह, ग्राम, नगर आदि देखे जाते हैं। अतः वृत्त, त्रिभुज आदि में किस तरह वास्तु नर का स्थापन करना चाहिये, इसको ग्रन्थान्तर से लाकर यहाँ पर लिख रहा हूँ।

वृत्त में इक्यासी पद वाले वास्तु नर का स्थापन क्रम—

एकाशीतिपदे क्षेत्रे कर्तव्यं वृत्तपञ्चकम्। बाह्ये वृत्तद्वयं यत्तत्पदद्वात्रिंशता युतम् ॥
तृतीयं द्वादशपदं चतुर्थं तु चतुष्पदम्। केवलं पञ्चमं कार्यं ब्रह्मा पञ्चस्ववस्थितः ॥
शिख्यादयस्तु द्विपदा बहिर्विष्कम्भसंस्थिताः।

अर्थ—इक्यासी पद वाले वृत्त क्षेत्र में पाँच वृत्त बनावे, उन में बाहर के दो वृत्तों में बत्तीस-बत्तीस पद, तीसरे में बारह पद, चौथे में चार पद और पाँचवे में केवल एक पद बनावे। यहाँ मध्य के पाँच पद में ब्रह्मा बाहर के दोनों वृत्तों में दो-दो पद वाले शिखी आदि बत्तीस देवता और अर्यमा आदि चार देवता तीन-तीन पदों में लिखे। इस तरह वृत्त क्षेत्र में इक्यासी पद के वास्तु नर का स्थापन हो जायगा।

एकाशीतिपदे वृत्ते वास्तौ देवानां न्यासक्रमः



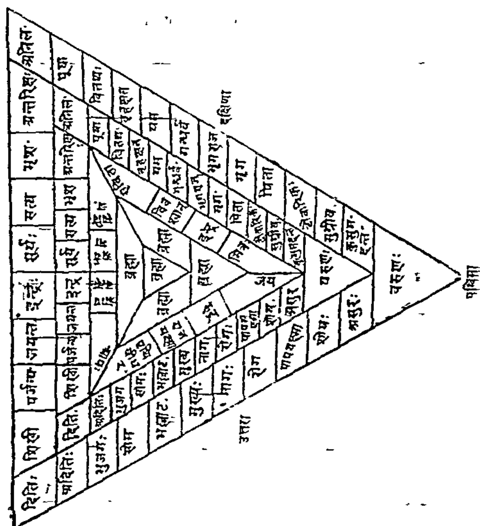
त्रिभुज में इक्यासी पद वाले वास्तु नर का स्थापन क्रम—

न्यस्तानि पञ्चक्षेत्राणि त्रिकोणे परिकल्पयेत् । प्राची दिगष्टधा कार्या कोणवर्ज्या ततः परे ॥
रविभागविभक्ते ते वास्तुद्वाराणि तानि तु । दितिं वायुं जलपतिं कोणेषु त्रिषु विन्यसेत् ॥
ततः शिख्यादिकान् सर्वान् शेषेषु विनिवेशयेत् । द्वितीये पूर्ववद्भागाः षोडशद्विगुणास्ततः ॥
तत्रापि कोणत्रितये पूर्वोक्तान् विबुधान् न्यसेत् । शेषेषु वास्तुकोष्ठस्थान् सुरांश्च विनिवेशयेत् ॥
क्षेत्रे तृतीये चत्वारि सर्वशाखासु कारयेत् । प्रागतिर्यमसावित्रौ सविता च ततः परम् ॥
विवस्वानिन्द्रमित्रौ च जयश्चैव हरस्तथा । राजयक्ष्मा भूमिधर आपो वत्सयुतः स च ॥
चतुर्थे पञ्चभिर्भागैः कृत्वा तन्मध्यगस्तथा । पितामहो विनिर्दिष्टस्त्र्यस्रक्षेत्रेऽप्ययं विधिः ॥

अर्थ—इक्यासी पद वाले, त्रिभुजाकार वास्तु नर क्षेत्र में पाँच त्रिभुज बनावे। उसके प्रथम भाग में दोनों कोनों को छोड़ कर पूर्व दिशा के भुजा के आठ भाग करे और अन्य दो भुजाओं के बारह-बारह भाग करे। तीनों कोनों में दिति, वायु और वरुण का स्थापन करे। फिर प्रथम भाग के शेष पदों में शिखी आदि देवताओं का स्थापन करे। इसी तरह द्वितीय भाग में भी पूर्वोक्त शिखी आदि देवताओं का स्थापन करे, तथा इस भाग के तीनों कोनों पर भी प्रथम कोणस्थित देवताओं का स्थापन करे और शेष पदों में वास्तु कोष्ठ स्थित शेष देवताओं का स्थापन करे। तृतीय भाग में तीनों दिशाओं में चार-चार पद बना कर उनमें प्रदक्षिण क्रम से अर्यमा, सवित्र,

सविता, विवस्वान्, इन्द्र, मित्र, जय, हर, राजयक्ष्मा, भूमिधर, आप और आपवत्स का स्थापन करे। चतुर्थ (मध्य) भाग के पाँच पदों में ब्रह्मा का स्थापन करे। इस तरह त्रिभुज क्षेत्र में इक्यासी पद के वास्तु नर का स्थापन हो जायगा।

एकाशीतिपदे त्रिभुजे वास्तौ देवानां न्यासक्रमः—



वृत्त में चौंसठ पद वाले वास्तु नर का स्थापन क्रम—

वृत्तानि चत्वारि समानि कृत्वा वास्तोश्चतुःषष्टिपदस्य सम्यक्।
अधस्तदर्धेन च सूत्रवेदैर्विभज्यते वृत्तचतुष्टयं च।
शिख्याद्यश्चैकपदे निविष्टाः पदद्वये चार्यमकादयश्च।
आपादयश्च त्रिपदा प्रविष्टाश्चतुष्पदश्चात्र पितामहः स्यात् ॥

अर्थ—चौंसठ पद वाले वृत्ताकार वास्तु नर क्षेत्र में समानान्तर चार वृत्त बनाकर

प्रथम वृत्त के बत्तीस, द्वितीय के सोलह, तृतीय के बारह और चतुर्थ के चार भाग बनावे। बाद प्रथम वृत्त में शिखी आदि बत्तीस देवता एकपदीय, द्वितीय वृत्त में अर्यमा आदि आठ देवता द्विपदीय, तृतीय वृत्त में आप आदि चार देवता त्रिपदीय और चतुर्थ वृत्त में ब्रह्मा चतुष्पदीय स्थापन करे ॥

चतुष्षष्टिपदे चतुर्भुजे देवानां न्यासक्रमः—

पूर्वा

उ०

शिखी / दिति	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्यः	सत्य	भृश	आकाश / अनिलः
अदिति	पर्जन्य / अदिति	जयन्त	इन्द्रः	सूर्य	सत्य	भृश / पूषा	पूषा
भुजग	भुजग	आपवत्स / आप	अर्यमा	अर्यमा	सविता / सावित्र	वितथः	वितथ
सोमः	सोम	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	बृहक्षत	बृहक्षत
भल्लाट	भल्लाटः	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	यम	यम
मुख्य	मुख्य	रुद्र / रुद्रदास	मित्र	मित्र	इन्द्र / जय	गन्धर्व	गन्धर्व
नागः	नाग / शोष	असुरः	वरुण	कुसुमदन्त	सुग्रीव	भृङ्गराज / दौवारिक	भृंगराज
रोग / पापयक्ष्मा	शोष	असुर	वरुण	कुसुमदन्त	सुग्रीव	दौवारिक	मृग / पिता

द०

पश्चिमा

मर्म विभाग का प्रदर्शन—

सम्पाता वंशानां मध्यानि समानि यानि च पदानाम्।
मर्माणि तानि विन्द्यान्न तानि परिपीडयेत्प्राज्ञः ॥ ५७ ॥

पदों के ठीक-ठीक मध्य स्थान में वंशों (कोण से कोण गत सूत्रों) का परस्पर जो सम्पात हो उसको मर्म स्थान कहते हैं। बुद्धिमान् पुरुष उन मर्म स्थानों को पीड़ित न करें।

कोण से कोण तक सूत्र करने का नियम—

रोगद्वायुं पितृतो हुताशनं शोषसूत्रमपि वितथात् ।

मुख्याद्भृशं जयन्ताच्च मृगमदितेश्च सुग्रीवम् ॥

यहाँ आचार्य ने वंश और रज्जु का विभाग नहीं किया है। अतः प्रसङ्गवश वास्तु विद्या में कथित विभाग को यहाँ लिखते हैं—

रोगाद्वायुं नयेत् सूत्रं पितृतोऽथ हुताशनम् । एतत् सूत्रद्वयं प्रोक्तं मुनिभिर्वंश संज्ञितम् ॥ वितथाच्छोषकं चान्यद्भृशं मुख्यात्तथा नयेत् । जयन्ताद्भृङ्गराजाख्यं सुग्रीवमदितेस्तथा॥ एतच्चतुष्टयं प्रोक्तं रज्जुसंज्ञं मनीषिभिः ॥ ५७ ॥

पीड़ित मर्म स्थान का फल—

तान्यशुचिभाण्डकीलस्तम्भाद्यैः पीडितानि शल्यैश्च ।
गृहभर्त्तुस्तत्तुल्ये पीडामङ्गे प्रयच्छन्ति ॥ ५८ ॥

ये मर्म स्थान अपवित्र भाण्ड आदि वस्तु, कील, खम्भा, आदि (पाषाण आदि) और शल्यों से पीड़ित हो तो तत्तुल्य अङ्ग में गृह स्वामी को पीड़ा होती है, अर्थात् पीड़ित मर्म स्थान वास्तु नर के जिस अङ्ग में पड़े तत्तुल्य अङ्ग में गृहस्वामी को पीड़ा होती है ॥ ५८ ॥

शल्य ज्ञान का प्रकार—

कण्डूयते यदङ्गं गृहभर्त्तुर्यत्र वाऽमराहुत्याम् ।
अशुभं भवेन्निमितं विकृतेर्वाग्नेः सशल्यं तत् ॥ ५९ ॥

हवन काल या मरन काल में गृह का स्वामी जिस अङ्ग को खुजलावे वास्तु नर के उस अङ्ग स्थान में शल्य कहना चाहिये। अथवा जिस देवता की आहुति देने के समय अशुभ निमित्त (छींक, रोना, चिल्लाना, पादना, या अशुभ शब्द श्रवण) हो या अग्नि में विकार (विस्फुलिङ्ग, शब्द के साथ दुर्गन्ध) उत्पन्न हो तो उस देवता के स्थान में शल्य कहना चाहिये ॥ ५९ ॥

शल्यों के विभाग से फल—

धनहानिर्दारुमये पशुपीडा रुग्भयानि चास्थिकृते ।
[लोहमये शस्त्रभयं कपालकेशेषु मृत्युः स्यात् ॥ ६० ॥
अङ्गारे स्तेनभयं भस्मनि च विनिर्दिशेत्सदाग्निभयम् ।
शल्यं हि मर्मसंस्थं सुवर्णरजतादृतेऽत्यशुभम् ॥ ६१ ॥
मर्मण्यमर्मगो वा निरुणध्यर्थागमं तुषसमूहः ।]
अपि नागदन्तको मर्मसंस्थितो दोषकृद्भवति ॥ ६२ ॥

काष्ठ का शल्य हो तो धन हानि, हड्डी का शल्य हो तो पशुओं को पीड़ा, और रोगभय, लोहे का शल्य हो तो शस्त्र का भय, कपाल या केश का शल्य हो तो मृत्यु,

कोयले का शल्य हो तो चोर भय और भस्म का शल्य हो तो सदा अग्नि भय होता है। तथा सोना और चाँदी के अतिरिक्त कोई शल्य वास्तु पुरुष के मर्म स्थान स्थित हो तो अत्यन्त अशुभ होता है। यदि धान्यों की भूमी मर्म स्थान या किसी अन्य स्थान में स्थित हो तो धन के आगमन को रोकता है। तथा नागदन्त मर्म स्थान में हो तो दोष पैदा करने वाला होता है, पर मर्म स्थान से अतिरिक्त स्थान में हो तो शुभ होता है॥ ६०–६२॥

वंश सूत्र और अतिमर्म स्थान का लक्षण—

रोगाद्वायुं पितृतो हुताशनं शोषमत्रमपि वितथात्।
मुख्याद्भृशं जयन्ताच्च भृङ्गमदितेश्च सुग्रीवम्॥ ६३॥
तत्सम्पाता नव ये तान्यतिमर्माणि सम्प्रदिष्टानि।
यश्च पदस्याष्टांशस्तत् प्रोक्तं मर्मपरिमाणम्॥ ६४॥

रोग से वायु तक, पिता से शिखी तक, वितथ से शोष तक, मुख्य से भृश तक, जयन्त से भृङ्ग तक और अदिति से सुग्रीव तक सूत्र बांधे, इन सूत्रों के परस्पर नव सम्पात स्थान वास्तुपुरुष के अतिमर्म स्थान हैं। तथा एक पद में अष्टमांश तुल्य मर्म स्थान का परिमाण होता है॥ ६३–६४॥

वंश और शिरा का परिमाण—

पदहस्तसंख्यया सम्मितानि वंशोऽङ्गुलानि विस्तीर्णः।
वंशव्यासोऽध्यर्धः शिराप्रमाणं विनिर्दिष्टम्॥ ६५॥

पूर्व कथित ६ सूत्रों की वंश संज्ञा है तथा वास्तु विभाग के लिये जो पूर्वापरा तथा दक्षिणोत्तरा दश दश रेखा किये गये हैं उनकी शिरा संज्ञा होती है। वास्तु में एक पाद का विस्तार जितने हाथ हो, उतने अङ्गुल एक वंश का विस्तार और विस्तार से ड्योढा शिरा का विस्तार होता है॥ ६५॥

गृह स्वामियों के लिये कुछ उपदेश—

सुखमिच्छन् ब्रह्माणं यत्नाद्रक्षेद्गृही गृहान्तःस्थम्।
उच्छिष्टाद्युपघाताद्गृहपतिरुपतप्यते तस्मिन्॥ ६६॥

सुख को चाहने वाले गृह स्वामी घर के मध्य में स्थित ब्रह्मा जी की यत्न पूर्वक रक्षा करे। उनके ऊपर उच्छिष्ट (जूठ) आदि (अपवित्र वस्तु) को रखने से गृह स्वामी को पीड़ा होती है॥ ६६॥

विकल वास्तु में दोष और अविकल में सुख का प्रदर्शन—

दक्षिणभुजेन हीने वास्तुनरेऽर्थक्षयोऽङ्गनादोषाः।
वामेऽर्थधान्यहानिः शिरसि गुणैर्हीयते सर्वैः॥ ६७॥
स्त्रीदोषाः सुतमरणं प्रेष्यत्वं चापि चरणवैकल्ये।
अविकलपुरुषे वसतां मानार्थयुतानि सौख्यानि॥ ६८॥

यदि वास्तु पुरुष के दक्षिण भुजा हीन हो तो धन नाश और स्त्री कृत दोष होता है। वाम भुजा हीन हो तो धन-धान्यों का नाश, शिर हीन हो तो, धन, आरोग्य आदि सब गुणों का नाश तथा चरण हीन हो तो स्त्री दोष, पुत्र की मृत्यु और दासपन होता है। यदि वास्तु पुरुष के सब अङ्ग पूर्ण हो तो उस स्थान में निवास करने वाले मनुष्य को मान और धन से युत सुख मिलता है ॥ ६७–६८ ॥

पूर्वं कथित रीत्या नगर और ग्रामों में भी वास्तुनर का विभाग—

गृहनगरग्रामेषु च सर्वत्रैवं प्रतिष्ठिता देवाः।
तेषु च यथानुरूपं वर्णा विप्रादयो वास्याः ॥ ६९ ॥

गृह, नगर, और ग्रामों में इसी प्रकार सब देवता विराजमान हैं। उन नगर और ग्रामों में ब्राह्मण आदि वर्णों को यथाक्रम निवास करना चाहिये ॥ ६९ ॥

ब्राह्मण आदि वर्णों का निवास स्थान—

वासगृहाणि च विन्द्याद्विप्रादीनामुदग्दिगाद्यानि।
विशतां च यथा भवनं भवन्ति तान्येव दक्षिणतः ॥ ७० ॥

ब्राह्मण आदि वर्ण क्रम से उत्तर आदि दिशा में वासगृह बनावे। जैसे ब्राह्मण उत्तर में, क्षत्रिय पूर्व में, वैश्य दक्षिण में और शूद्र पश्चिम में निवासस्थान बनावे। गृह इस तरह बनाना चाहिये जिस से कि आङ्गन में प्रवेश करते समय वे गृह दक्षिण तरफ पड़े। जैसे पूर्व मुख वाले गृह के आङ्गन का द्वार उत्तर में, दक्षिण मुख वाले गृह के आङ्गन का द्वार पूर्व में, पश्चिम मुख वाले गृह के आङ्गन का द्वार दक्षिण में, और उत्तर मुख वाले गृह के आङ्गन का द्वार पश्चिम में बनाना चाहिये ॥७०॥

चारों दिशाओं में बत्तीस द्वारों का फल प्रदर्शनार्थ—

नवगुणसूत्रविभक्तान्यष्टगुणेनाथवा चतुःषष्टेः।
द्वाराणि यानि तेषामनलादीनां फलोपनयः ॥ ७१ ॥

एक्यासी पद में नवगुणित सूत्र से और चौसठ पद में अष्टगुणित सूत्र से विभक्त होकर जो अनल आदि बत्तीस द्वार बने हैं क्रम से उनके फल का प्रदर्शन कर रहे हैं ॥ ७१ ॥

शिखि से लेकर अन्तरिक्ष तक पूर्व द्वार का फल—

अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्।
क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ॥ ७२ ॥

शिखी से लेकर अन्तरिक्ष तक आठ देवता पूर्व में हैं। उन में शिखी के ऊपर द्वार हो तो अग्नि भय, पर्जन्य के ऊपर द्वार हो तो कन्या जन्म, जयन्त के ऊपर द्वार हो तो बहुत धन, इन्द्र के ऊपर द्वार हो तो राजा की प्रसन्नता, सूर्य के ऊपर द्वार हो तो क्रोधीपन, सत्य के ऊपर द्वार हो तो असत्य भाषण, भृश के ऊपर द्वार हो तो क्रूरता और अन्तरिक्ष के ऊपर द्वार हो तो तस्करता आती है ॥ ७२ ॥

दक्षिण द्वार का फल—

अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धिः ।
रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥ ७३ ॥

अनिल से लेकर मृग तक आठ देवता दक्षिण में हैं। उन में अनिल के ऊपर द्वार हो तो अल्प पुत्र, पौष्ण के ऊपर दासपन, वितथ के ऊपर नीचपन, बृहत्क्षत के ऊपर भोजन, पानवस्तु और पुत्रों की वृद्धि, याम्य के ऊपर अशुभ, गन्धर्व के ऊपर कृतघ्नता, भृङ्गराज के ऊपर निर्धनता और मृग के ऊपर द्वार हो तो पुत्र के बल की हानि होती है ॥ ७३ ॥

पश्चिम द्वार का फल—

सुतपीडा रिपुवृद्धिर्न सुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत् ।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥ ७४ ॥

पिता से लेकर पापयक्ष्मा तक आठ देवता पश्चिम में हैं। उन में पिता के ऊपर द्वार हो तो पुत्रों की पीड़ा, दौवारिक के ऊपर शत्रु की वृद्धि, सुग्रीव के ऊपर पुत्र और धन का लाभ, कुसुमदन्त के ऊपर पुत्र और धन सम्पत्ति की प्राप्ति, वारुण के ऊपर धन सम्पत्ति, असुर के ऊपर राजभय, शोष के ऊपर धननाश तथा पापयक्ष्मा के ऊपर द्वार हो तो रोग होता है ॥ ७४ ॥

उत्तर द्वार का फल—

वधबन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुणसम्पत् ।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् ॥ ७५ ॥

रोग से लेकर दिति तक आठ देवता उत्तर में हैं। उन में रोग के ऊपर द्वार हो तो मृत्यु और बन्धन, सर्प के ऊपर द्वार हो तो शत्रु की वृद्धि, मुख्य के ऊपर द्वार हो तो पुत्र और धन का लाभ, भल्लाट के ऊपर द्वार हो तो सम्पूर्ण शौर्यादि गुणों की सम्पत्ति, सोम के ऊपर द्वार हो तो पुत्र से द्वेष, अदिति के ऊपर द्वार हो तो स्त्री के द्वारा दोष तथा दिति के ऊपर द्वार हो तो निर्धनता होती है ॥ ७५ ॥

द्वार के वेध का फल—

मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम् ।
उच्छ्रायाद्द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥ ७६ ॥

यदि मार्ग, वृक्ष, दूसरे घर का कोना, कूप, खम्भा या भ्रम (जल निकलने की मोरी) से गृह द्वार विद्ध होता हो अर्थात् ये सब द्वार के सम्मुख हो तो अशुभ है। पर गृह द्वार की जितनी ऊँचाई हो उस से द्विगुणित भूमि को छोड़कर आगे वेध करते हुये भी इन मार्गादि का रहना दोषद नहीं है।

समाससंहिता में—

स्तम्भतरुभ्रमकोणैर्विद्धं वेधश्च न शुभकरद्वारम् ।
वेधोच्छ्रायाद्द्विगुणां भूमिं त्यक्त्वा न दोषाय ॥

भगवान् गर्ग—

द्वारोच्छ्रायद्विगुणितां त्यक्त्वा भूमिं बहिः स्थितः। न दोषाय भवेद्वेधो गृहस्य गृहिणोऽथवा॥७६॥

मार्ग आदि से वेधित द्वार को फल—

रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा ।
पङ्कद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनिःस्राविणी प्रोक्तः ॥ ७७ ॥
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे ।
स्तम्भेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्रह्मणोऽभिमुखे ॥ ७८ ॥

यदि गृह द्वार मार्ग से वेधित हो तो गृह स्वामी की मृत्यु, वृक्ष से वेधित हो तो बालकों में दोष, पङ्क (कीचड) से वेधित हो तो शोक, मोरी से वेधित हो तो व्यर्थ खर्च, कूप से वेधित हो तो मृगी रोग को उत्पत्ति, देवता की प्रतिमा से वेधित हो तो गृह स्वामी का नाश, स्तम्भ से वेधित हो तो स्त्रियों में दोष और ब्रह्मा के सम्मुख हो तो कुल का नाश करता है ॥ ७७–७८ ॥

द्वार का विशेष फल—

उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः ।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च ॥ ७९ ॥
द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय सङ्कटं यच्च ।
आव्यात्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥ ८० ॥
पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय ।
बाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा ॥ ८१ ॥

जिस गृह के द्वार का किवाड़ बिना खोले ही खुल जाय उस में रहने वाले को उन्माद, अपने आप बन्द हो जाय तो कुल का नाश, पूर्व कथित परिमाण से अधिक द्वार का परिमाण हो तो राजभय, और प्रमाण से अल्प हो तो चोर भय और दुःख होता है। यदि एक घर के द्वार पर दूसरे खण्ड का द्वार पड़े तो शुभ नहीं होता है, जिस द्वार की मोटाई अल्प हो वह भी शुभ नहीं होता है, मृदङ्ग की आकृति वाला अति विपुल द्वार क्षुधा का भय करता है और कुबड़ा द्वार कुल का नाश करता है। यदि ऊपरी काष्ठ आदि के भार से दबा हुआ द्वार हो तो गृह स्वामी को पीड़ा करता है, भीतर को झुका हुआ द्वार हो तो गृह स्वामी को मृत्यु करता है, बाहर को झुका हुआ द्वार गृह स्वामी को प्रवासी बनाता है और दिग्भ्रान्त (जिस दिशा का द्वार हो उस से भिन्न दिशा को देखता) हो, तो गृह स्वामी को चोरों से पीड़ित करता है ॥ ७९–८१ ॥

यहां पर विशेष—

मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरभिसन्दधीत रूपद्धर्या ।

घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥ ८२ ॥

जितने सुन्दरता के सामान लेकर मूल द्वार की रचना की गई हो उतने सामान से अन्य द्वार की रचना नहीं करनी चाहिये। तथा कलश, श्रीफल, पत्र, पुष्प आदि से उस मूल द्वार की शोभा बढ़ानी चाहिये ॥ ८२ ॥

कोणों में निवास का फल—

ऐशान्यादिषु कोणेषु संस्थिता बाह्यतो गृहस्यैताः।
चरकी विदारिनामाऽथ पूतना राक्षसी चेति ॥ ८३ ॥
पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः।
श्वपचादयोऽन्त्यजात्यास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति ॥ ८४ ॥

गृह के बाहर ईशान आदि चारों कोनों में क्रम से चरकी, विदारिका, पूतना और राक्षसी निवास करती है। पुर, भवन और ग्रामों के जो कोने हों उन में निवास करने वाले को दोष होता है किन्तु श्वपच (चाण्डाल, डोम आदि), अन्त्यज (चमार आदि) नीच जातियों की वहाँ (कोने में) निवास करने से उन्नति होती है।

शास्त्रान्तर में कोण स्थित आठ देवता—

स्कन्दोऽर्यमा जम्भुकाख्यः पिलिपिञ्छस्तथा परः।
प्राच्यादिदिक्चतुष्के तु निवसन्ति महाग्रहाः॥

यहाँ पर आचार्य—

ऐशान्यां चरकी प्रोक्ता स्कन्दः प्राग्भागसंस्थितः। हौताशन्यां विदारी च याम्यां चैवार्यमा स्थितः
पूतना नैर्ऋते ज्ञेया जम्भुकः पश्चिमे स्थितः। राक्षसी चानिले कोणे पिलिपिञ्छस्तथोत्तरे॥ ८३-८४।

दिशा के वश शुभाशुभ वृक्ष—

याम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते।
उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ॥ ८५ ॥

पाकर, वट, गूलर, पीपल ये चार वृक्ष प्रदक्षिण क्रम से दक्षिण आदि दिशाओं में अशुभ और उत्तर आदि दिशाओं में शुभ हैं। जैसे दक्षिण में पाकर, पश्चिम में वट, उत्तर में गूलर और पूर्व में पीपल अशुभ तथा उत्तर में पाकर, पूर्व में वट, दक्षिण में गूलर और पश्चिम में पीपल शुभ है।

यहाँ पर गर्ग—

वर्जयेत्पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा। न्यग्रोधं पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम् ॥
अश्वत्थे तु भयं ब्रूयात् प्लक्षे ब्रूयात्पराभवम्। न्यग्रोधे राजतः पीडा नेत्रामयमुदुम्बरे ॥
वटः पुरस्ताद्धन्यः स्याद्दक्षिणे चाप्युदुम्बरः। अश्वत्थः पश्चिमे भागे प्लक्षस्तूत्तरतो भवेत् ॥ ८५ ॥

गृह समीप गत वृक्षों का फल—

आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय।
फलिनः प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम् ॥ ८६ ॥

छिन्द्यायदि न तरूंस्तान् तदन्तरे पूजितान् वपेदन्यान् ।
पुन्नागाशोकारिष्टवकुलपनसान् शमीशालौ ॥ ८७ ॥

काटेदार वृक्ष के गृह-समीप में रहने से शत्रु भय होता है। दूध वाला वृक्ष गृह समीप में रहने से धन नाश होता है। फल वाले वृक्ष के गृह समीप में रहने से सन्तति का नाश होता है। इन के काष्ठ भी गृह में लगाने से शुभ नहीं होता है। यदि उपर्युक्त काटेदार आदि वृक्षों को काट कर उनकी जगह पुन्नाग, अशोक, अरिष्ट, वकुल, कटहल, शमी या शाल रोप दिये जायँ तो उपर्युक्त दोष नहीं होता है ॥ ८६–८७ ॥

प्रशस्त भूमि का लक्षण—

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा
स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम् ।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥ ८८ ॥

प्रशस्त औषधी वाली, द्रुम (याज्ञिक वृक्ष = पलाश आदि) वाली, लताओं से युत, मधुर मिट्टी वाली, सुगन्धि वाली, निर्मल, समान और छिद्र रहित भूमि मार्ग में गमन से उत्पन्न श्रम को हटाने की इच्छा से वहाँ पर थोड़ी देर के लिये बैठे मनुष्य को भी लक्ष्मी देती है तो जिन के घर के पास में ही सदा रहती है उन की क्या बात ! अर्थात् उन को लक्ष्मी अवश्य ही देती है ॥ ८८ ॥

गृह समीप गत गृह का फल—

सचिवालयेऽर्थनाशो धूर्त्तगृहे सुतवधः समीपस्थे ।
उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे भवति चाकीर्त्तिः ॥ ८९ ॥
चैत्ये भयं ग्रहकृतं वल्मीकश्वभ्रसङ्कुले विपदः ।
गर्त्तायां तु पिपासा कूर्माकारे धनविनाशः ॥ ९० ॥

गृह के समीप में मन्त्री का घर हो तो धन नाश, धूर्त का गृह हो तो पुत्र नाश, देवता का गृह हो तो चित्त में खेद, चौराहा हो तो अकीर्ति और चैत्य (प्रधान) वृक्ष हो तो ग्रहों का भय होता है। दीमक (बाँबी = दिवाड़) युत या पोली भूमि गृह के समीप हो तो गृह स्वामी के ऊपर आपत्ति आती है। गृह के समीप गड्ढा हो तो प्यास का रोग और कछुए के समान आकृति वाली भूमि गृह के समीप हो तो धन नाश होता है ॥ ८९–९० ॥

ब्राह्मण आदि वर्णों के लिये शुभ भूमि—

उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव ।
विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्येषाम् ॥ ९१ ॥

उत्तर तरफ ढालूवाली भूमि में ब्राह्मणों को, पूर्व की ओर ढाल में क्षत्रियों को, दक्षिण की ओर ढालू भूमि में वैश्यों को, और पश्चिम की ओर ढालू भूमि में शूद्रों को शुभ होता है। ब्राह्मण चारों ओर की ढालूभूमि में घर बना सकता है। शेष वर्णों के लिये अपनी-अपनी दिशा की ढालूवाली भूमि पर ही घर बनाना अच्छा है ॥ ९१ ॥

विधानवश भूमि का शुभाशुभ—

गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम् ।
यद्यूनमनिष्टं तत्समे समं धन्यमधिकं यत् ॥ ९२ ॥

गृहकर्ता के हाथ से गृह मध्य में एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदे, फिर उस गड्ढे को उसी मिट्टी से भरे, यदि गड्ढा भरने में मिट्टी कम हो जाय तो अशुभ, ठीक-ठीक हो जाय तो सम और गड्ढा भरकर मिट्टी ज्यादा हो जाय तो शुभ होता है ॥ ९२ ॥

विधानवश भूमि का प्रकारान्तर से शुभाशुभ—

श्वभ्रमथवाऽम्बुपूर्णं पदशतमित्वा गतस्य यदि नोनम् ।
तद्धन्यं यच्च भवेत्पलान्यपामाढकं चतुःषष्टिः ॥ ९३ ॥

पूर्व कथित प्रकार से गड्ढे को खोदे, बाद उसमें जल भर कर वहाँ से सौ पद तक जाकर लौट आवे। इतने समय में गड्ढे का जल ज्यों का त्यों बना रहे तो शुभ होता है। तथा वहाँ की धूली से एक आढक प्रमाण टोकरी को भर फिर उस धूली को तौले, यदि वह धूली चौंसठ पल तुल्य हो तो वह भूमि शुभ होती है ॥ ९३ ॥

मृत्पात्र स्थित दीपक के द्वारा भूमि का शुभाशुभ—

आमे वा मृत्पात्रे श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्यधिकम् ।
ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य वर्णस्य ॥ ९४ ॥

चार बत्ती वाला दीपक जलाकर मिट्टी के कच्चे बर्तन में डाले। उनमें उत्तर आदि क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों की कल्पना करे। फिर उस बर्तन को गड्ढे में डाले। जिस दिशा की बत्ती देर तक जलती रहे उस दिशा के वर्ण के लिये वह भूमि शुभ होती है ॥ ९४ ॥

पुष्प के द्वारा भूमि का शुभाशुभ—

श्वभ्रोषितं न कुसुमं यस्य प्रम्लायतेऽनुवर्णसमम् ।
तत्तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन् मनो रमते ॥ ९५ ॥

सायकाल ब्राह्मण आदि वर्ण तुल्य वर्ण वाले, पुष्पों (सफेद, लाल, पीले और काले पुष्पों) को लेकर गड्ढे में डाल दे, दूसरे दिन प्रातःकाल उन पुष्पों को निकाल कर देखे, जिस वर्ण का फूल कुम्हलाया न हो उसके लिये वह भूमि शुभ होती है। अथवा अपना मन जहाँ पर प्रसन्न रहे वहाँ पर बसना चाहिये, उसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं।

यहाँ पर गर्ग—

या यस्य राशिता भूमेर्भवेत्तु गृहकर्मणि। तस्यां श्वभ्रं खनेर्मध्ये हस्तमात्रं समन्ततः॥
तच्छ्वभ्रं पूरयेत्तेन पांशुना सुविचक्षणः। वर्धमाने च वृद्धिः स्याद्धीयमाने विगर्हिता॥
साम्ये साम्यं विनिर्दिष्टमथवाऽन्यद्विचारणम्। पूरयित्वाऽथवा श्वभ्रं मृद्भिः क्रमशतं व्रजेत्॥
पूर्णं स्यादागमं यावत् सा भूमिस्तु प्रशस्यते। तस्मिन् वा धारयेच्छ्वभ्रे चित्रं माल्यमनुक्रमात्॥
यच्चिरान्म्लायते माल्यं तद्वर्णं तत्र चावसेत्। आमे वा मृन्मये पात्रे दीपवर्तिचतुष्टयम्॥
यस्यां दिशि प्रज्वलति चिरं तस्यैव सा शुभा॥ ९५॥

ब्राह्मण आदि वर्णों के लिये शुभाशुभ भूमि—

सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां प्रशस्यते भूमिः।
गन्धश्च भवति यस्यां घृतरुधिरान्नाद्यमद्यसमः॥ ९६॥
कुशयुक्ता शरबहुला दूर्वाकाशावृता क्रमेण मही।
अनुवर्णं वृद्धिकरी मधुरकषायाम्लकटुका च॥ ९७॥

ब्राह्मण आदि वर्णों के लिये क्रम से सफेद, लाल, पीली और काली भूमि शुभ होती है। तथा ब्राह्मण आदि वर्णों के लिये क्रम से घृतगन्धा, रक्तगन्धा, अन्नगन्धा और मद्यगन्धा भूमि शुभ होती है। ब्राह्मण आदि वर्णों के लिये क्रम से कुशों से युत, मुञ्जों से युत, दूर्वों से युत, कासों से युत भूमि शुभ होती है। तथा ब्रह्मणादि को क्रम से मीठी, कपैली, खट्टी और कड़वी मिट्टी वाली भूमि शुभ होती है॥

यहाँ पर गर्ग—

मधुरा दर्भसंयुक्ता घृतगन्धा च या मही। उत्तरप्रवणा चेति ब्राह्मणानां तु सा शुभा॥
रक्तगन्धा कषाया च शरवीरेण संयुता। रक्ता प्राक्प्रवणा ज्ञेया क्षत्रियाणां तु सा मही॥
दक्षिणप्रवणा भूमिर्याम्ला दूर्वाभिरन्विता। अन्नगन्धा च वैश्यानां पीतवर्णा प्रशस्यते॥
पश्चिमप्रवणा कृष्णा विकुण्ठा काशसंवृता। मद्यगन्धा मही धन्या शूद्राणां कटुका तथा॥

गृहारम्भ में प्रथम विधान—

कृष्टां प्ररूढबीजां गोऽध्युषितां ब्राह्मणैः प्रशस्तां च।
गत्वा महीं गृहपतिः काले सांवत्सरोद्दिष्टे॥ ९८॥
भक्ष्यैर्नानाकारैर्दध्यक्षतसुरभिकुसुमधूपैश्च
दैवतपूजां कृत्वा स्थपतीनभ्यर्च्य विप्रांश्च॥ ९९॥
विप्रः स्पृष्ट्वा शीर्षं वक्षश्च क्षत्रियो विशश्चोरू।
शूद्रः पादौ स्पृष्ट्वा कुर्याद्रेखां गृहारम्भे॥ १००॥

गृहपति ब्राह्मणों के द्वारा प्रशंसित भूमि को पहले हल से जोतवा कर उसमें बीज बोवे, बाद उस बीज के पक जाने पर एक रात के लिये उस में गायों को बैठावै, बाद दैवज्ञ के बताये हुये मुहूर्त में वहां जाकर अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ, दधि,

अक्षत, सुगन्ध, पुष्प और धूपों से चैत्रपति, स्थपति (कारीगर) और ब्राह्मणों की पूजा कर के यदि गृहपति ब्राह्मण हो तो शिर, क्षत्रिय हो तो छाती, वैश्य हो तो ऊरु और शूद्र हो तो पाँव स्पर्श कर के गृहारम्भ की रेखा खींचे ॥ ९८–१०० ॥

अंगूठा आदि से रेखा करने का फल—

अङ्गुष्ठकेन कुर्यान्मध्याङ्गुल्याऽथवा प्रदेशिन्या।
कनकमणिरजतमुक्तादधिफलकुसुमाक्षतैश्च शुभम् ॥ १०१ ॥
शस्त्रेण शस्त्रमृत्युर्बन्धो लोहेन भस्मनाग्निभयम्।
तस्करभयं तृणेन च काष्ठोल्लिखिता च राजभयम् ॥ १०२ ॥
वक्रा पादालिखिता शत्रुभयक्लेशदा विरूपा च।
चर्माङ्गारास्थिकृता दन्तेन च कर्तुरशिवाय ॥ १०३ ॥
वैरमपसव्यलिखिता प्रदक्षिणं सम्पदो विनिर्देश्याः।
वाचः परुषा निष्ठीवितं क्षुतं चाशुभं कथितम् ॥ १०४ ॥

यदि अंगूठा, मध्यमा, प्रदेशिनी, सोना, चान्दी, मोती, दही, फल, फूल या अक्षत से गृहारम्भ की रेखा बनावे तो गृहपति को शुभ होता है। यदि उक्त रेखा शस्त्र से करे तो शस्त्र से गृह स्वामी की मृत्यु, लोहे से करे तो बन्धन, भस्म से करे तो अग्निभय, तृण से करे तो चोर भय और काष्ठ से करे तो राजभय होता है। टेढ़ी, पाँव से लिखी हुई, या रूप रहित रेखा शत्रुभय और कष्ट करती है। चमड़ा, कोयला, हड्डी या दाँत से की हुई रेखा गृहपति के लिये अशुभ होती है। वाम क्रम से लिखी हुई रेखा शत्रुता और प्रदक्षिण क्रम से लिखी हुई रेखा सम्पत्ति करती है। गृहारम्भ काल में कठोर वचन बोलना, थूकना और छींकना अशुभ है ॥ १०१–१०४ ॥

शल्य ज्ञान में विधान—

अर्द्धनिचितं कृतं वा प्रविशन् स्थपतिर्गृहे निमित्तानि।
अवलोकयेद्गृहपतिः क्व संस्थितः स्पृशति किं चाङ्गम् ॥१०५॥
रविदीप्तो यदि शकुनिस्तस्मिन् काले विरौति परुषरवम्।
संस्पृष्टाङ्गसमानं तस्मिन् देशेऽस्थि निर्देश्यम् ॥१०६॥

आधे बने या सम्पूर्ण बने हुये गृह में प्रवेश करता हुआ कारीगर आगे कथित चिन्हों को देखे कि गृहस्वामी कहाँ पर स्थित है और किस अङ्ग को छु रहा है। उस समय दीप्त दिशा में स्थित पक्षीगण कठोर शब्द करते हों तो जिस स्थान पर गृहपति खड़ा हो उसके नीचे तथा जिस अङ्ग को गृहपति ने छू रक्खा हो तत्तुल्य अङ्ग की हड्डी कहनी चाहिये। उदय काल से एक एक प्रहर क्रम से पूर्व आदि दिशा

में सूर्य रहता है। जैसे उदय काल से एक प्रहर तक पूर्व में, बाद द्वितीय प्रहर तक आग्नेय कोण में, बाद तृतीय प्रहर तक दक्षिण में, बाद सायंकाल तक नैर्ऋत्य कोण में, बाद रात्रि के प्रथम प्रहर तक पश्चिम में, बाद रात्रि के द्वितीय प्रहर तक वायव्य कोण में, बाद रात्रि के तृतीय प्रहर तक उत्तर में और बाद रात्रि के चतुर्थ प्रहर तक ईशान कोण में सूर्य रहता है। जिस दिशा को सूर्य छोड़ आया हो वह अङ्गारिणी, जिसमें स्थित हो वह दीप्त, जिसमें जानेवाला हो वह धूमित और शेष पांच दिशायें शान्त कहलाती हैं। जैसे उदय से प्रथम प्रहर तक ईशान कोण अङ्गारिणी, पूर्वदिशा दीप्त, आग्नेय कोण धूमित और शेष पाँच दिशायें शान्त संज्ञक हैं।

आगमान्तर में—

पृच्छाकाले गृहस्वामी यदङ्गं स्पृशति स्वकम्। भुवो हस्तप्रमाणेन शल्यं सूयात्तदङ्गजम्॥

हाथी आदि के शब्द वश हड्डी का ज्ञान

शकुनसमयेऽथवाऽन्ये हस्त्यश्वश्वादयोऽनुवाशन्ते।
तत्प्रभवमस्थि तस्मिंस्तदङ्गसम्भूतमेवेति॥ १०७॥

शकुन देखने के समय दीप्त दिशा की तरफ मुख करके हाथी, घोड़ा, कुत्ता आदि जीव बोले तो जिस स्थान पर गृहस्वामी स्थित है उसके नीचे उन जीवों के उसी अङ्ग की हड्डी होनी चाहिए जिस अङ्ग को गृहपति स्पर्श कर रहा हो॥ १०७॥

गदहे का शब्द आदि से शल्य ज्ञान—

सूत्रे प्रसार्यमाणे गर्दभरावोऽस्थिशल्यमाचष्टे।
श्वसृगाललङ्घिते वा सूत्रे शल्यं विनिर्देश्यम्॥ १०८॥

सूत्र फैलाने के समय गदहे का शब्द सुनाई दे तो गृहपति के नीचे हड्डी कहनी चाहिये। तथा कुत्ता या सियार उस सूत्र को लाँघ जाय तो भी उक्त स्थान में शल्य कहना चाहिये॥ १०८॥

पक्षियों के शब्द द्वारा धन ज्ञान—

दिशि शान्तायां शकुनिर्मधुरविरावी यदा तदा वाच्यः।
अर्थस्तस्मिन् स्थाने गृहेश्वराधिष्ठितेऽङ्गे वा॥ १०९॥

उस समय जिस स्थान पर शान्त दिशा की ओर मुख करके पक्षी गण मधुर शब्द करें अथवा वास्तु पुरुष के जिस अङ्ग पर बैठा हो उस अङ्ग के नीचे धन कहना चाहिये।

यहाँ पर गर्ग—

प्रश्नकाले गृहपतिः कस्मिन्नङ्गे समाश्रितः। किमङ्गं संस्पृशेद्वापि व्याहरेद्वा शुभाशुभम्॥
विलोक्य स्थपतिः पूर्वं पश्चाच्छल्यं विचारयेत्। शङ्खभेरीमृदङ्गानां पटहानां च निःस्वनाः॥
दध्यक्षतानां पुष्पाणां फलानां दर्शनानि च। प्रशुश्च प्रवदेच्छल्यं वास्तुज्ञानविशारदः॥
दीप्तदिक्संस्थितः पक्षी विरौति परुषं स्वम्। स्पृष्टाङ्गसदृशं शल्यं तस्य स्थाने विनिर्दिशेत्॥
निखनेदवनिं तत्र यदङ्गं मुह्यते यथा। गृहनाथस्य तत्राधः शल्यं निःसंशयं वदेत्॥

प्रश्नकाले गजो गौर्वा तुरगो गर्दभोऽपि वा। उष्ट्रो वा सारमेयो वा मार्जारश्छागोऽपि वा॥
य प्राणी व्याहरेत्तत्र तद्भवं शल्यमादिशेत्। प्रमाण तस्य वक्तव्यं पूर्वोक्तविधिना ततः॥

अन्य शुभाशुभ ज्ञान—

सूत्रच्छेदे मृत्युः कीले चावाङ्मुखे महान् रोगः।
गृहनाथस्थपतीनां स्मृतिलोपे मृत्युरादेश्यः॥ ११०॥
स्कन्धाच्च्युते शिरोरुक् कुलोपसर्गोऽपवर्जिते कुम्भे।
भग्नेऽपि च कर्मिवधश्च्युते कराद्गृहपतेर्मृत्युः॥ १११॥

यदि फैलाने के समय सूत्र टूट जाय तो गृहपति की मृत्यु होती है। गाड़ने के समय कील का मुख नीचे की तरफ हो जाय तो गृहपति को बहुत बड़ा रोग होता है। यदि उस समय गृहपति, कारीगर दोनों की स्मरण शक्ति नष्ट हो जाय तो दोनों की मृत्यु कहनी चाहिये। यदि जल पूर्ण कलश लाने के समय गिर जाय तो गृहपति को शिर का रोग, गिर कर उलट जाय तो गृह स्वामी के कुल में उपद्रव, फूट जाय तो कारीगर की मृत्यु और कलश हाथ से छूट जाय तो गृह स्वामी की मृत्यु होती है॥ ११०–१११॥

शिला न्यास का प्रकार—

उत्तरपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमम्।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः॥ ११२॥
छत्रस्रगम्बरयुतः कृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः।
स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन॥ ११३॥

पहले उत्तर पूर्व के कोण (ईशान कोण) में पूजा करके शिलान्यास करे, बाद प्रदक्षिण क्रम से शेष शिलाओं का न्यास करे। इसी क्रम से स्तम्भों का उत्थापन करना चाहिये। तथा छत्र, माला, वस्त्र, धूप और चन्दन से विभूषित करके स्तम्भ को खड़ा करे। इसी तरह द्वार को भी यत्नपूर्वक खड़ा करना चाहिये।

यहाँ पर गर्ग—

स्निग्धादिभूभागसमुत्थितानां न्यग्रोधबिल्वद्रुमखादिराणाम्।
शमीवटोदुम्बरदेवदारुश्रीरिस्वदेशोत्थफलद्रुमाणाम्॥
उपोषितः शिल्पिजनस्त्वथैषां मध्यात्तु तीक्ष्णेन कुठारकेण।
भित्त्वा ततो दिक्पतिनोत्तरस्यां शुभे च लग्ने परिगृह्य शङ्कुम्॥
करप्रमाणं परतश्चतस्तदर्धमानेन ततोऽनुगृह्य।
नीत्वा न्यसेद् तांश्च गृहे तु तावद्यावद् प्रतिष्ठासमयोऽस्य शङ्कोः॥
नन्देति सूक्तिः कथितैशकोणे हुताशनाख्ये सुभगेति चान्या।
सुमङ्गली नैर्ऋतभागसंस्था भद्रंकरी मारुतकोणपाता॥

वृषाश्वपुच्छागपदाङ्कितानां नन्दादिकानां क्रमशः शिलानाम्।
अखण्डितानां सुदृढीकृतानां सुलक्षणानां ग्रहणं निरुक्तम्॥
कूर्मोऽस्य शेषो हि जनार्दनः श्रीर्ध्रुवश्च मध्ये भवनस्य संस्था।
द्वाराधिपाः दिक्पतयो गजाश्च सम्पूजनीयाः बलिभिः सुमन्त्रैः॥
स्नानार्च्यमाल्याम्बरधूपलेपैर्बल्योपहारैः प्रतिपूज्य शङ्कुम्।
ध्रुवे शिलायाश्च ततः खनित्वा शङ्कुं प्रतिष्ठाप्य तथा च कुम्भम्॥
लाजाक्षतव्रीहिसपञ्चगव्यमध्वाज्यपातं परिपूर्य सम्यक्।
ऋग्भिस्तथैवं विधिवत् प्रकुर्याद्धोमो ध्रुवादुत्तरतस्तु कार्यः॥

अथ लग्नशुद्धिः—

धनुर्वणिग्गोयुगनारिकुम्भे वास्तुप्रतिष्ठाकरणं प्रधानम्।
एतच्चतुर्थं गृहसंक्रमर्क्षं जलोद्भवं तच्छुभमुद्दिशन्ति॥
असम्भवे शुक्रशशाङ्कयोगाज्जलाश्रयं प्राहुरतीन्द्रियज्ञाः।
एषां नवांशेऽन्यगृहेशुभर्क्षे कर्तुर्व्ययाष्टत्रिककोणवर्जे॥
केन्द्रत्रिकोणाउत्रलनारूयलाभार्थावस्थितेष्वीज्यसितेन्दुजेषु।
गृहं समृद्धं सुदृढं जनाढ्यं व्यये तृतीये च्युरु समृद्धौ॥
वाच्यं तथा सूर्यकुजार्कजेषु तृतीयषष्ठाय गतेषु नित्यम्।
शेषेष्वतोऽन्येषु विशेषतस्तु चौराग्निदाहज्वररोगजाड्यम्॥
लग्नात्तृतीयाम्बुषडायगेन्दौ कार्यं गृहं स्त्रीधनधान्यदासैः।
अभीष्टमन्येषु गतोऽन्यथातो धिष्ण्यं गृहं चात्र गुणातिरिक्तम्॥
प्रवेश एवं भवनस्य कार्यो विप्रादिकानां यदुदीरितं प्राक्।
किन्त्वत्र गोजाविकवाहनानां विना स्थिरैः स्वाष्टसमैः प्रवेशः॥

ध्रुवे वास्तुनरे चैव द्वाराणां मंधिषु स्मृतान्। वैदिकांश्चैव मन्त्रांश्च प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः॥
कूर्मे मन्त्रमयो यज्ञो वर्धतां बलिकर्मणि। शेषे नमोस्तु सर्पेभ्य इदं विष्णुर्जनार्दने॥
तव श्रियो श्रिये यान्तु ध्रुवाद्यास्तु ध्रुवे स्मृतम्। सविता श्रियः प्रसविता शङ्खोराहुर्मनीषिणः॥
महागे महजज्ञानिमर्यम्गे यान्तु अर्यमम्। सविता श्रियः प्रसविता तथैवेति विवस्वतः॥
इन्द्रस्येन्द्रो मयं वाच्यं मित्रे मित्रार्जनं स्मृतम्। तथा मृडानो रुद्रोऽस्य रुद्रस्य परिकीर्त्तितम्॥
भूधराय इहैवैधि रम्मराय ह्यं महत्। प्रोक्ता वास्तुनरस्यैवं देवताश्च, त्रयोदश॥
ने देवा हि चतुर्दिक्षु द्वाराणां मन्त्रसंग्रहे। नक्षत्राणां पुरा प्रोक्तं सूक्तीनामधुना शृणु॥
ो रुद्रोऽग्नौ तु नन्दिन्यामाहुस्यं शुभगाय च। सुमङ्गलीः सुमङ्गल्या भद्रंकर्णीति भद्रिका॥
तेषां वज्रयो वक्ष्ये हविषं पायसं दधि। मोदकाज्यपयोव्रीहिलाजाक्षतफलानि च॥
ध्रुवादुत्तरतो होममनादेरयं तु कारयेत्। तत्र श्रियादिमन्त्रैस्तु हुनेदाज्यं समाहिता॥
एवं प्रवेशकाले तु स्थालीपाकसमो हि सः। मन्त्रैर्होमस्तु सूक्तीनां पञ्चरङ्गप्रवाहणः॥
। देशादिकरण्डाश्च काण्डात्काण्डात्प्ररोहणम्। ततो युवा सुवासेति वाचनीयाः प्रदक्षिणम्॥
ाद्यमर्घ्यादिकं यत्तु शान्तिकत्वेन दर्शितम्। तदिहापि ग्रहीतव्यं सर्वमेतच्छ्रुतार्थकम्॥
एवं देवालये शान्तौ दीर्घायशादिसर्वतः। स्वतन्त्रोक्तेन वक्तव्यं निर्माणस्य प्रवेशनम्॥

स्तम्भ या द्वार के ऊपर पक्षी आदि बैठने का फल—

विहगादिभिरवलीनैराकम्पितपतितदुःस्थितैश्च तथा ।
शक्रध्वजसदृशफलं तदेव तस्मिन्विनिर्दिष्टम् ॥ ११४ ॥

यदि स्तम्भ या द्वार के ऊपर पक्षी बैठे, खड़ा करने के समय वे काँपे, गिर जाय या ठीक खड़ा न हो तो पूर्व कथित इन्द्रध्वज के समान उसका फल समझना चाहिये ॥ ११४ ॥

वास्तु भूमि में विशेष—

प्रागुत्तरोन्नते धनसुतक्षयः सुतवधश्च दुर्गन्धे ।
वक्रे बन्धुविनाशो न सन्ति गर्भाश्च दिङ्मूढे ॥ ११५ ॥
इच्छेद्यदि गृहवृद्धिं ततः समन्ताद्विवर्धयेत्तुल्यम् ।
एकोद्देशे दोषः प्रागथवाऽप्युत्तरे कुर्यात् ॥ ११६ ॥

यदि वास्तु भूमि पूर्व या उत्तर में ऊँची हो तो पुत्र और धन का नाश, दुर्गन्ध युत हो तो पुत्र का नाश, टेढ़ी हो तो बन्धुओं का नाश और दिग्भ्रम (दिशाओं के ज्ञान से रहित) हो तो स्त्रियों को गर्भ का अभाव होता है। घर की वृद्धि चाहने वाला मनुष्य वास्तु भूमि को चारो तरफ समान रूप से बढ़ावे । यदि वास्तु भूमि को बढ़ाना हो तो उत्तर या पूर्व की तरफ बढ़ावे क्योंकि उस तरफ बढ़ाने में अल्प दोष हैं अर्थात् वे दोष (मित्रों से द्वेष, चित्त में संताप) सहन करने के लायक हैं। जिन को इन दोषों को सहन करने की शक्ति न हो उसको नहीं बढ़ाना चाहिये ॥ ११५–११६ ॥

पूर्व आदि दिशाओं में वास्तु भूमि को बढ़ाने का फल—

प्राग्भवति मित्रवैरं मृत्युभयं दक्षिणेन यदि वृद्धिः ।
अर्थविनाशः पश्चादुदग्विवृद्धिर्मनस्तापः ॥ ११७ ॥

यदि वास्तु भूमि पूर्व की तरफ बढ़ी हो तो मित्रों से द्वेष, दक्षिण तरफ बढ़ी हो तो मृत्यु का भय, पश्चिम तरफ बढ़ी हो तो धन का नाश और उत्तर तरफ बढ़ी हो तो मन में संताप होता है ॥ ११७ ॥

चतुःशाल गृह में देवगृह आदि का स्थापन स्थान—

ऐशान्यां देवगृहं महानसं चापि कार्यमाग्नेय्याम् ।
नैर्ऋत्यां भाण्डोपस्करोऽर्थधान्यानि मारुत्याम् ॥ ११८ ॥

ईशान कोण में देव गृह, अग्नि कोण में पाक गृह, नैर्ऋत्य कोण में गृह सामग्री गृह और वायव्य कोण में धन धान्य स्थापन गृह बनाना चाहिये ।

शास्त्रान्तर में—

पूर्वस्यां श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यां स्यान्महानसम् । शयनं दक्षिणायां च नैर्ऋत्यामायुधाश्रयम् ॥

भोजनं पश्चिमायां च वायव्यां धनसञ्चयम्। उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम्॥

और भी—

श्रीगृहेऽत्र ध्वजः कार्यो धूपश्चैव महानसे। सिंहो निद्रागृहे कार्यः श्वा कुर्यादायुधाश्रये॥
वृषो भोजनशालायां कपिर्धान्यगृहे सदा। द्रव्यस्थाने सदा भद्रो रिक्तो देवगृहे तथा॥११८॥

वास्तु स्थान से पूर्व आदि में जल का फल—

प्राच्यादिस्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयं च।
स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैस्व्यं वित्तात्मजविवृद्धिः॥ ११९॥

वास्तु स्थान से पूर्व आदि दिशाओं में यदि जल स्थित हो तो क्रम से पुत्र का नाश, अग्नि भय, शत्रु भय, स्त्रियों में कलह, स्त्रियों में दुःशीलता, निर्धनता, धन की वृद्धि और पुत्रों की वृद्धि होती है॥ ११९॥

घर बनाने में काटने योग्य वृक्ष—

खगनिलयभग्नसंशुष्कदग्धदेवालयश्मशानस्थान्।
क्षीरतरुधवविभीतकनिम्बारणिवर्जितान् छिन्द्यात्॥ १२०॥

पक्षियों के घोसले वाले, टूटे हुये, देवालय के समीप में स्थित, श्मशान में स्थित, दूध वाले, धव, बहेडा, नीम, अरलू इन सबों को छोड कर शेष वृक्षों को घर बनाने के लिये काटे॥ १२०॥

वृक्ष काटने में विधान और उसके गिरने का फल—

रात्रौ कृतबलिपूजं प्रदक्षिणं छेदयेद्दिवा वृक्षम्।
धन्यमुदक्प्राक्पतनं न ग्राह्योऽतोऽन्यथा पतितः॥ १२१॥

जिस वृक्ष को काटना हो उसके निमित्त रात में पूजा और बलि देकर उसके सुबह ईशान कोण से प्रदक्षिण क्रम से उसको काटे। यदि वृक्ष काट कर उत्तर या पूर्व दिशा में गिरे तो शुभ और शेष दिशा में गिरे तो अशुभ होता है॥ १२१॥

वृक्ष के शल्य से शुभाशुभ—

छेदो यद्यविकारी ततः शुभं दारु तद्गृहौपयिकम्।
पीते तु मण्डले निर्दिशेत्तरोर्मध्यगां गोधाम्॥ १२२॥
मञ्जिष्ठाभे भेको नीले सर्पस्तथाऽरुणे सरटः।
मुद्गाभेऽश्मा कपिले तु मूषकोऽम्भश्च खड्गाभे॥ १२३॥

यदि वृक्ष का कटित प्रदेश विकार रहित हो तो उसकी लकड़ी गृह के लिये शुभ होती है। यदि उसमें (कटित प्रदेश में) पीत वर्ण का मण्डल दिखाई दे तो वृक्ष के मध्य में गोधा (सनगोहि), मजीठ की तरह लाल रङ्ग का मण्डल दिखाई दे तो मेंढक, नील रङ्ग का मण्डल दिखाई दे तो सर्प, लाल रङ्ग का मण्डल दिखाई दे तो गिरगिट, मूँग के समान वर्ण का मण्डल दिखाई दे तो पत्थर, पीला मण्डल दिखाई दे तो चूहे और खड्ग के सदृश मण्डल दिखाई दे तो जल का निवास स्थान कहना चाहिये।

गृहपति के लिये कुछ उपदेश—

धान्यगोगुरुहुताशसुराणां न स्वपेदुपरि नाप्यनुवंशम् ।
नोत्तरापरशिरा न च नग्नो नैव चार्द्रचरणः श्रियमिच्छन् ॥ १२४ ॥

लक्ष्मी की इच्छा करने वाला मनुष्य अन्न, गौ, गुरु, अग्नि और देवता के ऊपर और वंशों (रोगाद्वायु विवृतो हुताशनं इत्याद्युक्तवंशों) के ऊपर न सोवे। उत्तर या पश्चिम की तरफ शिर करके न सोवे। तथा नङ्गा और जल से भीगे पाँव रख कर न सोवे।

यहाँ पर विश्वकर्मा—

नान्यानुवंशविन्यस्ततुला हन्यात्कुटुम्बिनः । कर्तुं शय्या स्वतालस्था नागदन्ता च यावहा ॥

प्रवेश कालिक गृह का स्वरूप—

भूरिपुष्पनिकरं सतोरणं तोयपूर्णकलशोपशोभितम् ।
धूपगन्धबलिपूजितामरं ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद् गृहम् ॥ १२५ ॥

बहुत पुष्पों से भूषित, तोरण से अलंकृत, जल पूर्ण कलशों से शोभित, धूप, गन्ध, पुष्प आदि से पूजित देवताओं से युत और ब्राह्मणों के द्वारा की गई वेदध्वनियों से युत गृह में प्रवेश करे।

यहाँ पर 'धूपगन्धबलिपूजितामरं' यह सामान्य देवता के लिये कहा है। सामान्य देवताओं की पूजा अतिरिक्त स्थान में करनी चाहिये। वास्तु मध्य में शिखी पर्जन्य आदि और अर्यमा की ही पूजा करनी चाहिये। इन स्थानों पर बाहरी देवताओं की पूजा कथमपि नहीं करनी चाहिये।

तन्त्रान्तर में—

ज्येष्ठस्य कर्मसिद्ध्यर्थं नव पञ्चगुणाः सुराः । यतस्तत्र वसन्त्येते मूर्धाद्यङ्गेषु कृत्स्नशः ॥

यहाँ पर हिरण्यगर्भ—

देवताः सम्प्रवक्ष्यामि वास्तूनामनुपूर्वशः । द्वारे प्रजापतिं विन्द्याद् द्वारदेशे द्युमापतिम् ॥
बलदेवो यमश्चैव दक्षिणस्यां च संस्थितौ । स्कन्दः शेषोऽथ वरुणः पश्चिमायां दिशि स्थितः ॥
आदित्या वसवो रुद्रा उत्तरां दिशमाश्रिताः । ब्रह्मा चैव महेन्द्रश्च दिशमैन्द्रीं समाश्रितौ ॥
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च वास्तुमध्ये प्रतिष्ठिताः । हुत्वाग्निं गृहमध्ये तु देवतान्यर्चयेद्बुधः ॥
दिगन्तरेषु सर्वेषु दिक्षु चैव यथाक्रमम् । कुलदेवतपूजां च कृत्वा च कुलमेधिनाम् ॥
दिक्षु देवीषु सर्वासु विदिक्षु च यथाक्रमम् ।

अन्य तन्त्र में—

बाह्याभ्यन्तरदेवांस्तु वास्तुमध्ये यथास्थिताम् । तथा च सर्वान् सम्पूज्य विधिनैव पुरोहितः ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां वास्तुविद्याध्यायस्त्रिपञ्चाशत्तमः ॥ ५३ ॥

अथ दकार्गलाध्यायः

उस में पहले प्रयोजन प्रदर्शन—

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षिताव‌पि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः॥ १॥
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव॥ २॥

अब वास्तु विद्या कहने के बाद जिस के ज्ञान से भूमि गत जल का ज्ञान होता है उस धर्म और यश को देने वाले दकार्गल को कहते हैं। जिस तरह मनुष्यों के अङ्ग में नाडियाँ हैं उसी तरह भूमि में ऊँची, नीची शिरायें हैं। आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता है किन्तु वही जल पृथ्वी की विशेषता से तत्तत्स्थान में अनेक प्रकार का रस और स्वाद वाला हो जाता है। इस तरह भूमि के वर्ण और रस के समान जल के रस और वर्ण सिद्ध होते हैं अतः भूमि, वर्ण और रस का परीक्षण-पूर्वक जल के रस और स्वाद का परीक्षण करना चाहिये॥ १–२॥

पूर्व आदि दिशाओं में स्थित शिराओं के नाम—

पुरुहूतानलयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशङ्करा देवाः।
विज्ञातव्याः क्रमशः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः॥ ३॥
दिक्पतिसञ्ज्ञा च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी।
एताभ्योऽन्याः शतशो विनिःसृता नामभिः प्रथिताः॥ ४॥
पातालादूर्ध्वशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च।
कोणदिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये॥ ५॥

पूर्व आदि आठ दिशाओं के क्रम से इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, चन्द्र और शिव स्वामी हैं। इन आठ दिक्पतियों के नाम से आठ (ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या इत्यादि) शिरायें प्रसिद्ध हैं। इन आठ शिराओं के मध्य में महाशिरा नाम वाली नवमी शिरा है। इन नव शिराओं के अतिरिक्त सैकड़ों शिरायें निकली हैं जो अपने-अपने नाम से प्रसिद्ध हैं। पाताल से ऊपर की तरफ जो शिरा निकली है वह और पूर्व आदि चारों दिशाओं में स्थित शिरायें शुभ तथा अग्नि कोण आदि विदिशाओं में स्थित शिरायें अशुभ हैं। अतः इसके बाद शिराओं के लक्षण कहते हैं॥ ३–५॥

वेतमजम्बू के वृक्ष से शिरा का लक्षण—

यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात्।
सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र॥ ६॥

ढाक और बेर के वृक्ष के संयोग से जल ज्ञान—

सपलाशा बदरी चेद्दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति ।
पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च दुण्डुभश्चिह्नम् ॥ १७ ॥

जल रहित देश में पलाश (ढाक) के वृक्ष से युक्त बेर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे विष रहित सर्प मिलता है।

यहाँ पर सारस्वत—

पलाशयुक्ता बदरी यत्र दृश्या ततोऽपरे । हस्तत्रयाद्धस्तोयं सपादे पुरुषत्रये ॥
नरे तु दुण्डुभः सर्पो निर्विषश्चिह्नमेव च । अधस्तोयं च सुस्वादु दीर्घकालप्रवाहितम् ॥१७॥

बेल के वृक्ष से युक्त गूलर के वृक्ष से जल ज्ञान—

बिल्वोदुम्बरयोगे विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन ।
पुरुषैस्त्रिभिरम्बु भवेत् कृष्णोऽर्द्धनरे च मण्डूकः ॥ १८ ॥

जहाँ बेल के वृक्ष से युक्त गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे काला मेढक निकलता है ॥१८॥

फल्गु के वृक्ष से जल ज्ञान—

काकोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन् ।
पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च ॥ १९ ॥
आपाण्डुपीतिका मृद्गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः ।
पुरुषार्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति ॥ २० ॥

यदि काकोदुम्बरिका वृक्ष (कठुम्बरि=काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलपूर्जघनेफलेत्यमरः) के समीप वल्मीक हो तो उस वल्मीक के मध्य तीन पुरुष नीचे पश्चिम दिशा में बहने वाली शिरा निकलती है। यहाँ पर खोदने के समय सफेद और पीली मिट्टी निकलती है। उसके नीचे सफेद पत्थर और आधा पुरुष नीचे सफेद चूहा दिखाई देता है ॥१९–२०॥

करिल वृक्ष से जलज्ञान—

जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः ।
प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम् ॥ २१ ॥
मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता दृश्यते ततस्तस्मिन् ।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यकः पयोऽल्पं च सक्षारम् ॥ २२ ॥

जल रहित देश में करिल्ल वृक्ष (कपिल = कबीला) दिखाई दे तो उससे तीन हाथ पूर्व दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे दक्षिण शिरा बहती है। यहाँ पर खोदने के समय पहले नील कमल के समान रंग वाली मिट्टी और इसके नीचे कबूतर के रंग की मिट्टी दिखाई देती है। तथा एक हाथ नीचे बकरे के समान गन्ध वाली मछली और इस के नीचे खारा जल निकलता है।

यहाँ पर सारस्वत—

निर्जले यत्र कम्पिल्लो दृश्यते तस्मात् करत्रये। प्राच्यां त्रिभिर्नरैर्वारि सा भवेद् दक्षिणा शिरा॥
अधो नीलोत्पलाभासा मृद् कापोतप्रभा क्रमात्।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यो जलमल्पमशोभनम्॥२१-२२॥

कुमुदा नाम की शिरा का ज्ञान—

शोणाकतरोरपरोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य।
कुमुदा नाम शिरा सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति॥ २३॥

जल रहित देश में शोणाक (सरिवन) वृक्ष दिखाई दे तो उससे दो हाथ वायव्य कोण में तीन पुरुष नीचे कुमुदा नाम की शिरा होती है॥२३॥

बहेड़े के वृक्ष से जल का ज्ञान—

आसन्नो वल्मीको दक्षिणपार्श्वे विभीतकस्य यदि।
अध्यर्धे भवति शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम्॥ २४॥

यदि विभीतक (बहेडा) वृक्ष के समीप दक्षिण दिशा में वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्ष से दो हाथ पूर्व डेढ़ पुरुष नीचे शिरा होती है।

यहाँ पर सारस्वत—

विभीतकस्य याम्यायां वल्मीको यदि दृश्यते। करद्वयान्तरे पूर्वे सार्धे च पुरुषे जलम्॥२४॥

फिर बहेड़े के वृक्ष से शिराज्ञान—

तस्यैव पश्चिमायां दिशि वल्मीको यदा भवेद्धस्ते।
तत्रोदग्भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः॥ २५॥
श्वेतो विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुङ्कुमाभोऽश्मा।
अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽतीते॥ २६॥

यदि बहेड़े के वृक्ष से पश्चिम दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे शिरा होती है। यहाँ पर खोदने के समय एक पुरुष नीचे श्वेत रंग का विश्वम्भरक (प्राणिविशेष) दिखाई देता है, उसके नीचे केशर के रंग का पत्थर और उसके नीचे पश्चिम दिशा को बहने वाली शिरा निकलती है। परन्तु यह शिरा तीन वर्ष बाद नष्ट हो जाती है, अर्थात् जल नष्ट हो जाता है॥ २५-२६॥

सप्तपर्ण वृक्ष से जल का ज्ञान—

सकुशासित ऐशान्यां वल्मीको यत्र कोविदारस्य।
मध्ये तयोर्नरैरर्धपञ्चमैस्तोयमक्षोभ्यम्॥ २७॥
प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभो मही रक्ता।
कुरुविन्दः पाषाणश्चिह्नान्येतानि वाच्यानि॥ २८॥

जहाँ पर कोविदारक (छितिवन = सप्तपर्ण) वृक्ष के ईशान कोण में कुशायुक्त श्वेत वल्मीक हो तो सप्तपर्ण वृक्ष और वल्मीक के मध्य में साढ़े पाँच पुरुष नीचे अधिक जल होता है। यहाँ पर खोदने के समय एक पुरुष नीचे कमल पुष्प के मध्य के समान रंग का सर्प उसके नीचे लाल वर्ण की भूमि और उसके नीचे कुरुविन्द नामक पत्थर निकलता है। ये सब चिन्ह यहाँ पर कहने चाहिये ॥ २७-२८॥

वल्मीक से युक्त सप्तपर्ण वृक्ष से जल ज्ञान—

यदि भवति सप्तपर्णो वल्मीकवृतस्तदुत्तरे तोयम्।
वाच्यं पुरुषैः पञ्चभिरत्रापि भवन्ति चिह्नानि ॥ २९ ॥
पुरुषार्धे मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च।
पाषाणोऽभ्रनिकाशः सौम्या च शिरा शुभाम्बुवहा ॥ ३० ॥

यदि वल्मीक से युक्त सप्तपर्ण वृक्ष हो तो उससे एक हाथ उत्तर पाँच पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। यहाँ पर भी वक्ष्यमाण चिन्ह मिलते हैं—जैसे आधा पुरुष नीचे हरा मेढक, उसके बाद हरताल के समान पीली भूमि, उसके नीचे मेघ के समान काला पत्थर और उसके नीचे मधुर जल वाली उत्तरवाहिनी शिरा निकलती है।

यहाँ पर सारस्वत—

भुजङ्गगृहसंयुक्तो यत्र स्यात् सप्तपर्णकः। ततः सौम्ये हस्तमात्रात् पञ्चभिः पुरुषैरधः ॥
वाच्यं जलं नरार्धे तु मण्डूको हरितो भवेत्। हरितालनिभा भूश्च मेघाभोऽश्मा ततः शिरा॥
उत्तरा सुजला ज्ञेया दीर्घा मृष्टाम्बुवाहिनी ॥ २९-३० ॥

किसी वृक्ष के नीचे मेढक द्वारा जल ज्ञान—

सर्वेषां वृक्षाणामधःस्थितो दर्दुरो यदा दृश्यः।
तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥ ३१ ॥
पुरुषे तु भवति नकुलो नीला मृत्पीतिका ततः श्वेता।
दर्दुरसमानरूपः पाषाणो दृश्यते चात्र ॥ ३२ ॥

जिस किसी वृक्ष के मूल में मेढक दिखाई दे उस वृक्ष से एक हाथ पर उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर खोदने के समय एक पुरुष नीचे नेवला, उसके नीचे क्रम से नीली, पीली तथा सफेद मिट्टी, उसके नीचे मेढक के सदृश पत्थर और उसके नीचे जल निकलता है।

यहाँ पर सारस्वत—

तरूणां यत्र सर्वेषामधःस्थो दर्दुरो भवेत्। वृक्षादुदग्दिशि जलं हस्तात् सार्धनरैरधः ॥
चतुर्भिः पुरुषे स्याते नकुलो नीलमृत्तिका। पीतश्वेता ततो भेकसदृशोऽश्मा प्रदृश्यते ॥

करञ्जक वृक्ष से जल का ज्ञान—

यद्यहिनिलयो दृश्यो दक्षिणतः संस्थितः करञ्जस्य।

हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्धे ॥ ३३ ॥
कच्छपकः पुरुषार्धे प्रथमं चोद्धियते शिरा पूर्वा।
उदगन्या स्वादुजला हरितोऽश्माधस्ततस्तोयम् ॥ ३४ ॥

यदि करंजक वृक्ष के दक्षिण दिशा में वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण तीन पुरुष नीचे शिरा होती है। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे कछुआ, उसके नीचे पूर्ववाहिनी शिरा, उसके नीचे उत्तरवाहिनी शिरा, उसके नीचे हरे रंग का पत्थर और उसके नीचे जल निकलता है ॥ ३३–३४ ॥

महुए के वृक्ष से जल ज्ञान—

उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम्।
परिहृत्य पञ्च हस्तानर्धाष्टमपौरुषान् प्रथमम् ॥ ३५ ॥
अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा धात्री कुलुत्थवर्णोऽश्मा।
माहेन्द्री भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम् ॥ ३६ ॥

महुए के वृक्ष से उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्ष से पाँच हाथ पर पश्चिम दिशा में साढे आठ पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे प्रधान सर्प, उसके नीचे धूम्र वर्ण की पृथ्वी, उस के नीचे कुलथी के रंग का पत्थर, उसके नीचे सदा फेन युत जल देने वाली पूर्ववाहिनी शिरा निकलती है ॥ ३५–३६ ॥

तालमखाना के वृक्ष से जल ज्ञान—

वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत्।
पुरुषैः पञ्चभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा ॥ ३७ ॥

तिलक (तालमखाना) के वृक्ष से दक्षिण कुशा और दूब से युक्त स्निग्ध वल्मीक हो तो उस वृक्ष से पाँच हाथ पश्चिम, पाँच पुरुष नीचे जल और पूर्ववाहिनी शिरा होती है। यहाँ पर सारस्वत—

तिलकाद्दक्षिणे स्निग्धः कुशदूर्वासमायुतः। वल्मीकाच्चोत्तरे पञ्चहस्तान् सन्त्यज्य पश्चिमे ॥
नरैः पञ्चभिरम्भोऽधः शिरा पूर्वात्र विद्यते ॥ ३७ ॥

कदम्ब वृक्ष के पश्चिमस्थ वल्मीक से जल ज्ञान—

सर्पावासः पश्चाद्यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम्।
परतो हस्तत्रितयात् षड्भिः पुरुषैस्तुरीयोनैः ॥ ३८ ॥
कौबेरी चात्र शिरा वहति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम्।
कनकनिभो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिका पीता ॥ ३९ ॥

कदम्ब वृक्ष से पश्चिम में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ दक्षिण पौने छै पुरुष नीचे जल होता है। वहाँ लोहे की गन्ध से युक्त अधिक जल वाली उत्तर वाहिनी शिरा निकलती है। एक पुरुष नीचे सुवर्ण के रंग का मेंढक और उसके नीचे पीली मिट्टी निकलती है ॥ ३८–३९ ॥

ताल या नारियल के वृक्ष से शिरा ज्ञान—

वल्मीकसंवृत्तो यदि तालो वा भवति नालिकेरो वा ।
पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या ॥ ४० ॥

यदि वल्मीक से युक्त ताड़ (ताल) या नारियल का वृक्ष हो तो उस वृक्ष से छै हाथ पश्चिम दिशा में चार पुरुष नीचे दक्षिण वाहिनी शिरा होती है ॥ ४० ॥

कपित्थ के वृक्ष से जल ज्ञान—

याम्येन कपित्थस्याहिसंश्रयश्चेदुदग्जलं वाच्यम् ।
सप्तपरित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जलं पञ्च ॥ ४१ ॥
कर्बुरकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत्पुटभिदपि च पाषाणः ।
श्वेता मृत्पश्चिमतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति ॥ ४२ ॥

कपित्थ (कैथ) के वृक्ष से दक्षिण वल्मीक हो तो उस वृक्ष से सात हाथ उत्तर दिशा में पाँच पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष तुल्य नीचे चितकबरा सर्प और काली मिट्टी होती है। उसके नीचे परतदार पत्थर, उसके नीचे सफेद मिट्टी तथा एक पश्चिम वाहिनी शिरा और उसके नीचे उत्तर वाहिनी शिरा होती है ॥

अश्मतक वृक्ष से जल ज्ञान—

अश्मन्तकस्य वामे बदरी वा दृश्यतेऽहिनिलयो वा ।
षड्भिरुदक् तस्य करैः सार्धे पुरुषत्रये तोयम् ॥ ४३ ॥
कूर्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसरः ससिकता मृत् ।
आदौ च शिरा याम्या पूर्वोत्तरतो द्वितीया च ॥ ४४ ॥

अश्मन्तक वृक्ष के बाँई तरफ बेर का वृक्ष या वल्मीक हो तो उस वृक्ष से छै हाथ पर उत्तर दिशा में साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे कछुआ, उसके नीचे धूसर वर्ण का पत्थर, उसके नीचे रेतीली मिट्टी, उसके नीचे दक्षिण शिरा और उसके नीचे ईशान कोण की शिरा निकलती है ॥ ४३-४४ ॥

हरिद्र वृक्ष से जल ज्ञान—

वामेन हरिद्रतरोर्वल्मीकश्चेज्जलं भवति पूर्वे ।
हस्तत्रितये सत्र्यंशैः पुम्भिः पञ्चभिर्भवति ॥ ४५ ॥
नीलो भुजगः पुरुषे मृद् पीता मरकतोपमश्चाश्मा ।
कृष्णा भूः प्रथमं वारुणी शिरा दक्षिणेनान्या ॥ ४६ ॥

हरिद्र (हल्दुआ) वृक्ष की बाँई तरफ वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ पूर्व दिशा में एक तिहाई युत पाँच पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे नील वर्ण का सर्प, उसके नीचे पीली मिट्टी, उसके नीचे हरे रंग का पत्थर, उसके नीचे काली भूमि, उसके नीचे पश्चिम शिरा और दक्षिण शिरा निकलती है ॥

जल रहित देश में जलीय चिन्ह देख कर जल का ज्ञान—

जलपरिहीने देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चिह्नानि।
वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे॥ ४७॥
भार्ङ्गी त्रिवृता दन्ती सूकरपादी च लक्ष्मणा चैव।
नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः॥ ४८॥

जिस जल रहित देश में बहुत जल वाले देश के चिन्ह दिखाई दें तथा जहाँ पर वीरण (गाँडर) और दूब अधिक कोमल हो वहाँ एक पुरुष नीचे जल होता है। तथा जहाँ पर भंगरैया, निसोत, इन्द्रदन्ती (दंतिया=जयपाल), सूकरपादी, लक्ष्मणा ये औषधियाँ हों वहाँ से दो हाथ पर दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल मिलता है॥४७-४८॥

जल सहित और जल रहित देश का ज्ञान—

स्निग्धाः प्रलम्बशाखा वामनविकटद्रुमाः समीपजलाः।
सुषिरा जर्जरपत्रा रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः॥ ४९॥

जहाँ निर्मल लम्बी डालियों से युत छोटे-छोटे विस्तृत वृक्ष हों वहाँ जल निकट में होता है। और जहाँ अन्तःसार वाले, विवर्ण पत्ते वाले रूखे वृक्ष हों वहाँ जलाभाव होता है॥

वल्मीक युक्त तिलक आदि वृक्षों से जल ज्ञान—

तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातकबिल्वतिन्दुकाङ्कोलाः।
पिण्डारशिरीषाञ्जनपरुषका वञ्जुलोऽतिबला॥ ५०॥
एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम्।
हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरेण॥ ५१॥

जहाँ पर निर्मल वल्मीक से युत तिलक, आम्रातक (अंबाड़ा), वरुणक (वरुण), भिलावा, बेल, तेन्दु (तेन्दुआ), अंकोल, पिण्डार, शिरीष, अंजन, परूषक (फालसा), अशोक, अतिबला ये वृक्ष हों वहाँ इन वृक्षों से तीन हाथ पर उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है॥ ५०-५१॥

तृण रहित और तृण सहित प्रदेश से घन ज्ञान—

अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं चास्मिन्॥ ५२॥

तृण रहित प्रदेश में कोई एक स्थान तृण युत दिखाई दे अथवा तृण युत प्रदेश में कोई एक स्थान तृण रहित दिखाई दे तो उस स्थान में साढ़े चार पुरुष नीचे शिरा या धन होता है॥ ५२॥

काँटे वाले और बिना काँटे वाले वृक्षों से धन का ज्ञान—

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात्।
खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात्॥ ५३॥

जहाँ काँटे वाले वृक्षों में एक बिना काँटे वाला अथवा बिना काँटे वाले वृक्षों में एक काँटे वाला वृक्ष हो वहाँ उस वृक्ष से तीन हाथ पर पश्चिम दिशा में एक तिहाई युत तीन पुरुष नीचे जल या धन होता है॥ ५३॥

भूमि को पाँव से ताड़न करके जल ज्ञान—

नदति मही गम्भीरं यस्मिंश्चरणाहता जलं तस्मिन् ।
सार्द्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौबेरी तत्र च शिरा स्यात् ॥ ५४ ॥

जहाँ पाँव से ताड़न करने से गम्भीर शब्द हो वहाँ साढ़े तीन पुरुष नीचे जल और उत्तर शिरा होती है ॥ ५४ ॥

वृक्ष की शाखा से जल ज्ञान—

वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात् ।
विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं खात्वा ॥५५॥

वृक्ष की एक शाखा नीचे की ओर झुकी हो या पीली पड़ गई हो तो उस शाखा के नीचे तीन पुरुष समान खोदने से जल मिलता है ॥ ५५ ॥

फल पुष्पों से शिरा ज्ञान—

फलकुसुमविकारो यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः ।
भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणोऽधः क्षितिः पीता ॥ ५६ ॥

जिस वृक्ष के फल पुष्पों में विकार पैदा हो उस वृक्ष से तीन हाथ पर पूर्व दिशा में चार पुरुष नीचे शिरा होती है । तथा नीचे पत्थर और पीली भूमि मिलती है ॥ ५६ ॥

कटेरी के वृक्ष से जल ज्ञान—

यदि कण्टकारिका कण्टकैर्विना दृश्यते सितैः कुसुमैः ।
तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे च ॥ ५७ ॥

जहाँ काँटों से रहित और सफेद पुष्पों से युत कटेरी का वृक्ष दिखाई दे उस वृक्ष के नीचे साढ़े तीन पुरुष खोदने से जल निकलता है ॥ ५७ ॥

खजूर के वृक्ष से जल ज्ञान—

खर्जूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जिते देशे ।
तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषैर्वारि ॥ ५८ ॥

जिस जल रहित देश में दो सिर वाला खजूर का पेड़ हो वहाँ उस वृक्ष से दो हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल कहना चाहिये । यहाँ पर सारस्वत—
खर्जूरी द्विशिरस्का स्याच्चिर्जले चेत् करद्वये । निर्देश्यं पश्चिमे वारि खात्वाऽथ पुरुषत्रयम्॥५८॥

कर्णिकार और ढाक के वृक्ष से जल ज्ञान—

यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात् पलाशवृक्षो वा ।
सव्येन तत्र हस्तद्वयेऽम्बु पुरुषद्वये भवति ॥५९॥

यदि सफेद पुष्प वाला कर्णिकार (कठचंपा) या ढाक का वृक्ष हो तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष नीचे जल होता है ॥ ५९ ॥

बाष्प और धूम से जल ज्ञान—

यस्यामूष्मा धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले ।
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण ॥ ६० ॥

जिस स्थान से भाप या धूँआ निकलता हुआ दिखाई दे वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा कहनी चाहिये ॥ ६० ॥

धान्यों से जल का ज्ञान—

यस्मिन् क्षेत्रोद्देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति ।
स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र ॥ ६१ ॥

जिस खेत में धान्य उत्पन्न होकर नष्ट हो जाय, बहुत निर्मल धान्य हो या उत्पन्न होकर पीला पड़ जाय वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा होती है ॥ ६१ ॥

मरुदेश में शिरा का ज्ञान—

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि ।
ग्रीवा करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति ॥ ६२ ॥

मरु देश में जिस तरह शिरा होती है उसको कहते हैं। जैसे—ऊँट की गर्दन की तरह भूमि में ऊँची नीची शिरा होती है ॥ ६२ ॥

पीलु वृक्ष से शिरा का ज्ञान—

पूर्वोत्तरेण पीलोर्यदि वल्मीको जलं भवति पश्चात् ।
उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पञ्चभिः पुरुषैः ॥ ६३ ॥
चिह्नं दर्दुर आदौ मृत्कपिला तत्परं भवेद्धरिता ।
भवति च पुरुषेऽधोऽश्मा तस्य तलेऽम्भो विनिर्देश्यम् ॥ ६४ ॥

यदि पीलु (पिलुआ = पीलौ गुडफलः स्रंसीत्यमरः) वृक्ष के ईशान कोण में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ पश्चिम दिशा में पाँच पुरुष नीचे उत्तर बहने वाली शिरा होती है। यहाँ खोदने के समय एक पुरुष नीचे मेंढ़क, उसके नीचे पीली तथा हरी मिट्टी उसके नीचे पत्थर और उसके नीचे जल कहना चाहिये। यहाँ पर सारस्वत—

ऐशान्यां पीलुवृक्षस्य वल्मीकश्चेज्जलं वदेत्। चतुर्भिः सार्द्धैर्हस्तैः पश्चिमे नरपञ्चमे ॥
प्रथमे पुरुषे भेकः कपिला हरिता च मृद्। पाषाणस्य तले सौम्यां शिरां बहुजलां वदेत् ॥

पीलु वृक्ष से जल का ज्ञान—

पीलोरेव प्राच्यां वल्मीकोऽतोऽर्धपञ्चमैर्हस्तैः ।
दिशि याम्यायां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः ॥ ६५ ॥
प्रथमे पुरुषे भुजगः सितासितो हस्तमात्रमूर्तिश्च ।
दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भूरि पानीयम् ॥ ६६ ॥

पीलु वृक्ष के पूर्व दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ दक्षिण दिशा में सात पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। यहाँ पर एक पुरुष नीचे एक हाथ लम्बा, चितकबरा सर्प और उसके नीचे बहुत खारा जल बहने वाली दक्षिण शिरा निकलती है।

करीर वृक्ष से जल का ज्ञान—

उत्तरतश्च करीरस्याहिगृहं दक्षिणे जलं स्वादु ।
दशभिः पुरुषैर्ज्ञेयं पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः ॥ ६७ ॥

करीर (करील) वृक्ष के उत्तर दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ पर दक्षिण दिशा में दस पुरुष नीचे मधुर जल जानना चाहिये। यहाँ पर एक पुरुष नीचे पीला मेढ़क दिखाई देता है। यहाँ पर सारस्वत—

उदक्करीराद्वल्मीको दृश्यते चेज्जलं वदेत्। चतुर्भिर्दक्षिणैर्हस्तैः सार्धैर्दशनरावत॥
नरे भेक पीतवर्णो दृश्यतेचिह्नमत्र हि॥ ६७॥

रोहितक वृक्ष से जल ज्ञान—

रोहीतकस्य पश्चादहिवासश्चेत्त्रिभिः करैर्याम्ये।
द्वादश पुरुषान् खात्वा सक्षारा पश्चिमेन शिरा॥ ६८॥

रोहितक (लाल करञ्ज) वृक्ष के पश्चिम में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ पर दक्षिण दिशा में बारह पुरुष नीचे खारे जल वाली पश्चिम वाहिनी शिरा निकलती है।

अर्जुन वृक्ष से जल का ज्ञान—

इन्द्रतरोर्वल्मीकः प्राग्दृश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते।
खात्वा चतुर्दश नरान् कपिला गोधा नरे प्रथमे॥ ६९॥

यदि अर्जुन वृक्ष के पूर्व में वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्ष से एक हाथ पर पश्चिम दिशा में चौदह पुरुष नीचे शिरा निकलती है। और एक पुरुष नीचे पीला गोह दिखाई देता है॥

धतूरे के वृक्ष से जल का ज्ञान—

यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भवेद्वामतो भुजङ्गगृहम्।
हस्तद्वये तु याम्ये पञ्चदशनरावसानेऽम्बु॥ ७०॥
क्षारं पयोऽत्र नकुलोऽर्धमानवे ताम्रसन्निभश्चाश्मा।
रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा दक्षिणा तत्र॥ ७१॥

धतूरा वृक्ष के उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण पन्द्रह पुरुष नीचे जल होता है। इस खात में खारा जल होता है। तथा आधा पुरुष नीचे नेवला, ताम्रवर्ण का पत्थर और लाल रंग की मिट्टी निकलती है। यहाँ दक्षिण शिरा बहती है॥ ७०–७१॥

बेर और लाल करञ्ज के संयोग से जल का ज्ञान—

बदरीरोहितवृक्षौ सम्पृक्तौ चेद्विनापि वल्मीकम्।
हस्तत्रयेऽम्बु पश्चात्षोडशभिर्मानवैर्भवति॥ ७२॥
सुरसं जलमादौ दक्षिणा शिरा वहति चोत्तरेणान्या।
पिष्टनिभः पाषाणो मृत् श्वेता वृश्चिकोऽर्धनरे॥ ७३॥

वल्मीक बिना भी बेर, लाल करञ्ज ये दोनों वृक्ष इकट्ठे दिखाई दें तो उन वृक्षों से तीन हाथ पर पश्चिम दिशा में सोलह पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर मधुर जल होता है, पहले दक्षिण शिरा बाद में उत्तर शिरा बहती है, आटे के समान सफेद पत्थर तथा सफेद मिट्टी निकलती है और आधा पुरुष नीचे बिच्छू दिखाई देता है॥ ७२–७३॥

करील और बेर के वृक्षों के संयोग से जल ज्ञान—

सकरीरा चेद्बदरी त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः।

अष्टादशभिः पुरुषैरैशानी बहुजला च शिरा ॥ ७४ ॥

करीर वृक्ष के साथ बेर का वृक्ष दिखाई दे तो उन वृक्षों से तीन हाथ पर पश्चिम दिशा में अठारह पुरुष नीचे ईशान कोण में बहने वाली और बहुत जल वाली शिरा होती है ॥७४॥

पीलु वृक्ष से युत बेर के वृक्ष से जल ज्ञान—

पीलुसमेता बदरी हस्तत्रयसम्मिते दिशि प्राच्याम्।
विंशत्या पुरुषाणामशोष्यमम्भोऽत्र सक्षारम् ॥ ७५ ॥

यदि पीलु वृक्ष से युत बेर का वृक्ष हो तो उनसे तीन हाथ पर पूर्व दिशा में बीस पुरुष नीचे कभी न सूखने वाला खारा जल होता है ॥ ७५ ॥

अर्जुन और करीर या अर्जुन और बेल वृक्ष के संयोग से जल ज्ञान—

ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ यत्र ककुभबिल्वौ वा।
हस्तद्वयेऽम्बु पश्चान्नरैर्भवेत् पञ्चविंशत्या ॥ ७६ ॥

जिस जगह अर्जुन और करीर या अर्जुन और बेल के वृक्ष का संयोग हो तो उन वृक्षों से दो हाथ पर पश्चिम दिशा में पचीस पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७६ ॥

वल्मीक के ऊपर दूब, कुशा आदि से जल ज्ञान—

वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा च कुशाश्च पाण्डुराः सन्ति।
कूपो मध्ये देयो जलमत्र नरैकविंशत्या ॥ ७७ ॥

यदि वल्मीक के ऊपर दूब या सफेद कुशा हो तो वल्मीक के नीचे कूप खोदने से इक्कीस पुरुष नीचे जल मिलता है ॥ ७७ ॥

कदम्ब और दूर्वा युत वल्मीक से जल ज्ञान—

भूमिः कदम्बकयुता वल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा।
हस्तद्वयेन याम्ये नरैर्जलं पञ्चविंशत्या ॥ ७८ ॥

जिस भूमि में कदम्ब और वल्मीक के ऊपर दूब दिखाई दे वहाँ कदम्ब वृक्ष से दक्षिण दो हाथ पर पचीस पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७८ ॥

तीन वल्मीक के मध्य में स्थित रोहीतक वृक्ष से जल ज्ञान—

वल्मीकत्रयमध्ये रोहीतकपादपो यदा भवति।
नानावृक्षैः सहितस्त्रिभिर्जलं तत्र वक्तव्यम् ॥ ७९ ॥
हस्तचतुष्के मध्यात् षोडशभिश्चाङ्गुलैरुदग्वारि।
चत्वारिंशत्पुरुषान् खात्वाऽश्माऽधः शिरा भवति ॥ ८० ॥

तीन वल्मीक के मध्य में विजातीय तीन तरह के वृक्षों से युत लाल करंज का वृक्ष हो तो उस लाल करंज के वृक्ष से उत्तर चार हाथ सोलह अङ्गुल पर चालीस पुरुष नीचे खोदने से पत्थर और उसके नीचे शिरा होती है ॥ ७९-८० ॥

शमी वृक्ष से जल का ज्ञान—

ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिन् शमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः।
पश्चात् पञ्चकरान्ते शतार्धसंख्यैर्नरैः सलिलम् ॥ ८१ ॥

जहाँ पर अनेक काँटों से युत शमी वृक्ष हो और उसके उत्तर वल्मीक हो तो उस शमी वृक्ष के पश्चिम पाँच हाथ पर पचास पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७९–८० ॥

पाँच वल्मीक वश जल ज्ञान—

एकस्थाः पञ्च यदा वल्मीका मध्यमो भवेच्छ्वेतः ।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा नरपष्ठ्या पञ्चवर्जितया ॥ ८२ ॥

एक स्थान में पाँच वल्मीक हो उनमें बीच का वल्मीक सफेद हो तो उस सफेद वल्मीक में खोदने से पचपन पुरुष नीचे सिरा निकलती है ॥ ८२ ॥

पलाश युत शमी वृक्ष से जल ज्ञान—

सपलाशा यत्र शमी पश्चिमभागेऽम्बु मानवैः षष्ठ्या ।
अर्धनरेऽहिः प्रथमं सवालुका पीतमृत्परतः ॥ ८३ ॥

जहाँ पर पलाश (ढाक) के वृक्ष से युत शमी वृक्ष हो वहाँ उन वृक्षों से पश्चिम पाँच हाथ पर साठ पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे सर्प और उसके नीचे रेत मिली हुई पीली मिट्टी मिलती है। यहाँ पर सारस्वत—

शमी पलाशसंयुक्ता यत्र स्यात्तत्र पश्चिमे। पञ्चहस्तान्तजलं वाच्यं षष्ठ्यात्र पुरुषैरध ॥
अत्रार्धपुरुषे सर्पः पीता मृत्स्यात्सवालुका। तदधोऽम्भो विनिर्देश्य दीर्घकाल प्रवाहितम् ॥

वल्मीक से युत रोहीतक वृक्ष से जल ज्ञान—

वल्मीकेन परिवृतः श्वेतो रोहीतको भवेद्यस्मिन् ।
पूर्वेण हस्तमात्रे सप्तत्या मानवैरम्बु ॥ ८४ ॥

जहाँ वल्मीक से घिरा हुआ सफेद रोहीतक का वृक्ष हो वहाँ उस वृक्ष से पूर्व दिशा में एक हाथ पर सत्तर पुरुष नीचे जल होता है ॥ ८४ ॥

श्वेत कण्टक युत शमी वृक्ष से जल ज्ञान—

श्वेता कण्टकबहुला यत्र शमी दक्षिणेन तत्र पयः ।
नरपञ्चकसंयुतया सप्तत्याहिर्नरार्धे च ॥ ८५ ॥

जहाँ सफेद काँटों से युत शमी वृक्ष हो वहाँ उस वृक्ष से दक्षिण एक हाथ पर पचहत्तर पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर खोदने से आधा पुरुष नीचे सर्प होता है।

यहाँ पर सारस्वत—

श्वेतातिकण्टका यत्र शमी स्यात्तत्र दक्षिणे। हस्तेन पञ्चसप्तत्या नराणां निर्दिशेज्जलम् ॥
खातेऽर्धपुरुषे सर्पो दृश्यतेऽञ्जनसप्रभ। सुरभ च जलं ज्ञेयं चिरकालप्रवाहितम् ॥ ८५ ॥

जल ज्ञान में तारतम्य—

मरुदेशे यच्चिह्नं न जाङ्गले तैर्जलं विनिर्देश्यम् ।
जम्बूवेतसपूर्वैर्ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः ॥ ८६ ॥

जिन चिह्नों से मरुस्थल में जल ज्ञान कहा गया है उन चिह्नों से जाङ्गल (स्वल्प जल वाले) देश में जल ज्ञान नहीं कहना चाहिये। पहले जामुन, बेंत आदि के द्वारा जल ज्ञान के समय जो पुरुष प्रमाण कहा गया है उसको द्विगुणित करके मरु देश में ग्रहण करना चाहिये ॥ ८६ ॥

वल्मीक के ऊपर जामुन आदि वृक्ष से जल ज्ञान—

जम्बूस्त्रिवृता मौर्वी शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा।
वीरुधयो वाराही ज्योतिष्मती गरुडवेगा च॥ ८७॥
सूकरिकमाषपर्णीव्याघ्रपदाश्चेति यद्यहेर्निलये।
वल्मीकादुत्तरतस्त्रिभिः करैस्त्रिपुरुषे तोयम्॥ ८८॥

यदि वल्मीक के ऊपर जामुन, निसोत, मौर्वी, शिशुमारी, सारिवा, शिवा (शमी), श्यामा, वाराही, ज्यौतिष्मती (मालकाकुणी), गरुडवेगा, सूकरिका, माषपर्णी (मूड), व्याघ्रपदा ये औषधियाँ हों तो वल्मीक से उत्तर तीन हाथ पर तीन पुरुष नीचे जल होता है।

पूर्व कथित जल के योग में तारतम्य—

एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूमौ तु पञ्चभिः पुरुषैः।
एतैरेव निमित्तैर्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत्॥ ८९॥

पूर्व कथित तीन पुरुष प्रमाण अनूप (जलप्राय) देश के लिये है। स्वल्प जल वाले देश में इन्हीं पूर्वोक्त लक्षणों से पाँच पुरुष नीचे और मरु देश में सात पुरुष नीचे जल कहना चाहिये॥ ८९॥

विकार युत भूमि से जल ज्ञान—

एकनिभा यत्र मही तृणतरुवल्मीकगुल्मपरिहीना।
तस्यां यत्र विकारो भवति धरित्र्यां जलं तत्र॥ ९०॥

जहाँ तृण, वृक्ष, वल्मीक और गुल्मों से रहित एक वर्ण की भूमि हो तथा उस भूमि में कहीं एक जगह विकार दिखाई दे तो उस विकार युत भूमि के पाँच पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। यहाँ पर सारस्वत—

एक वर्णा मही यत्र वृक्षगुल्मतृणादिभिः। वल्मीकैश्चापि रहिता तस्यां तत्र विपर्ययः॥
पञ्चभिः पुरुषैस्तत्र जलं भूमावधः स्थितम्॥ ९०॥

भूमि के लक्षण से जल का ज्ञान—

यत्र स्निग्धा निम्ना सवालुका सानुनादिनी वा स्यात्।
तत्रार्धपञ्चकैर्वारि मानवैः पञ्चभिर्यदि वा॥ ९१॥

जहाँ स्निग्ध, नीची, रेतदार और पाँव के रखने से शब्द युत भूमि हो वहाँ साढे चार या पाँच पुरुष नीचे जल कहना चाहिये॥ ९१॥

स्निग्ध वृक्षों से जल का ज्ञान—

स्निग्धतरूणां याम्ये नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च।
तरुगहनेऽपि हि विकृतो यस्तस्मात् तद्वदेव वदेत्॥ ९२॥

जहाँ स्निग्ध वृक्ष हों वहाँ उन वृक्षों से चार पुरुष नीचे जल होता है। तथा जहाँ बहुत वृक्षों के मध्य में एक वृक्ष विकार युत दिखाई दे वहाँ उस विकार युत वृक्ष से दक्षिण चार पुरुष नीचे जल होता है॥ ९२॥

नीचे दबने वाली भूमि दो देख कर जल ज्ञान—

नमते यत्र धरित्री सार्धे पुरुषेऽम्बु जाङ्गलानूपे।

कीटा वा यत्र बिनालयेन बहवोऽम्बु तत्रापि ॥ ९३ ॥

जिस बहुत जल वाले या स्वल्प जल वाले देश में पाँव रखने से दब जाय और जहाँ बिना रहने के स्थान के बहुत कीड़े हों वहाँ डेढ़ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ॥ ९३ ॥

गरम और ठंढी भूमि को देख कर जल ज्ञान—

उष्णा शीता च मही शीतोष्णाम्भस्त्रिभिर्नरैः सार्धैः ।

इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात् ॥ ९४ ॥

जहाँ सब जगह गरम और एक जगह में ठण्डी या सब जगह ठण्डी और एक जगह गरम भूमि हो वहाँ साढे तीन पुरुष नीचे जल होता है। जिस स्वल्प जल वाले या अधिक जल वाले प्रदेश में इन्द्रधनुष, मछली या वल्मीक हो उस भूमि में चार हाथ नीचे जल होता है।

वल्मीक आदि के दर्शन से जल ज्ञान—

वल्मीकानां पङ्क्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रितः शिरा तदधः ।

शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तत्राम्भः ॥ ९५ ॥

जहाँ बहुत वल्मीकों में एक वल्मीक सबसे ऊँचा हो तो उस ऊँचे वल्मीक के नीचे चार पुरुष खोदने से जल मिलता है। अथवा जिस खेत में धान्य जम कर सूख जाय या जमे ही नहीं वहाँ चार पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। यहाँ पर सारस्वत—

वल्मीकपङ्क्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रितस्तदधो जलम्। न रोहते शुष्यते वा यत्र सस्यं चतुष्करात्॥
जलं तत्रैव निर्देश्यं भूमौ नि संशयं तदा ॥ ९५ ॥

वड, पीपल और गूलर के संयोग से जल ज्ञान—

न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः ।

वटपिप्पलसमवाये तद्वद्वाच्यं शिरा चोदक् ॥ ९६ ॥

जहाँ वड, पीपल, गूलर ये तीनों वृक्ष इकट्ठे हों तथा जहाँ वड, पीपल ये दोनों वृक्ष इकट्ठे हों वहाँ इन वृक्षों के नीचे तीन हाथ खोदने पर जल और उत्तर शिरा मिलती है। यहाँ पर सारस्वत—

पलाशोदुम्बरौ यत्र स्यातां न्यग्रोधसंयुतौ। वटपिप्पलको वाथ समेतौ तदधोजलम् ॥
करैस्त्रिभिरुदक् चाम्भ शिरा शुभजलां वदेत् ॥ ९६ ॥

आग्नेय कोण स्थित कूप का फल—

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवेत् कूपः ।

नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः ॥ ९७ ॥

नैर्ऋतकोणे बालक्षयं च वनिताभयं च वायव्ये ।

दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः ॥ ९८ ॥

यदि गाँव या नगर के आग्नेय कोण में कूप हो तो उस गाँव या नगर में नित्य अनेक प्रकार का भय होता है। अधिकतर आग लगती है और मनुष्य भी जल कर मरते हैं। नैर्ऋत्य कोण में कूप हो तो बालकों का क्षय और वायव्य कोण में स्त्रियों को भय होता है। शेष पाँच दिशाओं में शुभ होता है ॥ ९७–९८ ॥

यहाँ आचार्य का विशेष वक्तव्य—

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत् कृतं तदवलोक्य।
आर्याभिः कृतमेतद्वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये ॥ ९९ ॥

सारस्वत मुनि ने जो उदकार्गल कहे हैं उनको देख कर मैंने आर्या छन्द से यह उदकार्गल कहा है। अब मनु से प्रतिपादित उदकार्गल को वृत्तों से कहता हूँ ॥ ९९ ॥

वृक्षों के द्वारा जल का ज्ञान—

स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्ल्यो निश्छिद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति।
पद्मक्षुरोशीरकुलाः सगुण्ड्राः काशाः कुशा वा नलिका नलो वा ॥१००॥
खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः क्षीरान्विता वा द्रुमगुल्मवल्ल्यः।
छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः ॥१०१॥
विभीतको वा मदयन्तिका वा यत्रास्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः।
स्यात्पर्वतस्योपरि पर्वतोऽन्यस्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः ॥१०२॥

जहाँ पर स्निग्ध, छिद्र रहित पत्तों से युत वृक्ष गुल्म या लता हो वहाँ तीन पुरुष नीचे जल होता है। अथवा स्थल कमल, गोखरू, उशीर (खस), कुल ये द्रव्य विशेष। गुण्ड्र (सरकण्डा, शर), काश, कुश, नलिका, नल ये तृण विशेष। खजूर, जामुन, अर्जुन, वेंत ये वृक्ष विशेष। दूध वाले वृक्ष, गुल्म और लता, छत्री, हस्तीकर्णी, नागकेशर, कमल, कदम्ब, करञ्ज ये सब सिन्दुवार वृक्ष के साथ। बहेडा वृक्ष विशेष, मदयन्तिका द्रव्य विशेष ये सब जहाँ हों वहाँ पर तीन पुरुष नीचे जल होता है। तथा जहाँ पर एक पर्वत के ऊपर दूसरा पर्वत हो वहाँ पर भी तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर मनु—

गुल्मपादपवल्ल्यश्च स्युः पत्रैश्चाखण्डितैर्युताः। तदधो विद्यते वारि खाते तु पुरुषत्रये ॥
पद्मक्षुरोशीरकुला गुण्ड्रा काशः कुशोऽथवा। नलिकानलखर्जूरजम्बूवेतसकार्जुना ॥
यत्र स्युर्द्रुमवल्ल्यश्च क्षीरयुक्ताः फलान्विताः। छत्रेभनागनीपाश्च शतपत्रविभीतकाः ॥
सिन्दुवारा नक्तमाला सुगन्धा मदयन्तिकाः। यत्रैते स्युस्तत्र जलं खातेऽम्भः पुरुषत्रये ॥
गिरेरुपरि यत्रान्यः पर्वत स्यात् ततो जलम्। तस्यैव मूले पुरुषैस्त्रिभिर्वाऽधो विनिर्दिशेत् ॥

मूंज आदि से युत भूमि में जल का ज्ञान—

या मौञ्जिकैः काशकुशैश्च युक्ता नीला च मृद्यत्र सशर्करा च।
तस्यां प्रभूतं सुरसं च तोयं कृष्णाथवा यत्र च रक्तमृद्वा ॥१०३॥

मूंज, काश और कुश से युत भूमि में, पत्थर की कणाओं से मिली हुई नीली मिट्टी वाली भूमि में और काली या लाल मिट्टी वाली भूमि में बहुत तथा मधुर जल होता है ॥

भूमि के वर्ण से जल ज्ञान—

सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं मृष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम् ॥ १०४ ॥

पत्थर के कणों से मिली हुई ताम्र वर्ण की भूमि में कसैला, पीली भूमि में खारा, पाण्डुरंग की भूमि में नमकीन और नीली भूमि में मीठा जल होता है ॥ १०४ ॥

शाक आदि के लक्षण से जल ज्ञान—

शाकाश्वकर्णार्जुनबिल्वसर्जाः श्रीपर्ण्यरिष्टाधवशिंशपाश्च ।
छिद्रैश्च पत्रैर्द्रुमगुल्मवल्ल्यो रूक्षाश्च दूरेऽम्बु निवेदयन्ति ॥ १०५ ॥

जहाँ पर छिद्र वाले पत्तों से युत शाक (तरकारी = सब्जी), अश्वकर्ण (संतुआ), अर्जुन, बेल, सर्ज, श्रीपर्णी, अरिष्ट, धव, शीशम ये वृक्ष हों तथा जहाँ पर छिद्र वाले रूखे पत्तों से युत वृक्ष, गुल्म, लता हों वहाँ बहुत दूर पर जल होता है ॥ १०५ ॥

भूमि के वर्ण से जल ज्ञान—

सूर्याग्निभस्मोष्ट्रखरानुवर्णा या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा ।
रक्ताङ्कुराः क्षीरयुताः करीरा रक्ता धरा चेज्जलमश्मनोऽधः ॥ १०६ ॥

जहाँ सूर्य, अग्नि, भस्म, ऊँट या गदहे के रंग की या लाल रंग की भूमि में लाल अङ्कुर वाला, दूध वाला करीर वृक्ष हो या लाल वर्ण की भूमि हो वहाँ पत्थर के नीचे जल होता है ॥ १०६ ॥

काली आदि पत्थर को देख कर जल ज्ञान—

वैदूर्यमुद्गाम्बुदमेचकाभा पाकोन्मुखोदुम्बरसन्निभा वा ।
भृङ्गाञ्जनाभा कपिलाथवा या ज्ञेया शिला भूरिसमीपतोया ॥ १०७ ॥

वैदूर्य मणि, मूग या मेघ के समान काला, पकने वाले गूलर के फल के समान, फोड़ने से अञ्जन के समान काला या पीला पत्थर जहाँ हो वहाँ पर समीप में ही बहुत जल होता है ॥ १०७ ॥

कबूतर आदि के समान पत्थर को देख कर जल ज्ञान—

पारावतक्षौद्रघृतोपमा या क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा ।
या सोमवल्ल्याश्च समानरूपा साप्याशु तोयं कुरुतेऽक्षयं च ॥ १०८ ॥

कबूतर, शहद, घृत या सोमलता के समान रंग वाला पत्थर जहाँ पर हो वहाँ भी कभी नहीं नष्ट होने वाला जल शीघ्र निकलता है ॥ १०८ ॥

विचित्र आदि बिन्दुओं से युत शिला से जलाभावज्ञान—

ताम्रैः समेता पृषतैर्विचित्रैरापाण्डुभस्मोष्ट्रखरानुरूपा ।
भृङ्गोपमाङ्गुष्ठिकपुष्पिका वा सूर्याग्निवर्णा च शिला वितोया ॥१०९॥

ताम्र वर्ण के बिन्दुओं से युत, विचित्र बिन्दुओं से युत, पाण्डु वर्ण वाला, भस्म, ऊँट या गदहे के समान वर्ण वाला, अङ्गुष्ठिका वृक्ष के समान नीला, सूर्य या अग्नि के समान वर्ण वाला पत्थर जहाँ पर हो वहाँ पर जल नहीं होता है ॥ १०९ ॥

चन्द्र किरण आदि के समान रंग वाले पत्थर से जल ज्ञान—

चन्द्रातपस्फटिकमौक्तिकहेमरूपा याश्चेन्द्रनीलमणिहिङ्गुलकाञ्जनाभाः ।
सूर्योदयांशुहरितालनिभाश्च याः स्युस्ताः शोभना मुनिवचोऽत्र च वृत्तमेतत् ॥

चन्द्र किरण, स्फटिक, मोती, सोना, इन्द्रनील मणि, सिंगरफ, अंजन, उदय कालिक सूर्य किरण और हरिताल के समान रंग वाला पत्थर शुभ होता है। अब यहाँ इसके बाद ये वक्ष्यमाण वृत्तान्त मुनि कथित हैं ॥ ११० ॥

पूर्व कथित शुभ शिलाओं का फल—

एता ह्यभेद्याश्च शिलाः शिवाश्च यक्षैश्च नागैश्च सदाभिजुष्टाः ।
येषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां तेषामवृष्टिर्न भवेत् कदाचित् ॥१११॥

पूर्व कथित सब शुभ शिलायें कल्याण करने वाली हैं, सदा यक्ष और नागों से सेवित हैं। जिनके राज्य में ये शिलायें होती हैं, उनके यहाँ कभी भी अवृष्टि नहीं होती ॥१११॥

शिला विदारण प्रकार—

भेदं यदा नैति शिला तदानीं पलाशकाष्ठैः सह तिन्दुकानाम् ।
प्रज्वालयित्वानलमग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति ॥११२॥

यदि कूप आदि खोदने के समय पत्थर निकल आवे और वह आसानी से न फूट सके तो उस के ऊपर ढाक और तेन्दु की लकड़ी जला कर आग के समान लाल बना ले फिर ऊपर चूने की कली से मिश्रित जल छिड़के तो शिला फूट जाती है ॥ ११२ ॥

तोयं श्रितं मोक्षकभस्मना वा यत्सप्तकृत्वः परिषेचनं तत् ।
कार्यं शरक्षारयुतं शिलायाः प्रस्फोटनं वह्निवितापितायाः ॥ ११३ ॥

मोक्षक (काली पाडरि) वृक्ष की लकड़ी का भस्म मिला कर जल को औटावे फिर उसमें शर के वृक्ष का भस्म मिलावे, बाद अग्नि से तपाई हुई शिला पर उसे सात बार छिड़कने से शिला फूट जाती है ॥ ११३ ॥

तक्रकाञ्जिकसुराः सकुलत्था योजितानि बदराणि च तस्मिन् ।
सप्तरात्रमुषितान्यभितप्तां दारयन्ति हि शिलां परिषेकैः ॥११४॥

छाछ, काँजी, मद्य, कुल्थी इन सब को मिला कर एक बरतन में सात रात तक छोड़ दे, बाद अग्नि से तपाई हुई शिला पर उसे बार-बार छिड़कने से शिला फूट जाती है ॥

नैम्बं पत्रं त्वक् च नालं तिलानां सापामार्गं तिन्दुकं स्याद्गुडूची ।
गोमूत्रेण स्रावितः क्षार एषां षट्कृत्वोऽस्तस्तापितो भिद्यतेऽश्मा ॥

नींब के पत्ते, नींब की छाल, तिलों का नाल, अपामार्ग, तेन्दू का फल, गिलोय इन सबों की भस्म को गोमूत्र में मिला कर उसे तपाई हुई शिला पर छै बार छिड़कने से शिला फूट जाती है ॥ ११५ ॥

शस्त्र को तीक्ष्ण बनाने का उपाय—

आर्कं पयो हुडुविषाणमषीसमेतं
पारावताखुशकृता च युतः प्रलेपः ।
शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं
पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः ॥११६॥

शस्त्र पर पहले तिल का तेल मले, फिर मेष के सींग की भस्म तथा कबूतर और चूहे की बीट से युत आक के वृक्ष के दूध का लेप करे, फिर उसको आग में तपा कर पूर्वोक्त पान देवे, पश्चात् तेज करके पत्थर पर मारने से भी उसकी धार नहीं टूटती है ॥ ११६ ॥

क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते पायितमायसं यत् ।

सम्यक् शितं चाश्मनि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम् ॥

एक अहोरात्र तक तक्र से युत कदली वृक्ष की भस्म में स्थापित लोहे में पूर्वोक्त पान देकर तीक्ष्ण करके पत्थर पर मारने से भी उसकी धार नहीं टूटती है, तथा अन्य लोहे पर मारने से भी कुण्ठता (अतीक्ष्णता) को नहीं प्राप्त होता है ॥ ११७ ॥

वापी का लक्षण—

पाली प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा
कल्लोलैरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः ।
तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां सम्पातमावारयेत्
पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णं द्विपाश्वादिभिः ॥११८॥

पूर्वापरायत वापी में अधिक समय तक जल ठहरता है। दक्षिणोत्तरायत वापी में जल नहीं ठहरता है, क्योंकि वायु के तरङ्गों से वह वापी नष्ट हो जाती है। यदि दक्षिणोत्तरायत वापी बनाना चाहे तो तरङ्गों से बचाने के लिये किनारों को मजबूत लकडी या पत्थर आदि से चुनवा दे तथा बनाने के समय मिट्टी की हरेक तह को हाथी घोड़े आदि से रौंदवाता जाय जिस से कि मिट्टी दब कर विशेष मजबूत हो जाय ॥ ११८ ॥

वापी के तट पर लगाने वाले वृक्ष—

ककुभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुलजम्बूवेतसनीपैः ।
कुरवकतालाशोकमधूकैर्बकुलविमिश्रैश्चावृततीराम् ॥ ११९ ॥

निचुल, जामुन, वेंत, नीप (एक तरह का कदम्ब) इन वृक्षों के साथ अर्जुन, वड, आम, पिलखन, कदम्ब और बकुल के साथ कुरवक, तार, अशोक, महुआ, मौलसरी इन वृक्षों को वापी के तट पर लगावे ॥ ११९ ॥

जल निर्गमन मार्ग का लक्षण—

द्वारं च नैर्वाहिकमेकदेशे कार्यं शिलासञ्चितवारिमार्गम् ।
कोशस्थितं निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पांशुभिरावपेत्तम् ॥१२०॥

वापी की एक तरफ जल निकलने के लिये पत्थरों से बधवाया हुआ एक मार्ग बनावे। उस मार्ग को छिद्र रहित लकडी के तख्ते से ढक कर मिट्टी से दृढ कर दे ॥ १२० ॥

कूप में डालने का द्रव्य विशेष—

अञ्जनमुस्तोशीरैः शराजकोशातकामलकचूर्णैः ।
कतकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः ॥ १२१ ॥

अञ्जन, मोथा, खस, राजकोशातक, आँवला, कतक का फल इन सबका चूर्ण कूप में डाले ॥ १२१ ॥

पूर्वोक्त द्रव्य डालने का गुण—

कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वाशुभगन्धि भवेत् ।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम् ॥ १२२ ॥

जो जल गन्दला, कड़ुआ, खारा, बेस्वाद या दुर्गन्ध वाला हो वह इन पूर्वोक्त औषधियों से निर्मल, मधुर, सुन्दर गन्ध वाला और अनेक गुणों से युक्त होता है ॥१२२॥

कूपारम्भ के नक्षत्र—

हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः ।
शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः ॥ १२३ ॥

हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, शतभिषा इन नक्षत्रों में कूप का आरम्भ करना शुभ है ॥ १२३ ॥

प्रतिष्ठा का विधान—

कृत्वा वरुणस्य बलिं वटवेतसकीलकं शिरास्थाने ।
कुसुमैर्गन्धैर्धूपैः सम्पूज्य निधापयेत् प्रथमम् ॥ १२४ ॥

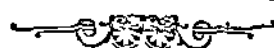
वरुण को बलि देकर गन्ध, पुष्प, धूप आदि से वड या वेतस की लकड़ी की कील की पूजा करके पहले शिरा स्थान में उसको गाड़े ॥ १२४ ॥

उपसंहार पद्य—

मेघोद्भवं प्रथममेव मया प्रदिष्टं ज्येष्ठामतोत्य बलदेवमतादि दृष्ट्वा ।
भौमं दकार्गलमिदं कथितं द्वितीयं सम्यग्वराहमिहिरेण मुनिप्रसादात् ॥

ज्येष्ठ की पूर्णिमा के बाद में जिस तरह जल ज्ञात होता है, उसको मैंने पहले ही कह दिया है। यहाँ बलदेव आदि आचार्यों का मत देख कर मुनियों की कृपा से मैंने जलज्ञान के लिये यह दूसरा दकार्गल नामक अध्याय कहा है ॥ १२५ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां दकार्गलाध्यायश्चतुष्पञ्चाशत्तमः ॥ ५४ ॥



अथ वृक्षायुर्वेदाध्यायः

उसमें पहले प्रयोजन प्रदर्शन—

प्रान्तच्छायाविनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः ।
यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत् ॥ १ ॥

वापी, कूप, तालाव आदि जलाशयों के प्रान्त छायारहित हों तो सुन्दर नहीं होता है, अतः जलाशयों के किनारे पर बगीचा लगावे ॥ १ ॥

बगीचा लगाने के लिये भूमि—

मृद्वी भूः सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत् ।
पुष्पितांस्तांश्च मृद्गीयात् कर्मैतत्प्रथमं भुवः ॥ २ ॥

सब वृक्षों के लिये कोमल भूमि अच्छी होती है। तथा जिस भूमि में बगीचा लगाना हो उसमें पहले तिल बोवे, जब वे तिल फूल जायँ तब उनको उसी भूमि में मर्दन कर दे। यह भूमि का प्रथम कर्म है। यहाँ पर काश्यप—

दूर्वावीरणसंयुक्ताः सानूपा मृदुमृत्तिकाः। तत्र वाप्याः शुभा वृक्षाः सुगन्धिफलशालिनः॥

बगीचे में पहले लगाने के वृक्ष—

अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गवः ।

मङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा ॥ ३ ॥

पहले बगीचे या घर के समीप में शुभ करने वाले नींब, अशोक, पुन्नाग, शिरीष, प्रियगु (ककुनी = कौनी) इन वृक्षों को लगावे। यहाँ पर काश्यप—

अशोकचम्पकारिष्टपुन्नागाश्च प्रियङ्गवः । शिरीषोदुम्बराः श्रेष्ठा पारिजातकमेव च ॥

एते वृक्षा शुभा ज्ञेयाः प्रथम ताश्च रोपयेत्। देवालये तथोद्याने गृहेषूपवनेषु च ॥ ३ ॥

कलमी वृक्ष लगाने का प्रकार—

पनसाशोककदलीजम्बूलकुचदाडिमाः ।

द्राक्षापालीवताश्चैव बीजपूरातिमुक्तकाः ॥ ४ ॥

एते द्रुमाः काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः ।

मूलोच्छेदेऽथवा स्कन्धे रोपणीयाः परं ततः॥ ५ ॥

कटहर, अशोक, केला, जामुन, बड़हर, दाडिम, दाख, पालीवत, बिजौरा, अतिमुक्तक इन वृक्षों की शाखाओं को लेकर गोबर से लीप कर कटे हुए विजातीय वृक्ष की मूल या शाखा पर लगावे। यह कलम लगाने का प्रकार है। यहाँ पर काश्यप—

द्राक्षातिमुक्तको जम्बूबीजपूरकदाडिमा । कदलीबकुलाशोका काण्डरोप्याश्च वापयेत् ॥

अन्येऽपि शाखिनो ये च पुष्पिता फलितास्तथा। गोमयेन प्रलिप्ताश्च रोपणीया विवृद्धये ॥

वृक्षों को रोपने का काल—

अजातशाखान् शिशिरे जातशाखान् हिमागमे ।

वर्षागमे च सुस्कन्धान् यथादिक्स्थान् प्ररोपयेत् ॥ ६ ॥

अजातशाखा अर्थात् कलमी से भिन्न वृक्षों को शिशिर (माघ, फाल्गुन) में, कलमी वृक्षों को हेमन्त (मार्गशीर्ष, पौष) में और लम्बी-लम्बी शाखा वाले वृक्षों को वर्षा (श्रावण, भाद्र) में लगावे। यहाँ पर काश्यप—

अजातशाखा ये वृक्षाः शिशिरे तांश्च रोपयेत्। जातशाखाश्च हेमन्ते रोपणीया विधानतः ॥

सुस्कन्धा शाखिनो ये तान् प्रावृट्काले तु रोपयेत् ॥

वृक्षों को रोपने का नियम—

घृतोशीरतिलक्षौद्रविडङ्गक्षीरगोमयैः ।

आमूलस्कन्धलिप्तानां सङ्क्रामणविरोपणम् ॥ ७ ॥

घृत, खस, तिल, शहद, विडङ्ग (वायविडंग), दूध, गोबर इन सब को पीस कर मूल से लेकर अग्र पर्यन्त लेप कर वृक्ष को एक स्थान से लेकर दूसरे स्थान में लगावे। यहाँ पर काश्यप—

घृतं क्षीरं तथा क्षौद्रमुशीरतिलगोमयैः । विडङ्गलेपनं मूलात् सङ्क्रामणविरोपणम् ॥ ७ ॥

वृक्ष रोपने की विधि—

शुचिर्भूत्वा तरोः पूजां कृत्वा स्नानानुलेपनैः ।

रोपयेद्रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते ॥ ८ ॥

पवित्र होकर स्नान, चन्दन आदि से वृक्ष की पूजा कर के दूसरे स्थान में लगावे, इस तरह लगाने से उन्हीं पत्रों से युत वृक्ष लग जाता है, अर्थात् सूखता नहीं है ॥ ८ ॥

वृक्षों को सींचने का प्रकार—

सायं प्रातश्च घर्मर्त्तौ शीतकाले दिनान्तरे ।
वर्षासु च भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः ॥ ९ ॥

लगाये हुये वृक्षों को ग्रीष्म ऋतु में साँझ-सबेरे, शीत काल में एक दिन बाद और वर्षा ऋतु में भूमि सूखने पर सींचना चाहिये ॥ ९ ॥

जल प्राय देश में होने वाले वृक्ष—

जम्बूवेतसवानीरकदम्बोदुम्बरार्जुनाः ।
बीजपूरकमृद्वीकालकुचाश्च सदाडिमाः ॥ १० ॥
वञ्जुलो नक्तमालश्च तिलकः पनसस्तथा ।
तिमिरोऽम्रातकश्चेति षोडशानूपजाः स्मृताः ॥ ११ ॥

जामुन, बेंत, वानीर (एक प्रकार का बेंत), कदम्ब, गूलर, अर्जुन, बिजौरा, दाख, बडहर, दाडिम वञ्जुल (तेंदुआ=तिनिस), नक्तमाल (करंज), तिलक, कटहल, तिमिर, अंबाडा ये सोलह वृक्ष अनूप (बहुत जल वाले) देश में होते हैं ॥ १०-११ ॥

वृक्ष लगाने का क्रम—

उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमं षोडशान्तरम् ।
स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ॥ १२ ॥

एक वृक्ष से दूसरा वृक्ष बीस हाथ पर लगाना उत्तम, सोलह हाथ पर मध्यम और बारह हाथ पर लगाना अधम है। यहाँ पर काश्यप—

अन्तरं विंशतिर्हस्ता वृक्षाणामुत्तमं स्मृतम् । मध्यमं षोडश ज्ञेयमधमं द्वादश स्मृतम् ॥१२॥

अच्छी तरह फल नहीं देने वाले वृक्ष—

अभ्यासजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम् ।
मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग्यच्छन्ति पीडिताः ॥ १३ ॥

यदि एक वृक्ष दूसरे वृक्ष के समीप हो, परस्पर स्पर्श करता हो या दोनों की जड़ें इकट्ठी हों तो वे वृक्ष पीडित होते हैं और अच्छी तरह फल नहीं देते ॥ १३ ॥

वृक्षों में रोगोत्पत्ति का कारण—

शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्रता ।
अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः ॥ १४ ॥

अधिक शीत, वायु और धूप लगने से वृक्षों को रोग हो जाता है, रोगी वृक्षों के पत्ते पीले पड़ जाते हैं, अङ्कुर नहीं बढते, डालियाँ सूख जाती हैं और रस टपकने लगता है ॥१४॥

वृक्षों की चिकित्सा—

चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम् ।
विडङ्गघृतपङ्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ १५ ॥

इन रोगी वृक्षों की चिकित्सा करनी चाहिये। पहले वृक्ष का जो अङ्ग पूर्वोक्त विकार युत हो उसको शस्त्र से काट डाले, फिर वायविडंग, घृत और पङ्क (कीचड़=कीच) को

मिला कर वृक्षों में लेप करे, बाद दूध मिश्रित जल से सींचे। यहाँ पर काश्यप—

शाखाविटपपत्रैश्च छायया विहिताश्च ये। येऽपि पर्णफलैर्हीना रूक्षा पत्रैश्च पाण्डुरैः॥
शीतोष्णवर्षवाताद्यैर्मूलैर्व्यामिश्रितैरपि। शाखिनां तु भवेद्रोगो द्विपानां लेपनेन च॥
चिकित्सितेषु कर्तव्या ये च भूयः पुनर्नवा। शोधयेत्प्रथमं शस्त्रैः प्रलेपं दापयेत्ततः॥
कर्दमेन विडङ्गैश्च घृतमिश्रैश्च लेपयेत्। क्षीरतोयेन सेकं स्याद्रोहणं सर्वशाखिनाम्॥

फल नाश की चिकित्सा—

फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः।
भृतशीतपयःसेकः फलपुष्पसमृद्धये॥ १६॥

वृक्ष में फल न लगें तो कुलथी, उड़द, मूँग, तिल, जौ इन सबको दूध में डाल कर औटावे, बाद उस दूध को ठंढा करके उससे फल और फूलों की वृद्धि के लिये वृक्षों को सींचे॥

वृक्षों के बढ़ने के लिये प्रयोग—

अविकाजशकृच्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम्।
सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमांसतुलया सह॥ १७॥
सप्तरात्रोषितैरेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः।
वल्लीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा॥ १८॥

भेड़ और बकरी की मेंगन (भेड़ारी) का चूर्ण दो आढक, तिल एक आढक, सत्तू (सतुआ) एक प्रस्थ, जल एक द्रोण, गौ का मांस एक तुला इन सबको मिला कर एक पात्र में सात रात तक रक्खे, बाद फल, फूलों की वृद्धि के लिये उससे वृक्ष, गुल्म और लताओं को सींचे। कहा भी है—

प्रियव कृष्णल विन्द्यान्माषलः पञ्चकृष्णलः। ते स्युर्द्वादश लक्षाख्यं सुवर्णमथ षोडश॥
पञ्चलैश्चतुर्भिस्तु सुवर्णैर्निष्क उच्यते। चतुष्पलोऽथ कुडव प्रस्थ स्यात्तच्चतुष्टयम्॥
आढकस्तु चतुःप्रस्थो द्रोणस्तु चतुराढक। मानिका तु चतुर्द्रोणा खारी स्यात्तच्चतुष्टयम्॥
तुला पलशतं ज्ञेय भार स्याद्विंशतिस्तुला। शुष्कद्रव्येषु सख्येय चार्द्रेषु द्विगुणा भवेत्॥

यहाँ पर काश्यप—

अजाविकानां द्वौ प्रस्थौ शकृच्चूर्णं च कारयेत्। तिलानामाढकं दद्यात् सक्तूना प्रस्थमेव च॥
गोमांसशतमेकं स्याद्द्वे सार्धे सलिलस्य च। सप्ताहमुषितैरेतैः सेकं दद्याद्वनस्पते॥
स भवेत्फलपुष्पैश्च पत्रैश्चाङ्कुरितैर्वृतः॥ १७-१८॥

बीज बोने की विधि—

वासराणि दश दुग्धभावितं बीजमाज्ययुतहस्तयोजितम्।
गोमयेन बहुशो विरूक्षितं क्रौडमार्गपिशितैश्च धूपितम्॥ १९॥
मांससूकरवसासमन्वितं रोपितं च परिकर्मितावनौ।
क्षीरसंयुतजलावसेचितं जायते कुसुमयुक्तमेव तत्॥ २०॥

किसी वृक्ष के बीज को घृत लगाये हुए हाथ से चुपड़ कर दूध में डाल दे। इस तरह दश रोज तक करता रहे। बाद उसको गोबर से अनेक बार मल कर रूखा करके सूकर और हिरण के मांस का धूप देवे। बाद मांस और सूकर की चर्बी सहित उस बीज को

तिल बोकर शुद्ध की हुई भूमि में लगावे और दूध मिश्रित जल से सींचे तो निश्चित फूल युत वृक्ष उत्पन्न होता है ॥ १९-२० ॥

इमली के वृक्ष को लगाने की विधि—

तिन्तिडीत्यपि करोति वल्लरीं व्रीहिमाषतिलचूर्णसक्तुभिः ।
पूतिमांससहितैश्च सेचिता धूपिता च सततं हरिद्रया ॥ २१ ॥

सड़े हुए मांस से युत धान, उड़द, तिल इनका चूर्ण, सत्तू इन सब से सींच कर हल्दी का धूप देने से अति कठोर इमली का बीज भी शीघ्र अङ्कुरित हो जाता है ॥ २१ ॥

कपित्थ के बीज को लगाने का प्रकार—

कपित्थवल्लीकरणाय मूलान्यास्फोतधात्रीधववासिकानाम् ।
पलाशिनी वेतससूर्यवल्ली श्यामातिमुक्तैः सहिताष्टमूली ॥ २२ ॥
क्षीरे भृते चाप्यनया सुशीते तालाशतं स्थाप्य कपित्थबीजम् ।
दिने दिने शोषितमर्कपादैर्मासं विधिस्त्वेष ततोऽधिरोप्यम् ॥ २२ ॥
हस्तायतं तद्द्विगुणं गम्भीरं खात्वावटं प्रोक्तजलावपूर्णम् ।
शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषी तत् प्रलेपयेद्भस्मसमन्वितेन ॥ २४ ॥
चूर्णीकृतैर्माषतिलैर्यवैश्च प्रपूरयेन्मृत्तिकयान्तरस्थैः ।
मत्स्यामिषाम्भःसहितं च हन्याद्यावद्घनत्वं समुपागतं तत् ॥ २५ ॥
उप्तं च बीजं चतुरङ्गुलाधो मत्स्याम्भसा मांसजलैश्च सिक्तम् ।
वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला विस्मापनी मण्डपमावृणोति ॥ २६ ॥

कपित्थ (कैथ) के बीज की शीघ्र उत्पत्ति के लिये विष्णुकान्ता, आँवला, धव, वसा इनकी जड़, पत्तों से युत बेंत और सूर्यमुखी तथा निसोत, अतिमुरकक (तेंदुआ= तिनिस) इनकी जड़ इन आठ मूलों को दूध में डाल कर औटावे बाद उस दूध को ठण्डा कर उसमें कैथ के बीज को डाल देवे, दोनों हाथों से सौ बार ताली बजाने में जितना काल लगे उतनी देर तक उस बीज को दूध में रहने दे, बाद उसको दूध में से निकाल कर धूप में सुखा ले, इस तरह प्रत्यह एक मास तक करता रहे पश्चात् उस बीज को बोवे। एक हाथ व्यास वाला वृत्त के आकार का दो हाथ गहरा एक गढ़ा खोद कर उसको पूर्व कथित रीति से दूध मिश्रित जल से पूर्ण करे, जब वह सूख जाय तब उसको अग्नि से जला दे, बाद शहद और घृत से युत भस्म से गढ़े को लीपे। फिर मृत्तिका युत उड़द, तिल और जौ के चूर्ण से गढ़े को भरकर मछली और मांस युत जल से उसको ऊपर से तब तक ठोके जब तक वह कठिन न हो जाय, इसके पश्चात् उस पर चार अङ्गुल नीचे पूर्व सिद्ध किया हुआ कैथ का बीज रोप कर मछली और मांस के जल से सींचे तो शीघ्र सुन्दर पत्तों से युत, मण्डप को ढकने वाली वल्ली उत्पन्न हो जाती है ॥२२-२६॥

अन्य वृक्षों को लगाने का प्रकार—

शतशोऽङ्कोलसम्भूतफलकल्केन भावितम् ।
एतत्तैलेन वा बीजं श्लेष्मातकफलेन वा ॥ २७ ॥

वापितं करकोन्मिश्रमृदि तत्क्षणजन्मकम् ।
फलभारान्विता शाखा भवतीति किमद्भुतम् ॥ २८ ॥

अङ्कोल वृक्ष के फल के कल्क या तेल से अथवा श्लेष्मातक (लसोड़े) के फल, कल्क या तेल से सौ बार भावना देकर ओलों से भीगी हुई मिट्टी में जिस बीज को बोवे वह उसी क्षण में पैदा हो जाता है, तथा उसकी शाखा फलों के भार से झुक जाती है इसमें आश्चर्य नहीं अर्थात् निश्चित ही होता है ॥ २७–२८ ॥

श्लेष्मातक वृक्ष को रोपने की विधि—

श्लेष्मातकस्य बीजानि निष्कुलीकृत्य भावयेत् प्राज्ञः ।
अङ्कोलविज्जलाद्भिश्छायायां सप्तकृत्वैवम् ॥ २९ ॥
माहिषगोमयघृष्टान्यस्य करीषे च तानि निक्षिप्य ।
करकाजलमृद्योगे न्युप्तान्यह्ना फलकराणि ॥ ३० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य छिलका उतारे हुए लसोड़े के बीज को अङ्कोल फल के भीतर के जल से भावना देकर छाया में सुखाता जाय, इस तरह सात बार करे । फिर उसको भैंस के गोबर से घिस कर भैंस के सूखे गोबर के ढेर पर रख दे, बाद ओलों से भींगी हुई मिट्टी में उन बीजों को बोवे तो एक दिन में फल युत पौधा लग जाता है ॥ २९–३० ॥

वृक्ष रोपने के नक्षत्र—

ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुभं श्रवणस्तथाश्विनी हस्तः ।
उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥ ३१ ॥

तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी, हस्त ये नक्षत्र दिव्य दृष्टि वाले मुनियों ने वृक्ष रोपने में उत्तम कहे हैं ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां वृक्षायुर्वेदाध्यायः पञ्चपञ्चाशत्तमः ॥ ५५ ॥

अथ प्रासादलक्षणाध्यायः

उसमें पहले प्रयोजन प्रदर्शन—

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान् विनिवेश्य च ।
देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्माभिवृद्धये ॥ १ ॥

बहुत जल वाले जलाशय बना कर और बगीचा लगा कर यश और धर्म की वृद्धि के लिये देवता का मन्दिर बनावे ॥ १ ॥

प्रशंसात्मक पद्य—

इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता ।
देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ॥ २ ॥

इष्ट (यज्ञ आदि) करने से, पूर्त (वापी, कूप, तडाग आदि) बनाने से जो लोक

मिलते हैं उन दोनों को चाहने वाला मनुष्य देवालय बनवावे क्योंकि इसमें दोनों लोक दिखाई देते हैं। कहा भी है—

इष्टं यज्ञेषु यद्दानं ततोऽन्यत्पूर्तमिष्यते। इष्टाभिः पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैर्यजेद्द्विजः॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्यो यजेत स इष्टवान्। वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च॥
अन्नप्रदानमाचार्यैः पूर्तं इत्यभिधीयते।

यहाँ पर काश्यपः—

इष्टापूर्तादिभिर्यज्ञैर्यावत्कुर्वन्ति मानवाः। अग्निष्टोमादिपशुभिरिष्टं यज्ञं प्रकीर्त्तितम्॥
वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च। स्वर्गस्थितिं सदा कुर्यात्तद्दानं पूर्तसंज्ञितम्॥
देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र लभ्यते॥ २॥

किस तरह के स्थान में देवता निवास करते हैं—

सलिलोद्यानयुक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च।
स्थानेष्वेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः॥ ३॥

कृत्रिम या अकृत्रिम जल और उपवन के समीप में देवता जाते हैं॥ ३॥

देवताओं के निवास स्थान—

सरःसु नलिनीछत्रनिरस्तरविरश्मिषु।
हंसांसाक्षिप्तकह्लारवीथीविमलवारिषु॥ ४॥
हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु।
पर्यन्तनिचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु॥ ५॥

जिस सरोवर में कमल रूप छत्र से सूर्य किरण दूर किये गये हों, हंसों के कन्धों से प्रेरित श्वेत कमलों से बने हुये मार्गों में निर्मल जल हो, जहाँ हंस, कारण्डव, क्रौंच और चक्रवाक शब्द कर रहे हों और जहाँ पर तट में स्थित निचुल वृक्षों की छाया में जीव विश्राम करते हों ऐसे सरोवर में सदा देवता निवास तथा विहार करते हैं॥ ४-५॥

देवताओं के विहार का स्थान—

क्रौञ्चकाञ्चीकलापाश्च कलहंसकलस्वराः।
नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरीकृतमेखलाः॥ ६॥
फुल्लतीरद्रुमोत्तंसाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः।
पुलिनाभ्युन्नतोरस्या हंसहासाश्च निम्नगाः॥ ७॥

जिसका क्रौञ्च पक्षी रूप कांची कलाप, कलहंसों का मधुर शब्द रूप शब्द, तट में स्थित फूले हुये वृक्ष रूप कर्णपूर, जल और थल का संयोग रूप श्रोणी मण्डल, पुलिन रूप उठे हुये स्तन और हंस रूप हास्य है ऐसी नीचे को बहने वाली नदियों के समीप में देवता निवास करते हैं॥ ६-७॥

देवताओं के विहार का स्थान—

वनोपान्तनदीशैलनिर्झरोपान्तभूमिषु।
रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च॥ ८॥

वन, नदी, पर्वत और झरनों के समीप में तथा उपवनों से युत नगरों में देवता विहार करते हैं। यहाँ पर काश्यप—

हरितोज्ज्वलतोयाढ्या वाप्य: पक्षिभिरावृता । वनोपवनमालिन्यो नित्यसुपुष्पितद्रुमा: ॥
हंसकारण्डवाकीर्णा कोकिलालापनादिता । षट्पदागीतमधुरा नृत्यद्भि: शिखिभिर्युता: ॥
तत्र देवा रतिं यान्ति सान्निध्यान्नित्यसंस्थिता: ॥ ८ ॥

देव मन्दिर के लिये भूमि—

भूमयो ब्राह्मणादीनां या: प्रोक्ता वास्तु कर्मणि ।
ता एव तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥ ९ ॥

पहले ब्राह्मण आदि वर्णों को गृह बनाने के लिये जिस प्रकार की भूमि शुभ कही गई है, देवालय बनाने के लिये भी उन वर्णों के लिये वैसी ही भूमि श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

देवालय में वास्तु पुरुष का लक्षण और द्वार का विभाग—

चतु:षष्टिपदं कार्यं देवतायतनं सदा ।
द्वारं च मध्यमं तस्मिन् समदिक्स्थं प्रशस्यते ॥ १० ॥

देवालय में सदा पूर्वोक्त चौंसठ पद का वास्तु बनाना चाहिये। तथा मध्यम द्वार सब दिशाओं में स्थित हो तो श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

देवालयों का विधान—

यो विस्तारो भवेद्यस्य द्विगुणा तत्समुन्नति: ।
उच्छ्रायाद्यस्तृतीयांशस्तेन तुल्या कटि: स्मृता ॥ ११ ॥
विस्तारार्धं भवेद्गर्भो भित्तयोऽन्या: समन्तत: ।
गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥ १२ ॥
उच्छ्रायात् पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बर: ।
विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयो: स्मृतम् ॥ १३ ॥
त्रिपञ्चसप्तनवभि: शाखाभिस्तत्प्रशस्यते ।
अध:शाखाचतुर्भागे प्रतीहारौ निवेशयेत् ॥ १४ ॥
शेषं मङ्गल्यविहगै: श्रीवृक्षै: स्वस्तिकैर्घटै: ।
मिथुनै: पत्रवल्लीभि: प्रमथैश्चोपशोभयेत् ॥ १५ ॥
द्वारमानाष्टभागोना प्रतिमा स्यात् सपिण्डिका ।
द्वौ भागौ प्रतिमा तत्र तृतीयांशश्च पिण्डिका ॥ १६ ॥

देवालय का जितना विस्तार हो उससे दूनी ऊँचाई और ऊँचाई की तिहाई कटि होती है, सीढ़ी के ऊपर जहाँ से देवालय का प्रारम्भ होता है उसको कटि कहते हैं। विस्तार के आधा गर्भ शेष सब दिशाओं में भीत बनती है, गर्भ के चौथाई के समान द्वार का विस्तार और द्विगुणित विस्तार तुल्य द्वार की ऊँचाई होती है। द्वार की ऊँचाई तुल्य शाखा (चौखट का बाजू) और उदुम्बर (चौखट के ऊपर की लकड़ी) की चौड़ाई

होती है, तथा शाखा की चौथाई की चौथाई के तुल्य शाखाओं की मोटाई होती है। शाखाओं की चौड़ाई के बीच में तीन, पाँच, सात या नव शाखायें होने से द्वार श्रेष्ठ होता है। दोनों शाखाओं के नीचे की चौथाई में दो प्रतिहार (नन्दी, दण्ड आदि) की मूर्ति खुदवानी चाहिये। शाखाओं के तीन चौथाई भागों को हंस आदि शुभ पक्षी, बेल, स्वस्तिक (चिह्न विशेष), कलश, स्त्री-पुरुष का जोड़ा, पत्ते और लताओं से शोभित करे। द्वार की ऊँचाई में उस का अष्टमांश घटा कर जो बचे उतनी पिण्डिका (देवता स्थापन की पीठिका) को लेकर देव प्रतिमा की ऊँचाई होती है। पीठिका सहित प्रतिमा के ऊँचाई के तीन भाग करे, दो भाग तुल्य ऊँची प्रतिमा और एक भाग के समान पीठिका बनानी चाहिये। यह प्रमाण सब प्रासादों में जाने। यहाँ पर काश्यप—

पुरानुसारप्रसादाः कर्त्तव्याः शुभलक्षणाः। नात्युच्चा नातिनीचाश्च समदिक्सूत्रसूत्रिताः॥
चतुःषष्टि कोष्ठकानां मध्ये च तत्र विन्यसेत्। द्वारं च मध्यमं श्रेष्ठं समदिक्स्थं प्रशस्यते॥
विस्तारद्विगुणोत्सेधः कटिरंशे तृतीयके। विस्तारार्धेन तद्गर्भो भित्तयोऽन्यास्तथान्तरे॥
गर्भाच्चतुर्थभागे च द्वारं तद्द्विगुणोच्छ्रितम्। द्वारोच्छ्रायचतुर्भागो विस्तारः शाखयोः स्मृतः॥
उदुम्बरस्तथैवोक्तः शाखामानेन नित्यशः। घनत्वं पादमानेन शाखयोश्च प्रकीर्त्तितम्॥
एकशाखास्त्रिशाखा वा पञ्च सप्त नवापि वा। द्वारिकास्तत्र शस्यन्ते द्वारिभिर्या भ्रुकुटिका॥
शाखा चतुर्थभागेऽत्र प्रतीहारौ तु कारयेत्। प्रमथैर्विहगैश्चैव जीवजीविजलोद्भवैः॥
श्रीवृक्षस्वस्तिकैः पद्मैर्हंसैश्चैव मनोरमैः। पत्रान्तरे लताशुभ्रैर्मैथुनैर्नायकादिभिः॥
देवं सपिण्डिकं स्थाप्यं द्वाराष्टं शोभितं शुभम्। द्वौ भागौ प्रतिमा कार्या तृतीयश्चैव पिण्डिका॥
स्ववगद्रोणिकाभागो वामे पार्श्वे विधीयते। निर्माल्य च निवेद्यं च बलिपूजापमार्जनम्॥

प्रासादों के नाम—

मेरुमन्दरकैलासविमानच्छन्दनन्दनाः।
समुद्रपद्मगरुडनन्दिवर्धनकुञ्जराः॥ १७॥
गुहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः।
सिंहो वृत्तश्चतुष्कोणः षोडशाष्टाश्रयस्तथा॥ १८॥
इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादाः सञ्ज्ञया मया।
यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदाम्यतः॥ १९॥

मेरु, मंदर, कैलास, विमानच्छंद, नन्दन, समुद्र, पद्म, गरुड, नन्दिवर्धन, कुंजर, गुहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोडशाश्रि और अष्टाश्रि ये बीस प्रासादों के नाम मैंने (वराहमिहिर ने) कहे हैं। अब क्रम से इन के लक्षण कहते हैं॥

मेरु नामक प्रासाद का लक्षण—

तत्रषडश्रिर्मेरुर्द्वादशभौमो विचित्रकुहरश्च।
द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णः॥ २०॥

मेरु नामक प्रासाद में छ कोण, बारह भूमि, अनेक प्रकार के खिड़कियाँ, चारों दिशाओं में चार द्वार और बत्तीस हाथ तुल्य विस्तार होता है॥ यहाँ पर काश्यप—

द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णं चतुर्द्वारं षडश्रिकम्। भूमिकास्तत्र कर्तव्या विचित्रकुहरान्विताः॥
द्वादशोपर्युपरिगा वर्तुलाण्डैः समायुताः। प्रासादो मेरुसञ्ज्ञः स्यान्निर्दिष्टो विश्वकर्मणा॥

मंदर और कैलाश नामक प्रासाद का लक्षण—

त्रिंशद्धस्तायामो दशभौमो मन्दरः शिखरयुक्तः।
कैलासोऽपि शिखरवानष्टाविंशोऽष्टभौमश्च॥ २१॥

मन्दर नामक प्रासाद छै कोण वाला, तीस हाथ तुल्य विस्तार वाला, दश-भूमि वाला और शिखरों से युक्त होता है। कैलाश नामक प्रासाद शिखरों से युक्त, अट्ठाईस हाथ विस्तार वाला, आठ भूमि वाला और छै कोण वाला होता है। यहाँ पर काश्यप—

त्रिंशद्धस्तास्तु विस्तीर्णं प्रासादोऽयं द्वितीयक। अष्टभौमश्च कैलासोऽहस्ताष्टाविंशति' स्मृत'॥
षडश्रिः शिखरोपेत· प्रासादस्तु तृतीयक॥

विमान और नन्दन नामक प्रासाद का लक्षण—

जालगवाक्षकयुक्तो विमानसञ्ज्ञस्त्रिसप्तकायामः।
नन्दन इति षड्भौमो द्वात्रिंशः षोडशाण्डयुतः॥ २२॥

विमान नामक प्रासाद जालीदार खिड़कियों से युक्त, इक्कीस हाथ विस्तार वाला, आठ भूमि वाला और छै कोण वाला होता है। नन्दन नामक प्रासाद छै कोण वा ा, छैः भूमि वाला, बत्तीस हाथ तुल्य विस्तार वाला और सोलह अण्डों (शिखरों) से युक्त होता है। यहाँ पर काश्यप—

गवाक्षजालसंयुक्तो विमानश्चैकविंशति। षडश्रिरष्टभौमश्च प्रासाद' स्याच्चतुर्थकः॥
नन्दनस्तु षडश्रि स्याद्द्वाविंशद्धस्तविस्तृत। षड्भौम षोडशाण्डस्तु प्रासाद· पञ्चमो मत·॥

समुद्र और पद्म नामक प्रासाद का लक्षण—

वृत्तः समुद्रनामा पद्मः पद्माकृतिः शया अष्टौ।
शृङ्गेणैकेन भवेदेकैव च भूमिका तस्य॥ २३॥

समुद्र नामक प्रासाद गोल और पद्म नामक प्रासाद कमल की आकृति का होता है। तथा दोनों एक शृङ्ग तथा एक ही भूमि वाले होते हैं। यहाँ पर काश्यप—

वर्तुलस्तु समुद्र स्यात्पद्म पद्माकृतिस्तथा। हस्ताष्टकं तु विस्तीर्णौ भूमिका शृङ्गभूषिता॥

गरुड और नन्दिवर्धन नामक प्रासाद का लक्षण—

गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दीति च षट्चतुष्कविस्तीर्णः।
कार्यस्तु सप्तभौमो विभूषितोऽण्डैस्तु विंशत्या॥ २४॥

गरुड नामक प्रासाद गरुड की आकृति का होता है। नन्दिवर्धन नामक प्रासाद भी गरुड की आकृति का होता है किन्तु पक्ष तथा पूँछ से रहित होता है, तथा वे दोनों प्रासाद चौबीस हाथ विस्तार वाले, सात भूमि वाले और चौबीस शिखरों से विभूषित होते हैं।

यहाँ पर काश्यप—

गरुडो गरुडाकार पक्षपुच्छविभूषित। नन्दी तथाकृतिर्ज्ञेय पक्षादिरहित' पुन'॥
कराणां षट्चतुष्कास्तु विस्तीर्णौ सप्तभूमिकौ। दशभिर्द्विगुणैरण्डैर्भूषितौ कारयेत्तु तौ॥२४॥

कुञ्जर और गुहराज प्रासाद का लक्षण—

कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोडशहस्तः समन्ततो मूलात्।
गुहराजः षोडशकस्त्रिचन्द्रशालश्च भवेद्वलभी॥ २५॥

कुञ्जर प्रासाद हाथी की पीठ के समान आकृति वाला और मूल से चारों तरफ सोलह हाथ विस्तार वाला होता है। गुहराज प्रासाद गुह की आकृति वाला और सोलह हाथ विस्तार वाला होता है। तथा इन दोनों प्रासादों की वल भी तीन चन्द्रशालाओं से युत होती है। यहाँ पर कारयप—

कुञ्जरो गजपृष्ठाभो हस्ता षोडश विस्तृतः । गुहराजो गुहाकारो विष्कम्भात् षोडश स्मृतः ॥
त्रिचन्द्रशाला वलभी तयोः कार्या सुलक्षणा । दशमैकादशावेतौ प्रासादौ द्वौ प्रकीर्त्तितौ॥२५॥

वृष, हंस और घट नामक प्रासादों का लक्षण—

वृष एकभूमिशृङ्गो द्वादशहस्तः समन्ततो वृत्तः ।
हंसो हंसाकारो घटोऽष्टहस्तः कलशरूपः ॥ २६ ॥

वृष नामक प्रासाद एक भूमि वाला, एक शृङ्ग वाला, बारह हाथ विस्तार वाला और चारों तरफ से वृत्ताकार होता है। हंस प्रासाद हंस पक्षी की आकृति वाला, बारह हाथ विस्तार वाला, एक भूमि और एक शृङ्ग वाला होता है। घट नामक प्रासाद कलश की आकृति वाला, आठ हाथ विस्तार वाला, एक शृङ्ग और एक भूमि वाला होता है।

यहाँ पर कारयप—

वृषो द्वादशहस्तस्तु समवृत्तैकभूमिकः । शृङ्गेणैकेन संयुक्तः प्रासादः परिकीर्त्तितः ॥
हंसो हंसाकृतिर्ज्ञेयो हस्तौ द्वादशविस्तृतः । एकभूमिकयायुक्तः पक्षपुच्छाद्यलङ्कृतः ॥
घटः कलशरूपस्तु विस्तीर्णोऽष्टकरः स्मृतः ॥ २६ ॥

सर्वतोभद्र नामक प्रासाद का लक्षण—

द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्बहुशिखरो भवति सर्वतोभद्रः ।
बहुरुचिरचन्द्रशालः षड्विंशः पञ्चभौमश्च ॥ २७ ॥

सर्वतोभद्र नामक प्रासाद चारों दिशाओं में चार द्वारों से युत, अनेक शिखरों से शोभित, अनेक संख्यक सुन्दर चन्द्रशालाओं से शोभित, छब्बीस हाथ विस्तार वाला, चतुष्कोण और पांच भूमियों से युत होता है। यहाँ पर कारयप—

शिखरैर्बहुभिर्युक्तश्चतुर्द्वारविभूषितः । रुचिरैश्चन्द्रशालैश्च बहुभिः परिवारितः ॥
चतुरस्रः पञ्चभौमः षड्विंशद्धस्तविस्तृतः । सर्वतोभद्र इत्युक्तः प्रासादो दशपञ्चमः ॥२७॥

सिंह आदि पाँच प्रासादों का लक्षण—

सिंहः सिंहाक्रान्तो द्वादशकोणोऽष्टहस्तविस्तीर्णः ।
चत्वारोऽञ्जनरूपाः पञ्चाण्डयुतस्तु चतुरस्रः ॥ २८ ॥

सिंह नामक प्रासाद सिंह की प्रतिमाओं से शोभित, द्वादशास्र और आठ हाथ विस्तार वाला होता है। शेष चार प्रासाद (वृत्त, चतुष्कोण, षोडशाश्रि और अष्टाश्रि) अपने नाम के समान आकार वाले और काले होते हैं अर्थात् इन के अन्दर अन्धकार रहता है। यहाँ पर कारयप—

सिंह सिंहसमाक्रान्तः कोणैर्द्वादशभिर्युतः । विष्कम्भादष्टहस्तः स्यादेका तस्य च भूमिका ॥
वृत्तो वृत्ताकृतिः कार्या सहशातुल्यास्तथापरे । सान्धकारास्तु सर्वे ते भूमिकैका समावृताः ॥
एकाण्डरूपिताः सर्वे पञ्चभिश्चतुरस्रकः ॥ २८ ॥

मय और विश्वकर्मा के मत से भूमि का प्रमाण—

भूमिकाङ्गुलमानेन मयस्याष्टोत्तरं शतम् ।

२३, ३४ बृ० सं०

सार्द्धं हस्तत्रयं चैव कथितं विश्वकर्मणा ॥ २९ ॥

एक भूमि का प्रमाण मय के मत से एक सौ आठ अङ्गुल और विश्वकर्माने साढ़े तीन हाथ कहा है। यहाँ पर मय—

प्रासादभूमिकामान शतमष्टोत्तर स्मृतम् ।

तथा च विश्वकर्मा —

चतुर्भिरधिकाशीतिरङ्गुलानां तु भूमिका ॥ २९ ॥

पूर्वोक्त दोनों मतों में एक वाक्यता—

प्राहुः स्थपतयश्चात्र मतमेकं विपश्चितः ।

कपोतपालिसंयुक्ता न्यूना गच्छन्ति तुल्यताम् ॥ ३० ॥

बुद्धिमान् कारीगर मय, विश्वकर्मा इन दोनों के मत को एक ही कहते हैं। उनका कहना है कि विश्वकर्माने भूमिका की प्रमाण कपोतपालिका को छोड़ कर कहा है अत' उसमें कपोतपालिका के प्रमाण चौबीस अङ्गुल जोड़ देने से मय के प्रमाण तुल्य विश्वकर्मा का भूमिका प्रमाण हो जाता है। कहा भी है—कपोतपालिं मुक्ते विटङ्क च चतुश्रुताः।

उसी प्रकार तन्त्रान्तर में—

कपोतपालिरहितं मानं चतुरशीतिकम् । भूमिकानां सह तया शतमष्टोत्तर स्मृतम् ॥

अङ्गुलानामत साम्यं भूमिकासु प्रकीर्तितम् ॥ ३० ॥

उपसंहारार्थं पद्य—

प्रासादलक्षणमिदं कथितं समासा-

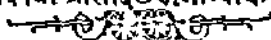
द्गर्गेण यद्विरचितं तदिहास्ति सर्वम् ।

मन्वादिभिर्विरचितानि पृथूनि यानि

तत्संस्पृशन् प्रति मयात्र कृतोऽधिकारः ॥ ३१ ॥

मैंने सक्षेप से यह प्रासाद लक्षण कहा है, किन्तु गर्ग मुनि ने इस प्रकरण में जो कुछ कहा है वे सब विषय इसमें हैं। तथा मनु, आदि (वसिष्ठ, मय और नग्नजित्) आचार्योंने जो विस्तार पूर्वक कहे हैं उनकी स्मृति के लिये मैंने यह अधिकार बनाया है॥३१॥

इति 'विमला' हिन्दी टीकायां प्रासादलक्षणाध्यायः षट्पञ्चाशत्तमः ॥ ५६ ॥



अथ वज्रलेपलक्षणाध्यायः

वज्रलेप बनाने का प्रकार—

आमं तिन्दुकमामं कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल्याः ।

बीजानि शल्लकीनां धन्वनवल्को वचा चेति ॥ १ ॥

एतैः सलिलद्रोणः क्वाथयितव्योऽष्टभागशेषश्च ।

अवतार्योऽस्य च कल्को द्रव्यैरेतैः समनुयोज्यः ॥ २ ॥

श्रीवासकरसगुग्गुलुभल्लातककुन्दुरूकसर्जरसैः ।

अतसीबिल्वैश्च युतः कल्कोऽयं वज्रलेपाख्यः ॥ ३ ॥

तेन्दु के कच्चे फल, कैथ के कच्चे फल, सेमल के फूल, शल्लकी (सालई) वृक्ष के बीज, धन्वन वृक्ष की छाल, वच इन सब को एक द्रोण तुल्य जल में देकर काढा बनावे। जब अष्टमांश रह जाय तब उसको उतार लेवे। बाद उसमें श्रीवासक (सरल) वृक्ष का गोंद, बोल, गूगल, भिलावा, कुन्दुरूक (देवदारु वृक्ष का गोंद), सर्ज (संखुआ) का गोंद, अलसी, बेल की गिरी इन सबको पीस कर डाले तो यह वज्रलेप नामक काढा बन जायगा ॥ १-३ ॥

वज्रलेप का गुण—

प्रासादहर्म्यवलभीलिङ्गप्रतिमासु कुड्यकूपेषु।
सन्तप्तो दातव्यो वर्षसहस्रायुतस्थायी ॥ ४ ॥

गरम किया हुआ वज्रलेप को देवप्रासाद, हवेली, वलभी, शिवलिङ्ग, देव प्रतिमा, भीत और कूप में लगावे तो यह एक करोड वर्ष तक नहीं छूटता है ॥ ४ ॥

वज्रलेप बनाने का दूसरा प्रकार—

लाक्षाकुन्दुरुगुग्गुलुगृहधूमकपित्थबिल्वमध्यानि।
नागफलनिम्बतिन्दुकमदनफलमधूकमञ्जिष्ठाः ॥ ५ ॥
सर्जरसरसामलकानि चेति कल्कः कृतो द्वितीयोऽयम्।
वज्राख्यः प्रथमगुणैरयमपि तेष्वेवकार्येषु ॥ ६ ॥

पूर्व सिद्ध किये हुये क्वाथ में लाख, कुन्दरूक (देवदारु वृक्ष का गोंद), गूगल, घर के धुँए का जाला, कैथ का फल, बेल की गिरी, नागबला का फल, महुए का फल, मजीठ, राल, बोल, आँवला इन सब को पीस कर डाले तो प्रथम वज्रलेप के गुणों से युत पूर्वोक्त कामों के लिये ही दूसरा वज्रलेप तैयार हो जायगा ॥ ५-६ ॥

गोमहिषाजविषाणैः खररोम्णा महिषचर्मगव्यैश्च।
निम्बकपित्थरसैः सह वज्रतलो नाम कल्कोऽन्यः ॥ ७ ॥

पूर्व सिद्ध किये हुये काढ़े में गौ, भैंस, बकरा इनका सींग, गदहे का बाल, भैंस का चमडा, गव्य (गोबर), नीम का फल, कैथ का फल, बोल इन सबको पीस कर मिलावे। यह कथित गुणों से युत उक्त काम के लिये तीसरा लेप सिद्ध हो जायगा, इस का नाम वज्रतल है ॥ ७ ॥

अष्टौ सीसकभागाः कांसस्य द्वौ तु रीतिकाभागः।
मयकथितो योगोऽयं विज्ञेयो वज्रसंघातः ॥ ८ ॥

आठ भाग सीसा, दो भाग कासा, एक भाग पीतल इन सबको एक जगह गलाने से मय कथित वज्रसङ्घात नामक चौथा लेप सिद्ध हो जायगा। यहाँ पर मय—

सङ्गृह्याष्टौ सीसभागान् कांसस्य द्वौ तथांशकम्।
रीतिकायास्तु सन्तप्तो वज्राख्यः परिकीर्तितः ॥ ८ ॥

इति 'विमला' हिन्दी टीकायां वज्रलेपाध्यायः सप्तपञ्चाशत्तमः ॥ ५७ ॥

अथ प्रतिमालक्षणाध्यायः

परमाणु का प्रमाण—

जालान्तरगे भानौ यदणुतरं दर्शनं रजो याति ।
तद्विन्द्यात् परमाणुं प्रथमं तद्धि प्रमाणानाम् ॥ १ ॥

जालान्तरगत सूर्य किरण में जो धूली दिखाई देती है उसको परमाणु जाने, यह सब प्रमाणों में पहला प्रमाण है ॥ १ ॥

परमाणुरजो वालाग्रलिक्षयूकं यवोऽङ्गुलं चेति ।
अष्टगुणानि यथोत्तरमङ्गुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥

आठ परमाणु का रज, आठ रज का वालाग्र, आठ वालाग्र की लिक्षा, आठ लिक्षा का यूक, आठ यूक का यव और आठ यव का एक अङ्गुल होता है, तथा एक अङ्गुल की संख्या होती है ॥ २ ॥

प्रतिमा निर्माण प्रकार—

देवागारद्वारस्याष्टांशोनस्य यस्तृतीयोंऽशः ।
तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्द्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥

देवालय के द्वार की अष्टमांशोन ऊँचाई की तिहाई, तुल्य पिण्डिका (पीठिका) और द्विगुणित पीठिका तुल्य प्रतिमा होती है ॥ ३ ॥

स्वैरङ्गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् ।
नग्नजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण द्राविडं कथितम् ॥ ४ ॥

प्रतिमा की ऊंचाई को बारह भाग करके फिर प्रत्येक भाग के नव नव भाग करे, इस तरह एक एक अङ्गुल का भाग बन जायगा, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अङ्गुल प्रमाण से १०८ अङ्गुल की होती है। अपने अंगुल प्रमाण से प्रतिमा का मुख बारह अङ्गुल चौड़ा और चौदह अङ्गुल लम्बा बनाना चाहिये। यह द्रविड देश का मान है। यहाँ पर नग्नजित्— विस्तीर्णं द्वादश मुखं दैर्घ्येण च चतुर्दश । अङ्गुलानि तथा कार्यं तन्मानं द्राविडं स्मृतम् ॥४॥

नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुराङ्गुलास्तथा कर्णौ ।
द्वे अङ्गुले च हनुनी चिबुकं च द्व्यङ्गुलं विततम् ॥ ५ ॥

प्रतिमा के नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन और कान चार चार अङ्गुल लम्बे तथा हनु और चिबुक (ठोडी) दो दो अङ्गुल विस्तार होना चाहिये ॥ ५ ॥

अष्टाङ्गुलं ललाटं विस्ताराद्‌द्व्यङ्गुलात् परे शंखौ ।
चतुरङ्गुलौ तु शंखौ कर्णौ तु द्व्यङ्गुलौ पृथुलौ ॥ ६ ॥

माथे की चौड़ाई आठ अङ्गुल, दोनों तरफ कनपटी की चौड़ाई दो दो अङ्गुल लम्बाई चार चार अङ्गुल तथा दोनो कानों की चौड़ाई दो दो अङ्गुल बनावे ॥ ६ ॥

कर्णोपान्त्यः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण ।
कर्णस्रोतः सुकुमारकं च नेत्रप्रबन्धसमम् ॥ ७ ॥

नेत्र के प्रान्त भाग से भ्रू के समानान्तर सूत्र में साढे चार अङ्गुल पर कान का अग्रभाग बनावे, तथा कान के छेद और सुकुमारक (कान के छेद के समीप का उन्नत भाग) को नेत्र प्रबन्ध (प्रदूषिका) के समान बनावे ॥ ७ ॥

वसिष्ठ मुनि के मतसे प्रतिमा निर्माण प्रकार—

चतुरङ्गुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् ।
अधरोऽङ्गुलप्रमाणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥

वसिष्ठ मुनि कहते हैं कि आँख और कान का अन्तर चार अङ्गुल, नीचे का ओंठ एक अङ्गुल और ऊपर का आधा अङ्गुल बनाना चाहिये ॥ ८ ॥

अर्धाङ्गुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरङ्गुलायतं कार्यम् ।
विपुलं तु सार्धमङ्गुलमव्यात्तं त्र्यङ्गुलं व्यात्तम् ॥ ९ ॥

आधा अङ्गुल विस्तार गोच्छा और चार अङ्गुल दैर्घ्य मुख बनावे। तथा डेढ अंगुल विस्तार अव्यात्त (अविस्तृत) मुख और तीन अङ्गुल विस्तार व्यात्त (नृसिंह आदि देवताओं का विस्तृत) मुख बनावे ॥ ९ ॥

द्व्यङ्गुलतुल्यौ नासापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया ।
स्याद्द्व्यङ्गुलमुच्छ्रायश्चतुरङ्गुलमन्तरं चाक्ष्णोः ॥ १० ॥

नासिका के दोनों पुट दो दो अङ्गुल, पुटों के अग्र भाग से नासिका चार अङ्गुल, नासिका की ऊँचाई दो अङ्गुल और दोनों नेत्रों का अन्तर चार अङ्गुल जानना चाहिये ॥१०॥

द्व्यङ्गुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा ।
दृक्तारा पञ्चांशो नेत्रविकाशोऽङ्गुलं भवति ॥ ११ ॥

नेत्र का कोश दो-दो अङ्गुल, नेत्र के तृतीयांश समतारा, नेत्र के पञ्चमांश तुल्य दृक्तारा (नेत्र और तारा के मध्यवर्ती भाग), और नेत्र का विकाश एक अङ्गुल होता है॥११॥

पर्यन्तात् पर्यन्तं दश भ्रुवोऽर्द्धाङ्गुलं भ्रुवोर्लेखा ।
भ्रूमध्यं द्व्यङ्गुलकं भ्रूर्दैर्घ्येणाङ्गुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥

एक भौं के अन्तभाग से दूसरे भौं के अन्तभाग तक दश अङ्गुल, भौं की चौडाई आधा अङ्गुल, भौं के मध्यभाग दो अङ्गुल और प्रत्येक भौं की लम्बाई चार अङ्गुल बनानी चाहिये ॥ १२ ॥

कार्या तु केशरेखा भ्रूबन्धसमाङ्गुलार्धविस्तीर्णा ।
नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसेदङ्गुलप्रमितम् ॥ १३ ॥

बत्तीस अङ्गुल लम्बा और चौदह अङ्गुल चौडा शिर बनाना चाहिये। चित्र में केवल बारह अङ्गुल शिर दिखाई देता है। शेष बीस अङ्गुल पिछला भाग नहीं दिखाई देता ॥१३॥

द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशायामतोऽङ्गुलानि शिरः ।
द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥

माथे पर भ्रूबन्ध के समान आधा अङ्गुल चौडी केशरेखा और नेत्र के अन्त में एक अङ्गुल तुल्य करवीरक (दूषिका) बनावे ॥ १४ ॥

नग्नजित् आचार्य के मत से प्रतिमा निर्माण प्रकार—

आस्यं सकेशनिचयं षोडश दैर्घ्येण नग्नजित्प्रोक्तम् ।
ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका ॥ १५ ॥

नग्नजित् आचार्य ने केशरेखा सहित मुख का विस्तार सोलह अङ्गुल, ग्रीवा का विस्तार दश अङ्गुल और लम्बाई इक्कीस अङ्गुल कही है ॥ १५ ॥

कण्ठाद्द्वादश हृदयं हृदयान्नाभी च तत्प्रमाणेन ।
नाभीमध्यान्मेढ्रान्तरं च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥

कण्ठ के अधोभाग से हृदय तक, हृदय से नाभि तक और नाभी के मध्य से लिङ्ग के मध्य तक बारह अङ्गुल का अन्तर रखना चाहिये ॥ १६ ॥

ऊरू चाङ्गुलमानैश्चतुर्युता विंशतिस्तथा जङ्घे ।
जानुकपिच्छे चतुरङ्गुले च पादौ च तत्तुल्यौ ॥ १७ ॥

ऊरु (घुटनों का उपरी प्रदेश) और जङ्घा (जाँघ) चौबीस चौबीस अङ्गुल, जानु (घुटने) और कपिच्छ चार चार अङ्गुल तथा पाँव की गाँठी से नीचे तक भी चार-चार अङ्गुल के बनावे ॥ १७ ॥

द्वादशदीर्घौ षट् पृथुतया च पादौ त्रिकायताङ्गुष्ठौ ।
पञ्चाङ्गुलपरिणाहौ प्रदेशिनी त्र्यङ्गुलं दीर्घा ॥ १८ ॥

बारह अङ्गुल लम्बे और छः अङ्गुल चौड़े पाँव, पाँव के अगूठे तीन अङ्गुल लम्बे और प्रदेशिनी (अंगूठे के समीप की अङ्गुली) तीन अङ्गुल लम्बी बनावे ॥ १८ ॥

अष्टांशाष्टांशोनाः शेषाङ्गुल्यः क्रमेण कर्तव्याः ।
सचतुर्थभागमङ्गुलमुत्सेधोऽङ्गुष्ठकस्योक्तः ॥ १९ ॥

प्रदेशिनी से अष्टांश-अष्टांश कम करके क्रम से शेष तीन अङ्गुलियाँ बनावे। अगूठे की ऊँचाई सवा अङ्गुल और शेष अङ्गुलियों की ऊँचाई उसीके अनुपात से कुछ-कुछ कम करके बनावे ॥ १९ ॥

अङ्गुष्ठनखः कथितश्चतुर्थभागोनमङ्गुलं तज्ज्ञैः ।
शेषनखानामर्धाङ्गुलं क्रमात् किञ्चिदूनं वा ॥ २० ॥

प्रतिमा के लक्षणों को जानने वालों ने अगूठे के नख की लम्बाई पौन अङ्गुल, शेष अङ्गुलियों को लम्बाई आधा अङ्गुल अथवा कुछ कुछ कम करके नख बनावे जिससे कि सुन्दर दिखाई दे ॥ २० ॥

जङ्घाग्रे परिणाहश्चतुर्दशोक्तस्तु विस्तरात् पञ्च ।
मध्ये तु सप्त विपुला परिणाहात् त्रिगुणिताः सप्त ॥ २१ ॥

जाँघ के आगे के भाग की मोटाई चौदह अङ्गुल और विस्तार पाँच अङ्गुल तथा मध्यभाग का विस्तार आठ अङ्गुल और मोटाई इक्कीस अङ्गुल होती है ॥ २१ ॥

अष्टौ तु जानुमध्ये वैपुल्यं त्र्यष्टकं तु परिणाहः।
विपुलौ चतुर्दशोरू मध्ये द्विगुणश्च तत्परिधिः॥ २२॥

घुटने के मध्यभाग का विस्तार आठ अङ्गुल, मोटाई चौबीस अङ्गुल और ऊरु के मध्य का विस्तार चौदह अङ्गुल और परिधि अट्ठाईस अङ्गुल होती है॥ २२॥

कटिरष्टादश विपुला चत्वारिंशच्चतुर्युता परिधौ।
अङ्गुलमेकं नाभी वेधेन तथा प्रमाणेन॥ २३॥

कमर की चौडाई अट्ठारह अङ्गुल और परिधि चवालीस अङ्गुल होती है तथा नाभि भाग का विस्तार और वेध एक-एक अङ्गुल का होता है॥ २३॥

चत्वारिंशद्द्वियुता नाभीमध्येन मध्यपरिणाहः।
स्तनयोः षोडश चान्तरमूर्ध्वं कक्ष्ये षडङ्गुलिके॥ २४॥

नाभि स्थान की मोटाई बयालीस अङ्गुल, दोनों स्तनों का अन्तर सोलह अङ्गुल और स्तनों के ऊपर बगल में छः-छः अङ्गुल के कोण होते हैं॥ २४॥

अष्टावंसौ द्वादश बाहू कार्यौ तथा प्रबाहू च।
बाहू षड्विस्तीर्णौ प्रतिबाहू त्वङ्गुलचतुष्कम्॥ २५॥

गरदन से लेकर दोनों कन्धों की लम्बाई आठ अङ्गुल तथा बारह अङ्गुल बाहु और प्रबाहु (बाहु के समीपवर्ती बाहु) बनानी चाहिये। बाहु का विस्तार छः अङ्गुल और प्रबाहु का चार अङ्गुल बनाना चाहिये॥ २५॥

षोडश बाहू मूले परिणाहाद्द्वादशाग्रहस्ते च।
विस्तारेण करतलं षडङ्गुलं सप्त दैर्घ्येण॥ २६॥

बाहुमूल की मोटाई सोलह अङ्गुल, प्रकोष्ठ की मोटाई बारह अङ्गुल, हथेली की चौड़ाई छ अङ्गुल और लम्बाई सात अङ्गुल बनानी चाहिये॥ २६॥

पञ्चाङ्गुलानि मध्या प्रदेशिनी मध्यपर्वदलहीना।
अनया तुल्या चानामिका कनिष्ठा तु पर्वोना॥ २७॥

मध्यमा पाँच अङ्गुल, प्रदेशिनी और अनामिका पर्व के आधे से रहित पाँच अङ्गुल और कनिष्ठिका एक पर्व से रहित पाँच अङ्गुल लम्बी होती है॥ २७॥

पर्वद्वयमङ्गुष्ठः शेषाङ्गुल्यस्त्रिभिस्त्रिभिः कार्याः।
नखपरिमाणं कार्यं सर्वासां पर्वणोऽर्धेन॥ २८॥

अंगूठे में दो पर्व, शेष चार अङ्गुलियों में तीन-तीन पर्व बनावे। तथा अपने अपने पर्व के आधे के तुल्य नखों का परिमाण बनावे॥ २८॥

प्रतिमा-स्वरूप का प्रदर्शन—

देशानुरूपभूषणवेषालङ्कारमूर्तिभिः कार्या।
प्रतिमा लक्षणयुक्ता सन्निहिता वृद्धिदा भवति॥ २९॥

प्रतिमा के भूषण, वेष, अलङ्कार और मूर्ति अपने अपने देश के अनुरूप बनावे क्योंकि शुभ लक्षणों से युत प्रतिमा सदा बनाने वाले की उन्नति करती है। यहाँ पर काश्यप—

द्वादशाङ्गुलकं वक्त्रं ललाटं चतुरङ्गुलम्। नासा ग्रीवा तु कर्तव्या तुल्या चैतत्प्रमाणतः॥
शङ्खान्तरं ललाटस्य ज्ञेयमष्टाङ्गुलं पृथु। हनुद्वयं तु चिबुकमङ्गुलद्वितयं स्मृतम्॥
चतुरङ्गुलिकौ कर्णौ भ्रुवावेवं तथा स्मृते। द्व्यङ्गुलौ पृथुलौ कर्णौ भ्रूमध्यं तत्प्रमाणतः॥
कर्णनेत्रान्तरं कुर्यात्सार्धं चतुरङ्गुलम्। अधरोऽङ्गुलमानं तु तदर्धेनोत्तरं स्मृतम्॥
चतुरङ्गुलकं वक्त्रं नासाग्रं द्व्यङ्गुलं स्मृतम्। नेत्रे द्व्यङ्गुलके दीर्घे तत्त्रिभागेन तारकः॥
हस्तारापञ्चमांशेन दृष्टिकाङ्गुलसम्मिता। द्व्यङ्गुलं शशिपुटकं तथा नासापुटौ स्मृतौ॥
कर्णस्रोतोऽङ्गुलमितं सुकुमारं तथैव च। गोष्ठा चाङ्गुलिका कार्या तत्समा केशरेखिका॥
द्व्यङ्गुलौ तु स्मृतौ शङ्खावायतौ चतुरङ्गुलौ। चतुर्दशाङ्गुलः शीर्षो द्वात्रिंशत् परिणाहतः॥
एकविंशत् स्मृता ग्रीवा विस्तारात् स्याद्दशाङ्गुला। कक्षा च हृदयं नाभिं मेढ्रं तद्द्वादशाङ्गुलम्॥
ऊरू जङ्घे चतुर्विंशा जानुनी चतुरङ्गुले। द्वादशाङ्गुलिकौ पादौ विस्तारात्तु षडङ्गुलौ॥
गुह्यकादधोभागगतं चतुरङ्गुलमुच्यतम्। अङ्गुष्ठ त्र्यङ्गुलं दीर्घं पञ्चैव परिणाहतः॥
शेषाः पादानुसारेण परिमाणं प्रकल्पयेत्। जङ्घाग्रे परिधिर्ज्ञेयो ह्यङ्गुलानि चतुर्दश॥
ऊरू तद्द्विगुणौ प्रोक्तौ कटिस्तत्त्रिगुणा स्मृता। अङ्गुलं तु भवेन्नाभी वेधगाम्भीर्ययोरपि॥
नाभीमध्ये परीणाहश्चत्वारिंशद्द्विसंयुतः। षोडश स्तनयोर्मध्यं कक्ष्ये ऊर्ध्वं षडङ्गुले॥
अष्टाङ्गुलौ स्मृतौ स्कन्धौ बाहू विंशच्चतुर्युतौ। बाहू मूले षोडश स्याद्धस्ताग्रे द्वादश स्मृताः॥
षडङ्गुलं हस्ततलं सह दैर्घ्येण च स्मृतम्। पञ्चाङ्गुला भवेन्मध्या तर्जन्यर्धाङ्गुलोनिता॥
अनामिका च तत्तुल्या कनिष्ठा चाङ्गुलोनिता। सुरूपास्ताश्च कर्तव्या द्विपर्वाङ्गुष्ठिका स्मृता॥
त्रिपर्वाङ्गुलयः शेषा नखाः पर्वार्धविस्तृताः। देशवेषयुतान् हस्तान् सौम्यरूपांश्च कारयेत्॥
स्वरूपा लक्षणोपेता प्रतिमा वृद्धिदा भवेत्॥ २९॥

प्रतिमाओं का विशेष लक्षण—

दशरथतनयो रामो बलिश्च वैरोचनिः शतं विंशम्।
द्वादशहान्या शेषाः प्रवरसमन्यूनपरिमाणाः॥ ३०॥

दशरथ तनय राम और विरोचन के तनय बलि की प्रतिमा एक सौ बीस अङ्गुल लम्बी बनानी चाहिये। शेष सब प्रतिमा एक सौ आठ अङ्गुल लम्बी उत्तम, छियानवे अङ्गुल लम्बी मध्यम और चौरासी अङ्गुल लम्बी अधम होती है॥ ३०॥

भगवान् विष्णु की प्रतिमा का स्वरूप—

कार्योऽष्टभुजो भगवांश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णुः।
श्रीवत्साङ्कितवक्षाः कौस्तुभमणिभूषितोरस्कः॥ ३१॥
अतसीकुसुमश्यामः पीताम्बरनिवसनः प्रसन्नमुखः।
कुण्डलकिरीटधारी पीनगलोरःस्थलांसभुजः॥ ३२॥
खड्गगदाशरपाणिर्दक्षिणतः शान्तिदश्चतुर्थकरः।
वामकरेषु च कार्मुकखेटकचक्राणि शंखश्च॥ ३३॥
अथ च चतुर्भुजमिच्छति शान्तिद एको गदाधरश्चान्यः।

दक्षिणपार्श्वे त्वेवं वामे शंखश्च चक्रं च ॥ ३४ ॥
द्विभुजस्य तु शान्तिकरो दक्षिणहस्तोऽपरश्च शंखधरः ।
एवं विष्णोः प्रतिमा कर्तव्या भूतिमिच्छद्भिः ॥ ३५ ॥

विष्णु की प्रतिमा अष्टभुज, चतुर्भुज या द्विभुज बनावे, उनके वक्षःस्थल को श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभ मणि से शोभित करे। अतसी पुष्प के समान श्याम वर्ण, पीताम्बर पहनी हुई प्रसन्न मुख, पुष्ट कण्ठ, वक्षःस्थल, कन्धा और भुजावाली, दाहिने तीन हाथों में खड्ग, गदा और शर धारण की हुई, चौथा हाथ अभय मुद्रा से युत, बाईं तरफ के चार हाथों से धनुष, ढाल, चक्र और शंख धारण की हुई अष्टभुज विष्णु की प्रतिमा बनावे। चतुर्भुज विष्णु की प्रतिमा बनाना चाहे तो दाहिने तरफ के एक हाथ में अभय मुद्रा युत, दूसरे में गदा धारण की हुई, बाईं तरफ के एक हाथ में शंख और दूसरे में चक्र धारण की हुई मूर्ति बनावे। द्विभुज प्रतिमा बनाना चाहे तो दाहिने हाथ में अभय मुद्रा और बाँये में शंख धारण की हुई मूर्ति बनावे। ऐश्वर्य को चाहने वाले मनुष्य इस तरह विष्णु की प्रतिमा बनावें ॥ ३१-३५ ॥

बलदेव की प्रतिमा का स्वरूप—

बलदेवो हलपाणिर्मदविभ्रमलोचनश्च कर्तव्यः ।
विभ्रत्कुण्डलमेकं शंखेन्दुमृणालगौरतनुः ॥ ३६ ॥

बलदेव की प्रतिमा के एक हाथ में हल धारण करावे, मद से चलायमान नेत्र बनावे, एक कान में कुण्डल धारण करावे तथा शंख, चन्द्र या मृणाल के समान सफेद वर्ण बनावे ॥ ३६ ॥

एकानंशा देवी की प्रतिमा का स्वरूप—

एकानंशा कार्या देवी बलदेवकृष्णयोर्मध्ये ।
कटिसंस्थितवामकरा सरोजमितरेण चोद्वहती ॥ ३७ ॥
कार्या चतुर्भुजा या वामकराभ्यां सपुस्तकं कमलम् ।
द्वाभ्यां दक्षिणपार्श्वे वरमर्थिष्वक्षसूत्रं च ॥ ३८ ॥
वामेऽथाष्टभुजायाः कमण्डलुश्चापमम्बुजं शास्त्रम् ।
वरशरदर्पणयुक्ताः सव्यभुजाः साक्षसूत्राश्च ॥ ३९ ॥

बलदेव और कृष्ण की प्रतिमा के मध्य में एकानंशा नाम की देवी की प्रतिमा बनावे। उसका बाँया हाथ कमर पर रक्खे और दाहिने हाथ में कमल धारण करावे। चतुर्भुजा एकानंशा देवी के बाईं तरफ एक हाथ में पुस्तक और दूसरे में कमल तथा दाईं तरफ एक हाथ में वर देने वाली मुद्रा और दूसरे में माला धारण करावे। अष्टभुजा एकानंशा देवी की मूर्ति के बायें चार हाथों में क्रम से कमण्डलु, धनुष, कमल और पुस्तक तथा दाहिने चार हाथों में क्रम से वर देने वाली मुद्रा, बाण, दर्पण और अक्षसूत्र धारण करावे ॥

साम्ब और प्रद्युम्न की प्रतिमा का स्वरूप—

शाम्बश्च गदाहस्तः प्रद्युम्नश्चापभृत् सुरूपश्च ।
अनयोः स्त्रियौ च कार्ये खेटकनिस्त्रिंशधारिण्यौ ॥ ४० ॥

शाम्ब की प्रतिमा को गदा और प्रद्युम्न की प्रतिमा को धनुष धारण करावे, इन दोनों प्रतिमाओं को द्विभुज तथा सुन्दर बनावे तथा इन दोनों की स्त्रियों की प्रतिमा बनावे जिनके हाथ में खेटक (फर) और खड्ग धारण करावे ॥ ४० ॥

ब्रह्मा और कार्तिकेय की प्रतिमा का स्वरूप—

ब्रह्मा कमण्डलुकरश्चतुर्मुखः पङ्कजासनस्थश्च ।
स्कन्दः कुमाररूपः शक्तिधरो बर्हिकेतुश्च ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा की मूर्ति के एक हाथ में कमण्डलु धारण करावे, चार मुख बनावे और कमल पुष्प के आसन पर बैठावे । कार्तिकेय को बालक के स्वरूप का बनावे, हाथ में शक्ति (बर्छी) और मयूर युक्त ध्वजा धारण करावे ॥ ४१ ॥

इन्द्र की प्रतिमा का स्वरूप—

शुक्लश्चतुर्विषाणो द्विपो महेन्द्रस्य वज्रपाणित्वम् ।
तिर्यग्ललाटसंस्थं तृतीयमपि लोचनं चिह्नम् ॥ ४२ ॥

इन्द्र के हाथी (ऐरावत) की प्रतिमा सफेद और चार दाँतों से युत बनावे, तथा इन्द्र की प्रतिमा के हाथ में वज्र धारण करावे और ललाट के मध्य में तिरछा तीसरा नेत्र बनावे॥४२॥

शिव की प्रतिमा का स्वरूप—

शम्भोः शिरसीन्दुकला वृषध्वजोऽक्षि च तृतीयमपि चोर्ध्वम् ।
शूलं धनुः पिनाकं वामार्धे वा गिरिसुतार्धम् ॥४३॥

शिव जी की प्रतिमा के मस्तक पर चन्द्रकला बनावे, ध्वजा में वृष का चिह्न बनावे, ललाट में खड़ा तीसरा नेत्र बनावे, एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में पिनाक नामक धनुष धारण करावे अथवा बाईं तरफ आधे भाग में पार्वती की प्रतिमा बनावे ॥ ४३ ॥

बुद्ध की प्रतिमा का स्वरूप—

पद्माङ्कितकरचरणः प्रसन्नमूर्तिः सुनीचकेशश्च ।
पद्मासनोपविष्टः पितेव जगतो भवति बुद्धः ॥ ४४ ॥

बुद्ध की प्रतिमा के हाथ और पाँव में कमल का चिह्न, प्रसन्न, बहुत छोटे-छोटे सिर के बालों से युत, पद्मासन से बैठी हुई और संसार के पिता के समान दिखाई देने वाली प्रतिमा बनावे ॥ ४४ ॥

जिन की प्रतिमा का लक्षण—

आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च ।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः ॥ ४५ ॥

जानु तक लम्बी भुजाओं से युत, श्रीवत्स चिह्न से शोभित, शान्त, दिगम्बर, तरुण और सुन्दर जिन की प्रतिमा बनावे ॥ ४५ ॥

सूर्य की प्रतिमा का लक्षण—

नासाललाटजङ्घोरुगण्डवक्षांसि चोन्नतानि रवेः ।
कुर्यादुदीच्यवेषं गूढं पादादुरो यावत् ॥ ४६ ॥

बिभ्राणः स्वकररुहे बाहुभ्यां पङ्कजे मुकुटधारी ।
कुण्डलभूषितवदनः प्रलम्बहारो वियद्गवृतः ॥ ४७ ॥
कमलोदरद्युतिमुखः कंचुकगुप्तः स्मितप्रसन्नमुखः ।
रत्नोज्वलप्रभामण्डलश्च कर्तुः शुभकरोऽर्कः ॥ ४८ ॥

सूर्य की प्रतिमा के नासिका, ललाट, जङ्घा, ऊरू, गाल और वक्षःस्थल ऊँचा, उत्तर देश वासियों की तरह वेष, पाँव से लेकर छाती तक चोलक से गुप्त, दोनों भुजाओं में दो नख रूप कमलों से युत, शिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में वियद्ग (सारसन) युक्त हार, कमलोदर के समान मुखकान्ति, कंचुक से आच्छादित शरीर, ईषद् हास्य युक्त प्रसन्न मुख और रत्नों से दीप्यमान कान्ति बनावे। इस तरह बना हुआ सूर्य बनाने वाले का शुभ करता है ॥ ४६-४८ ॥

सूर्य की उद्देश्य करके सब प्रतिमाओं का शुभाशुभ—

सौम्या तु हस्तमात्रा वसुदा हस्तद्वयोच्छ्रिता प्रतिमा ।
क्षेमसुभिक्षाय भवेत् त्रिचतुर्हस्तप्रमाणा या ॥ ४९ ॥
नृपभयमत्यङ्गायां हीनाङ्गायामकल्यता कर्तुः ।
शातोदर्यां क्षुद्भयमर्थविनाशः कृशाङ्गायाम् ॥ ५० ॥
मरणं तु सक्षतायां शस्त्रनिपातेन निर्दिशेत् कर्तुः ।
वामावनता पत्नीं दक्षिणविनता हिनस्त्यायुः ॥ ५१ ॥
अन्धत्वमूर्ध्वदृष्ट्या करोति चिन्तामधोमुखी दृष्टिः ।
सर्वप्रतिमास्वेवं शुभाशुभं भास्करोक्तसमम् ॥ ५२ ॥

एक हाथ ऊँची सूर्य की प्रतिमा शुभ, दो हाथ ऊँची धन देने वाली तथा तीन हाथ ऊँची प्रतिमा क्षेम और सुभिक्ष के लिये होती है। अधिक अङ्ग वाली प्रतिमा राजा से भय, हीनाङ्ग प्रतिमा बनाने वाले को रोगी, कृश उदर वाली प्रतिमा क्षुधा का भय और कृश अङ्ग वाली प्रतिमा धन का नाश करती है। क्षत प्रतिमा बनाने वाले की शस्त्र से मृत्यु, बायीं ओर झुकी हुई प्रतिमा बनाने वाले की पत्नी का नाश और दाहिनी तरफ झुकी हुई प्रतिमा आयु का नाश करती है। प्रतिमा की दृष्टि ऊपर की तरफ हो तो बनाने वाले को अन्धा और नीचे की तरफ हो तो बनाने वाले को चिन्तित करती है। यह सूर्य की प्रतिमा के सम्बन्ध में उक्त शुभाशुभ फल अन्य प्रतिमाओं में भी जाने ॥

प्रशस्त शिवलिङ्ग का निर्माण व स्थापन प्रकार—

लिङ्गस्य वृत्तपरिधिं दैर्घ्येणासूत्र्य तत्त्रिधा विभजेत् ।
मूले तच्चतुरस्रं मध्ये त्वष्टाश्रि वृत्तमतः ॥ ५३ ॥
चतुरस्रमवनिखाते मध्यं कार्यं तु पिण्डिकाश्वभ्रे ।
दृश्योच्छ्रायेण समा समन्ततः पिण्डिका श्वभ्रात् ॥ ५४ ॥

लिङ्ग की परिधि को लम्बाई में सूत्र से नाप कर उसके तुल्य पत्थर, लकड़ी या मणि का लिङ्ग बनावे, उसको तीन भाग करके मूल के प्रथम भाग चतुस्र, मध्य भाग अष्टास्र और ऊपर के भाग को गोल बनावे। चतुरस्र भाग को भूमि में गाड़े, अष्टास्र भाग को पिण्डिका (जलहरी = जलधरी) के गड्ढे में रक्खे और वर्तुल भाग को ऊपर रक्खे। ऊपर के दृश्य वर्तुल भाग की ऊँचाई के तुल्य गड्ढे के चारों ओर पीठिका बनावे॥ ५३-५४॥

अविहित शिवलिङ्ग स्थापन से दोष—

कृशदीर्घं देशघ्नं पार्श्वविहीनं पुरस्य नाशाय।
यस्य क्षतं भवेन्मस्तके विनाशाय तल्लिङ्गम्॥ ५५॥

यदि शिवलिंग पतला या लम्बा हो तो देश का नाश, दोनों तरफ से खण्डित हो तो नगर का नाश और क्षत मस्तक वाला हो तो स्वामी का नाश करता है॥ ५५॥

मातृगण की प्रतिमा का लक्षण—

मातृगणः कर्तव्यः स्वनामदेवानुरूपकृतचिह्नः।
रेवन्तोऽश्वारूढो मृगयाक्रीडादिपरिवारः॥ ५६॥

मातृगणों की प्रतिमा अपने अपने नाम में जो देवता हों उनके सदृश बनावे, जैसे ब्रह्मा के तुल्य ब्राह्मी की, इन्द्र के तुल्य इन्द्राणी की, शिव के तुल्य शिवा की इत्यादि बनावे। परन्तु इन प्रतिमाओं में स्तन शोभा, मध्य में कृश और पृथु नितम्ब भी बना दे, जिससे कि स्त्री की शोभा प्रतिमा में आ जाय। तथा घोड़े पर चढ़ी हुई और मृगया रूप क्रीडा में रत परिवार वाली रेवन्त (सूर्य के पुत्र) की प्रतिमा बनावे॥ ५६॥

यम, वरुण और कुबेर की प्रतिमा का लक्षण—

दण्डी यमो महिषगो हंसारूढश्च पाशभृद्वरुणः।
नरवाहनः कुबेरो वामकिरीटी बृहत्कुक्षिः॥ ५७॥

यम की प्रतिमा को हाथ में दण्ड देकर भैंस पर चढ़ावे। वरुण की प्रतिमा को हंस पर चढ़ा कर हाथ में पाश धारण करावे। कुबेर की प्रतिमा मनुष्य पर चढ़ी हुई, बायीं ओर झुकी हुई किरीट वाली और बड़े उदर वाली बनावे॥ ५७॥

गणेश की प्रतिमा का लक्षण—

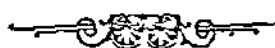
प्रमथाधिपो गजमुखः प्रलम्बजठरः कुठारधारी स्यात्।
एकविषाणो बिभ्रन्मूलककन्दं सुनीलदलकन्दम्॥ ५८॥

हाथी के समान मुख वाली, लम्बे उदर वाली, कुठार धारिणी, एक दाँत वाली और मूलकन्द तथा सुनीलदलकन्द धारण की हुई गणेश की प्रतिमा बनावे। यहाँ काश्यप—

एकदंष्ट्रो गजमुखश्चतुर्बाहुर्विनायकः। लम्बोदरः स्थूलदेहो नेत्रत्रयविभूषितः॥
नवकुवलयकान्तिमक्षमाला कमलकमण्डलुदर्पणाब्जहस्ताम्।
प्रणमतवरपीनपीठपद्मासनसुस्थितां परमेश्वरीं विनतनाम्॥
ब्रह्मा चतुर्मुखो दण्डी कृष्णाजिनकमण्डली। विष्णुश्चतुर्भुजः शार्ङ्गी शङ्खचक्रगदाधरः।
श्रीवत्साङ्कः पीतवासा वनमालाविभूषितः॥
नरसिंहः स्थूलदेही रोमावर्तविभूषितः। उद्घाटितमुखः स्वामी वह्निकान्तिर्बृहद्भुजः॥
वराहः सूकरमुखश्चतुर्बाहुर्विभूषितः। नीलाञ्जनचयप्रख्यो ध्यानशक्तः सुलोचनः॥

ईश्वरो जटिलस्त्र्यक्षो बालचन्द्राङ्कभूषितः । उरगेन्द्रोपवीती च कृत्तिवासाः पिनाकधृक् ॥
चण्डिकाष्टादशभुजा सर्वप्रहरणान्विता । त्र्यक्षा सिंहरता धन्या महिषासुरसूदिनी ॥
मयूरवाहनः स्कन्दः शक्तिकुक्कुटधारकः । सुरूपदेहो विक्रान्तो देवः सेनापतिः शिशुः ॥
आदित्यस्तरुणः स्रग्वी कवची खड्गधृत्तथा । तेजस्वी पङ्कजकरः षड्वर्गश्च किरीटवान् ॥
ऐरावतश्चतुर्दन्तः श्वेतगात्रो महागजः । तदारूढो महेन्द्रस्तु वज्रहस्तो महाबलः ॥
तिर्यग्ललाटगं नेत्रं तृतीयं तस्य कारयेत् । नीललोहितवर्णा च शची तस्य समीपगा ॥
एवं देवगणाः सर्वे स्वायुधाभरणोज्ज्वलाः । कर्तव्याः स्वस्वरूपाश्च सम्पूर्णाः शुभलक्षणाः ॥
हस्तमात्रा भवेत्सौम्या द्विहस्ता धनप्रदा । सुभिक्षक्षेमदा पुण्या त्रिहस्ता तु चतुष्करा ॥
वैकल्यं कुरुते हीना कृशाङ्गी देहनाशिनी । मरणं सक्षतायां तु सुदीर्घा वित्तनाशिनी ॥
वामे नता हन्ति पत्नीं कर्तुर्दक्षिणभागगा । ऊर्ध्वदृष्टिर्नेत्ररोगं गोकर्णा स्यादधोमुखी ॥
सुरूपा सुप्रमाणैव सर्वाभरणभूषिता । स्वायुधैश्च समायुक्ता कर्तव्या प्रतिमा शुभा ॥ ५८ ॥

इति विमला हिन्दी टीकायां प्रतिमालक्षणाध्यायोऽष्टपञ्चाशत्तमः ॥ ५८ ॥



अथ वनसम्प्रवेशाध्यायः

वन में प्रथम कर्तव्य—

कर्तुरनुकूलदिवसे दैवज्ञविशोधिते शुभनिमित्ते ।
मङ्गलशकुनैः प्रास्थानिकैश्च वनसम्प्रवेशः स्यात् ॥ १ ॥

प्रतिमा बनाने वाले के अनुकूल दिन में, दैवज्ञ के द्वारा विशोधित मुहूर्त में, यात्रा प्रकरण में विहित शुभ शकुन को देख कर प्रतिमा बनाने के हेतु लकड़ी लाने के लिये वन में प्रवेश करे ॥ १ ॥

वर्जनीय और अवर्जनीय वृक्ष—

पितृवनमार्गसुरालयवल्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः ।
चैत्यसरित्सङ्गमसम्भवाश्च घटतोयसिक्ताश्च ॥ २ ॥
कुब्जानुजातवल्लीनिपीडिता वज्रमारुतोपहताः ।
स्वपतितहस्तिनिपीडितशुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः ॥ ३ ॥
तरवो वर्जयितव्याः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः ।
अभिमतवृक्षं गत्वा कुर्यात्पूजां सबलिपुष्पाम् ॥ ४ ॥

श्मशान के मार्ग, देवालय, वल्मीक, उपवन और तपस्वियों के आश्रम में उत्पन्न, चैत्य (प्रधान), नदियों के सङ्गम स्थान में उत्पन्न, घड़ों के जल से सिंचे हुये, कुबड़े अन्य वृक्षों के संयोग से पीड़ित, लताओं से पीड़ित, बिजली से भग्न, वायु से भग्न, हाथियों से भग्न, सूखे, अग्नि से दग्ध और मधुमक्खियों के छत्ते वाले वृक्षों को त्याग देना चाहिये । तथा स्निग्ध पत्ते, फूल और फल वाले वृक्ष शुभ होते हैं । इस तरह अभीष्ट वृक्ष के पास में जाकर बलि और पुष्पों के द्वारा उस की पूजा करे ॥ २-४ ॥

ब्राह्मण आदि वर्णों के लिये शुभ वृक्ष—

सुरदारुचन्दनशमीमधूकतरवः शुभा द्विजातीनाम् ।

क्षत्रस्यारिष्टाश्वत्थखदिरबिल्वा विवृद्धिकराः ॥ ५ ॥
वैश्यानां जीवकखदिरसिन्धुकस्यन्दनाश्च शुभफलदाः ।
तिन्दुककेसरसर्जार्जुनाम्रशालाश्च शूद्राणाम् ॥ ६ ॥

देवदारु, चन्दन, शमी और महुआ ब्राह्मणों के लिये। नीम, पीपल, खैर और बेल क्षत्रियों के लिये। जीवक, खैर, सिंधुक और स्यन्दन वैश्यों के लिये। तेन्दू, नागकेसर, सर्ज, अर्जुन और साल शूद्रों के लिये शुभदायक है। यहाँ पर काश्यप—

सुरदारु शमीवृक्षो मधूकश्चन्दनस्तथा। प्रतिष्ठार्थं ब्राह्मणानामेते प्रोक्ताः शुभावहाः॥
अरिष्टाश्वत्थखदिरबिल्वाः क्षत्रियजातिषु। जीवकः खदिरश्चैव सिन्धुकः स्यन्दनस्तथा॥
वैश्यानां शुभदाः प्रोक्तास्तिन्दुकः केसरस्तथा। सर्जार्जुनाम्रशालाश्च शूद्राणां शुभदाः स्मृताः॥

लिङ्गं वा प्रतिमा वा द्रुमवत् स्थाप्या यथादिशं यस्मात् ।
तस्माच्चिह्नयितव्या दिशो द्रुमस्योर्ध्वमथवाधः ॥ ७ ॥

वृक्ष की दिशाओं की तरह शिवलिङ्ग या प्रतिमा को स्थापित करे तथा वृक्ष के ऊर्ध्वभाग प्रतिमा के ऊर्ध्वभाग और वृक्ष के अधोभाग प्रतिमा के अधोभाग बनावे। अतः काटने से पहले ही वृक्ष में सब दिशाओं का चिह्न लगा देना चाहिये। यहाँ पर काश्यप—

वृक्षवत्प्रतिमा कार्या प्राग्भागाद्युपलक्षिता। पादाः पादेषु कर्तव्याः शीर्षमूर्ध्वे तु कारयेत्॥७॥

वृक्ष काटने की विधि—

परमान्नमोदकौदनदधिपललोल्लोपिकादिभिर्भक्ष्यैः ।
मद्यैः कुसुमैर्धूपैर्गन्धैश्च तरुं समभ्यर्च्य ॥ ८ ॥
सुरपितृपिशाचराक्षसभुजगासुरगणविनायकाद्यानाम् ।
कृत्वा रात्रौ पूजां वृक्षं संस्पृश्य च ब्रूयात् ॥ ९ ॥

खीर, लड्डू, भात, दही, मांस, उल्लोपिका (एक प्रकार की भोजन वस्तु) आदि भक्ष्य वस्तु, मद्य, पुष्प और सुगन्ध द्रव्यों से वृक्ष की पूजा करे। रात में देवता, पितर, पिशाच, राक्षस, नाग, सुरगण, गणेश, आदि (भूत, प्रेत, सिद्ध, विद्याधर और गन्धर्व) की पूजा करके वृक्ष को स्पर्श करके वक्ष्यमाण मन्त्र पढ़े ॥ ८-९ ॥

मन्त्र के पद्य—

अर्चार्थममुकस्य त्वं देवस्य परिकल्पितः ।
नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत् सम्प्रगृह्यताम् ॥ १० ॥
यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥ ११ ॥

हे वृक्ष! अमुक देवता की पूजा के लिये कल्पित किये हुए आप को नमस्कार करता हूँ, विधिपूर्वक इस पूजा को ग्रहण करें। तथा इस वृक्ष पर जो प्राणी गण निवास करते हैं वे सब विधिपूर्वक इस पूजा को ग्रहण करके कहीं अन्यत्र निवासस्थान कल्पित करें, आज वे सब क्षमा करें, उनको नमस्कार करता हूँ ॥ १०-११ ॥

वृक्ष को काटने की विधि—

वृक्षं प्रभाते सलिलेन सिक्त्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि सन्निकृत्य ।
मध्वाज्यदिग्धेन कुठारकेण प्रदक्षिणं शेषमतो निहन्यात् ॥१२॥

प्रातःकाल जल से वृक्ष को सिंच कर शहद और घृत से लुपड़े हुए कुठार से पहले ईशान कोण में काट कर शेष प्रदक्षिण क्रम से काटे ॥ १२ ॥

पतित वृक्ष से शुभाशुभ ज्ञान—

पूर्वेण पूर्वोत्तरतोऽथवोदक्पतेद्यदा वृद्धिकरस्तदा स्यात् ।
आग्नेयकोणात्क्रमशोऽग्निदाहरुग्रोगरोगास्तुरगक्षयश्च ॥ १३ ॥

यदि कटा हुआ वृक्ष पूरब, ईशान कोण या उत्तर दिशा में गिरे तो वृद्धि करने वाला होता है। अग्निकोण आदि पाँच दिशाओं में क्रम से अग्निदाह, रोग, रोग, रोग और घोड़े का नाश होता है अर्थात् अग्निकोण में अग्निदाह, दक्षिण में रोग, नैर्ऋत्यकोण में रोग, पश्चिम में रोग और वायव्यकोण में घोड़े का नाश होता है ॥ १३ ॥

आचार्य का विशेष वक्तव्य—

यन्नोक्तमस्मिन् वनसम्प्रवेशे निपातविच्छेदनवृक्षगर्भाः ।
इन्द्रध्वजे वास्तुनि च प्रदिष्टाः पूर्वं मया तेऽत्र तथैव योज्याः ॥१४॥

इस वनसम्प्रवेश नामक अध्याय में वृक्ष के निपात, विच्छेदन, वृक्षगर्भ आदि जो मैंने नहीं कहे हैं उनको पूर्वकथित इन्द्रध्वजाध्याय और वास्तुविद्याध्याय में कथित की तरह समझना चाहिये ॥ १४ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां वनसम्प्रवेशाध्याय एकोनषष्टितमः ॥ ५९ ॥

अथ प्रतिमाप्रतिष्ठापनाध्यायः

अधिवासन मण्डप का विधान—

दिशि याम्यायां कुर्यादधिवासनमण्डपं बुधः प्राग्वा ।
तोरणचतुष्टययुतं शस्तद्रुमपल्लवच्छन्नम् ॥ १ ॥

पूर्वे भागे चित्राः स्रजः पताकाश्च मण्डपस्योक्ताः ।
आग्नेय्यां दिशि रक्ताः कृष्णाः स्युर्याम्यनैर्ऋत्योः ॥ २ ॥

श्वेता दिश्यपरस्यां वायव्यायां तु पाण्डुरा एव ।
चित्राश्चोत्तरपार्श्वे पीताः पूर्वोत्तरे कार्याः ॥ ३ ॥

चार तोरणों से युत, प्रशस्त वृक्ष के पत्रों से आच्छादित अधिवासन (संस्कारविशेष) का मण्डप बनावे। मण्डप के पूर्व भाग में अनेक वर्ण की पुष्पमाला और पताका लगावे। तथा अग्निकोण में लाल, दक्षिण और नैर्ऋत्य कोण में काली, पश्चिम में सफेद, वायव्य कोण में पाण्डुर (कुछ सफेद), उत्तर में अनेक वर्णवाली और ईशान कोण में पीली पुष्पमाला और पताका लगावे ॥ १-३ ॥

काष्ठ आदि की प्रतिमा का फल—

आयुःश्रीबलजयदा दारुमयी मृण्मयी तथा प्रतिमा ।
लोकहिताय मणिमयी सौवर्णी पुष्टिदा भवति ॥ ४ ॥
रजतमयी कीर्तिकरी प्रजाविवृद्धिं करोति ताम्रमयी ।
भूलाभं तु महान्तं शैली प्रतिमाथवा लिङ्गम् ॥ ५ ॥

लकड़ी और मिट्टी की प्रतिमा आयु, श्री, बल और विजय देती है। मणि की प्रतिमा लोगों के हित के लिये होती है। सोने की प्रतिमा पुष्टि को देती है। चाँदी की प्रतिमा यश को करती है। तांबे की प्रतिमा सन्तान की वृद्धि करती है। पत्थर की प्रतिमा या शिवलिङ्ग अत्यधिक भूमि का लाभ कराते हैं। यहाँ पर काश्यप—
यार्चा मृद्दारुसम्भूता सायुःश्रीबलदा मता। सौवर्णी पुष्टिदा ज्ञेया रत्नजा हितकारिणी। राजती कीर्तिदा ज्ञेया ताम्रजा जनवर्धिनी। महत्करोति भूलाभं यार्चा पाषाणनिर्मिता ॥४-५॥

शङ्कुपहता प्रतिमा प्रधानपुरुषं कुलं च घातयति ।
श्वभ्रोपहता रोगानुपद्रवांश्च क्षयं कुरुते ॥ ६ ॥

किसी प्रकार की कील से पीड़ित प्रतिमा प्रधान पुरुष और सन्तान का नाश करती है। तथा किसी प्रकार के गड्ढे से युत प्रतिमा रोग, उपद्रव और मृत्यु को करती है।

यहाँ पर काश्यप—
यार्चा शङ्कूपहता सा तु प्रधानकुलनाशिनी। छिद्रेणोपहता या तु बहुदोषकरी मता ॥ ६ ॥

प्रतिमापूजन प्रकार—

मण्डपमध्ये स्थण्डिलमुपलिप्यास्तीर्य सिकतयाथ कुशैः ।
भद्रासनकृतशीर्षोपधानपादां न्यसेत्प्रतिमाम् ॥ ७ ॥

अधिवासन मण्डप के मध्य में बनाये हुये स्थण्डिल को लीप कर उस पर रेत और रेत के ऊपर कुशा बिछा कर उसके ऊपर प्रतिमा को सुला दे। प्रतिमा का शिर राजा के आसन पर और पाँव को तकिये पर रक्खे ॥ ७ ॥

प्लक्षाश्वत्थोदुम्बरशिरीषवटसम्भवैः कषायजलैः ।
मङ्गल्यसञ्ज्ञिताभिः सर्वौषधिभिः कुशाद्याभिः ॥ ८ ॥
द्विपवृषभोद्धतपर्वतवल्मीकसरित्समागमतटेषु ।
पद्मसरःसु च मृद्भिः सपञ्चगव्यैश्च तीर्थजलैः ॥ ९ ॥
पूर्वशिरस्कां स्नातां सुवर्णरत्नाम्बुभिश्च ससुगन्धैः ।
नानातूर्यनिनादैः पुण्याहैर्वेदनिर्घोषैः ॥ १० ॥

पाकर, पीपल, सिरस और वट के पत्तों के काढ़े से। मङ्गल संज्ञक (जया, जयन्ती, जीवन्ती, जीवपुत्री, पुनर्नवा, विष्णुक्रान्ता और लक्ष्मणा) सर्वौषधियों से। हाथी और घोड़े से उखाड़ी हुई, पर्वत की, वल्मीक की, नदियों के सङ्गम स्थान की और कमल युत सरोवर की मिट्टियों से। पञ्चगव्य युत तीर्थ के जल से तथा सुवर्ण और रत्नों के जल

से पूर्व दिशा में सिर है जिसका ऐसी प्रतिमा को स्नान करा कर सुगन्ध द्रव्य, अनेक प्रकार के तुरही आदि वाद्य, पुण्याहवाचन और वेदध्वनियों से पूजा करे ॥ ८–१० ॥

ऐन्द्र्यां दिशीन्द्रलिङ्गा मन्त्राः प्राग्दक्षिणेऽग्निलिङ्गाश्च ।
वक्तव्या द्विजमुख्यैः पूज्यास्ते दक्षिणाभिश्च ॥ ११ ॥

मुख्य ब्राह्मणों के द्वारा पूर्व दिशा में इन्द्र के और अग्नि कोण में अग्नि के मन्त्र जाप करावे। बाद यजमान उन ब्राह्मणों का दक्षिणा आदि से पूजन करे ॥ ११ ॥

यो देवः संस्थाप्यस्तन्मन्त्रैश्चानलं द्विजो जुहुयात् ।
अग्निनिमित्तानि मया प्रोक्तानीन्द्रध्वजोत्थाने ॥ १२ ॥
धूमाकुलोऽपसव्यो मुहुर्मुहुर्विस्फुलिङ्गकृन्न शुभः ।
होतुः स्मृतिलोपो वा प्रसर्पणं चाशुभं प्रोक्तम् ॥ १३ ॥

जिस देवता की प्रतिष्ठा होती हो उस देवता के मन्त्रों से ब्राह्मण के द्वारा हवन करावे। इन्द्रध्वजाध्याय में अग्नि के शुभाशुभ लक्षण हमने कहे हैं। यदि हवन के समय अग्नि धूमयुत हो, उसकी ज्वाला वामावर्त क्रम से घूमती हो, बार-बार शब्द करती हो या उसमें चिन्गारी उड़ती हो तो शुभ नहीं होता है। तथा यदि हवन करने वाले की स्मृति का लोप हो जाय या प्रसर्पण हो जाय (जहाँ पहले बैठा हो वहाँ से सरक जाय) तो शुभ नहीं होता है ॥ १२–१३ ॥

स्नातामभुक्तवस्त्रां स्वलङ्कृतां पूजितां कुसुमगन्धैः ।
प्रतिमां स्वास्तीर्णायां शय्यायां स्थापकः कुर्यात् ॥ १४ ॥

प्रतिष्ठा करने वाला पुरुष स्नान कराई हुई, वस्त्र पहनाई हुई, भूषण पहनाई हुई, पुष्प और सुगन्ध द्रव्यों से पूजी हुई प्रतिमा को सुन्दर बिछी हुई शय्या पर स्थापित करे ॥ १४ ॥

सुप्तां सगीतनृत्यैर्जागरणैः सम्यगेवमधिवास्य ।
दैवज्ञसम्प्रदिष्टे काले संस्थापनं कुर्यात् ॥ १५ ॥

सोई हुई प्रतिमा को गीत, नृत्य और जागरण के द्वारा अधिवासन करके दैवज्ञों के द्वारा प्रतिपादित मुहूर्त्त में उसकी प्रतिष्ठा करे ॥ १५ ॥

अभ्यर्च्य कुसुमवस्त्रानुलेपनैः शंखतूर्यनिर्घोषैः ।
प्रादक्षिण्येन नयेदायतनस्य प्रयत्नेन ॥ १६ ॥
कृत्वा बलिं प्रभूतं सम्पूज्य ब्राह्मणांश्च सभ्यांश्च ।
दत्त्वा हिरण्यशकलं विनिक्षिपेत्पिण्डिकाश्वभ्रे ॥ १७ ॥
स्थापकदैवज्ञद्विजसभ्यस्थपतीन् विशेषतोऽभ्यर्च्य ।
कल्याणानां भागी भवतीह परत्र च स्वर्गी ॥ १८ ॥

उस प्रतिमा का पुष्प, वस्त्र, चन्दन और सुगन्ध द्रव्यों से पूजन करके शंख और तुरही के शब्दों के साथ अधिवासन मण्डप से प्रदक्षिण क्रम से प्रासाद के अन्दर प्रवेश

करावे। बाद वहाँ पर अनेक प्रकार की बलि देकर वस्त्र, दक्षिणा आदि से सभ्यजनों का पूजन करके, सोने का टुकड़ा देकर पिण्डिका के गड्ढे में प्रतिमा का स्थापन करे। प्रतिष्ठा करने वाला मनुष्य ज्योतिषी, सभ्य मनुष्य, कारीगर इन सबों का विशेष रूप से पूजन करे। इस तरह करने वाला मनुष्य इस लोक में कल्याणों का भागी होता है और परलोक में स्वर्ग पाता है ॥ १६-१८ ॥

प्रतिमा प्रतिष्ठापन के अधिकारी—

विष्णोर्भागवतान् मगांश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजान् ।
मातॄणामपि मण्डलक्रमविदो विप्रान् विदुर्ब्रह्मणः ।
शाक्यान् सर्वहितस्य शान्तमनसो नग्नान् जिनानां विदु-
र्ये यं देवमुपाश्रिताः स्वविधिना तैस्तस्य कार्या क्रिया ॥ १९ ॥

विष्णु की प्रतिष्ठा वैष्णव, सूर्य की प्रतिष्ठा मगब्राह्मण, शिव की प्रतिष्ठा भस्म लगाने वाले ब्राह्मण, मातृकाओं की प्रतिष्ठा मण्डल क्रम जानने वाले ब्राह्मण, ब्रह्मा की प्रतिष्ठा ब्राह्मण, जितेन्द्रिय बुद्ध की प्रतिष्ठा रक्ताम्बरधारी और जिन की प्रतिष्ठा दिगम्बर क्षपणक करे। जो मनुष्य जिस देवता का परम उपासक हो वह उस देवता की क्रिया करे ॥ १९ ॥

प्रतिष्ठा का समय—

उदगयने सितपक्षे शिशिरगभस्तौ च जीववर्गस्थे ।
लग्ने स्थिरे स्थिरांशे सौम्यैर्धीधर्मकेन्द्रगतैः ॥ २० ॥
पापैरुपचयसंस्थैर्ध्रुवमृदुहरितिष्यवायुदेवेषु ।
विकुजे दिनेऽनुकूले देवानां स्थापनं शस्तम् ॥ २१ ॥

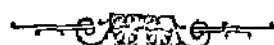
उत्तरायण में, शुक्ल पक्ष में, चन्द्र और गुरु के षड्वर्ग में, स्थिर लग्न में, स्थिर नवांश में, शुभग्रह पञ्चम, नवम, लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान में हों, पापग्रह तृतीय, षष्ठ, दशम और एकादश में हों, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, पुष्य और स्वाती नक्षत्रों में, मङ्गल को छोड़कर शेष दिन में और प्रतिष्ठा करने वाले के शुभ करने वाले समय में देवता का स्थापन शुभ है ॥ २०-२१ ॥

उपसंहार में आचार्य का वक्तव्य—

सामान्यमिदं समासतो लोकानां हितदं मया कृतम् ।
अधिवासनसन्निवेशने सावित्रे पृथगेव विस्तरात् ॥ २२ ॥

यह संक्षेप में सामान्य रूप से प्रतिमा का प्रतिष्ठापन विधान मैंने कहा है। सूर्य की प्रतिमा का अधिवासन और प्रतिष्ठापन विधान सौर शास्त्र में अलग ही कहा है ॥२२॥

इति विमला हिन्दी टीकायां प्रतिमा प्रतिष्ठापनाध्यायः षष्टितम ॥ ६० ॥



अथ गोलक्षणाध्यायः

इसमें पहले आगम प्रदर्शन—

पराशरः प्राह बृहद्रथाय गोलक्षणं यत् क्रियते ततोऽयम् ।
मया समासः शुभलक्षणास्ताः सर्वास्तथाप्यागमतोऽभिधास्ये ॥१॥

पराशर मुनि ने अपने शिष्य बृहद्रथ को जो गोलक्षण कहा है, यहाँ पर मैं उसका संक्षेप करता हूँ। यद्यपि सब गौ शुभ लक्षण वाली होती हैं तथापि मुनिप्रणीत शास्त्र से लेकर उनका शुभाशुभ लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥

गौ के अशुभ लक्षण—

साम्राविलरूक्षाक्ष्यो मूषकनयनाश्च न शुभदा गावः ।
प्रचलच्चिपिटविषाणाः करटाः खरसदृशवर्णाश्च ॥ २ ॥
दशसप्तचतुर्दन्त्यः प्रलम्बमुण्डानना विनतपृष्ठयः ।
ह्रस्वस्थूलग्रीवा यवमध्या दारितखुराश्च ॥ ३ ॥
श्यावातिदीर्घजिह्वा गुल्फैरतितनुभिरतिबृहद्भिर्वा ।
अतिककुदाः कृशदेहा नेष्टा हीनाधिकाङ्ग्यश्च ॥ ४ ॥

आसुओं से भरी आँख वाली, गँदली आँख वाली, रूखी आँख वाली, चूहे के समान आँख वाली, हिलते हुये सींग वाली, चपटे सींग वाली, कृष्ण, लोहित वर्ण वाली और गदहे के समान वर्ण वाली गौ शुभ देने वाली नहीं होती है। दश, सात या चार दाँत वाली, लम्बे मुख वाली, बिना सींग वाली, झुकी हुई पीठ वाली, छोटी तथा मोटी गरदन वाली, जौ के समान मध्य से मोटी, फटे हुये खुर वाली, श्याम रंग की लम्बी जिह्वा वाली, बहुत छोटे, बहुत बड़े या बहुत मोटे गुल्फ वाली, दुबली, कम अंग वाली या अधिक अङ्ग वाली गौ शुभ देने वाली नहीं होती है। यहाँ पर पराशर—

साश्रुणी लोचने यासां रूक्षारूक्षे च न ताः शुभाः । चलच्चिपिटशृङ्गाश्च करटाः खरसन्निभाः ।
दशसप्तचतुर्दन्त्योऽलम्बवक्त्रा न ताः शुभाः । विषाणवर्जिता ह्रस्वाः पृष्ठमध्यातिमन्नताः ॥
ह्रस्वस्थूलगला याश्च यवमध्याः शुभा न ताः । भिन्नपादा बृहद्गुल्फा याश्च स्युस्तनुगुल्फकाः ॥
श्यावातिदीर्घजिह्वाश्च महत्ककुदसंयुताः । याश्चातिकृशदेहाश्च हीना अवयवैश्च याः ॥
न ताः शुभप्रदा गावो भर्तुर्यूथस्य नाशनाः ॥ २-४ ॥

बैल के अशुभ लक्षण—

वृषभोऽप्येवं स्थूलातिलम्बवृषणः शिराततक्रोडः ।
स्थूलशिराचितगण्डस्त्रिस्थानं मेहते यश्च ॥ ५ ॥
मार्जाराक्षः कपिलः करटो वा न शुभदो द्विजस्यैव ।
कृष्णोष्ठतालुजिह्वः श्वसनो यूथस्य घातकरः ॥ ६ ॥

पूर्व कथित लक्षणों से युक्त बैल भी शुभ नहीं होता है। तथा मोटे और लम्बे अण्डकोश वाला, शिराओं से व्याप्त पूर्व पादद्वय वाला, मोटी शिराओं से व्याप्त कपोल वाला, तीन स्थानों से मेहन करने वाला (जिसके नेत्रों से आँसू और लिङ्ग से मूत्र और पुरीष एक साथ

गिरता हो वह), बिल्ली के समान नेत्र वाला, पीला और कृष्णलोहित वर्ण वाला बैल ब्राह्मण को भी शुभ देने वाला नहीं होता है अन्य वर्णों की तो बात ही क्या। तथा जिसके ओठ, तालु या जीभ काले हैं और हाँफने वाला बैल अपने यूथ का नाश करता है ॥ ५-६ ॥

स्थूलशकृन्मणिशृङ्गः सितोदरः कृष्णसारवर्णश्च ।

गृहजातोऽपि त्याज्यो यूथविनाशावहो वृषभः ॥ ७ ॥

स्थूल गोबर, स्थूल लिङ्ग का अग्रभाग और स्थूल सींग वाला, सफेद पेट वाला और कृष्ण लोहित वर्ण वाला बैल यदि अपने घर में भी उत्पन्न हुआ हो तो भी उसका त्याग करना चाहिये। वह बैल भी यूथ का नाश करने वाला होता है ॥ ७ ॥

बैल के और अशुभ लक्षण—

श्यामकपुष्पचिताङ्गो भस्मारुणसन्निभो बिडालाक्षः ।

विप्राणामपि न शुभं करोति वृषभः परिगृहीतः ॥ ८ ॥

जिस बैल के देह में श्याम वर्ण के फूल के समान चिह्न हो, सफेद और लाल मिश्रित वर्ण हो और बिल्ली के समान नेत्र हो, ग्रहण किया हुआ ऐसा बैल ब्राह्मणों का भी शुभ नहीं करता है ॥ ८ ॥

ये चोद्धरन्ति पादान् पङ्कादिव योजिताः कृशग्रीवाः ।

कातरनयना हीनाश्च पृष्ठतस्ते न भारसहाः ॥ ९ ॥

गाड़ी आदि में जोड़ा हुआ बैल कर्दम में गड़े हुये पाँव को उठाने की तरह पाँव उठाता हो वह, दुर्बल ग्रीवा वाला और छोटी या दबी हुई पीठ वाला बैल भार उठाने में समर्थ नहीं होता है। यहाँ पर पराशर—

आपाद्वपारदपिण्डाः कृष्णपुष्पचिताश्च ये। मार्जारकपिलाक्षाश्च दुर्बला यूथघातिनः ॥

पङ्कादिवार्त्ता. पादानुद्धरन्तो व्रजन्ति ये। अधूर्वहा भवन्त्येते भाराध्वनि विगर्हिताः ॥ ९ ॥

शुभ बैल के लक्षण—

मृदुसंहतताम्रोष्ठास्तनुस्फिजस्ताम्रतालुजिह्वाश्च ।

ह्रस्वतनूच्चश्रवणाः सुकुक्षयः स्पृष्टजंघाश्च ॥ १० ॥

आताम्रसंहतखुरा व्यूढोरस्का बृहत्ककुदयुक्ताः ।

स्निग्धश्लक्ष्णतनुत्वग्रोमाणस्ताम्रतनुशृङ्गाः ॥ ११ ॥

तनुभूस्पृग्वालधयो रक्तान्तविलोचना महोच्छ्वासाः ।

सिंहस्कन्धास्तन्वल्पकम्बलाः पूजिताः सुगमाः ॥ १२ ॥

कोमल, मिले हुये और ताम्र वर्ण के समान ओंठ वाले, छोटी कटिस्थ मांस पिण्ड वाले, ताम्र वर्ण के तालु और जीभ वाले, छोटे-पतले तथा ऊँचे कान वाले, सुन्दर पेट वाले, सीधी जघा वाले, ताम्र वर्ण के मिले हुये खुर वाले, मजबूत छाती वाले, बड़ी थूही वाले, चिकने, कोमल तथा पतले त्वचा और रोम वाले, ताम्र वर्ण के सींग तथा शरीर वाले, पतली और भूमि को स्पर्श करने वाली पूँछ वाले, लाल नेत्रान्त वाले, अधिक साँस लेने वाले, सिंह के समान कंधा वाले, पतले और छोटे गल कम्बल वाले और सुन्दर गति वाले बैल अच्छे होते हैं ॥ १०-१२ ॥

वामावर्त्तैर्वामे दक्षिणपार्श्वे च दक्षिणावर्त्तैः।
शुभदा भवन्त्यनडुहो जङ्घाभिश्चैणकनिभाभिः॥ १३॥

जिनके वाम पार्श्व में वामावर्त और दक्षिण पार्श्व में दक्षिणावर्त रोमों से युक्त हो तथा जिनकी जंघा ऐणक (मृग) की जंघा के समान हो ऐसे बैल शुभ होते हैं॥ १३॥

वैदूर्यमल्लिकाबुद्बुदेक्षणाः स्थूलनेत्रपक्ष्माणः।
पार्ष्णिभिरस्फुटिताभिः शस्ताः सर्वे च भारसहाः॥ १४॥

वैदूर्य मणि, मल्लिका (बेला) पुष्प, या जल बुद्बुद के समान नेत्र वाले, स्थूल नेत्र और शरीर वाले, खुर के पिछले भाग फूटे न हों ऐसे बैल शुभ तथा भार उठाने में समर्थ होते हैं। यहाँ पर शालिहोत्र—

शुक्लाभिसरितिप्ते यस्यास्तलोचने शुभे। मल्लिकाख्यो महाधन्य स महाकृष्णतारकः॥१४॥

घ्राणोद्देशे सवलिर्मार्जारमुखः सितश्च दक्षिणतः।
कमलोत्पललाक्षाभः सुवालधिर्वाजितुल्यजवः॥ १५॥
लम्बैर्वृषणैर्मेषोदरश्च संक्षिप्तवङ्क्षणक्रोडः।
ज्ञेयो भाराध्वसहो जवेऽश्वतुल्यश्च शस्तफलः॥ १६॥

जिसके नाक के समीप वलि हो, बिल्ली के समान मुख हो, दाहिना भाग सफेद हो, कमल या लाख के समान कान्ति हो, अच्छी पूँछ हो, घोड़े के समान गति हो, लम्बे अण्डकोश हों, भेड के समान पेट हों, पिछली जङ्घा और अण्डकोश के मध्य भाग तथा अगली जङ्घाओं के मध्य भाग सङ्कुचित हो ऐसा बैल भार उठाने में तथा चलने में समर्थ होता है। तथा घोडे के समान गति वाला बैल शुभ फल देने वाला होता है॥ १५-१६॥

सितवर्णः पिङ्गाक्षस्ताम्रविषाणेक्षणो महावक्त्रः।
हंसो नाम शुभफलो यूथस्य विवर्धनः प्रोक्तः॥ १७॥

सफेद वर्ण वाला, ताम्र वर्ण के सींग और आँख वाला तथा बड़े मुख वाला बैल हंस संज्ञक होता है। यह बैल शुभ फल देने वाला तथा यूथ को बढ़ाने वाला होता है॥ १७॥

भूस्पृग्वालधिराताम्रविषाणो रक्तदृक्ककुद्मांश्च।
कल्माषश्च स्वामिनमचिरात् कुरुते पतिं लक्ष्म्याः॥ १८॥

जिसकी पूँछ भूमि को छूती हो, ताम्र वर्ण के सींग हो, लाल आँख हो, थूहों से युक्त हो और कल्माष (लाल सफेद और पीला मिश्रित) वर्ण हो ऐसा बैल शीघ्र अपने स्वामी को धनी बनाता है॥ १८॥

यो वा सितैकचरणैर्यथेष्टवर्णश्च सोऽपि शुभफलकृत्।
मिश्रफलोऽपि ग्राह्यो यदि नैकान्तप्रशस्तोऽस्ति॥ १९॥

किसी भी रंग के बैल के यदि चारों पाँव सफेद हों तो शुभ करने वाला होता है। यदि सर्वथा शुभ लक्षण युत बैल न मिले तो मिश्रित फल वाला भी ग्रहण करना चाहिये। परन्तु इसमें शुभ फल की मात्रा अधिक होनी चाहिये।

यहाँ पर पराशर—

मृदुसंहतताम्रोष्ठास्तनुजिह्वास्तनुस्फिज । वैदूर्यमधुवर्णैश्च जलबुद्बुदसन्निभैः ॥
रक्तस्निग्धैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीनिकैः । सिंहस्कन्धा महोरस्का दृढपुष्टाः ककुद्मिनः ॥
भूमौ कर्षति लाङ्गूलं प्रलम्बस्थूलवालधि । पुरस्तादुन्नता नीचाः पृष्ठतः सुसमाहिताः ॥
वृत्ताङ्गाः स्थूलगात्राश्च विस्तीर्णजघनाश्च ये । स्पष्टताम्रतनुश्लक्ष्णैः शफैरविरलैर्दृढैः ॥
समुद्गवरसंस्थानैः समास्फुटितपार्ष्णिभिः । वृत्तस्थूलोद्गतग्रीवा ककुदैश्च समुच्छ्रितैः ॥
एते भारसहा ज्ञेया धुरि याने च पूजिताः । आवर्तैर्दक्षिणावर्तैर्युक्ता दक्षिणतश्च ये ॥
वामावर्तैर्वामतश्च संयुक्तास्तेऽपि पूजिताः । प्रलम्बवृषणोरस्थं सच्छिद्रोदरवङ्क्षणः ॥
विस्तीर्णवक्षो जघनो भारे याने च पूजितः । स्निग्धपिङ्गेक्षणश्वेतस्ताम्रशृङ्गो महानस ॥
स तु गौः पद्मको नाम गोसहस्रप्रवर्धनः ॥ १९ ॥

इति हिन्दी विमला टीकायां गोलक्षणाध्याय एकषष्टितमः ॥ ६१ ॥



अथ श्वलक्षणाध्यायः

कुत्ते का लक्षण—

पादाः पञ्चनखास्त्रयोऽग्रचरणः षड्भिर्नखैर्दक्षिण-
स्ताम्रोष्ठाग्रनसो मृगेश्वरगतिर्जिघ्रन् भुवं याति च ।
लाङ्गूलं ससटं दृगृक्षसदृशी कर्णौ च लम्बौ मृदू
यस्य स्यात् स करोति पोष्टुरचिरात्पुष्टां श्रियं श्वा गृहे ॥१॥

जिस कुत्ते के तीन पांवों में पांच २ नह और शेष आगे के दाहिने एक पांव में छ नह हों, ओंठ और नाक के आगे का भाग ताम्र वर्ण का हो, सिंह के समान गति हो, भूमि को सूंघता हुआ चलता हो, पूँछ बहुत बालों से युत हो, भालू के समान आँख हो तथा दोनों कान लम्बे और कोमल हों तो ऐसा कुत्ता अपने स्वामी के घर में परिपूर्ण लक्ष्मी करता है ॥१॥

यहाँ पर गर्ग—

अथ पादाः पञ्च नखा अग्रगो दक्षिणस्तथा । षण्नखस्ताम्रनासो यस्ताम्रोष्ठः सिंहविक्रमः ॥
महीं जिघ्रन् मुदा याति लाङ्गूलं जटिलं तथा । ऋक्षाभे चक्षुषी कर्णौ मृदू चातिप्रलम्बितौ ॥
स श्वा नृपस्य महतीं श्रियं यच्छति पोषितुः ॥ १ ॥

कुतिया का लक्षण—

पादे पादे पञ्च पञ्चाग्रपादे वामे यस्याः षण्नखा मल्लिकाक्ष्याः ।
वक्रं पुच्छं पिङ्गलालम्बकर्णा या सा राष्ट्रं कुक्कुरी पाति पुष्टा ॥ २ ॥

जिस कुतिया के तीन पाँवों में पाँच २ नह और अगले बाँये पाँव में छः नह हों, मल्लिका (बेला पुष्प) के समान आँख हो, टेढ़ी पूछ हो, पीला वर्ण हो और लम्बे कान हो तो ऐसी कुतिया अपने स्वामी के राज्य की रक्षा करती है ॥ २ ॥

इति विमला हिन्दी टीकायां श्वलक्षणाध्यायो द्विषष्टितम ॥ ६२ ॥



अथ कुक्कुटलक्षणाध्यायः

उसमें पहले मुर्गे का शुभाशुभ लक्षण—

कुक्कुटस्त्वृजुतनूरुहाङ्गुलिस्ताम्रवक्त्रनखचूलिकः सितः।
रौति सुस्वरमुषात्यये च यो वृद्धिदः स नृपराष्ट्रवाजिनाम् ॥ १ ॥

जिस मुर्गे के पंख और अङ्गुली सीधी हों, ताम्र वर्ण के मुँह, नख और चोटी हों, सफेद वर्ण हो, रात के आखिर में अच्छे स्वर से बोलता हो ऐसा मुर्गा राजा, राज्य और घोड़ों की वृद्धि करता है। यहाँ पर गर्ग—

श्वेतस्ताम्रनख शुक्लस्ताम्राचरस्त्वृजुवालधिः। अनावृताङ्गुलिः स्वङ्गस्ताम्रचूडः प्रशस्यते॥
सुव्यालापी यवग्रीवो दधिवर्ण शुभाननः। प्रशस्तास्यः स्थूलशिरा हारिद्रचरणो द्विजः॥
अखआरताम्रवक्त्राश्च स्निग्धवर्णाश्च पूजिताः। दीनाश्चैव विवर्णाश्च विस्वराश्च विगर्हिताः॥

यवग्रीवो यो वा वदरसदृशो वापि विहगो
बृहन्मूर्धा वर्णैर्भवति बहुभिर्यश्च रुचिरः।
स शस्तः सङ्ग्रामे मधुमधुपवर्णश्च जयकृ-
न्न शस्तो योऽतोऽन्यः कृशतनुरवः खञ्जचरणः॥ २ ॥

जिस मुर्गे का कण्ठ जौ के समान हो, पके हुये बेर के समान वर्ण हो, बड़ा शिर हो और सफेद, पीला, लाल, काला आदि अनेक वर्णों से युत हो तो ऐसा मुर्गा युद्ध में शुभ होता है। तथा शहद या भ्रमर के समान वर्ण वाला मुर्गा भी युद्ध में विजय करता है। इससे भिन्न वर्ण वाला, दुर्बल शरीर वाला, मन्द शब्द करने वाला और लगड़ा मुर्गा अशुभ होता है॥ २॥

कुक्कुटी च मृदुचारुभाषिणी स्निग्धमूर्तिरुचिराननेक्षणा।
सा ददाति सुचिरं महीक्षितां श्रीयशोविजयवीर्यसम्पदः॥ ३ ॥

जो मुर्गी कोमल और सुन्दर शब्द करती हो, स्निग्ध शरीर वाली हो और सुन्दर मुख और नेत्र हों तो वह राजाओं को चिरकाल पर्यन्त लक्ष्मी, यश, विजय, बल और सम्पत्ति देती है॥३॥

इति विमला हिन्दी टीकायां कुक्कुटलक्षणाध्यायस्त्रिषष्टितमः॥ ६३॥



अथ कूर्मलक्षणाध्यायः

कछुए का शुभ लक्षण—

स्फटिकरजतवर्णो नीलराजीविचित्रः
कलशसदृशमूर्तिश्चारुवंशश्च कूर्मः।
अरुणसमवपुर्वा सर्षपाकारचित्रः
सकलनृपमहत्त्वं मन्दिरस्थः करोति॥ १ ॥

स्फटिक या चाँदी के समान वर्ण वाला, नीली रेखाओं से चित्रित, कलश के समान आकृति वाला, सुन्दर पीठ की हड्डी वाला, लाल वर्ण वाला या सरसों के समान बिन्दुओं से चित्रित कछुआ राजा के महत्त्व को बढ़ाता है ॥ १ ॥

अञ्जनभृङ्गश्यामतनुर्वा बिन्दुविचित्रोऽव्यङ्गशरीरः ।
सर्पशिरा वा स्थूलगलो यः सोऽपि नृपाणां राष्ट्रविवृद्ध्यै ॥ २ ॥

अञ्जन या भ्रमर के समान श्याम वर्ण वाला, बिन्दुओं से चित्रित, सम्पूर्ण अङ्ग वाला और मोटे गले वाला कछुआ राजाओं का राज्य बढ़ाने के लिये होता है ॥ २ ॥

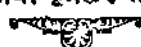
कछुए का और शुभ लक्षण—

वैदूर्यत्विट् स्थूलकण्ठस्त्रिकोणो गूढच्छिद्रश्चारुवंशश्च शस्तः ।
क्रीडावाप्यां तोयपूर्णे मणौ वा कार्यः कूर्मो मङ्गलार्थं नरेन्द्रैः ॥ ३ ॥

वैदूर्य मणि के समान कान्ति वाले, स्थूल कण्ठ वाला, त्रिभुजाकृति वाले, ढके हुये छिद्र वाले या सुन्दर पृष्ठ वंश वाले कछुए को राजा मङ्गल के लिये अपने क्रीडावापी या जल पूर्ण मटके में रक्खे। यहाँ पर गर्ग—

शङ्खदर्भप्रतीकाशरक्ताभो रजतप्रभः। तथा वैदूर्यवर्णाभो यो भवेदष्टसर्पपः ॥
यश्च वा कोकिलाभासो राजीवाभश्च यो भवेत्। पीतकाञ्चनवर्णस्तु पुण्डरीकसमप्रभः ॥
गोधामुख त्रिकोणं च तथा मण्डलवर्धनम्। स्त्रीपुत्रमतिदं विन्द्यात् कूर्मं राष्ट्रविवर्धनम् ॥ इति ॥

इति 'विमला' हिन्दी टीकायां कूर्मलक्षणाध्यायश्चतुःषष्टितमः ॥ ६४ ॥



अथ छागलक्षणाध्यायः

छाग के शुभाशुभ लक्षण—

छागशुभाशुभलक्षणमभिधास्ये नवदशाष्टदन्तास्ते ।
धन्याः स्थाप्या वेश्मनि सन्त्याज्याः सप्तदन्ता ये ॥ १ ॥

बकरे का शुभाशुभ लक्षण कहते हैं। नव, दश या आठ दाँत वाले छाग शुभ होते हैं अतः उनको घर में रखने से शुभ होता है। तथा सात दाँत वाले छाग अशुभ होते हैं अतः उनका बहिष्कार करना चाहिये ॥ १ ॥

छाग के शुभ लक्षण—

दक्षिणपार्श्वे मण्डलमसितं शुक्लस्य शुभफलं भवति ।
ऋष्यनिभकृष्णलोहितवर्णानां श्वेतमतिशुभदम् ॥ २ ॥

जिस छाग के दक्षिण पार्श्व में श्वेत वर्ण के मण्डल हो, ऋष्य (मृग विशेष) के समान कृष्णलोहित वर्ण हो या काले या लाल वर्ण के होते हुये दक्षिण पार्श्व में श्वेत वर्ण के मण्डल हो तो शुभ होता है ॥ २ ॥

स्तनवदवलम्बते यः कण्ठेऽजानां मणिः स विज्ञेयः ।
एकमणिः शुभफलकृद्धन्यतमा द्वित्रमणयो ये ॥ ३ ॥

छागों के गले में स्तन की तरह जो लटका रहता है उसको मणि कहते हैं। एक मणि वाले शुभ और दो या तीन मणि वाले छाग अत्यन्त शुभ होते हैं ॥ ३ ॥

मुण्डाः सर्वे शुभदाः सर्वसिताः सर्वकृष्णदेहाश्च।
अर्धासिताः सितार्धा धन्याः कपिलार्धकृष्णाश्च ॥ ४ ॥

बिना सींग वाले, सम्पूर्ण कृष्ण या श्वेत शरीर वाले, आधे काले और आधे श्वेत वर्ण वाले, आधे पीले और आधे काले रंग वाले ये सब छाग शुभ होते हैं ॥ ४ ॥

कुट्टक छाग के लक्षण—

विचरति यूथस्याग्रे प्रथमं चाम्भोऽवगाहते योऽजः।
स शुभः सितमूर्धा वा मूर्धनि वा कृत्तिका यस्य ॥ ५ ॥

अपने यूथ के आगे चलने वाला, सब से पहले पानी में घुसने वाला, श्वेत वर्ण के शिर वाला या कृत्तिका नक्षत्र की तरह छै विन्दुओं से युत मस्तक वाला छाग शुभ होता है। ऐसे छाग को कुट्टक कहते हैं। यहाँ पर गर्ग—

यूथाग्रे यश्च चरति यथादौ स्वर्सयेजलम्। मूर्ध्नि षट् तिलका यस्य सोऽजो यूथविवर्धनः ॥५॥

कुटिल छाग के लक्षण—

सपृषतकण्ठशिरा वा तिलपिष्टनिभश्च ताम्रदृक् शस्तः।
कृष्णचरणः सितो वा कृष्णो वा श्वेतचरणो यः ॥ ६ ॥

गले और मस्तक पर भिन्न वर्ण के विन्दु वाले, तिल पिष्ट के समान श्वेतपीत वर्ण वाले, ताम्र के समान लाल नेत्र वाले, श्वेत शरीर और काले पाव वाले या काले शरीर और श्वेत पाँव वाले छाग शुभ होते हैं। ऐसे छाग को कुटिल कहते हैं। यहाँ पर गर्ग—

श्वेतो यः कृष्णचरणः कृष्णः श्वेतशफोऽपि वा। पीतरक्ताम्रेक्षणो मूर्ध्नि गले वा पृषतान्वित.॥

जटिल छाग का लक्षण—

यः कृष्णाण्डः श्वेतो मध्ये कृष्णेन भवति पट्टेन।
यो वा चरति सशब्दं मन्दं च स शोभनश्छागः ॥ ७ ॥

जिसका काला अण्डकोश हो, श्वेत वर्ण हो, मध्य भाग में काला पट्टा हो, जो चुगने के समय शब्द करता हो या धीरे धीरे चुगता हो ये सब छाग शुभ होते हैं। ऐसे छाग को जटिल कहते हैं। यहाँ पर गर्ग—

मन्दं सशब्दं चरति श्वेतः कृष्णाण्डसंयुतः। मध्ये कृष्णेन पट्टेन युक्तो यः सोपि वृद्धिदः ॥७॥

वामन छाग का लक्षण—

ऋष्यशिरोरुहपादो यो वा प्राक् पाण्डुरोऽपरे नीलः।
स भवति शुभकृच्छागः श्लोकश्चाप्यत्र गर्गोक्तः ॥ ८ ॥

जिसके ऋष्य (काला मृग) के समान शिर के बाल और पाँव हों या अगले भाग में पाण्डुर वर्ण और पिछले भाग में नीला वर्ण हो वह छाग शुभ होता है। इस छाग को वामन कहते हैं। इस तरह गर्ग का भी श्लोक है ॥ यहाँ पर व्यास—

अथानृष्यसवर्णास्तु हंसवर्णैर्हयोत्तमैः। व्यामिश्रयद्वर्णैः कर्णैः पाण्डवाम्बाद्यन् शरैः ॥
ते हया बहु शोभन्ते विमिश्रा वातरंहसः। सितासिता महावर्गा यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥

यहाँ पर गर्ग—

ऋष्यमूर्धा नीलपादः प्राग्भागे यश्च पाण्डुरः। पश्चिमे नीलवर्णः स्यात्सोऽपि भर्तुर्विवृद्धिदः ॥८॥

पूर्वोक्त छागों का फल—

कुट्टकः कुटिलश्चैव जटिलो वामनस्तथा ।
ते चत्वारः श्रियः पुत्रा नालक्ष्मीके वसन्ति ते ॥ ९ ॥

कुट्टक, कुटिल, जटिल, वामन ये चारों छाग लक्ष्मी के पुत्र हैं और लक्ष्मी रहित देश में नहीं रहते है ॥ ९ ॥

छाग के अशुभ लक्षण—

अथाप्रशस्ताः खरतुल्यनादाः प्रदीप्तपुच्छाः कुनखा विवर्णाः ।
निकृत्तकर्णा द्विपमस्तकाश्च भवन्ति ये चासिततालुजिह्वाः ॥१०॥

गदहे के समान शब्द करने वाले, गर्म या टेढ़ी पूँछ वाले, खराब नख वाले, खराब वर्ण वाले, फटे कान वाले, हाथी के समान मस्तक वाले तथा काली तालु और जीभ वाले छाग अशुभ होते हैं ॥ १० ॥

छाग के शुभ लक्षण—

वर्णैः प्रशस्तैर्मणिभिः प्रयुक्ता मुण्डाश्च ये ताम्रविलोचनाश्च ।
ते पूजिता वेश्मनि मानवानां सौख्यानि कुर्वन्ति यशः श्रियं च ॥११॥

उत्तम वर्ण वाले, मणियों से युत गले वाले, विना सींग वाले और लाल आँख वाले छाग जिनके घर में रहते हैं उनके सुख, यश और लक्ष्मी को बढाते हैं ॥ ११ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां छागलक्षणाध्यायः पञ्चषष्टितमः ॥ ६५ ॥



अथ अश्वलक्षणाध्यायः

उसमें पहले घोड़े का शुभ लक्षण—

दीर्घग्रीवाक्षिकूटस्त्रिकहृदयपृथुस्ताम्रताल्वोष्ठजिह्वः
सूक्ष्मत्वक्केशवालः सुशफगतिमुखो ह्रस्वकर्णोष्ठपुच्छः ।
जङ्घाजानूरुवृत्तः समसितदशनश्चारुसंस्थानरूपो
वाजी सर्वाङ्गशुद्धो भवति नरपतेः शत्रुनाशाय नित्यम् ॥१॥

दीर्घ ग्रीवा और नेत्र कोश वाला, विस्तीर्ण कटि और हृदय वाला, ताम्र वर्ण के तालु, ओंठ और जीभ वाला, सूक्ष्म चर्म, शिर के बाल और पूँछ वाला, सुन्दर शफ (खुर), गति और मुख वाला, छोटे कान, ओंठ और पूछ वाला, गोल जघा, जानु और ऊरु वाला बराबर और सफेद दाँत वाला तथा दर्शनीय आकार और शरीर की शोभा वाला, सर्वाङ्ग शुद्ध घोड़ा सदा राजा के शत्रु के नाश के लिये होता है । यहाँ पर पराशर—

जघन्यमध्यज्येष्ठानामश्वानामायतिर्भवेत् । अङ्गुलानां शत ज्ञेय विंशत्या दशभिस्त्रिभि ॥
परिणाहाङ्गुलानि स्यात् सप्तति सप्तसप्ततिः । एकाशीति समासेन त्रिविधः स्याद्यथाक्रमम् ॥
तथा षड्भिश्चतुष्पष्टिरष्टषष्टिः समुच्छ्रयः । द्विपञ्चसप्तकयुता विंशति· स्यान्मुखायतिः ॥
श्मश्रुहीन मुखं कान्त प्रगल्भ सुक्ष्मनासिकम् । ह्रस्वप्रोथं तनुश्चोष्ठ रक्तगम्भीरतालुकम् ॥
षडब्दमाह्लादशक मृदुनासापुट ह्यम् । दीर्घोद्दतमुग्र ग्रीव ह्रस्वकुक्षिखुरं तथा ॥

विवशं चण्डवेगं च हंसमेघसमस्वनम् । हरितं शुकवर्णं वा श्वेतं कृष्णसमण्डलम् ।
अश्वमीदृशमारोहेद्धस्तेन श्रवणेन वा । आश्विने नोदनाभिज्ञा वाहयेयुर्द्विजातयः ।
तथा च वर्णेनैकेन स्निग्धवर्णो भवेद्यदि । स हन्याद्दुर्णजान् दोषान् देहः सर्वत्र शस्यते ॥

यहाँ पर वररुचि—

ज्ञानं त्रैलोक्यविद्भिर्मुनिभिरभिहितं लक्षणं यद्विशाल
दुर्ज्ञेयं तद्बहुत्वादपि विमलधिया किं पुनर्बुद्धिहीनैः ।
तस्मादेतत् समासात् स्फुटमधुरपदं श्रूयतामश्वसंस्थं ।
वर्णावर्तप्रमाणस्वरगतिसहितैः सत्त्वगन्धैरुपेतम् ॥
रोमत्वक्केशवालैरसितहरिसितैस्तप्तहेमप्रभैश्च
कृष्णः शोणोपलक्षो हरिरिति कथिता मूलवर्णास्तुरङ्गाः ।
ते चान्योन्यानुषङ्गात् पवनवशगता यान्ति भूयो बहुत्व
निर्देशस्तेषु वाच्यो विमलपटुधिया द्रव्यसत्त्वानुरूपः ॥ १ ॥

अशुभ आवर्तों का लक्षण—

अश्रुपातहनुगण्डहृद्गलप्रोथशङ्खकटिवस्तिजानुनि ।
मुष्कनाभिककुदे तथा गुदे सव्यकुक्षिचरणे तथाशुभाः ॥ २ ॥

नेत्र के अधोभाग, हनु, मुख कपोल, हृदय, गल (हृदय और कण्ठ की सन्धि), प्रोथ (नासिका के अधोभाग), शङ्ख (कान के समीप), कटि, बस्ति (नाभि और लिङ्ग के मध्य), जानु, अण्डकोश, नाभि, ककुद (बाहु के पृष्ठ भाग में कृकाटिका के समीप), गुदा, दक्षिण भाग का पेट, पाँव इन अङ्गों में जिसके रोम का आवर्त हो वह घोड़ा अशुभ होता है। यहाँ पर वररुचि—

शङ्खभ्रूगण्डनासाहनुकटिककुदक्रोडकक्षासनस्थैः
मन्याहृज्जानुकूर्चश्रवणगलगुदप्रोथकुक्षश्रुपातैः ।
स्थूरास्फिक्स्कन्धसाधिकफपगवहस्कन्धनाम्यूरुजातै-
रावर्तैरेवमेतैरशुभफलकरैर्वर्जनीयास्तुरङ्गाः ॥ २ ॥

शुभ आवर्तों का लक्षण—

ये प्रपाणगलकर्णसंस्थिताः पृष्ठमध्यनयनोपरि स्थिताः ।
ओष्ठसक्थिभुजकुक्षिपार्श्वगास्ते ललाटसहिताः सुशोभनाः ॥ ३ ॥

प्रपाण (ऊपर के ओंठ के तल), कण्ठ, कान, पीठ के मध्य भाग, नेत्रों के ऊपर, भौंहों के समीप, ओंठ, सक्थि (पिछला भाग), भुज (अगला भाग), जानु, कुक्षि (वाम भाग), पार्श्व, ललाट इन अङ्गों में जिसके आवर्त हों वह घोड़ा अत्यन्त शुभ फल देता है।

यहाँ पर वररुचि—

सक्थिप्रपाणभ्रुवबाहुकण्ठकेशान्तवक्षःश्रवणोपरन्ध्रे ।
रन्ध्रे निगाले च ललाटदेशे ये रोमजास्ते श्रियमावहन्ति ॥

तथा च त्रिलोचनानि—

बालार्काग्निप्रवालद्रुतकनकनिभा वह्निजैश्वर्यवृद्ध्यै ॥
नीलाम्भोजाभवर्णा भवति सलिलजा सर्वदुःखापहर्त्री ।
गम्भीरानेकवर्णा दिशति च तुरगे पार्थिवी सर्वकामान्
वायव्या रूक्षवर्णा त्वशुभफलकरी निन्दिता व्योमजा च ॥

इति कान्ति लक्षणम् ॥

अथ स्वरलक्षणम्—

भेरीशङ्खाब्दसिंहद्विपणवनृवत्निघगम्भीरनादा
वीणापुंस्कोकिलानां मधुरपटुरवा वाजिनो राजवाहाः।
काकोलूकोष्ट्रभास श्वखरवृषरवा रूक्षविच्छिन्नघोषा
अन्ये चैव मकारारवशुभफलकरा हानिशोकप्रदाश्च ॥

अथ गतिलक्षणम्—

त्वरितगति विलासैर्विक्षिपन् पादमुच्चैः
व्रजति नकुलगामी कम्पयन् क शिरआग्रम्।
अथ विकटखुराग्रैर्दह्यमानो यथोर्वीम् स्पृशति चरणपातैस्तैत्तिर तस्य यातम् ॥
स्थिरपदविततांशो दूरमुत्क्षिप्य वक्त्रं व्रजति हि सुविलासैर्बर्हिवर्हिगामी।
सुगधमथ तुरङ्गं योऽधिरूढाव् तदेव स भवति सुखगामी शत्रुनाशं च कुर्यात् ॥
अजमहिषवराहश्चोष्ट्रमार्जारगामी कपिवृषभशृगालैस्तुल्यगामी च योऽश्वः।
स दिशति धननाशं शत्रुवृद्धिं च कुर्याद्भवति च न सुखाय स्वामिन शोकदाता ॥

अथ सत्वगन्धलक्षणमाह—

वर्णावर्तप्रमाणस्वरगतिसहितः सत्वगन्धैरुपेतः
शौचाचाराभिजातिः स्मृतिविनयगुणैरन्वितो दैवसत्वः।
गन्धर्वैर्यातुधानैर्मुनिवरपतिभिस्तुल्यसत्वाः प्रशस्ता
ये चान्ये हीनसत्वारवशुचिमलरता भीरवस्ते विवर्ज्याः ॥
मैरेयाम्भोजसर्पि च्चितिमधुमदिराचन्दनोशीरलाजा
कल्हारा शोकजातीवरतरकुसुमैस्तुल्यगन्धाः प्रशस्ताः।
ये चान्ये क्षारमूत्रक्षतजमलवसावरित निर्मोकगन्धाः
सन्त्याश्यास्तेऽपि नित्यं त्वशुभफलकरा हानिशोकप्रदाश्च ॥
उरो विस्तीर्णं पृथु च जघनं नेत्रयुग्मं सुवद्धं
ग्रीवा चाच्या सुदीर्घा मभुजयुगलकं कण्ठपृष्ठं च ह्रस्वम्।
स्वरो गम्भीररतमुरविरलं चेष्टितं चारु नित्यं
शोभा शारीरिकी स्याद्यदि च तुरगे दीर्घमायुः स जीवेत् ॥
स्थूलोदरकधुवाह्रस्वतनुपृथुजघना दीर्घस्त्वाक्षिघोषा
दुर्गन्धा सर्वगात्रैस्त्वशुगतिविपमालम्बकर्णौष्ठपुच्छाः।
दुर्गन्धा दुष्टशीला विनिपतितमना भीरवो नष्टसञ्ज्ञाः
सर्वाचारैश्च हीना यदि खलु तुरगा घ्नन्ति ह्रस्वायुषस्ते ॥ ३ ॥

घोड़ों के दश भुवावर्त—

तेषां प्रपाण एको ललाटकेशेषु च भ्रुवावर्त्ताः।
रन्ध्रोपरन्ध्रमूर्धनि वक्षसि चेति स्मृतौ द्वौ द्वौ ॥ ४ ॥

घोड़ों के देह में दश रोमावर्त अवश्य होते हैं, इनको भुवावर्त कहते हैं। जैसे प्रपाण और मस्तक के केश में एक एक तथा रन्ध्र (कुक्षि और नाभि के मध्य भाग), रन्ध्र के ऊपरी भाग, मस्तक, छाती इन चार स्थानों में दो दो इस तरह दस भुवावर्त होते हैं ॥४॥

घोड़ों की अवस्थाज्ञानप्रकार—

षड्भिर्दन्तैः सिताभैर्भवति हयशिशुस्तैः कषायैर्द्विवर्षः
सन्दंशैर्मध्यमान्त्यैः पतितमुदितैस्त्र्यब्धिपञ्चाब्दिकाश्वः।

सन्दंशानुक्रमेण त्रिकपरिगणिताः कालिकाः पीतशुक्लाः
काचा मक्षीकशङ्खावटचलनमतो दन्तपातं च विद्धि ॥ ५ ॥

घोड़े के नीचे की दन्तपाली में दाढ़ों के बीच में छै दांत व्यञ्जक होते हैं। दोनों पालियों के आगे के छै दाँत सफेद हों तो एक वर्ष का और कृष्णलोहित हों तो दो वर्ष का बछेरा होता है।

दोनों पालियों के मध्यवर्ती दो दो दाँत सदंश, सदंश के पार्श्ववर्ती दो दो दाँत मध्यम और मध्यम के पार्श्ववर्ती दो दो दाँत अन्त्य कहलाते हैं।

यदि सदंश गिर कर उत्पन्न हुआ हो तो तीन वर्ष का, मध्यम गिर कर उत्पन्न हुआ हो तो चार वर्ष का और अन्त्य गिर कर उत्पन्न हुआ हो तो पाँच वर्ष का घोड़ा होता है।

यदि सदंश के ऊपर काले बिन्दु हों तो छै वर्ष का, मध्यम के ऊपर काले बिन्दु हों तो छै वर्ष का और अन्त्य के ऊपर काले बिन्दु हों तो आठ वर्ष का घोड़ा होता है।

यदि सदंश के ऊपर पीले बिन्दु हों तो नव वर्ष का, मध्यम के ऊपर पीले बिन्दु हों तो दश वर्ष का और अन्त्य के ऊपर पीले बिन्दु हों तो बारह वर्ष का घोड़ा होता है।

यदि सदंश के ऊपर श्वेत बिन्दु हों तो बारह वर्ष का, मध्यम के ऊपर श्वेत बिन्दु हों तो तेरह वर्ष का और अन्त्य के ऊपर श्वेत बिन्दु हों तो चौदह वर्ष का घोड़ा होता है।

यदि सदंश के उपर काच की तरह सफेद बिन्दु हों तो पन्द्रह वर्ष का, मध्यम के ऊपर काच की तरह सफेद बिन्दु हों तो सोलह वर्ष का और अन्त्य के ऊपर काच की तरह सफेद बिन्दु हों तो सत्रह वर्ष का घोड़ा होता है।

यदि सदंश के ऊपर शहद के रङ्ग के बिन्दु हों तो अठारह वर्ष का, मध्यम के ऊपर शहद के रंग के बिन्दु हों तो उन्नीस वर्ष का और अन्त्य के ऊपर शहद के रंग के बिन्दु हों तो बीस वर्ष का घोड़ा होता है।

यदि सदंश के ऊपर शङ्ख के रंग के बिन्दु हों तो इक्कीस वर्ष का, मध्यम के ऊपर शङ्ख के रंग के बिन्दु हों तो बाईस वर्ष का और अन्त्य के ऊपर शङ्ख के रंग के बिन्दु हों तो तेईस वर्ष का घोड़ा होता है।

यदि सदंश के ऊपर छिद्र हों तो चौबीस वर्ष का, मध्यम के ऊपर छिद्र हों तो पचीस वर्ष का और अन्त्य के ऊपर छिद्र हो तो छब्बीस वर्ष का घोड़ा होता है। यदि सदंश हिलता हो तो सत्ताईस वर्ष का, मध्यम हिलता हो तो अट्ठाईस वर्ष का और अन्त्य हिलता हो उन्तीस वर्ष का घोड़ा होता है। यदि सदंश गिर गया हो तो तीस वर्ष का, मध्यम गिर गया हो तो एकतीस वर्ष का और अन्त्य गिर गया हो तो बत्तीस वर्ष का घोड़ा होता है। यहाँ वररुचि—

सन्दंशं मध्यमन्त्यं दशनयुगमधः सोत्तरं वर्षजाते
रफीत (?) व्यब्दे कषायं पतितसमुदितं त्रिचतुष्पञ्चकेषु।
श्रोणीनेकैकमब्दान् सितहरिसितकाचमाक्षीकशङ्खा
छिद्रं चालं च्युतिश्च प्रभवति तुरगे लक्षणं वर्षजानाम् ॥ ५ ॥

प्रसङ्गवश प्रदेशाध्य—

अविज्ञाय प्रदेशांस्तु भिषक् कर्मसु मुह्यति। प्रदेशोद्देशविज्ञानमतो यत्नेन वाजिनाम् ॥
वक्ष्यते तेष्वधीना हि सिद्धिः कर्मसु सर्वदा। जिह्वा कण्ठे निबद्धा हि गलनालं च तत् स्मृतम् ॥
सुनाधस्तात् तु जिह्वायास्तालुस्तस्यास्तयोपरि। पीठ्यौ हनुनिबद्धा हि दृष्टे तासामयाग्रजे ॥
ततो द्विजा व्यञ्जनिनस्तेषामुपरि चोत्तराः। अधरताद्द्विजदंष्ट्राणां मध्ये तु चिबुकं स्मृतम् ॥

दशनाच्छादनावोष्ठौ तयोः पार्श्वे च सृक्किणी। प्रपाणमुत्तरौष्ठस्य स्यादूर्ध्वं प्रोथमेव च॥
नासापुटौ प्रोथपार्श्वे घोणा प्रोथाग्रिममध्यतः। नासावशोऽग्रचौ गल्लौ चीरिके च तयोपरि॥
घोणाहन्वन्तरे गण्डौ तयोर्मध्येऽश्रुपातनम्। नेत्रे तथोपरि स्यातां तयोः प्रच्छादनं तत॥
अभ्यन्तरं सितं कृष्णं दृष्टिमण्डलमेव च। कनीनिके चान्तकोणे तथापाङ्गौ च बाह्यतः॥
वर्त्मोपरि च पक्ष्माणि अक्षिकूटे तथोपरि। भ्रुवौ तयोपरिष्टात् तु ललाटं भ्रूभ्रुवान्तरम्॥
भ्रुवं ललाटोपरि च शिरः कर्णोत्तरं भवेत्। तदाश्रितो मस्तकश्च कर्णौ तस्यैव पार्श्वयोः॥
कर्णमूले शष्कुली स्यात् कर्णशङ्कान्तरे कटः। कटापाङ्गान्तरे शङ्खौ घटी बाह्ये च शङ्खयोः॥
चिबुकस्योपरि हनू गण्डावुपरि चैतयोः। हन्वोश्च गलनाड्योश्च निगालो मध्य उच्यते॥
निगालाग्रे गलः कण्ठौ वक्षः क्रोडोऽथ हस्ततः। विदुर्मन्दविदुश्चैव कर्णस्याधः पडङ्गुले॥
विद्वोरुभयतोऽधस्तान्मध्ये कण्ठनिबन्धनम्। शिरो बाह्वन्तरे ग्रीवा जत्रुग्रीवान्तरे वहः॥
स्कन्धस्य चोपरिग्रीवा तस्याश्चोपरि केसरम्। बाहुतो जत्रुतश्चोक्ताः काकसं ककुदं ततः॥
आसनं चैव पृष्ठं च पृष्ठवंशस्ततः परम्। ककुदावस्थितावसौ बाहू चांसनिबन्धनौ॥
क्रोडाधस्तात्तथा बाहू बाह्वोर्बाह्ये षडङ्गुले। बाह्वोरभ्यन्तरे कक्ष्या पार्श्वतस्तौ च वक्षसः॥
किणौ चाभ्यन्तरे विन्द्यादधस्ताज्जानुनी मते। जान्वोः कापालिके चाधो मन्दिरं जानुपृष्ठतः॥
जङ्घे च जानुनोऽधस्तात् पृष्ठतश्च कले मते। जङ्घाकलान्तरे ईषे परिहस्तस्तथाग्रतः॥
पृष्ठतः परिहस्तस्य कूर्चौ सन्मध्यगौ किणौ। कूर्चाधस्तात् कुष्ठिके च खुरसन्धिस्ततः खुरः॥

पृष्ठतः पार्ष्णिशीर्षे च पार्ष्ण्यौ नखशिखातलम्।
तलमध्ये तु मण्डूक्यौ चीरिके च तलान्तरे॥

हृत्परो नाभिवंशश्च नाभेस्तु जठरं परम्। हृत्राभिमूत्रकोशान्तः रोमराज्यन्तरे मता॥

तदधो मेहनं कोशस्ततो मुष्कफलं ततः।
अधस्तात् कटिसन्धेः स्यादूरुसन्धिस्तथोपरि॥

सक्थिनी फलबन्धश्च ऊरुपाण्डुरिहोच्यते। ऊरोरूर्ध्वे पाण्डुपिण्डौ वक्त्रसन्धी ततः स्थुरम्
स्थूराधो मन्दिरं प्रोक्तौ शकू तन्मध्यजौ किणौ। स्थूराधस्तात् पूर्वमुक्तं पृष्ठतश्च विभावयेत्॥
गात्रद्वयं शिरोग्रीवं पूर्वकायः स उच्यते। जघनं त्रिकपुच्छं च गात्रे द्वे चापि पश्चिमे॥
प्रदेशा मध्यमा ये च सोऽन्तकायः प्रकीर्तितः। शारीराश्चाश्च षट् प्रोक्ता मुख गात्राणि वालधि॥
नखरोमाणि वालाश्च केशाश्चावयवाः स्मृताः। विन्यस्ता वक्त्रपुच्छान्त मध्ये हीनादिकं तथा॥
अत्र नोक्तं तु यत्किञ्चिद्विन्द्यात् तदपि युक्तितः। इति प्रदेशा व्याख्याता वाजिनां देहसंश्रयाः॥

तान् विज्ञाय भिषक् कर्म प्रयुञ्जन्नापराध्यति।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामश्वलक्षणाध्यायः षट्षष्टितमः॥ ६६॥

अथ हस्तिलक्षणाध्यायः

गजों की भद्र, मन्द, मृग, मिश्र ये चार जातियाँ होती हैं, उनमें पहले भद्र का लक्षण—

मध्वाभदन्ताः सुविभक्तदेहा न चोपदिग्धा न कृशाः क्षमाश्च।
गात्रैः समैश्चापसमानवंशा वराहतुल्यैर्जघनैश्च भद्राः॥ १॥

शहद के समान रंग के दाँत वाले, अवयवों के विभाग से परिपूर्ण, बहुत स्थूल, बहुत दुर्बल, कार्यक्षम, तुल्य अङ्गों से युत, धनुषाकार पृष्ठवंश (पीठ की हड्डी वाले) तथा सूअर के समान वर्तुलाकार जानु और कमर वाले हाथी भद्रसंज्ञक होते हैं॥ १॥

मन्दसंज्ञक हस्ती का लक्षण—

वक्षोऽथ कक्षावलयः श्लथाश्च लम्बोदरस्त्वग्बृहती गलश्च।

स्थूला च कुक्षिः सह पेचकेन सैंही च दृङ्मन्दमतङ्गजस्य ॥ २ ॥

जिसके छाती और कक्षावलय (शरीर के मध्य का वलय) ढीले हों, पेट लम्बा हो, स्थूल चमड़ा, कंठ, पेट और पूँछ के जड़ा हो तथा सिंह के समान दृष्टि हो वह हाथी मन्दसंज्ञक होता है ॥ २ ॥

मृग और संकीर्ण का लक्षण—

मृगास्तु ह्रस्वाधरवालमेढ्रास्तन्वङ्घ्रिकण्ठद्विजहस्तकर्णाः ।

स्थूलेक्षणाश्चेति यथोक्तचिह्नैः सङ्कीर्णनागा व्यतिमिश्रचिह्नाः ॥३॥

जिनके नीचे ओंठ, पूँछ के बाल और लिङ्ग छोटे हों, पाँव, कंठ, दाँत, सूँड और कान छोटे हों तथा बड़ी आँख हों वे हाथी मृगसंज्ञक होते हैं। पूर्वोक्त तीनों हाथियों के लक्षण मिश्रित रूप से जिनमें मिलते हैं वे हाथी संकीर्णसंज्ञक होते हैं ॥ ३ ॥

पूर्वोक्त हाथियों की ऊँचाई, लम्बाई और मोटाई का प्रमाण—

पञ्चोन्नतिः सप्त मृगस्य दैर्घ्यमष्टौ च हस्ताः परिणाहमानम् ।

एकद्विवृद्धावथ मन्दभद्रौ सङ्कीर्णनागोऽनियतप्रमाणः ॥ ४ ॥

मृग जाति की ऊँचाई पाँच हाथ, पूँछ से लेकर कुम्भ तक लम्बाई सात हाथ और मध्य की मोटाई आठ हाथ होती है। मृग की ऊँचाई आदि में एक एक हाथ बढ़ाने से मन्द की और दो दो हाथ बढ़ाने से भद्र की ऊँचाई आदि का प्रमाण होता है। संकीर्ण जाति के हाथियों की ऊँचाई आदि का प्रमाण अनिश्चित होता है। यहाँ पर पराशर—

परिणाहो दशसमो नवायामः स उच्छ्रयः। सप्तज्येष्ठप्रमाणस्य नागस्य समुदाहृतः ॥

उद्देष्टात् सप्तमभागोनो मध्यमो मध्यमाद्गजः। अन्त्यः षड्भागहीनः स्यादतोऽन्यो न स पूजितः॥

मुखादापेचकं दैर्घ्यं पृथुपार्श्वोदरान्तरम्। अनाह उच्छ्रय. पादाद्विज्ञेयो यावदासनम् ॥४॥

हस्तिमद के वर्ण का लक्षण—

भद्रस्य वर्णो हरितो मदश्च मन्दस्य हारिद्रकसन्निकाशः ।

कृष्णो मदश्चाभिहितो मृगस्य सङ्कीर्णनागस्य मदो विमिश्रः॥५॥

भद्रजाति के हाथी का मद हरा, मन्दजाति के हल्दी के समान पीला, मृगजाति के काला और संकीर्णजाति के हाथी का मद मिश्रित वर्ण का होता है ॥ ५ ॥

हाथियों के शुभ लक्षण—

ताम्रोष्ठतालुवदनाः कलविङ्कनेत्राः
स्निग्धोन्नताग्रदशनाः पृथुलायतास्याः ।
चापोन्नतायतनिगूढनिमग्नवंशा-
स्तन्वेकरोमचितकूर्मसमानकुम्भाः ॥ ६ ॥

विस्तीर्णकर्णहनुनाभिललाटगुह्याः
कूर्मोन्नतद्विनवविंशतिभिर्नखैश्च ।
रेखात्रयोपचितवृत्तकराः सुवाला
धन्याः सुगन्धिमदपुष्करमारुताश्च ॥ ७ ॥

ताम्रवर्ण के ओंठ, तालु और मुख वाला, घरों में रहने वाले पक्षियों के समान नेत्र वाला, स्निग्ध और उन्नत दाँत के अग्रभाग वाला, विस्तीर्ण और दीर्घ मुख वाला, धनु के समान उन्नत, दीर्घ, निगूढ़ और निमग्न पृष्ठवंश वाला, कछुए के समान कुम्भों में एक एक सूक्ष्म रोम वाला, विस्तीर्ण कान, हनु, नाभि, ललाट और लिंग वाला, कछुए के समान अट्ठारह या बीस नख वाला, तीन रेखाओं से युत, वर्तुलाकार सूँड वाला तथा सुगन्ध युत मदार्द्र शुंड-वायु वाला हाथी शुभ होता है ॥ ६-७ ॥

दीर्घाङ्गुलिरक्तपुष्कराः सजलाम्भोदनिनादबृंहिणः ।
बृहदायतवृत्तकन्धरा धन्या भूमिपतेर्मतङ्गजाः ॥ ८ ॥

हाथियों के सूँड के अग्रभाग को पुष्कर और पुष्कर के अग्रभाग को अङ्गुली कहते हैं। जिनकी दीर्घ अङ्गुली लाल पुष्कर, जलपूर्ण मेघ गर्जन के समान गल गर्जन, विस्तीर्ण दीर्घ और वर्त्तुलाकार ग्रीवा हो ऐसे हाथी राजा के शुभ होते हैं ॥ ८ ॥

हाथियों के अशुभ लक्षण—

निर्मदाम्यधिकहीननखाङ्गान् कुब्जवामनकमेषविषाणान् ।
दृश्यकोशफलपुष्करहीनान् श्यावनीलशबलासिततालून् ॥ ९ ॥
स्वल्पवक्त्ररुहमत्कुणषण्ढान् हस्तिनीं च गजलक्षणयुक्ताम् ।
गर्भिणीं च नृपतिः परदेशं प्रापयेदतिविरूपफलास्ते ॥ १० ॥

मद रहित, नख और अवयव हीनाधिक वाला, कुब्ज, मेढ़ों के सींगों के समान दाँत वाला, जिसके अंडकोश दिखाई दें, बिना पुष्कर वाला, मलिन, नील, चित्र या कृष्ण तालु वाला, छोटे दाँत या मुखरोम वाला, बिना दाँत वाला, षंढ, हाथी के लक्षण वाली गर्भयुत हथिनी इन सब हाथियों को राजा परदेश में भेज दे क्योंकि ये सब दुष्ट फल देने वाले होते हैं। कुब्ज गज का लक्षण—

सङ्क्षिप्तवक्षो जघनः पृष्ठमध्यसमुन्नतः । प्रमाणहीनस्तथाभि स कुब्जो वारणाधम ॥

वामन गज का लक्षण—

अनाहायामसंयुक्तो योऽतिह्रस्वो भवेद्गज । वामनः स समाख्यातो भर्तुर्नार्थयश प्रदः ॥

मत्कुण गज का लक्षण—

सर्वलक्षणसम्पूर्णो दन्तैस्तु परिवर्जित । मत्कुण. स समाख्यात सग्रामे प्राणघातक ॥

षण्ढ गज का लक्षण—

पादयोः सन्निकर्षः स्यादस्य नागस्य तच्छुत । स षण्ढोऽप्यशनि युद्धे च लक्षणज्ञैर्न पूजित ॥

विकट गज का लक्षण—

अन्याभ्यधिक यस्य विस्तारेण स्तनान्तर । विकट. स च निर्दिष्टो दुर्गातिर्निन्दितो गज. ॥

इति विमलाटीकायां हस्तिलक्षणाध्यायः सप्तषष्टितमः ॥ ६७ ॥

अथ पुरुषलक्षणाध्यायः

अविधेय अर्थ का संग्रह

उन्मानमानगतिसंहतिसारवर्णस्नेहस्वरप्रकृतिसत्वमनूकमादौ ।
क्षेत्रं मृजां च विधिवत् कुशलोऽवलोक्य सामुद्रविद्वदति यातमनागतं वा ॥

उन्मान (अङ्गुलात्मक ऊँचाई), मान (भारीपन), गति (गमन), संहति (घनता), सार, वर्ण, स्नेह (स्निग्धता), स्वर (शब्द), प्रकृति, सत्त्व, अनूक (जन्मान्तरागमन), क्षेत्र (वक्ष्यमाण दस प्रकार के पाद आदि), मृजा (पञ्चमहाभूतमयी शरीरच्छाया) इनको अच्छी तरह जान कर सामुद्रिक शास्त्र ज्ञाता पण्डित मनुष्यों के शुभाशुभ फल कह सकता है ॥ १ ॥

पाँव का शुभाशुभ लक्षण—

अस्वेदनौ मृदुतलौ कमलोदराभौ श्लिष्टाङ्गुली रुचिरताम्रनखौ सुपार्ष्णी।
उष्णौ शिराविरहितौ सुनिगूढगुल्फौ कूर्मोन्नतौ च चरणौ मनुजेश्वरस्य॥

स्वेद रहित, कोमल तल वाले, कमलोदर के समान, सम्मिलित अङ्गुलियों से युत, ताम्र वर्ण के सुन्दर नख वाले, सुन्दर एड़ियों से युत, गरम, शिराओं से रहित, छिपी हुई पाँव के गाँठी वाले और कछुए के पृष्ठ के समान पाँव राजा के होते हैं। यहाँ पर समुद्र—
पादैः समांसैः सुस्निग्धैः सोष्णैः श्लिष्टैः सुशोभनैः । उन्नतैः स्वेदरहितैः शिराहीनैश्च पार्थिवः॥

यहाँ पर गर्ग—
पद्मरक्तोत्पलनिभैस्तथा ध्वजसन्निभैः। नृपाः पादतलैर्ज्ञेया ये चान्ये सुखभागिनः॥ २॥

शूर्पाकारविरूक्षपाण्डुरनखौ वक्रौ शिरासन्ततौ
संशुष्कौ विरलाङ्गुली च चरणौ दारिद्र्यदुःखप्रदौ ।
मार्गायोत्कटकौ कषायसदृशौ वंशस्य विच्छेददौ
ब्रह्मघ्नौ परिपक्वमृद्द्युतितलौ पीतावगम्यारतौ ॥ ३ ॥

शूर्पाकार, अस्निग्ध और पाण्डुर नख वाले तथा वक्र नाड़ियों से युत, सूखे और विरल अङ्गुलियों वाले पाँव दरिद्रता और दुःख देते हैं। मध्य में उन्नत पाण्डुर वर्ण के पाँव मार्ग के लिये होते हैं, अर्थात् मार्ग में चलाते हैं। कषाय (कृष्ण लोहित) पाँव वंश का नाश करते हैं। जिसके आग में पकी हुई मिट्टी के समान पाँव की कान्ति हो वह ब्रह्मघाती होता है। यदि पाँव तल पीले हों तो अगम्या स्त्री में रत होता है। यहाँ पर समुद्र—
शूर्पाकारास्तथा मर्त्यैर्वक्रैः शुष्कैः शिराततैः। सस्वेदैः पाण्डुरैः रूक्षैश्चरणैरतिदुःखिनः॥
उत्कटावध्वनि रतौ कषायौ कुलनाशनौ। ब्रह्मघ्नौ दग्धमृद्वर्णावतिपीतावगम्यदौ॥ ३॥

जङ्घा और ऊरु का लक्षण—

प्रविरलतनुरोमवृत्तजङ्घा द्विरदकरप्रतिमैर्वरोरुभिश्च ।
उपचितसमजानवश्च भूपा धनरहिताः श्वसृगालतुल्यजङ्घाः ॥ ४ ॥

विरल तथा सूक्ष्म रोमों से युत, गजशुण्ड के समान सुन्दर ऊरु वाले तथा पुष्ट और समान जानु वाले मनुष्य राजा होते हैं। एवं कुत्ते और सियार के सदृश जङ्घा वाले मनुष्य धनहीन होते हैं।

यहाँ पर समुद्र—

जङ्घाभिरभिवृत्ताभिरैश्वर्यमभिनिर्दिशेत् । श्रृगालजङ्घा दुःखान्ताः श्वजङ्घा नित्यमध्वगाः॥४॥

जङ्घाओं में रोम का लक्षण—

रोमैकैकं कूपके पार्थिवानां द्वे द्वे ज्ञेये पण्डितश्रोत्रियाणाम् ।
त्र्याद्यैर्निःस्वा मानवा दुःखभाजः केशाश्चैवं निन्दिताः पूजिताश्च॥ ५ ॥

राजाओं की जंघाओं के रोमकूपों में एक २ रोम और पण्डित और श्रोत्रिय की जघाओं के रोम कूपों में दो २ रोम होते हैं। जिनके एक रोमकूप में तीन चार आदि रोम हों वे मनुष्य निर्धन और दुखी होते हैं। कहा भी है—

रोमशाभिस्तु जङ्घाभिर्दुःखदारिद्र्यभागिनः। एकरोमा भवेद्राजा द्विरोमा च महायशाः॥
त्रिरोमा बहुरोमा च नरो भाग्यविवर्जितः॥ ५ ॥

जानु का लक्षण—

निर्मांसजानुर्म्रियते प्रवासे सौभाग्यमल्पैर्विकटैर्दरिद्राः ।
स्त्रीनिर्जिताश्चैव भवन्ति निम्नै राज्यं समांसैश्च महद्भिरायुः ॥६॥

मांस रहित जानुवाला मनुष्य प्रवास में मरता है, तथा छोटे जानु वाला भाग्यशाली, अति विस्तिर्ण जानु वाला दरिद्र, नीचे जानु वाला स्त्रीजित, मांस युत जानु वाला राज्य भोगी और बड़े जानु वाला मनुष्य दीर्घजीवी होता है। यहाँ पर समुद्र—

निर्मांसे जानुनी यस्य प्रवासे म्रियते तु सः। अल्पैर्भवति सौभाग्यं विकटैश्च दरिद्रता ॥
स्त्रीजितः स्यात् तथा निम्नैर्मांसयुक्तैर्नराधिपः। अतिस्थूलैश्चिरं कालं जीवेदैश्वर्यसंयुतः ॥६॥

लिङ्ग का लक्षण—

लिङ्गेऽल्पे धनवानपत्यरहितः स्थूलेऽपि हीनो धनै-
र्मेढ्रे वामनते सुतार्थरहितो वक्रोऽन्यथा पुत्रवान् ।
दारिद्र्यं विनते त्वधोऽल्पतनयो लिङ्गे शिरासन्तते
स्थूलग्रन्थियुते सुखी मृदु करोऽत्यन्तं प्रमेहादिभिः ॥७॥
कोशनिगूढैर्भूपा दीर्घैर्भग्नैश्च वित्तपरिहीनाः ।
ऋजुवृत्तशेफसो लघुशिरालशिश्नाश्च धनवन्तः ॥ ८ ॥

छोटे लिङ्ग वाला मनुष्य धनी और सन्तान रहित, स्थूल लिङ्ग वाला निर्धन, बाईं ओर झुका हुआ लिंग वाला पुत्र तथा धन से रहित, दाहिनी ओर झुका हुआ लिङ्ग वाला पुत्रवान्, नीचे की ओर झुका हुआ लिंग वाला दरिद्र, नाड़ियों से व्याप्त लिंग वाला अल्प पुत्र वाला, स्थूल ग्रन्थि युत लिङ्ग वाला सुखी और कोमल आदि लिङ्ग वाला मनुष्य प्रमेह आदि रोगों से मरण पाने वाला होता है। यहाँ पर समुद्र—

दक्षिणावर्तलिङ्गो यः स भवेत्पुत्रवान् नरः। वामावर्ते तथा कन्या सुबह्वयः संभवन्ति च॥
स्थूलैः शिरालैः कठिनैर्नरा दारिद्र्यभाजनः। ऋजुभिर्वर्तुलैर्लिङ्गैः पुरुषाः सुखभागिनः॥
यस्य पादोपविष्टस्य भूमिं स्पृशति मेहनम्। दुःखितः स तु विज्ञेयो नरो दारिद्र्यभाजनः॥
स्थूलग्रन्थियुते लिङ्गे नरोऽति सुखभाग्भवेत्। लिङ्गेन मृदुना मर्त्यो म्रियते कृच्छ्रपीडितः॥७-८॥

वृषण का लक्षण—

जलमृत्युरेकवृषणो विषमैः स्त्रीचञ्चलः समैः क्षितिपः।

ह्रस्वायुश्चोद्बद्धैः प्रलम्बवृषणस्य शतमायुः ॥ ९ ॥

एक अण्ड वाला मनुष्य पानी में डूब कर मरता है। तथा विषम (छोटे बड़े) अण्ड वाला मनुष्य स्त्रीलंपट, समान अण्ड वाला राजा, ऊपर को खींचे हुये अण्ड वाला अल्पायु और लम्बे अण्ड वाला मनुष्य सौ वर्ष जीता है। यहाँ पर समुद्र—

एकाण्डो जलमृत्युः स्याद्विषमैः स्त्रीषु चञ्चलः। समाण्डो नरनाथश्च संलग्नैरल्पजीवितः ॥
प्रलम्बाण्डः समानां तु शतं जीवति मानवः ॥ ९ ॥

मणि और मूत्र का लक्षण—

रक्तैराढ्या मणिभिर्निर्द्रव्याः पाण्डुरैश्च मलिनैश्च ।
सुखिनः सशब्दमूत्रा निःस्वा निःशब्दधाराश्च ॥ १० ॥
द्वित्रिचतुर्धाराभिः प्रदक्षिणावर्त्तवलितमूत्राभिः ।
पृथिवीपतयो ज्ञेया विकीर्णमूत्राश्च धनहीनाः ॥ ११ ॥
एकैव मूत्रधारा वलिता रूपप्रदा न सुतदात्री ।
स्निग्धोन्नतसममणयो धनवनितारत्नभोक्तारः ॥ १२ ॥
मणिभिश्च मध्यनिम्नैः कन्यापितरो भवन्ति निःस्वाश्च ।
बहुपशुभाजो मध्योन्नतैश्च नात्युल्बणैर्धनिनः ॥ १३ ॥

लाल रंग के मणि (लिंग के अग्र भाग) वाले पुरुष धनी तथा सफेद और मलिन मणि वाले निर्धन होते हैं। जिनके मूतने के समय शब्द हो वे सुखी और शब्द न हो तो निर्धन होते हैं। जिनके दक्षिणावर्त क्रम से दो, तीन या चार मूत्र की धारा होकर गिरती हो वे राजा होते हैं। जिनकी मूत्रधार इधर-उधर बिखरती हो वे निर्धन होते हैं। वेष्टित एक मूत्रधारा सुन्दर बनाती है, किन्तु पुत्र नहीं देती है। जिनके मणि स्निग्ध, ऊँचे और सम हो वे पुरुष धन स्त्री और रत्नों के भोगने वाले होते हैं। जिनके मणि के मध्य भाग विनत हों वे कन्याओं के पिता और निर्धन होते हैं। जिनके मणि मध्य ऊँचा हो वे बहुत पशुओं के स्वामी होते हैं। तथा जिनके मणि न हों वे धनी होते हैं।

यहाँ पर समुद्र—

रक्ताकृतिर्मणिर्यस्य समो मध्ये विराजते। पार्थिवः स तु विज्ञेयः समुद्रवचनं यथा ॥
सुवर्णरजतप्रख्यैर्मणिमुक्तासमप्रभैः। प्रवालसदृशैः स्निग्धैर्मणिभिः पार्थिवो भवेत् ॥
पाण्डुरैर्मलिनै रूक्षैः श्यावैरल्पैश्च निर्धनः। मूत्रधारा पतेद्देहाद्दक्षिणावलिता यदि ॥
पार्थिवः स तु विज्ञेयः समुद्रवचनं यथा। द्विधारं च पतेन्मूत्रं स्निग्धं शब्दविवर्जितम् ॥
भोगवान् स तु विज्ञेयो गवाढ्यो नात्र संशयः। बहुधारे तथा रूक्षे सशब्दे पुरुषाधमः ॥

बस्ति, शुक्र और मैथुन का लक्षण—

परिशुष्कबस्तिशीर्षैर्धनरहिता दुर्भगाश्च विज्ञेयाः ।
कुसुमसमगन्धशुक्रा विज्ञातव्या महीपालाः ॥ १४ ॥
मधुगन्धे बहुवित्ता मत्स्यसगन्धे बहून्यपत्यानि ।
तनुशुक्रः स्त्रीजनको मांससगन्धो महाभोगी ॥ १५ ॥

मदिरागन्धे यज्वा क्षारसगन्धे च रेतसि दरिद्रः।
शीघ्रं मैथुनगामी दीर्घायुरतोऽन्यथाल्पायुः ॥ १६ ॥

जिनके बस्ति (नाभि और लिंग के मध्यभाग) के ऊपर का भाग मांस रहित हो वे निर्धन और सब के अप्रिय होते हैं। जिनके वीर्य में पुष्प के समान गन्ध हो वे राजा होते हैं। जिन के शहद के समान वीर्य में गन्ध हो वे बहुत धनी होते हैं। जिनके मछली के समान वीर्य में गन्ध हो वे बहुत सन्तान वाले होते हैं। थोड़ा वीर्य हो तो कन्याओं के पिता होते हैं। जिनके मांस के समान वीर्य में गन्ध हो वे अधिक भोगी होते हैं। मद्य के समान वीर्य में गन्ध हो तो यज्ञ करने वाला, खार के तुल्य वीर्य में गन्ध हो तो निर्धन, शीघ्र मैथुन करने वाला दीर्घायु और देर तक मैथुन करने वाला अल्पायु होता है।

यहाँ पर समुद्र—

विस्तीर्णमांसला जिधा बस्ति पुंसां प्रशस्यते। निर्मांसा कर्कशा रूक्षा दुःखदारिद्र्यदा स्मृता॥
गोमायोः सदृशी यस्य खरोष्ट्रमहिषस्य च। स भवेद्दुःखितो नित्य धनहीनश्च मानव ॥
पुष्पगन्धो भवेद्राजा बहुस्वो मधुगन्धिनः। मत्स्यगन्धः पुत्रवान् स्यात् स्त्रीप्रजारतनुरेतसः॥
मांसगन्धो महाभोगी याज्ञिको मदिरासम। गन्धो येषां क्षारसमस्ते निःस्वा मनुजा स्मृताः॥

स्फिक् का लक्षण—

निःस्वोऽतिस्थूलस्फिक् समांसलस्फिक् सुखान्वितो भवति।
व्याघ्रान्तोऽध्यर्धस्फिग्मण्डूकस्फिग्नराधिपतिः ॥१७॥

अति स्थूल स्फिक् (कुल्ला = कमर के मांस पिण्ड) वाला मनुष्य निर्धन, मांस युत कुल्ला वाला सुखी, छोटे कुल्ला वाला बाघ के द्वारा मरने वाला और मेंढक के समान कुल्ला वाला राजा होता है। यहाँ पर समुद्र—

अतिस्थूलौ स्फिजौ यस्य निर्धनः स भवेन्नरः। समांसलस्फिक् सुखितो मण्डूकस्फिग् नराधिप।
अध्यर्धस्फिग्नरो यस्तु व्याघ्रान्तः स तु कीर्तित ॥ १७ ॥

कटि और जठर का लक्षण—

सिंहकटिर्मनुजेन्द्रः कपिकरभकटिर्धनैः परित्यक्तः।
समजठरा भोगयुता घटपिठरनिभोदरा निःस्वाः ॥ १८ ॥

सिंह के समान कटि वाला राजा, ऊँट के समान कटि वाला निर्धन, समान (न ऊँचा न नीचा) उदर वाला भोगी और घड़े या हाँडी के समान उदर वाला निर्धन होता है।

यहाँ पर समुद्र—

सिंहतुल्या कटिर्यस्य स नरेन्द्रो न संशयः। श्वशृगालखरोष्ट्राणां तुल्या यस्य स निर्धन ॥
समोदरा भोगयुता विषमा निर्धना स्मृताः ॥ १८ ॥

पार्श्व, कुक्षि और उदर का लक्षण—

अविकलपार्श्वा धनिनो निम्नैर्वक्रैश्च भोगसन्त्यक्ताः।
समकुक्षा भोगाढ्या निम्नाभिर्भोगपरिहीनाः ॥ १९ ॥
उन्नतकुक्षाः क्षितिपाः कुटिलाः स्युर्मानवा विषमकुक्षाः।
सर्पोदरा दरिद्रा भवन्ति बह्वाशिनश्चैव ॥ २० ॥

अविकल (परिपूर्ण) पार्श्व (कटि के ऊपर चार अङ्गुल भाग) वाला मनुष्य धनी, निम्न और वक्र पार्श्व वाला अभोगी, समान कुक्षि (उदर मध्य भाग) वाला भोगी और निम्न कुक्षि वाला अभोगी होता है। उन्नत कुक्षि वाला राजा, विषम कुक्षि वाला कठोर और सर्पोदर के समान लम्बा उदर वाला निर्धन और बहुत खाने वाला होता है।

यहाँ पर समुद्र—

पार्श्वैः समांसोपचितैर्धनिनो मानवाः स्मृताः। निम्नैर्वक्रैश्च विषमैर्नरा भोगविवर्जिताः॥
समकुक्षा भोगयुक्ता निम्नाभिर्भोगवर्जिताः। नृपश्चोन्नतकुक्षाः स्युर्विषमाभिर्दुराशयाः॥
सर्पोदरा नरा निःस्वाः स्मृता बह्वाशिनस्तथा॥ १९-२०॥

नाभि का लक्षण—

परिमण्डलोन्नताभिर्विस्तीर्णाभिश्च नाभिभिः सुखिनः।
अल्पा त्वदृश्यनिम्ना नाभिःक्लेशावहा भवति॥ २१॥
वलिमध्यगता विषमा शूलाद्यावां करोति नैःस्व्यं च।
शाठ्यं वामावर्ता करोति मेधां प्रदक्षिणतः॥ २२॥
पार्श्वायाता चिरायुषमुपरिष्टाच्चेश्वरं गवाढ्यमधः।
शतपत्रकर्णिकाभा नाभिर्मनुजेश्वरं कुरुते॥ २३॥

गोल, ऊँची और विस्तीर्ण नाभि वाले मनुष्य सुखी होते हैं। छोटी, अदृश्य और अतिनिम्न नाभि दुःखदायी होता है। पेट के वलि के मध्य में स्थित और विषम नाभि शूली पर चढ़ाती और निर्धन करती है। वामावर्त नाभि शठ और दक्षिणावर्त नाभि तत्त्वज्ञानी करती है। दोनों पार्श्व में आयत नाभि दिर्घायु, ऊपर की तरफ आयत नाभि ऐश्वर्य, नीचे की तरफ आयत नाभि गायों से युक्त और कमल कोर की तरह नाभि राजा बनाती है।

शठ का लक्षण—

वचसा मनसा यस्तु दृश्यते कार्यतत्परः। कर्मणा विपरीतश्च स शठः सद्भिरिष्यते॥

तत्त्वज्ञानी का लक्षण—

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा। ऊहाऽपोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥

यहाँ पर समुद्र—

वर्तुला विपुलाल्पुच्चा नाभिर्यदि नरेश्वरः। अदृश्या तथा निम्ना नाभि क्लेशावहा भवेत्॥
वलिमध्यगता या च सा शूलाद्यघकारिणी। वामावर्ता शाठ्यभावं धियणां च प्रदक्षिणा॥
पार्श्वायता दीर्घजीवं धनयुक् तयोर्ध्वगा। अधोगो बाहुलं कुर्याद्याभिर्भोगसमन्वितम्॥
पद्मस्य कर्णिका तुल्या नाभिः कुर्यान्नरेश्वरम्॥ २१-२३॥

पेट के वलियों का लक्षण—

शस्त्रान्तं स्त्रीभोगिनमाचार्यं बहुसुतं यथासंख्यम्।
एकद्वित्रिचतुर्भिर्वलिभिर्विन्द्यान्नृपं त्ववलिम्॥ २४॥
विषमवलयो मनुष्या भवन्त्यगम्याभिगामिनः पापाः।
ऋजुवलयः सुखभाजः परदारद्वेषिणश्चैव॥ २५॥

एक वलि (उदर की रेखा) वाले मनुष्य का शस्त्र से मरण, दो वलि वाले मनुष्य बहुत स्त्रियों को भोगने वाले, तीन वलि वाले उपदेशक, चार वलि वाले बहुत पुत्रों से युत और वलि रहित उदर वाले राजा होते हैं। विषम (छोटी, बड़ी) वलि वाले अगम्या स्त्री में गमन करने वाले तथा सीधी वलि वाले मनुष्य सुखी तथा परस्त्री से विमुख होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

एकवलिः शस्त्रमृत्युः स्त्रीभोगी द्विवली स्मृतः। त्रिभिराचार्यं इत्याहुश्चतुर्भिः स्याद्बहुप्रजः॥
अवलिस्तु नृपः प्रोक्तो यज्वा दानैकतत्परः। विषमा वलयो येषु ते चागम्याभिगामिनः॥
ऋज्वस्तु वलयो येषु ते नराः सुखभागिनः॥ २४-२५॥

पार्श्व का लक्षण—

मांसलमृदुभिः पार्श्वैः प्रदक्षिणावर्तरोमभिर्भूपाः।
विपरीतैर्निर्द्रव्याः सुखपरिहीनाः परप्रेष्याः॥ २६॥

पुष्ट, कोमल और दक्षिणावर्त रोमों से युक्त पार्श्व वाले मनुष्य राजा होते हैं। विपरीत लक्षणों से (मांस रहित, कठोर तथा वामावर्त रोमों से) युक्त पार्श्व वाले मनुष्य निर्धन, दुखी और दूसरे के दास होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

मांसलैर्मृदुभिः पार्श्वैर्दक्षिणावर्तरोमभिः। नरा भूम्यधिपा ज्ञेया विपरीतैः सुदुःखिताः॥

चूचुक का लक्षण—

सुभगा भवन्त्यनुद्बद्धचूचुका निर्धना विषमदीर्घैः।
पीनोपचितनिमग्नैः क्षितिपतयश्चूचुकैः सुखिनः॥ २७॥

जिनके चुचक (स्तन के अग्र भाग) ऊपर को खींचे न हों वे पुरुष सुभग होते हैं। जिनके विषम (छोटे, बड़े) और लम्बे हों वे निर्धन होते हैं। तथा जिनके चूचुक कठोर, पुष्ट तथा नीचे हों वे राजा और सुखी होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

चूचुकैश्चाप्यनुद्बद्धैः सुभगा सुखभागिनः। निर्धना विषमैर्दीर्घैर्मग्नैर्मांसयुतैर्नृपाः॥ २७॥

हृदय का लक्षण—

हृदयं समुन्नतं पृथु न वेपनं मांसलं च नृपतीनाम्।
अधनानां विपरीतं खररोमचितं शिरालं च॥ २८॥

राजाओं का हृदय ऊँचा, विस्तीर्ण और कम्प से रहित होता है। निर्धनों का हृदय विपरीत लक्षणों (नीचा, कृश, सकम्प तथा कठोर रोम) से युक्त तथा शिराओं से व्याप्त होता है। यहाँ पर समुद्र—

अचलं च पृथुच्च च नृपाणां हृदयं स्मृतम्। विपरीतं शिराल,च रोमशं दुःखभागिनम्॥

वक्ष का लक्षण—

समवक्षसोऽर्थवन्तः पीनैः शूरा ह्यकिञ्चनास्तनुभिः।
विषमं वक्षो येषां ते निःस्वाः शस्त्रनिधनाश्च॥ २९॥

समान (न ऊँची, न नीची) छाती वाले धनी, छोटी छाती वाले पुरुषार्थ से रहित, विषम छाती वाले निर्धन और शस्त्र से मृत्यु पाने वाले होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

अर्थवान् समवक्षा स्याद् दीर्घैः शूरा धनान्विताः। अल्पैश्च विकला दीना विषमैःशस्त्रमृत्यवः॥

जत्रु का लक्षण—

विषमैर्विषमो जत्रुभिरर्थविहीनोऽस्थिसन्धिपरिणद्धैः ।
उन्नतजत्रुर्भोगी निम्नैर्निःस्वोऽर्थवान् पीनैः ॥ ३० ॥

विषम जत्रु (कन्धों के जोड़) वाला मनुष्य क्रूर, अस्थि सन्धियों से व्याप्त जत्रु वाला मनुष्य निर्धन तथा पुष्ट जत्रु वाला पुरुष धनी होता है। यहाँ पर समुद्र—

जत्रुभिर्विषमैः क्रूरा दरिद्राः क्रूरसन्धिभिः । भोगी चोन्नतजत्रुः स्यान्निम्नैर्निःस्वोऽन्यथा धनी ॥

ग्रीवा तथा पृष्ठ का लक्षण—

चिपिटग्रीवो निःस्वः शुष्का सशिरा च यस्य वा ग्रीवा ।
महिषग्रीवः शूरः शस्त्रान्तो वृषसमग्रीवः ॥ ३१ ॥
कम्बुग्रीवो राजा प्रलम्बकण्ठः प्रभक्षणो भवति ।
पृष्ठमभग्नमरोमशमर्थवतामशुभदमतोऽन्यत् ॥ ३२ ॥

चपटी ग्रीवा वाला पुरुष निर्धन, सूखी हुई नाड़ियों से युत ग्रीवा वाला निर्धन, महिष के समान ग्रीवा वाला शूर और बैल के समान ग्रीवा वाला शस्त्र से मरण पाने वाला होता है। तथा शङ्ख के समान ग्रीवा वाला राजा और लम्बी ग्रीवा वाला बहुत खाने वाला होता है। अभग्न और रोम रहित पीठ धनियों की तथा भग्न और रोमों से युत पीठ निर्धन की होती है। कम्बुग्रीव का लक्षण—वलित्रयचितग्रीवः कम्बुग्रीवोऽभिधीयते ॥

यहाँ पर समुद्र—

ग्रीवा च वर्तुला यस्य स नरो धनवान् स्मृतः । कम्बुग्रीवा नरा ये तु राजानस्ते न संशयः ॥
दीर्घग्रीवा नरा ये तु तेऽपि दुःखस्य भागिनः । वक्रग्रीवा नरा ये ते दाम्भिका पिशुनास्तथा ॥
निस्वस्तु चिपिटग्रीवः शुष्कग्रीवस्तथैव च । शूरस्तु महिषग्रीवः शस्त्रान्तो वृषकन्धरः ॥
सुस्निग्धं मांसलं पृष्ठमभग्नं चाप्यरोमशम् । सधनानां विपर्यस्तं निर्धनानां प्रकीर्त्तितम् ॥

कक्ष का लक्षण—

अस्वेदनपीनोन्नतसुगन्धसमरोमसङ्कुलाः कक्षाः ।
विज्ञातव्या धनिनामतोऽन्यथार्थविहीनानाम् ॥ ३३ ॥

पसीने से रहित, पुष्ट, ऊँची, सुगन्ध युत, समान तथा रोमों से व्याप्त काँख धनियों की होती है। पसीने से युत, अपुष्ट, नीची, दुर्गन्ध युत, विषम और रोमरहित काँख निर्धन की होती है ॥ यहाँ पर समुद्र—

निःस्वेदमांसलाः कक्षाः सुगन्धा रोमसङ्कुलाः । धनिनां तु विजानीयान्निर्धनानामतोऽन्यथा ॥

कन्धे का लक्षण—

निर्मांसौ रोमचितौ भग्नावल्पौ च निर्धनस्यांसौ ।
विपुलावव्युच्छिन्नौ सुश्लिष्टौ सौख्यवीर्यवताम् ॥ ३४ ॥

मांसहीन, रोमों से युत, भग्न तथा छोटे निर्धन के कन्धे होते हैं। तथा विस्तीर्ण, अभग्न और परस्पर संलग्न कन्धे सुखी और बली पुरुषों के होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

कदलीस्तम्भसङ्काशा गजस्कन्धाश्च ये नराः । राजानस्ते विजानीयुर्महाकोशा महाबलाः ॥
निर्मांसरोमबहुला निर्धनस्य प्रकीर्त्तिताः ॥ ३४ ॥

बाहु का लक्षण—

करिकरसदृशौ वृत्तावाजान्ववलम्बिनौ समौ पीनौ ।
बाहू पृथिवीशानामधनानां रोमशौ ह्रस्वौ ॥ ३५ ॥

हाथी के सूँड के समान वर्तुलाकार, जानुपर्यन्त लम्बे, सम तथा मोटे बाहु राजा के होते हैं। तथा रोमों से युत तथा छोटे बाहु निर्धन के होते हैं। यहाँ पर समुद्र—
उद्बद्धबाहुः पुरुषो वधबन्धमवाप्नुयात् । दीर्घबाहुर्भवेद्राजा समुद्रवचनं यथा ॥
प्रलम्बबाहुरैश्वर्यं प्राप्नुयाद्गुणसंयुतम् । ह्रस्वबाहुर्भवेद्दासः परप्रेष्यकरस्तथा ॥
वामावर्त्तभुजा ये तु ये तु दीर्घभुजा नराः । सम्पूर्णबाहवो ये तु राजानस्ते प्रकीर्त्तिताः ॥

अङ्गुली और हाथ का लक्षण—

हस्ताङ्गुलयो दीर्घाश्चिरायुषामवलिताश्च सुभगानाम् ।
मेधाविनां च सूक्ष्माश्चिपिटाः परकर्मनिरतानाम् ॥ ३६ ॥
स्थूलाभिर्धनरहिता बहिर्नताभिश्च शस्त्रनिर्याणाः ।
कपिसदृशकरा धनिनो व्याघ्रोपमपाणयः पापाः ॥ ३७ ॥

दीर्घायु वाले मनुष्यों की अंगुली लम्बी, सुभग पुरुषों की सीधी, बुद्धिमानों की पतली और दूसरे की सेवा करने वाले की अंगुली चपटी होती है। मोटी अंगुली वाले निर्धन और बाहर को झुकी हुई अंगुली वाले शस्त्र से मृत्यु पाने वाले होते हैं। वानर के समान हाथ वाले धनी और बाघ के समान हाथ वाले पापी होते हैं ॥ ३६-३७ ॥

मणिबन्ध का लक्षण—

मणिबन्धनैर्निगूढैर्दृढैश्च सुश्लिष्टसन्धिभिर्भूपाः ।
हीनैर्हस्तच्छेदः श्लथैः सशब्दैश्च निर्द्रव्याः ॥ ३८ ॥

निगूढ़, दृढ़ और सुश्लिष्ट संधियों से युत मणिबन्ध (हस्तमूल या पहुँचा) वाले राजा होते हैं। छोटे मणिबन्ध वाले का हाथ कट जाता है और शब्द सहित मणिबन्ध वाले निर्धन होते हैं ॥ ३८ ॥

हथेली का लक्षण—

पितृवित्तेन विहीना भवन्ति निम्नेन करतलेन नराः ।
संवृतनिम्नैर्धनिनः प्रोत्तानकराश्च दातारः ॥ ३९ ॥
विषमैर्विषमा निःस्वाश्च करतलैरीश्वरास्तु लाक्षाभैः ।
पीतैरगम्यवनिताभिगामिनो निर्धना रूक्षैः ॥ ४० ॥

निची हथेली वाले पिता के धन से विहीन, वर्तुलाकार निची हथेली वाले धनी तथा ऊँची हथेली वाले दानी होते हैं। विषम हथेली वाले दुष्ट और निर्धन, लाख के समान लाल वर्ण की हथेली वाले धनी, पीले हथेली वाले अगम्या स्त्री में गमन करने वाले और रूखी हथेली वाले निर्धन होते हैं ॥ ३९-४० ॥

नखों का लक्षण—

तुषसदृशनखाः क्लीबाश्चिपिटैः स्फुटितैश्च वित्तसन्त्यक्ताः ।

कुनखविवर्णाः परतर्कुकाश्च ताम्रैश्चमूपतयः ॥ ४१ ॥

तुष के समान रेखाओं से युत नख वाले नपुसक, बुरे और वर्णहीन नख वाले दूसरे के मुख को देखने वाले तथा ताम्र वर्ण के नख वाले सेनापति होते हैं ॥ ४१ ॥

यव रेखा और अंगुली के पर्व का लक्षण—

अङ्गुष्ठयवैराढ्याः सुतवन्तोऽङ्गुष्ठमूलजैश्च यवैः ।
दीर्घाङ्गुलिपर्वाणः सुभगा दीर्घायुषश्चैव ॥ ४२ ॥

यव रेखा से युत अगुष्ठ मध्य या अगुष्ठ मूल वाले पुत्रवान् होते हैं । जिनके अगुली के पर्व लम्बे हों वे भाग्यशाली तथा दीर्घायु होते हैं ॥ ४२ ॥

हथेली की रेखा और अङ्गुलियों का लक्षण—

स्निग्धा निम्ना रेखा धनिनां तद्व्यत्ययेन निःस्वानाम् ।
विरलाङ्गुलयो निःस्वा धनसञ्चयिनो घनाङ्गुलयः ॥ ४३ ॥

स्निग्ध तथा गहरी धनियों की तथा रूखी और ऊँची निर्धनों की रेखायें होती हैं। हाथ में विरल अङ्गुली वाले निर्धन और सघन अङ्गुली वाले धनसचयी होते हैं ॥ ४३ ॥

तिस्रो रेखा मणिबन्धनोत्थिताः करतलोपगा नृपतेः ।
मीनयुगाङ्कितपाणिर्नित्यं सत्रप्रदो भवति ॥ ४४ ॥
वज्राकारा धनिनां विद्याभाजां च मीनपुच्छनिभाः ।
शंखातपत्रशिविकागजाश्वपद्मोपमा नृपतेः ॥ ४५ ॥
कलशमृणालपताकाङ्कुशोपमाभिर्भवन्ति निधिपालाः ।
दामनिभाभिश्चाढ्याः स्वस्तिकरूपाभिरैश्वर्यम् ॥ ४६ ॥
चक्रासिपरशुतोमरशक्तिधनुःकुन्तसन्निभा रेखाः ।
कुर्वन्ति चमूनाथं यज्वानमुलूखलाकाराः ॥ ४७ ॥
मकरध्वजकोष्ठागारसन्निभाभिर्महाधनोपेताः ।
वेदीनिभेन चैवाग्निहोत्रिणो ब्रह्मतीर्थेन ॥ ४८ ॥
वापीदेवकुलाद्यैर्धर्मं कुर्वन्ति च त्रिकोणाभिः ।
अङ्गुष्ठमूलरेखाः पुत्राः स्युर्दारिकाः सूक्ष्माः ॥ ४९ ॥
रेखाः प्रदेशिनिगताः शतायुषं कल्पनीयमूनाभिः ।
छिन्नाभिर्द्रुमपतनं बहुरेखारेखिणो निःस्वाः ॥ ५० ॥

जिसके तीन रेखा पहुँचे से निकल कर हथेली में जाँय वह राजा होता है। दो मत्स्य रेखाओं से युत हथेली वाला सदावर्त्त देने वाला होता है। यदि हाथ में वज्र के समान (मध्य में पतला और दोनो ओर विस्तृत) रेखा हो तो धनी, मछली के समान हो तो विद्वान् तथा शख, छत्र, पालकी, हाथी, घोड़ा और कमल के समान रेखा हो तो राजा होता है। यदि कलश, मृणाल (कमल की जड़), पताका या अकुश के समान

हाथ में रेखा हो तो भूमि में धन गाड़ने वाला होता है। रस्सी की तरह हाथ में रेखा हो तो अति धनी, स्वस्तिक (राजगृह-समान) रेखा हो तो ऐश्वर्यशाली होता है। यदि चक्र, खड्ग, फरशा, तोमर, बर्छी, धनुष या भाला के समान हाथ में रेखा हो तो सेनापति और ऊखल के समान रेखा हो तो याज्ञिक होता है। मकर (मगर=घड़ियाल), ध्वजा और कोष्ठागार की तरह हाथ में रेखा हो तो बहुत धनी तथा वेदी की तरह महातीर्थ (अंगुष्ठमूल) हो तो अग्निहोत्री होता है। वापी, देव मन्दिर, आदि (सिंहासन, श्रीवृक्ष और यूप) या त्रिभुज की तरह हाथ में रेखा हो तो धार्मिक तथा अंगुष्ठमूल में जितनी स्थूल रेखा हो उतने पुत्र और जितनी सूक्ष्म रेखा हों उतनी कन्या होती हैं। जिनकी तर्जनी के मूल तक तीन रेखा गई हों वे सौ वर्ष तक जीते हैं। छोटी रेखा हो तो अनुपात से आयु की कल्पना करनी चाहिये। जिनके हाथ में टूटी हुई रेखा हो वे वृक्ष से गिरते हैं। अधिक रेखा युत या रेखा रहित हों तो वे निर्धन होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

सुवृत्तैर्निगूढैश्च मणिबन्धैः समन्विताः। दृढैश्च शब्दरहितै राजानस्ते प्रकीर्त्तिताः॥
हीनैश्च छिन्नपाणिः स्यात् श्लथैर्दारिद्र्यभाजनः। निम्ने करतले यस्य पितृवित्तविवर्जितः॥
निम्नेन सवृतेनैव वित्तवान् सौख्यसंयुतः। समुत्तानकरा ये च दातारस्ते न संशयः॥
विषमैर्विषमा निःस्वा लाक्षाभैरीश्वराः करैः। अगम्यागामिनः पीतैर्नीलैर्हस्तैश्च निर्धनाः॥
शूर्पशुष्कौ कुनखा नैकवर्णा महानखाः। स्फुटिताग्रनखाश्चैव स्मृता द्रव्यविवर्जिताः॥
निर्मलैर्लोहिताभैश्च नखैर्भवति पार्थिवः। पाण्डुरा विरला रूक्षा अङ्गुल्यः करसंस्थिताः॥
येषां ते च नरा ज्ञेया दुःखदारिद्र्यभाजनाः। यस्य मीनसमा रेखा कर्मसिद्धिस्तु तस्य वै॥
धनवान् स तु विज्ञेयो बहुपुत्रश्च मानवः। तुला यस्य तु वेदिर्वा करमध्ये प्रदर्शिता॥
वाणिज्यं सिद्ध्यते तस्य पुरुषस्य न संशयः। वेदी पाणितले यस्य द्विजस्य तु विशेषतः॥
यज्ञयाजी भवेत्तस्य बहुवित्तश्च मानवः। श्रीवत्समथवा पद्मं वज्रं चामरमेव वा॥
यस्य हस्ते तु दृश्येत स भवेत्पृथिवीपतिः। शक्तितोमरखड्गाभा रेखाचापसमास्तथा॥
यस्य हस्ते प्रदृश्यन्ते चमूनाथं च तं विदुः। वृक्षो वाप्यथवा शैलः करमध्ये तु दृश्यते॥
अचलं प्राप्यते राज्यं मण्डले तु न संशयः। ध्वजं वाप्यथवा शङ्खं दृश्यते करसंस्थितम्॥
धनेश्वरं विजानीयात् समुद्रवचनं यथा। दक्षिणे तु कराङ्गुष्ठे यवो यस्य च दृश्यते।
सर्वविद्याप्रवक्ताऽसौ भवतीति च निर्दिशेत्॥
यस्य पाणितले रेखा कनिष्ठामूलसम्भवाः। गता मध्ये प्रदेशिन्याः स जीवेच्छरदां शतम्॥
अङ्गुष्ठमूले या रेखाः पुत्रास्ते परिकीर्तिताः। सूक्ष्माः कन्याविनिर्दिष्टाः समुद्रवचनं यथा॥
छिन्नाभिर्वृक्षपतनं प्रभूताभिरनीश्वराः। अङ्गुष्ठमूलतीर्थेन यज्ञयाजी भवेन्नरः॥ ४४-५० ॥

ठोढ़ी, दाँत और ओंठ का लक्षण—

अतिकृशदीर्घैश्चिबुकैर्निर्द्रव्या मांसलैर्धनोपेताः।
बिम्बोपमैरवक्रैरधरैर्भूपास्तनुभिरस्वाः ॥ ५१ ॥
ओष्ठैः स्फुटितविखण्डितविवर्णरूक्षैश्च धनपरित्यक्ताः।
स्निग्धा घनाश्च दशनाः सुतीक्ष्णदंष्ट्राः समाश्च शुभाः ॥ ५२ ॥

अतिकृश और दीर्घ अधर वाले निर्धन और मांसयुत अधर वाले धनी होते हैं। बिम्ब फल के समान लाल और वक्रता से रहित अधर वाले राजा, छोटे अधर वाले राजा तथा फटे, खण्डित, वर्ण रहित और रूखे अधर वाले धनहीन होते हैं। स्निग्ध, घन, तीक्ष्ण और सम दाँत शुभ होते हैं। कहा भी है—

निर्मांसैश्चिबुकैर्दीर्घैर्निर्द्रव्याश्चाटुवादिनः। समांसलैर्धनोपेता बहुपुत्रसमावृताः॥

रक्ताधरो नरपतिर्धनवान् कमलाधरः । स्थूलोष्ठा बहुलोमाश्च शुष्कैश्चोष्ठैश्च दुःखिताः ॥
उत्तरोष्ठैर्लोहितैश्च धनिनः सौख्यसंयुताः । खण्डैर्विवर्णैर्निर्द्रव्या रूक्षैर्दुःखसमन्विताः ॥
कुन्दकुड्मलसङ्काशैः प्राकारैर्दशनैर्नृपः । श्ववानरदन्ताश्च नित्यं क्षुत्परिपीडिताः ॥
हस्तिदन्ताः खरदाः स्निग्धदन्ता गुणान्विताः । करालैर्विषमैर्दीर्घदशनैर्दुःखजीविनः ॥
द्वात्रिंशद्दन्ता राजन् एकोनश्चापि भोगवान् । त्रिंशद्दन्ता नरा ये ते सुखदुःखस्य भागिनः ॥
एकोनत्रिंशद्दशनाः पुरुषा दुःखजीविनः । अष्टाविंशरदा येषां तेऽतिदुःखस्य भाजनाः ५१-५२

जीभ तथा तालु का लक्षण—

जिह्वा रक्ता दीर्घा श्लक्ष्णा सुसमा च भोगिनो ज्ञेया ।
श्वेता कृष्णा परुषा निर्द्रव्याणां तथा तालु ॥ ५३ ॥

लाल, लम्बी, श्लक्ष्ण और समान-जीभ वाले भोगी होते हैं । सफेद, काली और रूखी जीभ वाले निर्धन होते हैं । इसी प्रकार तालु का लक्षण भी जानना चाहिये ।

यहाँ पर समुद्र—

कृष्णजिह्वा भवेद्यस्य समला यदि वा भवेत् । स पापवान्भवेन्मर्त्यः कुचा स्थूला तथा भवेत् ॥
श्वेतजिह्वा नरा ज्ञेयाः शौचाचारविवर्जिताः । पद्मपत्रसमाजिह्वा सूक्ष्मा दीर्घा सुशोभना ॥
न स्थूला नाति विस्तीर्णा येषां ते मनुजाधिपाः ॥
निम्ना दीर्घा च ह्रस्वा च रक्ताग्रा रसना यदि ।
सर्वविद्याप्रवक्ताऽसौ भवेद्वास्यत्र संशयः ॥
कृष्णतालुर्नरो यस्तु स भवेत् कुलनाशनः ।
विकृतं स्फुटितं यस्य तालु तस्य न शोभनम् ॥
सिंहतालुर्नरपतिर्गजतालुस्तथैव च ।
पद्मतालुर्भवेद्राजा श्वेततालुश्च निर्धनः ॥५३॥

मुख का लक्षण—

वक्त्रं सौम्यं संवृतममलं श्लक्ष्णं समं च भूपानाम् ।
विपरीतं क्लेशभुजां महामुखं दुर्भगाणां च ॥ ५४ ॥

सुन्दर, वर्तुलाकार, निर्मल, श्लक्ष्ण और समान मुख राजाओं का होता है । इससे उलटा (कुरूप, वक्राकार, मलिन, अश्लक्ष्ण और विषम) मुख भाग्य रहित का होता है ।

यहाँ पर समुद्र—

सौम्यं च संवृतं वक्त्रममलं यस्य देहिनः । महाराजो भवेन्नित्यं विपरीते तु निर्धनः ॥ ५४ ॥

स्त्रीमुखमनपत्यानां शाठ्यवतां मण्डलं परिज्ञेयम् ।
दीर्घं निर्द्रव्याणां भीरुमुखाः पापकर्माणः ॥ ५५ ॥
चतुरस्रं धूर्तानां निम्नं वक्त्रं च तनयरहितानाम् ।
कृपणानामतिह्रस्वं सम्पूर्णं भोगिनां कान्तम् ॥ ५६ ॥

स्त्री के समान मुख वाले सन्तान हीन, गोल मुख वाले शठ, लम्बे मुख वाले निर्धन, भयानक मुख वाले धूर्त, निम्न मुख वाले पुत्र हीन, छोटे मुख वाले कृपण, सम्पूर्ण तथा सुन्दर मुख वाले भोगी होते हैं । यहाँ पर समुद्र—

स्त्रीमुखं निरपत्यानां मण्डलं शाठ्यसेविनाम् । दीर्घं मुखं च निःस्वानां भीरुवक्त्रा दुरात्मनः ॥

चतुरस्रं तु धूर्त्तानां निम्नं सुतविवर्जितम् । कृपणानां तथा ह्रस्वं चिपिटं परजीविनाम् ॥
यन्मुखं मांसलं स्निग्धं सप्रभं प्रियदर्शनम् । वर्णाढ्यं सन्धिविश्लिष्टमजस्रं सुखभागिनाम् ॥

श्मश्रु का लक्षण—

अस्फुटिताग्रं स्निग्धं श्मश्रु शुभं मृदु च सन्नतं चैव ।
रक्तैः परुषैश्चौराः श्मश्रुभिरल्पैश्च विज्ञेयाः ॥ ५७ ॥

आगे से बिना फटे, स्निग्ध, कोमल और नीचे को झुकी हुई दाढ़ी शुभ होती है। तथा लाल, रूखी और अल्प दाढ़ी वाले चोर होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

स्निग्धमस्फुटिताग्रं च सन्नतं श्मश्रु चेष्यते । रक्तैरल्पैस्तथा रूक्षैः श्मश्रुभिस्तस्करा: स्मृताः॥

कान का लक्षण—

निर्मांसैः कर्णैः पापमृत्यवश्चर्पटैः सुबहुभोगाः ।
कृपणाश्च ह्रस्वकर्णाः शङ्कुश्रवणाश्चमूपतयः ॥ ५८ ॥
रोमशकर्णा दीर्घायुषश्च धनभागिनो विपुलकर्णाः ।
क्रूराः शिरावनद्धैर्व्यालम्बैर्मांसलैः सुखिनः ॥ ५९ ॥

मांस रहित कान वाले पापकर्म से मरते हैं। तथा चपटे कान वाले अधिक भोगी, छोटे कान वाले कृपण, शङ्कु के समान आगे से तीखे कान वाले सेनापति, रोमयुक्त कान वाले दीर्घायु, बड़े कान वाले धनी, नाड़ियों से युत कान वाले क्रूर तथा लम्बे और पुष्ट कान वाले सुखी होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

ह्रस्वकर्णा महाभोगा महाकर्णाश्च ये नराः। आवर्तकर्णा धनिनः स्निग्धकर्णास्तथैव च ॥
दीर्घायुषः शङ्कुकर्णाः स्फुटकर्णाः महाधना । सुखान्विता दीर्घकर्णा लम्बकर्णास्तपस्विनः ॥
निर्मांसे पापमरणाश्चपटैर्भोगिनो नरा । दीर्घायुषो लोमकर्णा धनिनो विपुले स्मृता ॥
शिरावनद्धैर्विषमा मांसले सुखभागिन ।

कपोल और नासिका का लक्षण—

भोगी त्वनिम्नगण्डो मन्त्री सम्पूर्णमांसगण्डो यः ।
सुखभाक् शुकसमनासश्चिरजीवी शुष्कनासश्च ॥ ६० ॥
छिन्नानुरूपयागम्यगामिनो दीर्घया तु सौभाग्यम् ।
आकुञ्चितया चौरः स्त्रीमृत्युः स्याच्चिपिटनासः ॥ ६१ ॥
धनिनोऽग्रवक्रनासा दक्षिणविनताः प्रभक्षणाः क्रूराः ।
ऋज्वी स्वल्पच्छिद्रा सुपुटा नासा सभाग्यानाम् ॥ ६२ ॥

ऊँचे गाल वाले धनी और मांस युत गाल वाले राजा के मन्त्री होते हैं। तोते के समान नासिका वाले भोगी और सुखी, मांस रहित नासिका वाले दीर्घायु, कटी हुई की तरह नासिका वाले अगम्या स्त्री में गमन करने वाले, लम्बी नासिका वाले भाग्यशाली, ऊपर को खिंची हुई नासिका वाले चोर, चपटी नासिका वाले स्त्री के हाथ से मृत्यु पाने वाले, आगे से टेढ़ी नासिका वाले धनी, दाहिनी ओर झुकी नासिका वाले खाऊ और क्रूर तथा सीधी और छोटे छिद्रों से युत सुन्दर पुट वाली नासिका वाले भाग्यशाली होते हैं।

यहाँ पर समुद्र—

पुमान् सम्पूर्णगण्डो यः स मन्त्री समुदाहृतः। निम्नगण्डो भवेद्यस्तु स नरो भोगवान् स्मृतः॥
शुकनासः सौख्यभागी शुष्कनासश्चिरायुषः। छिन्नानुरूपा येषां स्यान्नासा तेऽगम्यगामिनः॥
दीर्घनासा भोगयुक्ता अग्रवक्रा धनान्विताः। क्रूरा दक्षिणवक्राश्च स्पष्टनासा नृपोत्तमाः॥
स्त्रीमृत्यवश्चर्पटाभिः कुटिलाभिश्च तस्कराः॥ ६०–६२॥

छींक का लक्षण—

धनिनां क्षुतं सकृद्द्वित्रिपिण्डितं ह्लादि सानुनादं च ।
दीर्घायुषां प्रमुक्तं विज्ञेयं संहतं चैव ॥ ६३ ॥

जो छींकने के समय केवल एक बार छींके वह धनी, तथा दो तीन बार मिला हुआ ह्लादि (बोलते हुये बहुतो के मध्य में जो सुनाई दे), सानुनाद (अतिदीर्घ) और पूर्वोक्त संहत (आदि मध्य तथा अन्त में समान) छींकने वाले मनुष्य दीर्घायु होते हैं।

यहाँ पर पराशर—

सकृत् क्षुतं भोगवतां द्विर्धनाय चिरायुषे। चतुः स्याद्भोगनाशाय परमस्मात् तदीशजा॥

आँख का लक्षण—

पद्मदलाभैर्धनिनो रक्तान्तविलोचनाः श्रियो भाजः ।
मधुपिङ्गलैर्महार्था मार्जारविलोचनैः पापाः ॥ ६४ ॥
हरिणाक्षा मण्डललोचनाश्च जिह्मैश्च लोचनैश्चौराः ।
क्रूराः केकरनेत्रा गजसदृशविलोचनाश्चमूपतयः ॥ ६५ ॥
ऐश्वर्यं गम्भीरैर्नीलोत्पलकान्तिभिश्च विद्वांसः ।
अतिकृष्णतारकाणामक्ष्णामुत्पाटनं भवति ॥ ६६ ॥
मन्त्रित्वं स्थूलदृशां श्यावाक्षाणां भवति सौभाग्यम् ।
दीना दरिद्रस्थानां स्निग्धा विपुलार्थभोगवताम् ॥ ६७ ॥

कमल दल के समान नेत्र वाले धनी, लाल नेत्रान्त वाले लक्ष्मीवान्, शहद के समान पीले नेत्र वाले धनी, बिल्ली के समान (कंजे = कुटर) नेत्र वाले पापी, हरिण के समान गोल और अचल नेत्र वाले चोर, नील नेत्र वाले क्रूर, हाथी के समान नेत्र वाले सेनापति, गहरे नेत्र वाले ऐश्वर्यशाली तथा नील कमल दल के समान नेत्र वाले विद्वान् होते हैं। अति काले तारा वाले नेत्र उखाड़े जाते हैं। मोटे नेत्र वाले मन्त्री, कपिल वर्ण के नेत्र वाले भाग्यशाली, दीन नेत्र वाले निर्धन तथा स्निग्ध और स्थूल नेत्र वाले धनी, भोगी होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

समे गोक्षीरवर्णाभे रक्तान्ते कृष्णतारके। प्रसन्ने च विशाले च स्निग्धे चैवायते शुभे॥
अतसी पुष्पशङ्काशे भवेतां यस्य लोचने। भूपतिः स तु विज्ञेयः समुद्रवचनं यथा॥
व्याघ्रचक्षुर्धनैर्युक्तः कर्कटाक्षः कलिप्रियः। बिडालहंसनेत्राश्च भवन्ति पुरुषाधमाः॥
मयूरनकुलाक्षाश्च नरास्ते मध्यमाः स्मृताः। न श्रीस्त्यजति सर्वत्र पुरुषं मधुपिङ्गलम्॥
आज्यपिङ्गलनेत्राश्च राजानो भोगसंयुताः। रोचनाहरितालाश्च गजपिङ्गा धनेश्वराः॥
बलवन्तो गुणोपेताः पृथिव्यां चक्रवर्त्तिनः। तप्तहाटकवर्णाभे भवेतां यस्य लोचने॥

भूपतिः स तु विज्ञेयः समुद्रवचनं यथा। द्विमात्रस्पन्दिनो ये तु धनिनस्ते प्रकीर्त्तिताः॥
त्रिमात्रस्पन्दिनो ज्ञेयाः पुरुषाः सुखजीविनः। चतुर्मात्रनिमेषश्च धनवान् परिकीर्त्तितः॥
दीर्घायुषो धर्मरताः पञ्चमात्रनिमेषिणः॥ ६४-६७॥

भ्रू का लक्षण—

अभ्युन्नताभिरल्पायुषो विशालोन्नताभिरतिसुखिनः।
विषमभ्रुवो दरिद्रा बालेन्दुनतभ्रुवः सधनाः॥ ६८॥
दीर्घासंसक्ताभिर्धनिनः खण्डाभिरर्थपरिहीनाः।
मध्यविनतभ्रुवो ये ते सक्ताः स्त्रीष्वगम्यासु॥ ६९॥

मध्य में ऊँची भ्रू वाले अल्पायु, बड़ी और ऊँची भ्रू वाले अतिसुखी, विषम (एक में बड़ी तथा एक में छोटी) भ्रू वाले निर्धन, बाल चन्द्र की तरह झुकी हुई भ्रू वाले धनवान्, लम्बी तथा परस्पर विना मिली भ्रू वाले धनी, टूटी हुई भ्रू वाले निर्धन, तथा मध्य में नत भ्रू वाले मनुष्य अगम्या स्त्री में गमन करने वाले होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

अभ्युन्नताभिः स्वल्पायुर्विशालाभिः सुखान्विताः। मध्योन्नतभ्रुवो ये च पापसक्ताश्च ते नराः॥
बालेन्दुभ्रूसमाख्याता दरिद्रा विषमभ्रुवः। असंलग्नभ्रुवो ये तु धनिनस्ते नराः स्मृताः॥
खण्डाभिर्निर्धना ज्ञेया विषमाभिर्नराधमाः॥ ६८-६९॥

शङ्ख तथा ललाट का लक्षण—

उन्नतविपुलैः शङ्खैर्धनिनो निम्नैः सुतार्थसन्त्यक्ताः।
विषमललाटा विधना धनवन्तोऽर्द्धेन्दुसदृशेन॥ ७०॥
शुक्तिविशालैराचार्यता शिरासन्ततैरधर्मरताः।
उन्नतशिराभिराढ्याः स्वस्तिकवत् संस्थिताभिश्च॥ ७१॥
निम्नललाटा वधबन्धभागिनः क्रूरकर्मनिरताश्च।
अभ्युन्नतैश्च भूपाः कृपणाः स्युः संवृतललाटाः॥ ७२॥

ऊँची तथा बड़ी शङ्ख (कनपटी) वाले धनी, तथा नीची शङ्ख वाले पुत्र तथा धन से रहित होते हैं। टेढ़ी ललाट वाले धनी, सीप के समान विशाल ललाटवाले आचार्य, नाड़ियों से व्याप्त ललाट वाले पाप में रत, ललाट के मध्य में ऊँची नाड़ी वाले धनी और ललाट में स्वस्तिक की तरह रेखा वाले धनाढ्य होते हैं। निम्न ललाट वाले वध, बन्धन के भागी और पाप कर्म में रत, ऊँचे ललाट वाले राजा तथा गोल ललाट वाले कृपण होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

उन्नतैर्विपुलैः शङ्खैर्धनिनः सुखजीविनः। सुतार्थरहिता निम्नैर्मानवा दुःखभागिनः॥
ललाटेनार्धचन्द्रेण भवन्ति पृथिवीश्वराः। विपुलेन ललाटेन महाधनयुताः स्मृताः॥
विषमेणाधमा ज्ञेयाः पापा मर्त्याः शिराततैः। निम्नेन तु ललाटेन क्रूरकर्मरता नराः॥
अभ्युन्नतैश्च भूपाः स्युः संवृतैः कृपणाः स्मृताः॥ ७०-७२॥

रोने का लक्षण—

रुदितमदीनमनश्रुस्निग्धं च शुभावहं मनुष्याणाम्।
रूक्षं दीनं प्रचुराश्रु चैव न शुभप्रदं पुंसाम्॥ ७३॥

मनुष्यों का दीनता हीन, आसुओं से रहित और स्निग्ध रोना अच्छा होता है। तथा रूखे, दीन और बहुत आँसुओं से युत रोना अच्छा नहीं होता है। यहाँ पर समुद्र—

अदीनाश्रुहतं स्निग्धं रुदितं च शुभावहम्। रूक्षं दीनं बाष्पयुतं पुरुषाणामनिष्टदम् ॥७३॥

हँसने का लक्षण—

हसितं शुभदमकम्पं सनिमीलितलोचनं तु पापस्य।
दुष्टस्य हसितमसकृत् सोन्मादस्यासकृत् प्रान्ते ॥ ७४ ॥

बिना काँपते हुये हँसना शुभ होता है। तथा आँख मूँद कर हँसने वाला पापी, बार बार हँसनेवाला दुष्ट तथा हँसने के अन्त में पुनः पुनः हँसना उन्माद युत पुरुष होता है। यहाँ पर समुद्र—

हसितं कम्परहितं नृपाणामन्यथाऽशुभम्। असकृद्दोषयुक्तस्य मीलिताक्षस्य चाशुभम् ॥

ललाट रेखा का लक्षण—

तिस्रो रेखाः शतजीविनां ललाटायताः स्थिता यदि ताः।
चतसृभिरवनीशत्वं नवतिश्चायुः सपञ्चाब्दा ॥ ७५ ॥
विच्छिन्नाभिश्चागम्यगामिनो नवतिरप्यरेखेण।
केशान्तोपगताभी रेखाभिरशीतिवर्षायुः ॥ ७६ ॥
पञ्चभिरायुः सप्ततिरेकाग्रावस्थिताभिरपि षष्टिः।
बहुरेखेण शतार्धं चत्वारिंशच्च वक्राभिः ॥ ७७ ॥
भ्रूलग्नाभिस्त्रिंशद्विंशतिकश्चैव वामवक्राभिः।
क्षुद्राभिः स्वल्पायुर्न्यूनाभिश्चान्तरे कल्प्यम् ॥ ७८ ॥

ललाट में तीन रेखा वाले सौ वर्ष जीते हैं, चार रेखा वाले राजा और पञ्चानबे वर्ष जीते हैं। ललाट में टूटी हुई रेखा वाले अगम्या स्त्री में गमन करने वाले और नब्बे वर्ष जीते हैं, रेखाओं से रहित ललाट वाले नब्बे वर्ष जीते हैं तथा केशान्त तक रेखा वाले अस्सी वर्ष जीते हैं। पांच रेखा युत ललाट वाले सत्तर वर्ष जीते हैं, ललाट में स्थित सब रेखाओं के अग्र मिले हों तो साठ वर्ष की आयु होती है। छै, सात आदि बहुत रेखाओं से युत ललाट वाले पचास वर्ष जीते हैं। यदि ललाट में टेढी रेखा हो तो चालीस वर्ष की आयु होती है। यदि ललाट में भ्रू से लगी रेखा हो तो तीस वर्ष की आयु होती है। यदि ललाट के वाम भाग में टेढी रेखा हो तो बीस वर्ष की आयु होती है। छोटी रेखा हो तो बीस वर्ष से कम जीता है। यदि न्यून (एक या दो) रेखा से युत ललाट हो तो भी बीस वर्ष से कम आयु होती है। बीच में अपनी बुद्धि से आयु की कल्पना करनी चाहिये। जैसे तीन रेखा वाले सौ वर्ष और चार रेखा वाले पंचानबे वर्ष जीते हैं अतः साढे तीन रेखा वाले साढ़े सत्तानबे वर्ष जीवेंगे। इसी प्रकार अन्यत्र भी हिसाब लगा कर आयु का निश्चय करना चाहिए। यहाँ पर समुद्र—

रेखा पञ्च ललाटे तु यस्यासौ धनवान् स्मृतः। शतं जीवति वर्षाणामैश्वर्यमधिगच्छति ॥
चतूरेखो ह्यशीतिस्तु त्रिभिः सप्ततिरेव च। षष्टिर्द्वाभ्यां तु रेखाभ्यां चत्वारिंशत् तथैकया ॥
अरेखेन ललाटेन भवन्ति निधिपालकाः। रेखा छेदैस्तु विज्ञेयाः पापकर्मरता नराः ॥
अल्पायुरस्तथाल्पायु व्याधियुक्ताश्च ते सदा।

त्रिशूलं पट्टिसं वापि ललाटे यस्य दृश्यते । ऐश्वर्यं तस्य विज्ञेयं सेनानां नायकश्च सः ॥

शिर का लक्षण—

परिमण्डलैर्गवाढ्याश्छत्राकारैः शिरोभिरवनीशाः ।
चिपटैः पितृमातृघ्नाः करोटिशिरसां चिरान्मृत्युः ॥ ७९ ॥

घटमूर्धाध्वानरुचिर्द्विमस्तकः पापकृद्धनैस्त्यक्तः ।
निम्नं तु शिरो महतां वहुनिम्नमनर्थदं भवति ॥ ८० ॥

गोल शिर वाले गायों से युत, छत्र की तरह ऊपर से विस्तीर्ण शिर वाले राजा, चपटे शिर वाले पिता माता के घातक और करोटि (शिरस्त्राण) के समान शिर वाले दीर्घायु होते हैं। घड़े के समान शिर वाले पापी और निर्धन, निम्न शिर वाले प्रतिष्ठित तथा अति निम्न शिर वाले अनर्थ कारी होते हैं। यहां पर समुद्र—

उत्क्रान्तिदो निम्नशिरा अल्पोपद्रुत एव च । छत्राकारशिरा राजा गवाढ्यः परिमण्डलैः ॥
विषम तद्दरिद्राणां शिरो दीर्घं चिरायुषाम् । नागकुम्भशिरा राजा सम सर्वत्र भोगिनः ॥

केश का लक्षण—

एकैकभवैः स्निग्धैः कृष्णैराकुञ्चितैरभिन्नाग्रैः ।
मृदुभिर्न चातिवहुभिः केशैः सुखभाग्नरेन्द्रो वा ॥ ८१ ॥

वहुमूलविषमकपिलाः स्थूलस्फुटिताग्रपरुषह्रस्वाश्च ।
अतिकुटिलाश्चातिघनाश्च मूर्धजा वित्तहीनानाम् ॥ ८२ ॥

एक रोम कूप में एक एक, काले, स्निग्ध, थोड़े से कुटिल, विना फूटे अग्र भाग वाले, कोमल तथा घने केश हों तो सुखी या राजा होता है। एक रोम कूप में अनेक, विषम (कोई छोटे तथा कोई बड़े), कपिल, मोटे, फूटे अग्रभाग वाले, रूखे, छोटे, बहुत कुटिल और बहुत घने केश निर्धनों के होते हैं। यहाँ पर समुद्र—

एकैकसम्भवाः स्निग्धाः कृष्णा नातिघनाः कचाः । पूजिता विपरीताश्च निर्धनानां प्रकीर्तिताः ॥

संक्षेप से सब अंगों का लक्षण—

यद्यद्गात्रं रूक्षं मांसविहीनं शिरावनद्धं च ।
तत्तदनिष्टं प्रोक्तं विपरीतमतः शुभं सर्वम् ॥ ८३ ॥

जो जो अंग रूखा, मांस रहित और नाड़ियों से व्याप्त हो वे सब अशुभ हैं। तथा इन से विपरीत (स्निग्ध, मांस युत, और नाड़ियों से रहित) अंग शुभ होते हैं ॥ ८३ ॥

महापुरुष का लक्षण—

त्रिषु विपुलो गम्भीरस्त्रिष्वेव षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वः ।
सप्तसु रक्तो राजा पञ्चसु दीर्घश्च सूक्ष्मश्च ॥ ८४ ॥

जिसके तीन अंग विस्तीर्ण, तीन गंभीर, छै ऊँचे, चार छोटे, सात लाल और पाँच अंग लम्बे या सूक्ष्म हों वह राजा होता है ॥ ८४ ॥

अंगों का विभाग—

नाभी स्वरः सत्त्वमिति प्रशस्तं गम्भीरमेतत् त्रितयं नराणाम् ।

उरो ललाटं वदनं च पुंसां विस्तीर्णमेतत् त्रितयं प्रशस्तम् ॥८५॥
वक्षोऽथ कक्षा नखनासिकास्यं कृकाटिका चेति षडुन्नतानि।
ह्रस्वानि चत्वारि च लिङ्गपृष्ठं ग्रीवा च जङ्घे च हितप्रदानि ॥८६॥

नेत्रान्तपादकरताल्वधरोष्ठजिह्वा
रक्ता नखाश्च खलु सप्त सुखावहानि।
सूक्ष्माणि पञ्च दशनाङ्गुलिपर्वकेशाः
साकं त्वचा कररुहा न च दुःखितानाम् ॥ ८७ ॥

हनुलोचनबाहुनासिकाः स्तनयोरन्तरमत्र पञ्चमम्।
इति दीर्घमिदं तु पञ्चकं न भवत्येव नृणामभूभृताम् ॥ ८८ ॥

पुरुषों के नाभि, शब्द, सत्व (एक प्रकार का चित्त का गुण=अविकार सत्व व्यसनाभ्युदयागमे) ये तीन गम्भीर तथा छाती, ललाट, मुख ये तीन विस्तीर्ण हों तो श्रेष्ठ होता है। पुरुषों के छाती, कक्षा, नख, नासिका, मुख, कृकाटिका (घेंटू) ये ६ अंग ऊँचे तथा लिंग, पीठ, गरदन, जंघा ये चार छोटे हों तो शुभ देने वाले होते हैं। पुरुषों के नेत्रान्त भाग, पादतल, हाथ, तालु अधर, जीभ, नख ये सात अंग रक्त वर्ण हों तो सुख देने वाले होते हैं। दाँत, अंगुलियों के पर्व, केश, त्वचा, नख ये पाँच अंग सूक्ष्म दुःखियों के नहीं होते अर्थात् जिन के ये अङ्ग सूक्ष्म हों वे सुखी होते हैं। हनु, नेत्र, बाहु, नासिका, दोनों स्तनों के मध्य भाग ये पाँच अंग दीर्घ राजाओं के अतिरिक्त और किसी के नहीं होते हैं। यहाँ पर गर्ग—

चतुर्दशसमो द्वन्द्वश्चतुः कृष्णश्चतुःसमः। दशपद्मो दशावृहत् त्रिशुक्लः शस्यते नरः॥
पादौ गुल्फौ स्फिजौ पार्श्वे वृषणौ चक्षुषी स्तनौ। स्कन्धौष्ठौ बक्षणे जंघे हस्तौ बाहू मकौ तथा॥
चतुर्दशसमद्वन्द्वं समुद्रो नृषु शंसति। अचितारे भ्रुवौ श्मश्रुकेशाश्चैवासिता शुभाः॥
अङ्गुल्यो हृदयं नेत्रे दशनाश्च समा नृणाम्। चत्वारः सम्प्रशस्यन्ते सदैश्वर्यसुखावहाः॥
जिह्वौष्ठतालु चास्यं च मुखं नेत्रे स्तनौ नखाः। हस्तौ पादौ च शंस्यन्ते पद्माभा दश देहिनाम्॥
पाणिपादमुरो ग्रीवा वृषणौ हृदयं शिरः। ललाटमुदरं पृष्ठं बृहन्तः पूजिता दश॥
नेत्रे ताराविरहिते दशनाश्चलिता शुभाः। एतच्च लक्षणं कृत्स्नं नराणां समुदाहृतम्॥
पञ्चदीर्घश्चतुर्ह्रस्वः पञ्चसूक्ष्मः षडुन्नतः। पञ्चरक्तस्त्रिविस्तीर्णस्त्रिगम्भीरः प्रशस्यते॥
बाहू नेत्रान्तरे चापि हनुनी वृषभौ तथा। स्तनयोरन्तरं चैव पञ्चदीर्घं प्रशस्यते॥
ग्रीवा प्रजननं श्रोणीर्ह्रस्वे जंघे च पूजिते। तथेतरेषु सर्वेषु सर्वमेव प्रशस्यते॥
सूक्ष्माण्यङ्गुलिपर्वाणि दन्ता रोमाणि चच्छविः। तथा नखाश्च सर्वे च पञ्चसूक्ष्मः प्रशस्यते॥
कक्षाविवक्षांसि तथा मुखं पृष्ठं कृकाटिका। सर्वभूतेषु निर्दिष्टः षडुत्सेधः प्रशस्यते॥
पाणी पादौ तथा चास्यमुभे नेत्रे स्तनौ नखाः। पञ्च रक्तानि यस्याहुर्मनुजेन्द्रं तमादिशेत्॥
उरो मुखं ललाटं च त्रिविस्तीर्णं प्रशस्यते। सत्वं स्वरश्च नाभिश्च त्रिगम्भीरः प्रशस्यते॥

छाया का लक्षण—

छायाशुभाशुभफलानि निवेदयन्ती
लक्ष्या मनुष्यपशुपक्षिषु लक्षणज्ञैः।

३७, ३८ वृ० सं०

तेजोगुणान् बहिरपि प्रविकाशयन्ती
दीपप्रभा स्फटिकरत्नघटस्थितेव ॥ ८९ ॥

छाया के लक्षण को जानने वाले मनुष्यों को शुभाशुभ फल निवेदन करने वाली और स्फटिक रत्नों से बने हुये घड़े में स्थित दीप प्रभा की तरह तेज सम्बन्धी गुणों को बाहर में प्रकाश करने वाली छाया का विचार करना चाहिये ॥ ८९ ॥

पार्थिव छाया का लक्षण—

स्निग्धद्विजत्वग्नखरोमकेशाच्छाया सुगन्धा च महीसमुत्था ।
तुष्टयर्थलाभाभ्युदयान् करोति धर्मस्य चाहन्यहनि प्रवृत्तिम् ॥ ९० ॥

जिस प्राणी के दाँत, त्वचा, नख, रोम और सिर के बाल, स्निग्ध तथा शरीर सुगन्ध हो उसके ऊपर भूमि की छाया जाननी चाहिये। भूमि की छाया तुष्टि, धन लाभ, अभ्युदय और प्रत्यह धर्म में प्रवृत्ति करती है ॥ ९० ॥

जल छाया का लक्षण—

स्निग्धा सिताच्छहरिता नयनाभिरामा
सौभाग्यमार्दवसुखाभ्युदयान् करोति ।
सर्वार्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या
छाया फलं तनुभृतां शुभमादधाति ॥ ९१ ॥

जल की छाया स्निग्ध, श्वेत, स्वच्छ, नीली और नेत्रों को प्रिय लगने वाली होती है। वह छाया सौभाग्य, अक्रूरता, सुख और अभ्युदय करने वाली, सब कार्यों को सिद्ध करने वाली तथा माता की तरह हित करने वाली होती है ॥ ९१ ॥

अग्नि की छाया का लक्षण—

चण्डाधृष्या पद्महेमाग्निवर्णा युक्ता तेजोविक्रमैः सप्रतापैः ।
आग्नेयीति प्राणिनां स्याज्जयाय क्षिप्रं सिद्धिं वाञ्छितार्थस्य दत्ते ॥

अग्नि की छाया क्रोधशील, अधृष्य (किसी से तिरस्कार को नहीं पाने वाली), कमल, अग्नि और सुवर्ण के समान कान्ति वाली तथा तेज, पराक्रम और प्रताप से युत होती है। अग्नि की छाया प्राणियों के जय के लिये होती है तथा शीघ्र अभीष्ट अर्थ की सिद्धि देती है ॥ ९२ ॥

वायवी तथा नाभसी छाया का लक्षण—

मलिनपरुषकृष्णा पापगन्धानिलोत्था
जनयति वधबन्धव्याध्यनर्थार्थनाशान् ।
स्फटिकसदृशरूपा भाग्ययुक्तात्युदारा
निधिरिव गगनोत्था श्रेयसां स्वच्छवर्णा ॥ ९३ ॥

वायु की छाया मलिन, रूखी, काली और दुर्गन्ध युत होती है। वह छाया वध, बन्धन, रोग, काम में बाधा और धन का नाश करती है। आकाश की छाया स्फटिक के समान कान्ति वाली होती है। वह छाया भाग्य युत, अति उदार, शुभ कार्यों की निधि की तरह और स्वच्छवर्ण वाली होती है ॥ ९३ ॥

दूसरे के मत से और पाँच छाया—

छायाः क्रमेण कुजलाग्न्यनिलाम्बरोत्थाः
केचिद्वदन्ति दश ताश्च यथानुपूर्व्या ।
सूर्याब्जनाभपुरुहूतयमोडुपानां
तुल्यास्तु लक्षणफलैरिति तत्समासः ॥ ९४ ॥

क्रम से भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश की छाया मैंने कही है। कोई कोई मुनि दश छाया कहते हैं। जैसे पूर्वोक्त भूमि आदि की पाँच छाया और सूर्य, विष्णु, इन्द्र, यम, चन्द्र इन पाँचों की पाँच छाया इस प्रकार दश छाया कहते हैं। किन्तु सूर्य की छाया आदि पाँच छायाओं का लक्षण और फल भूमि आदि के समान है। अतः मैंने दश छाया का संक्षेप करके पाँच छाया कही है।

यहाँ पर गर्ग—

भूम्यापोऽनलवाय्वभ्रसम्भूताः पञ्च कीर्तिताः । छायाभूविष्णुशक्रार्कचन्द्राणां च तथापराः ॥

स्वर का लक्षण—

करिवृषरथौघभेरीमृदङ्गसिंहाभ्रनिःस्वना भूपाः ।
गर्दभजर्जररूक्षस्वराश्च धनसौख्यसन्त्यक्ताः ॥ ९५ ॥

हाथी, बैल, रथ समूह, भेरी, मृदङ्ग, सिंह या मेघ के समान स्वर वाले राजा तथा गर्दभ, जर्जर (विकृत) और रूखे स्वर वाले धन और सुख से हीन होते हैं।

यहाँ पर गर्ग—

गम्भीरो दुन्दुभिः स्निग्धो महांश्चैवानुनादवत् । इति स्वरगुणान् पञ्च समुद्रः प्राह तत्त्ववित् ॥
एभिरायुर्यशो विद्या मानं सौख्यं धनागमः । वाहनानि सुता नार्यो राज्यभोगागमास्तथा ॥
भिन्नो जर्जरितश्चैव मिम्मिणो गद्गदस्तथा । क्षामस्वरस्तथैवोक्ताः समुद्रेणाभिनिन्दिताः ॥
स्वरैरेभिः कलिक्लेशलोभमोहतमोरजः । नैर्घृण्यमभिमानं च पारुष्यं शाठ्यमेव च ॥ ९५ ॥

मनुष्य के शरीर में सात सार—

सप्त भवन्ति च सारा मेदोमज्जात्वगस्थिशुक्राणि ।
रुधिरं मांसं चेति प्राणभृतां तत्समासफलम् ॥ ९६ ॥

शरीर में मेद (हड्डियों के अन्तर गत स्नेह भाग), मज्जा (खोपड़ी के मध्य का स्नेह भाग), चमड़ा, हड्डी, वीर्य, रुधिर, मांस ये सात सार होते हैं। संक्षेप से इन के फल कहते हैं ॥ ९६ ॥

रक्तसार का लक्षण—

ताल्वोष्ठदन्तपालीजिह्वानेत्रान्तपायुकरचरणैः ।
रक्तै तु रक्तसारा बहुसुखवनितार्थपुत्रयुताः ॥ ९७ ॥

जिसके तालु, ओंठ, दाँत, मांस, जीभ, नेत्र के अन्तभाग, गुदा, हाथ, पाँव ये सब लाल हों वे रुधिरसार वाले मनुष्य होते हैं। रुधिरसार वाले पुरुष बहुत सुख, स्त्री, धन और पुत्रों से युत होते हैं ॥ ९७ ॥

त्वचा, मज्जा तथा मेद का लक्षण—

स्निग्धत्वक्का धनिनो मृदुभिः सुभगा विचक्षणास्तनुभिः ।
मज्जामेदःसाराः सुशरीराः पुत्रवित्तयुताः ॥ ९८ ॥

स्निग्ध त्वचा वाले धनी, कोमल त्वचा वाले भाग्यशाली और पतली त्वचा वाले पण्डित होते हैं। मज्जासार वाले तथा मेदसार वाले मनुष्य सुन्दर, पुत्रवान् और धनी होते हैं ॥ ९८ ॥

अस्थि तथा शुक्रसार का लक्षण—

स्थूलास्थिरस्थिसारो बलवान् विद्यान्तगः सुरूपश्च ।
बहुगुरुशुक्राः सुभगा विद्वांसो रूपवन्तश्च ॥ ९९ ॥

अस्थिसार वाला मनुष्य मोटी हड्डी वाला, बलवान्, विद्वान् और सुन्दर होता है। वीर्यसार वाला मनुष्य, गाढ़ा वीर्य वाला, भाग्यशाली, विद्वान् और सुन्दर होता है॥९९॥

मांससार तथा संहति का लक्षण—

उपचितदेहो विद्वान् धनी सुरूपश्च मांससारो यः ।
सङ्घात इति च सुश्लिष्टसन्धिहा सुखभुजो ज्ञेया ॥ १०० ॥

मांससार वाला मनुष्य स्थूल शरीर वाला, विद्वान्, धनी और सुन्दर होता है। सब अंग सन्धियों को सुश्लिष्टता को सन्धात कहते हैं। सन्धात युत मनुष्य सुखी होते हैं॥

स्नेह का लक्षण—

स्नेहः पञ्चसु लक्ष्यो वाग्जिह्वादन्तनेत्रनखसंस्थः ।
सुतधनसौभाग्ययुताः स्निग्धैस्तैर्निर्धना रूक्षैः ॥ १०१ ॥

वाणी, जीभ, दाँत, आँख, नह, इन पाँच स्थानों में स्नेह का विचार करना चाहिए। जिनके ये पाँचों स्निग्ध हों वे पुत्र, धन और सौभाग्य से युत तथा रूक्ष हों तो निर्धन होते हैं ॥ १०१ ॥

वर्ण का लक्षण—

द्युतिमान् वर्णस्निग्धः क्षितिपानां मध्यमः सुतार्थवताम् ।
रूक्षो धनहीनानां शुद्धः शुभदो न सङ्कीर्णः ॥ १०२ ॥

राजाओं का वर्ण कान्ति युत और स्निग्ध, पुत्रवान् धनियों का वर्ण मध्यम और निर्धनों का वर्ण रूखा होता है। शुद्ध स्निग्ध वर्ण शुभ और मिश्रित वर्ण अशुभ होता है ॥ १०२ ॥

अनूक (पूर्व जन्म) का लक्षण—

साध्यमनूकं वक्त्राद्गोवृषशार्दूलसिंहगरुडमुखाः ।
अप्रतिहतप्रतापा जितरिपवो मानवेन्द्राश्च ॥ १०३ ॥
वानरमहिषवराहाजतुल्यवदनाः श्रुतार्थसुखभाजः ।
गर्दभकरभप्रतिमैर्मुखैः शरीरैश्च निःस्वसुखाः ॥ १०४ ॥

मुख को देखकर पूर्व जन्म की कल्पना करनी चाहिये। गौ, बैल, बाघ, सिंह या गरुड़ के समान मुख वाले मनुष्य का पूर्व जन्म शुभ होता है, तथा वे अप्रतिहत प्रताप

वाले और शत्रुओं को जीतने वाले राजा होते हैं। बन्दर, महिष, सूअर या बकरे के समान मुख वाले का पूर्व जन्म मध्यम होता है, तथा वे शास्त्र, धन और सुख से युत होते हैं। गदहा या ऊँट के समान मुख वाले का पूर्व जन्म अशुभ होता है। तथा वे धन और सुख से रहित होते हैं ॥ १०३-१०४ ॥

उन्मान (ऊँचाई) का लक्षण—

अष्टशतं षण्णवतिः परिमाणं चतुरशीतिरिति पुंसाम् ।
उत्तमसमहीनानामङ्गुलसंख्या स्वमानेन ॥ १०५ ॥

अपने अङ्गुलियों से १०८ अङ्गुल अपनी ऊँचाई हो तो उत्तम, ९६ अङ्गुल हो तो मध्यम और ८४ अङ्गुल हो तो अधम होता है ॥ १०५ ॥

मान (भारापन) का लक्षण—

भारार्धतनुः सुखभाक् तुलितोऽतो दुःखभाग्भवत्यूनः ।
भारोऽतीवाढ्यानामध्यर्धः सर्वधरणीशः ॥ १०६ ॥

एक भार में दो हजार पल होते हैं। आधा भार वाला पुरुष सुखी, इससे कम भार वाला दुःखी, एक भार वाला अति धनी और डेढ भार वाला मनुष्य चक्रवर्ती होता है ॥

किस समय उन्मान और मान का विचार करे—

विंशतिवर्षा नारी पुरुषः खलु पञ्चविंशतिभिरब्दैः ।
अर्हति मानोन्मानं जीवितभागे चतुर्थे वा ॥ १०७ ॥

बीस वर्ष की स्त्री और पचीस वर्ष वाले पुरुष के उन्मान और मान का विचार करे। अथवा गणित से निर्णीत आयु का चतुर्थ भाग बीत जाने पर उन्मान और मान का विचार करे ॥ १०७ ॥

प्रकृति का लक्षण—

भूजलशिख्यनिलाम्बरसुरनररक्षःपिशाचकतिरश्चाम् ।
सत्त्वेन भवति पुरुषो लक्षणमेतद्भवति तेषाम् ॥ १०८ ॥

पुरुषों में भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, देवता, मनुष्य, राक्षस, पिशाच, तिर्यक् चलने वाले इनका सत्त्व (स्वभाव) होता है उनके ये वक्ष्यमाण लक्षण हैं ॥ १०८ ॥

भूमि और जल स्वभाव का लक्षण—

महीस्वभावः शुभपुष्पगन्धः सम्भोगवान् सुश्वसनः स्थिरश्च ।
तोयस्वभावो बहुतोयपायी प्रियाभिभाषी रसभाजनश्च ॥१०९॥

भूमि प्रकृति वाला पुरुष सुन्दर पुष्पों के समान गन्धवाला, भोगी, सुगन्धि युत श्वास वाला, और स्थिर स्वभाव वाला होता है। जल प्रकृति वाला मनुष्य अधिक जल पीने वाला, मधुर बोलने वाला और मधुर रस प्रिय होता है ॥ १०९ ॥

अग्नि और वायु प्रकृति का लक्षण—

अग्निप्रकृत्या चपलोऽतितीक्ष्णश्चण्डः क्षुधालुर्बहुभोजनश्च ।
वायोः स्वभावेन चलः कृशश्च क्षिप्रं च कोपस्य वशं प्रयाति ॥११०॥

अग्नि प्रकृति वाला मनुष्य चञ्चल, खल, क्रूर, क्षुधा को नहीं सहने वाला और बहुत

भोजन करने वाला होता है। वायु प्रकृति वाला मनुष्य चञ्चल, दुर्बल और बहुत जल्दी क्रोध के वश में आने वाला होता है॥ ११०॥

आकाश और सुर प्रकृति का लक्षण—

खप्रकृतिर्निपुणो विवृतास्यः शब्दगतेः कुशलः सुषिराङ्गः।
त्यागयुतः पुरुषो मृदुकोपः स्नेहरतश्च भवेत्सुरसत्त्वः॥ १११॥

आकाश प्रकृति वाला मनुष्य कार्य में निपुण, खुले हुए मुख वाला, सत्कृत पद ज्ञान में कुशल और छिद्र युत अङ्ग वाला होता है। देवता प्रकृति वाला मनुष्य दानी, थोड़े क्रोध वाला और प्रेमी होता है॥ १११॥

मनुष्य प्रकृति का लक्षण—

मर्त्यसत्वसंयुतो गीतभूषणप्रियः।
संविभागशीलवान् नित्यमेव मानवः॥ ११२॥

मनुष्य प्रकृति वाले मनुष्य गान और भूषण के प्रिय तथा बन्धुओं का उपकार करने वाला होता है॥ ११२॥

राक्षस और पिशाच प्रकृति का लक्षण—

तीक्ष्णप्रकोपः खलचेष्टितश्च पापश्च सत्त्वेन निशाचराणाम्।
पिशाचसत्त्वश्चपलो मलाक्तो बहुप्रलापी च समुल्बणाङ्गः॥ ११३॥

राक्षस प्रकृति वाला मनुष्य क्रोधी, दुष्ट स्वभाव वाला और पापी होता है। पिशाच प्रकृति वाला मनुष्य चञ्चल, मलिन, बहुत बकने वाला और मोटे शरीर वाला होता है॥११३॥

तिर्यक् प्रकृति का लक्षण—

भीरुः क्षुधालुर्बहुभुक् च यः स्याज्ज्ञेयश्च सत्त्वेन नरस्तिरश्चाम्।
एवं नराणां प्रकृतिः प्रदिष्टा यल्लक्षणज्ञाः प्रवदन्ति सत्त्वम्॥११४॥

तिर्यक्प्रकृति वाला पुरुष डरपोक क्षुधा को नहीं सहने वाला और बहुत भोजन करने वाला होता है। इस तरह मनुष्यों के प्रकृति का लक्षण कहा है, जो प्रकृति लक्षणज्ञों के द्वारा सत्त्व नाम से कही जाती है॥ ११४॥

गति का लक्षण—

शार्दूलहंससमदद्विपगोपतीनां
तुल्या भवन्ति गतिभिः शिखिनां च भूपाः।
येषां च शब्दरहितं स्तिमितं च यातं
तेऽपीश्वरा द्रुतपरिप्लुतगा दरिद्राः॥ ११५॥

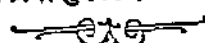
सिंह, हंस, मत वाला हाथी, बैल और मयूर के समान गति वाले मनुष्य राजा होते हैं। शब्द रहित और मन्द गति वाले भी धनी होते हैं। तथा शीघ्र, और मेढक समान गति वाले दरिद्र होते हैं॥ ११५

भाग्य शाली मनुष्य का लक्षण—

श्रान्तस्य यानमशनं च बुभुक्षितस्य पानं तृषापरिगतस्य भयेषु रक्षा।
एतानि यस्य पुरुषस्य भवन्ति काले धन्यं वदन्ति खलु तं नरलक्षणज्ञाः॥

जिस मनुष्य को थकने पर सवारी, भूख लगने पर भोजन, प्यास लगने पर पानी और भय के समय रक्षक मिल जाय मनुष्य के लक्षण जानने वाले पण्डित उस मनुष्य को भाग्यशाली कहते हैं ॥ ११६ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पुरुषलक्षणाध्यायोऽष्टषष्टितमः ॥ ६८ ॥



अथ पंचमहापुरुषलक्षणाध्यायः

उसमें पहले प्रयोजन प्रदर्शन—

ताराग्रहैर्बलयुतैः स्वक्षेत्रस्वोच्चगैश्चतुष्टयगैः।
पञ्च पुरुषाः प्रशस्ता जायन्ते तानहं वक्ष्ये ॥ १ ॥

स्थान, दिक्, चेष्टा और काल बल से युक्त मंगल आदि पाँच ग्रह अपने गृह या उच्च में स्थित होकर लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम में स्थित हों तो पाँच प्रशस्त पुरुष उत्पन्न होते हैं उनको मैं कहता हूँ ॥ १ ॥

पञ्च महापुरुष योगों का विभाग—

जीवेन भवति हंसः सौरेण शशः कुजेन रुचकश्च।
भद्रो बुधेन बलिना मालव्यो दैत्यपूज्येन ॥ २ ॥

स्वगृह या उच्च में स्थित होकर केन्द्र में बली बृहस्पति हो तो हंस, शनि हो तो शश, मङ्गल हो तो रुचक, बुध हो तो भद्र और शुक्र हो तो मालव्य योग होता है।

सारावली में—

स्वक्षेत्रे तु चतुष्टयेऽथ बलिभिः स्वोच्चे स्थितैर्वा ग्रहैः
शुक्राङ्गारकमन्दजीवशशिजैरेतैर्यथापक्रमम्।
मालव्यो रुचकः शशोऽथ कथितो हंसश्च भद्रस्तथा
सर्वेषामतिविस्तरान्मुनिमतात् संक्षिप्यते लक्षणम् ॥ २ ॥

सूर्य और चन्द्र के बल से विशेषता—

सत्त्वमहीनं सूर्याच्छारीरं मानसं च चन्द्रबलात्।
यद्राशिभेदयुक्तावेतौ तल्लक्षणः स पुमान् ॥ ३ ॥
तद्धातुमहाभूतप्रकृतिद्युतिवर्णसत्त्वरूपाद्यैः।
अबलरवीन्दुयुतैस्तैः सङ्कीर्णो लक्षणैः पुरुषः ॥ ४ ॥

सूर्य बली हो तो परिपूर्ण सत्त्व वाला, चन्द्रबली हो तो मानसिक बल वाला होता है। सूर्य चन्द्र दोनों जिस राशि के भेद (राशि, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश) में बैठे हों उस राशिपति के धातु, महाभूत, प्रकृति, कान्ति, वर्ण, सत्त्व, रूप आदि लक्षणों से युत पुरुष होता है। बली सूर्य और चन्द्र जिस जिस ग्रह के राशिभेद में बैठे हों उन ग्रहों के धातु आदि लक्षणों से युत पुरुष होता है। अथवा सूर्य चन्द्र दोनों में से एक बली होकर जिस ग्रह के राशि भेद में स्थित हों उस ग्रह के धातु आदि लक्षणों से युत पुरुष होता है। या दोनों निर्बल होकर जिस-जिस ग्रह के राशि भेद में स्थित हों उन दोनों के मिश्रित लक्षणों से युत पुरुष होता है।

भोजन करने वाला होता है। वायु प्रकृति वाला मनुष्य चञ्चल, दुर्बल और बहुत जल्दी क्रोध के वश में आने वाला होता है ॥ ११० ॥

आकाश और सुर प्रकृति का लक्षण—

खप्रकृतिर्निपुणो विवृतास्यः शब्दगतेः कुशलः सुषिराङ्गः ।
त्यागयुतः पुरुषो मृदुकोपः स्नेहरतश्च भवेत्सुरसत्त्वः ॥ १११॥

आकाश प्रकृति वाला मनुष्य कार्य में निपुण, खुले हुए मुख वाला, संस्कृत पद ज्ञान में कुशल और छिद्र युत अङ्ग वाला होता है। देवता प्रकृति वाला मनुष्य दानी, थोड़े क्रोध वाला और प्रेमी होता है ॥ १११ ॥

मनुष्य प्रकृति का लक्षण—

मर्त्यसत्वसंयुतो गीतभूषणप्रियः ।
संविभागशीलवान् नित्यमेव मानवः ॥ ११२ ॥

मनुष्य प्रकृति वाले मनुष्य गान और भूषण के प्रिय तथा बन्धुओं का उपकार करने वाला होता है ॥ ११२ ॥

राक्षस और पिशाच प्रकृति का लक्षण—

तीक्ष्णप्रकोपः खलचेष्टितश्च पापश्च सत्त्वेन निशाचराणाम् ।
पिशाचसत्त्वश्चपलो मलाक्तो बहुप्रलापी च समुल्बणाङ्गः ॥ ११३ ॥

राक्षस प्रकृति वाला मनुष्य क्रोधी, दुष्ट स्वभाव वाला और पापी होता है। पिशाच प्रकृति वाला मनुष्य चञ्चल, मलिन, बहुत बकने वाला और मोटे शरीर वाला होता है ॥११३॥

तिर्यक् प्रकृति का लक्षण—

भीरुः क्षुधालुर्बहुभुक् च यः स्याज्ज्ञेयश्च सत्त्वेन नरस्तिरश्चाम् ।
एवं नराणां प्रकृतिः प्रदिष्टा यल्लक्षणज्ञाः प्रवदन्ति सत्त्वम् ॥११४॥

तिर्यक् प्रकृति वाला पुरुष डरपोक्त क्षुधा को नहीं सहने वाला और बहुत भोजन करने वाला होता है। इस तरह मनुष्यों के प्रकृति का लक्षण कहा है, जो प्रकृति लक्षणज्ञों के द्वारा सत्व नाम से कही जाती है ॥ ११४ ॥

गति का लक्षण—

शार्दूलहंससमदद्विपगोपतीनां
तुल्या भवन्ति गतिभिः शिखिनां च भूपाः ।
येषां च शब्दरहितं स्तिमितं च यातं
तेऽपीश्वरा द्रुतपरिप्लुतगा दरिद्राः ॥ ११५ ॥

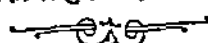
सिंह, हंस, मत वाला हाथी, बैल और मयूर के समान गति वाले मनुष्य राजा होते हैं। शब्द रहित और मन्द गति वाले भी धनी होते हैं। तथा शीघ्र, और मेढक समान गति वाले दरिद्र होते हैं ॥ ११५

भाग्य शाली मनुष्य का लक्षण—

श्रान्तस्य यानमशनं च बुभुक्षितस्य पानं तृषापरिगतस्य भयेषु रक्षा ।
एतानि यस्य पुरुषस्य भवन्ति काले धन्यं वदन्ति खलु तं नरलक्षणज्ञाः ॥

जिस मनुष्य को थकने पर सवारी, भूख लगने पर भोजन, प्यास लगने पर पानी और भय के समय रक्षक मिल जाय मनुष्य के लक्षण जानने वाले पण्डित उस मनुष्य को भाग्यशाली कहते हैं ॥ ११६ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पुरुषलक्षणाध्यायोऽष्टषष्टितमः ॥ ६८ ॥



अथ पंचमहापुरुषलक्षणाध्यायः

उसमें पहले प्रयोजन प्रदर्शन—

ताराग्रहैर्बलयुतैः स्वक्षेत्रस्वोच्चगैश्चतुष्टयगैः।

पञ्च पुरुषाः प्रशस्ता जायन्ते तानहं वक्ष्ये ॥ १ ॥

स्थान, दिक्, चेष्टा और काल बल से युक्त मगल आदि पाँच ग्रह अपने गृह या उच्च में स्थित होकर लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम में स्थित हों तो पाँच प्रशस्त पुरुष उत्पन्न होते हैं उनको मैं कहता हूँ ॥ १ ॥

पञ्च महापुरुष योगों का विभाग—

जीवेन भवति हंसः सौरेण शशः कुजेन रुचकश्च।

भद्रो बुधेन बलिना मालव्यो दैत्यपूज्येन ॥ २ ॥

स्वगृह या उच्च में स्थित होकर केन्द्र में बली बृहस्पति हो तो हंस, शनि हो तो शश, मङ्गल हो तो रुचक, बुध हो तो भद्र और शुक्र हो तो मालव्य योग होता है।

सारावली में—

स्वक्षेत्रे तु चतुष्टयेऽथ बलिभिः स्वोच्चे स्थितैर्वा ग्रहैः

शुक्राङ्गारकमन्दजीवशशिजैरेतैर्यथापक्रमम्।

मालव्यो रुचकः शशोऽथ कथितो हंसश्च भद्रस्तथा

सर्वेषामतिविस्तरान्मुनिमतात् संक्षिप्यते लक्षणम् ॥ २ ॥

सूर्य और चन्द्र के बल से विशेषता—

सत्त्वमहीनं सूर्याच्छारीरं मानसं च चन्द्रबलात्।

यद्राशिभेदयुक्तावेतौ तल्लक्षणः स पुमान् ॥ ३ ॥

तद्धातुमहाभूतप्रकृतिद्युतिवर्णसत्त्वरूपाद्यैः।

अबलरवीन्दुयुतैस्तैः सङ्कीर्णो लक्षणैः पुरुषः ॥ ४ ॥

सूर्य बली हो तो परिपूर्ण सत्त्व वाला, चन्द्रबली हो तो मानसिक बल वाला होता है। सूर्य चन्द्र दोनों जिस राशि के भेद (राशि, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश) में बैठे हों उस राशिपति के धातु, महाभूत, प्रकृति, कान्ति, वर्ण, सत्त्व, रूप आदि लक्षणों से युत पुरुष होता है। बली सूर्य और चन्द्र जिस जिस ग्रह के राशिभेद में बैठे हों उन ग्रहों के धातु आदि लक्षणों से युत पुरुष होता है। अथवा सूर्य चन्द्र दोनों में से एक बली होकर जिस ग्रह के राशि भेद में स्थित हों उस ग्रह के धातु आदि लक्षणों से युत पुरुष होता है। वा दोनों निर्बल होकर जिस जिस ग्रह के राशि भेद में स्थित हों उन दोनों के मिश्रित लक्षणों से युत पुरुष होता है।

सारावली में—

बलरहितेन्दुरविम्यां युक्तैर्भौमादिभिर्मिश्राः। न भवन्ति भूमिपाला दशासु तेषां सुतार्थयुताः॥

किस ग्रह से कौन गुण मिलता है—

भौमात्सत्त्वं गुरुता बुधात्सुरेज्यात् स्वरः सितात् स्नेहः।
वर्णः सौरादेषां गुणदोषैः साध्वसाधुत्वम्॥ ५॥

मंगल से सत्व, बुध से गुरुता, बृहस्पति से स्वर, शुक्र से स्नेह और शनि से कान्ति होती है। यदि मंगल आदि ग्रह बली हों तो सत्व आदि गुणों से युत और निर्बल हों तो सत्व आदि गुणों से रहित होता है।

सारावली में—

महीसुतात्सत्त्वमुदाहरन्ति गुरुत्वमिन्दोस्तनयाद्गुरोश्च।
स्वरः सितात्स्नेहमतोऽसुवर्णं बलाबलैः पूर्णलघूनि चैषाम्॥ ५॥

सङ्कीर्ण की विशेषता—

सङ्कीर्णाः स्युर्न नृपा दशासु तेषां भवन्ति सुखभाजः।
रिपुगृहनीचोच्चच्युतसत्पापनिरीक्षणैर्भेदाः ॥ ६॥

सङ्कीर्ण लक्षण वाले मनुष्य राजा नहीं किन्तु भौम आदि ग्रहों की दशा में सुखी होते हैं। शत्रुगृह, नीच, उच्च इन स्थानों से चलित शुभ और पाप ग्रहों की दृष्टि से भेद होते हैं, इन भेदों से मनुष्य में सङ्कीर्णता दोष होता है।

सारावली में—

बलरहितेन्दुरविम्यां युक्तैर्भौमादिभिर्ग्रहैर्मिश्राः। न भवति भूमिपाला दशासु तेषां सुतार्थयुताः॥

हंस आदि पुरुषों का प्रमाण—

षण्णवतिरङ्गुलानां व्यायामो दीर्घता च हंसस्य।
शशरुचकभद्रमालव्यसञ्ज्ञितास्त्र्यङ्गुलविवृद्ध्या ॥ ७॥

९६ अङ्गुल ऊँचाई और ९६ अङ्गुल व्यायाम (दोनों भुजा पसार कर चौड़ाई) हंस का होता है। इसमें तीन तीन अङ्गुल बढ़ाने से क्रम से शश, रुचक, भद्र और मालव्य पुरुष की ऊँचाई और व्यायाम होता है।

यहाँ पर पराशर—

उच्छ्रायः परिणाहस्तु यस्य तुल्यं शरीरिणः। स नरः पार्थिवो ज्ञेयो न्यग्रोधपरिमण्डलः॥

गुणों का लक्षण—

यः सात्त्विकस्तस्य दया स्थिरत्वं सत्त्वार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः।
रजोऽधिकः काव्यकलाक्रतुस्त्रीसंसक्तचित्तः पुरुषोऽतिशूरः॥८॥
तमोऽधिको वञ्चयिता परेषां मूर्खोऽलसः क्रोधपरोऽतिनिद्रः।
मिश्रैर्गुणैः सत्त्वरजस्तमोभिर्मिश्रास्तु ते सप्त सह प्रभेदैः॥९॥

सात्त्विक पुरुषों को दया, स्थिरता, प्राणियों में सरलता और देवता में भक्ति होती है। रजो गुण वाला मनुष्य काव्य, कला, यज्ञ और स्त्री में आसक्त तथा अतिशूर होता है। तमो गुण वाला मनुष्य दूसरे को ठगने वाला, मूर्ख, आलसी, क्रोधी और अधिक सोने वाला होता है। मिश्रित (सत्त्वरज, सत्त्वतम, रजस्तम और सत्त्व रजस्तम) इस तरह गुणों के प्रभेद से सात तरह के मनुष्य होते हैं॥ ८-९॥

मालव्य पुरुष का लक्षण—

मालव्यो नागनासः समभुजयुगलो जानुसम्प्राप्तहस्तो
मांसैः पूर्णाङ्गसन्धिः समरुचिरतनुर्मध्यभागे कृशश्च।
पञ्चाष्टौ चोर्ध्वमास्यं श्रुतिविवरमपि त्र्यङ्गुलोनं च तिर्य-
ग्दीप्ताक्षं सत्कपोलं समसितदशनं नातिमांसाधरोष्ठम् ॥ १० ॥

मालव्य पुरुष हाथी के समान नासिका वाला, तुल्य भुजा वाला, जानु तक लम्बे हाथ वाला, पुष्ट अङ्ग सन्धि वाला, समान सुन्दर शरीर वाला, कृश मध्य भाग वाला, ठोढ़ी से शिर तक की तेरह अङ्गुल ऊँचाई वाला, ठोढ़ी से कान के छिद्र तक तिरछी दश अङ्गुल ऊँचाई वाला, दीप्त मुख और नेत्र वाला, सुन्दर कपोल वाला, समान और सफेद दाँत वाला तथा पतले अधर वाला होता है ॥ १० ॥

मालव्य पुरुष का स्वरूप—

मालवान् स भरुकच्छसुराष्ट्रान् लाटसिन्धुविषयप्रभृतींश्च।
विक्रमार्जितधनोऽवति राजा पारियात्रनिलयान् कृतबुद्धिः ॥११॥

मालव्य पुरुष मालव, भरु, कच्छ, सुराष्ट्र (सूरत), लाट, सिन्धु देश और परियात्र पर्वतवासियों की रक्षा करने वाला, अपने पराक्रम से धन कमाने वाला तथा सुन्दर बुद्धि वाला राजा होता है ॥ ११ ॥

मालव्य पुरुष की आयु आदि—

सप्ततिवर्षो मालव्योऽयं त्यक्ष्यति सम्यक्प्राणांस्तीर्थे।
लक्षणमेतत्सम्यक्प्रोक्तं शेषनराणां चातो वक्ष्ये ॥ १२ ॥

मालव्य पुरुष की आयु सत्तर वर्ष की होती है और तीर्थ स्थान पर प्राण छोड़ता है। इस तरह मालव्य पुरुष के अच्छी तरह लक्षण कहकर शेष भद्र आदि पुरुष का लक्षण कहता हूँ।

सारावली में—

न स्थूलोष्ठो न विषमवपुर्नातिरिक्ताङ्गसन्धिर्मध्यक्षामः शशधररुचिर्हस्तिनासः सुगन्धः।
सन्दीप्ताक्षः समसितरदो जानुदेशाप्तबाहुर्मालव्योऽयं विलसति नृपः सप्ततिर्वत्सराणाम् ॥
वक्त्रं त्रयोदशमितानि तथाङ्गुलानि दैर्घ्येण कर्णविवराद्दश विस्तरेण।
मालव्यसंज्ञमनुजः स भुनक्ति नूनं लाटं समालवससिन्धु सपारियात्रम् ॥ १२ ॥

भद्र पुरुष का लक्षण—

उपचितसमवृत्तलम्बबाहुर्भुजयुगलप्रमितः समुच्छ्रयोऽस्य।
मृदुतनुघनरोमनद्धगण्डो भवति नरः खलु लक्षणेन भद्रः ॥१३॥

भद्र पुरुष पुष्ट, बराबर, गोल और लम्बे बाहु वाला, भुजाओं को पसारने से जितनी चौड़ाई हो उतनी ऊँचाई वाला तथा कोमल सूक्ष्म और घने रोमों से युत कपोल वाला होता है ॥ १३ ॥

त्वक्शुक्रसारः पृथुपीनवक्षाः सत्त्वाधिको व्याघ्रमुखः स्थिरश्च।
क्षमान्वितो धर्मपरः कृतज्ञो गजेन्द्रगामी बहुशास्त्रवेत्ता ॥१४॥

प्राज्ञो वपुष्मान् सुललाटशङ्खः कलास्वभिज्ञो धृतिमान् सुकुक्षिः ।
सरोजगर्भद्युतिपाणिपादो योगी सुनासः समसंहतभ्रूः ॥१५॥

सुन्दर त्वचा से युत, बहुत गाढ़ा वीर्य वाला, विस्तीर्ण और पुष्ट छाती वाला, अधिक सत्त्व गुण वाला, बाघ के समान मुख वाला, स्थिर स्वभाव वाला, शान्तिशील, धर्मात्मा, कृतज्ञ, हाथी के समान गति वाला, बहुत शास्त्रों का ज्ञाता, सुन्दर, सुन्दर ललाट और शङ्ख वाला, कलाओं को जानने वाला, धीर, सुन्दर पेट वाला, कमल गर्भ के समान हाथ और पाँव वाला, योगी, सुन्दर नासिका वाला तथा समान और मिले हुये भुजाओं से युत होता है ॥ १४-१५ ॥

नवाम्बुसिक्तावनिपत्रकुङ्कुमद्विपेन्द्रदानागुरुतुल्यगन्धता ।
शिरोरुहाश्चैकजकृष्णकुञ्चितास्तुरङ्गनागोपमगुह्यगूढता ॥ १६ ॥

भद्र पुरुष के शरीर में नवीन जल से सिंची हुई भूमि की गन्ध के समान, गन्धपत्र, कुङ्कुम, हाथी का मद या अगर के समान गन्ध होती है। शिर के एक-एक रोम कूप में काले और एक एक बाल होते हैं। तथा घोड़ा या हाथी के समान छिपा हुआ लिंग होता है ॥ १६ ॥

हलमुसलगदासिशङ्खचक्रद्विपमकराब्जरथाङ्किताङ्घ्रिहस्तः ।
विभवमपि जनोऽस्य चोपभुङ्क्ते क्षमति हि न स्वजनं स्वतन्त्रबुद्धिः ॥

भद्र पुरुष के हाथ में हल, मूसल, गदा, खड्ग, शङ्ख, चक्र, हाथी, मकर, कमल और रथ के समान रेखा होती है। इसकी सम्पत्ति को अन्य मनुष्य भी खूब भोगते हैं। तथा बन्धुओं के लिये क्षमा रहित और स्वतन्त्र बुद्धिवाला होता है ॥ १७ ॥

अङ्गुलानि नवतिश्च षट्च नान्युच्छ्रयेण तुलयापि हि भारः ।
मध्यदेशनृपतिर्यदि पुष्टास्त्यादयोऽस्य सकलावनिनाथः ॥ १८ ॥

भद्र पुरुष चौरासी अङ्गुल ऊँचा, एक तुला भार वाला और मध्य देश का राजा होता है। यदि इसकी एक सौ पाँच अङ्गुल व्यायाम हो तो चक्रवर्ती राजा होता है ॥१८॥

भद्र पुरुष की आयु का लक्षण—

भुक्त्वा सम्यग्वसुधां शौर्येणोपार्जितामशीत्यब्दः ।
तीर्थे प्राणांस्त्यक्त्वा भद्रो देवालयं याति ॥ १९ ॥

भद्र पुरुष अपने पराक्रम से उपार्जित पृथ्वी को अच्छी तरह भोगकर अस्सी वर्ष की अवस्था में तीर्थ स्थान पर प्राण छोड़ कर स्वर्ग जाता है। सारावली में—

शार्दूलप्रतिमाननो द्विपगतिः पीनोरुवक्षःस्थलो
लम्बापीनसुवृत्तबाहुयुगलस्तत्तुल्यमानोच्छ्रयः ।
कामी कोमलसूक्ष्मरोमनिकरैः संरुद्धगण्डः शठः
प्राज्ञः पङ्कजगर्भपाणिचरणः सत्त्वाधिको योगवित् ॥

शङ्खासिकुञ्जरगदाकुसुमेषुकेतुचक्राब्जलाङ्गलविचिह्नितपाणिपादः ।
पत्त्रागुरुद्विपमदप्रथमाम्बुसिक्तभूकुङ्कुमप्रतिमगन्धतनुः सुघोणः ॥

शास्त्रार्थविद्धृतियुतः समसंहतभ्रूर्नागोपमो भवति चापि निगूढगुह्यः ।
सत्कुक्षिधर्मनिरतः सुललाटशङ्खो धीरः स्थिरस्त्वसितकुञ्चितकेशपाशः ॥

स्वतन्त्रः सर्वकार्येषु स्वजनं प्रति न क्षमः । भुज्यते विभवश्चास्य नित्यं बन्धुजनैः परैः ॥
भास्खुलायास्तुलितो यदि स्यात् श्रीकान्यकुब्जाधिपतिस्तदासौ ।
पश्यादिपुष्टैः सहितैः स भद्रः सर्वत्र राजा शरदामशीतिम् ॥

शश पुरुष का लक्षण—

ईषद्दन्तुरकस्तनुद्विजनखः कोशेक्षणः शीघ्रगो
विद्याधातुवणिक्क्रियासु निरतः सम्पूर्णगण्डः शठः ।
सेनानीः प्रियमैथुनः परजनस्त्रीसक्तचित्तश्चलः
शूरो मातृहितो वनाचलनदीदुर्गेषु सक्तः शशः ॥२०॥

कुछ ऊँचे दाँत वाला, छोटे दाँत और नख वाला, पुष्ट नेत्र कोश वाला, शीघ्रगामी, विद्या और धातुओं के व्यापार क्रिया में आसक्त, पुष्ट कपोल वाला, शठ, सेनापति, मैथुन प्रिय, परस्त्री में आसक्त, शूर, माता का भक्त तथा वन, पर्वत, नदी और दुर्गों में आसक्त होता है ॥ २० ॥

शश पुरुष के मान का लक्षण—

दीर्घोऽङ्गुलानां शतमष्टहीनं साशङ्कचेष्टः पररन्ध्रविच्च ।
सारोऽस्य मज्जा निभृतप्रचारः शशो ह्यतो नातिगुरुः प्रदिष्टः ॥ २१ ॥

बानबे अङ्गुल ऊँचा, सब कार्यों में शङ्का युत, परछिद्रान्वेषी, मज्जासार, स्थिरगति और अधिक स्थूलता से रहित होता है ॥ २१ ॥

शश पुरुष की रेखा का लक्षण—

मध्ये कृशः खेटकखड्गवीणापर्यङ्कमालामुरजानुरूपाः ।
शूलोपमाश्चोर्ध्वगताश्च रेखाः शशस्य पादोपगताः करे वा ॥ २२ ॥

शश पुरुष का मध्य भाग दुर्बल होता है, तथा उसके पांव या हाथ में ढाल, खड्ग, वीणा, पलंग, माला, मृदंग और त्रिशूल के समान रेखा या ऊर्ध्व रेखा होती है ॥ २२ ॥

शश पुरुष के वयोज्ञान आदि—

प्रात्यन्तिको माण्डलिकोऽथवायं स्फिक्त्वानशूलाभिभवार्त्तमूर्त्तिः ।
एवं शशः सप्ततिहायनोऽयं वैवस्वतस्यालयमभ्युपैति ॥ २३ ॥

शश पुरुष म्लेच्छ देश का या माण्डलिक राजा होता है तथा कुल्हे के टूटने आदि से जो पीड़ा उससे पीड़ित शरीर वाला होता है । इस तरह सत्तर वर्ष की आयु में वह यम के आलय में जाता है अर्थात् मृत्यु को पाता है । सारावली में—

तनुद्विजः शीघ्रगतिः शशोऽयं शठोऽतिशूरो निभृतप्रचारः ।
वनादिदुर्गेषु नदीषु सक्तः स्फोदरी नाति लघुः प्रसिद्धः ॥
सेनानाथो बतिनिचितो दन्तुरश्चापि किञ्चिद्धावोर्वादे भवति निरतश्चञ्चलः कातरेषु ।
स्त्रीसक्तः परजनगृहे मातृभक्तः सुजङ्घो मध्ये क्षामो बहुविधमती रन्ध्रवेदी परेषाम् ॥
पर्यङ्कशङ्खशरशस्त्रमृदङ्गमाला वीणोपमा यदि करे चरणे च रेखाः ।
वर्षाणि सप्ततिमितानि करोति राज्यं प्रात्यन्तिकः क्षितिपतिः कथितो मुनीन्द्रैः ॥ २१ ॥

हंस पुरुष का लक्षण—

रक्तं पीनकपोलमुन्नतनसं वक्त्रं सुवर्णोपमं
वृत्तं चास्य शिरोऽक्षिणी मधुनिभे सर्वे च रक्ता नखाः।
स्रग्दामाङ्कुशशङ्खमत्स्ययुगलक्रत्वङ्गकुम्भाम्बुजै-
श्चिह्नैर्हंसकलस्वनः सुचरणो हंसः प्रसन्नेन्द्रियः॥ २४॥

लाल मुख वाला, पुष्ट कपोल वाला, ऊँची नासिका वाला, सुवर्ण के समान कान्ति वाला, गोल शिर वाला, शहद के समान आँख वाला, रक्त नखों से युत, माला, अङ्कुश, शंख, मत्स्य युगल, यज्ञाङ्ग (वेदी स्रुव आदि), कलश, या कमल के समान रेखा से युत हाथ, पाँव वाला, हंस के समान मधुर स्वर वाला, सुन्दर पाँव वाला और निर्मल इन्द्रिय वाला हंस पुरुष होता है॥ २४॥

हंस पुरुष के मान आदि का लक्षण—

रतिरम्भसि शुक्रसारता द्विगुणा चाष्टशतैः पलैर्मितिः।
परिमाणमथास्य षड्युता नवतिः सम्परिकीर्त्तिता बुधैः॥ २५॥

हंस पुरुष को जल में स्नेह और शुक्र सार होता है तथा इस की ऊँचाई छियानबे अङ्गुल होती है॥ २५॥

हंस पुरुष की आयु का ज्ञान—

भुनक्ति हंसः खसशूरसेनान् गान्धारगङ्गायमुनान्तरालम्।
शतं दशोनं शरदां नृपत्वं कृत्वा वनान्ते समुपैति मृत्युम्॥२६॥

नेपाल, शूरसेन, गान्धार, गंगा और यमुना के मध्य का देश इन देशों को हंस पुरुष भोगता है तथा नब्बे वर्ष तक राज्य करके वन समीप में मृत्यु को पाता है। सारावली में—
रक्तास्युन्नतनासिकः सुचरणो हंसः प्रसन्नेन्द्रियो गौर.पीनकपोलरक्तकरजो हंसस्वर. श्लेष्मलः।
शङ्खाब्जाङ्कुशदाममत्स्ययुगलैर्निस्त्रिशमालाधरैश्चिह्नैः पादकरा ङ्कितो मधुनिभे नेत्रे च वृत्तं शिरः॥
सलिलाशयेषु रमते स्त्रीषु न तृप्तिं प्रयाति कामार्त्तः।
षोडशशतानि तुलितोऽङ्गुलानि दैर्घ्येण षण्णवतिः॥
पातीहदेशांश्च स शूरसेनान् गान्धारगङ्गायमुनान्तरालम्।
जीवेच्चवर्षाँ दशवर्षसङ्ख्यां पश्चाद्वनान्ते समुपैति नाशम्॥ २६॥

रुचक पुरुष का लक्षण—

सुभ्रूकेशो रक्तश्यामः कम्बुग्रीवो व्यादीर्घास्यः।
शूरः क्रूरः श्रेष्ठो मन्त्री चौरस्वामी व्यायामी च॥ २७॥

रुचक पुरुष सुन्दर भ्रू और केशों से युत, लाल लेकर श्याम वर्ण वाला, शंख के समान कंठ वाला, लम्बा मुख वाला, शूर, क्रूर, श्रेष्ठ, मन्त्री, चोरों का स्वामी और व्यायामी (परिश्रमी) होता है॥ २७॥

रुचक पुरुष में मान का लक्षण

यन्मात्रमास्यं रुचकस्य दीर्घं मध्यप्रदेशे चतुरस्रता सा।
तनुच्छविः शोणितमांससारो हन्ता द्विषां साहससिद्धकार्यः॥ २८॥

रुचक पुरुष के मुख की लम्बाई के तुल्य उदर के मध्य भाग की चौड़ाई होती है। तथा थोड़ी कान्ति वाला, शोणित और मांस में सार वाला, शत्रु को नाश करने वाला और अपने साहस से कार्य को सिद्ध करने वाला होता है ॥ २८ ॥

रुचक पुरुष के हाथ और पाँव में चिह्न का लक्षण—

खट्वाङ्गवीणावृषचापवज्रशक्तीन्द्रशूलाङ्कितपाणिपादः।
भक्तो गुरुब्राह्मणदेवतानां शताङ्गुलः स्यात्तु सहस्रमानः ॥ २९ ॥

रुचक पुरुष के हाथ या पाँव में खट्वाङ्ग, वीणा, बैल, धनुष, वज्र, बर्छी, चन्द्र या त्रिशूल के समान चिह्न होते हैं। तथा गुरु, ब्राह्मण और देवताओं का भक्त, सौ अङ्गुल ऊँचा और एक हजार पल शारीरिक भार वाला होता है ॥ २९ ॥

रुचक पुरुष के वय आदि का ज्ञान—

मन्त्राभिचारकुशलः कृशजानुजङ्घो विन्ध्यं ससह्यगिरिमुज्जयिनीं च भुक्त्वा।
सम्प्राप्य सप्ततिसमा रुचको नरेन्द्रः शस्त्रेण मृत्युमुपयात्यथवानलेन ॥

रुचक पुरुष मन्त्र और अभिचार (मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन और विद्वेषण) में कुशल तथा कृश जानु और जंघा वाला होता है। तथा विन्ध्याचल, सह्याचल और उज्जयिनी में राज्य भोग कर सत्तर वर्ष की आयु में शस्त्र या अग्नि से मृत्यु को पाता है। सारावली में कहा भी है—

दीर्घास्यः स्वच्छकान्तिर्बहुरुचिचपलः साहसावाप्तकार्य-
श्चारुभ्रूर्नीलकेशः श्रमकरणरतो मन्त्रविच्चौरनाथः।
रक्तश्यामोऽतिशूरो रिपुबलमथनः शङ्खकण्ठः प्रधानः
क्रूरो भक्तो नराणां द्विजगुरुनिरतः क्षामजङ्घोऽनुजङ्घः ॥
खट्वाङ्गपाशवृषकार्मुकवज्रवीणापाशस्थहस्तचरणश्च तथाङ्गुलिश्च।
मन्त्राभिचारकुशलस्तुलया सहस्रं मध्यं च तस्य कथितं मुखदैर्घ्यतुल्यम् ॥
विन्ध्याचलमस्तगिरीन् मुक्त्वावन्तीं च सप्तति शरदाम्।
शस्त्रानलकृतमृत्युं प्रयाति देवालयं रुचकः ॥ ३० ॥

नृपानुचर के लक्षण में विभाग—

पश्चापरे वामनको जघन्यः कुब्जोऽथवा मण्डलकोऽथ साची।
पूर्वोक्तभूपानुचरा भवन्ति सङ्कीर्णसञ्ज्ञः शृणु लक्षणैस्तान् ॥ ३१ ॥

पूर्वोक्त पाँच महापुरुषों के अतिरिक्त उनके अनुचर रूप संकीर्ण संज्ञक वामनक, जघन्य, कुब्ज, मण्डलक, साची ये पाँच पुरुष होते हैं, इनके लक्षणों को सुनो ॥ ३१ ॥

वामनक पुरुष का लक्षण—

सम्पूर्णाङ्गो वामनो भग्नपृष्ठः किञ्चिच्चोरुर्मध्यकक्ष्यान्तरेषु।
ख्यातो राज्ञां ह्येष भद्रानुजीवी स्फीतो राजा वासुदेवस्य भक्तः ॥ ३२ ॥

वामनक पुरुष सम्पूर्ण अवयवों से युत, टूटी हुई पीठ वाला, अविकसित ऊरु, मध्य भाग और कक्षान्तर वाला, प्रसिद्ध राजाओं के बीच में भद्र राजा का अनुजीवी, धनी, स्फीत राजा तथा विष्णु का भक्त होता है ॥ ३२ ॥

जघन्य पुरुष का लक्षण—

मालव्यसेवी तु जघन्यनामा खण्डेन्दुतुल्यश्रवणः सुसन्धिः।
शुक्रेण सारः पिशुनः कविश्च रूक्षच्छविः स्थूलकराङ्गुलीकः॥ ३३॥
क्रूरो धनी स्थूलमतिः प्रतीतस्ताम्रच्छविः स्यात्परिहासशीलः।
उरोऽङ्घ्रिहस्तेष्वसिशक्तिपाशपरश्वधाङ्कः स जघन्यनामा॥ ३४॥

जघन्य पुरुष मालव्य राजा का सेवक, अर्धचन्द्र के समान कान वाला, सुन्दर अङ्गसन्धि वाला, शुक्रसार, पिशुन (सूचक), पण्डित, रूखी शरीर कान्ति वाला और मोटी हस्ताङ्गुलि वाला होता है। तथा क्रूर, धनी, स्थूल बुद्धि, प्रसिद्ध, ताम्र वर्ण की तरह कान्ति वाला, हास्यप्रिय तथा उसकी छाती, चरण और हाथ तलवार, बर्छी, पाश और परशु के समान रेखाओं से युत होते हैं॥ ३३–३४॥

कुब्ज पुरुष का लक्षण—

कुब्जो नाम्ना यः स शुद्धो ह्यधस्तात् क्षीणः किञ्चित्पूर्वकाये नतश्च।
हंसासेवी नास्तिकोऽर्थैरुपेतो विद्वान् शूरः सूचकः स्यात्कृतज्ञः॥३५॥
कलास्वभिज्ञः कलहप्रियश्च प्रभूतभृत्यः प्रमदाजितश्च।
सम्पूज्य लोकं प्रजहात्यकस्मात्कुब्जोऽयमुक्तः सततोद्यतश्च॥ ३६॥

कुब्ज पुरुष नाभि से नीचे पूर्ण अङ्ग और ऊपर कुछ क्षीण और नत अङ्ग वाला, हंस नामक राजा का सेवक, नास्तिक, धनी, विद्वान्, क्रूर, सूचक और कृतज्ञ होता है। तथा यह कुब्ज पुरुष कलाओं का ज्ञाता, कलहप्रिय, बहुत भृत्यों से युत, स्त्रीजित, लोगों का आदर करके अकस्मात् छोड़ने वाला और सदा उद्यमी होता है॥ ३५–३६॥

मण्डलक पुरुष का लक्षण—

मण्डलकलक्षणमतो रुचकानुचरोऽभिचारवित् कुशलः।
कृत्यावेतालादिषु कर्मसु विद्यासु चानुरतः॥ ३७॥
वृद्धाकारः खरपरुषमूर्धजः शत्रुनाशने कुशलः।
द्विजदेवयज्ञयोगप्रसक्तधीः स्त्रीजितो मतिमान्॥ ३८॥

मण्डलक नामक पुरुष रुचक राजा का सेवक, अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण और विद्वेषण) का ज्ञाता, समर्थ, कृत्या (अभिचार मन्त्र के द्वारा शत्रुवध के लिये अग्निमन्थ से जो स्त्री उत्पन्न होती है उसको कृत्या कहते हैं), वेताल (मरे हुये को मन्त्र द्वारा उठाने को वेताल कहते हैं) आदि विद्याओं में रक्त, वृद्ध के समान शरीर वाला, कठोर और रूखे केश वाला, शत्रु को मारने में कुशल, ब्राह्मण, देवता, यज्ञ और योग में आसक्त बुद्धि वाला, स्त्रीजित बुद्धिमान् होता है॥ ३७–३८॥

साचि पुरुष का लक्षण—

साचीति यः सोऽतिविरूपदेहः शशानुगामी खलु दुर्भगश्च।
दाता महारम्भसमाप्तकार्यो गुणैः शशस्यैव भवेत् समानः॥ ३९॥

साचि पुरुष अति कुरूप, शश नामक राजा का सेवक, लोगों का अप्रिय, दानी, बड़े बड़े कार्यों को आरम्भ करके समाप्त करने वाला और गुणों से शश के समान होता है॥

पुरुष लक्षण का प्रभाव—

पुरुषलक्षणमुक्तमिदं मया मुनिमतानि निरीक्ष्य समासतः।
इदमधीत्य नरो नृपसम्मतो भवति सर्वजनस्य च वल्लभः ॥ ४० ॥

मुनियों के मतों को देखकर मैंने यह पुरुष लक्षण कहा है। इस को जानकर मनुष्य राजाओं का इष्ट और सब लोगों का प्रिय होता है ॥ ४० ॥

इति विमला हिन्दी टीकायां पञ्चमहापुरुषलक्षणाध्यायः एकोनषष्टितमः ॥ ६९ ॥

अथ स्त्रीलक्षणाध्यायः

उस में पहले पाँव का लक्षण—

स्निग्धोन्नताग्रतनुताम्रनखौ कुमार्याः
पादौ समोपचितचारुनिगूढगुल्फौ।
श्लिष्टाङ्गुली कमलकान्तितलौ च यस्या-
स्तामुद्वहेद्यदि भुवोऽधिपतित्वमिच्छेत् ॥ १ ॥

जिस कन्या के पाँव स्निग्ध, ऊँचे, आगे से पतले और लाल नखों से युत, समान, पुष्ट सुन्दर और छिपे हुए गुल्फ वाले, मिली हुई अङ्गुली वाले तथा कमल की कान्ति के समान कान्ति वाले हों पृथ्वीपतित्व को चाहने वाला मनुष्य उससे शादी करे ॥ १ ॥

पाद, जङ्घा, जानु, ऊरु-गुह्य और मणि का लक्षण—

मत्स्याङ्कुशाब्जयववज्रहलासिचिह्ना-
वस्वेदनौ मृदुतलौ चरणौ प्रशस्तौ।
जङ्घे च रोमरहिते विशिरे सुवृत्ते
जानुद्वयं सममनुल्बणसन्धिदेशम् ॥ २ ॥
ऊरू घनौ करिकरप्रतिमावरोमा-
वश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं च गुह्यम्।
श्रोणीललाटमुरु कूर्मसमुन्नतं च
गूढो मणिश्च विपुलां श्रियमादधाति ॥ ३ ॥

जिस कन्या के पसीने से रहित कोमल पादतल में मत्स्य, अंकुश, कमल, जौ, वज्र, हल और खड्ग के समान रेखा हो, रोमहीन नाड़ियों से रहित, सुन्दर और गोल जङ्घा हो, स्थूल सन्धि वाले समान जानु हों, घन, हाथी के सूँड के समान और रोम रहित ऊरू हों, पीपल, के पत्ते के समान विस्तीर्ण भग हो, कछुए के पृष्ठ के समान विस्तीर्ण कटि प्रदेश हो, छिपी हुई मनि हो वह बहुत लक्ष्मी करती है। यहाँ पर समुद्र— स्निग्धौ ताम्रनखौ धन्यौ कूर्मपृष्ठौ सुलोहितौ। निगूढगुल्फौ सुश्लिष्टौ घनाङ्गुलिसमन्वितौ ॥ मत्स्याङ्कुशयवाब्जेषु हलवज्रासिचिह्नितौ। सुस्पृशौ रोमरहितौ कुमार्याश्चरणौ शुभौ ॥

अतो विपर्यस्तगुणौ दुःखदारिद्र्यभागिनी। यस्याः पार्ष्णी नतौ कन्यामुद्वहेन्न कदाचन ॥
जङ्घे सुरोमरहिते शिराहीने सुवर्तुले। सुश्लिष्टे जानुनी धन्ये शिरारोमविवर्जिते ॥
गजहस्तसमावूरू सघनौ सन्ततौ समौ। सुस्पर्शं धूमपृष्ठं वा विपुलं जघनं शुभम् ॥
मणिर्निगूढ सुश्लिष्टः स्फिचौ च विपुलौ शुभौ। नाभिदेशः सुगुप्तश्च यस्याः सा धनभागिनी ॥

नितम्ब और नाभि का लक्षण—

विस्तीर्णमांसोपचितो नितम्बो गुरुश्च धत्ते रशनाकलापम्।
नाभिर्गभीरा विपुलाङ्गनानां प्रदक्षिणावर्त्तगता च शस्ता ॥ ४ ॥

जिन स्त्रियों के विस्तीर्ण, पुष्ट, भारी और कांची कलाप से युत नितम्ब हों, गम्भीर, विस्तीर्ण और दक्षिणावर्त्त नाभि हो वे शुभ होती हैं। यहाँ पर समुद्र—

जघनं विपुलं यस्याः सुस्पर्शं रोमवर्जितम्। सुवर्णाभरणैर्युक्ता सा भवेद्राज्यभागिनी ॥
गम्भीरा विपुला नाभी दक्षिणावर्तमाश्रिता। शस्ता विपर्यये नेष्टा वामावर्ता विशेषतः ॥४॥

मध्य भाग, स्तन, वक्ष और ग्रीवा का लक्षण—

मध्यं स्त्रियास्त्रिवलिनाथमरोमशं च
वृत्तौ घनावविषमौ कठिनावुरस्यौ।
रोमप्रवर्जितमुरो मृदु चाङ्गनानां
ग्रीवा च कम्बुनिचितार्थसुखानि दत्ते ॥ ५ ॥

जिस स्त्री का मध्य भाग त्रिवलि से युत और रोम रहित हो, गोल, पुष्ट, समान और कठोर दोनों स्तन हों, रोम रहित और कोमल छाती हो तथा शङ्ख के समान तीन रेखाओं से युत कण्ठ हो वह धन और सुख देती है। कहा भी है—

मध्यं वलित्रयचितं सुस्पर्शं रोमवर्जितम्। यस्याः सा राजमहिषी कन्या नात्यत्र संशयः ॥
स्तनौ सुवर्तुलौ धन्यौ सन्ततौ कठिनौ तथा। अरोमौ च शिराहीनौ पुत्रसौख्यधनप्रदौ ॥
वक्षो विलोमसुस्पर्शं विस्तीर्णं परिसौख्यदम्। शिराततं च विषमं वैधव्यायासशोकदम् ॥

तथा गर्ग—

स्थिरा त्रिरेखा सुभगोपपन्ना स्निग्धा सुमांसोपचिता सुवृत्ता।
न चातिदीर्घा चतुरङ्गुला च ग्रीवा च दीर्घा भवतीह धन्या ॥ ५ ॥

अधर और दन्त का लक्षण—

बन्धुजीवकुसुमोपमोऽधरो मांसलो रुचिरबिम्बरूपभृत्।
कुन्दकुड्मलनिभाः समा द्विजा योषितां पतिसुखामितार्थदाः ॥६॥

बन्धुजीव पुष्प के समान पुष्प और सुन्दर बिम्बफल के समान अधर तथा कुन्द पुष्प के समान दाँत स्त्रियों को पतिसुख और बहुत धन देते हैं। कहा भी है—

अधरो बिम्बसदृशो मांसलो स्फुटितस्तथा। यस्याः सा राजमहिषी कुमारी नात्र संशयः ॥

यहाँ पर गर्ग—

तीक्ष्णाग्रवृत्ता सुसमा दृढाश्च शुभा मृणालेन्दुसमानवर्णाः।
निरन्तरा स्त्रीषु भवन्ति धन्या द्विजास्तथा ये रजतप्रकाशाः ॥

तथा समुद्र—

द्वात्रिंशद्दन्ता यस्याः सर्वे गोक्षीरपाण्डुराः। सर्वे शिखरिणः स्निग्धा राजभार्या च सा भवेत् ॥

वचन और नासिका का लक्षण—

दाक्षिण्ययुक्तमशठं परपुष्टहंस-
वल्गु प्रभाषितमदीनमनल्पसौख्यम्।
नासा समा समपुटा रुचिरा प्रशस्ता
दृग्नीलनीरजदलद्युतिहारिणी च ॥ ७ ॥

सरस, शठता से रहित, कोकिल या हंस के समान मधुर और दीनता रहित स्त्री का वचन अधिक सुखद होता है। समान, समान पुटों से युत और सुन्दर स्त्री की नासिका प्रशस्त है। तथा नील कमल की कान्ति को हरने वाली स्त्री की दृष्टि शुभ होती है।

यहाँ पर गर्ग

हंसस्वना दुन्दुभिनेमिघोषा मेघस्वनाः शंखनिनादघोषाः।
मयूरचक्रप्रतिमस्वनाश्च स्त्रियस्तथा कोकिलतुल्यशब्दाः॥
कादम्बचक्राह्वयकिङ्किणीषु समस्वना याश्च भवन्ति नार्यः।
सर्वाः प्रशस्ता धनपुत्रवत्यो भवन्ति धर्मातुराः सदाताः॥

और भी—स्पष्टा समा समपुटा नासा सौभाग्यदा मता।

और भी—

नीलनीरजपत्राभा दृष्टिर्यस्याः भवेत् सदा। सा राजमहिषी ज्ञेया ज्यौतिःशास्त्रविशारदैः॥

भ्रू और ललाट का लक्षण—

नो सङ्गते नाति पृथू न लम्बे शस्ते भ्रुवौ बालशशाङ्कवक्रे।
अर्धेन्दुसंस्थानमरोमशं च शस्तं ललाटं न नतं न तुङ्गम् ॥८॥

बिना मिले, न बहुत चौड़े, न बहुत लम्बे और बाल चन्द्र के समान वक्र स्त्री के भ्रू शुभ होते हैं। तथा अर्ध चन्द्र के समान, रोम रहित और न नत न उन्नत (समान) स्त्री का ललाट शुभ होता है। कहा भी है—

बालचन्द्रसमे वक्रे न लम्बे नातिसङ्गते। भ्रुवौ यस्याः कुमार्यास्तां महाराज्ञीं विनिर्दिशेत्॥
नोन्नतं न च निम्नं वा शिरोरोमविवर्जितम्। अर्धचन्द्राकृति सौम्यं ललाटं शस्यते स्त्रियाः॥

कान, केश, शिर का लक्षण—

कर्णयुग्ममपि युक्तमांसलं शस्यते मृदु समाहितं समम्।
स्निग्धनीलमृदुकुञ्चितैकजा मूर्धजाः सुखकराः समं शिरः ॥ ९ ॥

स्त्री के बराबर मांस युत, कोमल, समान और संलग्न दोनों कान शुभ होते हैं। स्निग्ध, अतिकृष्ण, कोमल, कुटिल और एक एक रोम कूप में एक एक रोम सुख करते हैं। तथा समान (न नीचा न ऊँचा) शिर शुभ होता है। कहा भी है—

नातिलम्बौ मृदू तुल्यौ सलग्नौ युक्तमांसलौ। कर्णौ यस्याः स्मृता सा तु राजभार्या न संशयः॥
सुस्निग्धा नीलवर्णाश्च मृदवः कुञ्चिताः कचाः। शस्यन्ते योषितो नित्यं धनपुत्रप्रदा यतः॥
नोन्नतं नाथवा निम्नं शिरः सौख्यप्रदं स्मृतम् ॥ ९ ॥

हाथ और पाँव का लक्षण—

भृङ्गारासनवाजिकुञ्जररथश्रीवृक्षयूपेषुभि-
र्मालाकुण्डलचामराङ्कुशयवैः शैलैर्ध्वजैस्तोरणैः।

मत्स्यस्वस्तिकवेदिकाव्यजनकैः शङ्खातपत्राम्बुजैः
पादे पाणितलेऽथवा युवतयो गच्छन्ति राज्ञीपदम् ॥ १० ॥

जिस स्त्री के पादतल या पाणितल में श्रृंगार (झारी), आसन, घोड़ा, हाथी, रथ, विल्व वृक्ष, यज्ञ स्तम्भ, शर, माला, कुण्डल, चामर, अंकुश, जौ, पर्वत, ध्वज, तोरण, मत्स्य, स्वस्तिक, यज्ञवेदी, पंखा, शंख, छत्र और कमल के समान रेखा हों वे रानी होती है। यहाँ पर गर्ग—

मत्स्यः समुद्रो वसुधा धनं च ध्वजस्तथाद्रिर्दिनकृच्छशी च।
शङ्खः पुरं चक्रमथासनं च यूपस्तथा व्यजनतोरणं च॥
छत्रं यवः पद्ममथाङ्कुशं च सिंहोऽथवा स्वस्तिक एव चापी।
कूर्मः पताका मकरः पुमांश्च दण्डः सरित् पूर्णघटो रथश्च॥
पाणौ तथैतानि भवन्ति यासामेकं तथा द्वे च बहूनि चापि।
अत्यन्तसौख्यं बहुपुत्रतां च श्रीणां तथा लक्षणमादिशेत॥

यहाँ पर समुद्र—

मत्स्यः पाणितले छत्रं कच्छपो वा ध्वजोऽपि वा। श्रीवत्सं कमलं शङ्खमासनं चामरं तथा॥
अङ्कुशश्चैव माला च यस्याः हस्ते तु दृश्यते। एकं सा जनयेत् पुत्रं राजानं पृथिवीपतिम्॥
यस्याः पाणितले दृश्यः कोष्ठागारः सतोरणः। अपि दासकुले जाता सा राजमहिषी भवेत्॥

हाथ का लक्षण—

निगूढमणिबन्धनौ तरुणपद्मगर्भोपमौ
करौ नृपतियोषितस्तनुविकृष्टपर्वाङ्गुली।
न निम्नमति नोन्नतं करतलं सुरेखान्वितं
करोत्यविधवां चिरं सुतसुखार्थसम्भोगिनीम् ॥ ११ ॥

रानी के हाथ नवीन कमल गर्भ के समान पतले और लम्बे पर्वों वाली अङ्गुलियों से युत और छिपे हुए मणिबन्ध वाले होते हैं। तथा न नीचा न ऊँचा और उत्तम रेखाओं से युत करतल अविधवा, पुत्र सुख और धन सम्भोग करती है। कहा भी है—

निगूढमणिबन्धौ तु पद्मगर्भसमप्रभौ। विकृष्टाङ्गुलिपर्वाणौ करौ नृपतियोषितः॥
नोच्चं न निम्नं सुसमं सुरेखाभिः समन्वितम्। तलं यस्या भवेत्पाण्योः सा राजमहिषी स्मृता॥

ऊर्ध्व रेखा का लक्षण—

मध्याङ्गुलिं या मणिबन्धनोत्था रेखा गता पाणितलेऽङ्गनायाः।
ऊर्ध्वस्थिता पादतलेऽथवा या पुंसोऽथवा राज्यसुखाय सा स्यात् ॥ १२॥

स्त्री या पुरुष के मणिबन्ध से लेकर मध्यमा अङ्गुली तक रेखा और पाद तल में जो ऊर्ध्व रेखा वे राज्य सुख के लिये होती है। कहा भी है—

मणिबन्धनसम्भूता मध्याङ्गुलिसमाश्रिता। रेखा पाणितले यस्याः सा कन्या राजभागिनी॥

आयु रेखा का लक्षण—

कनिष्ठिकामूलभवा गता या प्रदेशिनीमध्यमिकान्तरालम्।
करोति रेखा परमायुषः सा प्रमाणमूना तु तदूनमायुः ॥ १३ ॥

कनिष्ठिका के मूल से प्रदेशिनी और मध्यमा के मध्य में गई हुई पूरी रेखा हो तो परमायु और छोटी हो तो परमायु से अल्प आयु करती है। कहा भी है—

कनिष्ठामूलसम्भूता गता मध्यमिकान्तरम्। प्रदेशिन्याश्च सा रेखा यस्याः सा दीर्घजीविनी॥

सन्तान की रेखा का ज्ञान—

अङ्गुष्ठमूले प्रसवस्य रेखाः पुत्रा बृहत्यः प्रमदास्तु तन्व्यः।
अच्छिन्नमध्या बृहदायुषस्ताः स्वल्पायुषां छिन्नलघुप्रमाणाः॥१४॥

अंगूठे की मूल में सन्तान की रेखा होती है उनमें जितनी बड़ी रेखा हो उतने पुत्र और जितनी छोटी रेखा हो उतनी कन्यायें होती हैं। तथा मध्य में बिना टूटी हुई रेखा दीर्घायु वाले सन्तान की और टूटी हुई रेखा अल्पायु वाले संतान की होती है। कहा भी है— अङ्गुष्ठमूले या रेखाः स्थूलाः पुत्राश्च ते मताः।
सूक्ष्मा दुहितरस्ताभ्यो विच्छिन्नाः स्वल्पजीविनः॥
वामहस्ते तु नारीणां पुरुषाणां च दक्षिणे। चिह्नं निरूपयेद्धीमान् समुद्रवचनं तथा॥ १४॥

अब इसके बाद अशुभ लक्षण कहते हैं—

इतीदमुक्तं शुभमङ्गनानामतो विपर्यस्तमनिष्टमुक्तम्।
विशेषतोऽनिष्टफलानि यानि समासतस्तान्यनुकीर्त्तयामि॥ १५॥

इस तरह से स्त्रियों के शुभ लक्षण कहे हैं। इनसे विपरीत अशुभ लक्षण होते हैं। तथा विशेषकर जो अशुभ लक्षण हैं उनको मैं कहता हूँ॥ १५॥

पहिले पाँव का लक्षण—

कनिष्ठिका वा तदनन्तरा वा महीं न यस्याः स्पृशति स्त्रियाः स्यात्।
गताथवाङ्गुष्ठमतीत्य यस्याः प्रदेशिनी सा कुलटाऽतिपापा॥ १६॥

जिस स्त्री के पाँव की कनिष्ठिका या अनामिका भूमि को स्पर्श न करे, अँगूठे से लंबी तर्जनी हो वह व्यभिचारिणी और अति पापिनी होती है। कहा भी है—

कनिष्ठा पादयोर्यस्या भूमिं स्पृशति नाङ्गुलिः। न सा तिष्ठति कौमारी बन्धकीं तां विनिर्दिशेत्॥
पादप्रदेशिनी यस्या अङ्गुष्ठादतिरिच्यते। कुमारी कुरुते जारं यौवनस्था तु किं पुनः॥ १६॥

जङ्घा और गुह्य का लक्षण—

उद्बद्धाभ्यां पिण्डिकाभ्यां शिराले शुष्के जङ्घे लोमशे चातिमांसे।
वामावर्त्तं निम्नमल्पं च गुह्यं कुम्भाकारं चोदरं दुःखितानाम्॥१७॥

ऊपर को खिंची हुई पिण्डिका (जंघा के पश्चिम भाग) वाली, नाड़ियों से व्याप्त, सूखी, रोमों से युत या अधिक पुष्ट जंघा वामावर्त्त रोमों से युत, निम्न और छोटी भग तथा घड़े के समान पेट दुःख भोगने वाली स्त्रियों की होती है। कहा भी है—

शुष्के जङ्घेऽतिमांसे वा रोमशे चोर्ध्वपिण्डिके। यस्या सा दुःखिता नित्यं पुत्रवित्तविवर्जिता॥
वामावर्त्तं भगं यस्या दीर्घं सुक्ष्मीसमप्रभम्। निम्नं वा तेन दोषेण वेश्या सौरवं च गच्छति॥
लम्बोदरी च या कन्या दीर्घोदरसमन्विता। मन्नोदरा च दुःखान्ता दासीभावमवाप्नुयात्॥

कण्ठ का लक्षण—

ह्रस्वयातिनिःस्वता दीर्घया कुलक्षयः।
ग्रीवया पृथुत्वया योषितः प्रचण्डता॥ १८॥

छोटी गरदन वाली निर्धन, बहुत लम्बी गरदन वाली कुलक्षय करने वाली और मोटी गरदन वाली स्त्री क्रूर प्रकृति की होती है। कहा भी है—

कुलक्षयकरी दीर्घा ग्रीवा ह्रस्वा च निर्धना। पृथूत्थया प्रचण्डत्व ग्रीवया योषितो वदेत्॥

नेत्र और गाल का लक्षण—

नेत्रे यस्याः केकरे पिङ्गले वा सा दुःशीला श्यावलोलेक्षणा च।
कूपौ यस्या गण्डयोश्च स्मितेषु निःसन्दिग्धं बन्धकीं तां वदन्ति॥१९॥

जिस स्त्री के नेत्र केकर (कञ्जा=ऐंचाताना), पीले, श्याम या चञ्चल हों वह बुरे स्वभाव वाली होती है। तथा जिसके हँसने के समय गालों में गढ़े पड़ जाते हों वह व्यभिचारिणी होती है। कहा भी है—

पारावताक्षी या कन्या कातराक्षी तथापि या। उद्भ्रान्तचपलाक्षी च तां कन्यां वर्जयेद्बुध॥
यस्यास्तु हसमानाया जायन्ते गण्डकूपकाः। भर्तारं हन्ति सा क्षिप्रं नैकत्र रमते चिरम्॥

स्त्रियों का और लक्षण—

प्रविलम्बिनि देवरं ललाटे श्वशुरं हन्त्युदरे स्फिजोः पतिं च।
अतिरोमचयान्वितोत्तरोष्ठी न शुभा भर्तुरतीव या च दीर्घा॥२०॥

जिस स्त्री का ललाट लम्बा हो वह देवर को, उदर लम्बा हो तो श्वशुर को और स्फिक् (कूला=कटिप्रोथ) लम्बा हो तो पति को मारती है। तथा जिसके ऊपर के ओंठ में अधिक रोम हों और जो बहुत लम्बी हो वह पति के लिए शुभ देने वाली नहीं होती है। कहा भी है—

त्रीणि यस्याः प्रलम्बन्ते ललाटमुदरं स्फिजम्। त्रींश्च सा पुरुषान् हन्ति देवरं श्वशुरं पतिम्॥
श्मश्रुयुक्ता च या कन्या याऽतिदीर्घा मलावृता। दासीभावमवाप्नोति देहदोषेण साङ्गना॥

स्तन, कान और दाँत का लक्षण—

स्तनौ सरोमौ मलिनोल्बणौ च क्लेशं दधाते विषमौ च कर्णौ।
स्थूलाः कराला विषमाश्च दन्ताः क्लेशाय चौर्याय च कृष्णमांसाः॥२१॥

जिस स्त्री के स्तन और कान रोम युक्त, मलिन, अभद्र और छोटे बड़े हों वह क्लेश भोगने वाली होती है। तथा जिसके मोटे, बाहर निकले, विषम और काले मांस से युत दाँत हों वह चोर होती है। कहा भी है—

रोमयुक्तौ स्तनौ यस्या मलिनौ च शिरावतौ। दुःखिता सा भवेन्नारी नित्य प्रव्रजिता तथा॥
शिरायुक्तौ न च समौ कर्णौ दारिद्र्यभाजनौ। स्थूलाः करालाः विषमाः कृष्णमांसा बहिर्गताः॥
दन्ता दुःखप्रदा ज्ञेया वैधव्यायासकारिणः॥२१॥

हाथ का लक्षण—

क्रव्यादरूपैर्वृककाककङ्कसरीसृपोलूकसमानचिह्नैः।
शुष्कैः शिरालैर्विषमैश्च हस्तैर्भवन्ति नार्यः सुखवित्तहीनाः॥२२॥

जिस स्त्री के हाथ में माँस खाने वाले (गीध आदि) पक्षी, भेड़िया, कौआ, कङ्क, सर्प या उल्लू के समान रेखा हो अथवा सूखे, नाड़ियों से व्याप्त और छोटे बड़े हाथ हों वह स्त्री सुख और धन से हीन होती है। कहा भी है—

क्रव्यादसदृशैश्चिह्नैः काकोलूकसमप्रभैः। शुष्कैः करालैर्विषमैः करैर्दुःखान्विता स्त्रियः॥२२॥

या वृत्तरोष्ठेन समुन्नतेन रूक्षाग्रकेशी कलहप्रिया सा।
प्रायो विरूपासु भवन्ति दोषा यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति ॥ २३ ॥

जिस स्त्री के ऊपर का ओंठ ऊँचा हो या केशों के अग्र भाग रूखे हों वह कलहप्रिया होती है। अधिकतर कुरूपा स्त्रियों में दोष और सुन्दरी में गुण होते हैं। कहा भी है—
या नूत्तरोष्ठेनोन्नतेन केशाग्रं स्नेहवर्जितम्। यस्याः सा दुःखिता नित्यं भर्तुर्निधनकारिणी ॥२३॥

शरीर के विभाग—

पादौ सगुल्फौ प्रथमं प्रदिष्टौ जङ्घे द्वितीयं तु सजानुचक्रे।
मेढ्रोरुमुष्कं च ततस्तृतीयं नाभिः कटिश्चैव चतुर्थमाहुः ॥ २४ ॥
उदरं कथयन्ति पञ्चमं हृदयं षष्ठमतः स्तनान्वितम्।
अथ सप्तममंसजत्रुणी कथयन्त्यष्टममोष्ठकन्धरे ॥ २५ ॥
नवमं नयने च सभ्रुणी सललाटं दशमं शिरस्तथा।
अशुभेष्वशुभं दशाफलं चरणाद्येषु शुभेषु शोभनम् ॥ २६ ॥

कालिक शुभाशुभ फल ज्ञान के लिये शरीर के दस भाग करते हैं। जैसे—गुल्फ हित पाँव पहला भाग, जानुचक्र सहित जंघा दूसरा भाग, लिङ्ग, ऊरु और अण्डकोश सरा भाग, नाभि और कमर चौथा भाग, उदर पाँचवाँ भाग, स्तन सहित हृदय ठा भाग, कन्धे और कन्धे की सन्धि सातवाँ भाग, ओंठ और कंठ आठवाँ भाग, सहित नेत्र नौवाँ भाग तथा ललाट सहित शिर दशवाँ भाग है। इस तरह परमायु १२०) का भी दस भाग करें। यदि अङ्ग का प्रथम भाग शुभ लक्षणों से युत हो तो ायु के प्रथम भाग में शुभ, अशुभ लक्षणों से युत हो तो आयु के प्रथम भाग में अशुभ ल कहना चाहिये। इसी तरह द्वितीय आदि अङ्ग भाग शुभाशुभ लक्षणों से युत ो तो आयु के द्वितीय आदि भाग में शुभाशुभ फल कहना चाहिए॥ २४–२६॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां स्त्रीलक्षणाध्यायः सप्ततितमः ॥ ७० ॥



अथ वस्त्रच्छेदनलक्षणाध्यायः

अश्विनी आदि नक्षत्रों में वस्त्र पहनने का फल—

प्रभूतवस्त्रदाश्विनी भरण्यथापहारिणी।
प्रदह्यतेऽग्निदैवते प्रजेश्वरेऽर्थसिद्धयः ॥ १ ॥
मृगे तु मूषकाद्भयं व्यसुत्वमेव शाङ्करे।
पुनर्वसौ शुभागमस्तदग्रभे धनैर्युतिः ॥ २ ॥

भुजङ्गभे विलुप्यते मघासु मृत्युमादिशेत् ।
भगाह्वये नृपाद्भयं धनागमाय चोत्तरा ॥ ३ ॥
करेण कर्मसिद्धयः शुभागमस्तु चित्रया ।
शुभं च भोज्यमानिले द्विदैवते जनप्रियः ॥ ४ ॥
सुहृद्युतिश्च मित्रभे तदग्रभेऽम्बरक्षयः ।
जलप्लुतिश्च नैर्ऋते रुजो जलाधिदैवते ॥ ५ ॥
मिष्टमन्नमपि वैश्वदेवते वैष्णवे भवति नेत्ररोगता ।
धान्यलब्धिरपि वासवे विदुर्वारुणे विषकृतं महद्भयम् ॥ ६ ॥
भद्रपदासु भयं सलिलोत्थं तत्परतश्च भवेत्सुतलब्धिः ।
रत्नयुतिं कथयन्ति च पौष्णे योऽभिनवाम्बरमिच्छति भोक्तुम् ॥ ७ ॥

यदि अश्विनी नक्षत्र में नवीन वस्त्र धारण करे तो बहुत वस्त्र का लाभ, भरणी में वस्त्रों की हानि, कृत्तिका में अग्नि से वस्त्र का जलना, रोहिणी में धन प्राप्ति, मृगशिरा में वस्त्र को चूहे का भय, आर्द्रा में मृत्यु, पुनर्वसु में शुभ की प्राप्ति, पुष्य में धन का लाभ, आश्लेषा में वस्त्र नाश, मघा में मृत्यु, पूर्व फाल्गुनी में राजा से भय, उत्तर फाल्गुनी में धन का लाभ, हस्त में कर्मों की सिद्धि, चित्रा में शुभ की प्राप्ति, स्वाती में उत्तम भोजन का लाभ, विशाखा में जनों का प्रिय, अनुराधा में मित्रों का समागम, ज्येष्ठा में वस्त्र का क्षय, मूल में जल में डूबने का भय, पूर्वाषाढा में रोग, उत्तराषाढा में मिष्टान्न का लाभ, श्रवण में नेत्र रोग, धनिष्ठा में अन्न का लाभ, शतभिष में विष का अधिक भय, पूर्वभाद्र पद में जल का भय, उत्तरा भाद्रपदा में पुत्र का लाभ और रेवती नक्षत्र में नवीन वस्त्र धारण करे तो रत्नलाभ होता है ॥ १-७ ॥

भोक्तुं नवाम्बरं शस्तमृक्षेऽपि गुणवर्जिते ।
विवाहे राजसम्माने ब्राह्मणानां च सम्मते ॥ ८ ॥

विवाह में, राजसम्मान में और ब्राह्मणों की आज्ञा मिलने पर अविहित नक्षत्र में भी वस्त्र धारण करना शुभ होता है ॥ ८ ॥

नवधाकृत वस्त्र के द्वारा शुभाशुभ फल—

वस्त्रस्य कोणेषु वसन्ति देवा नराश्च पाशान्तदशान्तमध्ये ।
शेषास्त्रयश्चात्र निशाचरांशास्तथैव शय्यासनपादुकासु ॥ ९ ॥

नवधा विभक्त वस्त्र के चारों कोनों में देवता, पाशान्त मध्य (वस्त्र के मूल) और दशान्त मध्य (वस्त्र के अग्र) में मनुष्य तथा मध्य स्थित तीन भागों में राक्षस की कल्पना करे। इसी तरह शय्या, आसन और पादुका में भी विचार करना चाहिये।

यहाँ पर गर्ग—

वस्त्रमुत्तरलोमं तु भागेश नवधा भवेत्। त्रिधा दशान्तपाशान्ते त्रिधा मध्य पृथक् पृथक् ॥
चतुर्षु कोणेषु सुराः पाशान्ते मध्यमे नरा । दशान्ते च नरा भूयो मध्यभागे निशाचराः ॥

राक्षसान् विनिवृत्यैव शय्यादिष्वप्ययं विधिः॥

देवा	राक्षसाः	देवाः
नराः	राक्षसाः	नराः
देवाः	राक्षसाः	देवाः

यहाँ पर पराशर का विशेष—

अथातुमवणे उपानच्छेदमुपदेक्ष्यामः। तत्र विंशतिश्छेदाः। तेषां सप्त पूजिता विगर्हिताः शेषा भवन्ति। अङ्गुष्ठाद्विवेशानरदेशे प्रमच्छितेऽस्वपानशीलाम विन्द्यात्। प्रदेशिन्या स्त्रीवस्त्रलाभम्। मध्यमया वधबन्धनम्। अनामिकया मातृमरणं स्वसृमरणं च। कनिष्ठिकया पितृमरणं भ्रातुर्वा। नासातःशीलाभम्। अङ्गुष्ठाङ्गुलिमूले व्याधिभयम्। चूडायां वैमनस्यम्। ग्रीवायां शिरश्छेदनम्। स्थानबन्धेऽध्वगमनधनप्राप्तिम्। कर्णिकाशकलभक्षणे सन्धिच्छेदभयं च। सकले कलहसंप्रवृत्तिं च। पार्ष्णिबन्धेऽध्वगमनम्। पार्ष्णिस्थाने वाहनागमनम्। बाह्यपदपुटच्छेदावभक्षणाद् सुहृद्भ्रातृविनाशं विद्यात्। मध्यमस्य विपुलमर्थागमनम्। उत्तमस्य लाभम्। पदमध्ये शोकागमनम्। पार्श्वयोः पार्श्वरोगम्। सकलोपानद्भक्षणे मरणं विद्वायासा भवन्ति।

और भी—

नवासु फलसामग्र्यमुपभुक्तासु मध्यमम्। शुभाशुभं विनिर्देश्यं जीर्णासु न भवेत्फलम्॥
गुरुवृद्धद्विजाचार्यसमानमङ्गलमेवनात्। अशुभानां च मर्त्यानां तस्माद्दोषात् प्रमुच्यते।

इत्युपानच्छेदलक्षणम्॥

अथ वाससां शुभाशुभैर्व्यरफलसूचकम्। अकस्मान्मपोकर्दमाञ्जनरुधिरगोमयैरुपराग स्तयाखुकीटगोजन्तुभिरवभक्षणं वा दूनं च काष्ठकण्टकैर्दाहो वा वह्निना भवति तद्विज्ञानलक्षणफलमुपदेक्ष्यामः। तत्र प्राक्शाग्रं प्रात्यश्शाग्रं नवधा वस्त्रं विभजेत् त्रिवंशम्। अदोषु तेषु क्रमात् फलनियमः। अर्थहानिः। अर्थागमः। धनक्षयः। स्त्रीविनाशः। पुत्रपीडा। दुहितृमरणम्। स्वशरीरव्याधिः। व्यसनागमश्चेति अष्टासु। नवमेऽध्वगमनमर्थागमः कर्मसिद्धयश्च। कुम्भादर्शकर्णशकलशखरदविकूटेन्दुरुचकफलकगृहतोरणच्छत्रमेखलास्रुगुपवेदीपद्मशङ्खश्रीवत्सस्वस्तिकमत्स्यवर्धमानतन्याकारैस्तु क्रमाद्विपुलोऽर्थागमः। कुक्षिरोगः। श्रोत्रपाडा। विरोधः। अध्वगमनम्। अनारोग्यम्। व्यसनम्। ऐश्वर्यम्। अभिषेकागमः। प्रार्थिताबन्धश्येनकेशरसूर्यसूचीपादैश्च कङ्कालपीठिकाकारैर्मरणम्। द्विरदरथतुरगसदृशैः पशुपुत्रधनैश्वर्यावाप्तिः। हयगजकर्णभगतुलाचटकाकारैरदारप्रावरकुटुम्बविनाशाय। पूर्वे दक्षिणे नारीणां। दक्षिणे सुहृदाम्। दक्षिणपरे पशूनाम्। पश्चिमे प्रेष्याणाम्। पश्चिमोत्तरे ज्ञातेः। बन्धोश्चोत्तरे। पूर्वोत्तरे मध्यमस्य। पूर्वे सर्वसम्पदाम्।

और भी—

विवर्जितं तु यद्वस्त्रं विनश्येच्छेदमङ्गलम्। विवर्जितं तु यच्च स्यादनर्थाय विनिर्दिशेत्॥
नवे वस्त्रे यथोक्तं स्यात् फलं जीर्णे तु नेष्यते। न रक्ते न पुनर्धौते न स्वयं दग्धपाटिते।
विलक्षणं स्यमेद्वस्त्रं समच्छेदमसङ्कुलम्। विवर्जितं तु यद्वस्त्रं कुर्याद्विद्विजार्चनम्॥
जपहोमोपवासांश्चेत्तया नाप्नोति किल्बिषम्॥ ९॥

नवधा वस्त्र करने का प्रयोजन—

लिप्ते मषीगोमयकर्दमाद्यैश्छिन्ने प्रदग्धे स्फुटिते च विन्द्यात् ।
पुष्टं नवेऽल्पाल्पतरं च भुक्ते पापं शुभं चाधिकमुत्तरीये ॥ १० ॥

यदि नवीन वस्त्र स्याही, गोबर कीचड़ आदि से लिप्त हो जाय, जल जाय या फट जाय तो सम्पूर्ण अशुभ या शुभ फल जानना चाहिये, यदि मध्यम वस्त्र हो तो थोड़ा और बिल्कुल पुराना वस्त्र हो तो बहुत थोड़ा अशुभ या शुभ फल जानना चाहिये किन्तु ओढ़ने के वस्त्र हों तो अधिक अशुभ या शुभ फल होता है ॥ १० ॥

रुग्राक्षसांशेष्वथवापि मृत्युः पुंजन्म तेजश्च मनुष्यभागे ।
भागेऽमराणामथ भोगवृद्धिः प्रान्तेषु सर्वत्र वदन्त्यनिष्टम् ॥ ११ ॥

यदि राक्षसों के भाग में स्याही लग जाय तो रोग या मृत्यु, मनुष्यों के भाग में पुत्र जन्म और तेज का लाभ, देवताओं के भाग में भोग की वृद्धि तथा सब भागों के प्रान्त में स्याही आदि लग जाय तो अनिष्ट फल होता है, यह मुनियों का वाक्य है ॥ ११ ॥

कङ्कप्लवोलूककपोतकाकक्रव्यादगोमायुखरोष्ट्रसर्पैः ।
छेदाकृतिर्दैवतभागगापि पुंसां भयं मृत्युसमं करोति ॥ १२ ॥

यदि देवताओं के भाग में भी, कङ्क, मेढक, उल्लू, कबूतर, कौआ, मांसाहारी (गिद्ध आदि), सियार, गदहा, ऊँट या साँप के समान वस्त्र के छेद आदि का आकार हो तो मृत्यु का भय करता है ॥ १२ ॥

छत्रध्वजस्वस्तिकवर्धमानश्रीवृक्षकुम्भाम्बुजतोरणाद्यैः ।
छेदाकृतिर्नैर्ऋतभागगापि पुंसां विधत्ते न चिरेण लक्ष्मीम् ॥१३॥

यदि राक्षसों के भाग में भी, छत्र, ध्वज, स्वस्तिक, वर्धमान (चिह्न विशेष), विल्व वृक्ष, कलश, कमल, तोरण आदि (खड्ग, कुण्ड, भृंगार, हाथी और घोड़े) के समान छेद आदि का आकार हो तो बहुत शीघ्र लक्ष्मी का लाभ कराता है ॥ १३ ॥

विप्रमतादथ भूपतिदत्तं यच्च विवाहविधावभिलब्धम् ।
तेषु गुणैः रहितेष्वपि भोक्तुं नूतनमम्बरमिष्टफलं स्यात् ॥ १४ ॥

बुरे नक्षत्रों में भी ब्राह्मणों की आज्ञा से, राजा का दिया हुआ वस्त्र या विवाह में प्राप्त वस्त्र धारण करना शुभ फल देने वाला होता है ॥ १४ ॥

इति 'विमला' हिन्दी टीकायां वस्त्रच्छेदलक्षणाध्याय एकसप्ततितम ॥ ७१ ॥

अथ चामरलक्षणाध्यायः

चामर प्रयोजन प्रदर्शन—

दैवैश्चमर्यः किल वालहेतोः सृष्टा हिमक्ष्माधरकन्दरेषु ।
आपीतवर्णाश्च भवन्ति तासां कृष्णाश्च लाङ्गूलभवाः सिताश्च ॥ १ ॥

देवताओं ने बाल के लिये हिमालय की कन्दराओं में चमरी की उत्पत्ति की है। उनकी पूँछ के बाल पीले, काले और सफेद होते हैं ॥ १ ॥

पूर्वोक्त वालों का गुण—

स्नेहो मृदुत्वं बहुलता च वैशद्यमल्पास्थिनिबन्धनत्वम्।
शौक्ल्यं च तासां गुणसम्पदुक्ता विद्धालपलुप्तानि न शोभनानि ॥२॥

स्निग्ध, कोमल, अधिक, निर्मल, परस्पर बिना मिले, छोटी मध्य की हड्डी वाले, सफेद ये सब बालों के गुणों की सम्पत्ति है अर्थात् ऐसे बाल शुभ होते हैं। तथा टूटे, फटे, छोटे और उखड़े बाल शुभ नहीं होते हैं॥२॥

चामर के दण्ड का लक्षण—

अध्यर्धहस्तप्रमितोऽस्य दण्डो हस्तोऽथवा रत्निसमोऽथवान्यः।
काष्ठाच्छुभात्काञ्चनरूप्यगुप्ताद्रत्नैश्च सर्वैश्च हिताय राज्ञाम् ॥३॥

इस चामर का दण्ड डेढ़ हाथ, एक हाथ या अरत्नि (मुट्ठी बाँधे हुये हाथ) के तुल्य बनावे। सोना, चाँदी और सब रत्नों से युत श्रेष्ठ काष्ठ का बना हुआ दण्ड राजाओं के हित के लिए होता है॥३॥

वर्ण के क्रम से दण्ड का लक्षण—

यष्ट्यातपत्राङ्कुशवेत्रचापवितानकुन्तध्वजचामराणाम्।
व्यापीततन्त्रीमधुकृष्णवर्णा वर्णक्रमेणैव हिताय दण्डाः॥ ४ ॥

यष्टि, छत्र, अङ्कुश, वेत्र, धनुष, वितान, भाला, ध्वज, और चामर के दण्ड के वर्ण ब्राह्मण आदि वर्णों के लिये क्रम से पीला, पीत लोहित, शहद के समान और काला चाहिये। इस तरह वह यष्टि आदि हित के लिये होते हैं। यहाँ पर गर्ग—

विप्राणां पीतवर्णः स्यात् क्षत्रियाणां तु लोहितः। वैश्यानां पीतवर्णश्च शूद्राणामसितप्रभः॥
दण्ड शुभप्रदो ज्ञेयो यष्टिच्छत्राङ्कुशादिषु॥४॥

दण्ड आदि के सम पर्व का फल—

मातृभूधनकुलक्षयावहा रोगमृत्युजननाश्च पर्वभिः।
द्व्यादिभिर्द्विकविवर्धितैः क्रमात् द्वादशान्तविरतैः समैः फलम् ॥५॥

पूर्वोक्त दण्डों के दो पर्व से लेकर दो दो वृद्धि करके बारह पर्व तक का क्रम से मातृक्षय आदि फल जाने। जैसे दो पर्व का दण्ड मातृक्षय, चार पर्व का भूमि क्षय, छै पर्व का धनक्षय, आठ पर्व का कुलक्षय, दश पर्व का रोग, और बारह पर्व का दण्ड मृत्यु करता है।

दण्ड आदि के विषम पर्वों का फल—

यात्राप्रसिद्धिर्द्विषतां विनाशो लाभाः प्रभूता वसुधागमश्च।
वृद्धिः पशूनामभिवाञ्छिताप्तिस्त्र्याद्येष्वयुग्मेषु तदीश्वराणाम् ॥ ६ ॥

दण्डों में तीन पर्व हों तो दण्ड के स्वामियों को यात्रा में विजय, पाँच पर्व हों तो शत्रुओं का नाश, सात पर्व हों तो बहुत लाभ, नौ पर्व हों तो भूमि लाभ, ग्यारह पर्व हों तो पशुओं की वृद्धि और तेरह हों तो स्वामियों को अभीष्ट वस्तु का लाभ होता है॥६॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां चामरलक्षणाध्यायो द्विसप्ततितमः॥७२॥

अथ छत्रलक्षणाध्यायः

छत्रप्रयोजन—

निचितं तु हंसपक्षैः कृकवाकुमयूरसारसानां वा ।
दौकूल्येन नवेन तु समन्ततश्छादितं शुक्लम् ॥ १ ॥
मुक्ताफलैरुपचितं प्रलम्बमालाविलं स्फटिकमूलम् ।
षड्ढस्तशुद्धहैमं नवपर्वनगैकदण्डं तु ॥ २ ॥
दण्डार्धविस्तृतं तत् समावृतं रत्नभूपितमुदग्रम् ।
नृपतेस्तदातपत्रं कल्याणपरं विजयदं च ॥ ३ ॥

हंस, मुरगा, मयूर, सारस, इन के पंखों से निर्मित, नवीन, विशिष्ट, श्वेत वस्त्र से आच्छादित, लटकती हुई मोतियों की मालाओं से युक्त और स्फटिक से युक्त मूल (मूठ) वाला छत्र बनावे। तथा उसमें छै हाथ लम्बा सोने से मढ़ा हुआ, नौ या सात पर्वों से युत एक काष्ठ का दण्ड लगावे। दण्डार्ध (तीन हाथ) तुल्य छत्र का व्यास रक्खे। चारों तरफ से आवृत्त और रत्नों से भूपित करे। इस तरह राजा का श्रेष्ठ छत्र कल्याण और विजय को देने वाला होता है। यहाँ पर गर्ग—

हंसकुक्कुटपक्षैश्च मायूरैः सारसैस्तथा। निचितं पटसञ्छन्नं शुक्लं मुक्ताफलान्वितम् ॥
छत्रं स्फटिकमूलं यत् तत्र दण्डं तु षट्करम्। कारयेद्धेमसञ्छन्नं नवपर्वनगान्वितम् ॥
हस्तत्रितयविस्तीर्णं रत्नमालाभिरन्वितम्। तदातपत्रं नृपतेः कल्याणविजयावहम् ॥

युवराज आदि के दण्ड का प्रमाण—

युवराजनृपतिपत्न्योः सेनापतिदण्डनायकानां च ।
दण्डोऽर्धपञ्चहस्तः समपञ्चकृतोऽर्धविस्तारः ॥ ४ ॥

युवराज, रानी, सेनापति और दण्डनायक के छत्र का दण्ड साढे चार हाथ और व्यास ढाई हाथ होता है ॥ ४ ॥

शेष राजपुत्रों के छत्र का लक्षण—

अन्येषामुष्णघ्नं प्रसादपट्टैर्विभूषितशिरस्कम् ।
व्यालम्बिरत्नमालं छत्रं कार्यं तु मायूरम् ॥ ५ ॥

युवराज को छोड़ कर शेष राजपुत्रों के लिये मयूर पखों का बना हुआ, प्रसादपट्टों से शोभित शिर वाला और लटकती हुई रत्नमालाओं से युक्त छत्र धूपनिवृत्ति के लिये बनावे।

राजपुरुषों से अतिरिक्त पुरुषों के छत्र का लक्षण—

अन्येषां तु नराणां शीतातपवारणं तु चतुरस्रम् ।
समवृत्तदण्डयुक्तं छत्रं कार्यं तु विप्राणाम् ॥ ६ ॥

अन्य पुरुषों के लिये शीत और धूप की निवृत्ति करने वाला चतुर्भुजाकार छत्र तथा ब्राह्मण के लिये गोल दण्ड युक्त छत्र बनाना चाहिये ॥ ६ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां छत्रलक्षणाध्यायस्त्रिसप्ततितमः ॥ ७३ ॥



अथ स्त्रीप्रशंसाध्यायः

आगम प्रदर्शन—

जये धरित्र्याः पुरमेव सारं पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः।
तत्रापि शय्या शयने वरा स्त्री रत्नोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः॥१॥

सम्पूर्ण पृथ्वी जितने पर भी उसमें केवल अपनी राजधानी सार है। तथा उस राजधानी में अपना घर, अपने घर में अपने रहने का स्थान, अपने रहने के स्थान में शय्या और शय्या पर रत्नों से भूषित स्त्री राज्य सुख का सार है॥१॥

स्त्री की प्रशंसा—

रत्नानि विभूषयन्ति योषा भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्या।
चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गम्॥ २॥

स्त्री रत्नों को भूषित करती है किन्तु रत्न कान्ति से स्त्री नहीं भूषित होती, क्योंकि रत्नरहित स्त्री भी चित्त को हर लेती है किन्तु स्त्री के अङ्ग सङ्ग के बिना रत्न चित्त को नहीं हर सकता है॥ २॥

आकारं विनिगूहतां रिपुबलं जेतुं समुत्तिष्ठतां
तन्त्रं चिन्तयतां कृताकृतशतव्यापारशाखाकुलम्।
मन्त्रिप्रोक्तनिषेविणां क्षितिभुजामाशङ्किनां सर्वतो
दुःखाम्भोनिधिवर्त्तिनां सुखलवः कान्तासमालिङ्गनम्॥ ३॥

सुख, भय, हर्ष आदि आकार को छिपाते हुये, शत्रु की सेना को जीतने के लिये प्रयत्न करते हुये, किये न किये सैंकड़ों व्यापारों की शाखाओं से व्याकुल तन्त्रों को विचारते हुये, मन्त्रियों से कथित निति का सेवन करते हुये, पुत्र आदि से भी शङ्कित रहते हुये, दुःखार्णव में निमग्न राजाओं के लिये स्त्री का आलिङ्गन मात्र थोड़ा सा सुख है॥

श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननं
न रत्नं स्त्रीभ्योऽन्यत् क्वचिदपि कृतं लोकपतिना।
तदर्थं धर्मार्थौ सुतविषयसौख्यानि च ततो
गृहे लक्ष्म्यो मान्याः सततमबला मानविभवैः॥ ४॥

संसार में कहीं पर ब्रह्मा ने स्त्रियों के अतिरिक्त, ऐसा कोई रत्न नहीं बनाया, जिसके सुनने, स्पर्श करने, देखने या स्मरण करने से ही आनन्द हो, स्त्री के लिये धर्म और अर्थ की सेवा करते हैं। स्त्री के द्वारा पुत्र सुख तथा विषय सुख मिलता है, तथा स्त्री गृह में लक्ष्मी है अतः मान तथा विभवों के द्वारा स्त्री का आदर सदा करना चाहिये॥

येऽप्यङ्गनानां प्रवदन्ति दोषान् वैराग्यमार्गेण गुणान् विहाय।
ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम्॥ ५॥

जो कोई वैराग्य मार्ग के द्वारा स्त्रियों में गुणों को छोड़ कर दोषों का वर्णन करते हैं,

वे दुर्जन हैं, ऐसा मेरा अनुमान है। अत: उन दुर्जनों के वचन प्रामाणिक नहीं हो सकते हैं ॥ ५ ॥

प्रब्रूत सत्यं कतरोऽङ्गनानां दोषोऽस्ति यो नाचरितो मनुष्यैः ।
धार्ष्ट्येन पुम्भिः प्रमदा निरस्ता गुणाधिकास्ता मनुनात्र चोक्तम् ॥

स्त्रियों में ऐसा कौन दोष है जिस को पुरुषों ने पहले नहीं किया अर्थात् पहले पुरुषों ने सब दोष किये पश्चात् उनसे स्त्रियों ने सीखे। पुरुषों ने अपनी धृष्टता से स्त्रियों को जीत लिया क्योंकि पुरुषों से स्त्रियों में अधिक गुण हैं, यहाँ पर मनुने भी कहा है ॥६॥

मन्वादि कथित स्त्री प्रशंसा—

सोमस्तासामदाच्छौचं गन्धर्वः शिक्षितां गिरम् ।
अग्निश्च सर्वभक्षित्वं तस्मान्निष्कसमाः स्त्रियः ॥ ७ ॥

चन्द्रमा ने पवित्रता, गन्धर्वों ने शिक्षित वचन और अग्नि सर्वभक्षित्व स्त्रियों को दिया है, इस लिये स्त्रियाँ सुवर्ण तुल्य हैं ॥ ७ ॥

ब्राह्मणाः पादतो मेध्या गावो मेध्याश्च पृष्ठतः ।
अजाश्वा मुखतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः ॥ ८ ॥

ब्राह्मण पांव से, गौ पृष्ठ से और बकरा तथा घोड़ा मुख से पवित्र होता है, किन्तु स्त्री सब अङ्गों से पवित्र होती है ॥ ८ ॥

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित् ।
मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ ९ ॥

स्त्रियों के समान कोई अन्य वस्तु पवित्र नहीं है, कभी भी वे दोष युक्त नहीं होती है अतः मास २ उनका रज उनके पापों का नाश कर देता है ॥ ९ ॥

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥ १० ॥

असम्मानित कुल स्त्रियाँ जिन गृहों को शाप देती हैं कृत्या से हत की तरह चारो तरफ से वे गृह नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

जाया वा स्याज्जनित्री वा सम्भवः स्त्रीकृतो नृणाम् ।
हे कृतघ्नास्तयोर्निन्दां कुर्वतां वः कुतः शुभम् ॥ ११ ॥

मनुष्यों की उत्पत्ति स्त्री से ही होती है अर्थात् माता से साक्षात् और भार्या से पुत्र रूप कर के उत्पत्ति होती है, इसलिये जाया हो या जनित्री (माता) हो, हे कृतघ्न ! उन दोनों की निन्दा करने से तुम्हारा मङ्गल कहाँ से हो सकता है ॥ ११ ॥

दम्पत्योर्व्युत्क्रमे दोषः समः शास्त्रे प्रतिष्ठितः ।
नरा न तमवेक्षन्ते तेनात्र वरमङ्गनाः ॥ १२ ॥

स्त्री पुरुष दोनों को व्युत्क्रम में (परस्त्री गमन में पुरुष को तथा परपुरुष गमन में स्त्री को) समान दोष धर्मशास्त्र में कहा गया है। परन्तु पुरुष उस दोष को नहीं देखते तथा स्त्री देखती है। इसलिये पुरुषों से स्त्रियाँ श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

परस्त्रीगमन में प्रायश्चित—

वहिर्लोम्ना तु षण्मासान् वेष्टितः खरचर्मणा।
दारातिक्रमणे भिक्षां देहीत्युक्त्वा विशुध्यति॥ १३॥

जो पुरुष अपनी स्त्री को छोड़ कर परस्त्री गमन करता है वह बाहर की तरफ किये हुये रोम वाले गदहे के चमड़े से अपने शरीर को ढक कर छै मास तक 'भिक्षां देहि' यह कह कर भीख मांगने से शुद्ध होता है॥ १३॥

न शतेनापि वर्षाणामपैति मदनाशयः।
तत्राशक्त्या निवर्तन्ते नरा धैर्येण योषितः॥ १४॥

सौ वर्ष बीतने पर भी मनुष्य की विषय वासना नष्ट नहीं होती, किन्तु शारीरिक शक्ति कम हो जाने पर पुरुष उससे निवृत्त होता है। और स्त्री धैर्य से निवृत्त होती है॥

अहो धार्ष्ट्यमसाधूनां निन्दतामनघाः स्त्रियः।
मुष्णतामिव चौराणां तिष्ठ चौरेति जल्पताम्॥ १५॥

पवित्र स्त्रियों की निन्दा करते हुये दुर्जनों की धृष्टता, चोरी करते हुये चोर का 'चोर ठहर' ऐसा कहने की तरह है॥ १५॥

पुरुषश्चटुलानि कामिनीनां कुरुते यानि रहो न तानि पश्चात्।
सुकृतज्ञतयाङ्गना गतासूनवगूह्य प्रविशन्ति सप्तजिह्वम्॥१६॥

कामातुर मनुष्य एकान्त में स्त्रियों को जिस प्रकार मधुर वचन कहते हैं, उस प्रकार पीछे नहीं किन्तु स्त्री मृतपति को भी आलिङ्गन करके अग्नि में प्रवेश करती है॥ १६॥

स्त्री की और प्रशंसा—

स्त्रीरत्नभोगोऽस्ति नरस्य यस्य निःस्वोऽपि सम्प्रत्यवनीश्वरोऽसौ।
राज्यस्य सारोऽशनमङ्गनाश्च तृष्णानलोद्दीपनदारु शेषम्॥१७॥

जिस पुरुष को उत्तम स्त्री का सम्भोग हो वह दरिद्र होने पर भी राजा के समान है। क्योंकि राज्य का सार भोजन, स्त्री ये दो ही वस्तु होते हैं। शेष धन आदि तृष्णा रूप अग्नि को प्रज्वलित करने वाले काष्ठ हैं॥ १७॥

कामिनीं प्रथमयौवनान्वितां मन्दवल्गुमृदुपीडितस्वनाम्।
उत्स्तनीं समवलम्ब्य या रतिः सा न धातृभवनेऽस्ति मे मतिः॥१८॥

मन्द, सुन्दर, कोमल और पीडित शब्द करती हुई, ऊँचे स्तनों से युत नवयौवना स्त्री को आलिङ्गन करने से जो सुख मिलता है, वह ब्रह्मलोक में भी नहीं मिलता है ऐसा मेरा मत है॥ १८॥

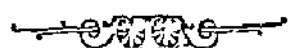
तत्र देवमुनिसिद्धचारणैर्मान्यमानपितृसेव्यसेवनात्।
ब्रूत धातृभवनेऽस्ति किं सुखं यद्रहः समवलम्ब्य न स्त्रियम्॥१९॥

देवता, मुनि, सिद्ध और चारण (नट, नर्तक, गीतज्ञ और वाद्यज्ञ) के द्वारा पूजनीय, पूजक और सेव्यों की उपासना के अतिरिक्त ब्रह्मलोक में क्या सुख है जो एकान्त में स्त्री को आलिङ्गन करने से नहीं प्राप्त होता है॥ १९॥

आब्रह्मकीटान्तमिदं निबद्धं पुंस्त्रीप्रयोगेण जगत् समस्तम् ।
व्रीडात्र का यत्र चतुर्मुखत्वमीशोऽपि लोभाद्गमितो युवत्याः ॥२०॥

ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त सारा संसार स्त्री पुरुष के सम्बन्ध से बँधा हुआ है। अतः इसमें क्या लज्जा? जहाँ महादेव जी भी युवती (तिलोत्तमा) को देखने के लोभ से चतुर्मुखता को प्राप्त हुये ॥ २० ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां स्त्रीप्रशंसाध्यायश्चतुःसप्ततितमः ॥ ७४ ॥



अथ सौभाग्यकरणाध्यायः

सुन्दर पुरुष की विशेषता—

जात्यं मनोभवसुखं सुभगस्य सर्वमाभासमात्रमितरस्य मनोवियोगात् ।
चित्तेन भावयति दूरगतापि यं स्त्री गर्भं बिभर्त्ति सदृशं पुरुषस्य तस्य ॥ १ ॥

सुभग पुरुष को कामदेव सम्बन्धी सब सुख श्रेष्ठ हैं। स्त्री के मनोवियोग के कारण दुर्भग पुरुष को सुख का आभास मात्र होता है। दूर में रहती हुई भी स्त्री जिस पुरुष का ध्यान करती है उसके समान गर्भ धारण करती है ॥ १ ॥

आत्मा की स्त्री में उत्पत्ति—

भङ्क्त्वा काण्डं पादपस्योप्तमुर्व्यां बीजं चास्यां नान्यतामेति यद्वत् ।
एवं ह्यात्मा जायते स्त्रीषु भूयः कश्चित्तस्मिन् क्षेत्रयोगाद्विशेषः ॥ २ ॥

जिस वृक्ष का कलम या बीज भूमि में बोया जाता है, वही वृक्ष उत्पन्न होता है दूसरा नहीं। इसी तरह आधारभूत स्त्री मे फिर पुत्ररूप से आत्मा की ही उत्पत्ति होती है। केवल क्षेत्र के योग से कुछ विशेष होता है। जैसे क्षेत्र के भेद से वृक्षों में साधारण भेद होता है उसी तरह स्त्रियों में भी जानना चाहिये ॥ २ ॥

दूरस्थित के कामोत्पत्ति का कारण—

आत्मा सहैति मनसा मन इन्द्रियेण
स्वार्थेन चेन्द्रियमिति क्रम एष शीघ्रः ।
योगोऽयमेव मनसः किमगम्यमस्ति
यस्मिन्मनो व्रजति तत्र गतोऽयमात्मा ॥ ३ ॥

मन के साथ आत्मा, इन्द्रिय के साथ मन और अपने विषय के साथ इन्द्रिय जाती है। यह आत्मा को जाने का शीघ्र क्रम और योग (सम्बन्ध) है। मन का कोई अगम्य स्थान नहीं है तथा जहाँ मन जाता है वहाँ आत्मा भी जाती है यहाँ पर विशेष—

कहा भी है—

पायूपस्थं हस्तपादं वाक् तथैवात्र पञ्चमी। पञ्चकर्मेन्द्रियाण्याहुर्मनः पद्मानि तानि तु ॥
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चेति पञ्चमी। पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुर्मनःपद्मानि तानि तु ॥

आत्मायमात्मनि गतो हृदयेऽतिसूक्ष्मो
ग्राह्योऽचलेन मनसा सततामियोगात् ।
यो यं विचिन्तयति याति स तन्मयत्वं
यस्मादतः सुभगमेव गता युवत्यः ॥ ४ ॥

परमात्मा के हृदय में यह अतिसूक्ष्म जीवात्मा स्थित है। स्थिरचित्त से और निरन्तर अभ्यास से उसका साक्षात् करना चाहिये। क्योंकि जो जिसका निरन्तर चिन्तन करता है, वह तन्मय हो जाता है इसलिये स्त्री भी निरन्तर स्मरण करने से सुभग पुरुष को प्राप्त करती है।

नाभेरूर्ध्वं वितस्तिं च कण्ठाधस्तात् षडङ्गुलम् । हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत् ॥४॥

सुभग और दुर्भग का लक्षण—

दाक्षिण्यमेकं सुभगत्वहेतुर्विद्वेषणं तद्विपरीतचेष्टा ।
मन्त्रौषधाद्यैः कुहकप्रयोगैर्भवन्ति दोषा बहवो न शर्म ॥ ५ ॥

स्त्री के मनोनुकूल कार्य करना सुभगत्व का मुख्य कारण है। तथा उसके प्रतिकूल आचरण करने से विद्वेषण होता है। विस्मयोत्पादक मन्त्र औषधि आदि से स्त्री को वश में करने से अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, अच्छा नहीं होता है ॥ ५ ॥

सुभगता की प्रशंसा—

वाल्लभ्यमायाति विहाय मानं दौर्भाग्यमापादयतेऽभिमानः ।
कृच्छ्रेण संसाधयतेऽभिमानी कार्याण्ययत्नेन वदन् प्रियाणि ॥६॥

गर्व को छोड देने से मनुष्य सबका प्रिय हो जाता है और गर्वी मनुष्य दुर्भगता को प्राप्त होता है। तथा अभिमानी मनुष्य बडी कठिनता से कार्य की सिद्धि करता है। और मधुर वचन बोलते हुये बड़ी आसानी से अपना कार्य सिद्ध होता है ॥ ६ ॥

तेजो न तद्यत् प्रियसाहसत्वं वाक्यं न चानिष्टमसत्प्रणीतम् ।
कार्यस्य गत्वान्तमनुद्धता ये तेजस्विनस्ते न विकत्थना ये ॥ ७ ॥

असमीक्षित कार्यों को करने में प्रीति करने से तेज नहीं होता है। तथा दुर्जनों के द्वारा प्रतिपादित प्रतिकूल वाक्य भी तेज नहीं है। जो मनुष्य कार्य को सम्पन्न करके भी अभिमान रहित रहता है वही तेजस्वी है आत्मश्लाघी मनुष्य नहीं ॥ ७ ॥

सर्वे प्रिय होने का उपाय—

यः सार्वजन्यं सुभगत्वमिच्छेद्गुणान् स सर्वस्य वदेत्परोक्षम् ।
प्राप्नोति दोषानसतोऽप्यनेकान् परस्य यो दोषकथां करोति ॥ ८ ॥

सर्व प्रिय होने की इच्छा करने वाला मनुष्य परोक्ष में सबकी प्रशंसा करे। जो मनुष्य दूसरे की निन्दा करता है उसके ऊपर बहुत से निर्मूल दोष भी लगाये जाते हैं ॥ ८ ॥

उपकार का फल—

सर्वोपकारानुगतस्य लोकः सर्वोपकारानुगतो नरस्य ।
कृत्वोपकारं द्विषतां विपत्सु या कीर्तिरल्पेन न सा शुभेन ॥९॥

जो मनुष्य सबका उपकार करने में उद्यत होता है, उसका उपकार सब मनुष्य करते हैं। विपत्ति में शत्रुओं का उपकार करने से जो कीर्ति मिलती है वह अल्प पुण्य का फल नहीं है ॥ ९ ॥

दुर्जनों के लिये कुछ उपदेश—

तृणैरिवाग्निः सुतरां विवृद्धिमाच्छाद्यमानोऽपिगुणोऽभ्युपैति ।
स केवलं दुर्जनभावमेति हन्तुं गुणान् वाञ्छति यः परस्य ॥ १० ॥

तृणों से ढके हुये अग्नि की तरह छिपाये हुये गुण वृद्धि को ही प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य दूसरे के गुणों का नाश करना चाहता है, वह केवल दुर्जनता को प्राप्त करता है, गुण का नाश करने से कदापि नाश नहीं होता है ॥ १० ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सौभाग्यकरणाध्याय' पञ्चसप्ततितम' ॥ ७५ ॥



अथ कान्दर्पिकाध्यायः

उसमें पहले प्रयोजन प्रदर्शन—

रक्तेऽधिके स्त्री पुरुषस्तु शुक्रे नपुंसकं शोणितशुक्रसाम्ये ।
यस्मादतः शुक्रविवृद्धिदानि निषेवितव्यानि रसायनानि ॥ १ ॥

गर्भधारण काल में रक्त अधिक हो तो कन्या, शुक्र अधिक हो तो पुत्र और दोनों समान हो तो नपुसक की उत्पत्ति होती है, अतः वीर्य बढ़ाने वाले रसायन का सेवन कराना चाहिये ॥ १ ॥

कामदेव को बाँधने की रस्सी—

हर्म्यपृष्ठमुडुनाथरश्मयः सोत्पलं मधु मदालसा प्रिया ।
वल्लकी स्मरकथा रहः स्रजो वर्ग एष मदनस्य वागुरा ॥ २ ॥

प्रासाद के पृष्ठ, चन्द्रमा के किरण, नीलोत्पल, मद्य, मदालसा प्रिया, वीणा, कामदेव की कथा, एकान्त, माला ये सब कामदेव को बाँधने की रस्सी है ॥ २ ॥

शुक्रवृद्धि का योग—

माक्षीकधातुमधुपारदलोहचूर्ण-
पथ्याशिलाजतुघृतानि समानि योऽद्यात् ।
सैकानि विंशतिरहानि जरान्वितोऽपि
सोऽशीतिकोऽपि रमयत्यबलां युवेव ॥ ३ ॥

सोना, मक्खी, शहद, पारा, लौहचूर्ण, हर्रे, शिलाजीत, घृत इनको सम भाग लेकर चूर्ण करके शहद या घृत के साथ इक्कीस दिन तक खाने से अस्सी वर्ष का वृद्ध भी युवा की तरह स्त्री में रमण करता है ॥ ३ ॥

क्षीरं भृतं यः कपिकच्छुमूलैः पिबेत् क्षयं स्त्रीषु न सोऽभ्युपैति ।
माषान् पयःसर्पिषि वा विपक्वान् षड्ग्रासमात्रांश्च पयोऽनुपानम् ॥ ४ ॥

कपिकच्छु (क्यवांच = कवाछु) के जड को दूध में देकर काढा बना कर जो पीता है वह मनुष्य स्त्री प्रसंग करने में क्षीण नहीं होता। तथा दूध से निकाले हुए घृत में उड़द को पकावे उसको छै ग्रास खाकर ऊपर से दूध पीवे तो स्त्री प्रसग करने में क्षीण नहीं होता है ॥ ४ ॥

विदारिकायाः स्वरसेन चूर्णं मुहुर्मुहुर्भावितशोषितं च।
मृतेन दुग्धेन स शर्करेण पिवेत् स यस्य प्रमदाः प्रभूताः ॥ ५ ॥

जिस पुरुष को बहुत स्त्रियाँ हों वह विदारी कन्द के चूर्ण में विदारी कन्द के रस की बार २ भावना देकर सुखावे, उस चूर्ण को खाकर औटाया हुआ दूध में मिश्री मिलाकर पीवे ॥ ५ ॥

धात्रीफलानां स्वरसेन चूर्णं सुभावितं क्षौद्रसिताज्ययुक्तम्।
लीढ्वानुपीत्वा च पयोऽग्निशक्त्या कामं निकामं पुरुषो निषेवेत् ॥

आँवले के चूर्ण में आँवले के रस की बार-२ भावना देकर सुखावे, बाद उसमें शहद या मिश्री मिला कर चाटे ऊपर से अपनी शक्ति के अनुसार दूध पीकर बहुत स्त्री प्रसग कर सकता है ॥ ६ ॥

क्षीरेण वस्ताण्डयुजा मृतेन सम्प्लाव्य कामी बहुशस्तिलान् यः।
सुशोषितानत्ति पयः पिबेच्च तस्याग्रतः किं चटकः करोति ॥ ७ ॥

बकरे के अण्ड को दूध में डाल कर काढ़ा बनावे, बाद तिलों में उस दूध की भावना देकर सुखावे। उन तिलों को खाकर ऊपर से दूध पीवे तो उसके सामने चटक (गंवरा = गवरैया) भी क्या कर सकता है ॥ ७ ॥

माषसूपसहितेन सर्पिषा षष्टिकौदनमदन्ति ये नराः।
क्षीरमप्यनुपिबन्ति तासु ते शर्वरीषु मदनेन शेरते ॥ ८ ॥

जिन रातों में घृत के साथ उड़द की दाल के साथ सठी के चावलों का भात खाकर जो ऊपर से दूध पीता है वह उन रातों में कामदेव के साथ सोता है ॥ ८ ॥

तिलाश्वगन्धाकपिकच्छुमूलैर्विदारिकाषष्टिकपिष्टयोगः।
आजेन पिष्टः पयसा घृतेन पक्वं भवेच्छष्कुलिकातिवृष्या ॥ ९ ॥

तिल, असगन्ध, क्यवांच (कवाछु) का जड विदारी कन्द इन सबों को बराबर लेकर चूर्ण बनावे, सब के तुल्य साठी के चावलों का आटा उसमें मिलावे, फिर उसको बकरी के दूध में सान कर बकरी के घृत में पूरी पकावे, वह पूरी बहुत शुक्र करने वाली होती है ॥ ९ ॥

क्षीरेण वा गोक्षुरकोपयोगं विदारिकाकन्दकभक्षणं वा।
कुर्वन्न सीदेद्यदि जीर्यतेऽस्य मन्दाग्निता चेदिदमत्र चूर्णम् ॥१०॥

गोक्षुरक (गोखरु) का चूर्ण या विदारी कन्द का चूर्ण खाकर ऊपर से दूध पीवे तो स्त्री प्रसङ्ग से क्षीण नहीं होता है। यदि यह चूर्ण पच जावे तो, यदि मन्दाग्नि के कारण नहीं पच सके तो पहले अग्नि सन्दीपन के लिये वक्ष्यमाण चूर्ण का सेवन करे ॥ १० ॥

जठराग्नि सन्दीपन करने का योग—

साजमोदलवणा हरीतकी शृङ्गवेरसहिता च पिप्पली ।
मद्यतक्रतरलोष्णवारिभिश्चूर्णपानमुदराग्निदीपनम् ॥ ११ ॥

अजवायन, नमक, हर्रे, सोंठ, पीपल इन सब को सम भाग लेकर चूर्ण बनावे, बाद उस चूर्ण को मद्य, तक्र, कांजी या उष्ण जल के साथ लेवे तो जठराग्नि दीपित होती है ॥ ११ ॥

शुक्रहानि का योग—

अत्यम्लतिक्तलवणानि कटूनि वात्ति
यः क्षारशाकबहुलानि च भोजनानि ।
दृक्शुक्रवीर्यरहितः स करोत्यनेकान्
व्याजान् जरन्निव युवाप्यबलामवाप्य ॥ १२ ॥

अधिक खट्टा, अधिक तीता, अधिक नमकीन, अधिक कडुआ (लाल मिर्च आदि), अधिक खारा या अधिक शाक भोजन करने वाला युवा भी पुरुष दृष्टि, वीर्य और बल से रहित होकर वृद्ध की तरह स्त्री प्रसग के समय अनेक व्याज करता है। यथा—

क्षारो विपेडगजचिर्भिटचव्यवह्नि। व्योष च सरतरचित लवणोपधानम् ॥
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुत प्रयोज्य। गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुगदोद्भवेषु ॥ १२ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां कान्दर्पिकाध्याय पट्सप्ततितम' ॥ ७६ ॥



अथ गन्धयुक्तिर्नामाध्यायः

इसमें पहले प्रयोजन प्रदर्शन—

स्रग्गन्धधूपाम्बरभूषणाद्यं न शोभते शुक्लशिरोरुहस्य ।
यस्मादतो मूर्धजरागसेवां कुर्याद्यथैवाञ्जनभूषणानाम् ॥ १ ॥

सफेद केश वाले पुरुष को माला, सुगन्ध द्रव्य, धूप, वस्त्र, भूषण आदि शोभा नहीं देते इसलिये अञ्जन और भूषण के सेवन की तरह केश काले करने का भी प्रयत्न करना चाहिये ॥ १ ॥ द्रव्यों के ज्ञान के लिये यहाँ निघण्टु का सग्रह—

अथात्र व्यवहारार्थं निघण्टुरभिलिख्यते। कस्तूरी मदनी नाभिर्मदो दर्पो मृगोद्भवा ॥
मृगदर्पो मृगमदो गन्धचेत्येकवाचका। स्फटिकेन्दुतुषाराख्य कर्पूरं घनसारकम् ॥
काश्मीरं घुसृण रक्तसञ्ज्ञक कुङ्कुमं विदु‌ः। वानराख्य चलाख्य च तैल सिह्व तुरुष्ककम् ॥
कालीय जोङ्गकं लोह खल कार्पासकोऽगुरु। हिम शीताख्यमाहेय मलयाख्य च चन्दनम् ॥
सूक्ष्मैला बहुलाख्या च चन्द्रेला द्राविडी त्रुटि। श्रीपुष्पं देवपुष्प च लघुपुष्प लवङ्गकम् ॥
कोलं कोलककक्कोले फलं जातीफल विदु। उष्ण कुटुफल जाति मालती जातिपत्रिकाम् ॥
फल पत्र तमाल च गन्धपत्र च नेत्रकम्। भृङ्गाख्य नेत्रराज च वराङ्ग त्वक् तनुत्वचम् ॥
गणकाख्यं काञ्चनाख्य केसर नागकेसरम्। रस गन्धरस पिण्डरस बोलं चल विदु‌ः ॥
पूतिकोशो बिडालाख्यश्चेडित्रत्नातकाभिध। लता लतानामिनाम्नी रेणु‌ः कुन्ती हरेणुका ॥

मेघाख्यं मुस्तमिच्छन्ति वक्राख्यं तगरं नतम् । करजाख्यं नखं शंखं तथा नखपदं स्मृतम् ॥
उत्पलाख्यं च थाप्यं कुष्ठं गदोऽपि रुक् । मांसी केशी पिशाची च नलदं कमलं जटाम् ॥

श्यामा प्रियाख्या श्रीसञ्ज्ञा प्रियङ्गुः फलिनी स्मृता ।
ग्रन्थिपर्णो ग्रन्थिपर्णं शुकं स्थौणेयकं विदुः ॥
ह्रीवेरं वारिसञ्ज्ञं च ह्रीवारं बालकं स्मृतम् ।

रणं सेव्यं मृणालाह्वयमुशीरमिह कथ्यते । रामो मृणालो रामज्ञो व्यामकं दवदग्धकम् ॥
प्रवालं विद्रुमाख्यं च वर्षी स्यादबलिका नली । स्पृक्काऽसृग्ब्राह्मणी माला देवी च परिभाष्यते ॥
चक्राङ्गी कटुकी गन्धा जटिलोग्रा जया वचा । कचुं कर्चूरमुग्रं च गन्धमूलं च कीर्त्यते ॥
पुष्पा समन्तपुष्पा च शतपुष्पा शता मिसिः । कुसुमालो भवेच्चण्डः स्तेनश्चौरोऽपि तस्करः ॥
शाकृष्टं केशपलितं जरा स्थविरसञ्ज्ञितम् । गिर्याख्यं गिरिजाख्यं च शैलेयं समुदाहृतम् ॥
दार्वी दारु निशाख्या च कालेयं पीतचन्दनम् । पीता हरिद्रा नक्ताख्या दारु तद्वेवदारुवत् ॥
रक्ता समङ्गा मञ्जिष्ठा मधुकं मधुयष्टिका । धान्याकं धान्यकं धानीयकं कुस्तुम्बुरु स्मृतम् ॥
मरु मरुवकं भूर्जी फणिज्जं सानव तथा । सर्जो सर्जरसाख्या रालाचेह निगद्यते ॥
पुर गुग्गुलं भद्रं च भद्राख्यं महिसाक्षकम् । रोहिषं पेशलं प्राहुः पर्यासं च कुठेरकम् ॥
क्षीरदृष्याऽश्वसङ्ख्य श्रीवासः श्रीश्च वासरः । जतु लाक्षा कृमिसतज्ञा धात्रीमामलकं विदुः ॥
हरीतक्यभया पथ्या विजया प्राणदाऽपि च । कलिर्बिभीतकं चाच त्रिफलं स्यादिदं त्रिकम् ॥
शुण्ठीमरीचपिप्पल्यस्त्र्यूषणं सर्वसंयुता । त्रिफला सत्रिजाता च त्रिवर्गं त्रितयं स्मृतम् ॥
त्वक्पत्रैला त्रिजातं स्याच्चतुर्जातं सकेसरम् । त्रिफला स्यात्तु कक्कोलकटुजातिफलैस्त्रिभिः ॥
घृतेन्दुकुङ्कुमैः पञ्चसुगन्धिः कोलपुष्पवृत् । कोलोञ्झितः सदर्पश्च देवराजः सदैव हि ॥
कर्पूरं कुङ्कुमं दर्पं त्रितयं स्यात् त्रिगन्धिकम् । लवङ्गफलकक्कोलकटुकर्पूरकुङ्कुमैः ॥
लताजातिचूर्णोत्थरसैर्दशसुगन्धिकः । तीक्ष्णं मरीचमिच्छन्ति चित्रकं वह्निसंज्ञकम् ॥
रोचना रुचिरा ज्ञेया शर्करा सिकता सिता । पुष्पासवः पुष्परसः सारघं मधुमाक्षिकं ॥
क्षौद्रं भ्रामरमित्याहुस्तन्मलं सिक्थकं विदुः । मदनं च मधूच्छिष्टं मधुसारं च पण्डिताः ॥
द्राक्षाफलोत्तमा बिल्वः श्रीफलः श्रीतरुस्तथा । लुङ्गं च मातुलुङ्गं च केशरी बीजपूरकम् ॥
सौभाञ्जनं सुभाञ्जं च शिग्रुवत्फलपल्लवाः । अजो बस्तो जरच्छागो मूत्रं छागस्तदम्बु वा ॥
त्वक्सहा सुरभिर्वज्री सुरभिश्च महातरुः । स्वर्णक्षीरी स्वर्णलता ज्योतिष्मत्यभिधीयते ॥
सुवीरं काञ्चिकं वीरं तालुमूलं च तालुकम् । सौभाग्यं टङ्कणं टंकं बाकुची मालतीभवम् ॥
निःसारं राक्षसं पद्मं करञ्जं कतकजं स्मृतम् । आम्रश्चूतश्च कामाङ्गः सहकारः स्मरप्रियः ॥

अपरं कोकिलाक्षश्च निघण्टुज्ञैरुदाहृतः ॥ १ ॥

केश को काले करने का प्रयोग—

लोहे पात्रे तण्डुलान् कोद्रवाणां शुक्ते पक्वाल्लोहचूर्णेन साकम् ।
पिष्टान् सूक्ष्मं मूर्ध्नि शुक्ताम्लकेशे दत्वा तिष्ठेद्वेष्टयित्वार्द्रपत्रैः ॥ २ ॥
याते द्वितीये प्रहरे विहाय दद्याच्छिरस्यामलकप्रलेपम् ।
सञ्छाद्य पत्रैः प्रहरद्वयेन प्रक्षालितं कार्ष्ण्यमुपैति शीर्षम् ॥ ३ ॥

सिर्के में कोदो के चावल को लोहे के पात्र में रांधे, बाद उसमें लोह चूर्ण मिला कर बारीक करके पीसे उसको सिर्के से खट्टे किये हुये केशों में लेप करके हरे पत्ते से ढक कर दो पहर तक बैठे, बाद उस लेप को धो कर आवले का लेप करके हरे पत्तों से ढक कर दोपहर तक बैठे, पश्चात् सिर को धो डाले तो केश काले हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

पश्चाच्छिरःस्नानसुगन्धतैलैर्लोहाम्लगन्धं शिरसोऽपनीय ।
हृद्यैश्च गन्धैर्विविधैश्च धूपैरन्तःपुरे राज्यसुखं निषेवेत् ॥ ४ ॥

केश काले हो जाने के बाद शिरः स्नान और सुगन्ध तेलों के द्वारा लोहे तथा सिर्के के गन्धों को दूर करके मनोहर सुगन्ध द्रव्य और धूपों को लगाते हुये राजा अन्त पुर में राज्यसुख का सेवन करे ॥ ४ ॥

शिरःस्नान का प्रकार—

त्वक्कुष्ठरेणुनलिकास्पृक्कारसतगरवालकैस्तुल्यैः ।
केसरपत्रविमिश्रैर्नरपतियोग्यं शिरःस्नानम् ॥ ५ ॥

दाल चीनी, कूठ, रेणुका (गगन धूरि) नलिका, स्पृक्का, चोल, तगर, नेत्रवाला, नाग केसर, पत्र (गन्ध पत्र) इनको सम भाग लेकर पीसे फिर शिर में लगा कर स्नान करे यह राजा के योग्य शिर स्नान है ॥ ५ ॥

सुगन्ध तेल बनाने का प्रकार—

मञ्जिष्ठया व्याघ्रनखेन शुक्त्या त्वचा सकुष्ठेन रसेन चूर्णः ।
तैलेन शुक्तोऽर्कमयूखतप्तः करोति तच्चम्पकगन्धि तैलम् ॥ ६ ॥

मजीठ, समुद्रफेन, शूक्ति, दालचीनी, कूठ, चोल इन सब को बराबर लेकर चूर्ण करे। फिर उस चूर्ण को तिल के तेल में डाल कर धूप में तपाये तो उस तेल में चम्पे के फूलों के तेल की गन्ध आ जाती है ॥ ६ ॥

गन्ध चतुष्टय बनाने का प्रकार—

तुल्यैः पत्रतुरुष्कवालतगरैर्गन्धः स्मरोद्दीपनः
सव्यामो बकुलोऽयमेव कटुकाहिङ्गुप्रधूपान्वितः ।
कुष्ठेनोत्पलगन्धिकः समलयः पूर्वो भवेच्चम्पको ।
जातीत्वक्सहितोऽतिमुक्तक इति ज्ञेयः सकुस्तुम्बुरुः ॥ ७ ॥

गन्धपत्र, सिह्लक, नेत्रवाला, तगर इन सब को सम भाग लेकर मिलाने से कामोद्दीपन करने वाली गन्ध हो जाती है। इस गन्ध में व्यामक (दवदग्धक) मिला कर कटुका (गुगुल) और हिङ्गु का धूप देने से मौलसरी पुष्प के समान सुगन्ध द्रव्य बन जाता है। कूठ मिलाने से नीलकमल की, सफेद चन्दन मिलाने से चम्पे के फूलों की तथा जायफल, दालचीनी तथा धनियाँ मिलाने से अतिमुक्तक पुष्प की गन्ध आ जाती है ॥ ७ ॥

शतपुष्पाकुन्दुरुकौ पादेनार्धेन नखतुरुष्कौ च ।
मलयप्रियङ्गुभागौ गन्धो धूप्यो गुडनखेन ॥ ८ ॥

सौंफ और कुन्दरक (देवदारु वृक्ष का निर्यास) एक चतुर्थांश, नख (शङ्ख से उत्पन्न चमड़ा) और सिह्लक दो चतुर्थांश, श्वेतचन्दन और प्रियङ्गु एक चतुर्थांश इन सबको मिलाकर गन्ध द्रव्य बनावे, गुड़ और नख का धूप देवे (पहले हर्रे का धूप देकर बाद उक्त द्रव्य का धूप देना यह प्राचीन का मत है) ॥ ८ ॥

धूप बनाने का प्रकार—

गुग्गुलुवालकलाक्षामुस्तानखशर्कराः क्रमाद्धूपः।
अन्यो मांसीवालकतुरुष्कनखचन्दनैः पिण्डः॥ ९॥

गूगल, नेत्रवाला, लाख, मोथा, नख, खाँड इन सबको बराबर लेकर धूप बनावे। तथा बालछड, नेत्रवाला, सिह्लक, नख, चन्दन इन सबको सम भाग लेकर पिण्ड नामक दूसरा धूप बनावे॥ ९॥

हरीतकीशंखघनद्रवाम्बुभिर्गुडोत्पलैः शैलकमुस्तकान्वितैः।
नवान्तपादादिविवर्धितैः क्रमाद्भवन्ति धूपा बहवो मनोहराः॥१०॥

हर्रे, शंख, नख, बोल, नेत्रवाला, गुड, कूठ, शैलक, मोथा इन नौ वस्तुओं को क्रम से एक पाद से लेकर नौ पाद तक लेवे, जैसे हर्रे एक पाद, शंख दो पाद, नख तीन पाद इत्यादि मोथा नौ पाद एक धूप। गुड, कूठ, शैलक, मोथा इन चार वस्तुओं को क्रम से एक पाद से लेकर चार पाद तक लेवे तो दूसरा धूप। शैलक, मोथा इन दो वस्तुओं को क्रम से एक पाद से लेकर दो पाद तक लेवे तो तीसरा धूप। हर्रे एक भाग में शंख दो भाग मिलाने से चौथा धूप। उसमें नख तीन भाग मिलाने से पाँचवाँ धूप इत्यादि अनेक प्रकार के मनोहर धूप बनते हैं॥ १०॥

भागैश्चतुर्भिः सितशैलमुस्ताः, श्रीसर्जभागौ नखगुग्गुलू च।
कर्पूरबोधो मधुपिण्डितोऽयं कोपच्छदो नाम नरेन्द्रधूपः॥ ११॥

खाँड, शैलेय और मोथा चार भाग, श्रीवास, सर्ज, नख और गूगल दो भाग इन सबको पीस कर्पूर के चूर्ण से बोध (सुगन्धित) करे, बाद उसमें शहद मिलाकर पिण्ड बना लेवे, यह कोपच्छद नामक राजाओं के योग्य धूप होता है। आर्द्र वस्तु में आर्द्र वस्तु को मिलाने का नाम वेध और चूर्ण में चूर्ण मिलाने का नाम बोध है।

यहाँ पर ईश्वर—

ओल्लमि ओल्लओ जो दिज्जइ वेह इति सो भणिओ।
बोहो उग जो चुण्णो चुण्णविणि अच्छगन्धो सो॥

पुटवास बनाने का प्रकार—

त्वगुशीरपत्रभागैः सूक्ष्मैलार्धेन संयुतैश्चूर्णः।
पुटवासः प्रवरोऽयं मृगकर्पूरप्रबोधेन॥ १२॥

दालचीनी, खस, गन्धपत्र इनके तीन भाग में सबका आधा (डेढ़) भाग छोटी इलायची मिलाकर चूर्ण बनावे। कस्तूरी या कर्पूर से बोध करे तो वस्त्र सुगन्धित करने का उत्तम चूर्ण बनता है॥ १२॥

गन्धार्णव बनाने का प्रकार—

घनवालकशैलेयककर्पूरोशीरनागपुष्पाणि।
व्याघ्रनखस्पृक्कागुरुमदनकनखतगरधान्यानि॥ १३॥
कर्पूरचोलमलयैः स्वेच्छापरिवर्त्तितैश्चतुर्भिरतः।
एकद्वित्रिचतुर्भिर्भागैर्गन्धार्णवो भवति॥ १४॥

मोथा, नेत्रवाला, शैलेय, कचूर, खश, नागकेसर के फूल, व्याघ्र नख, स्पृक्का (लता), अगुरु, दमनक, नख, तगर, धनियाँ, कर्पूर, चोरक, श्वेत चन्दन इन सोलह द्रव्यों में से किन्हीं चार के क्रम से एक भाग, दो भाग, तीन भाग और चार भाग अदल-बदल कर लेकर चूर्ण बनाने से गन्धार्णव नामक छियानवे तरह के सुगन्ध द्रव्य तैयार होते हैं॥

१६ वस्तुओं से चक्र

मो	ने.	शै.	क.
ख.	ना.	व्या	स्पृ.
अ.	द	न.	त.
ध.	क.	चो.	श्वे.

अत्युल्वणगन्धत्वादेकांशो नित्यमेव धान्यानाम् ।
कर्पूरस्य तदूनो नैतौ द्विच्यादिभिर्देयौ ॥ १५ ॥

धनियाँ और कर्पूर में अति उत्कट गन्ध होने के कारण सदा धनियाँ का एक भाग और कर्पूर का एक भाग से भी कम भाग डालना चाहिये। इन दोनों के दो तीन आदि भाग कभी न डाले। क्योंकि इनमें अति उत्कट गन्ध होने के कारण अन्य द्रव्यों के गन्धों का नाश कर देते हैं ॥ १५ ॥

पूर्वोक्त धूपों के बोधन प्रकार—

श्रीसर्जगुडनखैस्ते धूपयितव्याः क्रमान्न पिण्डस्थैः ।
बोधः कस्तूरिकया देयः कर्पूरसंयुतया ॥ १६ ॥

पूर्वोक्त सब गन्ध द्रव्यों को श्रीवास, राल, गुड, नख इन चारों का अलग-अलग धूप दे, सबको मिला कर नहीं, बाद में कर्पूर और कस्तूरी का बोध दे ॥ १६ ॥

पूर्वोक्त गन्ध द्रव्यों की संख्या—

अत्र सहस्रचतुष्टयमन्यानि च सप्ततिसहस्राणि ।
लक्षं शतानि सप्त विंशतियुक्तानि गन्धानाम् ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त सुगन्ध द्रव्यों के भेद से १७४७२० प्रकार के सुगन्ध द्रव्य बनते हैं ॥ १७ ॥

एक-एक द्रव्य से छ गन्ध द्रव्य—

एकैकमेकभागं द्वित्रिचतुर्भागिकैर्युतं द्रव्यैः ।
षड्गन्धकरं तद्वद्द्वित्रिचतुर्भागिकं कुरुते ॥ १८ ॥

केवल दो वस्तुओं से छै गन्ध द्रव्य तैयार होते हैं जैसे प्रथम के एक भाग में द्वितीय के दो तीन और चार भाग मिलाने से तीन प्रकार के तथा द्वितीय के एक भाग में प्रथम के दो-तीन और चार भाग मिलाने से तीन प्रकार के इस तरह छै प्रकार के गन्ध द्रव्य तैयार होते हैं इसी तरह, एक के दो भाग में अन्य के दो-तीन और चार भाग मिलाने से छै प्रकार के गन्ध द्रव्य तैयार होते हैं ॥ १८ ॥

सब गन्ध द्रव्यों की संख्या—

द्रव्यचतुष्टययोगाद्गन्धचतुर्विंशतिर्यथैकस्य ।
एवं शेषाणामपि षण्णवतिः सर्वपिण्डोऽत्र ॥ १९ ॥

इस तरह एक द्रव्य के योग से छै भेद, चार द्रव्यों के योग चौबीस भेद, एवं शेष तीन स्थानों में स्थित चार चार के बहत्तर भेद सब मिलाकर छियानवे भेद होते हैं ॥ १९ ॥

१६			
१५	१२०		
१४	१०५	५६०	
१३	९१	४५५	१८२०
१२	७८	३६४	१३६५
११	६६	२२६	१००१
१०	५५	२२०	७१५
९	४५	१६५	४९५
८	३६	१२०	३२०
७	२८	८४	२१०
६	२१	५६	१२६
५	१५	३५	७०
४	१०	२०	३५
३	६	१०	१५
२	३	४	५
१	१	१	१

चतुर्विकल्प से संख्या ज्ञान—

षोडशके द्रव्यगणे चतु-
र्विकल्पेन भिद्यमानानाम् ।
अष्टादश जायन्ते शतानि
सहितानि विंशत्या ॥ २० ॥

पूर्वोक्त सोलह द्रव्यों में चार-चार विकल्प से १८२० भेद होते हैं ॥ २० ॥

सब गन्धों की संख्या—

षण्णवतिभेदभिन्नश्चतुर्विकल्पो
गणो यतस्तस्मात् ।
षण्णवतिगुणः कार्यः सा
संख्या भवति गन्धानाम् ॥२१॥

सोलह द्रव्यों में से चार चार विकल्प करके लाये हुए भेद (१८२०) को पूर्व कथित (९६) भेद से गुणा करने से १७४७२० भेद होते हैं, किन्तु ये भेद गौण वृत्ति से आते हैं, मुख्य वृत्ति से तो १८२० को २४ से गुणा करने से ४३६८० भेद होवे हैं ॥ २१ ॥

भेदों की संख्या ज्ञान के लिये लोष्टक प्रस्तार—

पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनान्त्यं प्रवदन्ति संख्याम्।
इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः॥ २२॥

एक से लेकर जितने द्रव्य हों उतनी संख्या तक नीचे से लेकर ऊपर को गई हुई पंक्ति में अङ्कों को लिखे, पूर्व-पूर्व गताङ्क में ऊपर के अङ्कों को जोड़ता जाय, यहाँ अन्तिम स्थान को छोड़ कर संख्या होती है॥ २२॥

अभीष्ट विकल्पों से चरलोष्टक को अन्यत्र ले जाकर उसको वहाँ छोड़ कर फिर अन्य चरलोष्टक को अन्यत्र ले जाय।

अन्य गन्ध योग—

द्वित्रीन्द्रियाष्टभागैरगुरुः पत्रं तुरुष्कशैलेयौ।
विषयाष्टपक्षदहनाः प्रियङ्गुमुस्तारसाः केशः॥ २३॥
स्पृक्कात्वक्तगराणां मांस्याश्च कृतैकसप्तषड्भागाः।
सप्तर्तुवेदचन्द्रैर्मलयनखश्रीककुन्दुरुकाः॥ २४॥

सोलह कोष्ठ का पूर्ववत् एक चक्र बनाकर उसके प्रथम पङ्क्ति में अगर दो भाग, गन्धपत्र तीन भाग, सिह्लक पाँच भाग और शैलेय आठ भाग रखे। द्वितीय पङ्क्ति में प्रियङ्गु पाँच भाग, मुस्ता आठ भाग, बोल दो भाग और बालीजातक (ह्रीवेर) तीन भाग रखे। तृतीय पङ्क्ति में स्पृक्का चार भाग, त्वक् एक भाग, तगर सात भाग और मांसी छ भाग रखे। तथा चतुर्थ पङ्क्ति में चन्दन सात भाग, नख छ भाग, श्रीवास चार भाग और कुन्दरु एक भाग रखे॥ २३-२४॥

अ २	ग ३	सि ५	श ८
प्रि ५	मु ८	बो २	बा ३
स्पृ ४	त्व १	त ७	मां ६
च ७	न ६	श्री ४	कु १

पूर्वोक्त गन्ध द्रव्यों के चक्र में न्यास का प्रयोजन—

षोडशके कच्छपुटे यथा तथा मिश्रिते चतुर्द्रव्ये।
येऽष्टादश भागास्तेऽस्मिन् गन्धादयो योगाः॥ २५॥

नखतगरतुरुष्कयुता जातीकर्पूरमृगकृतोद्बोधाः ।
गुडनखधूप्या गन्धाः कर्तव्याः सर्वतोभद्राः ॥ २६ ॥

इस सोलह कोष्ठ वाले कच्छ पुट में जिन जिन चार द्रव्यों के भागों का योग करने से अट्ठारह हो जाँय उतने प्रकार के गन्धयोग बनते हैं। इस तरह मिश्रित अट्ठारह भागों में नख, तगर और सिह्लक सम भाग लेकर मिलावे, जायफल, कर्पूर और कस्तूरी सम भाग लेकर उद्बोधन करे तथा गुड़ और नख का धूप देवे, इस तरह करने से सर्वतोभद्र नाम के अनेक प्रकार के गन्ध बन जायेंगे। इस चक्र में उर्ध्वाध, तिर्यक् या कोणाकृति क्रम से भागों को जोड़ने से सब जगह अट्ठारह भाग होते हैं, अत: इन गन्ध द्रव्यों का नाम सर्वतोभद्र है ॥ २५-२६ ॥

पारिजात मुखवास बनाने का प्रकार—

जातीफलमृगकर्पूरबोधितैः ससहकारमधुसिक्तैः ।
बहवोऽत्र पारिजाताश्चतुर्भिरिच्छापरिगृहीतैः ॥ २७ ॥

पूर्वोक्त द्रव्यों में से नियमानुसार अपनी इच्छा से किन्हीं चार द्रव्यों को लेकर जायफल, कस्तूरी और कर्पूर से उद्बोधित करके आम के रस से युक्त शहद से सिक्त करने से पारिजात पुष्प सदृश गन्ध वाले बहुत तरह के मुखवास बनते हैं ॥ २७ ॥

स्नानीय चूर्ण बनाने का प्रकार—

सर्जरसश्रीवासकसमन्विता येऽत्र सर्वधूपास्तैः ।
श्रीसर्जरसवियुक्तैः स्नानानि सवालकत्वग्भिः ॥ २८ ॥

पूर्व कथित कच्छपुट में सर्जरस (राल) और श्रीवासक से युत जितने धूप कहे गये हैं, उन में श्रीवास और सर्जरस न मिलाकर नेत्रवाला और दालचीनी मिला देने से अनेक प्रकार के स्नान करने के लिये चूर्ण बन जायगे ॥ २८ ॥

चौरासी प्रकार के केसर गन्ध बनाने का प्रकार—

रोध्रोशीरनतागुरुमुस्तापत्रप्रियङ्गुवनपथ्याः ।
नवकोष्ठात्कच्छपुटाद्द्रव्यत्रितयं समुद्धृत्य ॥ २९ ॥
चन्दनतुरुष्कभागौ शुक्त्यर्धं पादिका तु शतपुष्पा ।
कटुहिङ्गुलगुडधूप्याः केसरगन्धाश्चतुरशीतिः ॥ ३० ॥

लोध, खस, तगर, अगुरु, मुस्ता, गन्धपत्र, प्रियङ्गु, वन (परिपेलव), हरीत की इन नव द्रव्यों को लेकर पूर्व कथित रीति से बनाया हुआ नव कोष्ठ के कच्छ पुट से क्रम से तीन तीन द्रव्य इकट्ठा करके चन्दन एक भाग, सिह्लक एक भाग, शुक्ति आधा भाग, और सौंफ एक भाग का चतुर्थांश मिलावे, कटुका, गुग्गुल और गुड का धूप देवे तो चौरासी प्रकार के बकुल पुष्प के समान गन्ध वाले गन्ध द्रव्य बनते हैं ॥ २९-३० ॥

नव कोष्ठ के कच्छपट—

लो	ग्र	त
श	मु	ग
त्रि	च	ह

यहाँ पर प्रस्तार—

९		
८	३६	
७	२८	८४
६	२१	५६
५	१५	३५
४	१०	२०
३	६	१०
२	३	४
१	१	१

दन्तकाष्ठ बनाने की विधि—

सप्ताहं गोमूत्रे हरीतकीचूर्णसंयुते क्षिप्त्वा ।
गन्धोदके च भूयो विनिक्षिपेद्दन्तकाष्ठानि ॥ ३१ ॥
एलात्वक्पत्राञ्जनमधुमरिचैर्नागपुष्पकुष्ठैश्च
गन्धाम्भः कर्तव्यं कञ्चित्कालं स्थितान्यस्मिन् ॥ ३२ ॥
जातीफलपत्रैलाकर्पूरैः कृतयमैकशिखिभागैः ।
अवचूर्णितानि भानोर्मरीचिभिः शोषणीयानि ॥ ३३ ॥

हरड के चूर्ण से युत गोमूत्र में सात दिन तक दन्तकाष्ठों को भींगावे, बाद उनको उसमें से निकाल कर आगे कथित गन्धोदक में डाले। इलायची, दालचीनी, गन्धपत्र, सौवीर, शहद, कालीमिर्च, नागकेसर, कूट इन सब को सम भाग लेकर गन्ध जल बनावे, फिर उस गन्ध जल में कुछ समय के लिये उन दन्तकाष्ठों को भींगोय रक्खे, इसके बाद जायफल चार भाग, गन्धपत्र दो भाग, इलायची एक भाग और कर्पूर तीन भाग लेकर एक जगह करके बारीक चूर्ण बनावे, उस चूर्ण को उन दन्तकाष्ठों से मसल कर दन्तकाष्ठों को धूप में सुखा कर रक्खे ॥ ३१-३३ ॥

पूर्व विहित दन्तकाष्ठों के सेवन का गुण—

वर्णप्रसादं वदनस्य कान्तिं वैशद्यमास्यस्य सुगन्धितां च ।
संसेवितुः श्रोत्रसुखां च वाचं कुर्वन्ति काष्ठान्यसकृद्भवानाम् ॥३४॥

एवं सिद्ध दन्त काष्ठों को सेवन करने से पुरुषों के प्रसन्न वर्ण, उत्तम मुख की कान्ति, मुख शुद्ध, और सुगन्धि युत तथा कानों को सुख देने वाली वाणी करता है ॥ ३४ ॥

पान का गुण—

कामं प्रदीपयति रूपमभिव्यनक्ति
सौभाग्यमावहति वक्त्रसुगन्धितां च।
ऊर्जं करोति कफजांश्च निहन्ति रोगां-
स्ताम्बूलमेवमपरांश्च गुणान् करोति ॥ ३५ ॥

पान काम को प्रदीप्त करता है, शरीर की शोभा को बढ़ाता है, सौभाग्य करता है, मुख को सुगन्धि युत करता है, बल को बढ़ाता है, कफ से उत्पन्न रोगों का नाश करता है और अन्य गुण (कण्ठ शुद्धि आदि) भी करता है ॥ ३५ ॥

युक्तेन चूर्णेन करोति रागं रागक्षयं पूगफलातिरिक्तम्।
चूर्णाधिकं वक्त्रविगन्धकारि पत्राधिकं साधु करोति गन्धम् ॥ ३६ ॥

ठीक-ठीक (न अधिक न कम) चूना से युक्त पान राग करता है, अधिक सुपारी युत पान राग का नाश करता है, अधिक चूना से युत पान मुख को दुष्ट गन्ध युत करता है और पत्ते अधिक हों तो सुगन्धि युत करता है ॥ ३६ ॥

रात और दिन में पान खाने के नियम—

पत्राधिकं निशि हितं सफलं दिवा च प्रोक्तान्यथाकरणमस्य विडम्बनैव।
कक्कोलपूगलवलीफलपारिजातैरामोदितं मदमुदा मुदितं करोति ॥३७॥

रात में पान खाना हो तो पत्ता और दिन में खाना हो तो सुपारी अधिक डाल कर खाना अच्छा होता है, इससे उल्टा (रात में सुपारी और दिन में पत्ता अधिक डाल कर) खाने से केवल उपहास होता है। कक्कोल, सुपारी, लवलीफल (लवङ्ग पुष्प—लवङ्ग में फूल नहीं होता अतः फल के स्थान में फल का ग्रहण करना चाहिये) और जातीफल से युत पान खाने से मनुष्य को मद के हर्ष से प्रसन्न करता है।

इति 'विमला' हिन्दी टीकायां गन्धयुक्त्यध्यायः सप्तसप्ततितमः ॥ ७७ ॥



अथ पुंस्त्रीसमायोगाध्यायः

सबसे पहले आगम प्रदर्शन—

शस्त्रेण वेणीविनिगूहितेन विदूरथं स्वा महिषी जघान।
विषप्रदिग्धेन च नूपुरेण देवी विरक्ता किल काशिराजम् ॥१॥
एवं विरक्ता जनयन्ति दोषान् प्राणच्छिदोऽन्यैरनुकीर्तितैः किम्।
रक्ता विरक्ताः पुरुषैरतोऽर्थात् परीक्षितव्याः प्रमदाः प्रयत्नात् ॥२॥

विदूरथ राजा की अपनी स्त्री ने वेणी में छिपाये हुये शस्त्र से अपने पति (विदूरथ) को और काशीराज की विरक्त अपनी स्त्री ने विष मिले हुये नूपुर से अपने स्वामी (काशीराज) को मारा। इस तरह विरक्त स्त्रियाँ प्राणनाश करने वाले अनेक दोष

पैदा करती है, अन्य दोष कहने की बात ही क्या। इसलिये पुरुषों को प्रयत्न पूर्वक स्त्रियों की विरक्तता और अनुरक्तता की परीक्षा करनी चाहिये। यहाँ पर कामन्दकि—

स्नातानुलिप्तः सुरभिः स्रग्वी रुचिरभूषणः। स्नातां स्वदृत्तवसनां पश्येद्देवीं सभूषणाम् ॥
नहि देवीगृहं गच्छेदात्मीयात्सन्निवेशनात्। अत्यन्तवल्लभोऽपीह विश्वस्तस्त्रीषु न व्रजेत् ॥
देवी गृहगतोद्भ्रान्ता भद्रसेनं ममार यत्। मातुः शय्यान्तरासीनं कारूषं चौरसं सुतम् ॥
लाजान् विषेण संयोज्य मधुनेति विलोभितम्। देवी तु काशिराजेन्द्रं निजघान रहोगतम् ॥
विषाक्तेन च सौवीरं मेखलामणिना नृपम्। नूपुरेण च वैरूप्यं जारूषं दर्पणेन च ॥
वेण्यां शस्त्रं समादाय तथैवं च विदूरथम् ॥ १-२ ॥

अनुरक्त स्त्री का लक्षण—

स्नेहं मनोभवकृतं कथयन्ति भावा नाभीभुजस्तनविभूषणदर्शनानि।
वस्त्राभिसंयमनकेशविमोक्षणानि भ्रूक्षेपकम्पितकटाक्षनिरीक्षणानि ॥३॥

अनुरक्त स्त्रियों के समस्त भाव (शरीर कांपना, मुह सूखना, मुंह पीला पड़ जाना आदि) काम जनित स्नेह को कहती है। नाभि, भुज, छाती और भूषण दिखाती है। तथा वस्त्र पहनना, केश बांधना, बालों का खोलना, भौंहें चढ़ा कर कम्पित कटाक्ष से देखना ये सब चिन्ह प्रकाशित करती है। यहाँ पर काश्यप—

अनुरागस्थिता रक्ता विरक्ता वेदमानिनी। मनोदृष्टिनिबन्धेन हृदयेनाकुलीकृता ॥
आकारलिङ्गभेदैश्च ज्ञायते यानुरागिणी। विच्छिन्नमन्यचित्तात्व गुरुरोदेऽप्यगोपनम् ॥
आह्लादनं च शब्देन यस्या सा रागरञ्जिता। अतोऽपरा तु या नारी सा विरक्तेति कीर्त्तिता ॥

उच्चैः ष्ठीवनमुत्कटप्रहसितं शय्यासनोत्सर्पणं
गात्रास्फोटनजृम्भणानि सुलभद्रव्याल्पसम्प्रार्थना।
बालालिङ्गनचुम्बनान्यभिमुखे सख्याः समालोकनं
दृक्पातश्च पराङ्मुखे गुणकथा कर्णस्य कण्डूयनम् ॥ ४ ॥
इमां च विन्द्यादनुरक्तचेष्टां प्रियाणि वक्ति स्वधनं ददाति।
विलोक्य संहृष्यति वीतरोषा प्रमार्ष्टि दोषान् गुणकीर्त्तनेन ॥ ५ ॥
तन्मित्रपूजा तदरिद्विषत्वं कृतस्मृतिः प्रोषितदौर्मनस्यम्।
स्तनौष्ठदानान्युपगूहनं च स्वेदोऽथ चुम्बाप्रथमाभियोगः ॥ ६ ॥

बहुत जोर से खखारना, शब्द के साथ हसना, प्रिय के शय्या और आसन के समीप जाना, अपने अङ्गों का शब्द करना, जंभाई लेना, छोटीसी वस्तु को प्रिय से मांगना, प्रिय के सम्मुख में बालकों का आलिङ्गन करके चूमना, प्रिय के सामने सखी को देखना, दूसरी तरफ देखते हुये प्रिय को देखना, प्रिय के गुणों का बखान करना, कान खुजाना ये सब अनुरक्त स्त्री की चेष्टायें हैं। वह अनुरक्त स्त्री प्रिय वचन बोलती है, प्रिय को अपना धन देती है, देख कर प्रसन्न होती है और क्रोधरहित होकर गुणों को कह कर प्रिय के दोषों को छिपाती है। प्रिय के मित्रों की पूजा, शत्रुओं से द्वेष और प्रिय से किये हुये कार्यों का स्मरण करती है। प्रिय को परदेश जाने से दुःखी होती है। स्तनस्पर्श, अधर पान, आलिङ्गन और सुरत करने देती है ये सब अनुरक्त स्त्रियों की चेष्टायें हैं।

यहाँ पर काश्यप—

दृष्टिर्निश्चिपते तत्र मनसापि विचिन्तयेत्। मूलेनं रचते सा तु चित्रं चित्रपदे यथा॥ अकस्मात् पुरतो भूत्वा कश्चिद्वारिलपति भृशम्। ऊरू नितम्बे नाभीं च भूषणानि पयोधरौ॥ करजैरङ्किरेत्स्वामीमनुरागेण रजिताम्। जृम्भते क्षीवतेऽत्यर्थं बाहुत्थानि ददाति सा॥ कुमारालिङ्गन चैव दशनैरधरं दशेत्। एभिर्विकारैर्विज्ञेया मदनार्ता तु कन्यका॥ दर्शनादुत्पद्यते या तु मित्रपक्षं च पूजयेत्। स्मितं पराङ्मुखं पश्येद् गुणांश्चैवानुकीर्तयेत्॥

विरक्त स्त्री का लक्षण—

विरक्तचेष्टा भ्रुकुटीमुखत्वं पराङ्मुखत्वं कृतविस्मृतिश्च।
असम्भ्रमो दुष्परितोषता च तद्द्विष्टमैत्री परुषं च वाक्यम्॥ ७॥
स्पृष्ट्वाथवालोक्य धुनोति गात्रं करोति गर्वं न रुणद्धि यान्तम्।
चुम्बाविरामे वदनं प्रमार्ष्टि पश्चात्समुत्तिष्ठति पूर्वसुप्ता॥८॥

भ्रुकुटी चढ़ाना, पति की तरफ से मुँह फेर लेना, पति के किये हुये कार्यों को भूल जाना, पति का अनादर करना, बड़ी कठिनता से सन्तुष्ट होना, पति के शत्रु से मैत्री करना, कठोर वचन कहना, पति को छूकर या देख कर शरीर को कपाना, अभिमान करना, जाने के लिये तैयार पति को नहीं रोकना, पति को चूमने पर मुह पोंछ लेना, पति के सोने से पहले सोना और बाद में जागना ये सब विरक्त स्त्री की चेष्टायें हैं।

यहाँ पर कश्यप—

दृष्ट्वा न हृष्यते मूढा स्पृष्ट्वा दुर्वचनं वदेत्। रक्तिकालावगूढा तु चुम्बिनी मार्जयेन्मुखम्॥ सुप्ता विबुध्यते पश्चाच्छयने तु पराङ्मुखी। विरक्ता सा स्मृता नारी वर्जनीया प्रयत्नतः॥

स्त्रियों की दूतियाँ—

भिक्षुणिका प्रव्रजिता दासी धात्री कुमारिका रजिका।
मालाकारी दुष्टाङ्गना सखी नापिती दूत्यः॥ ९॥
कुलजनविनाशहेतुर्दूत्यो यस्मादतः प्रयत्नेन।
ताभ्यः स्त्रियोऽभिरक्ष्या वंशयशोमानवृद्ध्यर्थम्॥ १०॥

स्त्रियों के परपुरुष से सम्बन्ध कराने में भिखारिन, सन्यासिन, दासी, धाई, धोबन, मालन, दुष्ट स्वभाव वाली स्त्री, सखी, नायन ये दूती होती हैं। ये दूतियाँ कुल के मनुष्यों का नाश करने के कारण हैं। इसलिये प्रयत्न पूर्वक वंश, यश और मान बढाने के लिये उन दूतियों से स्त्रियों को बचाना चाहिये॥ ९-१०॥

स्त्रियों के विनाश का कारण—

रात्रीविहारजागररोगव्यपदेशपरगृहेक्षणिकाः।
व्यसनोत्सवाश्च सङ्केतहेतवस्तेषु रक्ष्याश्च॥ ११॥

रात में घर से निकल कर बाहर जाना, जागने के लिये रोग का बहाना करना, दूसरे के घर में जाना, दूसरे के विपत्ति तथा विवाहादि उत्सव में सम्मिलित होना ये सब स्त्रियों के संङ्केत के हेतु हैं। इसलिये इनसे स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये।

यहाँ पर काश्यप—

दुष्टसंगरता या तु सा क्षिप्रं नाशयेत् कुलम्। तीर्थयात्राटनं भेदे परवेश्मसमागमम्॥

देवालये राज्यदत्तं परस्परनिवासिभिः। वित्तवेश्मनिवासं च न श्रेयः स्वामिना विना॥
घृतकुम्भोपमा नारी पुरुषं वह्निवर्चसम्। सश्लेषाद्रवते कुम्भस्तद्वत् स्त्री पुंसि भाविता॥
निर्जने तु विविक्तांगी या स्त्री पुरुषमीक्षते। तस्याः प्रस्रवते गुह्यमनुग्राह्येच्छयान्विता॥

स्त्रियों के गुण तथा सुरत का लक्षण—

आदौ नेच्छति नोज्झति स्मरकथां व्रीडाविमिश्रालसा
मध्ये ह्रीपरिवर्जिताभ्युपरमे लज्जाविनम्रानना।
भावैर्नैकविधैः करोत्यभिनयं भूयश्च या सादरा
बुद्ध्वा पुंप्रकृतिं च यानुचरति ग्लानेतरैश्चेष्टितैः॥ १२॥

जो पहले सुरत की इच्छा से रहित किन्तु स्मरकथा को त्यागती भी नहीं है, लज्जा से युत आलस्य वाली, रति के मध्य में लज्जारहित, बाद में लज्जा से नत मस्तक वाली, आदर से बार बार अनेक प्रकार के भावों के साथ रति करने वाली तथा पुरुष के भावों को जान कर सुख-दुख के साथ बरतने वाली स्त्री के साथ रति करना चाहिये।

यहाँ पर बाहुलक—

लीला विलासो विच्छित्तिविभ्रम किलकिञ्चितम्। मोट्टायितं कुट्टमितं विब्बोको ललितं तथा॥
विहृतं चेति विज्ञेया दश स्त्रीणां स्वभावजा। और भी—
वागङ्गालंकरणैः श्लिष्टै प्रीतिप्रयोजकैर्मधुरैः। इष्टजनस्यानुकृतिर्लीला ज्ञेया प्रयोगज्ञैः॥
स्थानासनगमनानां हास्यभ्रूकर्मणां चैव। उत्पद्यते विशेषो यः श्लिष्टः स तु विलासः स्यात्॥
माल्याच्छादनभूषणविलेपनानादरन्यासः।
स्वल्पोऽपि परां शोभां जनयेत् या सा तु विच्छित्तिः॥
विविधानामर्थानां वागङ्गाहार्यसत्वयुक्तानाम्। मदरागहर्षजनितो व्यत्यासो विभ्रमः प्रोक्तः॥
स्मितहसितरुदितभयपुलकरोषगर्वश्रमाभिलाषाणाम्।
सङ्करकरणं हर्षादसकृत् किलकिञ्चितं ज्ञेयम्॥
इष्टजनस्य कथायां हेलालीलादिदर्शनेनापि। तद्भावभावनकृतं तन्मोट्टायितमभिख्यातम्॥
केशस्तनाधरादिग्रहणादतिहर्षसम्भ्रमोत्पन्नम्। कुट्टमितमनुवदन्ति हि सुखस्य दुःखोपचारेण॥
इष्टानां भावानां प्राप्तावभिमानगर्वसम्भूतः। स्त्रीणामनादरकृतो विब्बोको नाम विज्ञेयः॥
हस्तपादाङ्गविन्यासे भ्रूनेत्रौष्ठे प्रयोजिते। सौकुमार्यं भवेद्येन ललितं तत्प्रकीर्तितम्॥
वाच्यानां प्रीतियुक्तानां प्राप्तानां यदभाषणम्।
व्याजात् स्वभावतो वापि विहृतं नाम तद्भवेत्॥

स्त्रीणां गुणा यौवनरूपवेषदाक्षिण्यविज्ञानविलासपूर्वाः।
स्त्री रत्नसंज्ञा च गुणान्वितासु स्त्रीव्याधयोऽन्याश्चतुरस्य पुंसः॥१३॥

स्त्रियों के यौवन, रूप, वेष, चतुरता, कामशास्त्रोक्त कलाओं में कुशलता, विलास (मधुर वचन, कटाक्ष निरीक्षण आदि) ये गुण हैं। चतुर पुरुष के लिये गुणों से युक्त स्त्री रत्न तथा गुण रहित स्त्री व्याधि रूप होती है। यहाँ पर भगवान् व्यास—
यस्य भार्या शुचिर्दक्षा मिष्टाप्रियवादिनी। आत्मगुप्ता भर्तृभक्ता सा श्रीरित्युच्यते बुधैः॥
या च भार्या विरूपाक्षी कश्मला कलहप्रिया। उत्तरोत्तरवक्त्री च सा जरा न जरा जरा॥
निर्विण्णे निर्विण्णा मुदिते मुदिता समाकुलाऽऽकुलिते।
प्रतिबिम्बसमा कान्ता सक्रुद्धे केवलं भीता॥ १३॥

वर्जित स्त्री—

न ग्राम्यवर्णैर्मलदिग्धकाया निन्द्याङ्गसम्बन्धिकथां च कुर्यात् ।
न चान्यकार्यस्मरणं रहःस्था मनो हि मूलं हरदग्धमूर्तेः ॥१४॥

गंवारी बोली बोलने वाली और मलिन स्त्रियों के साथ निन्द्य अङ्गों के सम्बन्ध (रति) की बातचीत नहीं करनी चाहिये। रति के लिये एकान्त में बैठी स्त्री अन्य कार्य का स्मरण न करे, क्योंकि कामदेव का मन ही मूल है। मन अन्यत्र रहने से रति का सुख नहीं होता है॥

यहाँ पर काश्यप—

निर्जने तु विविक्ताङ्गी या स्त्री पुरुषमीचते। तस्याः प्रसिध्यते गुह्यमनुग्राह्येन्द्रियान्विता ॥
परस्परमनोरामे रमयित्वा मनः स्त्रियाः। गर्भं सम्भरते श्रेष्ठं सुभगं दीर्घजीवितम् ॥
दुर्मनस्यौ विरक्तौ च भवेतां सगमे यदि। तदा विरूपश्चाल्पायुर्मुंकाङ्गो दुःखितो भवेत् ॥

स्त्रियों के गुण—

श्वासं मनुष्येण समं त्यजन्ती बाहूपधानस्तनदानदक्षा ।
सुगन्धकेशा सुसमीपरागा सुप्तेऽनुसुप्ता प्रथमं विबुद्धा ॥ १५ ॥

पुरुष के साथ श्वास छोड़ने वाली, अपने बाहुरूप तकिये पर पति का सिर रख कर उसकी छाती से अपने स्तन को लगाने में चतुर, सुगन्ध केश वाली, पति के सोजाने पर सोने वाली और पहले जागने वाली ये गुणवती स्त्री के लक्षण हैं।

वर्जनीय स्त्री के लक्षण—

दुष्टस्वभावाः परिवर्जनीया विमर्दकालेषु च न क्षमा याः ।
यासामसृग्वासितनीलपीतमाताम्रवर्णं च न ताः प्रशस्ताः ॥ १६ ॥
या स्वप्नशीला बहुरक्तपित्ता प्रवाहिनी वातकफातिरिक्ता ।
महाशना स्वेदयुताङ्गदुष्टा या ह्रस्वकेशी पलितान्विता वा ॥ १७ ॥
मांसानि यस्याश्च चलन्ति नार्या महोदरा खिङ्खिणिनी च या स्यात् ।
स्त्रीलक्षणे याः कथिताश्च पापास्ताभिर्न कुर्यात्सह कामधर्मम् ॥ १८ ॥

दुष्ट स्वभाव वाली तथा रति के समय की पीडा को नहीं सहन करने वाली स्त्री को त्याग देना चाहिये। जिनके ऋतु का रक्त काला, नीला, पीला या ताम्रवर्ण हो वे भी श्रेष्ठ नहीं हैं। तथा बहुत सोने वाली, बहुत रक्त पित्त वाली, प्रवाहिनी, अधिक वात तथा कफ वाली, अधिक खाने वाली, पसीने से युक्त शरीर वाली, छोटे केश वाली, सफेद केश वाली, ढीले मांस वाली, बड़े पेट वाली, अस्पष्ट शब्द वाली, स्त्रीलक्षणाध्याय में कथित अशुभ लक्षणों से युत स्त्रियों के साथ रति न करे ॥ १६-१८॥

रजस्वला के रक्त का लक्षण—

शशशोणितसङ्काशं लाक्षारससन्निकाशमथवा यत् ।
प्रक्षालितं विरज्यति यच्चासृक् तद्भवेच्छुद्धम् ॥ १९ ॥
यच्छन्दवेदनावर्जितं त्र्यहात् संनिवर्तते रक्तम् ।
तत्पुरुषसम्प्रयोगादविचारं गर्भतां याति ॥ २० ॥

जो ऋतु का रक्त खरगोश के रक्त या लाख के समान और धोने से छुट जाय वह शुद्ध है। जो रक्त शब्द और पीडा से रहित होकर तीन दिन के बाद बन्द हो जाय वह पुरुष के संयोग होने से गर्भ को धारण करता है ॥ १९-२० ॥

रजस्वला का धर्म—

न दिनत्रयं निषेव्यं स्नानं माल्यानुलेपनं स्त्रीभिः।
स्नायाच्चतुर्थदिवसे शास्त्रोक्तेनोपदेशेन ॥ २१ ॥
पुष्यस्नानौषधयो याः कथितास्ताभिरम्बुमिश्राभिः।
स्नायात्तथात्र मन्त्रः स एव यस्तत्र निर्दिष्टः ॥ २२ ॥

रजस्वला स्त्री तीन दिन तक स्नान, माला और अनुलेपन का सेवन न करे। चौथे दिन शास्त्रोक्त उपदेश के अनुसार स्नान करे। पुष्यस्नाना-ध्याय में जो औषधियाँ कही गई हैं उनको जल में डाल कर उस जल से और जो वहाँ पर मन्त्र कहा गया है वही मन्त्र से स्नान करे ॥ २१ ॥ स्त्री पुरुष के संयोग में तीन भाग—

युग्मासु किल मनुष्या निशासु नार्यो भवन्ति विषमासु।
दीर्घायुषः सुरूपाः सुखिनश्च विकृष्टयुग्मासु ॥ २३ ॥

ऋतु से सम रात्रियों में पुरुष और विषम रात्रियों में स्त्री की उत्पत्ति होती है। दूरस्थित सम रात्रियों (छठी, आठवीं आदि सम रात्रियों) में दीर्घायु, सुन्दर और सुखी पुरुष उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥ पुरुष स्त्री तथा नपुंसक का विभाग—

दक्षिणपार्श्वे पुरुषो वामे नारी यमावुभयसंस्थौ।
यदुदरमध्योपगतं नपुंसकं तन्निबोद्धव्यम् ॥ २४ ॥

स्त्री के दक्षिण पार्श्व में गर्भ हो तो पुरुष, वाम पार्श्व में गर्भ हो तो कन्या, दोनों तरफ हो तो यमल और पेट के बीच में गर्भ हो तो नपुंसक होता है ॥ २४ ॥

स्त्रीप्रसंग में शुभ योग—

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभस्थितेषु लग्ने शशाङ्के च शुभैः समेते।
पापैस्त्रिलाभारिगतैश्च यायात्पुंजन्मयोगेषु च सम्प्रयोगम् ॥ २५ ॥

जिस समय केन्द्र (१।४।७।१०) और त्रिकोण (५।९) स्थानों में शुभ ग्रह हों, लग्न, चन्द्र दोनों शुभग्रहों से युत हों, तीसरे, ग्यारहवें और छठे में पाप ग्रह हों उस समय तथा जातकोक्त पुजन्म योग में स्त्रीप्रसंग करे ॥ २५ ॥

मैथुन काल का नियम—

न नखदशनविक्षतानि कुर्यादृतुसमये पुरुषः स्त्रियाः कथञ्चित्।
ऋतुरपि दश षट् च वासराणि प्रथमनिशात्रितयं न तत्र गम्यम् ॥

पुरुष को ऋतु काल में स्त्री के अङ्गों को नख या दाँतों से क्षत नहीं करना चाहिये। सोलह दिन तक ऋतुकाल रहता है, उस में प्रथम तीन रात्रि तक संगम न करे॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां स्त्रीसमायोगाध्यायोऽष्टसप्ततितम ॥ ७८ ॥

अथ शय्यासनलक्षणाध्यायः

इस को कहने का प्रयोजन—

सर्वस्य सर्वकालं यस्मादुपयोगमेति शास्त्रमिदम् ।
राज्ञां विशेषतोऽतः शयनासनलक्षणं वक्ष्ये ॥ १ ॥

सब मनुष्यों के सब काल में यह शास्त्र उपयोग में आता है, किन्तु राजाओं को विशेषरूप से, इसलिये शय्या तथा आसन का लक्षण कहता हूँ ॥ १ ॥

राजाओं के शय्या और आसन के लिये शुभ वृक्ष—

असनस्पन्दनचन्दनहरिद्रसुरदारुतिन्दुकीशालाः ।
काश्मर्यञ्जनपद्मकशाका वा शिंशपा च शुभाः ॥ २ ॥

विजयसार, स्पन्दन, हरिद्रा, देवदारु, तिन्दुकी, शाल, काश्मरी, अञ्जन, पद्मक, शाक, शिंशपा ये सब वृक्ष शय्या और आसन के लिये शुभदायी हैं ॥ २ ॥

शय्या और आसन में अशुभ वृक्ष—

अशनिजलानिलहस्तिप्रपातिता मधुविहङ्गकृतनिलयाः ।
चैत्यश्मशानपथिजोर्ध्वशुष्कवल्लीनिबद्धाश्च ॥ ३ ॥

बिजली, जल, वायु या हाथी से गिराये हुये, मधुमक्खियों के छत्ते या पक्षियों के घोसले वाले, चैत्य (प्रधान वृक्ष), श्मशान या मार्ग में स्थित तथा सूखी हुई लताओं से व्याप्त ये सब वृक्ष शय्या और आसन के लिये अशुभ हैं ॥ ३ ॥

कण्टकिनो ये च स्युर्महानदीसङ्गमोद्भवा ये च ।
सुरभवनजाश्च न शुभा ये चापरयाम्यदिक्पतिताः ॥ ४ ॥

काँटे वाले, महानदी या देवालय में उत्पन्न तथा पश्चिम या दक्षिण दिशा में गिरे हुये ये सब वृक्ष शय्या और आसन के लिये अशुभ हैं ॥ ४ ॥

अशुभ वृक्ष का फल—

प्रतिषिद्धवृक्षनिर्मितशयनासनसेवनात् कुलविनाशः ।
व्याधिभयव्ययकलहा भवन्त्यनर्था अनेकविधाः ॥ ५ ॥

अशुभ वृक्ष की लकडी से बने हुये शय्या और आसन का सेवन करने से कुल का नाश, रोग, भय, धन की हानि, कलह और अनेक तरह के अनर्थ होते हैं ॥ ५ ॥

पूर्वच्छिन्न वृक्ष का फल—

पूर्वच्छिन्नं यदि वा दारु भवेत्तत्परीक्ष्यमारम्भे ।
यद्यारोहेत्तस्मिन् कुमारकः पुत्रपशुदं तत् ॥ ६ ॥

शय्या या आसन के निर्माण से पहले पूर्व के काटे हुये वृक्ष के शुभाशुभ फल का परीक्षण करना चाहिये । यदि उस कटे हुये वृक्ष पर अकस्मात् कोई बालक चढ़ जाय तो वह वृक्ष पुत्र और पशु को देने वाला होता है ॥ ६ ॥

निर्माण के समय शुभ शकुन—

सितकुसुममत्तवारणदध्यक्षतपूर्णकुम्भरत्नानि ।
मङ्गल्यान्यन्यानि च दृष्ट्वारम्भे शुभं ज्ञेयम् ॥ ७ ॥

शय्या या आसन के निर्माण काल में सफेद फूल, मतवाला हाथी, दही, अक्षत, जल से भरा हुआ घड़ा, रत्न और अन्य मङ्गल द्रव्यों का देखना शुभ होता है ॥ ७ ॥

राजा की शय्या का प्रमाण—

कर्माङ्गुलं यवाष्टकमुदरासक्तं तुषैः परित्यक्तम् ।
अङ्गुलशतं नृपाणां महती शय्या जयाय कृता ॥ ८ ॥

तुषरहित आठ जौ को परस्पर पेटा पेटी करके मिलाने से एक कर्माङ्गुल होता है, तथा सौ कर्माङ्गुल तुल्य लम्बी शय्या राजाओं के जय के लिये होती है ॥ ८ ॥

राजपुत्र आदि की शय्या का प्रमाण—

नवतिः सैव षड्ना द्वादशहीना त्रिषट्कहीना च ।
नृपपुत्रमन्त्रिबलपतिपुरोधसां स्युर्यथासंख्यम् ॥ ९ ॥

राजपुत्र, मन्त्री, सेनापति और पुरोहित की शय्या क्रम से नब्बे, चौरासी, अठत्तर और बहत्तर अङ्गुल लम्बी होनी चाहिये ॥ ९ ॥

शय्या की चौड़ाई और पादोच्छ्राय का प्रमाण—

अर्धमतोऽष्टांशोनं विष्कम्भो विश्वकर्मणा प्रोक्तः ।
आयामत्र्यंशसमः पादोच्छ्रायः सकुक्ष्यशिराः ॥ १० ॥

शय्या की लम्बाई के आधे में उसके (आधे के) अष्टमांश घटा देने से जो शेष बचे तत्तुल्य शय्या की चौड़ाई होती है। तथा चौड़ाई के तृतीयांश तुल्य कुक्षि और शिर के साथ पाये की ऊँचाई होती है यह विश्वकर्मा का मत है। यहाँ पर विश्वकर्मा—

अन्योन्यमुदरासक्तं वितुषं तु यवाष्टकम् । कर्माङ्गुलमिति प्रोक्तं तेन मानेन कारयेत् ॥
नृपाणामङ्गुलशतं शय्या दीर्घा जयावहा । नवतिर्नृपपुत्रस्य सा षड्ना तु मन्त्रिण ॥
द्वादशोना बलेशस्य त्रिषट्कोना पुरोधस । दैवज्ञमानमेवैतत् तुल्यत्वात् कारयेत्तत ॥
दैर्ध्यमष्टमभागोन विष्कम्भः परिकीर्त्तितः । आयामत्र्यंशतुल्यश्च पादोच्छ्रायः प्रकीर्त्तित ॥
शङ्कुच्यशिरसो ज्ञेयः शय्यायाः शुभकारकः ।
ऊनाधिका च या शय्या सा ज्ञेया स्वामिनोऽशुभा ॥ १० ॥

वृक्षों के विशेष फल—

यः सर्वः श्रीपर्ण्या पर्यङ्को निर्मितः स धनदाता ।
असनकृतो रोगहरस्तिन्दुकसारेण वित्तकरः ॥ ११ ॥
यः केवलशिंशपया विनिर्मितो बहुविधं स वृद्धिकरः ।
चन्दनमयो रिपुघ्नो धर्मयशोदीर्घजीवितकृत् ॥ १२ ॥
यः पद्मकपर्यङ्कः स दीर्घमायुः श्रियं श्रुतं वित्तम् ।
कुरुते शालेन कृतः कल्याणं शाकरचितश्च ॥ १३ ॥

केवलचन्दनरचितं काञ्चनगुप्तं विचित्ररत्नयुतम्।
अध्यासन् पर्यङ्कं विबुधैरपि पूज्यते नृपतिः॥ १४॥

श्रीपर्णी वृक्ष से बनी हुई शय्या धन देने वाली, असन (विजय सार) वृक्ष से बनी हुई शय्या रोग हरने वाली, तिन्दुक सार से बनी हुई शय्या धन करने वाली, केवल शिंशपा वृक्ष से बनी हुई शय्या बहुत तरह से वृद्धि करने वाली, चन्दन वृक्ष से बनी हुई शय्या शत्रु का नाश, कीर्ति और दीर्घायु करने वाली, पद्मक वृक्ष से बनी हुई शय्या दीर्घायु, लक्ष्मी, धर्म और धन देने वाली और शाल वृक्ष से बनी हुई शय्या कल्याण करने वाली होती है। केवल चन्दन वृक्ष से बनी हुई, सुवर्ण से मढ़ी हुई और अनेक तरह के रत्नों से व्याप्त शय्या पर सोने वाले राजा की देवता भी पूजा करते है॥ ११-१४॥

मिश्रित काष्ठ का फल—

अन्येन समायुक्ता न तिन्दुकी शिंशपा च शुभफलदा।
न श्रीपर्णेन च देवदारुवृक्षो न चाप्यसनः॥१५॥
शुभदौ तु शालशाकौ परस्परं संयुतौ पृथक् चैव।
तद्वत् पृथक् प्रशस्तौ सहितौ च हरिद्रककदम्बौ॥१६॥
सर्वः स्पन्दनरचितो न शुभः प्राणान् हिनस्ति चाम्बकृतः।
असनोऽन्यदारुसहितः क्षिप्रं दोषान् करोति बहून्॥१७॥
अम्बस्पन्दनचन्दनवृक्षाणां स्पन्दनाच्छुभाः पादाः।
फलतरुणा शयनासनमिष्टफलं भवति सर्वेण॥१८॥

तिन्दुकी और शिंशपा वृक्ष की लकड़ी में किसी अन्य वृक्ष की लकड़ी मिला कर तथा श्रीपर्णी वृक्ष की लकड़ी में देवदारु या असन वृक्ष की लकड़ी मिला कर बने हुये पलंग या आसन शुभ फल देने वाले नहीं होते हैं। शाल, शाक इन दोनों वृक्षों की लकड़ी परस्पर मिली हुई हो या अलग अलग हो तो भी शुभ फल देने वाली होती है। इसी तर हरिद्रका और कदम्ब वृक्ष की लकड़ी परस्पर मिली हुई हो या अलग अलग हो तो भी शुभ फल देने वाली होती है। केवल स्पन्दन वृक्ष की लकड़ी से बने हुये पलंग या आसन शुभ नहीं होते हैं। अम्ब वृक्ष की लकड़ी से बने हुये पलंग या आसन प्राणनाशक होते हैं। अन्य वृक्षों की लकड़ी से युत असन वृक्ष की लकड़ी से बने हुये पलंग या आसन शीघ्र बहुत दोष उत्पन्न करते हैं। अम्ब, स्पन्दन और चन्दन वृक्षों से बने हुये पलंगों के पाये स्पन्दन वृक्ष की लकड़ी से बनाने से शुभ होता है। सब फल वाले वृक्षों की लकड़ी से बने हुये पलंग या आसन से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है॥

सब वृक्षों की लकड़ी के साथ गजदन्त का संयोग—

गजदन्तः सर्वेषां प्रोक्ततरूणां प्रशस्यते योगे।
कार्योऽलङ्कारविधिर्गजदन्तेन प्रशस्तेन॥ १९॥

पूर्वोक्त सब वृक्षों की लकड़ी के साथ हाथीदाँत को मिलाना शुभ है। अतः प्रशस्त लक्षणों से युत हाथीदाँत से पलंग और आसन को भूषित करना चाहिये॥ १९॥

गजदन्त का लक्षण—

दन्तस्य मूलपरिधिं द्विरायतं प्रोज्झ्य कल्पयेच्छेषम् ।
अधिकमनूपचराणां न्यूनं गिरिचारिणां किञ्चित् ॥ २० ॥

गजदन्त के मूल में जितनी अङ्गुलात्मक परिधि हो उसको द्विगुणित करके जो हो उसतुल्य मूल से छोड़ कर शेष भाग से सब कल्पनायें करे। जलप्राय देश के हाथियों में उससे कुछ अधिक और पर्वतचारी हाथियों में उससे कुछ कम भाग छोड़ कर शेष भाग से सब कल्पनायें करे ॥ २० ॥

कल्पित गजदन्त का शुभाशुभ फल—

श्रीवृक्षवर्धमानच्छत्रध्वजचामरानुरूपेषु ।
छेदे दृष्टेष्वारोग्यविजयधनवृद्धिसौख्यानि ॥ २१ ॥
प्रहरणसदृशेषु जयो नन्द्यावर्त्ते प्रनष्टदेशाप्तिः ।
लोष्टे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राप्तिः ॥ २२ ॥
स्त्रीरूपे धननाशो भृङ्गारेऽभ्युत्थिते सुतोत्पत्तिः ।
कुम्भेन निधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नं च दण्डेन ॥ २३ ॥
कृकलासकपिभुजङ्गेष्वसुभिक्षव्याधयो रिपुवशित्वम् ।
गृध्रोलूकध्वाङ्क्षश्येनाकारेषु जनमरकः ॥ २४ ॥
पाशेऽथवा कबन्धे नृपमृत्युर्जनविपत् स्रुते रक्ते ।
कृष्णे श्यावे रूक्षे दुर्गन्धे चाशुभं भवति ॥ २५ ॥

काटने के समय हाथी के दाँत में बिल्ववृक्ष, वर्धमान, छत्र, ध्वज या चामर की तरह चिन्ह दिखाई दे तो आरोग्य, धन की वृद्धि और सुख होता है, शस्त्र के समान चिन्ह दिखाई दे तो जय, नदी के आवर्त (जल भ्रम) के समान चिन्ह दिखाई दे तो नष्ट देश की प्राप्ति, ढेले के समान चिन्ह दिखाई दे तो पहले प्राप्त हुये देश की प्राप्ति, स्त्री के समान चिन्ह दिखाई दे तो धन का नाश, भृङ्गार के समान चिन्ह दिखाई दे तो पुत्र की उत्पत्ति, घड़े के समान चिन्ह दिखाई दे तो निधि की प्राप्ति, दण्ड के समान चिन्ह दिखाई दे तो यात्रा में विघ्न, गिरगट (गिरगिट), वानर या सर्प की तरह चिन्ह हो तो दुर्भिक्ष, व्याधि और शत्रु के अधिकार में रहना, गिद्ध, उल्लू, काक, या बाज के समान चिन्ह हो तो मरकी, पाश (फाँसी) या कबन्ध (बिना शिर का पुरुष) के समान चिन्ह हो तो राजा की मृत्यु, काटने पर रक्त निकले तो मनुष्यों के ऊपर विपत्ति तथा काला, पीला, रूखा या दुर्गन्धि हो तो अशुभ होता है ॥ २१-२५ ॥

आसन के समान शय्या का फल—

शुक्लः समः सुगन्धिः स्निग्धश्च शुभावहो भवेच्छेदः ।
अशुभशुभच्छेदा ये शयनेष्वपि ते तथा फलदाः ॥ २६ ॥

यदि दाँत का छेद सफेद, समान, सुगन्धि या निर्मल हो तो शुभ होता है। ये सब आसन के फल हैं। इसी तरह पूर्वोक्त सब लक्षण शय्या में भी फल देते हैं ॥ २६ ॥

काष्ठों के संयोग का प्रकार—

ईपायोगे दारु प्रदक्षिणाग्रं प्रशस्तमाचार्यैः।
अपसव्यैकदिगग्रे भवति भयं भूतसञ्जनितम् ॥ २७ ॥

ईषा (बनाये हुये दक्षिण और वाम तरफ के काष्ठ) के योग प्रदक्षिण क्रम से (शिर की तरफ के काष्ठ के अग्र भाग में दक्षिण तरफ के काष्ठ के मूल को, दक्षिण तरफ के काष्ठ के अग्र में पाँव की तरफ के काष्ठ के मूल को, पाँव की तरफ के काष्ठ के अग्र में उत्तर तरफ के काष्ठ के मूल को और उत्तर तरफ के काष्ठ के अग्र में शिर की तरफ के काष्ठ के मूल को) लगाना शुभ होता है ऐसा आचार्य का कहना है। अपसव्य (उक्त विपरीत) क्रम से लगाने से भूतों का भय होता है ॥ २७ ॥

पाये का लक्षण—

एकेनावाक्शिरसा भवति हि पादेन पादवैकल्यम्।
द्वाभ्यां न जीर्यतेऽन्नं त्रिचतुर्भिः क्लेशवधबन्धाः ॥ २८ ॥

यदि शय्या या आसन का एक पाया अधोमुख (मूलाग्रविपर्यय = काष्ठ के मूल में पाये का अग्र या काष्ठ के अग्र में पाये का मूल) हो तो उस पर सोने वाले को पाँव में पीड़ा, दो पाये अधोमुख हो तो भुक्त अन्न अजीर्ण और तीन या चार पाये अधोमुख हों तो क्लेश, वध और बन्धन होता है ॥ २८ ॥

ग्रन्थि युत पाये का लक्षण—

सुषिरेऽथवा विवर्णे ग्रन्थौ पादस्य शीर्षगे व्याधिः।
पादे कुम्भो यश्च ग्रन्थौ तस्मिन्नुदररोगः ॥ २९ ॥
कुम्भाधस्ताज्जङ्घा तत्र कृतो जङ्घयोः करोति भयम्।
तस्याश्चाधारोऽधः क्षयकृद्द्रव्यस्य तत्र कृतः ॥ ३० ॥
खुरदेशे यो ग्रन्थिः खुरिणां पीडाकरः स निर्दिष्टः।
ईषाशीर्षण्योश्च त्रिभागसंस्थो भवेन्न शुभः ॥ ३१ ॥

यदि पाये का शिर छिद्र युत, विवर्ण या ग्रन्थि युत हो तो उस पर सोने वाले को व्याधि होती है। पैर के कुम्भ में गाँठ हो तो उदर रोग, जंघा (कुम्भ के नीचे भाग) में गाँठ हो तो जंघाओं में भय, आधार (जघा के नीचे का भाग) में गाँठ हो तो धन का नाश, खुर प्रदेश में गाँठ हो तो खुर वाले जानवरों को पीड़ित तथा ईषा (पार्श्व काष्ठ) और शीर्षणी (शिर की तरफ का काष्ठ) के तिहाई पर गाँठ हो तो शुभ नहीं होता है ॥ २९-३१ ॥

छिद्रों के नाम—

निष्कुटमथ कोलाक्षं सूकरनयनं च वत्सनाभं च।
कालकमन्यद्धुन्धुकमिति कथितश्छिद्रसङ्क्षेपः ॥ ३२ ॥

निष्कुट, कोलाक्ष, सूकरनयन, वत्सनाभ, कालक, धुन्धुक ये सक्षेप से छिद्रों की सञ्ज्ञा कही गई हैं ॥ ३२ ॥

छिद्रों के लक्षण—

घटवत् सुषिरं मध्ये सङ्कटमास्ये च निष्कुटं छिद्रम्।
निष्पावमाषमात्रं नीलं छिद्रं च कोलाक्षम् ॥ ३३ ॥
सूकरनयनं विषमं विवर्णमध्यर्धपर्वदीर्घं च।
वामावर्त्तं भिन्नं पर्वमितं वत्सनाभाख्यम् ॥ ३४ ॥
कालकसञ्ज्ञं कृष्णं धुन्धुकमिति यद्भवेद्विनिर्भिन्नम्।
दारुसवर्णं छिद्रं न तथा पापं समुद्दिष्टम् ॥ ३५ ॥

यदि छिद्र के मध्य में घड़े के समान चौड़ा और ऊपर तंग मुख की आकृति दिखाई दे तो निष्कुट, शालि धान्य या उर्द के बराबर नील वर्ण का छिद्र हो तो निष्कुट, विषम, विवर्ण और डेढ़ पर्व लम्बा छिद्र हो तो सूकर नयन, एक पर्व लम्बा वामावर्त छिद्र हो तो वत्सनाभ, काला छिद्र हो तो कालक और दूसरी तरफ से भी दिखाई देने वाला काला छिद्र हो तो धुन्धुक सञ्ज्ञक होता है। काष्ठ के समान वर्ण वाले अशुभ छिद्र भी विशेष अशुभ फल नहीं देते हैं ॥ ३३-३५ ॥

निष्कुट आदि छिद्रों का फल—

निष्कुटसञ्ज्ञे द्रव्यक्षयस्तु कोलेक्षणे कुलध्वंसः।
शस्त्रभयं सूकरके रोगभयं वत्सनाभाख्ये ॥ ३६ ॥
कालकधुन्धुकसञ्ज्ञं कीटैर्विद्धं च न शुभदं छिद्रम्।
सर्वं ग्रन्थिप्रचुरं सर्वत्र न शोभनं दारु ॥ ३७ ॥

यदि निष्कुट नामक छिद्र हो तो धन का नाश, कोलाक्ष नामक छिद्र हो तो कुल का क्षय, सूकरनयन नामक छिद्र हो तो शस्त्र भय और वत्सनाभ नामक छिद्र हो तो रोग का भय, होता है। यदि कालक और धुन्धुक सञ्ज्ञक छिद्र कीड़ों से व्याप्त (घुनखीक) हो तो शुभ नहीं होता है। तथा बहुत गाँठों से युत सब प्रकार की लकड़ी सब जगह शुभ देने वाली नहीं होती है अर्थात् बहुत गाँठ वाली कोई भी लकड़ी कहीं पर भी शुभद नहीं होती है ॥ ३६-३७ ॥

मिश्रित काष्ठ का फल—

एकद्रुमेण धन्यं वृक्षद्वयनिर्मितं च धन्यतरम्।
त्रिभिरात्मजवृद्धिकरं चतुर्भिरर्थं यशश्चाग्र्यम् ॥ ३८ ॥
पञ्चवनस्पतिरचिते पञ्चत्वं याति तत्र यः शेते।
षट्सप्ताष्टतरूणां काष्ठैर्घटिते कुलविनाशः ॥ ३९ ॥

एक वृक्ष के काठ से बनी हुई शय्या धन्य, दो वृक्षों के काठ से बनी हुई धन्यतर, तीन वृक्षों के काठ से बनी हुई शय्या पुत्रों को बढ़ाने वाली और चार वृक्षों के काठ से बनी हुई शय्या उत्तम धन और यश देने वाली होती है। पाँच वृक्षों के काठ से बनी हुई शय्या पर जो सोता उसकी मृत्यु होती है। तथा छै, सात या आठ वृक्षों के काठ से बनी हुई शय्या कुल का नाश करती है ॥ ३८-३९ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां शय्यासनलक्षणाध्याय एकोनाशीतितमः ॥ ७९ ॥

अथ रत्नपरीक्षाध्यायः

रत्न परीक्षा का प्रयोजन—

रत्नेन शुभेन शुभं भवति नृपाणामनिष्टमशुभेन ।
यस्मादतः परीक्ष्यं दैवं रत्नाश्रितं तज्ज्ञैः ॥ १ ॥

शुभ रत्न धारण करने से राजाओं का शुभ और अशुभ रत्न धारण करने से राजाओं का अशुभ होता है। इसलिये रत्नज्ञों के द्वारा रत्नगत दैव (शुभाशुभ फल) की परीक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥

पाषाण मणि का अधिकार—

द्विपहयवनितादीनां स्वगुणविशेषेण रत्नशब्दोऽस्ति ।
इह तूपलरत्नानामधिकारो वज्रपूर्वाणाम् ॥ २ ॥

हाथी, घोड़ा, स्त्री आदि में अपने २ गुण की विशेषता से रत्न शब्द का प्रयोग होता है; जैसे गजरत्न, अश्वरत्न, स्त्रीरत्न आदि। किन्तु यहाँ पर वज्र आदि पाषाण रत्नों का अधिकार है ॥ २ ॥

रत्नों की उत्पत्ति में मतभेद—

रत्नानि बलाद्दैत्याद्दधीचितोऽन्ये वदन्ति जातानि ।
केचिद्भुवः स्वभावाद्वैचित्र्यं प्राहुरुपलानाम् ॥ ३ ॥

किसी का मत है कि बल संज्ञक दैत्य से रत्न की उत्पत्ति हुई है। कोई दधीचि मुनि के अस्थि से रत्नोत्पत्ति मानते हैं। कोई पृथ्वी के स्वभाव से उपलों में विचित्रता आकर रत्न हो जाता है ऐसा मानते हैं। कहा भी है—

सम्भूतानि बलाद्दैत्याद्रत्नानि विविधानि च। गतानि नानावर्णत्वमस्थिभ्यो भूमिसंश्रयात् ॥

और भी—

रत्नानि दधीचिमुनेर्जातानि सहस्रशो लोके। अस्थिभ्यो भूमिवशात् नानावर्णत्वमागतानि गुणैः॥

रत्नों के नाम—

वज्रेन्द्रनीलमरकतकर्केतरपद्मरागरुधिराख्याः ।
वैदूर्यपुलकविमलकराजमणिस्फटिकशशिकान्ताः ॥ ४ ॥
सौगन्धिकगोमेदकशङ्खमहानीलपुष्परागाख्याः ।
ब्रह्ममणिज्योतीरससस्यकमुक्ताप्रवालानि ॥ ५ ॥

वज्र (हीरा), इन्द्रनील (नीलम), मरकत (पन्ना), कर्केतर, पद्मराग, रुधिर, वैदूर्य, पुलक, विमलक, राजमणि, स्फटिक, चन्द्रकान्त, सौगन्धिक, गोमेद, शङ्ख, महानील, पुष्पराज, ब्रह्ममणि, ज्योतीरस, सस्यक, मुक्ता (मोती), मूंगा इन सबों को रत्न कहते हैं ॥ ४-५ ॥

वज्रमणि के सात आकर स्थान—

वेणातटे विशुद्धं शिरीषकुसुमप्रभं च कौशलकम् ।
सौराष्ट्रकमाताम्रं कृष्णं सौपारकं वज्रम् ॥ ६ ॥

ईषत्ताम्रं हिमवति मतङ्गजं वल्लपुष्पसङ्काशम् ।
आपीतं च कलिङ्गे श्यामं पौण्ड्रेषु सम्भूतम् ॥ ७ ॥

वेणा नदी के तट पर विशुद्ध हीरा, कौशल देश में शिरीष पुष्प के समान, सौराष्ट्र देश में कुछ लाल, सूरपारक देश में काला, हिमवान् पर्वत पर कुछ लाल, मतङ्ग देश में वल्ल पुष्प के समान, कलिङ्ग देश में पीला और पौण्ड्र देश में श्याम वर्ण का हीरा उत्पन्न होता है ॥ ६-७ ॥

हीरे का देवता—

ऐन्द्रं षडश्रि शुक्लं याम्यं सर्पास्यरूपमसितं च ।
कदलीकाण्डनिकाशं वैष्णवमिति सर्वसंस्थानम् ॥ ८ ॥
वारुणमबलागुह्योपमं भवेत् कर्णिकारपुष्पनिभम् ।
शृङ्गाटकसंस्थानं व्याघ्राक्षिनिभं च हौतभुजम् ॥ ९ ॥
वायव्यं च यवोपममशोककुसुमप्रभं समुद्दिष्टम् ।
स्रोतः खनिः प्रकीर्णकमित्याकरसम्भवस्त्रिविधः ॥ १० ॥

छै कोण वाले सफेद हीरे का इन्द्र, सर्पाकार मुख वाले काले हीरे का यम, कदली काण्ड के समान (नील पीत) वर्ण वाले हीरे का विष्णु और सामान्य रूप से सब प्रकार के हीरे का विष्णु देवता हैं। स्त्री के भग के समान आकृति वाले हीरे का वरुण, कर्णिकार पुष्प के समान, सिंघाड़े के समान (त्रिभुजाकार) या बाघ के नेत्र के समान हीरे का अग्नि तथा अशोक के पुष्प के समान वर्ण वाले हीरे का वायव्य देवता हैं। नदी के प्रवाह, खान, प्रकीर्णक, (जिस भूमि में मणि होती है = समुद्र आदि) ये तीन हीरों के उत्पत्ति का आकर है ॥ ८-१० ॥

ब्राह्मण आदि के लिये शुभ वर्ण—

रक्तं पीतं च शुभं राजन्यानां सितं द्विजातीनाम् ।
शैरीषं वैश्यानां शूद्राणां शस्यतेऽसिनिभम् ॥ ११ ॥

लाल और पीला हीरा क्षत्रियों को, सफेद हीरा ब्राह्मणों को, शिरीष पुष्प के समान वर्ण वाला वैश्यों को और नीला हीरा शूद्रों को शुभ करने वाला होता है ॥ ११ ॥

हीरे के मूल्य का परिज्ञान—

सितसर्षपाष्टकं तण्डुलो भवेत्तण्डुलैस्तु विंशत्या ।
तुलितस्य द्वे लक्षे मूल्यं द्विगूनिते चैतत् ॥ १२ ॥
पादत्र्यंशार्धोनं त्रिभागपञ्चांशषोडशांशाश्च ।
भागश्च पञ्चविंशः शतिकः साहस्रिकश्चेति ॥ १३ ॥

सफेद सरसों के आठ दाने का एक तण्डुल (चावल) होता है २० तण्डुल हीरे का मूल्य दो लाख कार्षापण होता है। उसमें क्रम से दो दो चावल कम करने से पूर्वोक्त मूल्य का पादोन (डेढ़ लाख), तृतीयांशोन (१३३३३३⅓) अर्धोन (एक लाख), तृतीयांश (६६६६६⅔), पञ्चमांश (४००००), षोडशांश (१२५००), पञ्चविंशांश

(८०००) शतांश (२०००) और सहस्रांश (२००), कार्षापण मूल्य होता है। अर्थात् १८ तण्डुल तुल्य हीरे का मूल्य १५००००, १९ तण्डुल हीरे का मूल्य १४४४४३ ३/५, १४ तण्डुल हीरे का मूल्य १००००० कार्षापण इत्यादि जानना चाहिये। कहा भी है—

विंशतिः स्वेतिकाः प्रोक्ताः काकिण्येका त्रिचपणैः। तच्चतुष्कं पण इति चतुर्थं तच्चतुष्टयम्॥ चतुर्थकचतुष्कं तु पुराण इति कथ्यते। कार्षपणं स एवोक्तः क्वचित्तु पणविंशतिः॥१२-१३॥

शुभ हीरे का लक्षण—

सर्वद्रव्याभेद्यं लघ्वम्भसि तरति रश्मिवत् स्निग्धम्।
तडिदनलशक्रचापोपमं च वज्रं हितायोक्तम्॥ १४॥

जो हीरा किसी वस्तु से न टूटे, अथवा जल में भी किरण की तरह तैरता रहे, निर्मल, बिजली, अग्नि या इन्द्रधनुष के समान वर्ण वाला हो वह कल्याणकारी होता है॥ १४॥

अशुभ हीरे का लक्षण—

काकपदमक्षिकाकेशधातुयुक्तानि शर्करैर्विद्धम्।
द्विगुणाश्रि दग्धकलुषत्रस्तविशीर्णानि न शुभानि॥ १५॥

काकपद के समान चिह्न वाला, मक्खी के समान चिह्न वाला, केश के समान रेखा रूप चिह्न वाला, धातुओं (मिट्टियों) से युक्त, कंकड़ से विद्ध, लक्षण से दूना कोण वाला, आग से जला, मलिन, कान्तिहीन, जर्जर हीरा शुभदायी नहीं होता है॥ १५॥

हीरे का अशुभ लक्षण—

यानि च बुद्बुददलिताग्रचिपिटवासीफलप्रदीर्घाणि।
सर्वेषां चैतेषां मूल्याद्भागोऽष्टमो हानिः॥ १६॥

पानी के बुलबुले के समान आगे से फटा, चिपटा और वासी फल के समान लम्बा हीरा शुभ देने वाला नहीं होता। इन दोष युक्त हीरों का मूल्य पूर्वोक्त मूल्य से अष्टमांश कम हो जाता है॥ १६॥

हीरे के धारण में गुण—

वज्रं न किञ्चिदपि धारयितव्यमेके
पुत्रार्थिनीभिरबलाभिरुशन्ति तज्ज्ञाः।
शृङ्गाटकत्रिपुटधान्यकवत् स्थितं य-
च्छ्रोणीनिभं च शुभदं तनयार्थिनीनाम्॥ १७॥

हीरा के लक्षणों को जानने वाले पण्डितों का कहना है कि पुत्र चाहने वाली स्त्रियों को किसी प्रकार का हीरा नहीं धारण करना चाहिये। सिंघाड़े के आकृति वाला तीन पुटों से युक्त, धान्य फल के समान या श्रोणी के समान हीरे का धारण करना पुत्र चाहने वाली स्त्रियों के लिये शुभ है। कहा भी है—

सुतार्थिनीभिर्धन्याभिर्न धार्यं वज्रसंज्ञकम्। यच्च शृङ्गाटकाकारं त्रिपुटं धान्यवत्स्थितम्॥ श्रोणीनिभं सुवर्णं च स्निग्धं किरणसंयुतम्। तत्सुमन धारणे स्त्रीणां पुत्रवृद्धिप्रदं स्मृतम्॥

स्वजनविभवजीवितक्षयं जनयति वज्रमनिष्टलक्षणम् ।
अशनिविषभयारिनाशनं शुभमुपभोगकरं च भूभृताम् ॥ १८ ॥

अशुभ लक्षणों से युत हीरे को धारण करने से राजाओं के बन्धु, धन और प्राण का नाश होता है। तथा शुभ लक्षणों से युत हीरे को धारण करने से वज्रभय, विष, शत्रु, इन का नाश तथा भोग की वृद्धि होती है ॥ १८ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां रत्नपरीक्षाध्यायोऽशीतितमः ॥ ८० ॥



अथ मुक्तालक्षणाध्यायः

मोतियों के उत्पत्ति स्थान—

द्विपभुजगशुक्तिशङ्खाभ्रवेणुतिमिसूकरप्रसूतानि ।
मुक्ताफलानि तेषां बहुसाधु च शुक्तिजं भवति ॥ १ ॥

हाथी, सर्प, सीपी, शंख, मेघ, बांस, मछली और सूअर से मोती की उत्पत्ति होती है। इनमें सब से उत्तम सीपी से उत्पन्न मोती है ॥ १ ॥

मोती के आठ उत्पत्ति स्थान—

सिंहलकपारलौकिकसौराष्ट्रकताम्रपर्णिपारशवाः ।
कौबेरपाण्ड्यवाटकहैमा इत्याकरास्त्वष्टौ ॥ २ ॥

सिंहलक देश, परलोक देश, सुराष्ट्र देश, ताम्रपर्णी नदी, पारशव देश, कौबेर देश, पाण्ड्यवाटक देश, हिम ये आठ मोतियों के आकर स्थान हैं ॥ २ ॥

मोतियों का लक्षण—

बहुसंस्थानाः स्निग्धा हंसाभाः सिंहलाकराः स्थूलाः ।
ईषत्ताम्राः श्वेतास्तमोवियुक्ताश्च ताम्राख्याः ॥ ३ ॥
कृष्णाः श्वेताः पीताः सशर्कराः पारलौकिका विषमाः ।
न स्थूला नात्यल्पा नवनीतनिभाश्च सौराष्ट्राः ॥ ४ ॥
ज्योतिष्मत्यः शुभ्रा गुरवोऽतिमहागुणाश्च पारशवाः ।
लघु जर्जरं दधिनिभं बृहद्द्विसंस्थानमपि हैमम् ॥ ५ ॥
विषमं कृष्णश्वेतं लघु कौबेरं प्रमाणतेजोवत् ।
निम्बफलत्रिपुटधान्यकचूर्णाः स्युः पाण्ड्यवाटभवाः ॥ ६ ॥

सिंहलक देश में अनेक आकृति वाले, स्निग्ध, हंस के समान सफेद और स्थूल मोती होते हैं। ताम्रपर्णी नदी में कुछ लाल, सफेद और निर्मल मोती होते हैं। परलोक देश में काले, सफेद, पीले, कंकड़ युत और विषम मोती होते हैं। सौराष्ट्र देश में न बहुत मोटे, न बहुत छोटे और मक्खन के समान कान्ति वाले मोती होते हैं। पारशव

देश में तेजोयुक्त, सफेद, भारी और अधिक गुण वाले मोती होते हैं। हिम में छोटे, जर्जर, दही के समान कान्ति वाले, बड़े और श्रेष्ठ आकृति वाले मोती होते हैं। कौबेर देश में विषम, काले, सफेद, हलके और अति तेजस्वी मोती होते हैं। पाण्डय देश में निम्ब फल के समान, तीन पुटों से युत, धान्याक फल के समान और अति सूक्ष्म होता है ॥ ३-६ ॥ मोतियों की विशेषता—

अतसीकुसुमश्यामं वैष्णवमैन्द्रं शशाङ्कसङ्काशम्।
हरितालनिभं वारुणमसितं यमदैवतं भवति ॥ ७ ॥
परिणतदाडिमगुलिकागुञ्जाताम्रं च वायुदैवत्यम्।
निर्धूमानलकमलप्रभं च विज्ञेयमाग्नेयम् ॥ ८ ॥

अलसी पुष्प के समान श्याम वर्ण के मोतियों का देवता विष्णु, चन्द्र की कान्ति के समान मोती का देवता इन्द्र, हरिताल के समान मोती का देवता वरुण, काले वर्ण के मोती का देवता यम, पके हुये अनार के बीज या चौंटनी (करजनी) के समान रक्त वर्ण वाले मोती का देवता वायु तथा धूम रहित अग्नि या कमल के समान कान्ति वाले मोती का देवता अग्नि है ॥ ७-८ ॥

मोतियों के मूल्य का परिज्ञान—

माषकचतुष्टयधृतस्यैकस्य शताहता त्रिपञ्चाशत्।
कार्षापणा निगदिता मूल्यं तेजोगुणयुतस्य ॥ ९ ॥
माषकदलहान्यातो द्वात्रिंशद्विंशतिस्त्रयोदश च।
अष्टौ च शतानि शतत्रयं त्रिपञ्चाशता सहितम् ॥ १० ॥
पञ्चत्रिंशं शतमिति चत्वारः कृष्णला नवतिमूल्याः।
सार्धास्तिस्रो गुञ्जाः सप्ततिमूल्यं धृतं रूपम् ॥ ११ ॥
गुञ्जात्रयस्य मूल्यं पञ्चाशद्रूपका गुणयुतस्य।
रूपकपञ्चत्रिंशत्त्रयस्य गुञ्जार्धहीनस्य ॥ १२ ॥

चार मासे तुल्य तेजोगुण युक्त एक मोती का मूल्य ५३०० कार्षापण होते हैं। तथा चार मासे तुल्य मोती में आधे आधे कम करने पर क्रमशः ३२००, २०००, १३००, ८००, ३५३ कार्षापण तुल्य मूल्य होते हैं। जैसे साढ़े तीन मासे तुल्य एक मोती का मूल्य ३२००, तीन मासे तुल्य एक मोती का मूल्य २०००, ढाई मासे तुल्य एक मोती का मूल्य १३०० कार्षापण इत्यादि होते है। एक मासे तुल्य एक मोती का मूल्य १३५, पाँच कृष्णला (गुञ्जा) तुल्य मोती का मूल्य ९०, साढ़े तीन गुञ्जा तुल्य मोती का मूल्य ७०, तीन गुञ्जा तुल्य एक मोती का मूल्य ५० और ढाई गुञ्जा तुल्य एक मोती का मूल्य ३५ कार्षापण होते हैं ॥ ९-१२ ॥

मोतियों के अन्य मूल्य का ज्ञान—

पलदशभागो धरणं तद्यदि मुक्तास्त्रयोदश सुरूपाः।
त्रिशती सपञ्चविंशा रूपकसंख्या कृतं मूल्यम् ॥ १३ ॥

षोडशकस्य द्विशती विंशतिरूपस्य सप्ततिः सशता ।
यत्पञ्चविंशतिधृतं तस्य शतं त्रिंशता सहितम् ॥ १४ ॥
त्रिंशत्सप्ततिमूल्यं चत्वारिंशच्छतार्धमूल्यं च ।
षष्टिः पञ्चोना वा धरणं पञ्चाष्टकं मूल्यम् ॥ १५ ॥
मुक्ताशीत्या त्रिंशच्छतस्य सा पञ्चरूपकविहीना ।
द्वित्रिचतुःपञ्चशता द्वादशषट्पञ्चकत्रितयम् ॥ १६ ॥

यदि एक धरण (पल के दशमांश) तुल्य तौल में तेरह मोती चढ़ें तो उनका मूल्य २०० रुपये, बीस मोती चढ़ें तो उनका मूल्य १३० रुपये, तीस मोती चढ़ें तो उनका मूल्य ७० रुपये, ४० मोती चढ़ें तो उनका मूल्य ५० रुपये, पैंतालिस मोती चढ़ें तो उनका मूल्य ४० रुपये, अस्सी मोती चढ़ें तो उनका मूल्य ३० रुपये, सौ मोती चढ़ें तो उनका मूल्य २५ रुपये, दो सौ मोती चढ़ें तो उनका मूल्य १२ रुपये, तीन सौ मोती चढ़ें तो उनका मूल्य ६ रुपये, चार सौ मोती चढ़ें तो उनका मूल्य ५ रुपये और पाँच सौ मोती चढ़ें तो उनका मूल्य ३ रुपये होते हैं ॥ १३–१६ ॥

तेरह आदि धरणों की संज्ञा—

पिक्कापिचार्घार्घा रवकः सिक्थं त्रयोदशाद्यानाम् ।
सञ्ज्ञाः परतो निगराश्चूर्णाश्चाशीतिपूर्वाणाम् ॥ १७ ॥

एक धरण पर १३ मोती चढ़ें तो पिक्का, सोलह मोती चढ़ें तो पिचा, पचीस मोती चढ़ें तो अर्घ, तीस मोती चढ़ें तो रवक, चालीस मोती चढ़ें तो सिक्थ और पचपन मोती चढ़ें तो निगर कहलाता है, इस के बाद अस्सी मोती से लेकर पाँच सौ तक एक धरण पर चढ़ें तो उनको चूर्ण कहते हैं ॥ १७ ॥

मोतियों के मौल्य ज्ञान में तारतम्य—

एतद्गुणयुक्तानां धरणधृतानां प्रकीर्तितं मूल्यम् ।
परिकल्प्यमन्तराले हीनगुणानां क्षयः कार्यः ॥ १८ ॥
कृष्णश्वेतकपीतकताम्राणामीषदपि च विषमाणाम् ।
त्र्यंशोनं विषमकपीतयोश्च षड्भागदलहीनम् ॥ १९ ॥

ये एक धरण तुल्य गुण युक्त मोतियों के मूल्य कहे गये हैं । मध्य में व्यस्त त्रैराशिक से मूल्य का ज्ञान करना चाहिये । गुण हीन मोतियों के मूल्य में वक्ष्यमाण रीति से हानि करनी चाहिये । कुछ काले, कुछ सफेद, कुछ पीले, कुछ लाल और कुछ विषम मोतियों का तृतीयांशोन पूर्वोक्त मूल्य तुल्य मूल्य होता है । विषम तथा पीले मोतियों का षष्ठांशोन पूर्वोक्त मूल्य तुल्य मूल्य होता है ॥ १८–१९ ॥

गज मुक्ता फल का लक्षण—

ऐरावतकुलजानां पुष्यश्रवणेन्दुसूर्यदिवसेषु ।
ये चोत्तरायणभवा ग्रहणेऽर्केन्द्वोश्च भद्रेभाः ॥ २० ॥

तेषां किल जायन्ते मुक्ताः कुम्भेषु सरदकोशेषु ।
बहवो बृहत्प्रमाणा बहुसंस्थानाः प्रभायुक्ताः ॥ २१ ॥
नैषामर्घः कार्यो न च वेधोऽस्तीव ते प्रभायुक्ताः ।
सुतविजयारोग्यकरा महापवित्रा धृता राज्ञाम् ॥ २२ ॥

पुष्य या श्रवण नक्षत्र में, चन्द्र या रविवार में, उत्तरायण में, रवि और चन्द्र के ग्रहण काल में, ऐरावत कुल में उत्पन्न जिन भद्र हाथियों का जन्म होता है उनके दन्त कोष या कुम्भों में बड़े बड़े, अनेक प्रकार के और कान्तियुक्त बहुत से मोती निकलते हैं। इनका मूल्य तथा इनमें छिद्र नहीं करना चाहिये। उन प्रभायुक्त महापवित्र मोतियों को धारण करने से राजाओं को पुत्र, विजय और आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥

सूअर और मछली से उत्पन्न मोती का लक्षण—

दंष्ट्रामूले शशिकान्तिसप्रभं च बहुगुणं वाराहम् ।
तिमिजं मत्स्याक्षिनिभं बृहत्पवित्रं बहुगुणं च ॥ २३ ॥

सूअर के दन्त मूल में चन्द्र प्रभा के समान कान्ति वाले, बहुत गुणों से युक्त मुक्ताफल निकलते हैं। तथा मछली से मछली के नेत्र के समान, स्थूल, पवित्र और बहुत गुणों से युक्त मुक्ताफल निकलते हैं ॥ २३ ॥

मेघ से उत्पन्न मुक्ताफल का लक्षण—

वर्षोपलवज्जातं वायुस्कन्धाच्च सप्तमाद्भ्रष्टम् ।
ह्रियते किल खाद्दिव्यैस्तडित्प्रभं मेघसम्भूतम् ॥ २४ ॥

वर्षा कालिका उपल (पत्थर) के समान, सप्तम वायु स्कन्ध से पतित, बिजली के समान, मेघ से उत्पन्न, आकाश से गिरते हुये मोती आकाश स्थित देवयोनियों के द्वारा ऊपर हरण कर लिया जाता है ॥ २४ ॥

नागज मुक्ताफल का लक्षण—

तक्षकवासुकिकुलजाः कामगमा ये च पन्नगास्तेषाम् ।
स्निग्धा नीलद्युतयो भवति मुक्ताः फणस्यान्ते ॥ २५ ॥

जो तक्षक और वासुकि के कुल में उत्पन्न स्वेच्छाचारी सर्प हैं उनके फनों के अग्र भाग में स्निग्ध, नीली कान्ति वाले मोती होते हैं।

नागज मुक्ताफल जानने का प्रकार—

शस्तेऽवनिप्रदेशे रजतमये भाजने स्थिते च यदि ।
वर्षति देवोऽकस्मात्तज्ज्ञेयं नागसम्भूतम् ॥ २६ ॥

यदि प्रशस्त भूमि पर चान्दी के पात्र में उस मोती को रख देने से अचानक वर्षा होने लगे तो नाग से उत्पन्न मोती जानना चाहिये ॥ २५-२६ ॥

नागज मुक्ताफल का गुण—

अपहरति विषमलक्ष्मीं क्षपयति शत्रून् यशो विकाशयति ।
भौजङ्गं नृपतीनां धृतमकृतार्घं विजयदं च ॥२७॥

बिना मोल किये सर्पोत्पन्न मोती को धारण करने से राजाओं के विष और अलक्ष्मी का नाश, शत्रुओं को भय, यश का विस्तार तथा विजय करता है ॥ २७ ॥

बाँस और शंख से उत्पन्न मोती का लक्षण—

कर्पूरस्फटिकनिभं चिपिटं विषमं च वेणुजं ज्ञेयम् ।
शंखोद्भवं शशिनिभं वृत्तं भ्राजिष्णु रुचिरं च ॥ २८ ॥

बाँस से उत्पन्न मोती कर्पूर या स्फटिक के समान कान्ति वाला, चिपटा और विषम होता है। तथा शंख से उत्पन्न मोती चन्द्रमा के समान कान्ति वाला, गोल, चमकीला और सुन्दर होता है ॥ २८ ॥

मोतियों में अमूल्यता—

शंखतिमिवेणुवारणवराहभुजगाभ्रजान्यवेद्या(ध्या)नि ।
अमितगुणत्वाच्चैषामर्घः शास्त्रे न निर्दिष्टः ॥ २९ ॥

शंख, मछली, बाँस, हाथी, सुअर, सर्प और मेघ से उत्पन्न मोती छिद्र करने लायक नहीं है। अमित गुण होने के कारण शास्त्र में इसका मूल्य नहीं कहा गया है अर्थात् ये सब अमूल्य हैं ॥ २९ ॥

मोतियों का फल—

एतानि सर्वाणि महागुणानि सुतार्थसौभाग्ययशस्कराणि ।
रुक्शोकहन्तॄणि च पार्थिवानां मुक्ताफलानीप्सितकामदानि ॥ ३० ॥

ये सब महागुण वाले मोती राजाओं के पुत्र, धन, सौभाग्य और यश करने वाले, रोग और शोक को हरने वाले और अभिलषित सब कामों को देने वाले हैं ॥ ३० ॥

मोतियों से रचित आभूषणों की संज्ञा—

सुरभूषणं लतानां सहस्रमष्टोत्तरं चतुर्हस्तम् ।
इन्दुच्छन्दो नाम्ना विजयच्छन्दस्तदर्धेन ॥ ३१ ॥
शतमष्टयुतं हारो देवच्छन्दो ह्यशीतिरेकयुता ।
अष्टाष्टकोऽर्धहारो रश्मिकलापश्च नवषट्कः ॥ ३२ ॥
द्वात्रिंशता तु गुच्छो विंशत्या कीर्त्तितोऽर्धगुच्छाख्यः ।
षोडशभिर्माणवको द्वादशभिश्चार्धमाणवकः ॥ ३३ ॥
मन्दरसंज्ञोऽष्टाभिः पञ्चलता हारफलकमित्युक्तम् ।
सप्तविंशतिमुक्ता हस्तो नक्षत्रमालेति ॥ ३४ ॥
अन्तरमणिसंयुक्ता मणिसोपानं सुवर्णगुलिकैर्वा ।
तरलमणिमध्यं तद्विज्ञेयं चाटुकारमिति ॥ ३५ ॥
एकावली नाम यथेष्टसंख्या हस्तप्रमाणा मणिविप्रयुक्ता ।
संयोजिता या मणिना तु मध्ये यष्टीति सा भूषणविद्भिरुक्ता ॥ ३६ ॥

एक हजार आठ लड़ी वाली माला की लम्बाई चार हाथ हो तो इन्दुच्छन्द संज्ञक होती है। यह देवताओं के भूषण के लिये होती है। पाँच सौ चार लड़ी वाली माला की लम्बाई दो हाथ हो तो विजयच्छन्द, एक सौ आठ लड़ी वाली वा पच्चासी लड़ी वाली माला की लम्बाई हो तो देवच्छन्द संज्ञा है। चौंसठ लड़ी वाली माला की संज्ञा अर्धहार, चौवन लड़ी वाली माला की संज्ञा रश्मिकलाप, बत्तीस लड़ी वाली माला की संज्ञा गुच्छ, बीस लड़ी वाली माला की संज्ञा अर्धगुच्छ, सोलह लड़ी वाली माला की संज्ञा माणवक, बारह लड़ी वाली माला की संज्ञा अर्धमाणवक, आठ लड़ी वाली माला की मन्दर और पाँच लड़ी वाली माला की संज्ञा फलक है। तथा एक हाथ लम्बी सत्ताईस मोतियों की माला का नाम नक्षत्रमाला है। पूर्वोक्त एक हाथ लम्बी माला के मध्य में मणि या सुवर्ण की गुलिका पिरोई जाय तो उस माला को मणि सोपान तथा हेम निबद्ध मणि पिरोई जाय तो उस को चाटुकार कहते हैं। यथेष्ट मोतियों से युक्त हाथ भर लम्बी मध्यमणि से रहित माला को एकावलि और मध्यमणि से युक्त माला को भूषण के लक्षणों को जानने वाले यष्टी नाम कहा है॥ ३१-३६॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां मुक्तालक्षणाध्यायः एकाशीतितमः॥ ८१॥

अथ पद्मरागलक्षणाध्यायः

पद्मरागों की उत्पत्ति का लक्षण—

सौगन्धिककुरुविन्दस्फटिकेभ्यः पद्मरागसम्भूतिः।
सौगन्धिकजा भ्रमराञ्जनाब्जजम्बूरसद्युतयः॥ १॥
कुरुविन्दभवाः शबला मन्दद्युतयश्च धातुभिर्विद्धाः।
स्फटिकभवा द्युतिमन्तो नानावर्णा विशुद्धाश्च॥ २॥

सौगन्धिक, कुरुविन्द, स्फटिक इन तीन तरह के पत्थरों से पद्मराग (लाल) की उत्पत्ति होती है। सौगन्धिक पत्थर से उत्पन्न पद्मराग, भ्रमर, अञ्जन, मेघ या जामुन के रस के समान कान्ति वाले होते हैं। कुरुविन्द पत्थर से उत्पन्न पद्मराग शुक्लकृष्णमिश्रित, मन्द कान्ति वाले और धातुओं से विद्ध होते हैं तथा स्फटिक से उत्पन्न पद्मराग कान्ति वाले, अनेक वर्ण वाले और विशुद्ध होते हैं॥ १-२॥

पद्मराग के गुण—

स्निग्धः प्रभानुलेपी स्वच्छोऽर्चिष्मान् गुरुः सुसंस्थानः।
अन्तःप्रभोऽतिरागो मणिरत्नगुणाः समस्तानाम्॥ ३॥

स्निग्ध, कान्ति से दीपित, स्वच्छ कान्ति से युत, भारी, सुन्दर आकार वाले, मध्य में प्रभा युक्त, अति लोहित, श्रेष्ठ गुणों से युक्त ये सब पद्मराग मणि के प्रधान गुण हैं॥

मणि के दोष—

कलुषा मन्दद्युतयो लेखाकीर्णाः सधातवः खण्डाः।
दुर्विद्धा न मनोज्ञाः सशर्कराश्चेति मणिदोषाः॥ ४॥

मलिन, कान्ति वाले, रेखाओं से व्याप्त, मिट्टी आदि धातुओं से युत, फटे हुए, अप्रशस्त, छिद्र से युत, सुन्दरता से रहित, कङ्करों से युक्त ये सब मणि के दोष हैं॥ ४॥

सर्प मणि का लक्षण—

भ्रमरशिखिकण्ठवर्णो दीपशिखासप्रभो भुजङ्गानाम् ।
भवति मणिः किल मूर्धनि योऽनर्घेयः स विज्ञेयः ॥ ५ ॥

भ्रमर या मयूर कण्ठ के समान वर्ण वाला, दीपशिखा के समान कान्ति वाला और अमूल्य मणि सर्पों के शिर में होता है ॥ ५ ॥

मणियों के प्रभाव—

यस्तं बिभर्ति मनुजाधिपतिर्न तस्य
दोषा भवन्ति विषरोगकृताः कदाचित् ।
राष्ट्रे च नित्यमभिवर्षति तस्य देवः
शत्रूंश्च नाशयति तस्य मणेः प्रभावात् ॥ ६ ॥

जो राजा पूर्वोक्त मणि का धारण करता है, उसको कभी भी विष या रोग सम्बन्धी दोष नहीं होते हैं, उसके राज्य में इन्द्र सदा वर्षा करते हैं और मणि के प्रभाव से वह राजा शत्रुओं का नाश करता है ॥ ६ ६ ॥

पद्मराग मणि का मौल्य—

षड्विंशतिः सहस्राण्येकस्य मणेः पलप्रमाणस्य ।
कर्षत्रयस्य विंशतिरुपदिष्टा पद्मरागस्य ॥ ७ ॥
अर्धपलस्य द्वादश कर्षस्यैकस्य षट्सहस्राणि ।
यच्चाष्टमाषकधृतं तस्य सहस्रत्रयं मूल्यम् ॥ ८ ॥
माषकचतुष्टयं दशशतक्रयं द्वौ तु पञ्चशतमूल्यौ ।
परिकल्प्यमन्तराले मूल्यं हीनाधिकगुणानाम् ॥ ९ ॥
वर्णन्यूनस्यार्द्धं तेजोहीनस्य मूल्यमष्टांशम् ।
अल्पगुणो बहुदोषो मूल्यात् प्राप्नोति विंशांशम् ॥ १० ॥
आधूम्रं व्रणबहुलं स्वल्पगुणं चाप्नुयाद्द्विशतभागम् ।
इति पद्मरागमूल्यं पूर्वाचार्यैः समुद्दिष्टम् ॥ ११ ॥

एक पल तुल्य पद्मराग का मूल्य २६०००) रुपये, तीन कर्ष तुल्य पद्मराग का मूल्य २००००) रुपये, आधे पल तुल्य पद्मराग का मूल्य १२०००) रुपये, एक कर्ष तुल्य पद्मराग का मूल्य ६०००) रुपये, आठ मासे तुल्य पद्मराग का मूल्य ३०००) रुपये, चार मासे तुल्य पद्मराग का मूल्य १०००) रुपये और दो मासे तुल्य पद्मराग का मूल्य ५००) रुपये होते हैं। मध्य में गुणों की न्यूनता और अधिकता के अनुसार मूल्य की कल्पना करनी चाहिये। अल्प वर्ण वाले पद्मराग का मूल्य आधा, तेजोहीन पद्मराग का मूल्य अष्टमांश, थोड़े गुण वाले, बहुत दोष वाले पद्मराग का मूल्य विंशांश तथा कुछ धूम्र वर्ण वाले, बहुत छिद्र वाले और थोड़े गुणों से युत पद्मराग का मूल्य शतद्वयांश होता है इस तरह पूर्वाचार्यों ने पद्मराग के मूल्य का अच्छी तरह उपदेश किया है ॥ ७–११ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पद्मरागलक्षणाध्यायः द्वयशीतितमः ॥ ८२ ॥

अथ मरकतलक्षणाध्यायः

मरकत का प्रयोजन और लक्षण—

शुकवंशपत्रकदलीशिरीपकुसुमप्रभं गुणोपेतम् ।
सुरपितृकार्ये मरकतमतीव शुभदं नृणां विहितम् ॥ १ ॥

तोता, वांस का पत्ता, केला या शिरीष पुष्प के समान कान्ति वाला मरकत (पन्ना) को देवता या पितर के कार्य में धारण करने पर बहुत ही शुभ फल होता है ॥ १ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां मरकतलक्षणाध्यायस्त्र्यशीतितमः ॥ ८३ ॥

अथ दीपलक्षणाध्यायः

उसमें पहले दीप के अशुभ लक्षण और फल—

वामावर्त्तो मलिनकिरणः सस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्त्तिः
क्षिप्रं नाशं व्रजति विमलस्नेहवर्त्यन्वितोऽपि ।
दीपः पापं कथयति फलं शब्दवान् वेपनश्च
व्याकीर्णार्चिर्विशलभमरुद्यश्च नाशं प्रयाति ॥ १ ॥

जिस दीप की शिखा वामावर्त करके घूमती हो, मलिन किरण वाला, जिनमें चिनगारियाँ निकलती हों, छोटी शिखा से युत, निर्मल तेल और बत्ती से युत होने पर शीघ्र बुझ जाती हो शब्दयुत, कम्पित, बिखरे किरण वाला, बिना शलभ के गिरे या बिना वायु के चले बुझ जाता हो ऐसा दीपक पाप फल देने वाला होता है ॥ १ ॥

दीपों के शुभ लक्षण—

दीपः संहतमूर्त्तिरायततनुर्निर्वेपनो दीप्तिमा-
न्निःशब्दो रुचिरः प्रदक्षिणगतिर्वैदूर्यहेमद्युतिः ।
लक्ष्मीं क्षिप्रमभिव्यनक्ति सुचिरं यश्चोद्यतं दीप्यते
शेषं लक्षणमग्निलक्षणसमं योज्यं यथायुक्तितः ॥ १ ॥

मिली हुई शिखा वाला, दीर्घ मूर्ति वाला, कम्पन रहित, कान्ति युक्त, शब्द रहित, प्रदक्षिण क्रम से घूमती हुई ज्वाला वाला, वैदूर्य मणि या सुवर्ण के समान ज्योति वाला और बहुत काल तक लगातार प्रज्वलित दीप शीघ्र बहुत लक्ष्मी के आगमन को सूचित करता है शेष लक्षण अग्नि लक्षण के समान यहाँ पर भी समझना चाहिये ॥ २ ॥

कहा भी है जैसे—ध्वजकुम्भहयेभभूभृतामनुरूपे वशमेति भूभृताम् ।
उदयास्तधराधराऽम्बरा हिमवद्विन्ध्यपयोधरा धरा ॥
और भी—चामीकराशोककुरण्टकाब्जवैदूर्यनीलोत्पलसन्निभेऽग्नौ ।
न ध्वान्तमन्तर्भवनेऽवकाशं करोति रत्नांशुहतं नृपस्य ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां दीपलक्षणाध्यायश्चतुरशीतितमः ॥ ८४ ॥

अथ दन्तकाष्ठलक्षणाध्यायः

पहले इसमें आगम प्रदर्शन—

वल्लीलतागुल्मतरुप्रभेदैः स्युर्दन्तकाष्ठानि सहस्रशो यैः ।

फलानि वाच्यान्यथ तत्प्रसङ्गो मा भूदतो वच्म्यथ कामिकानि ॥१॥

वल्ली, लता, गुल्म और वृक्षों के भेद से हजारों तरह दतवन (दातुन) होते हैं। जिनसे फल कहे जाते हैं, उनके प्रसंग को अधिक न बढ़ाकर केवल अभीष्ट फल देने वाले दतवन को कहते हैं ॥ १ ॥

वर्जनीय दन्तधावन—

अज्ञातपूर्वाणि न दन्तकाष्ठान्यद्यान्न पत्त्रैश्च समन्वितानि ।

न युग्मपर्वाणि न पाटितानि न चोर्ध्वशुष्काणि विना त्वचा च ॥२॥

अपरिचित पत्तों से युत, युग्म (दो आदि) पर्वों से युत, फटा हुआ, वृक्ष पर ही सूख गया हो या त्वचा से रहित दन्तवन नहीं करे ॥ २ ॥

शमी आदि वृक्षों के दन्त धावन का फल—

वैकङ्कतश्रीफलकाश्मरीषु ब्राह्मी द्युतिः क्षेमतरौ सुदाराः ।

वृद्धिर्वटेऽर्के प्रचुरं च तेजः पुत्रा मधूके सगुणाः प्रियत्वम् ॥ ३ ॥

वैकङ्कत, नारियल और काश्मरी (गम्भारी) वृक्ष का दन्तधावन करने से ब्राह्मी द्युति की का लाभ, क्षेम वृक्ष का दन्तधावन करने से उत्तम स्त्री का लाभ, वट वृक्ष का दन्तधावन करने से धन की वृद्धि, आक के वृक्ष का दन्तधावन करने से बहुत तेज लाभ, महुए के वृक्ष का दन्तधावन करने से पुत्र लाभ और अर्जुन वृक्ष का दन्तधावन करने से जनों के प्रियत्व का लाभ होता है ॥ ३ ॥

शिरीष आदि वृक्षों के दन्तधावन का फल—

लक्ष्मीः शिरीषे च तथा करञ्जे प्लक्षेऽर्थसिद्धिः समभीप्सिता स्यात् ।

मान्यत्वमायाति जनस्य जात्यां प्राधान्यमश्वत्थतरौ वदन्ति ॥ ४ ॥

शिरीष और करञ्ज वृक्ष का दन्तधावन करे तो लक्ष्मी की प्राप्ति, पाकड़ के वृक्ष का दन्तधावन करे तो अभीष्ट अर्थ की सिद्धि, चमेली वृक्ष का दन्त धावन करे तो मान का लाभ और पीपल के वृक्ष का दन्तधावन करे तो प्रधानता की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

बेर आदि वृक्षों के दन्तधावन का फल—

आरोग्यमायुर्बदरीबृहत्योरैश्वर्यवृद्धिः खदिरे सबिल्वे ।

द्रव्याणि चेष्टान्यतिमुक्तके स्युः प्राप्नोति तान्येव पुनः कदम्बे ॥ ५ ॥

बेर और कटेरी वृक्ष का दन्तधावन करे तो आरोग्य और दीर्घायु का लाभ, खैर और बेल वृक्ष का दन्तधावन करे तो ऐश्वर्य की वृद्धि, तेंदुआ (तिनिस) वृक्ष का दन्तधावन करे तो अभीष्ट द्रव्यों का लाभ और कदम्ब वृक्ष का दन्तधावन करे तो भी अभीष्ट द्रव्यों का लाभ होता है ॥ ५ ॥

नीम आदि वृक्षों के दन्तधावन का फल—

नीपेऽर्थाप्तिः करवीरेऽन्नलब्धिर्भाण्डीरे स्यादन्नमेवं प्रभूतम्।
शम्यां शत्रूनपहन्त्यर्जुने च श्यामायां च द्विषतामेव नाशः॥ ६॥

नीम के वृक्ष का दन्तधावन करे तो धन का लाभ, करवीर (कनेर) के वृक्ष का दन्तधावन करे तो अन्न का लाभ, भाण्डीर वृक्ष का दन्तधावन करे तो इसी तरह अधिक अन्न का लाभ, शमी वृक्ष का दन्तधावन करे तो शत्रुओं को मारने वाला, अर्जुन वृक्ष का दन्तधावन करे तो भी शत्रुओं का नाश करने वाला और श्यामा के वृक्ष का दन्तधावन करे तो भी शत्रु को ही मारने वाला होता है॥ ६॥

शाल आदि वृक्षों के दन्तधावन का फल—

शालेऽश्वकर्णे च वदन्ति गौरवं सभद्रदारावपि चाटरूपके।
वाल्लभ्यमायाति जनस्य सर्वतः प्रियङ्ग्वपामार्गसजम्बुदाडिमैः॥ ७॥

शाल और अश्वकर्ण का दन्तधावन सन्मान बढ़ाने वाला, देवदारु और वासिका के वृक्ष का दन्तधावन भी सन्मान बढ़ाने वाला तथा प्रियङ्गु, अपामार्ग, जामुन और दाड़िम के वृक्ष का दन्तधावन चारो तरफ से प्रियता की प्राप्ति कराने वाला होता है॥ ७॥

दन्तधावन करने का विधान—

उदङ्मुखः प्राङ्मुख एव वाब्दं कामं यथेष्टं हृदये निवेश्य।
अद्यादनिन्दन् च सुखोपविष्टः प्रक्षाल्य जह्याच शुचिप्रदेशे॥ ८॥

उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख सुख पूर्वक बैठ कर वार्षिक यथाभिलषित कामना को हृदय में रख कर विहित काष्ठ का दन्तधावन करे। फिर दन्त धावन को धोकर पवित्र स्थान में छोड़ दें॥ ८॥

त्यक्त दन्त धावन का शुभाशुभ फल—

अभिमुखपतितं प्रशान्तदिक्स्थं शुभमतिशोभनमूर्ध्वसंस्थितं यत्।
अशुभकरमतोऽन्यथा प्रदिष्टं स्थितपतितं च करोति मृष्टमन्नम्॥ ९॥

जिस तरफ से भक्षण किये थे उसी तरफ से प्रशान्त दिशा में जाकर दन्तधावन गिरे तो शुभ और खड़ा हो जाय तो अतिशुभ और इससे उलटा गिरे तो अशुभ होता है। तथा खड़ा होकर गिर जाय तो मिष्ठान्न का लाभ करता है॥ ९॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां दन्तकाष्ठलक्षणाध्यायः पञ्चाशीतिमः॥ ८५॥

अथ शाकुनाध्यायः

उसमें पहले आगम प्रदर्शन—

यच्छक्रशुक्रवागीशकपिष्ठलगरुत्मताम्।
मतेभ्यः प्राह ऋषभो भागुरेर्देवलस्य च॥ १॥
भारद्वाजमतं दृष्ट्वा यच्च श्रीद्रव्यवर्धनः।
आवन्तिकः प्राह नृपो महाराजाधिराजकः॥ २॥

सप्तर्षीणां-मतं यच्च संस्कृतं प्राकृतं च यत् ।
यानि चोक्तानि गर्गाद्यैर्यात्राकारैश्च भूरिभिः ॥ ३ ॥
तानि दृष्ट्वा चकारेमं सर्वशाकुनसङ्ग्रहम् ।
वराहमिहिरः प्रीत्या शिष्याणां ज्ञानमुत्तमम् ॥ ४ ॥

शुक, इन्द्र, बृहस्पति, कपिष्ठल मुनि, गरुड, भागुरि, देवल इनके मत को देख कर ऋषिभाचार्य ने जो कहा है। भारद्वाज मुनि के मत को देख कर अवन्ती के महाराजाधिराज राजा श्री द्रव्यवर्धन ने जो कहा है। संस्कृत और प्राकृत भाषा में जो सप्तर्षियों का मत है और गर्ग आदि यात्राकारियों ने जो कहा है उन सबको देख कर वराह मिहिर ने शिष्यों की प्रसन्नता के लिये उत्तम ज्ञान युत शाकुन संग्रह किया है ॥ १-४ ॥

शाकुन का प्रयोजन—

अन्यजन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम् ।
यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम् ॥ ५ ॥

मनुष्यों के पूर्वजन्मार्जित जो शुभाशुभ कर्म हैं, उन कर्मों के शुभाशुभ फल का गमनकालिक शाकुन प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

शाकुनों के भेद का प्रदर्शन—

ग्रामारण्याम्बुभूव्योमद्युनिशोभयचारिणः ।
रुतयातेक्षितोक्तेषु ग्राह्याः पुंस्त्रीनपुंसकाः ॥ ६ ॥

गाँव में रहने वाले, वनचर, जलचर, पृथ्वीचर, आकाशचर, दिनचर, रात्रिचर और उभयचर जीवों के शब्द, गमन, दृष्टि और उक्ति से पुरुष, स्त्री और नपुंसक का ग्रहण करना चाहिये ॥ ६ ॥

शाकुनों के सामान्य लक्षण—

पृथग्जात्यनवस्थानादेषां व्यक्तिर्न लक्ष्यते ।
सामान्यलक्षणोद्देशे श्लोकावृषिकृताविमौ ॥ ७ ॥

पृथक् जाति और अनवस्था के कारण इनमें व्यक्ति (स्त्री, पुरुष और नपुंसक) का विभाग नहीं लक्षित होता है, अतः इसके ज्ञान के लिये ऋषियों ने ये वक्ष्यमाण दो श्लोक कहे हैं ॥ ७ ॥

पुरुष, स्त्री और नपुंसक संज्ञक जीव—

पीनोन्नतविकृष्टांसाः पृथुग्रीवाः सुवक्षसः ।
स्वल्पगम्भीरविरुताः पुमांसः स्थिरविक्रमाः ॥ ८ ॥
तनूरस्कशिरोग्रीवाः सूक्ष्मास्यपदविक्रमाः ।
प्रसक्तमृदुभाषिण्यः स्त्रियोऽतोऽन्यन्नपुंसकम् ॥ ९ ॥

मोटे ऊँचे और विस्तीर्ण कन्धे वाले, विस्तीर्ण गरदन वाले, सुन्दर छाती वाले, अल्प गम्भीर स्वर वाले और स्थिर पराक्रम वाले जीव पुरुष संज्ञक शाकुन हैं। कृश छाती, सिर और गरदन वाले, छोटे मुख, पाँव और पराक्रमवाले तथा मधुर शब्द करने वाले जीव स्त्री संज्ञक शाकुन हैं। पुरुष, स्त्री दोनों के मिश्रित लक्षण जहाँ हो नपुंसक संज्ञक जीव हैं॥८-९॥

शेष लोकव्यवहार से जानने योग्य—

ग्रामारण्यप्रचारार्थं लोकादेवोपलक्षयेत्।

सञ्चिक्षिप्सुरहं वच्मि यात्रामात्रप्रयोजनम्॥ १०॥

गाँव में रहने वाले, वन में रहने वाले और उभयचारी शाकुनों को लोकव्यवहार से जानना चाहिये। सक्षेप की इच्छा वाला मैं यात्रा में प्रयोजनीय शाकुनों को कहता हूँ॥१०॥

शाकुन फल का विचार—

पथ्यात्मानं नृपं सैन्ये पुरे चोद्दिश्य देवताम्।

सार्थे प्रधानं साम्ये स्याज्जातिविद्यावयोऽधिकम्॥ ११॥

मार्ग में गमन करने वाले मनुष्य के ऊपर, सैन्य में राजा के ऊपर, पुर में देवता (नगर स्वामी) के ऊपर, जन-समुदाय में प्रधान के ऊपर, प्रधानों के साम्य में जाति के ऊपर, जातियों के साम्य में विद्या के ऊपर और विद्या के साम्य में वयोधिक के ऊपर शाकुन का फल पड़ता है॥ ११॥

दिशाओं के लक्षण—

मुक्तप्राप्तैष्यदर्कासु फलं दिक्षु तथाविधम्।

अङ्गारदीप्तधूमिन्यस्ताश्च शान्तास्ततोऽपराः॥ १२॥

सूर्योदय से एक प्रहर दिन उठे तक ऐशानी दिशा मुक्तसूर्या, पूर्वदिशा प्राप्तसूर्या और अग्नि दिशा एष्यत्सूर्या होती है। एक प्रहर के बाद दो पहर दिन उठे तक पूर्वदिशा मुक्तसूर्या, आग्नेयी दिशा प्राप्तसूर्या और दक्षिणा ऐष्यत्सूर्या होती है। इसी प्रकार शेष छै पहरों में भी जानना चाहिये। मुक्त सूर्या अङ्गारिणी, प्राप्तसूर्या-दीप्ता, ऐष्यत्सूर्या धूमिनी और शेष पाँच दिशायें शान्ता कहलाती हैं। कहा भी है—

अङ्गारिणी दिगभिविप्रयुक्ता यस्यां रविस्तिष्ठति सा प्रदीप्ता।
प्रधूमिता यास्यति यां दिनेशः शेषाः प्रशान्ताः शुभदाश्च ताः स्युः॥

कहा भी है भगवान् गर्ग ने—

उदये दीप्यते पूर्वा पूर्वाह्णे पूर्वदक्षिणा। मध्याह्ने दक्षिणा दीप्ताऽथापराह्णे तु नैर्ऋती॥
अस्तमने दीप्ता वायवी पूर्वरात्रिके। सौम्या तु मध्यरात्रे स्यादैशान्यपररात्रिके॥
गताप्राप्तानागतातीता दीप्यन्तेऽत्र सदा दिशः। व्याहरन्ते मृगास्तासु वेदयन्ति महद्भयम्॥
श्च वृत्तमतीतायां दीप्तायां शंसते मृगः। अनागतायामाशादि दीप्तायां तद्दिने स्मृतम्॥

दिशाओं में फल का नियम—

तत्पञ्चमदिशां तुल्यं शुभं त्रैकाल्यमादिशेत्।

परिशेषदिशोर्वाच्यं यथासन्नं शुभाशुभम्॥ १३॥

अङ्गारिणी दिशा के पञ्चमी दिशा में दृष्ट शुभाशुभ शाकुन का फल भूत, दीप्ता दिशा के पञ्चमी दिशा में दृष्ट शुभाशुभ शकुन का फल वर्तमान और धूमिनी दिशा के पञ्चमी दिशा में दृष्ट शुभाशुभ शकुन का फल भविष्यत् होता है। शेष अङ्गारित शांतासन्न और धूमित शांतासन्न दिशाओं में दृष्ट शुभाशुभ शकुन का फल क्रम से भूत और भविष्यत् जानना चाहिये॥ १३॥

फल नियम के लिये वक्तव्य—

शीघ्रमासन्ननिम्नस्थैश्चिरादुन्नतदूरगैः ।
स्थानवृद्ध्युपघाताच्च तद्वद्ब्रूयात्फलं पुनः ॥ १४ ॥

समीप तथा नीच स्थान में स्थित शकुन का फल शीघ्र तथा उच्च और दूर में स्थित शकुन का फल देर में होता है। बढ़ने वाले स्थान पर दृष्ट शुभाशुभ शकुन का फल बढ़ने वाला और घटने वाले स्थान पर दृष्ट शुभाशुभ शकुन का फल घटने वाला होता है।

क्लिष्टेषु तु भवेत् क्षिप्रं शुभं वा यदि वेतरत्। दूरस्थेषु च सर्वेषु चिरात् सम्पद्यते फलम् ॥
दग्धवक्रातुरच्छिन्नशुष्ककण्टकिवृक्षगाः। अश्मनिम्नकपालास्थिसिकताकेशभस्मसु ॥
श्मशानाङ्गारवल्मीका ऊषरापांसुमत्सराः। शीर्णजीर्णाशुच्यशुभदेशस्था दीप्तसंज्ञिताः ॥
मनोज्ञस्निग्धफलितक्षीरपुष्पतरुस्थिता. । समप्रशस्तभूमिष्ठाः शान्ताः स्युर्मृगपक्षिणः ॥

दश प्रकार के दीप्त शकुन का लक्षण—

क्षणतिथ्युडुवातार्कैर्दैवदीप्तो यथोत्तरम् ।
क्रियादीप्तो गतिस्थानभावस्वरविचेष्टितैः ॥ १५ ॥

क्षण (दारुण और उग्र संज्ञक नक्षत्र के मुहूर्त) में दृष्ट शकुन क्षणदीप्त। तिथियों (चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी) में दृष्ट शकुन तिथिदीप्त। नक्षत्रों (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा, पूर्वात्रय, भरणी और मघा) में दृष्ट शकुन नक्षत्रदीप्त। वात (भयंकर, खर, कठोर और प्रतिलोम वायु) में दृष्ट शकुन वायुदीप्त, सूर्याभिमुख स्थित शकुन सूर्यदीप्त ये पाँच दैवदीप्त हैं। ये सब दीप्त यथोत्तर क्रम से दीप्त हैं, जैसे क्षण दीप्त से तिथिदीप्त, तिथिदीप्त से नक्षत्रदीप्त, नक्षत्रदीप्त से वायुदीप्त और वायुदीप्त से सूर्यदीप्त अधिक दीप्त हैं। तथा गति, स्थान, भाव, स्वर, चेष्टा ये क्रिया दीप्त हैं। ये भी यथोत्तर क्रम से दीप्त हैं।

यहाँ पर ऋषिपुत्र—

चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीचतुर्दशीषु तिथिदीप्ताः। विष्ट्यां करणे करणदीप्ताः। मूलेन्द्रसर्परौद्रैन्द्राग्नेययाम्यपित्र्याग्नेयपूर्वासु नक्षत्रदीप्ताः। मुहूर्तेऽप्येतेषामेव मुहूर्तदीप्ताः। विसंज्ञाः स्वरूपसंज्ञा भावदीप्ताः। स्वरपरुषभिन्नभैरवार्तोद्वेजनीयविषमविप्लुताचरणामजर्जरस्वराः स्वरदीप्ताः। अशनि हत पतितच्छिन्नभिन्नभग्नोन्मूलितार्धदलितोपसृष्टशुष्कव्याधिता पत्रा फलक्षीरमलिनशीर्णविरूपासारविरसकटुकाम्ललवणतिक्तकषायितायतविषमसंश्रितसंघटित लतावितानावनततिरोधान्याक्रान्तकण्टाग्निदग्धेषु तरुषु। प्रकारगोपुराट्टालककुत्भूमिसंस्था स्थानदीप्ता। ये शीर्णविषमनिम्नसङ्करकेशास्थिकपालवल्मीकाङ्गारपलालवितष्टायुधाग्न्याधारकलहसर्पविद्युदुल्काकर्ममारुतायुधाग्नीमुपधावन्ते ते गतिदीप्ताः। पक्षविपातोद्दण्डविधूननैर्निपातपरोधावपभावकुट्टनैश्च चेष्टादीप्ताः। चण्डपरुषप्रतिलोममारुताः वातदीप्ता। अर्काभिमुखा दीप्तदीक्स्था रविदीप्ता।

यहाँ पर विशेष—

दशधैवं प्रशान्तोऽपि सौम्यस्तृणफलाशनः ।
मांसामेध्याशने रौद्रो विमिश्रोऽन्नाशनः स्मृतः ॥ १६ ॥

पूर्वोक्त दश प्रकार के शान्त शकुन हैं। उनमें तृण और फल को खाने वाले सौम्य, मांस और विष्ठा आदि अपवित्र पदार्थ खाने वाले रौद्र और अन्न खाने वाले मिश्र (न सौम्य न रौद्र) कहे गये हैं।

कहा भी है—

पिशिताशुचिभोजन' प्रदीप्तस्तृणफलभुक् च निसर्गतः प्रशान्तः ।
उभयः कथितस्तथान्नभोजी दिक्स्थानोदयकालतश्च चिन्त्यः ॥

हर्म्यप्रासादमङ्गल्यमनोज्ञस्थानसंस्थिताः ।
श्रेष्ठा मधुरसक्षीरफलपुष्पद्रुमेषु च ॥ १७ ॥

महल, देवमन्दिर, मङ्गल स्थान (देवता, ब्राह्मण और गायों से अध्यासित) मनोज्ञ (हरावास और शीतल द्रुम की छाया), मधुर फल वाले, दूध वाले, फल वाले और फूल वाले वृक्ष इन सब पर स्थित शकुन शुभ फल देने वाले होते हैं ॥ १७ ॥

शकुनों के बल—

स्वकाले गिरितोयस्था बलिनो द्युनिशाचराः ।
क्लीबस्त्रीपुरुषा ज्ञेया बलिनः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १८ ॥

दिन में दिनचर शकुन पर्वत के ऊपर और रात्रि में रात्रिचर शकुन जलप्राय देश में स्थित हों तो बली होते हैं। तथा नपुंसक से स्त्री और स्त्री से पुरुष जाति का शकुन बली होता है।

यहाँ पर मनुधर्म—

गिरौ दिवा दिवाचारी निश्यनूपे निशाचराः। रोधवाक् शकुनो ज्ञेयो विमर्देद्बलमन्यथा ॥

कहा भी है—

द्युनिशोभयचारिणः स्वकाले पुरवनमिश्रचराः स्वभूमिसंस्था ।
सफला विफला विपर्ययस्था गमनेच्छोः पुरपार्थिवाः शुभास्ते ॥

जवजातिबलस्थानहर्षसत्त्वस्वरान्विताः ।
स्वभूमावनुलोमाश्च तदूनाः स्युर्विवर्जिताः ॥ १९ ॥

यदि दो आदि शकुनों का दर्शन हो तो गति, जाति, बल, स्थान, हर्ष, सत्व, स्वर इनमें जो बली हो उसी के अनुसार शुभाशुभ फल होता है। तथा अपने स्थान से अनुलोम गति वाले शकुन भी बली है। इनसे वीपरीत होने पर निर्बल होते हैं ॥ १९ ॥

पूर्व दिशा में बली शकुन—

कुक्कुटेभपिरिल्याश्च शिखिवञ्जुलछिक्कराः ।
बलिनः सिंहनादश्च कूटपूरी च पूर्वतः ॥ २० ॥

मुर्गा, हाथी, पिरिली (पक्षि विशेष), मयूर, खदिरचंचु, छिक्कर (मृग जाति), सिंहनाद (पक्षिविशेष), कलापिका ये सब पूर्व दिशा में बली हैं ॥ २० ॥

दक्षिण दिशा में बली शकुन—

क्रोष्टुकोलूकहरीतकाककोकर्क्षपिङ्गलाः ।
कपोतरुदिताक्रन्दक्रूरशब्दाश्च याम्यतः ॥ २१ ॥

सियार, उल्लू, तोता, कौआ, चकवा चकई, भालू, उलूक, चेटिका, कबूतर, रोना, चिल्लाना, क्रूर शब्द ये सब दक्षिण दिशा में बली होते हैं ॥ २१ ॥

पश्चिम दिशा में बली शकुन—

गोशशक्रौञ्चलोमाशहंसोत्क्रोशकपिञ्जलाः ।

विडालोत्सववाद्यदिग्गीतहासाश्च वारुणाः ॥ २२ ॥

गाय, खरहा, क्रौञ्च पक्षी, लोमड़ी, हंस, कुरब पक्षी, कपिञ्जल पक्षी, मार्जार, विवाह आदि उत्सव, बाजे, गीत, हास्य ये सब पश्चिम दिशा में बली होते हैं ॥ २२ ॥

उत्तर दिशा में बली शकुन—

शतपत्रकुरङ्गाखुमृगैकशफकोकिलाः ।

चापशल्यकपुण्याहघण्टाशंखरवा उदक् ॥ २३ ॥

दार्वाघाट पक्षी, हरिण, चूहा, मृग, घोड़ा, गदहा, कोयल, चाप, बिल में रहने वाले जीव, पुण्याह वाचन का शब्द, घण्टा, शंख ये सब उत्तर दिशा में बली होते हैं ॥ २३ ॥

शकुनों का विभाग—

न ग्राम्योऽरण्यगो ग्राह्यो नारण्यो ग्राम्यसंस्थितः ।

दिवाचरो न शर्वर्यां न च रक्तंचरो दिवा ॥ २४ ॥

वन में गाय के शकुन, गाँव में वन के शकुन, रात्रि में दिन के शकुन और दिन में रात्रि के शकुन का ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥

अग्राह्य शकुन—

द्वन्द्वरोगार्दितत्रस्ताः कलहामिषकाङ्क्षिणः ।

आपगान्तरिता मत्ता न ग्राह्याः शकुनाः क्वचित् ॥ २५ ॥

द्वन्द्व (सारस मिथ नर मेदिन का जोड़ा), रोग से पीड़ित, भीत, कलह करने की इच्छा वाले, मांसाभिलाषी, नदी के दूसरे किनारे पर स्थित और ऋतुकाल के वश सदर्प शकुनों का ग्रहण नहीं करना चाहिये। कहा भी है—

द्वन्द्वादिरोगार्दितभीतमत्तवैरान्तयुद्धामिषकाङ्क्षिणश्च ।

सीमान्तनद्यन्तरिताश्च सर्वे न चिन्तनीया सदसत्फलेषु ॥ २५ ॥

शकुनों के ऋतु काल के वश निष्फलत्व—

रोहिताश्वाजवालेयाः कुरङ्गोष्ट्रमृगाः शशः ।

निष्फलाः शिशिरे ज्ञेया वसन्ते काककोकिलौ ॥ २६ ॥

शिशिर काल में रोहित मृग, घोड़ा, बकरा, गदहा, कुरङ्ग, ऊँट, मृग, खरहा ये तथा वसन्त काल में कौवा, कोयल ये निष्फल होते हैं ॥ २६ ॥

अग्राह्य शकुन—

न तु भाद्रपदे ग्राह्याः सूकरश्ववृकादयः ।

शारदब्जादगोक्रौञ्चाः श्रावणे हस्तिचातकौ ॥ २७ ॥

भाद्रपद मास के सूअर, कुत्ता, भेड़िया, आदि (बिल में रहने वाले जन्तु) का शरत्काल में पानी से उत्पन्न होने वाले पक्षी बगला आदि, गाय और क्रौञ्च पक्षी का, श्रावण मास में हाथी और चातक का ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥ २७ ॥

व्याघ्रर्क्षवानरद्वीपिमहिषाः सबिलेशयाः ।

हेमन्ते निष्फला ज्ञेया बालाः सर्वे विमानुषाः ॥ २८ ॥

हेमन्त में बाघ, भालू, बन्दर, चीता, भैंसा, साँप और मनुष्य को छोड़कर सब शिशु निष्फल होते हैं। यहाँ पर पराशर—

अथ शाकुनेषु कोकिलमयूरजीवञ्जीवकप्रियपुत्रराजपुत्रीगोदापुत्रशतपत्रदात्यूहमदनसारिकादर्पाभूकोपष्टिमहामुक्तकमपकदुण्डिमाणवकवायसकुक्कुटकपोतकौशलाहुम्बकचित्रकपोतपुष्परयोद्वरयादीनां वसन्तो मदनकालः। शतपत्रोत्क्रोशभृङ्गराजमयूरकोकिलवकवलाहकाप्लवचाकधन्वनचातकसारङ्गाणां वर्षाः। चकोरकादम्बमदनशारिकाकीरपुष्करचातकहसचक्रवाकसारसकुररक्रौञ्चकारण्डवभ्रमराणां शरद्। श्येनकुररक्रौञ्चसारसादीनां हेमन्ते शिशिरे एवमादयः शकुनानां मदकालाश्च। मृगाणां पुनः पुरुषाणां च शिवाशशजम्बूकसृमरचमरवानरमार्जारनकुलगजगवयसिंहव्याघ्रकूर्मवराहादीनां प्रायः सर्वेषां मदकालश्च विशेषतश्च सारससृमरसिंहव्याघ्रादीनां ग्रीष्मे। हरिणगजवृषभादीनां प्रावृट्। सृमरशरभमहिषगवयसमरचमराणां शरद्। गोगवयवृषादीनां हेमन्तः शिशिर इति॥ २८॥

द्वादश विभक्त दिशाओं का विभाग—

ऐन्द्रानलदिशोर्मध्ये त्रिभागेषु व्यवस्थिताः।
कोशाध्यक्षानलाजीवितपोयुक्ताः प्रदक्षिणम्॥ २९॥

पूर्व और अग्निकोण के अन्तर्गत प्रदेश के त्रिभाग में प्रदक्षिण क्रम से कोशाध्यक्ष, अग्निजीवी, तपस्वी ये तीन स्थित हैं॥ २९॥

दिशाओं का विभाग—

शिल्पी भिक्षुर्विवस्त्रा स्त्री याम्यानलदिगन्तरे।
परतश्चापि मातङ्गगोपधर्मसमाश्रयाः॥ ३०॥

दक्षिण और अग्निकोण के अन्तर्गत प्रदेश के त्रिभाग में क्रम से कारीगर, भिक्षुक, नङ्गी स्त्री ये तीन स्थित हैं। दक्षिण और नैर्ऋत्य कोण के अन्तर्गत प्रदेश के त्रिभाग में क्रम से हाथी, गोप, धार्मिक लोग ये तीन स्थित हैं॥ ३०॥

नैर्ऋतीवारुणीमध्ये प्रमदासूतितस्कराः।
शौण्डिकः शाकुनी हिंस्रो वायव्यापश्चिमान्तरे॥ ३१॥

पश्चिम और नैर्ऋत्य कोण के अन्तर्गत प्रदेश के त्रिभाग में क्रम से स्त्री, प्रसूता स्त्री, चोर ये तीन स्थित हैं। वायव्य और पश्चिम दिशा के अन्तर्गत प्रदेश के त्रिभाग में कलाल, पक्षी को मारने वाले और हिंसा करने वाले ये तीन स्थित हैं॥ ३१॥

विषघातकगोस्वामिकुहकज्ञास्ततः परम्।
धनवानीक्षणीकश्च मालाकारः परं ततः॥ ३२॥

वायव्य और उत्तर दिशा के अन्तर्गत प्रदेश के त्रिभाग में क्रम से विष को नाश करने वाले, गोस्वामी (गोमान्), इन्द्रजाल विद्या जानने वाले ये स्थित हैं। उत्तर और ईशान कोण के अन्तर्गत प्रदेश के त्रिभाग में धनी, दैवज्ञ, माली ये तीन स्थित हैं॥३२॥

दिशाओं का भेद—

वैष्णवश्चरकश्चैव वाजिनां रक्षणे रतः।
द्वात्रिंशद्देवं भेदाः स्युः पूर्वदिग्भिः सहोदिताः॥ ३३॥

४३, ४४ वृ० सं०

ईशान कोण और पूर्व दिशा के अन्तर्गत प्रदेश के त्रिभाग में क्रम से वैष्णव, चरक, सहीस ये तीन स्थित हैं। इस तरह पूर्व आदि आठ दिशाओं के बत्तीस भेद होते हैं ॥३३॥

आठ दिशाओं के अधिपति—

राजा कुमारो नेता च दूतः श्रेष्ठी चरो द्विजः ।

गजाध्यक्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम् ॥ ३४ ॥

पूर्व आदि आठ दिशाओं के प्रदक्षिण क्रम से राजा, कुमार, सेनापति, दूत, सेठ, गुप्तचर, ब्राह्मण, गजाध्यक्ष ये आठ तथा पूर्व आदि चार दिशाओं के क्षत्रिय आदि (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्राह्मण) ये चार अधिपति हैं ॥ ३४ ॥

यात्रा का विचार—

गच्छतस्तिष्ठतो वापि दिशि यस्यां व्यवस्थितः ।

विरौति शकुनो वाच्यस्तद्दिग्जेन समागमः ॥ ३५ ॥

यात्रा में गमन करते हुए, या एक स्थान पर स्थित पुरुष के जिस दिशा में स्थित होकर शकुन शब्द करे उस दिशा में स्थित प्राणी के साथ समागम कहना चाहिये। जैसे पूर्व और आग्नेय कोण के प्रथम त्रिभाग में शकुन हो तो कोशाध्यक्ष, द्वितीय में हो तो अग्निजीवी, तृतीय त्रिभाग में शकुन तापस इत्यादि के साथ समागम कहना चाहिये॥३५॥

शुभाशुभ शब्दों का ज्ञान—

भिन्नभैरवदीनार्त्तपरुषक्षामजर्जराः ।

स्वना नेष्टाः शुभाः शान्तहृष्टप्रकृतिपूरिताः ॥ ३६ ॥

विषम, भयङ्कर, दीन, जर्जर (फूटते हुए भाण्ड से उत्पन्न) ये सब शब्द शुभ नहीं होते। अर्काभिमुख होकर, मधुर स्वर से और हर्षपूर्वक किये हुए सब शब्द शुभ होते हैं।

यात्रा करने वाले के वामभागगत शुभ शकुन—

शिवा श्यामा रला छुच्छुः पिङ्गला गृहगोधिका ।

सूकरी परपुष्टा च पुन्नामानश्च वामतः ॥ ३७ ॥

सियार, पोतकी, कलहकारिका, छुछुन्दर, उल्लूकचेटिका, पल्ली, सूअर, कोयल, पुरुषसंज्ञक जन्तु ये सब गमन करने वाले के बायीं तरफ शुभ होते हैं। कहा भी है—

छुच्छुन्दरी सूकरिका शिवा च श्यामा रला पिङ्गलिकाऽन्यपुष्टा ।
शस्ता प्रयाणे गृहगोधिका च पुंसञ्ज्ञिता ये च पतत्रिणः स्युः ॥ ३७ ॥

यात्रा करने वाले के दक्षिणभागगत शुभ शकुन—

स्त्रीसञ्ज्ञा भासभषककपिश्रीकर्णछिकराः ।

शिखिश्रीकण्ठपिप्पीकरुरुश्येनाश्च दक्षिणाः ॥ ३८ ॥

भासपक्षी, भषक, वानर, श्रीकर्ण पक्षी, छिकर (मृग जाति), बाज, स्त्रीसंज्ञक जन्तु ये सब गमन करने वाले के दक्षिण भागगत शुभ होते हैं ॥ ३८ ॥ यहाँ पर पराशर—

तेषां शिवागोधाकालकाराजपुत्रीभरद्वाजबलाकापोतकीसूकरिकापिप्पीकाद्युतछिम्प्रभच-आपिण्डीकपिङ्गलाद्याः स्त्रीसञ्ज्ञा शेषा पुन्नामानः ॥ कहा भी है—

श्येनो रुरुः पूर्वकुटः कपिश्च श्रीकर्णछिक्कारकपिप्पिकाद्याः ।
स्त्रीसञ्ज्ञिता ये च शिखिद्विगौ च याने हिता दक्षिणभागसंस्थाः ॥ ३८ ॥

वाम दक्षिण भागगत शुभाशुभ फल—

स्वेडास्फोटितपुण्याहगीतशङ्खाम्बुनिःस्वनाः ।
स तूर्याध्ययनाः पुंवत् स्त्रीवदन्या गिरः शुभाः ॥ ३९ ॥

क्ष्वेड (मुख का शब्द), आस्फोट (हाथों का शब्द), पुण्याह शब्द, शंख का शब्द, जल का शब्द, तुरही का शब्द, वेदध्वनि ये सब पुरुष की तरह (वामभागस्थित) शुभ होते हैं। तथा अन्य माङ्गलिक शब्द स्त्रीवत् (दक्षिण भाग स्थित) शुभ होते हैं। कहा भी है—

आक्ष्वेडितस्फोटितशङ्खतूर्यपुण्याहगीतध्वनिगीतशब्दाः ।
वामाः प्रशस्ताः शुभदा नराणामाक्रन्दितो दक्षिणतः परेषाम् ॥ ३९ ॥

ग्राम स्वरों का शुभाशुभ फल—

ग्रामौ मध्यमषड्जौ तु गान्धारश्चेति शोभनाः ।
षड्जमध्यमगान्धारा ऋषभश्च स्वरा हिताः ॥ ४० ॥

यात्रा में मध्यम, षड्ज, गान्धार ये तीनों स्वर शुभ और षड्ज, मध्यम, गान्धार, ऋषभ ये चार स्वर हितकारी होते हैं। कहा भी है—

गान्धारषड्जऋषभाः खलु मध्यमश्च याने स्वराः शुभकरा न तु येऽत्रशेषाः ।
ग्रामौ शुभावपि हि मध्यमषड्जसञ्ज्ञौ गान्धारगीतमपि भद्रमुशन्ति देवाः ॥ ४० ॥

अन्य शुभाशुभ शकुन—

स्वकीर्तनदृष्टेषु भारद्वाजाजबर्हिणः ।
धन्या नकुलचाषौ च सरटः पापदोऽग्रतः ॥ ४१ ॥

भारद्वाज, बकरा, मयूर इनका शब्द, नामकीर्तन और देखना धन्य है। तथा नेवला, चाष और सरट इनका आगे में आना अशुभ है ॥ ४१ ॥

जाहकाहिशशक्रोडगोधानां कीर्त्तनं शुभम् ।
रुतं सन्दर्शनं नेष्टं प्रतीपं वानरर्क्षयोः ॥ ४२ ॥

यात्रा समय में जाहक, सर्प, खरगोश, सूअर, गोह इनका नाम लेना शुभकारी है। इससे उलटा वानर तथा भालू का फल होता है। अर्थात् यात्रा-समय में वानर तथा भालू का नाम लेना अशुभ तथा शब्द और दर्शन शुभ है। कहा भी है—

भारद्वाज्यजबर्हिचाषनकुलाः संकीर्त्तनाद्दर्शनात् ।
केचान्तश्च शुभप्रदा न सरटो दृष्टः शिवाय क्वचित् ॥
गोधासूकरजाहकाहिशशकाः पापा रुतालोकने ।
धन्यं कीर्त्तनरुद्ध्ववानरकलं तद्व्यस्ययपास्ततोभनम् ॥ ४२ ॥

ओजाः प्रदक्षिणं शस्ता मृगाः सनकुलाण्डजाः ।
चाषः सनकुलो वामो भृगुराहापराह्णतः ॥ ४३ ॥

विषम संख्यक (१, ३, ५, ७ आदि) मृग, नकुल और अण्डज प्राणी वाम पार्श्व से आगे आकर दक्षिण पार्श्व में आ जायें तथा नकुल के साथ चाष पक्षी दक्षिण पार्श्व से आकर वाम पार्श्व में आ जायें तो शुभ होते हैं। भृगु का मत है कि ये सब अपराह्ण में शुभकारी होते हैं, पूर्वाह्ण में नहीं ॥ ४३ ॥

छिक्करः कूटपूरी च पिरिली चाह्नि दक्षिणाः ।
अपसव्याः सदा शस्ता दंष्ट्रिणः सबिलेशयाः ॥ ४४ ॥

दिन में सियार, करायिका और पिरली पक्षी दक्षिण भाग में शुभ होते हैं। तथा दंष्ट्री (सूअर आदि) और बिल में रहने वाले प्राणी वाम भाग में शुभ होते हैं ॥ ४४ ॥

दिशा के वश शकुन का शुभाशुभ फल—

श्रेष्ठे हयसिते प्राच्यां शवमांसे च दक्षिणे ।
कन्यकादधिनी पश्चादुदग्गोविप्रसाधवः ॥ ४५ ॥

पूर्व में घोड़ा और सफेद वस्तु, दक्षिण में शव और मांस, पश्चिम में कन्या और दही तथा उत्तर में गाय, ब्राह्मण और सज्जन पुरुष श्रेष्ठ हैं। कहा भी है—

द्रव्याणि श्वेतानि तुरङ्गमश्च पूर्वेण याम्येन शवः समांसम् ।
पश्चात् कुमारी दधि चातिशस्तं सौम्येन गोब्राह्मणसाधवश्च ॥ ४५ ॥

दिशा के वश शकुन का अशुभ फल—

जालश्वचरणौ नेष्टौ प्राग्याम्यौ शस्त्रघातकौ ।
पश्चादासवषण्ढौ च खलासनहलान्युदक् ॥ ४६ ॥

पूर्व में जाल के साथ चलने वाले और कुत्ते के साथ चलने वाले, दक्षिण में शस्त्र और वधिक, पश्चिम में आसव (मद्य आदि) और नपुंसक तथा उत्तर में आसन और हल अशुभ हैं। कहा भी है—

जालकरश्वकरौ न शुभौ प्राक् घातकशस्त्रकरौ यमदिक्स्थौ ।
षण्ढकमद्यकरावपि पश्चादासनसीरखलैः सह चोदक् ॥ ४६ ॥

कर्म आदि में शकुनों की विशेषता—

कर्मसङ्गमयुद्धेषु प्रवेशे नष्टमार्गणे ।
यानव्यस्तगता ग्राह्या विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥ ४७ ॥

कर्म (जो करते हैं), सङ्गम (किसी वृद्ध आदि के साथ संयोग) युद्ध, प्रवेश (गृह प्रवेश आदि) और नष्ट द्रव्य के अन्वेषण में यात्रा में कथित प्रदेश से विरुद्ध प्रदेश में स्थित शकुन शुभ होता है। जैसे यात्रा में जो दक्षिण में शुभ हैं वे यहाँ पर वाम में, यात्रा में जो वाम में शुभ है वे यहाँ पर दक्षिण में, यात्रा में जो आगे में शुभ हैं वे यहाँ पर पीछे में, यात्रा में जो पीछे में शुभ हैं वे यहाँ पर आगे में, यात्रा में जो पूर्व दिशा में शुभ हैं वे यहाँ पर पश्चिम में, यात्रा में जो पश्चिम में शुभ हैं वे यहाँ पर पूर्व में, यात्रा में जो दक्षिण में शुभ हैं वे यहाँ पर उत्तर में और यात्रा में जो उत्तर में शुभ हैं वे यहाँ पर दक्षिण में शुभ होते हैं। कहा भी है—

नष्टावलोकनसमागमयुद्धकर्मवेश्मप्रवेशमनुजेश्वरदर्शनेषु ।
यानप्रतीपविधिना शुभदा भवन्ति— ॥ ४७ ॥

यहाँ पर विशेष—

दिवा प्रस्थानवद्ग्राह्याः कुरङ्गरुरुवानराः ।
अह्नश्च प्रथमे भागे चापवञ्जुलकुक्कुटाः ॥ ४८ ॥

पश्चिमे शर्वरीभागे नप्तृकोलूकपिङ्गलाः।
सर्व एव विपर्यस्ता ग्राह्याः सार्थेषु योषिताम्॥ ४९॥

दिन में पूर्वोक्त कर्म आदि करना हो तो वहां पर कुरङ्ग, रुरु (मृगजाति) और वानर को, पूर्वाह्न में चाष, वञ्जुल और मुर्गा को तथा रात्रि के अन्त भाग में नप्तृक, उल्लू और पिङ्गला को यात्रा की तरह ग्रहण करना चाहिये। किन्तु स्त्रियों के लिये पूर्वोक्त सब शकुन उल्टा ग्रहण करना चाहिये॥ ४८-४९॥

नृपसन्दर्शने ग्राह्यः प्रवेशेऽपि प्रयाणवत्।
गिर्यरण्यप्रवेशेषु नदीनां चावगाहने॥ ५०॥
वामदक्षिणगौ शस्तौ यौ तु तावग्रपृष्ठगौ।

यात्रा में जो वाम और दक्षिण गत शकुन शुभ हैं वे राजा के दर्शन, गृहप्रवेश आदि, पर्वत प्रवेश, वन प्रवेश और नदी के पार होने में क्रम से आगे और पीछे में शुभ होते हैं। जैसे—यात्रा में जो वाम में शुभ हैं वे यहां पर आगे में और यात्रा में जो दक्षिण में शुभ हैं वे यहां पर पीछे में शुभ होते हैं। कहा भी है—

केचिद्गुरुगमनवन्नृपदर्शनेषु—इति॥ ५०-५०½॥

क्रियादीप्तौ विनाशाय यातुः परिघसञ्ज्ञितौ॥ ५१॥
तावेव तु यथाभागं प्रशान्तरुतचेष्टितौ।
शकुनौ शकुनद्वारसञ्ज्ञितावर्थसिद्धये॥ ५२॥

क्रिया दीप्ति में गमन करने वाले के दोनों पार्श्व में शकुन दिखाई दे तो परिघ संज्ञक शकुन होता है, परिघ संज्ञक शकुन होने पर गमन करने वाले का नाश होता है। किन्तु वे दोनों शकुन यथाभाग (दक्षिण भाग वाले दक्षिण भाग में और वाम भाग वाले वाम भाग में) स्थित होकर शान्ति पूर्वक शब्द करें तो शकुन द्वार संज्ञक होते हैं। इनमें गमन करने वाले के अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है॥ ५१-५२॥

मतान्तर से शकुन द्वार का लक्षण—

केचित्तु शकुनद्वारमिच्छन्त्युभयतः स्थितैः।
शकुनैरेकजातीयैः शान्तचेष्टाविराविभिः॥ ५३॥

किसी का मत है कि एक जाति वाले, शान्त चेष्टा से शब्द करने वाले, दोनों पार्श्व में स्थित शकुनों से शकुन द्वार संज्ञक शकुन बनता है। यहां पर नन्दि—

एकयोन्युद्भवैः शान्तैः शान्तचेष्टैर्व्यवस्थितैः। यथाभागगतैस्तैश्च शकुनद्वारमिष्यते॥ ५३॥

विरोधसंज्ञक शकुन—

विसर्जयति यद्येक एकश्च प्रतिषेधति।
स विरोधोऽशुभो यातुर्ग्राह्यो तु बलवत्तरः॥ ५४॥

यदि यात्रा समय एक शकुन यात्रा करने को आज्ञा दे और दूसरा निषेध करे तो वह विरोध संज्ञक शकुन अशुभ फल देने वाला होता है। अथवा उन दोनों में जो बली हो उसको ग्रहण करना चाहिये॥ ५४॥

विरोधी शकुन का फल—

पूर्वं प्रावेशिको भूत्वा पुनः प्रास्थानिको भवेत् ।
सुखेन सिद्धिमाचष्टे प्रवेशे तद्विपर्ययात् ॥ ५५ ॥

यदि यात्राकाल में पहले प्रवेशकालिक शकुन होकर बाद में यात्रा कालिक शकुन हो तो सुख पूर्वक कार्य की सिद्धि होती है। तथा गृह प्रवेश आदि काल में इसका उल्टा (पहले यात्रा कालिक शकुन होकर बाद में प्रवेश कालिक शकुन) हो तो सुख पूर्वक कार्य की सिद्धि होती है ॥ ५५ ॥

विसर्ज्य शकुनः पूर्वं स एव निरुणद्धि चेत् ।
प्राह यातुररेर्मृत्युं डमरं रोगमेव वा ॥ ५६ ॥

जो शकुन पहले शुभ चेष्टा करके बाद में यात्रा का निषेध करे तो शत्रु द्वारा गमन करने वाले की मृत्यु, शस्त्र कलह या रोग को सूचित करता है ॥ ५६ ॥

भयप्रदायक शकुन—

अपसव्यास्तु शकुना दीप्ता भयनिवेदिनः ।
आरम्भे शकुनो दीप्तो वर्षान्तस्तद्भयङ्करः ॥ ५७ ॥

दीप्त दिशा में स्थित होकर बाईं तरफ शकुन हो तो भय को सूचित करता है। तथा कार्य के प्रारम्भ में ही दीप्त शकुन दिखाई दे तो एक वर्ष तक उस कार्य में भय करता है ॥

चेष्टा दीप्त का फल—

तिथिवाय्वर्कभस्थानचेष्टा दीप्ता यथाक्रमम् ।
धनसैन्यबलाङ्गेष्टकर्मणां स्युर्भयङ्कराः ॥ ५८ ॥

तिथि, वायु, नक्षत्र, सूर्य, स्थान और चेष्टा दीप्त हो तो क्रम से धन, सैन्य, बल, अङ्ग, इष्ट और कर्म के लिये भयकारी होते हैं ॥ ५८ ॥

मेघ ध्वनि आदि से दीप्त शकुन का फल—

जीमूतध्वनिदीप्तेषु भयं भवति मारुतात् ।
उभयोः सन्ध्ययोर्दीप्ताः शस्त्रोद्भवभयङ्कराः ॥ ५९ ॥

मेघ की ध्वनि से दीप्त शकुन वायु से भय और दोनों सन्ध्याओं में दीप्त शकुन शस्त्र से उत्पन्न भय को करता है ॥ ५९ ॥

चिता आदि पर स्थित शकुन का फल—

चितिकेशकपालेषु मृत्युबन्धवधप्रदाः ।
कण्टकीकाष्ठभस्मस्थाः कलहायासदुःखदाः ॥ ६० ॥
अप्रसिद्धिं भयं वापि निःसाराश्मव्यवस्थिताः ।
कुर्वन्ति शकुना दीप्ताः शान्ता याप्यफलास्तु ते ॥ ६१ ॥

यदि शकुन चिता, केश और कपाल पर बैठे हों तो क्रम से मृत्यु, बन्धन और वध को करने वाले होते हैं। तथा कांटेदार वृक्ष, काष्ठ और भस्म पर बैठे हों तो क्रम से कलह, उपद्रव और दुःख देने वाले होते हैं। यदि शकुन निस्सार वस्तु पर बैठे हों तो कार्य की

असिद्धि और पत्थर पर बैठे हों तो भय करते हैं। ये सब दीप्त शकुनों के फल हैं। शान्त शकुन, बहुत कम अशुभ फल देते हैं ॥ ६०-६१ ॥

पुरीषोत्सर्ग आदि करते हुये शकुन का फल—

असिद्धिसिद्धिदौ ज्ञेयौ निर्हाराहारकारिणौ।
स्थानाद्रुवन् व्रजेद्यात्रां शंसते त्वन्यथागमम् ॥ ६२ ॥

टट्टी करने वाले और भोजन करने वाले शकुन क्रम से कार्य की असिद्धि और सिद्धि करने वाले होते हैं। यदि शब्द करते हुये शकुन अपने स्थान से चले जाँय तो गमन और पुनः अपने स्थान पर आकर बैठ जाँय तो किसी के आगमन को सूचित करते हैं ॥ ६२ ॥

स्वर दीप्त आदि शकुन का फल—

कलहः स्वरदीप्तेषु स्थानदीप्तेषु विग्रहः।
उच्चमादौ स्वरं कृत्वा नीचं पश्चाच्च दोषकृत् ॥ ६३ ॥

स्वर दीप्त शकुन में कलह, स्थान दीप्त में विग्रह और पहले जोर से शब्द करके बाद में मन्द हो जायें तो दोष करने वाले होते हैं ॥ ६३ ॥

सप्ताह आदि तक शब्दायमान शकुन का फल—

एकस्थाने रुवन् दीप्तः सप्ताहाद् ग्रामघातकः।
पुरदेशनरेन्द्राणामृत्वर्धायनवत्सरात् ॥ ६४ ॥

यदि एक स्थान पर स्थित शकुन दीप्त होकर सात दिन तक शब्द करता रहे तो गांव का नाश, दो मास तक शब्द करता रहे तो पुर का घात, तीन मास तक शब्द करता रहे तो देश का घात और एक वर्ष तक शब्द करता रहे तो राजा का घात करता है ॥ ६४ ॥

दुर्भिक्षकारी शकुन—

सर्वे दुर्भिक्षकर्तारः स्वजातिपिशिताशिनः।
सर्पमूषकमार्जारपृथुलोमविवर्जिताः ॥ ६५ ॥

सर्प, चूहा, बिल्ली और मछली के अतिरिक्त कोई शकुन यदि अपनी जाति का मांस भक्षण करने लगे तो दुर्भिक्षकारी होते हैं। कहा भी है—

विहाय सर्पाखुबिडालमत्स्यान् स्वजातिमांसान्युपभुञ्जते वा। व्रजन्ति वा मैथुनमन्यजात्यामिति॥

भिन्न जाति के साथ मैथुन का फल—

परयोनिषु गच्छन्तो मैथुनं देशनाशनाः।
अन्यत्र वेसरोत्पत्तेर्नृणां चाजातिमैथुनात् ॥ ६६ ॥

खच्चर की उत्पत्ति को (घोड़े के साथ गदहे के मैथुन से खच्चर की उत्पत्ति होती है उसको) तथा मनुष्यों के अजाति मैथुन को छोड़कर कोई शकुन अन्य जाति के साथ मैथुन करे तो देश का नाश होता है ॥ ६६ ॥

पाद आदि पर आया हुआ शकुन का फल—

बन्धघातभयानि स्युः पादोरुमस्तकान्तिगैः।
शष्पापःपिशितान्नाद्यैर्दोषवत्पक्षतग्रहाः ॥ ६७ ॥

पाद, उरु और शिर के निकट होकर शकुन चला जाय तो क्रम से बन्धन, घात और भय को करता है। घास खाता हुआ शकुन दिखाई दे तो दोष उत्पन्न करने वाला, जल पीता हुआ दिखाई दे तो वर्षा, मांस खाता हुआ दिखाई दे तो अद्भुत और अन्न खाता हुआ शकुन दिखाई दे तो किसी बन्धु से समागम करता है ॥ ६७ ॥

शकुन के वश आगन्तुक का लक्षण—

क्रूरोग्रदोषदुष्टैश्च प्रधाननृपवृत्तकैः ।

चिरकालेन दीप्ताद्यास्त्वागमो दिक्षु तन्नृणाम् ॥ ६८ ॥

दीप्त दिशा में स्थित शकुन क्रूर के साथ किसी पुरुष का आगमन, धूमित दिशा में स्थित शकुन दण्ड के साथ किसी पुरुष का आगमन, शान्त दिशा में स्थित शकुन दोष युक्त पुरुष के साथ किसी पुरुष का आगमन, इसके बाद दुष्ट पुरुष के साथ, इसके बाद प्रधान पुरुष के साथ, इसके बाद राजा के साथ, इसके बाद श्रावक के साथ और इसके बाद अङ्गारित दिशा में स्थित शकुन बहुत देर के बाद किसी पुरुष के आगमन को सूचित करता है ॥ ६८ ॥

भक्ष्य द्रव्य के साथ शकुन का फल—

सद्रव्यो बलवांश्च स्यात् सद्रव्यस्यागमो भवेत् ।

द्युतिमान् विनतप्रेक्षी सौम्यो दारुणवृत्तकृत् ॥ ६९ ॥

जिस दिन किसी भक्ष्य द्रव्य के साथ बली शकुन दिखाई दे उस दिन द्रव्य का लाभ होता है। यदि दीप्ति युत और अधोमुख दृष्टि वाला शुभ शकुन भी दिखाई दे तो भयानक वृत्तान्त को सूचित करता है ॥ ६९ ॥

विदिशा में स्थित शकुन के वश फल—

विदिक्स्थः शकुनो दीप्तो वामस्थेनानुवाशितः ।

स्त्रियाः सङ्ग्रहणं प्राह तद्दिगाख्यातयोनितः ॥ ७० ॥

यदि विदिशा में स्थित दीप्त शकुन वाम भाग में स्थित अन्य शकुन के द्वारा शब्द करे तो उस दिशा में उक्त पुरुष के द्वारा किसी स्त्री का संयोग सूचित करता है ॥ ७० ॥

शान्त और दीप्त के सम्बन्ध से फल—

शान्तः पञ्चमदीप्तेन विरुतो विजयावहः ।

दिष्टागमकारी वा दोषकृत्तद्विपर्यये ॥ ७१ ॥

शान्त शकुन अपने से पांचवीं दीप्त दिशा में स्थित दीप्त शकुन द्वारा शब्दायमान हो तो उस दिशा में स्थित पुरुष का आगमन करता है। उससे विपरीत (दीप्त शकुन अपने से पांचवीं शान्त दिशा में स्थित शान्त शकुन द्वारा शब्दायमान) हो तो दोष करने वाला होता है ॥ ७१ ॥

मध्यस्थ शकुन के द्वारा फल—

वामसव्यगतो मध्यः प्राह स्वपरयोर्भयम् ।

मरणं कथयन्त्येते सर्वे समविराविणः ॥ ७२ ॥

मध्य स्थित शकुन वाम पार्श्व गत शकुन के द्वारा शब्दायमान हो तो आत्मीय जनों से और दक्षिण पार्श्व गत शकुन के द्वारा शब्दायमान हो तो शत्रुओं से भय करता है। तथा वे सब समकाल में बराबर शब्द करें तो मरण को सूचित करते हैं ॥७२॥

वृक्षाग्र आदि पर स्थित शकुन का फल—

वृक्षाग्रमध्यमूलेषु गजाश्वरथिकागमः ।
दीर्घाब्जसुषिताग्रेषु नरनौशिबिकागमः ॥ ७३ ॥

यदि वृक्षाग्र पर शकुन बैठा हो तो गजारूढ मनुष्य का, वृक्ष के मध्य में शकुन बैठा हो तो अश्वारूढ मनुष्य का और वृक्ष के मूल में शकुन बैठा हो तो रथारूढ मनुष्य का आगमन सूचित करता है। यदि लम्बी वस्तु पर शकुन बैठा हो तो नरारूढ मनुष्य का, कमल पुष्प पर बैठा हो तो नाव का और छिन्नाग्र वाले वस्तु पर बैठा हो तो पालकी का आगमन सूचित करता है ॥ ७३ ॥

पर्वतादि पर स्थित शकुन का फल—

शकटेनोन्नतस्थे वा छायास्थे छत्रसंयुते ।
एकत्रिपञ्चसप्ताहात् पूर्वाद्यास्वन्तरासु च ॥ ७४ ॥

किसी उच्च प्रदेश (पर्वत आदि) पर शकुन बैठा हो तो शकटारूढ मनुष्य का और छाया में शकुन बैठा हो तो छत्र सयुत पुरुष का आगमन सूचित करता है। पूर्व आदि दिशा और आग्नेय आदि विदिशा में पूर्वोक्त शकुन बैठे हों तो क्रम से एक, तीन, पाँच और सात रोज में शुभाशुभ फल देते हैं। जैसे पूर्व दिशा में शकुन बैठे हों तो एक दिन में, दक्षिण दिशा में बैठे हों तो तीन दिन में, पश्चिम दिशा में बैठे हों तो पाँच दिन में तथा उत्तर दिशा में बैठे हों तो सात दिन में शुभाशुभ फल देते हैं। एवं आग्नेय कोण में शकुन बैठे हों तो एक दिन में, नैर्ऋत्य कोण में बैठे हों तो तीन दिन में, वायव्य कोण में बैठे हों तो पाँच दिन में और ईशान कोण में शकुन बैठे हों तो सात दिन में शुभाशुभ फल देते हैं ॥ ७४ ॥

यहाँ पर विशेष—

सुरपतिहुतवहयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशङ्कराः क्रमशः ।
प्राच्याद्यानां पतयो दिशः पुमांसोऽङ्गना विदिशः ॥ ७५ ॥

इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, चन्द्रमा, शिव ये क्रम से पूर्व आदि आठ दिशाओं के स्वामी हैं। उनमें पूर्व आदि दिशा पुरुष संज्ञक और आग्नेय आदि विदिशा स्त्रीसंज्ञक हैं ॥ ७५ ॥

यहाँ पर पराशर—

वर्णानां ब्राह्मणादीनामुत्तरादिदिशः स्मृताः। ऐशान्याद्याश्च विदिशस्ताः स्त्रीणां परिकीर्तिताः॥

लेख का परिज्ञान—

तरुतालीविदलाम्बरसलिलजशरचर्मपट्टलेखाः स्युः ।
द्वात्रिंशत्प्रविभक्ते दिक्चक्रे तेषु कार्याणि ॥ ७६ ॥

अग्रिम अध्याय के 'नैर्ऋत्यां स्त्रीलाभस्तुरगाल्ङ्कारदूतलेखाप्तिः' इत्यादि आठवें श्लोक में लेख की प्राप्ति कहा है वहाँ उस लेख की प्राप्ति किस तरह के पत्र पर होती है उसको यहाँ पर स्पष्ट कर रहे हैं। पूर्व दिशा में शकुन हो तो वृक्ष के त्वचा या पत्ते पर, आग्नेय

कोण में शकुन हो तो साल वृक्ष के पत्ते पर, दक्षिण कोण में शकुन हो तो खण्डित पत्ते पर, नैर्ऋत्य कोण में शकुन हो तो वस्त्र पर, पश्चिम में शकुन हो तो कमल के पत्ते पर, वायव्य कोण में शकुन हो तो काण्ड पर, उत्तर कोण में शकुन हो तो चमड़े पर और ईशान कोण में शकुन हो तो पट्ट पर लेख की प्राप्ति होती है। बत्तीस भाग किये हुये दिक्चक्र में जो शकुन कहे गये हैं और जो आगे कहेंगे वे सब अपने २ स्थान में होते हैं॥

सयोग स्थान—

व्यायामशिखिनिकूजितकलहाम्भोनिगडमन्त्रगोशब्दाः।
वर्णास्तु रक्तपीतककृष्णसिताः कोणगा मिश्राः॥ ७७॥

पूर्व आदि दिशाओं में दृष्ट शकुन का शुभाशुभ फल किस देश में होगा उसको स्पष्ट करते हैं। पूर्व दिशा में दृष्ट शकुन का फल युद्धादि में, आग्नेय दिशा में दृष्ट शकुन का फल अग्नि के समीप में, दक्षिण दिशा में दृष्ट शकुन का फल किसी प्रकार के शब्द युत देश में, नैर्ऋत्य कोण में दृष्ट शकुन का फल लड़ाई के स्थान में, पश्चिम दिशा में दृष्ट शकुन का फल जल स्थान में, वायव्य कोण में दृष्ट शकुन का फल बन्धनादि प्रदेश में, उत्तर दिशा में दृष्ट शकुन का फल वेदध्वनि स्थान में और ईशान कोण में दृष्ट शकुन का फल गायों के शब्दों से युत स्थान में प्राप्त होता है। पूर्व में लाल, दक्षिण में पीला, पश्चिम में काला और उत्तर में सफेद वर्ण समझना चाहिये। तथा विदिशा में मिश्रित वर्ण होते हैं। जैसे—अग्नि कोण में रक्तपीत, नैर्ऋत्य कोण में पीतकृष्ण, वायव्य में कृष्णसित और ईशान कोण में सितरक्त वर्ण समझना चाहिये॥ ७७॥

अन्य शुभ शकुन में स्थान का निर्देश—

चिह्नं ध्वजो दग्धमथ श्मशानं दरी जलं पर्वतयज्ञघोषाः।
एतेषु संयोगभयानि विन्द्यादन्यानि वा स्थानविकल्पितानि॥७८॥

पूर्व दिशा में शकुन हो तो ध्वज चिह्न विशिष्ट स्थान में, आग्नेय कोण में हो तो अग्नि दग्ध स्थान में, दक्षिण में हो तो श्मशान में, नैर्ऋत्य में हो तो गुहा में, पश्चिम में हो तो जलप्राय स्थान में, वायव्य कोण में हो तो पर्वत पर और उत्तर में शकुन हो तो गह्वर में संयोग (शुभ शकुन में संयोग) तथा भय (अशुभ शकुन में भय) कहना चाहिये। अथवा शुभ शकुन समुचित शुभ स्थान में अशुभ समुचित कार्य अशुभ स्थान में होते हैं॥ ७८॥

अन्य प्रकार से स्थान का निर्देश—

स्त्रीणां विकल्पा बृहती कुमारी व्यङ्गा विगन्धा त्वथ नीलवस्त्रा।
कुस्त्री प्रदीर्घा विधवा च ताश्च संयोगचिन्तापरिवेदिकाः स्युः॥७९॥

पूर्व में बड़ी, आग्नेय कोण में कुमारी, दक्षिण में अंग हीन, नैर्ऋत्य कोण में दुर्गन्धा, पश्चिम में नील वस्त्र वाली, वायव्य कोण में निन्दनीय, उत्तर में लम्बी और ईशान कोण में रण्डा स्त्री रहती है। विदिशा स्त्री संज्ञक है अत कोई आचार्य ईशान कोण में लम्बी कुमारी, आग्नेय कोण में अंग हीन दुर्गन्धवाली, नैर्ऋत्य कोण में नील वस्त्र वाली निन्दनीय और वायव्य कोण में लम्बी विधवा स्त्री रहती है, ऐसा अर्थ करते हैं। प्रयोजन—पूर्व आदि दिशाओं में शुभ समागम होने पर उन स्त्रियों के साथ चिन्ता उत्पन्न कराती है, किसी वस्तु की चोरी होने पर चोर भी यही होती हैं॥ ७९॥

प्रश्नकालिक शकुन का विचार—

पृच्छासु रूप्यकनकातुरभामिनीनां मेषान्ययानमखगोकुलसंश्रयासु।
न्यग्रोधरक्ततरुरोध्रककीचकाख्याश्चूतद्रुमाः खदिरबिल्वनगार्जुनाश्च॥८०॥

प्रश्न काल में शकुन या प्रश्नकर्ता पूर्वदिशा में हो तो रजत, आग्नेय कोण में सुवर्ण, दक्षिण में पीड़ित, नैर्ऋत्य में स्त्री, पश्चिम में बकरा, वायव्य में सवारी, उत्तर में यज्ञ और ईशान कोण में शकुन या प्रश्नकर्त्ता हो तो गोकुल सम्बन्धी प्रश्न कहना चाहिये। पूर्व में वट, आग्नेय कोण में लालवृक्ष, दक्षिण में लोध, नैर्ऋत्य कोण में छिद्र सहित बाँस, पश्चिम में आम, वायव्य कोण में खैर, उत्तर में बेल और ईशान कोण में अर्जुन वृक्ष होता है। प्रयोजन—पूर्व आदि दिशा में स्थित शुभ शकुन हो तो पूर्वोक्त स्थानों में रजत आदि का लाभ और अशुभ हो तो हानि होती है॥ ८०॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां शाकुनाध्यायः षडशीतितमः॥ ८६॥



अथ अन्तरचक्रमध्यायः

द्वात्रिंशद्भिभाग कृत दिक्चक्र के शान्त दिशा में स्थित शकुन का फल—

ऐन्द्र्यां दिशि शान्तायां विरुवन्नृपसंश्रितागमं वक्ति।
शकुनः पूजालाभं मणिरत्नद्रव्यसम्प्राप्तिम्॥ १॥

यदि पूर्व दिशा में स्थित शकुन चिल्लाय तो राजा के आश्रित पुरुष का आगमन तथा पूजा लाभार्थ मणि और रत्नों की प्राप्ति को सूचित करता है, यदि वह शकुन शुभ हो तब, यदि मध्यम हो तो मध्यम फल और अशुभ हो तो किञ्चित् शुभ फल करता है॥ १॥

द्वितीय तथा तृतीय भाग स्थित शकुन का फल—

तदनन्तरदिशि कनकागमो भवेद्वाञ्छितार्थसिद्धिश्च।
आयुधधनपूगफलागमस्तृतीये भवेद्भागे॥ २॥

पूर्व दिशा के बाद प्रदक्षिण क्रम से द्वितीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो सोने की प्राप्ति और अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है। यदि तृतीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो शस्त्र, धन और सुपारी की प्राप्ति होती है॥ २॥

चतुर्थ भाग और आग्नेय कोण में स्थित शकुन का फल—

स्निग्धद्विजस्य सन्दर्शनं चतुर्थे तथाहिताग्नेश्च।
कोणेऽनुजीविभिक्षुप्रदर्शनं कनकलोहाप्तिः॥ ३॥

चतुर्थ भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो पवित्र ब्राह्मण और अग्निहोत्री का दर्शन होता है। आग्नेय कोण में स्थित शकुन चिल्लाय तो सुवर्ण और लोह (शस्त्र) की प्राप्ति तथा भिक्षुक का दर्शन होता है॥ ३॥

दक्षिण दिशा के प्रथम तथा द्वितीय भाग में स्थित शकुन का फल—

याम्येनाद्ये नृपपुत्रदर्शनं सिद्धिरभिमतस्याप्तिः।
परतस्त्रीधर्माप्तिः सर्षपयवलब्धिरप्युक्ता ॥ ४ ॥

दक्षिण दिशा के प्रथम भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो राजकुमार का दर्शन, कार्यों की सिद्धि और अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है। द्वितीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो स्त्री और धर्म की प्राप्ति तथा सरसों और जौ की भी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

आग्नेय कोण से चतुर्थ भाग में स्थित शकुन का फल—

कोणाच्चतुर्थखण्डे लब्धिर्द्रव्यस्य पूर्वनष्टस्य।
यद्वा तद्वा फलमपि यात्रायां प्राप्नुयाद्याता ॥ ५ ॥

आग्नेय कोण से चतुर्थ भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो पूर्व में नष्ट द्रव्य का लाभ होता है। गमन करने वाला गमन काल में जो कुछ फल होता है उसको जिस किसी प्रकार से प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

दक्षिण भाग तथा उससे द्वितीय भाग में स्थित शकुन का फल—

यात्रासिद्धिः समदक्षिणेन शिखिमहिषकुक्कुटाप्तिश्च।
याम्याद्द्वितीयभागे चारणसङ्गः शुभं प्रीतिः ॥ ६ ॥

दक्षिण भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो यात्रा की सिद्धि तथा मयूर, भैंस और मुर्गे की प्राप्ति होती है। दक्षिण भाग से द्वितीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो चारण (नट, नर्तक) के साथ संयोग तथा शुभ कार्य और धर्मादि की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

तृतीय तथा चतुर्थ भाग में स्थित शकुन का फल—

ऊर्ध्वं सिद्धिः कैवर्तसङ्गमो मीनतित्तिराद्याप्तिः।
प्रव्रजितदर्शनं तत्परे च पक्वान्नफललब्धिः ॥ ७ ॥

तृतीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो कार्यों की सिद्धि, कैवर्त्त का संयोग तथा मछली और तीतर की प्राप्ति होती है। चतुर्थ भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो संन्यासी का दर्शन तथा पक्वान्न और फल का लाभ होता है ॥ ७ ॥

नैर्ऋत्य कोण और उससे द्वितीय भाग में स्थित शकुन का फल—

नैर्ऋत्यां स्त्रीलाभस्तुरगालङ्कारदूतलेखाप्तिः।
परतोऽस्य चर्मतच्छिल्पिदर्शनं चर्ममयलब्धिः ॥ ८ ॥

नैर्ऋत्य कोण में स्थित शकुन चिल्लाय तो स्त्री, घोड़ा, भूषण, दूत और लिखी हुई वस्तु की प्राप्ति होती है। नैर्ऋत्य कोण से द्वितीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो चर्मशिल्पी का दर्शन और चमड़े के बने हुये भाण्ड आदि का लाभ होता है ॥ ८ ॥

नैर्ऋत्य कोण से तृतीय तथा चतुर्थ भाग स्थित शकुन का फल—

वानरभिक्षुश्रवणावलोकनं नैर्ऋताद् तृतीयांशे।
फलकुसुमदन्तघटितागमश्च कोणाच्चतुर्थांशे ॥ ९ ॥

नैर्ऋत्य कोण से तृतीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो वानर, भिक्षुक और बौद्ध संन्यासी का दर्शन होता है। नैर्ऋत्य कोण से चतुर्थ भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो फल, पुष्प तथा दाँत से बनी हुई वस्तु की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥

पश्चिम दिशा तथा उससे द्वितीय भाग में स्थित शकुन का फल—

वारुण्यामर्णवजातरत्नवैदूर्यमणिमयप्राप्तिः ।
परतोऽतः शबरव्याधचौरसङ्गः पिशितलब्धिः ॥ १० ॥

पश्चिम दिशा में स्थित शकुन चिल्लाय तो समुद्र से उत्पन्न रत्न, वैदूर्य मणि और रत्नों से बनाये हुये भाण्डों की प्राप्ति होती है। पश्चिम दिशा से द्वितीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो भील, व्याधा और चोरों का संग तथा मांस का लाभ होता है ॥ १० ॥

पश्चिम दिशा से तृतीय और चतुर्थ भाग में स्थित शकुन का फल—

परतोऽपि दर्शनं वातरोगिणां चन्दनागुरुप्राप्तिः ।
आयुधपुस्तकलब्धिस्तद्वृत्तिसमागमश्चोर्ध्वम् ॥ ११ ॥

पश्चिम दिशा से तृतीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो वात रोगियों का दर्शन तथा चन्दन और अगर की प्राप्ति होती है। पश्चिम दिशा से चतुर्थ भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो शास्त्र और पुस्तक की प्राप्ति तथा इन वस्तुओं को बेचने वाले से मुलाकात होती है ॥ ११ ॥

वायव्य कोण और उससे द्वितीय भाग में स्थित शकुन का फल—

वायव्ये फेनकचामरौर्णिकाप्तिः समेति कायस्थः ।
मृन्मयलाभोऽन्यस्मिन् वैतालिकडिण्डिभाण्डानाम् ॥ १२ ॥

वायव्य कोण में स्थित शकुन चिल्लाय तो समुद्रफेन, चामर और ऊनी वस्त्र की प्राप्ति तथा कायस्थ जाति के मनुष्य से समागम होता है। वायव्य कोण से द्वितीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो मिट्टी के भाण्ड का लाभ, नृत्याचार्य से संयोग और डिण्डिभाण्ड (पटह, मृदङ्ग आदि वाद्य विशेष) का लाभ होता है ॥ १२ ॥

वायव्य कोण से तृतीय और चतुर्थ भाग में स्थित शकुन का फल—

वायव्याद्य तृतीये मित्रेण समागमो धनप्राप्तिः ।
वस्त्राश्वाप्तिरतः परमिष्टसुहृत्सम्प्रयोगश्च ॥ १३ ॥

वायव्य कोण से तृतीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो मित्र से समागम और धन की प्राप्ति होती है। वायव्य कोण से चतुर्थ भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो वस्त्र और घोड़े की प्राप्ति तथा प्रिय मित्र जन का समागम होता है ॥ १३ ॥

उत्तर दिशा और उससे द्वितीय भाग में स्थित शकुन का फल—

दधितण्डुललाजानां लब्धिरुदग्दर्शनं च विप्रस्य ।
अर्थावाप्तिरनन्तरमुपगच्छति सार्थवाहश्च ॥ १४ ॥

उत्तर दिशा में स्थित शकुन चिल्लाय तो दही, चावल और खीलों (लावा) की प्राप्ति तथा ब्राह्मणों का दर्शन होता है। उत्तर दिशा से द्वितीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो धन की प्राप्ति और बनिये के साथ समागम होता है ॥ १४ ॥

उत्तर दिशा से तृतीय और चतुर्थ भाग स्थित शकुन का फल—

वेश्यावटुदाससमागमः परे शुक्लपुष्पफललब्धिः ।

अत ऊर्ध्वं चित्रकरस्य दर्शनं चित्रवस्त्राप्तिः ॥ १५ ॥

उत्तर दिशा से तृतीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो वेश्या, ब्राह्मण और भृत्य का समागम तथा सफेद फूलों का लाभ होता है। उत्तर दिशा से चतुर्थ भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो चित्रकार का दर्शन और चित्र वस्त्रों का लाभ होता है ॥ १५ ॥

ईशान कोण और उससे द्वितीय भाग में स्थित शकुन का फल—

ऐशान्यां देवलकोपसङ्गमो धान्यरत्नपशुलब्धिः ।

प्राक् प्रथमे वस्त्राप्तिः समागमश्चापि बन्धक्या ॥ १६ ॥

ईशान कोण में स्थित शकुन चिल्लाय तो देवलक (पुजारी आदि) के साथ समागम तथा धान्य, रत्न और पशुओं का लाभ होता है। पूर्व के प्रथम भाग (ईशान कोण से द्वितीय भाग) में स्थित शकुन चिल्लाय तो वस्त्र की प्राप्ति और वेश्या के साथ समागम होता है ॥ १६ ॥

ईशान कोण से तृतीय और चतुर्थ भाग में स्थित शकुन का फल—

रजकेन समायोगो जलजद्रव्यागमश्च परतोऽतः ।

हस्त्युपजीविसमाजश्चास्माद्धनहस्तिलब्धिश्च ॥ १७ ॥

ईशान कोण से तृतीय भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो धोबी के साथ समागम और जल से उत्पन्न द्रव्य का लाभ होता है। ईशान कोण से चतुर्थ भाग में स्थित शकुन चिल्लाय तो हाथी से जीविका करने वाले के साथ समागम तथा उससे धन और हाथी का लाभ होता है ॥१७॥

यहाँ पर विशेष—

द्वात्रिंशत्प्रविभक्तं दिक्चक्रं वास्तुबन्धनेऽप्युक्तम् ।

अरनाभिस्थैरन्तः फलानि नवधा विकल्प्यानि ॥१८॥

वास्तु की तरह नेमि के साथ यह बत्तीस से विभक्त दिक्चक्र कहा गया है। अब अर (चक्र के मध्यवर्त्ती भाग) और नाभि (मध्यभाग) के मध्य में स्थित शकुन के द्वारा नव प्रकार से फल की कल्पना करनी चाहिये ॥१८॥

नाभि और पूर्वभाग में स्थित शकुन का फल—

नाभिस्थे बन्धुसुहृत्समागमस्तुष्टिरुत्तमा भवति ।

प्राग्रक्तपट्टवस्त्रागमस्त्वरे नृपतिसंयोगः ॥१९॥

यदि नाभि स्थान में स्थित शकुन हो तो बन्धु और मित्रों के साथ समागम तथा उत्तम तुष्टि का लाभ होता है। यदि पूर्व भाग स्थित अर में शकुन हो तो लाल वस्त्र का लाभ और राजा के साथ समागम होता है ॥१९॥

आग्नेय कोण में स्थित शकुन का फल—

आग्नेये कौलिकतक्षपारिकर्माश्वसूतसंयोगः ।

लब्धिश्च तत्कृतानां द्रव्याणामश्वलब्धिर्वा ॥२०॥

यदि आग्नेय कोण के अर में शकुन हो तो जुलाहा, बढ़ई, कारीगर या गणित के परिकर्मों को जानने वाले, घोड़ा, सहीस इनके साथ समागम तथा इन लोगों के बनाये हुये द्रव्यों का या घोड़े का लाभ होता है ॥२०॥

दक्षिण भाग में स्थित शकुन का फल—

नेमीभागं बुद्ध्वा नाभीभागं च दक्षिणे योऽरः ।
धार्मिकजनसंयोगस्तत्र भवेद्धर्मलाभश्च ॥२१॥

चक्र की नेमि (प्रान्त) और नाभि के भाग को जानकर दक्षिण में जो अर हो उसमें स्थित शकुन हो तो धार्मिक मनुष्यों के साथ समागम और धर्म का लाभ होता है ॥२१॥

नैर्ऋत्य कोण में स्थित शकुन का फल—

उस्रा क्रीडककापालिकागमो नैर्ऋते समुद्दिष्टः ।
वृषभस्य चात्र लब्धिर्माषकुलत्थाद्यमशनं च ॥२२॥

यदि नैर्ऋत्य कोण के अर में स्थित शकुन हो तो गाय, खेलने वाला और कापालिक के साथ समागम, बैल का लाभ तथा उड़द, कुलथी आदि भोजन का लाभ होता है ॥२२॥

पश्चिम दिशा में स्थित शकुन का फल—

अपरस्यां दिशि योऽरस्तत्रासक्तिः कृषीवलैर्भवति ।
सामुद्रद्रव्यसुसारकाचफलमद्यलब्धिश्च ॥२३॥

यदि पश्चिम दिशा के अर में स्थित शकुन हो तो किसानों के साथ समागम तथा समुद्र में उत्पन्न द्रव्य, काच (मणि विशेष), फल और मद्य का लाभ होता है ॥२३॥

वायव्य कोण में स्थित शकुन का फल—

भारवहतक्षभिक्षुकसन्दर्शनमपि च वायुदिक्संस्थे ।
तिलककुसुमस्य लब्धिः सनागपुन्नागकुसुमस्य ॥२४॥

यदि वायव्य कोण के अर में स्थित शकुन हो तो भार ढोने वाले, बढ़ई और भिक्षुक का दर्शन तथा तिलक, नाग, पुन्नाग इनके फूलों का लाभ होता है ॥२४॥

उत्तर दिशा में स्थित शकुन का फल—

कौबेर्यां दिशि योऽरस्तत्रस्थो वित्तलाभमाख्याति ।
भागवतेन समागममाचष्टे पीतवस्त्रैश्च ॥२५॥

उत्तर दिशा के अर में स्थित शकुन हो तो धन का लाभ तथा वैष्णव, ब्राह्मण और पीले वस्त्र के साथ समागम होता है ॥२५॥

ईशान कोण में स्थित शकुन का फल—

ऐशाने व्रतयुक्ता वनिता सन्दर्शनं समुपयाति ।
लब्धिश्च परिज्ञेया कृष्णायःशङ्खघण्टानाम् ॥२६॥

यदि ईशान कोण के अर में स्थित शकुन हो तो व्रत करने वाली स्त्री का दर्शन तथा काला लोहा, शङ्ख और घण्टों का लाभ होता है ॥२६॥

यहाँ पर विशेष—

यास्येऽष्टांशे पश्चाद्द्विषट्त्रिसप्ताष्टमेषु मध्यफला ।
सौम्येन च द्वितीये शेषेष्वतिशोभना यात्रा ॥२७॥
अभ्यन्तरे तु नाभ्यां शुभफलदा भवति षट्सु चारेषु ।
वायव्यानैर्ऋतयोररयोः क्लेशावहा यात्रा ॥२८॥

प्रदक्षिण क्रम से दक्षिण के आठवें, पश्चिम के दूसरे, छठे, तीसरे, सातवें और आठवें तथा उत्तर के दूसरे अष्टमांश में शान्त शकुन हो तो मध्यम फल वाली यात्रा होती है। शेष पचीस अष्टमांशों में शुभफल देने वाली यात्रा होती है। नाभि के मध्य में वायव्य और नैर्ऋत्य को छोड़ कर शेष छे अरों में शकुन हो तो शुभ फल देने वाली तथा वायव्य और नैर्ऋत्य कोण के अरों में स्थित शकुन हो तो क्लेश देने वाली यात्रा होती है ॥२७-२८॥

दीप्त पूर्व दिशा में स्थित शकुन का फल—

शान्तासु दिक्षु फलमिदमुक्तं दीप्तास्वतोऽभिधास्यामि ।
ऐन्द्र्यां भयं नरेन्द्रात्समागमश्चैव शत्रूणाम् ॥२९॥

ये पूर्वकथित सब फल शान्त दिशाओं के कहे गये हैं। अब दीप्त दिशाओं के फल कहता हूं। यदि दीप्त पूर्व दिशा में स्थित शकुन हो तो राजा का भय और शत्रुओं के साथ समागम होता है ॥२९॥

पूर्व दिशा के द्वितीय और तृतीय भाग में स्थित दीप्त शकुन का फल—

तदनन्तरदिशि नाशः कनकस्य भयं सुवर्णकाराणाम् ।
अर्थक्षयस्तृतीये कलहः शस्त्रप्रकोपश्च ॥३०॥

यदि पूर्व दिशा के द्वितीय भाग में दीप्त शकुन हो तो सोने का नाश और सोनार को भय होता है। पूर्व दिशा के तृतीय भाग में दीप्त शकुन हो तो धन का नाश, कलह और शस्त्र का प्रकोप होता है ॥३०॥

पूर्व दिशा के चतुर्थ भाग में स्थित दीप्त शकुन का फल—

अग्निभयं च चतुर्थे भयमाग्नेये च भवति चौरेभ्यः ।
कोणादपि द्वितीये धनक्षयो नृपसुतविनाशः ॥३१॥

यदि पूर्व दिशा के चतुर्थ भाग (अग्नि कोण) में स्थित दीप्त शकुन हो तो अग्नि और चोरों का भय होता है। अग्नि कोण से द्वितीय भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो धन क्षय और राजपुत्र का नाश होता है ॥ ३१ ॥

आग्नेय कोण से तृतीय और चतुर्थ भाग में स्थित दीप्त शकुन का फल—

प्रमदागर्भविनाशस्तृतीयभागे भवेच्चतुर्थे च ।
हैरण्यककारुकयोः प्रध्वंसः शस्त्रकोपश्च ॥ ३२ ॥

आग्नेय कोण से तृतीय भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो स्त्री के गर्भ का नाश होता है। आग्नेय कोण से चतुर्थ भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो सोनार और चित्रकार का नाश तथा शस्त्र कोप होता है ॥ ३२ ॥

आग्नेय कोण से पञ्चम और षष्ठ भाग में स्थित दीप्त शकुन का फल—

अथ पञ्चमे नृपभयं मारीमृतदर्शनं च वक्तव्यम्।
षष्ठे तु भयं ज्ञेयं गन्धर्वाणां सडोम्बानाम्॥ ३३॥

आग्नेय कोण से पञ्चम भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो राजा का भय तथा मरकी और मृत पुरुषों का दर्शन होता है। आग्नेय कोण से षष्ठ भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो डोम और गन्धर्वों का भय होता है॥ ३३॥

आग्नेय कोण से सप्तम और अष्टम भाग में स्थित दीप्त शकुन का फल—

धीवरशाकुनिकानां सप्तमभागाद्भयं भवति दीप्ते।
भोजनविघात उक्तो निर्ग्रन्थभयं च तत्परतः॥ ३४॥

यदि आग्नेय कोण से सप्तम भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो धीवर और पक्षी मारने वालों का भय होता है। आग्नेय कोण से अष्टम भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो भोजन का नाश और नग्न संन्यासी का भय होता है॥ ३४॥

नैर्ऋत्य कोण तथा पश्चिम दिशा के प्रथम भाग में स्थित दीप्त शकुन का फल—

कलहो नैर्ऋतभागे रक्तस्रावोऽथ शस्त्रकोपश्च।
अपराद्ये चर्मकृतं विनश्यते चर्मकारभयम्॥ ३५॥

नैर्ऋत्य कोण में स्थित दीप्त शकुन हो तो रक्तस्राव और अग्निकोप होता है। पश्चिम दिशा के प्रथम भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो चमड़े के बने हुये जूते, वस्त्र आदि का नाश और चमार से भय होता है॥ ३५॥

पश्चिम दिशा के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम भाग में स्थित दीप्त शकुन का फल—

तदनन्तरे परिव्राट्श्रमणभयं तत्परे त्वनशनभयम्।
वृष्टिभयं वारुण्ये श्वतस्कराणां भयं परतः॥ ३६॥

यदि पश्चिम दिशा के द्वितीय भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो तपस्वी और बौद्ध सन्यासी का भय, तृतीय भाग में स्थित हो तो उपवास का भय, ठीक पश्चिम में स्थित हो तो वृष्टि का भय तथा पञ्चम भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो कुत्ता और चोरों का भय होता है॥ ३६॥

पश्चिम दिशा के षष्ठ आदि चार भागों में स्थित दीप्त शकुन का फल—

वायुग्रस्तविनाशः परे परे शस्त्रपुस्तवार्त्तानाम्।
कोणे पुस्तकनाशः परे विषस्तेनवायुभयम्॥ ३७॥

यदि पश्चिम दिशा के षष्ठ भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो वात रोगियों का नाश, सप्तम भाग में स्थित हो तो शास्त्र और पुस्तकों से जीविका करने वालों का नाश, वायव्य कोण में स्थित हो तो शास्त्र का नाश तथा वायव्य कोण से द्वितीय भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो विष, चोर और वायु का भय होता है॥ ३७॥

वायव्य कोण से तृतीय और चतुर्थ भाग में स्थित दीप्त शकुन का फल—

परतो वित्तविनाशो मित्रैः सह विग्रहश्च विज्ञेयः।
तस्यासन्नेऽश्ववधो भयमपि च पुरोधसः प्रोक्तम्॥ ३८॥

यदि वायव्य कोण से तृतीय भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो धन का नाश और मित्रों के साथ कलह होता है। वायव्य कोण से चतुर्थ भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो घोड़े का मरण और पुरोहित को भय होता है ॥ ३८ ॥

ठीक उत्तर और उससे द्वितीय और तृतीय भाग गत दीप्त शकुन का फल—

गोहरणशस्त्रघातावुदक्परे सार्थघातधननाशौ ।
आसन्ने च भयं व्रात्यद्विजदासगणिकानाम् ॥ ३९ ॥

ठीक उत्तर दिशा में स्थित दीप्त शकुन हो तो गायों की चोरी और शस्त्र का विनाश, उत्तर दिशा से द्वितीय भाग में व्यापारियों का विनाश और धन का नाश, उत्तर दिशा से तृतीय भाग में स्थित दीप्त शकुन हो तो व्रात्य (आठ वर्ष से लेकर सोलह वर्ष के अन्दर उपनयन करने वाला), भृत्य और वेश्याओं को भय होता है ॥ ३९ ॥

ईशान कोण के समीप और ईशान कोण में स्थित शकुन का फल—

ऐशानस्यासन्ने चित्राम्बरचित्रकृद्भयं प्रोक्तम् ।
ऐशाने त्वग्निभयं दूषणमप्युत्तमस्त्रीणाम् ॥ ४० ॥

यदि ईशान कोण के समीप (उत्तर दिशा से चतुर्थ भाग) में स्थित दीप्त शकुन हो तो चित्र वस्त्र और चित्र बनाने वाले का भय होता है। ईशान कोण में स्थित दीप्त शकुन हो तो अग्नि भय और उत्तम स्त्रियों में भी दोष होता है ॥ ४० ॥

ईशान कोण के द्वितीय तथा तृतीय भाग में स्थित शकुन का फल—

प्रोक्तस्यैवासन्ने दुःखोत्पत्तिः स्त्रिया विनाशश्च ।
भयमूर्ध्वं रजकानां विज्ञेयं काञ्छिकानां च ॥ ४१ ॥

ईशान कोण के समीप में स्थित दीप्त शकुन हो तो दुख की उत्पत्ति और स्त्री का ना' होता है। इससे आगे (ईशान कोण से तृतीय भाग में) स्थित दीप्त शकुन हो तो धोबी और गन्धर्वों का भय जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

दिक्चक्र के अन्तिम भाग और पूर्वभाग में स्थित दीप्त शकुन का फल—

हस्त्यारोहभयं स्याद् द्विरदविनाशश्च मण्डलसमाप्तौ ।
अभ्यन्तरे तु दीप्ते पत्नीमरणं ध्रुवं पूर्वे ॥ ४२ ॥

मण्डल की समाप्ति (दिक्चक्र के अन्तिम भाग) में स्थित दीप्त शकुन हो तो हाथी पर चढ़ने वालों से भय और हाथी का मरण होता है। पूर्व दिशा के अभ्यन्तर (मध्य भाग) स्थित अर में स्थित दीप्त शकुन हो तो निश्चय करके स्त्री का मरण होता है ॥ ४२ ॥

आग्नेयादि दिशा में स्थित दीप्त शकुन का फल—

शस्त्रानलप्रकोपावाग्नेये वाजिमरणशिल्पिभयम् ।
याम्ये धर्मविनाशोऽपरेऽन्यवस्कन्दचोक्षवधाः ॥ ४३ ॥
अपरे तु कर्मिणां भयमथ कोणे चानिले खरोष्ट्रवधः ।
अत्रैव मनुष्याणां विषूचिकाविषभयं भवति ॥ ४४ ॥

उदगर्थविप्रपीडा दिश्यैशान्यां तु चित्तसन्तापः ।
ग्रामीणगोपपीडा च तत्र नाभ्यां तथात्मवधः ॥ ४५ ॥

आग्नेय कोण स्थित अर में दीप्त शकुन हो तो शस्त्र और अग्नि का प्रकोप, घोड़े का नाश तथा शिल्पियों से भय होता है। दक्षिण स्थित अर में दीप्त शकुन हो तो धर्म का नाश तथा नैर्ऋत्य कोण स्थित अर में दीप्त शकुन हो तो अग्नि, ऊपर गमन या दुष्ट के द्वारा मरण होता है। पश्चिम भाग स्थित अर में दीप्त शकुन हो तो कारीगरों को भय, वायव्य कोण स्थित अर में दीप्त शकुन हो तो गदहे और ऊँटों का नाश तथा मनुष्यों को विसूचिका रोग और विष का भय होता है। उत्तर स्थित अर में दीप्त शकुन हो तो धन और ब्राह्मणों को पीड़ा, ईशान कोण स्थित अर में दीप्त शकुन हो तो मन में सन्ताप, ग्रामीण और गोप जनों से पीड़ा तथा नाभि में स्थित दीप्त शकुन हो तो अपनी मृत्यु होती है ॥ ४३-४५ ॥

इति विमलाहिन्दीटीकायामन्तरचक्राध्यायः सप्ताशीतितमः ॥ ८७ ॥

अथ विरुताध्यायः

उसमें पहले दिनचर जन्तुओं के नाम—

श्यामाश्येनशशघ्नवञ्जुलशिखिश्रीकर्णचक्राह्वया-
श्वापाण्डीरकखञ्जरीटकशुकध्वाङ्क्षाः कपोतास्त्रयः ।
भारद्वाजकुलालकुक्कुटखरा हारीतगृध्रौ कपिः
फेण्टः कुक्कुटपूर्णकूटचटकाः प्रोक्ता दिवासञ्चराः ॥ १ ॥

पोतकी, बाज, शशघ्न, वञ्जुल, मयूर, श्रीकर्ण, चकवा, चाष, अण्डीरक, खंजन, तोता, कौआ, तीन प्रकार के कबूतर, भारद्वाज, गर्त्ताकुक्कुट ये सब पक्षी, गदहा, हारियल, गिद्ध ये दोनों पक्षी, वानर, फेण्ट पक्षी, मुर्गा, करायिक, चटका ये पक्षी और सब जन्तु दिनचर हैं ॥

रात्रिचर जन्तुओं के नाम—

लोमाशिका पिङ्गलछिप्पिकाख्यौ वल्गुल्युलूकौ शशकश्च रात्रौ ।
सर्वे स्वकालोत्क्रमचारिणः स्युर्देशस्य नाशाय नृपान्तदा वा ॥ २ ॥

लोमड़ी, उल्लूकचेटी, छिप्पिका पक्षी, बागल, उल्लू, खरहा ये सब जन्तु रात्रिचर हैं। ये सब जन्तु अपने काल को लाँघ कर घूमें (रात्रिचर दिन में और दिनचर रात में घूमें) तो देश का नाश और राजा की मृत्यु करने वाले होते हैं ॥ २ ॥

उभयचारी जन्तुओं के नाम—

हयनरभुजगोष्ट्रद्वीपिसिंहर्क्षगोधा वृकनकुलकुरङ्गश्वाजगोव्याघ्रहंसाः ।
पृषतमृगशृगालश्वाविदाख्यान्यपुष्टा द्युनिशमपि बिडालः सारसः सूकरश्च ॥

घोड़ा, मनुष्य, साँप, ऊँट, चीता, सिंह, रीछ, गोह, भेड़िया, नेवला, हरिण, कुत्ता,

बकरा, गौ, बाघ, हंस, पृषत (मृगजाति), मृग, सियार, बिल में रहने वाले प्राणी, कोयल, बिल्ली, सारस पक्षी, सूअर ये सब दिन, रात्रि दोनों में चरने वाले हैं ॥ ३ ॥

व्यवहार के लिये उक्त जीवों की सञ्ज्ञा—

भषकूटपूरिकुरवककरायिकाः पूर्णकूटसञ्ज्ञाः स्युः ।
नामान्युलूकचेट्याः पिङ्गलिका पेचिका हक्का ॥ ४ ॥
कपोतकी च श्यामा वञ्जुलकः कीर्त्यते खदिरचञ्चुः ।
छुच्छुन्दरी नृपसुता वालेयो गर्दभः प्रोक्तः ॥ ५ ॥
स्रोतस्तडागभेद्यैकपुत्रकः कलहकारिका च रला ।
भृङ्गारवच्च विरुवति निशि भूमौ द्व्यङ्गुलशरीरा ॥ ६ ॥
दुर्बलिको भाण्डीकः प्राच्यानां दक्षिणः प्रशस्तोऽसौ ।
घिकारो मृगजातिः कृकवाकुः कुक्कुटः प्रोक्तः ॥ ७ ॥
गर्ताकुक्कुटकस्य प्रथितं तु कुलालकुक्कुटो नाम ।
गृहगोधिकेति सञ्ज्ञा विज्ञेया कुड्यमत्स्यस्य ॥ ८ ॥
दिव्यो धन्वन उक्तः क्रोडः स्यात् सूकरोऽथ गौरुस्रा ।
श्वा सारमेय उक्तो जात्या चटिका च सूकरिका ॥ ९ ॥

भष, कूटपूरी, कुरवक, करायिका ये पूर्णकूट की, पिङ्गलिका, पेचिका, हक्का ये उलूक चेटी की, कपोतकी, श्यामा ये पोतकी की, वञ्जुल यह खदिरचञ्चु की, नृपसुता, छुच्छुन्दरी ये छुच्छुन्दर की, वलिय, गर्दभ ये गदहे की और स्रोतोभेद्य, तडागभेद्य, कलहकारिका ये रला की सञ्ज्ञाएँ हैं। यह रला दो अङ्गुल की होती है और रात्रि में भृङ्गार की तरह शब्द करती है। दुर्बलिक, भाण्डीक को कहते हैं, यह भाण्डीक पूर्व देश निवासियों के दक्षिण भाग में और अन्य देश निवासियों के वाम भाग में आने से शुभ होता है। घिकार मृगजाति को तथा कुक्कुट और कृकवाकु मुर्गे को कहते हैं। गर्ताकुक्कुट, कुलालकुक्कुट ये गर्त में रहने वाले मुर्गे की और कुड्यमत्स्य, गृहगोधिका ये भित्ति में स्थित मीन की सञ्ज्ञा है। धन्वन, क्रोड, सूकर ये सूअर की, उस्रा गौ की, श्वा, कुक्कुर, सारमेय ये कुत्ते की और सूकरिका चटका जाति की संज्ञा है ॥ ४-९ ॥

यहाँ पर ग्रन्थकार का उपदेश—

एवं देशे देशे तद्विद्भ्यः समुपलभ्य नामानि ।
शकुनरुतज्ञानार्थं शास्त्रे सञ्चिन्त्य योज्यानि ॥ १० ॥

इस प्रकार प्रत्येक देश में शकुन के नामों को जानने वाले पण्डित शकुन के नामों को जानकर शकुन के शब्दों को जानने के लिये अच्छी तरह विचार कर शास्त्र में मिलावें ॥ १० ॥

वञ्जुल, बाज, तोता और गिद्ध इनके स्वर का लक्षण—

वञ्जुलकरुतं तित्तिडिति दीप्तमथ किल्किलीति तत्पूर्णम् ।
श्येनशुकगृध्रकङ्काः प्रकृतेरन्यस्वरा दीप्ताः ॥ ११ ॥

वञ्जुल का दीप्त शब्द तित्तिड़ और पूर्ण शब्द किलिकली है। बाज, तोता, गिद्ध, कङ्क इनके स्वभाव से विपरीत होने पर दीप्त शब्द होता है ॥ ११ ॥

कबूतर की चेष्टा और फल—

यानासनशय्यानिलयनं कपोतस्य सद्मविशनं वा ।
अशुभप्रदं नराणां जातिविभेदेन कालोऽन्यः ॥ १२ ॥
आपाण्डुरस्य वर्षाच्चित्रकपोतस्य चैव षण्मासात् ।
कुङ्कुमधूम्रस्य फलं सद्यः पाकं कपोतस्य ॥ १३ ॥

कबूतर का वाहन, आसन और शय्या पर बैठना तथा घर में प्रवेश करना मनुष्यों के लिये अशुभकारी है। जाति के भेद से फल के समय भिन्न होते हैं, जैसे—सफेद वर्ण के कबूतर का फल एक वर्ष में, चित्र वर्ण के कबूतर का फल छै मास में तथा कुङ्कुम और धूम्र वर्ण के समान कबूतर का फल उसी समय में होता है ॥ १२-१३ ॥

श्यामापक्षी का शब्द—

चिचिदिति शब्दः पूर्णः श्यामायाः शूलिशूलिति च धन्यः ।
चचेति च दीप्तः स्यात् स्वप्रियलाभाय चिकुचिगिति ॥ १४ ॥

श्यामा पक्षी का चिचिद् शब्द पूर्ण, शूलिशूल शब्द शुभ, चच शब्द दीप्त और चिकुचिक् शब्द मित्रलाभ के लिये होता है ॥ १४ ॥

हारीत तथा भारद्वाज पक्षी का शब्द—

हारीतस्य तु शब्दो गुगुः पूर्णोऽपरे प्रदीप्ताः स्युः ।
स्वरवैचित्र्यं सर्वं भारद्वाज्याः शुभं प्रोक्तम् ॥ १५ ॥

हारीत (हरियल) पक्षी का गुगु शब्द पूर्ण और सब शब्द दीप्त होते हैं। तथा भारद्वाज पक्षी के सब प्रकार के शब्द शुभकारी होते हैं ॥ १५ ॥

करायिका पक्षी का शब्द—

किष्किपिशब्दः पूर्णः करायिकायाः शुभः कहकहेति ।
क्षेमाय केवलं करकरेति न स्वर्थसिद्धिकरः ॥ १६ ॥
कोट्ट्क्लीति क्षेम्यः स्वरः कटुक्लीति वृष्टये तस्याः ।
अफलः कोटिकिलीति च दीप्तः खलु गुंकृतः शब्दः ॥ १७ ॥

करायिका पक्षी का किपकिपि शब्द पूर्ण, कहकह शब्द शुभ और करकर शब्द केवल कल्याण करने वाला किन्तु अर्थ सिद्धि करने वाला नहीं होता है। उस करायिका का कोटुक्लि शब्द क्षेम करने वाला, कटुक्लि शब्द वृष्टि करने वाला, कोटिकिलि शब्द निष्फल और गुं शब्द दीप्त है ॥ १६-१७ ॥

दिव्यक पक्षी की चेष्टा—

शस्तं वामे दर्शनं दिव्यकस्य सिद्धिर्ज्ञेया हस्तमात्रोच्छ्रितस्य ।
तस्मिन्नेव प्रोन्नतस्थे शरीराद्धात्री वश्यं सागरान्ताभ्युपैति ॥ १८ ॥

यदि गमन करने वाले के वाम भाग में धन्वन पक्षी हो तो शुभ, उसी वाम भाग में पृथ्वी से एक हाथ ऊँचे प्रदेश पर हो तो इष्ट कार्यों की सिद्धि करने वाला, काफी उच्च प्रदेश पर हो तो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी वश में करने वाला होता है। कहा भी है—

वामे हस्तो धन्वनः सिद्धिदाता प्रोत्तुङ्गश्चेद्धस्तमात्रे जयाय।
आकाशं चेदुद्गतो वाममागे पृथ्वीलाभं बन्धुनाशं करोति ॥ १८ ॥

सर्प की चेष्टा—

फणिनोऽभिमुखागमोऽरिसङ्गं कथयति बन्धुवधात्ययं च यातुः।
अथवा समुपैति सव्यभागान्न स सिद्ध्यै कुशलो गमागमे च ॥ १९ ॥

यदि गमन करने वाले के सम्मुख सर्प आ जाय तो शत्रु समागम तथा बन्धुओं के वध और विनाश को सूचित करता है। यदि गमन समय में दक्षिण भाग से वाम भाग में सर्प आ जाय तो कार्य सिद्धि के लिये नहीं होता है ॥ १९ ॥

खञ्जन पक्षी की चेष्टा—

अब्जेषु मूर्धसु च वाजिगजोरगाणां राज्यप्रदः कुशलकृच्छुचिशाद्वलेषु।
भस्मास्थिकाष्ठतुषकेशतृणेषु दुःखं दृष्टः करोति खलु खञ्जनकोऽब्दमेकम् ॥

यदि खञ्जन पक्षी कमल या घोड़ा, हाथी और सर्प के मस्तक पर दिखाई दे तो राज्य को देने वाला होता है। पवित्र स्थान या हरी घास पर दिखाई दे तो कुशल करने वाला होता है तथा भस्म, हड्डी, काठ, तुष, बाल या तृण पर दिखाई दे तो एक वर्ष तक दुख करता है ॥ २० ॥

तित्तिर तथा खरगोश की चेष्टा—

किलिकिल्किलि तित्तिरिस्वनः शान्तः शस्तफलोऽन्यथापरः।
शशको निशि वामपार्श्वगो वाशञ्छस्तफलो निगद्यते ॥ २१ ॥

तित्तिर पक्षी का किलिकिल्किलि शब्द शान्त तथा शुभ करने वाला और उससे भिन्न शब्द अशुभ करने वाला होता है। यदि खरहा रात्रि में वाम भाग में होकर शब्द करे तो शुभ फल होता है ॥ २१ ॥

वानर और कुलालकुक्कुट का शब्द—

किलिकिलिविरुतं कपेः प्रदीप्तं न शुभफलप्रदमुद्दिशन्ति यातुः।
शुभमपि कथयन्ति चुग्लुशब्दं कपिसदृशं च कुलालकुक्कुटस्य ॥ २२ ॥

वानर का किलिकिलि शब्द प्रदीप्त और गमन करने वाले के लिये शुभ प्रद नहीं है, परन्तु चुग्लु शब्द शुभ प्रद है। तथा कुलालकुक्कुट का शब्द वानर के समान शुभाशुभ फल देने वाला है ॥ २२ ॥

चाष के शब्द और चेष्टा—

पूर्णाननः कृमिपतङ्गपिपीलिकाद्यैश्चाषः प्रदक्षिणमुपैति नरस्य यस्य।
खे स्वस्तिकं यदि करोत्यथ वा यियासोस्तस्यार्थलाभमचिरात्सुमहत्करोति

कीड़े, पतङ्गे, चींटी आदि से भरा हुआ मुख वाला चाष पक्षी जिस मनुष्य के प्रदक्षिण क्रम से चला जाय या जिस गमन करने वाले के आकाश में स्वस्तिक की तरह चला जाय उसको शीघ्र अधिक धन का लाभ करता है ॥ २३ ॥

काक के साथ चाप की लड़ाई का फल—

चापस्य काकेन विरुध्यतश्चेत्पराजयो दक्षिणभागगस्य।
वधः प्रयातस्य तदा नरस्य विपर्यये तस्य जयः प्रदिष्टः ॥२४॥

काक के साथ लड़ाई करते हुये चाप की काक से दक्षिण भाग में पराजय हो जाय तो गमन करने वाले मनुष्य का वध होता है। इससे विपरीत (काक से उत्तर भाग में चाप की जय) हो तो गमन करने वाले की जय होती है। कहा भी है—

पूर्णाननो यस्य करोति चाषः प्रदक्षिणं स्वस्तिकमेव वामे।
लाभो महांस्तस्य पराभवाय काकेन भग्नो विजयो जयस्य ॥ २४ ॥

चाप का और शब्द—

केकेति पूर्णकुटवद्यदि वामपार्श्वे चापः करोति विरुतं जयकृत्तदा स्यात्।
क्रेक्रेति तस्य विरुतं न शिवाय दीप्तं सन्दर्शनं शुभदमस्य सदैव यातुः ॥

यदि चाप वाम पार्श्व में आकर करायिका की तरह "के का" यह शब्द करे तो जयकारी होता है। उस का "क्र क्र" यह दीप्त शब्द कुशलकारी नहीं है, किन्तु इसका दर्शन गमन करने वाले के लिये सदा शुभ प्रद है ॥ २५ ॥

अण्डीरक और फेण्ट पक्षी की चेष्टा—

अण्डीरकष्टीति रुतेन पूर्णष्टिट्टिट्टिशब्देन तु दीप्त उक्तः।
फेण्टः शुभो दक्षिणभागसंस्थो न वाशिते तस्य कृतो विशेषः ॥२६॥

अण्डीरक टी, इस शब्द पूर्ण और टिट्टिट्टि इस शब्द से दीप्त होता है। यदि फेण्ट पक्षी गमन करने वाले के दक्षिण भाग में स्थित हो तो शुभ होता है, इसके शब्द में और कोई विशेषता नहीं कही है ॥२६॥

श्रीकर्ण का शब्द—

श्रीकर्णरुतं तु दक्षिणे कक्केति शुभं प्रकीर्तितम्।
मध्यं खलु चिक्चिक्कीति यच्छेपं सर्वमुशन्ति निष्फलम् ॥२७॥

यदि श्रीकर्ण पक्षी दक्षिण भाग में स्थित होकर कक्क यह शब्द करे तो शुभ है। उसी का चिक्चिक् यह शब्द मध्यम और शेष सब प्रकार के शब्द निष्फल हैं ॥२७॥

दुर्बलि पक्षी का शब्द—

दुर्बलेरपि चिरिल्विरिल्विति प्रोक्तमिष्टफलदं हि वामतः।
वामतश्च यदि दक्षिणं व्रजेत् कार्यसिद्धिमचिरेण यच्छति ॥२८॥

गमन करने वाले के वाम भाग में स्थित भाण्डरीक पक्षी का चिरिल्विरिल्वु यह शब्द हो तो शुभ है। यदि यह वामभाग से दक्षिण में आ जाय तो शीघ्र कार्य की सिद्धि करता है ॥२८॥

भाण्डरीक का विशेष शब्द—

चिक्चिकिवाशितमेव तु कृत्वा दक्षिणभागमुपैति च वामात्।
क्षेमकृदेव न साधयतेऽर्थान् व्यत्ययगो वधबन्धभयाय ॥२९॥

यदि वही भाण्डरीक पक्षी चिक्चिकि यह शब्द करके गमन करने वाले के वाम भाग से दक्षिण भाग में आ जाय तो क्षेम करने वाला होता है, किन्तु अभीष्ट अर्थ की सिद्धि नहीं करता है। इससे उलटा (दक्षिण भाग से वाम भाग में आ जाय) तो वध, बन्धन और भय को करता है ॥२९॥

मैना का शब्द—

क्रक्रेति च सारिका द्रुतं त्रेत्रे वाप्यभया विरौति या।
सा वक्ति यियासतोऽचिराद्गात्रेभ्यः क्षतजस्य विस्रुतिम् ॥३०॥

जो मैना क्रक्र शब्द करे या भय रहित होकर त्रेत्रे शब्द करे वह गमन करने वाले के शरीर से शीघ्र रुधिर निकलने को सूचित करती है ॥३०॥

फेन्ट का शब्द—

फेण्टकस्य वामतश्चिरिल्विरिल्विति स्वनः।
शोभनो निगद्यते प्रदीप्त उच्यतेऽपरः ॥३१॥

यदि गमन करने वाले के वाम भाग में फेण्ट चिरिल्विरिल्वि यह शब्द करे तो शुभफल देने वाला होता है। इसके अतिरिक्त उसके शब्द दीप्त हैं ॥३१॥

गदहे का शब्द—

श्रेष्ठं स्वरं स्यास्नुमुशन्ति वाममोङ्कारशब्देन हितं च यातुः।
अतोऽपरं गर्दभनादितं यत् सर्वाश्रयं तत् प्रवदन्ति दीप्तम् ॥ ३२॥

गमन करने वाले के वाम भाग में स्थित गदहा श्रेष्ठ है, यदि वह ओंकार शब्द करे तो गमन करने वाले का हित होता है, इसके अतिरिक्त गदहे के सब प्रकार के शब्द दीप्त कहे जाते हैं ॥ ३२ ॥

कुरङ्ग, मृग और पृषत का शब्द—

आकाररावी समृगः कुरङ्ग औकाररावी पृषतश्च पूर्णः।
येऽन्ये स्वरास्ते कथिताः प्रदीप्ताः पूर्णाः शुभाः पापफलाः प्रदीप्ताः ॥

आकार शब्द करने वाला कुरङ्ग और मृग तथा औकार शब्द करने वाला पृषत पूर्ण होता है। शेष सब शब्द दीप्त हैं। सब जन्तुओं के पूर्ण स्वर शुभ और दीप्त स्वर अशुभ होते हैं ॥ ३३ ॥

मुर्गों का शब्द—

भीता रुवन्ति कुकुकुक्विति ताम्रचूडा-
स्त्यक्त्वा रुतानि भयदान्यपराणि रात्रौ।
स्वस्थैः स्वभावविरुतानि निशावसाने
ताराणि राष्ट्रपुरपार्थिववृद्धिदानि ॥ ३४ ॥

रात्रि में भयभीत हुए मुर्गों के कुकुकुकु इन शब्दों को छोड़कर शेष सब प्रकार के शब्द भय देने वाले होते हैं। तथा रात्रि के अन्त में स्वस्थ होकर तार स्वर से शब्द करे तो राज्य, पुर और राजा को वृद्धि करने वाले होते हैं ॥ ३४ ॥

छिप्पिका और मार्जार का शब्द—

नानाविधानि विरुतानि हि छिप्पिकाया-

स्तस्याः शुभाः कुलुकुलुर्न शुभास्तु शेषाः।

यातुर्बिडालविरुतं न शुभं सदैव

गोस्तु क्षुतं मरणमेव करोति यातुः॥ ३५॥

छिप्पिका के अनेक प्रकार के शब्द होते हैं, उनमें कुलुकुलु यह शब्द शुभ नहीं है, शेष सब शब्द शुभ हैं। मार्जार का शब्द गमन करने वाले के लिए अशुभ है तथा गो जाति की छींक यात्रा करने वाले की मृत्यु को सूचित करती है। कहा भी है—

सर्वत्र पापं क्षुतमुद्दिशन्ति गोस्तु क्षुतं मृत्युकरं यियासोः।

मार्जाररावस्खलनं च यातुर्वैरस्य सङ्गस्य न शोभनानि॥ ३५॥

उल्लूक का शब्द—

हुंहुं गुग्लुगिति प्रियामभिलपन् क्रोशत्युलूको मुदा

पूर्णं स्याद्गुलु प्रदीप्तमपि च ज्ञेयं सदा किस्किसि।

विज्ञेयः कलहो यदा बलबलं तस्याः सकृद्वाशितं

दोषायैव टटट्टेति न शुभाः शेषाश्च दीप्ताः स्वराः॥ ३६॥

अपनी प्रिया की अभिलाषा करता हुआ उल्लू आनन्द से हुँहुँगुगुलुक यह शब्द करता है। इसका गुल्लु यह शब्द पूर्ण है। किस्किसि यह शब्द सदा प्रदीप्त है। जब उल्लू का बार बार बलबल यह शब्द हो तो कलह, टटट्ट यह शब्द दोष करने वाला और शेष सब शब्द दीप्त होते हैं॥ ३६॥

सारस का शब्द—

सारसकूजितमिष्टफलं तद्युगपद्विरुतं मिथुनस्य।

एकरुतं न शुभं यदि वा स्यादेकरुते प्रतिरौति चिरेण॥३७॥

यदि सारस के जोड़े का एक साथ शब्द हो तो इष्ट फल देने वाला होता है, एक का शब्द शुभ नहीं होता है। यदि एक के शब्द करने के बाद दूसरा देर तक शब्द करता रहे तो भी शुभ देने वाला नहीं होता॥ ३७॥

पिङ्गला का शब्द—

चिरिल्विरिल्विति स्वनैः शुभं करोति पिङ्गला।

अतोऽपरे तु ये स्वराः प्रदीप्तसञ्ज्ञितास्तु ते॥ ३८॥

पिङ्गला चिरिल्विरिलु इन शब्दों से शुभ करती है। इनसे अन्य सब शब्द प्रदीप्त संज्ञक और अशुभ फल देने वाले होते हैं॥ ३८॥

पिङ्गला का और शब्द—

इशिविरुतं गमनप्रतिषेधि कुशुकुशु चेत् कलहं प्रकरोति।

अभिमतकार्यगतिं च यथा सा कथयति तं च विधिं कथयामि॥३९॥

४५, ४६ वृ० सं०

पिङ्गला का इरित शब्द गमन को रोकने वाले और कुचकुच शब्द क्लेश करने वाले होते हैं। यह पिंगला अभीष्ट कार्य की सिद्धि को जिस प्रकार सूचित करती है उस विधि को कहता हूँ ॥ ३९ ॥

कार्यसिद्धि की विधि—

दिनान्तसन्ध्यासमये निवासमागम्य तस्याः प्रयतश्च वृक्षम्।
देवान् समभ्यर्च्य पितामहादीन् नवाम्बरस्तं च तरुं सुगन्धैः ॥४०॥
एको निशीथेऽनलदिक्स्थितश्च दिव्यैस्तरस्तां शपथैर्नियोज्य।
पृच्छेद्यथाचिन्तितमर्थमेवमनेन मन्त्रेण यथा शृणोति ॥४१॥

दिनान्त कालिक सन्ध्या समय में पवित्र होकर नवीन वस्त्र धारण करके उस पिंगला के निवास वृक्ष के समीप जाकर सुगन्ध द्रव्यों (चन्दन, कुङ्कुम, कस्तूरी, अगुरु आदि द्रव्यों) से उस वृक्ष का तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं का पूजन करके अर्ध रात्रि के समय एकाकी अग्निकोण में स्थित होकर दिव्य और लौकिक शपथों से सम्बोधन करते हुए जिस प्रकार से वह सुने उस प्रकार से वक्ष्यमाण मन्त्रों के द्वारा पूर्व चिन्तित अर्थ की सिद्धि को पूछे ॥ ४०-४१ ॥

यहाँ पर मन्त्र—

विद्धि भद्रे मया यत्त्वमिममर्थं प्रचोदिता।
कल्याणि सर्ववचसां वेदित्री त्वं प्रकीर्त्यसे ॥ ४२ ॥
आपृच्छेऽद्य गमिष्यामि वेदितश्च पुनस्त्वहम्।
प्रातरागम्य पृच्छे त्वामाग्नेयीं दिशमाश्रितः ॥ ४३ ॥
प्रचोदयाम्यहं यत् त्वां तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।
स्वचेष्टितेन कल्याणि यथा वेद्मि निराकुलम् ॥ ४४ ॥

हे भद्रे! मैं जो इस अर्थ को पूछने के लिए आरम्भ कर रहा हूँ, उसको तुम जानती हो। हे कल्याणि! तुम सब वाक्यों को जानने वाली कही जाती हो। आज पूछ कर मैं जाऊँगा, फिर प्रातःकाल में आदने वाला मैं आकर अग्नि कोन में स्थित होकर पूछूँगा। उस समय जो मैं पूछता हूँ उसको हे कल्याणि! अपनी चेष्टा के द्वारा जिस प्रकार निस्संशय होकर मैं जान सकूं उस प्रकार कहने के लिए समर्थ हो ॥ ४२-४४ ॥

पिङ्गला की चेष्टा—

इत्येवमुक्ते तरुमूर्धगाया चिरिल्विरिल्वीति रुतेऽर्थसिद्धिः।
अत्याकुलत्वं दिशिकारशब्दे कुचाकुचेत्येवमुदाहृते वा ॥४५॥
अवाश्यदानेऽपि दिवायसिद्धिः पूर्वोक्तदिक्चक्रफलैरतोऽन्यत्।
वाच्यं फलं चोत्तममध्यनीचशाखास्थितायां वरमध्यनीचम् ॥४६॥

इस प्रकार कहने के बाद वृक्ष के ऊपर बैठी हुई पिङ्गला चिरिल्वि-इरिल्वि शब्द करे तो कार्य की सिद्धि, दिशिकार और कुचाकुच शब्द उच्चारण करे तो अति आकुलता तथा मौन बैठी रहे तो अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है। इसके अतिरिक्त पूर्व कथित दिक्चक्र

फल के द्वारा इसका फल कहना चाहिए। यदि पिङ्गला प्रधान शाखा पर बैठी हो तो उत्तम, मध्य शाखा पर बैठी हो तो मध्यम और नीचे वाली शाखा पर बैठी हो तो अवर फल देने वाली होती है॥ ४५-४६॥

छिपकली का फल—

दिङ्मण्डलेऽभ्यन्तरबाह्यभागे फलानि विन्द्याद्गृहगोधिकायाः।
छुच्छुन्दरी चिचिडिति प्रदीप्ता पूर्णा तु सा तितिडिति स्वनेन॥४७॥

बत्तीस से विभक्त दिक्चक्र के नाभि स्थान और नाभि से बाहर भाग में स्थित छिपकली (गिरगिट) का फल होता है। छुछुन्दर को चिचिड़ शब्द से प्रदीप्त और तितिड शब्द से पूर्ण जानना चाहिये॥ ४७॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां विरुताध्यायोऽष्टाशीतितम॥ ८८॥

अथ श्वचक्राध्यायः

उसमें पहले कुत्ते की चेष्टा—

नृतुरगकरिकुम्भपर्याणसक्षीरवृक्षेष्टकासञ्चयच्छत्रशय्यासनोलूखलानि ध्वजं चामरं शाद्वलं पुष्पितं वा प्रदेशं यदा श्वावमूत्र्याग्रतो याति यातुस्तदा कार्यसिद्धिर्भवेदार्द्रके गोमये मिष्टभोज्यागमः शुष्कसम्मूत्रणे शुष्कमन्नं गुडो मोदकावाप्तिरेवाथवा।

जिस समय मनुष्य, घोड़ा, हाथी, घड़ा, पर्याण, क्षीर वृक्ष (आक आदि), ईंट का ढेर, छत्र, शय्या, आसन, ऊखल, ध्वज, चामर, दूब और फूल वाले स्थान पर मूत कर कुत्ता गमन करने वालों के आगे होकर जाय उस समय कार्य की सिद्धि, गीले गोबर पर मूत कर आगे होकर जाय तो मिष्टान्न भोजन की प्राप्ति तथा सूखी वस्तु पर मूत कर गमन करने वाले के आगे होकर जाय तो सूखे अन्न, गुड़ और मोदकों की प्राप्ति होती है।

कहा भी है—

नरतुरगगजातपत्रकुम्भध्वजशयनासनपुष्पचामराणि।
व्रजति यदि पुरोऽवमूत्र्य पश्चाच्छ्वयति शुभफलं तदा नरेन्द्रः॥

अथ विपत्तरुकण्टकीकाष्ठपाषाणशुष्कद्रुमास्थिश्मशानानि मूत्र्यावहत्याथवा यायिनोऽग्रेसरोऽनिष्टमाख्याति शय्याकुलालादिभाण्डान्यभुक्तान्यभिन्नानि वा मूत्रयन्कन्यकादोषकृद्भुज्यमानानि चेद्दुष्टतां तद्गृहिण्यास्तथा स्यादुपानत्फलं गोस्तु सम्मूत्रणेऽवर्णजः सङ्करः।

यदि कुत्ता विप वृक्ष, कांटेदार वृक्ष, काठ, पत्थर, सूखे वृक्ष या श्मशान गत हड्डी पर मूत कर उसको पांव से ताड़न करके गमन करने वाले के आगे होकर जाय तो अशुभ फल सूचित करता है। शय्या या बिना फूटे नवीन कुम्हार के भाण्ड पर मूतने

से कन्या में दोष और बरतने वाले भाण्ड पर मूतने से गमन करने वाले का गृहिणी में दोष उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जूते पर मूतने का फल होता है। जैसे नवीन जूते पर मूतने से कन्या में दोष और बर्ते हुये जूते पर मूतने से गृहिणी में दोष उत्पन्न करता है। यदि गो जाति के ऊपर मूत कर कुत्ता गमन करने वाले के आगे आ जाय तो उसके घर में निकृष्ट वर्ण से सङ्कर की उत्पत्ति होती है। कहा भी है—

विपकण्टकशुष्कवृक्षलोष्टानवमूत्र्यास्थिचितेन याति चेच्छ्वा।
न शुभोऽभिमुख आपद्विधुन्वन् पुच्छाङ्गं विलिखङ्गवे वसाश्च॥

गमनमुखमुपानहं सम्प्रगृह्योपतिष्ठेद्यदा स्यात्तदासिद्धये मांसपूर्णाननेऽर्थाप्तिरार्द्रेण चास्थ्ना शुभं साग्न्यलातेन शुष्केण चास्थ्ना गृहीतेन मृत्युः प्रशान्तोल्मुकेनाभिघातोऽथ पुंसः शिरोहस्तपादादिवक्त्रे भुवोऽभ्यागमो वस्त्रचीरादिभिर्व्यापदः केचिदाहुः सवस्त्रे शुभम्।

प्रविशति तु गृहं सशुष्कास्थिवक्त्रे प्रधानस्य तस्मिन् वधः शृङ्खलाशीर्णवल्लीवरत्रादि वा बन्धनं चोपगृह्योपतिष्ठेद्यदा स्यात् तदा बन्धनं लेढि पादौ विधुन्वन् स्वकर्णावुपर्याक्रमंश्चापि विघ्नाय यातुर्विरोधे विरोधस्तथा स्वाङ्गकण्डूयने स्यात् स्वपंश्चोर्ध्वपादः सदा दोषकृत् ॥१॥

यदि कुत्ता मुंह से जूते को ग्रहण करके गमन करने वाले के समीप में आ जाय तो कार्य की सिद्धि, मांस लेकर आ जाय तो धन की प्राप्ति, आर्द्र हड्डी लेकर आ जाय तो शुभ प्राप्ति, जला हुआ काष्ठ या सूखा मांस लेकर आ जाय तो गमन करने वाले की मृत्यु और अग्नि रहित उल्मुक (जला हुआ काष्ठ) लेकर आ जाय तो उपद्रव होता है। यदि मनुष्य के सिर, हाथ, पाँव आदि कोई अवयव मुँह में लेकर आ जाय तो भूमि की प्राप्ति तथा वस्त्र, वल्कल आदि लेकर आ जाय तो मृत्यु होती है। कोई कोई वस्त्र सहित कुत्ते को आगे आने में शुभ फल कहते हैं। यदि सूखी हुई हड्डी लेकर कुत्ता घर में प्रवेश करे तो गृह पति की मृत्यु होती है। यदि जजीर, पुरानी लता, चमड़े की रस्सी आदि लेकर आगे आ जाय तो गमन करने वाले को बन्धन होता है। यदि गमन करने वाले के पाँव चाटे या अपने कान को फटफटाते हुये गमन करने वाले के ऊपर चढ़ने की इच्छा करे तो यात्रा में विघ्न होता है। यदि गमन करने वाले के मार्ग का विरोध करे या अपने अङ्ग को खुजलावे तो मार्ग में विरोध होता है। यदि गमन करने वाले या एक जगह पर स्थित मनुष्य के आगे में ऊपर पाँव करके सो जाय तो सदा दोष कारी होता है।

यहाँ पर पराशर—

गमने यातुर्वस्त्रगृहीतवक्त्रे सारमेये महानर्थलाभः ॥ १ ॥

यहाँ पर गर्ग—

अग्निप्रसरय यदा श्वा वै मार्गं बद्ध्वा तु तिष्ठति। अवरुद्धं तदाध्वानं चौरैरिति विनिर्दिशेत ॥

कुत्तों के क्रन्दन आदि का फल—

सूर्योदयेऽर्काभिमुखो विरौति ग्रामस्य मध्ये यदि सारमेयः।
एको यदा वा बहवः समेताः शंसन्ति देशाधिपमन्यमाशु ॥ २ ॥

यदि सूर्योदय के समय एक या बहुत से कुत्ते इकट्ठे होकर सूर्य की तरफ मुख करके रोवें तो शीघ्र देश में अन्य स्वामी होने को सूचित करता है ॥ २ ॥

सूर्योन्मुखः श्वानलदिक्स्थितश्च चौरानलत्रासकरोऽचिरेण ।
मध्याह्नकालेऽनलमृत्युशंसी संशोणितः स्यात् कलहोऽपराह्ने ॥३॥

यदि अग्नि कोण में स्थित कुत्ता सूर्य की तरफ मुख करके रोवे तो शीघ्र चोर और अग्नि का भय, मध्याह्न काल में सूर्य की तरफ मुख करके रोवे तो अग्नि भय और मृत्यु तथा अपराह्न में सूर्याभिमुख होकर रोवे तो रुधिरस्राव के साथ लड़ाई को सूचित करता है ॥ ३ ॥

रुवन् दिनेशाभिमुखोऽस्तकाले कृषीवलानां भयमाशु दत्ते ।
प्रदोषकालेऽनिलदिङ्मुखश्च दत्ते भयं मारुततस्करोत्थम् ॥ ४ ॥

सूर्यास्त काल में सूर्य की तरफ मुख करके कुत्ता रोवे तो किसानों को शीघ्र भय तथा प्रदोष काल में वायव्य कोण में स्थित होकर रोवे तो वायु और चोरों से भय देता है ॥४॥

उदङ्मुखश्चापि निशार्धकाले विप्रव्यथां गोहरणं च शास्ति ।
निशावसाने शिवदिङ्मुखश्च कन्याभिदूषानलगर्भपातान् ॥५॥

यदि आधी रात में उत्तर की तरफ मुँह करके कुत्ता रोवे तो ब्राह्मणों को पीड़ा और गायों की चोरी होने को सूचित करता है। यदि रात्रि के अन्त में ईशान कोण की तरफ मुख करके कुत्ता रोवे तो कुमारी को दूषित, अग्नि का भय और स्त्रियों के गर्भपात करता है।

उच्चैःस्वराः स्युस्तृणकूटसंस्थाः प्रासादवेश्मोत्तमसंस्थिता वा ।
वर्षासु वृष्टिं कथयन्ति तीव्रामन्यत्र मृत्युं दहनं रुजश्च ॥ ६ ॥

यदि वर्षा काल में तृण से बने हुये गृह, प्रासाद या उत्तम गृह में स्थित होकर कुत्ता ऊँचे स्वर से शब्द करे तो अत्यधिक वृष्टि को सूचित करता है। तथा अन्य ऋतु में पूर्वोक्त स्थान में स्थित होकर शब्द करे तो मृत्यु, अग्निभय, और रोगभय को सूचित करता है ॥

प्रावृट्कालेऽवग्रहेऽम्भोऽवगाह्य प्रत्यावर्त्तै रेचकैश्चाप्यभीक्ष्णम् ।
आधुन्वन्तो वा पिबन्तश्च तोयं वृष्टिं कुर्वन्त्यन्तरे द्वादशाहात् ॥ ७ ॥

यदि वर्षा काल में अनावृष्टि होने पर कुत्ता जल में स्नान करके बार बार पार्श्व परिवर्तन और रेचन करता हुआ स्थित हो या ताड़ते हुये जल को पीवे तो बारह रोज पीछे वृष्टि होती है ॥ ७ ॥

द्वारे शिरो न्यस्य बहिः शरीरं रोरूयते श्वा गृहिणीं विलोक्य ।
रोगप्रदः स्यादथ मन्दिरान्तर्बहिर्मुखो वक्ति च बन्धकीं ताम् ॥ ८ ॥

यदि कुत्ता द्वार पर शिर और बाहर शरीर को रख कर गृहस्वामी की गृहिणी को देख कर बार बार रोवे तो उस गृहिणी को वेश्या कहता है ॥ ८ ॥

कुड्यमुत्किरति वेश्मनो यदा तत्र खानकभयं भवेत्तदा ।
गोष्ठमुत्किरति गोग्रहं वदेद्धान्यलब्धिमपि धान्यभूमिषु ॥ ९ ॥

जब घर की दीवार की लिपाई को कुत्ता खोदे तो उस समय उस घर में सन्धि भेद

का भय होता है। यदि गायों के निवास स्थान को खोदे तो गोहरण और धान्य वाली भूमि को खोदे तो धान्य का लाभ होता है ॥ ९ ॥

एकेनाक्ष्णा साश्रुणा दीनदृष्टिर्मन्दाहारो दुःखकृत् तद्गृहस्य ।
गोभिः सार्कं क्रीडमाणः सुभिक्षं क्षेमारोग्यं चाभिदत्ते मुदं च ॥१०॥

यदि कुत्ते की एक आँख अश्रुपूर्ण और थोड़ी दृष्टि वाली हो तथा वह थोड़ा भोजन करे तो घर को दुखी करने वाला होता है। यदि गायों के साथ कुत्ता खेले तो सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य और हर्षित करता है ॥ १० ॥

वामं जिघ्रेज्जानु वित्तागमाय स्त्रीभिः सार्कं विग्रहो दक्षिणं चेत् ।
ऊरुं वामं चेन्द्रियार्थोपभोगः सव्यं जिघ्रेदिष्टमित्रैर्विरोधः ॥११॥

यदि कुत्ता बाईं जांघ को सूँघे तो धन लाभ, दाहिनी जाँघ को सूँघे तो स्त्रियों के साथ कलह, बाईं ऊरु को सूँघे तो बुद्धीन्द्रियों के विषयों का उपभोग और दाहिनी ऊरु को सूँघे तो मित्रों से विरोध होता है ॥ ११ ॥

पादौ जिघ्रेद्यायिनश्चेदयात्रां प्राहार्थाप्तिं वाञ्छितां निश्चलस्य ।
स्थानस्थस्योपानहौ चेद्विजिघ्रेत् क्षिप्रं यात्रां सारमेयः करोति ॥१२॥

यदि कुत्ता गमन करने वाले के दोनों पाँवों को सूँघे तो यात्रा का निषेध करता है। यदि वहीं पर गमन करने वाला निश्चल होकर स्थित हो जाय तो अभीष्ट अर्थ की सिद्धि करता है। तथा यदि एक स्थान में स्थित गमन करने वाले के जूते को सूँघे तो शीघ्र यात्रा को सूचित करता है ॥ १२ ॥

उभयोरपि जिघ्रणे हि बाह्वोर्विज्ञेयो रिपुचौरसम्प्रयोगः ।
अथ भस्मनि गोपयीत भक्षान्मांसास्थीनि च शीघ्रमग्निकोपः ॥१३॥

यदि गमन करने वाले की दोनों भुजाओं को कुत्ता सूँघे तो शत्रु और चोर का भय जानना चाहिये। यदि भस्म में अपने खाने की वस्तु, मांस या हड्डी को छिपावे तो शीघ्र अग्नि कोप होता है।

ग्रामे भषित्वा च बहिः श्मशाने भषन्ति चेदुत्तमपुंविनाशः ।
यियासतश्चाभिमुखो विरौति यदा तदा श्वा निरुणद्धि यात्राम् ॥१४॥

पहले कुत्ता गाँव में शब्द करके बाद में श्मशान में जाकर शब्द करे तो प्रधान पुरुष का नाश होता है। यदि गमन करने वाले के सम्मुख आकर कुत्ता रोवे तो यात्रा को रोकता है ॥ १४ ॥

उकारवर्णे विरुतेऽर्थसिद्धिरोकारवर्णेन च वामपार्श्वे ।
व्याक्षेपमौकाररुतेन विन्द्यान्निषेधकृत्सर्वरुतैश्च पश्चात् ॥१५॥

यदि कुत्ता उकार वर्ण से या गमन करने वाले के वाम पार्श्व में होकर ओकार वर्ण से शब्द करे तो अर्थ सिद्धि और औकार वर्ण से शब्द करे तो आकुलता होती है। तथा गमन करने वाले के पीछे किसी भी वर्ण से शब्द करे तो यात्रा का निषेध करता है ॥१५॥

खंखेति चोच्चैश्च मुहुर्मुहुर्ये रुवन्ति दण्डैरिव ताड्यमानाः ।
श्वानोऽभिधावन्ति च मण्डलेन ते शून्यतां मृत्युभयं च कुर्युः ॥१६॥

यदि कुत्ता दण्डों से ताडित की तरह ऊंचे स्वर से बार बार खेल ये शब्द करे या सब इकट्ठे होकर दौड़ें तो वे नगर की शून्यता और मृत्युमय को सूचित करते हैं ॥१६॥

प्रकाश्य दन्तान् यदि लेढि सृक्किणी तदाशनं मृष्टमुशन्ति तद्विदः।
यदाननं लेढि पुनर्न सृक्किणी प्रवृत्तभोज्येऽपि तदान्नविघ्नकृत् ॥१७॥

यदि कुत्ता दाँतों को बाहर निकाल कर ओठ के अन्त भाग को चाटे तो कुत्ते की चेष्टाओं को जानने वाले मिष्टान्न का लाभ कहते हैं। तथा मुँह को जब चाटता हो उस समय यदि ओठ के अन्त भाग को नहीं चाटता हो तो भोजन के लिए तैयार पुरुष के अन्न में विघ्न डालता है ॥ १७ ॥

ग्रामस्य मध्ये यदि वा पुरस्य भषन्ति संहत्य मुहुर्मुहुर्ये।
ते क्लेशमाख्यान्ति तदीश्वरस्य ध्वारण्यसंस्थो मृगवद्विचिन्त्यः ॥१८॥

गाँव या पुर के मध्य में कुत्ते मिल कर बार बार शब्द करें तो वे गाँव के स्वामी को क्लेश की सूचना देते हैं। वन में स्थित कुत्ते के फलों का विचार मृग की तरह करना चाहिये, अर्थात् 'क्रोशाः प्रदक्षिणं शस्ता मृगाः सनकुलाण्डजाः' इत्यादिवत् विचार करना चाहिये ॥ १८ ॥

वृक्षोपगे क्रोशति तोयपातः स्यादिन्द्रकीले सचिवस्य पीडा।
वायोर्गृहे सस्यभयं गृहान्तः पीडा पुरस्यैव च गोपुरस्थे ॥१९॥
भयं च शय्यासु तदीश्वराणां याने भषन्तो भयदाश्च पश्चात्।
अथापसव्या जनसन्निवेशे भयं भषन्तः कथयन्त्यरीणाम् ॥२०॥

यदि वृक्ष के समीप में कुत्ता शब्द करे तो वर्षा होती है, इन्द्रकील के समीप में शब्द करे तो मन्त्री को पीडा, गृह के मध्य या वायव्य कोण में स्थित होकर शब्द करे तो धान्य को भय और पुरद्वार में स्थित होकर शब्द करे तो पुर को पीड़ा होती है। शय्या पर शब्द करे तो शय्या पर सोने वाले को भय करता है, यात्रा में गमन करने वाले के पीछे शब्द करे तो उसी को भय होता है और मनुष्यों के समीप वामभाग में स्थित होकर शब्द करे तो शत्रुओं का भय करता है ॥१९-२० ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां श्वचक्राध्याय एकोननवतितमः ॥ ८९ ॥



अथ शिवारुताध्यायः

उसमें पहले कुत्ते की तरह सियार के फल का आदेश—

श्वभिः शृगालाः सदृशाः फलेन विशेष एषां शिशिरे मदाप्तिः।
हूहूरुवान्ते परतश्च टाटा पूर्णः स्वरोऽन्ये कथिताः प्रदीप्ताः ॥१॥

सियार फल में कुत्ते के समान है, विशेषता यह है कि शिशिर ऋतु में सियार को मद की प्राप्ति होती है अतः उस समय इनका शुभाशुभ फल नहीं होता है। बोलने के अन्त में हुहु और इसके बाद टाटा शब्द इनके पूर्ण स्वर हैं, इनसे अतिरिक्त शब्द दीप्त हैं ॥

लोमाशिका की चेष्टा—

लोमाशिकायाः खलु ककशब्दः पूर्णः स्वभावप्रभवः स तस्याः।
येऽन्ये स्वरास्ते प्रकृतेरपेताः सर्वे च दीप्ता इति सम्प्रदिष्टाः ॥२॥

लोमाशिका के स्वभाव से ही उत्पन्न होने वाले कक शब्द पूर्ण हैं, इनसे अन्य स्वर स्वभाव विरुद्ध और दीप्त हैं ॥ २ ॥

शृगाली की चेष्टा—

पूर्वोदीच्योः शिवा शस्ता शान्ता सर्वत्र पूजिता।
धूमिताभिमुखी हन्ति स्वरदीप्ता दिगीश्वरान् ॥३॥

पूर्व और उत्तर दिशा में स्थित शृगाली शुभ फल देने वाली होती है। सर्वत्र शान्त दिशा में स्थित हो तो श्रेष्ठ होती है। तथा धूमित दिशा की तरफ मुख करके दीप्त शब्द करे तो उस दिशा के स्वामी का नाश करती है ॥ ३ ॥

दिशाओं के स्वामी—

राजा कुमारो नेता च दूतश्श्रेष्ठी चरो द्विजः।
गजाध्यक्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशाम् ॥ ४ ॥

राजा, कुमार, सेनापति, दूत, सेठ, गुप्तचर, ब्राह्मण, राजाध्यक्ष ये प्रदक्षिण क्रम से पूर्व आदि आठ दिशाओं के स्वामी हैं। (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण) पूर्व आदि चार दिशाओं के स्वामी हैं ॥ ४ ॥

शिवा के अशुभ फल—

सर्वदिक्ष्वशुभा दीप्ता विशेषेणाह्न्यशोभना।
पुरे सैन्येऽपसव्या च कष्टा सूर्योन्मुखी शिवा ॥५॥

सब दिशाओं में दीप्त स्वर अशुभ होते हैं। किन्तु दिन में विशेष कर अशुभ होते हैं। नगर या सेनाओं में दक्षिण भाग में स्थित सूर्योन्मुखी शिवा कष्ट देती है ॥ ५ ॥

शिवा के शब्द विशेष से फल—

याहीत्यग्निभयं शास्ति टाटेति मृतवेदिका।
धिग्धिग्दुष्कृतिमाचष्टे सज्वाला देशनाशिनी ॥६॥

यदि शिवा 'याहि' शब्द करे तो अग्निभय, 'टा टा' शब्द करे तो मृत्यु, 'धिक् धिक्' शब्द करे तो अतिकष्ट और अग्नि की ज्वाला मुख से निकलने वाली शिवा देश नाश को सूचित करती है ॥ ६ ॥

यहाँ पर मतान्तर—

नैव दारुणतामेके सज्वालायाः प्रचक्षते।
अर्काद्यनलवत् तस्या वक्त्रं लालास्वभावतः ॥७॥

काश्यप आदि मुनियों का मत है कि मुख से ज्वाला निकलने वाली शिवा का फल भयङ्कर नहीं है। क्यों कि लार के स्वभाव से सूर्य आदि की ज्वाला की तरह उसका मुँह ज्वाला युत होता है। यहाँ पर काश्यप—

नैव दारुणता तस्याः सज्वालायाः स्वभावतः। लालया साग्निकं वक्त्रमत सा शुभदा शिवा ॥

शिवा के प्रतिशब्द का फल—

अन्यप्रतिरुता याम्या सोद्वन्धमृतशंसिनी।
वारुण्यनुरुता सैव शंसते सलिले मृतम् ॥ ८ ॥

यदि अन्य शिवा के साथ दक्षिण भाग में स्थित शिवा शब्द करे तो फाँसी से मृत्यु को सूचित करती है। यदि अन्य शिवा के साथ पश्चिम भाग में स्थित वही शिवा शब्द करे तो जल से मृत्यु सूचित करती है ॥ ८ ॥

शब्द के वश फल—

अक्षोभः श्रवणं चेष्टं धनप्राप्तिः प्रियागमः।
क्षोभः प्रधानभेदश्च वाहनानां च सम्पदः ॥ ९ ॥
फलमासप्तमादेतदग्राह्यं परतो रुतम्।
याम्यायां तद्विपर्यस्तं फलं षट्पञ्चमादृते ॥ १० ॥

यदि शिवा एक बार शब्द करके चुप हो जाय तो अनाकुलता, दो बार शब्द करके चुप हो जाय तो इष्टश्रवण, तीन बार शब्द करके चुप हो जाय तो अर्थ लाभ, चार बार शब्द करके चुप हो जाय तो प्रिय का आगम, पाँच बार शब्द करके चुप हो जाय तो आकुलता, छः बार शब्द करके चुप हो जाय तो प्रधानों में भेद और सात बार शब्द करके चुप हो जाय तो सम्पत्ति होती है इसके बाद आठ बार आदि शब्द अग्राह्य हैं। दक्षिण दिशा में छठे और पाँचवें फल को छोड़ कर शेष सब फल उलटा समझना चाहिये। जैसे एक बार शब्द करे तो क्षोभ, दो बार अनिष्ट श्रवण, तीन बार करे तो धन हानि, चार बार करे तो प्रिय वियोग, पाँच बार करे तो क्षोभ, छः बार करे तो प्रधानों में भेद और सात बार करे तो सम्पत्ति की हानि होती है ॥ ९-१० ॥

अशुभ करने वाली शिवा—

या रोमाञ्चं मनुष्याणां शकृन्मूत्रं च वाजिनाम्।
रावात् त्रासं च जनयेत् सा शिवा न शिवप्रदा ॥११॥

जिस शिवा के शब्द से मनुष्यों को रोमाञ्च हो, घोड़े टट्टी करें और मूतें तथा मनुष्यों को भय हो वह शिवा शुभ नहीं है ॥ ११ ॥

शिवा का शुभ लक्षण—

मौनं गता प्रतिरुते नरद्विरदवाजिभिः।
या शिवा सा शिवं सैन्ये पुरे वा सम्प्रयच्छति ॥१२॥

जो बोलती हुई शिवा, मनुष्य, हाथी और घोड़े के प्रतिशब्द से चुप हो जाय वह सैन्य और नगर में मङ्गल करती है ॥ १२ ॥

भेभेति शिवा भयङ्करी भो भो व्यापदमादिशेच्च सा।
मृतिबन्धनिवेदिनी फिफे हृहू चात्महिता शिवा स्वरे ॥१३॥

यदि शिवा 'भेभा' शब्द करे तो भय, 'भोभो' शब्द करे तो मृत्यु और बन्धन तथा 'हू हू' शब्द करे तो सुनने वाले को श्रेय करती है ॥ १३ ॥

-- शिवा के शुभ शब्द--

शान्ता त्ववर्णात् परमारुवन्ती टाटामुदीर्णामिति वाश्यमाना ।
टेटे च पूर्वं परतश्च थे थे तस्याः स्वतुष्टिप्रभवं रुतं तत् ॥१४॥

जो शिवा शान्त दिशा में स्थित होकर पहले अकार का उच्चारण करके बाद में आ आदि वर्णों का उच्चारण करे या 'टा टा' शब्द करे वा पहले 'टे टे' शब्द करके 'थे थे' शब्द करे ये सब प्रसन्नता पूर्वक उसके शब्द होते हैं और सब शुभ हैं ॥ १४ ॥

उच्चैर्घोरं वर्णमुच्चार्य पूर्वं पश्चात् क्रोशेत् क्रोष्टुकस्यानुरूपम् ।
या सा क्षेमं प्राह वित्तस्य चाप्तिं संयोगं वा प्रोषितेन प्रियेण ॥१५॥

जो शिवा बहुत जोर से पहले घोर वर्ण का उच्चारण करके बाद में शृगाल की तरह शब्द करे तो यह क्षेम, धन का लाभ और प्रिय समागम को सूचित करती है ॥ १५ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां शिवारुताध्यायो नवतितमः ॥ ९० ॥



अथ मृगचेष्टिताध्यायः

उसमें मृगों की चेष्टा का प्रदर्शन--

सीमागता वन्यमृगा रुवन्तः स्थिता व्रजन्तोऽथ समापतन्तः ।
सम्प्रत्यतीतैष्यभयानि दीप्ताः कुर्वन्ति शून्यं परितो भ्रमन्तः ॥ १ ॥

यदि वन्य मृग गाँव की सीमा में दीप्त शब्द करते हुए स्थित रहें तो साम्प्रतिक, उस सीमा प्रदेश से चले जायँ तो भूत और सीमा प्रदेश की तरफ ही आवें तो भविष्य भय को सूचित करते हैं। यदि गाँव के चारों ओर घूमें तो उस गाँव को शून्य करते हैं ॥ १ ॥

ते ग्राम्यसत्त्वैरनुवाश्यमाना भयाय रोधाय भवन्ति वन्यैः ।
द्वाभ्यामपि प्रत्यनुवाशितास्ते वन्दिग्रहार्यं च मृगा रुवन्ति ॥ २ ॥

गाँव की सीमा में आये हुए दीप्त शब्द करने वाले उन मृगों के पीछे ग्रामीण जन्तु शब्द करें तो भय के लिए, वन स्थित अन्य जन्तु शब्द करें तो गाँव के रोधन के लिए तथा वन्य, ग्राम्य दोनों जन्तु मिल कर शब्द करें तो हठ पूर्वक स्त्रियों के हरण के लिए मृग होते हैं ॥ २ ॥

वन में रहने वाले जन्तुओं का फल--

वन्ये सत्त्वे द्वारसंस्थे पुरस्य रोधो वाच्यः सम्प्रविष्टे विनाशः ।
सूते मृत्युः स्याद्भयं संस्थिते च गेहं याते बन्धनं सम्प्रदिष्टम् ॥ ३ ॥

यदि वन में रहने वाले जीव पुर के द्वार पर स्थित हों तो शत्रुओं से पुर का रोध, गृह के अन्दर प्रवेश करें तो पुर का नाश, गृह में प्रसव करें तो मृत्यु, गृह में रहें तो भय और गृह में प्रवेश करें तो गृह स्वामी का बन्धन होता है ॥ ३ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां मृगचेष्टिताध्याय एकनवतितमः ॥ ९१ ॥



अथ गवेङ्गिताध्यायः

गायों की चेष्टा—

गावो दीनाः पार्थिवस्याशिवाय पादैर्भूमिं कुट्टयन्त्यश्च रोगान् ।
मृत्युं कुर्वन्त्यश्रुपूर्णायताक्ष्यः पत्युर्भीतास्तस्करानारुवन्त्यः ॥१॥

दीन गाय राजा को अमङ्गल करने वाली, अपने पाँवों से पृथ्वी को कुरेदने वाली गाय रोग करने वाली, अश्रुपूर्ण नेत्र वाली गाय स्वामी की मृत्यु करने वाली और डर कर अति शब्द करने वाली गाय चोरों से भय कराने वाली होती है ॥ १ ॥

अकारणे क्रोशति चेदनर्थो भयाय रात्रौ वृषभः शिवाय ।
भृशं निरुद्धा यदि मक्षिकाभिस्तदाशु वृष्टिं सरमात्मजैर्वा ॥ २ ॥

यदि बिना कारण गाय शब्द करे तो अनर्थ और रात्रि में शब्द करे तो भय करती है। यदि बैल रात्रि में शब्द करे तो मङ्गलकारी होता है। यदि गाय बहुत मक्खियों से या कुत्तों के बच्चे से घिर जाय तो शीघ्र वृष्टि करती है ॥ २ ॥

आगच्छन्त्यो वेश्म वम्भारवेण संसेवन्त्यो गोष्ठवृद्ध्यै गवां गाः ।
आर्द्राङ्ग्यो वा हृष्टरोम्ण्यः प्रहृष्टा धन्या गावः स्युर्महिष्योऽपि चैवम् ॥

मधुर शब्द करती हुई गाय घर में आये तो गायों की गोष्ठ की वृद्धि के लिये होती है, तथा जल से आर्द्र शरीर वाली और रोमांचों से युक्त गाय गोष्ठवृद्धि के लिये धन्य है। इसी तरह महिषी (भैंस) भी फल देती है ॥ ३ ॥

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां गवेङ्गिताध्यायो द्विनवतितमः ॥ ९२ ॥



अथाश्वेङ्गिताध्यायः

घोड़े की चेष्टा—

उत्सर्गान्न शुभदमासनात्परस्थं वामे च ज्वलनमतोऽपरं प्रशस्तम् ।
सर्वाङ्गज्वलनमवृद्धिदं हयानां द्वे वर्षे दहनकणाश्च धूपनं वा ॥१॥

यह निश्चित है कि घोड़ों के आसन स्थान से पश्चिम या वाम भाग में ज्वलन पैदा हो तो शुभ नहीं होता। इससे विरुद्ध (पूर्व या दक्षिण) भाग में ज्वलन पैदा हो तो शुभ होता है। उत्पात वश घोड़ों के सब अवयवों में ज्वलन पैदा होता है, उसको सर्वाङ्ग ज्वलन कहते हैं। यह सर्वाङ्ग ज्वलन अवृद्धिकारी होता है। जिस घोड़े के दो वर्ष तक शरीर से अग्निकण या धूआँ निकले तो वह भी अवृद्धिकारी होता है। कहा भी है—

तत्रोत्सर्गोन्नासनपश्चिमभागाश्रये ज्वलनमेव। नेष्टमितरत्र शस्तं वामेतरपार्श्वयोस्तद्वत् ॥१॥

घोड़े के लिङ्ग आदि प्रदीप्त का फल—

अन्तःपुरं नाशमुपैति मेढ्रे कोशः क्षयं यात्युदरे प्रदीप्ते ।
पायौ च पुच्छे च पराजयः स्याद्वक्त्रोत्तमाङ्गज्वलने जयश्च ॥ २ ॥

यदि घोड़ों का लिंग प्रदीप्त हो तो राजा के अन्तःपुर का नाश, पेट प्रदीप्त हो तो

खजाने का नाश, गुदा और पूँछ प्रदीप्त हो तो पराजय तथा मुँह और शिर प्रदीप्त हो तो जय होती है ॥ २ ॥

घोड़े के कन्धा आदि प्रदीप्त का फल—

स्कन्धासनांसज्वलनं जयाय बन्धाय पादज्वलनं प्रदिष्टम् ।
ललाटवक्षोऽक्षिभुजे च धूमः पराभवाय ज्वलनं जयाय ॥ ३ ॥

घोड़े के कन्धा, आसन, ग्रीवा के पार्श्व भाग प्रदीप्त हों तो जय, पाँव प्रदीप्त हो तो स्वामी का वध, ललाट, छाती, आँख और भुजा धूम युत हो तो पराजय तथा प्रदीप्त हो तो जय के लिए होता है ॥ ३ ॥

घोड़े के नासारन्ध्र आदि का फल—

नासापुटप्रोथशिरोऽश्रुपातनेत्रे च रात्रौ ज्वलनं जयाय ।
पलाशताम्रासितकर्बुराणां नित्यं शुकाभस्य सितस्य चेष्टम् ॥ ४ ॥

रात्रि के समय घोड़े के नासारन्ध्र, प्रोथ (नाभा मध्य भाग), शिर, अश्रुपात (गण्डाधो भाग) और नेत्र प्रदीप्त हों तो जय के लिये होता है। पलाश के समान लोहित, कृष्ण, शुक्लकृष्ण, कपोत के समान, तोते के समान या सफेद वर्ण वाले घोड़े के एक, दो या अनेक अंगों में सदा ज्वलन हो तो शुभ होता है। कहा भी है—

समममन्यापदकेसरपुच्छेषु ज्वलनदहनकणधूमाः । राष्ट्रभयशोकसम्भ्रमसपत्नवक्रापमर्दकराः ॥
प्राक्फलतुल्य पृष्ठे जघने वालेषु चैव निर्दिष्टम् । अन्तःपुरप्रकोपो मेढ्रज्वलने प्रकोपे वा ॥
नित्यं च बालकिरणे दाहज्वाला स्फुलिङ्गानाम् । स्कन्धासनांसदेशे धूमा बन्धाय चरणेषु ॥
वक्षोऽक्षिललाटभुजे स्वधानां हेषितं च वदनेभ्यः । ज्वालोत्पत्तिर्जयदा धूमोत्पत्तिस्स्वभावाय ॥
नासापुटाश्रुपातप्रोथशिरोलोचने च रजनीषु । विजयाय प्रज्वलनं ताम्रासितहरितशबलानाम् ॥
विजयाय सर्वदैव हि सुशुक्लशुकवर्णयोर्ज्वलनमेषु । एवं च यथासम्भवमन्येष्वपि वाहनेषु फलम् ॥

प्रद्वेषो यवसाम्भसां प्रपतनं स्वेदो निमित्ताद्विना
कम्पो वा वदनाच्च रक्तपतनं धूमस्य वा सम्भवः ।
अस्वप्नश्च विरोधिनां निशि दिवा निद्रालसध्यानिता
सादोऽधोमुखता विचेष्टितमिदं नेष्टं स्मृतं वाजिनाम् ॥ ५ ॥

विना कारण घास और पानी से विरक्ति, गिरना, पसीने का आना, काँपना, मुँह से खून निकलना, रात्रि में किसी से द्वेष करते हुए जागना, दिन में नींद, आलस्य और चिन्ता का आना, साद (सुस्ती होना), नीचे मुख करना, ऊपर देखना ये सब घोड़े की चेष्टायें अशुभ हैं। कहा भी है—

निद्राविरोधालसनीलनेत्राः अधान्यशून्यस्मृतयो दिनेषु ।
निशासु चान्योन्यविरोधनिद्रालष्टास्तुरङ्गा न शिवाय भर्तुः ॥ ५ ॥

आरोहणमन्यवाजिनां पर्याणादियुतस्य वाजिनः ।
उपवाह्यतुरङ्गमस्य वा कल्पस्यैव विपन्नशोभना ॥ ६ ॥

पर्याण (तंग तरहा, पुट्ठ आदि) से युत घोड़े के ऊपर दूसरे घोड़े का चढ़ना, नीरोग और उपवाह्य (सवार को पीठ पर लेकर चलते-चलते कुछ नहीं खाने वाले) घोड़े को विपत्ति में आना शुभ नहीं है ॥ ६ ॥

घोड़े के शब्द का फल—

क्रौञ्चवद्रिपुवधाय हेषितं ग्रीवया त्वचलया च सोन्मुखम्।
स्निग्धमुच्चमनुनादि हृष्टवद्ग्रासरुद्धवदनैश्च वाजिभिः॥ ७॥

घोड़े का क्रौञ्चपची की तरह शब्द करना तथा गर्दन को स्थिर और ऊपर मुख करके शब्द करना, उच्च स्वर से बार बार मधुर शब्द करना या ग्रास से मुख बन्द रहने पर भी आनन्दपूर्वक शब्द करना शत्रु के बध के लिए होता है॥ ७॥

शब्द करते हुए घोड़े के पास में शुभ द्रव्य—

पूर्णपात्रदधिविप्रदेवतागन्धपुष्पफलकाञ्चनादि वा।
द्रव्यमिष्टमथवा परं भवेद्धेषतां यदि समीपतो जयः॥ ८॥

यदि शब्द करते हुए घोड़े के पास में किसी शुभ द्रव्य से पूर्ण पात्र, दही, ब्राह्मण, देवता, सुगन्ध द्रव्य, फूल, फल, सोना आदि (रजत, मणि, मोती आदि) या अन्य शुभ द्रव्य आ जायें तो जय होती है॥ ८॥

घोड़े की अन्य चेष्टायें—

भक्ष्यपानखलिनाभिनन्दिनः पत्युरौपयिकनन्दिनोऽथवा।
शव्यपार्श्वगतदृष्टयोऽथवा वाञ्छितार्थफलदास्तुरङ्गमाः॥ ९॥

खाने की सामग्री, जल और लगाम को आनन्द पूर्वक ग्रहण करने वाले, स्वामी को इच्छा के अनुकूल चलने वाले तथा दक्षिण पार्श्व में दृष्टि रखने वाले घोड़े अभीष्ट फल को देते हैं। कहा भी है—

इष्टानिष्टव्यञ्जकमतःपरं हेषितं समवधार्यम्। उच्च चलितप्रसारितशिरोधरोद्भूतमिष्टफलम्॥
ग्रासान्तर्वक्त्राणामुच्चैः स्निग्धानुनादि गम्भीरम्। द्विजपूर्णभाजनेष्टद्रव्यस्रग्गन्धसुरमूलैः॥
खलिनाम्बपानधर्मस्वाम्युपकरणाभिनन्दिता येषाम्। सर्वार्थसिद्धये स्याद्दक्षिणपार्श्वे विलोकयताम्॥

घोड़े की अशुभ चेष्टायें—

वामैश्च पादैरभिताडयन्तो महीं प्रवासाय भवन्ति भर्तुः।
सन्ध्यासु दीप्तामवलोकयन्तो हेषन्ति चेद्बन्धपराजयाय॥ १०॥

बायें पैर से पृथ्वी को खोदने वाले घोड़े स्वामी के विदेश गमन के कारण होते हैं। तथा सन्ध्याओं (सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त और अर्ध रात्रि) में दीप्त दिशा को देखते हुए शब्द करें तो स्वामी के बन्धन और पराजय के कारण होते हैं॥ १०॥

घोड़े की अन्य अशुभ चेष्टायें—

अतीव हेषन्ति किरन्ति वालान् निद्रारताश्च प्रवदन्ति यात्राम्।
रोमत्यजो दीनखरस्वराश्च पांसून् ग्रसन्तश्च भयाय दृष्टाः॥ ११॥

यदि घोड़े बहुत शब्द करें, पूंछ के बालों को इधर-उधर फैलावें या सोवें तो यात्रा को सूचित करते हैं। तथा यदि बालों को गिरावें, दीन गदहे की तरह शब्द करें या धूली भक्षण करें तो भय के लिये देखे जाते हैं। कहा भी है—

संध्यासु दीप्तदिङ्मुखसम्भ्रमगाढप्रनष्टनिद्राश्च। हेषन्तो भयजननाः बधबंधनपराजयकराश्च॥
वर्जीकृतबालधयो दक्षिणपार्श्वानुशायिनो नेष्टाः। वामचरणैः क्षितिजलं घ्नन्तो ह्रेषाः प्रवासाय॥

समुद्गवद्दक्षिणपार्श्वशायिनः पदं समुत्क्षिप्य च दक्षिणं स्थिताः ।
जयाय शेषेष्वपि वाहनेष्विदं फलं यथासम्भवमादिशेद्बुधः ॥ १२ ॥

समुद्ग (पात्र विशेष = डिब्बा आदि) की तरह जानुओं को मोड़ कर दक्षिण पार्श्व से शयन करने वाला तथा दाहिने पाँव को उठा कर पृथ्वी पर खड़ा होने वाला घोड़ा स्वामी के जय के लिये होता है। शेष (हाथी, ऊँट आदि) वाहनों में भी पूर्वोक्त यथासम्भव (धूम, अग्नि कण के विना) फलों का आदेश करना चाहिये ॥ १२ ॥

आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्नो
यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रतिहेषते च ।
वक्त्रेण वा स्पृशति दक्षिणमात्मपार्श्वं
योऽश्वः स भर्तुरचिरात् प्रचिनोति लक्ष्मीम् ॥ १३ ॥

राजा के चढ़ जाने पर जो घोड़ा विनय से युक्त होकर जिस दिशा में राजा को जाने की इच्छा हो उसी दिशा में चले तथा अन्य घोड़े के शब्द करने पर शब्द करे या मुँह से अपने दक्षिण पार्श्व का स्पर्श करे तो शीघ्र स्वामी की लक्ष्मी की वृद्धि करता है ॥ १३ ॥

घोड़े की अशुभ चेष्टायें—

मुहुर्मुहुर्मूत्रशकृत्करोति न ताड्यमानोऽप्यनुलोमयायी ।
अकार्यभीतोऽश्रुविलोचनश्च शिवं न भर्तुस्तुरगोऽभिधत्ते ॥ १४ ॥

जो घोड़ा बार-बार पेशाब और टट्टी करे, मारने पर भी अभीष्ट दिशा में न चले विना कारण डरे और जिसके अश्रुपूर्ण नेत्र हो जाँय वह अपने स्वामी का मङ्गल नहीं करता है ॥

उपसंहार—

उक्तमिदं हयचेष्टितमत ऊर्ध्वं दन्तिनां प्रवक्ष्यामि ।
तेषां तु दन्तकल्पनभङ्गम्लानादिचेष्टाभिः ॥ १५ ॥

यह घोड़ों की चेष्टा कही गयी हैं। इसके बाद हाथियों की चेष्टा कहता हूँ। उन हाथियों को दाँतों का काँपना, टूटना, मलिन होना आदि चेष्टाओं से फल होते हैं ॥ १५ ॥

इति विमला हिन्दीटीकायामश्वेङ्गिताध्यायस्त्रिनवतितमः ॥ ९३ ॥



अथ हस्तिचेष्टिताध्यायः

गजदन्त का लक्षण—

दन्तस्य मूलपरिधिं द्विरायतं प्रोज्झ्य कल्पयेच्छेषम् ।
अधिकमनूपचराणां न्यूनं गिरिचारिणां किञ्चित् ॥ १ ॥

गजदन्त के मूल में जितनी अङ्गुलात्मक परिधि हो उसको द्विगुणित करके जो हो तत्तुल्य मूल से छोड़ कर शेष भाग से सब कल्पनायें करे। जलप्राय देश के हाथियों में उससे कुछ अधिक और पर्वत चारी हाथियों में उससे कुछ कम भाग छोड़ कर शेष भाग से सब कल्पनायें करे ॥ १ ॥

कल्पित गजदन्त का शुभाशुभ फल—

श्रीवत्सवर्धमानच्छत्रध्वजचामरानुरूपेषु।
छेदे दृष्टेष्वारोग्यविजयधनवृद्धिसौख्यानि॥ २॥

काटने के समय हाथी के दाँत में विल्व वृक्ष, वर्धमान, छत्र, ध्वज या चामर की तरह चिह्न दिखाई दे तो आरोग्य, धन की वृद्धि और सुख होता है॥ २॥

प्रहरणसदृशेषु जयो नद्यावर्त्ते प्रनष्टदेशाप्तिः।
लोष्टे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राप्तिः॥ ३॥

शस्त्र के समान चिह्न दिखाई दे तो जय, नदी के आवर्त्त (जलभ्रम) के समान चिह्न दिखाई दे तो नष्ट देश की प्राप्ति और ढेले के समान चिह्न दिखाई दे तो पहले प्राप्त हुये देश की प्राप्ति होती है॥ ३॥

स्त्रीरूपे स्वविनाशो भृङ्गारेऽभ्युत्थिते सुतोत्पत्तिः।
कुम्भेन निधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नश्च दण्डेन॥ ४॥

स्त्री के समान चिह्न दिखाई दे तो धन का नाश, भृङ्गार के समान चिह्न दिखाई दे तो पुत्र की उत्पत्ति, घडे के समान चिह्न दिखाई दे तो निधि की प्राप्ति और दण्ड के समान चिह्न दिखाई दे तो यात्रा में विघ्न होता है॥ ४॥

कृकलासकपिभुजङ्गेष्वसुभिक्षव्याधयो रिपुवशित्वम्।
गृध्रोलूकध्वाङ्क्षश्येनाकारेषु जनमरकः॥ ५॥

गिरगिट, छिपकली, बानर या सर्प की तरह चिह्न हो तो दुर्भिक्ष, व्याधि और शत्रु के [अधि]कार में रहना होता है। तथा गिद्ध, उल्लू, काक या बाज के समान चिह्न हो तो मरकी होती है॥ ५॥

पाशेऽथवा कबन्धे नृपमृत्युर्जनविपत्स्रुते रक्ते।
कृष्णे श्यावे रूक्षे दुर्गन्धे चाशुभं भवति॥ ६॥

पाश (फाँसी) या कबन्ध (बिना शिर का पुरुष) के समान चिह्न हो तो राजा की मृत्यु, काटने पर रक्त निकले तो मनुष्यों के ऊपर विपत्ति तथा काला, पीला, रूखा या दुर्गन्धि हो तो अशुभ होता है। कहा भी है—

श्यावपूतिमलरक्तदर्शनं सर्पसत्वसदृशं च पादपम्॥ ६॥

आसन के समान शय्या का फल—

शुक्लः समः सुगन्धिः स्निग्धश्च शुभावहो भवेच्छेदः।
गलनम्लानफलानि च दन्तस्य समानि मङ्गेन॥ ७॥

यदि दाँत का छेद सफेद, समान, सुगन्धि या निर्मल हो तो शुभ होता है। ये सब आसन के फल हैं। इसी तरह पूर्वोक्त सब लक्षण शय्या में भी फल देते हैं॥ ७॥

हाथियों के अन्य शुभाशुभ फल—

मूलमध्यदशनाग्रसंस्थिता देवदैत्यमनुजाः क्रमाद्यतः।
स्फीतमध्यपरिपेलवं फलं शीघ्रमध्यचिरकालसम्भवम्॥ ८॥

हाथी के दाँत के मूल, मध्य और अग्रभाग में क्रम से देवता, दैत्य और मनुष्य निवास करते हैं। जैसे दन्त मूल में देवता, मध्य में दैत्य और दन्ताग्र में मनुष्य निवास करते हैं। तथा मूल में वक्ष्यमाण में फल पुष्ट, मध्य में मध्यम और अग्र में अल्प होता है। इसी तरह मूल में वक्ष्यमाण फल शीघ्र (सप्ताह के मध्य में), मध्य में मध्यकाल में (एक मास के अन्दर) और प्रान्त में देर से होता है ॥ ८ ॥

यहाँ पर विशेष—

दन्तभङ्गफलमत्र दक्षिणे भूपदेशबलविद्रवप्रदम् ।
वामतः सुतपुरोहितेभयात् हन्ति सादिविकदारनायकान् ॥ ९ ॥

यदि दक्षिण भाग का दाँत मूल से टूट जाय तो राजा को भागने का भय, मध्य से टूट जाय तो देश को भागने का भय और अग्र भाग से टूट जाय तो सेना को भागने का भय रहता है। यदि वाम भाग का दाँत मूल आदि से टूट जाय तो क्रम से राजपुत्र, पुरोहित, साधन पति को तथा सेना, स्त्री और प्रधान पुरुष को मारता है ॥ ९ ॥

आदिशेदुभयभङ्गदर्शनात् पार्थिवस्य सकलं कुलक्षयम् ।
सौम्यलग्नतिथिभादिभिः शुभं वर्धतेऽशुभमतोऽन्यथा वदेत् ॥ १० ॥

यदि हाथी के दोनों दाँत टूट जाय तो राजा के सम्पूर्ण कुल का क्षय होता है। शुभ ग्रह के लग्न (वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला धनु और मीन), शुभ तिथि (रिक्ता वर्जित तिथि), शुभ नक्षत्र (दारुण उग्र नक्षत्र को छोड़ कर शेष नक्षत्र) आदि में उत्पन्न हाथी हो तो शुभ फल बढ़ते हैं और इससे विपरीत में उत्पन्न हो तो पाप फल बढ़ते हैं ॥

हाथी के दन्त भङ्ग का विशेष फल—

क्षीरमृष्टफलपुष्पपादपेष्वापगातटविघट्टितेन वा ।
वाममध्यरदभङ्गखण्डने शत्रुनाशकृदतोऽन्यथा परम् ॥ ११ ॥

यदि वाम भाग का दाँत दूध वाले, मधुर फल वाले या फूल वाले वृक्षों के घर्षण या नदी के तट को विघट्टित करने पर मध्य से टूट जाय तो शत्रुनाश करता है। इसके विपरीत (दुष्ट वृक्षों के घर्षण से वाम दन्त का अग्र या मूल टूट जाय) तो शत्रु की वृद्धि करता है ॥ ११ ॥

हाथियों की चेष्टायें—

स्खलितगतिरकस्मात् त्रस्तकर्णोऽतिदीनः
श्वसिति मृदु सुदीर्घं न्यस्तहस्तः पृथिव्याम् ।
द्रुतमुकुलितदृष्टिः स्वप्नशीलो विलोमो
भयकृदहितभक्षी नैकशोऽसृक्शकृत्कृत् ॥ १२ ॥

चलते हुए हाथी की गति अचानक रुक जाय, कान हिलना बन्द हो जाय, अत्यन्त दीनता पूर्वक सूँड को भूमि पर रख कर धीरे धीरे लम्बे सांस लेकर चकित और अर्धोन्मिलित दृष्टि हो जाय, बहुत देर तक सोवे, उलटा चलने लगे, अभक्ष्य वस्तु खाय तथा बहुत बार रक्त मिश्रित टट्टी करे तो भय करने वाला होता है ॥ १२ ॥

हाथियों की शुभ चेष्टायें—

वल्मीकस्थाणुगुल्मक्षुपतरुमथनस्वेच्छया हृष्टदृष्टि-
र्यायाद्यात्रानुलोमं त्वरितपदगतिर्वक्त्रमुन्नाम्य चोच्चैः।
कक्ष्यासन्नाहकाले जनयति च मुहुः शीकरं बृंहितं वा
तत्काले वा मदाप्तिर्जयकृदथ रदं वेष्टयन् दक्षिणं च ॥ १३ ॥

यदि हाथी अपनी इच्छा से वल्मीक, स्थाणु (शाखा रहित वृक्ष), गुल्म, घास या अन्य किसी वृक्ष को मथन करते करते हर्षित दृष्टि और ऊँचा मुख करके शीघ्र गति से यात्रा के अनुकूल चले तथा हौदा कसने के समय जल बिन्दु उड़ावे, गर्जन करे, मद युक्त हो जाय या सूँड से दाहिने दाँत को लपेटे तो जय देने वाला होता है ॥ १३ ॥

हाथियों की और चेष्टायें—

प्रवेशनं वारिणि वारणस्य ग्राहेण नाशाय भवेन्नृपस्य।
ग्राहं गृहीत्वोत्तरणं नृपस्य तोयात् स्थलं वृद्धिकरं नृभर्तुः ॥ १४ ॥

यदि हाथी को पकड़ कर ग्राह जल में प्रवेश कर जाय तो राजा का नाश और ग्राह को पकड़ कर हाथी जल से बाहर निकल जाय तो राजा की वृद्धि करता है ॥ १४ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां हस्तिचेष्टिताध्यायश्चतुर्नवतितमः ॥ ९४ ॥



अथ वायसविरुताध्यायः

उसमें पहले विभाग का प्रदर्शन—

प्राच्यानां दक्षिणतः शुभदाः काकाः करायिका वामाः।
विपरीतमन्यदेशेष्वथधिलोकप्रसिद्ध्यैव ॥ १ ॥

पूर्व देश वासियों के दक्षिण भाग में कौआ और वाम भाग में करायिका तथा अन्य देश वासियों के वाम भाग में कौआ और दक्षिण में करायिका शुभ है। लोक प्रसिद्धि से पूर्व आदि देशों को जानना चाहिये ॥ १ ॥

काक की चेष्टा और फल—

वैशाखे निरुपहते वृक्षे नीडः सुभिक्षशिवदाता।
निन्दितकण्टकिशुष्केष्वसुभिक्षभयानि तद्देशे ॥ २ ॥

यदि कौआ वैशाख मास में उपद्रव रहित वृक्ष के ऊपर घोंसला बनावे तो सुभिक्ष और मङ्गल करने वाला होता है। तथा निन्दित, काँटेदार या सूखे हुये वृक्ष पर घोंसला बनावे तो उस देश में दुर्भिक्ष का भय होता है ॥ २ ॥

घोंसले के सम्बन्ध से वृष्टि का ज्ञान—

नीडे प्राक्शाखायां शरदि भवेत् प्रथमवृष्टिरपरस्याम्।
याम्योत्तरयोर्मध्यात् प्रधानवृष्टिस्तरोरुपरि ॥ ३ ॥

शिखिदिशि मण्डलवृष्टिर्नैर्ऋत्यां शारदस्य निष्पत्तिः ।

परिशेषयोः सुभिक्षं मूषकसम्पच्च वायव्ये ॥ ४ ॥

यदि कौआ शरत्काल में वृक्ष के पूर्व दिशा में स्थित शाखा पर घोंसला बनावे तो पश्चिम दिशा में पहले वर्षा होती है। तथा दक्षिण या उत्तर दिशा में घोंसला बनावे तो प्रधान वृष्टि होती है। अग्नि कोण में घोंसला बनावे तो मण्डल वृष्टि (कहीं पर वृष्टि कहीं पर अवृष्टि) होती है। नैर्ऋत्य कोण में घोंसला बनावे तो शारदीय धान्यों की अच्छी निष्पत्ति होती है। परिशेष (वायव्य और ईशान) कोण में घोंसला बनावे तो सुभिक्ष और वायव्य कोण में घोंसला होने से अधिक चूहे भी होते हैं ॥ ३-४ ॥

काकों की चेष्टायें—

शरदर्भगुल्मवल्लीधान्यप्रासादगेहनिम्नेषु ।

शून्यो भवति स देशश्चौरानावृष्टिरोगार्त्तः ॥ ५ ॥

जिस देश में कौआ शरकडा, कुशा, गुल्म, लता, धान्य, प्रासाद, गृह और नीचे में घोंसला बनावे वह देश चोर, अनावृष्टि और रोग से पीडित होकर शून्य हो जाता है।

यहां पर यात्रा में—

शरतो नीचैस्तु वैशाखे पादपे निरुपद्रवे। देशोत्थानं तु वल्मीकचैत्यधान्यगृहादिषु ॥ ५ ॥

द्वित्रिचतुःशावत्वं सुभिक्षदं पञ्चभिर्नृपान्यत्वम् ।

अण्डावकिरणमेकाण्डताप्रसूतिश्च न शिवाय ॥ ६ ॥

यदि कौए के दो, तीन या चार बच्चे हों तो सुभिक्ष, पाँच बच्चे हों तो दूसरे राजा का अधिकार तथा अण्डा गिर जाय, एक अण्डा देवे या नहीं देवे तो अमङ्गल होता है ॥ ६ ॥

काकों की विशेषता—

चौरकवर्णैश्चौराश्चित्रैर्मृत्युः सितैस्तु वह्निभयम् ।

विकलैर्दुर्भिक्षभयं काकानां निर्दिशेच्छिशुभिः ॥ ७ ॥

यदि कौए के बच्चे का वर्ण गन्ध द्रव्य के समान हो तो चोरों की उत्पत्ति, चित्र हो तो मृत्यु, सफेद वर्ण हो तो अग्निभय और कोई अङ्ग हीन हो तो दुर्भिक्ष भय होता है।

कहा भी है—

काकानां श्रवणे द्वित्रिचतुःशावाः शुभावहाः। चोरचित्रकश्वेताश्च वर्णाश्चौराग्निमृत्युदाः ॥

अण्डावकिरणैर्वाहृत्या दुर्भिक्षमरकावुभौ। शावानां विकलत्वे वा निःशावत्वे कृते यथा ॥

काकों की और चेष्टायें—

अनिमित्तसंहतैर्ग्राममध्यगैः क्षुद्भयं प्रविरुवद्भिः ।

रोधश्चक्राकारैरभिघातो वर्गवर्गस्थैः ॥ ८ ॥

यदि कौवे बिना कारण गाँव के बीच में होकर बहुत शब्द करें तो दुर्भिक्ष का भय, चक्र की तरह इकट्ठे होकर स्थित हों तो नगर का रोध और वर्ग वर्ग कर के स्थित हों तो उपद्रव होता है। कहा भी है—

अकार्यसंहतैर्भेदो रोधश्चक्राकृतिस्थितैः। वर्गगैश्चाभिघातः स्यादिपुवृद्धिश्च निर्भये ॥ ८ ॥

अभयाश्च तुण्डपक्षैश्चरणविघातैर्जनानभिभवन्तः ।

कुर्वन्ति शत्रुवृद्धिं निशि विचरन्तो जनविनाशम् ॥ ९ ॥

यदि कौवे भय रहित होकर चोंच, पंख और पंजों से मनुष्यों को मारें तो शत्रुवृद्धि तथा रात्रि में विचरण करें तो जन की क्षति होती है ॥ ९ ॥

सव्येन खे भ्रमद्भिः स्वभयं विपरीतमण्डलैश्च परात्।
अत्याकुलं भ्रमद्भिर्वातोद्भ्रामो भवति काकैः ॥ १० ॥

यदि कौवे आकाश में प्रदक्षिण क्रम से भ्रमण करें तो आत्मीय जनों से और अपसव्य क्रम से भ्रमण करें तो शत्रुओं से भय होता है। तथा अति आकुलता के साथ भ्रमण करें तो देखने वाले की अनवस्थिति होती है। कहा भी है—

पुरसैन्योपरि व्योम्नि व्याकुलैरनिलाद्भयम्। सव्यमण्डलगैः स्वोत्थमपसव्यैः पराद्भयम् ॥

ऊर्ध्वमुखाश्चलपक्षाः पथि भयदाः क्षुद्भयाय धान्यमुषः।
सेनाङ्गस्था युद्धं परिमोषं चान्यभृतपक्षाः ॥ ११ ॥

यदि कौवे ऊपर को मुँह उठा कर पंखों को चलावें तो मार्ग में भय, धान्यों को चुरावें तो दुर्भिक्ष का भय, सेना के अङ्गों पर बैठ जायँ तो युद्ध और कोयल के समान अति काले पक्ष कौवे के हों तो चोर भय होता है। कहा भी है—

युद्धं सेनाङ्गसस्थेषु मोषकृत् स्वविलेखने। चरद्भिरि विनाशाय दुर्भिक्षं चान्नमोषकृत् ॥११॥

भस्मास्थिकेशपत्राणि विन्यसन् पतिवधाय शय्यायाम्।
मणिकुसुमाद्यवहनने सुतस्य जन्माप्यथाङ्गनायाश्च ॥ १२ ॥

यदि कौवे शय्या के ऊपर भस्म, हड्डी, केश और पत्ते डालें तो शय्या के स्वामी का वध, मणि, फूल और फल डालें तो पुत्र जन्म तथा तृण, काष्ठ आदि डालें तो कन्या का जन्म होता है। कहा है—

तृणभस्मास्थिकेशाश्च शयने स्वामिमृत्युदाः। मणिकुसुमाद्यवहनन इति ॥ १२ ॥

पूर्णाननेऽर्थलाभः सिकताधान्यार्द्रमृत्कुसुमपूर्वैः।
भयदो जनसंवासाद्यदि भाण्डान्यपनयेत्काकः ॥ १३ ॥

यदि कौवे रेत, धान्य, गिली मिट्टी, पुष्प या फल मुँह में भर कर अपने स्थान पर आवें तो धन का लाभ होता है। तथा जल के समीप से कुछ बर्तन लेकर भाग जायँ तो भय देते हैं। ॥ १३ ॥

वाहनशस्त्रोपानच्छत्रच्छायाङ्गकुट्टने मरणम्।
तत्पूजायां पूजा विष्ठाकरणेऽन्नसम्प्राप्तिः ॥ १४ ॥

जिसके वाहन, शस्त्र, जूते और छत्र की छाया को कौआ कूटे उसका मरण, उन वाहन आदि की फूल आदि से पूजा करे तो उसकी पूजा और उन पर बीट करे तो उसको भोजन का लाभ होता है। कहा भी है—

उपानच्छत्रयानाङ्गच्छत्रच्छायावकुट्टने। मृत्युं तत्स्वामिनो ब्रूयात् पूजा स्यात् तत्प्रपूजने ॥

यद्द्रव्यमुपनयेत्तस्य लब्धिरपहरति चेत्प्रणाशः स्यात्।
पीतद्रव्यैः कनकं वस्त्रं कार्पासिकैः सितै रूप्यम् ॥ १५ ॥

कौवा जो द्रव्य कहीं से उठा कर ले आवे उसका लाभ और जो ले जाय उसका नाश होता है। पीले द्रव्य से सोना, कपास सम्बन्धी वस्तु से वस्त्र और सफेद वस्तु से रजत का लाभ या नाश होता है। कहा भी है—

हरेदुपनयेद्वापि यद्द्रव्यं वायसोऽग्रतः । तत्प्राप्तव्यो विज्ञेयो हेमपीते विनिर्दिशेत् ॥ १५ ॥

सक्षीरार्जुनवञ्जुलकूलद्वयपुलिनगा रुवन्तश्च ।

प्रावृषि वृष्टिं दुर्दिनमनृतौ स्नाताश्च पांसुजलैः ॥ १६ ॥

दूध वाले वृक्ष, अर्जुन वृक्ष, वञ्जुल वृक्ष या नदी के दोनों तट पर स्थित होकर कौए शब्द करें या धूली अथवा जल से स्नान करें तो वर्षा काल में वृष्टि तथा अन्य ऋतु में दुर्भिक्ष करता है ॥ १६ ॥

दारुणनादस्तरुकोटरोपगो वायसो महाभयदः ।

सलिलमवलोक्य विरुवन् वृष्टिकरोऽब्दानुरात्रौ च ॥ १७ ॥

वृक्ष के कोटर में स्थित होकर कौआ भयङ्कर शब्द करे तो महाभय देने वाला होता है। तथा जल देख कर या मेघगर्जन के बाद में शब्द करे तो वृष्टि करने वाला होता है ॥

दीप्तोद्विग्नो विटपे विकुट्टयन् वह्निकृद्विधुतपक्षः ।

रक्तद्रव्यं दग्धं तृणकाष्ठं वा गृहे विदधत् ॥ १८ ॥

लता के वितान में सूर्याभिमुख और दुखी होकर चञ्चु से अपने शरीर को कूटे, पक्ष को चलावे तथा लाल द्रव्य या दग्ध, तृण अथवा काष्ठ को घर में ले आवे तो अग्निभय करता है। कहा भी है—

रक्तद्रव्यं प्रदग्धं च धान्यं गेहेऽग्निदः स्मृतः ॥ १८ ॥

दीप्त दिशाओं के वश काक का फल—

ऐन्द्र्यादिदिगवलोकी सूर्याभिमुखो रुवन् गृहे गृहिणः ।

राजभयचोरबन्धनकलहाः स्युः पशुभयं चेति ॥ १९ ॥

यदि कौआ गृहस्थों के घर पर स्थित होकर पूर्व आदि दीप्त दिशा की तरफ मुख करके शब्द करे तो क्रम से राजभय, चोरभय, बन्धन और कलह होता है। जैसे दीप्त पूर्व दिशा की तरफ मुख करके शब्द करे तो राजभय, दीप्त दक्षिण दिशा की तरफ मुख करके शब्द करे तो चोरभय, दीप्त पश्चिम दिशा की तरफ मुख करके शब्द करे तो बन्धन और दीप्त उत्तर दिशा की तरफ मुख करके शब्द करे तो कलह होता है। तथा दीप्त विदिशाओं की तरफ मुख करके शब्द करे तो पशुओं को भय होता है ॥ १९ ॥

शान्त पूर्व दिशा के वश काक का फल—

शान्तामैन्द्रीमवलोकयन् रुयाद्राजपुरुषमित्राप्तिः ।

भवति च सुवर्णलब्धिः शाल्यन्नगुडाशनाप्तिश्च ॥ २० ॥

यदि कौआ शान्त पूर्व दिशा को देखता हुआ शब्द करे तो राजपुरुष और मित्र का समागम, सुवर्ण का लाभ तथा शालिधान्य और गुड़ मिश्रित भोजन का लाभ होता है ॥

शान्त आग्नेय और दक्षिण दिशा के वश काक का फल—

आग्नेय्यामनलाजीविकयुवतिप्रवरधातुलाभश्च ।

याम्ये माषकुलुत्थाभोज्यं गान्धर्विकैर्योगः ॥ २१ ॥

यदि कौआ शान्त आग्नेय कोण को देखता हुआ शब्द करे तो अग्नि से जीविका करने वाले (सोनार, लोहार आदि) और युवती स्त्री का समागम तथा उत्तम धातु

(सुवर्ण आदि) का लाभ होता है। यदि कौआ शान्त दक्षिण दिशा को देखता हुआ शब्द करे तो उड़द और कुलथी का भोजन तथा गान विद्या जानने वाले के साथ समागम होता है ॥ २१ ॥

शान्त नैर्ऋत्य कोण और पश्चिम दिशा के वश काक का फल—

नैर्ऋत्यां दूताश्वोपकरणदधितैलपललभोज्याप्तिः।
वारुण्यां मांससुरासवधान्यसमुद्ररत्नाप्तिः ॥ २२ ॥

यदि कौवा शान्त नैर्ऋत्य कोण को देखता हुआ शब्द करे तो दूत, घोड़े का उपकरण दही, तेल, मांस और भोज्य पदार्थ का लाभ होता है। यदि शान्त पश्चिम दिशा की तरफ देखता हुआ शब्द करे तो मांस, मद्य, आसव, धान्य और समुद्रोत्पन्न रत्नों का लाभ होता है ॥ २२ ॥

शान्त वायव्य कोण और उत्तर दिशा के वश काक का फल—

मारुत्यां शस्त्रायुधसरोजवल्लीफलाशनाप्तिश्च।
सौम्यायां परमान्नाशनं तुरङ्गाम्बरप्राप्तिः ॥ २३ ॥

यदि कौआ शान्त वायव्य दिशा को देखता हुआ शब्द करे तो शस्त्र, लोहा, आयुध (खड्ग आदि), कमल, लता, फल और भोजन का लाभ होता है। यदि शान्त उत्तर दिशा की तरफ मुख करके शब्द करे तो पायस भोजन, घोडा और वस्त्र का लाभ होता है ॥ २३ ॥

शान्त ईशान कोण के वश काक का फल—

ऐशान्यां सम्प्राप्तिर्घृतपूर्णानां भवेदनडुहश्च।
एवं फलं गृहपतेर्गृहपृष्ठसमाश्रिते भवति ॥ २४ ॥

यदि कौवा शान्त ईशान कोण की तरफ मुख करके शब्द करे तो घी से युक्त भक्ष्य पदार्थ और बैल का लाभ होता है। इसी प्रकार घर के पीछे स्थित कौए का फल गृहस्वामी को होता है ॥ २४ ॥

कर्ण सम काक का फल—

गमने कर्णसमश्चेत् क्षेमाय न कार्यसिद्धये भवति।
अभिमुखमुपेति यातुर्विरुवन् विनिवर्त्तयेद्यात्राम् ॥ २५ ॥

यदि यात्रा काल में कान के बराबर होकर कौवा उड़े तो कुशल करता है किन्तु कार्य की सिद्धि नहीं होती है। तथा यात्रा करने वाले के सामने में शब्द करता हुआ आ जाय तो यात्रा में विघ्न करता है। कहा भी है—

यातुः कर्णसमो ध्वाङ्क्षः क्षेमे नार्थप्रसाधकः ॥ २५ ॥

दक्षिण और वाम भाग के वश काक का फल—

वामे वाशित्वादौ दक्षिणपार्श्वेऽनुवाशते यातुः।
अर्थापहारकारी तद्विपरीतोऽर्थसिद्धिकरः ॥ २६ ॥

यदि कौआ पहले यात्रा करने वाले के वाम भाग में शब्द करके फिर दक्षिण भाग में शब्द करे तो धन का अपहरण करने वाला होता है। इससे विपरीत हो (दक्षिण भाग में शब्द करके फिर वाम भाग में शब्द करे) तो अर्थ सिद्धि करता है ॥ २६ ॥

वाम और दक्षिण भाग स्थित काक का फल—

यदि वाम एव विरुवन् मुहुर्मुहुर्यायिनोऽनुलोमगतिः ।
अर्थस्य भवति सिद्धयै प्राच्यानां दक्षिणश्चैवम् ॥ २७ ॥

यदि गमन करने वाले के वाम भाग में स्थित कौआ पीछे गमन शील होकर बार बार शब्द करे तो अर्थ की सिद्धि होती है। पूर्व देश वासियों के दक्षिण में स्थित काक का इस प्रकार फल होता है। अर्थात् यात्रा काल में पूर्व देश वासियों के दक्षिण में स्थित कौआ पीछे गमन शील होकर शब्द करे तो अर्थ की सिद्धि होती है ॥ २७ ॥

गमन करने वाले को घर बैठे ही फल—

वामः प्रतिलोमगतिर्विरुवन् गमनस्य विघ्नकृद्भवति ।
तत्रस्थस्यैव फलं कथयति तद्वाञ्छितं गमने ॥ २८ ॥

गमन करने वाले के वाम भाग में स्थित कौआ प्रतिलोम गति वाला (अभिमुख में आता हुआ) होकर शब्द करे तो यात्रा में विघ्न करता है। किन्तु यात्रा में जो अभिलषित फल होता है वह घर बैठे ही मिल जाता है ॥ २८ ॥

दक्षिण और वाम भाग के वश काक का फल—

दक्षिणविरुतं कृत्वा वामे विरुयाद्यथेप्सितावाप्तिः ।
प्रतिवाश्य पुरो यायाद् द्रुतमत्यर्थागमो भवति ॥ २९ ॥

यदि कौआ गमन करने वाले के दक्षिण भाग में शब्द करके वाम भाग में शब्द करे तो अभिलषित अर्थ का लाभ होता है। यदि शब्द करके आगे होकर चला जाय तो गमन करने वाले को अधिक धन का लाभ होता है। कहा भी है—

वामपार्श्वस्थिताद्याति दक्षिणाद्वापि वामग. ॥ २९ ॥

काक का और फल—

प्रतिवाश्य पृष्ठतो दक्षिणेन यायाद् द्रुतं क्षतजकारी ।
एकचरणोऽर्कमीक्षन् विरुवंश्च पुरो रुधिरहेतुः ॥ ३० ॥

यदि कौवा पीठ की तरफ शब्द करके दक्षिण पार्श्व से होकर चला जाय तो गमन करने वाले के शरीर से किसी कारण वश खून निकलता है। यदि एक पाँव से खड़ा होकर सूर्य को देखता हुआ कौआ शब्द करे तो आगे खून निकलने का कारण होता है ॥ ३० ॥

काक के द्वारा प्रधान पुरुष के वध का निरूपण—

दृष्ट्वार्कमेकपादस्तुण्डेन लिखेद्यदा स्वपिच्छानि ।
पुरतो जनस्य महतो वधमभिधत्ते तदा बलिभुक् ॥ ३१ ॥

यदि कौवा एक पाँव से खड़ा होकर सूर्य को देखते देखते अपनी चोंच से पखों को कुरेदे तो भविष्य में किसी प्रधान पुरुष के वध को सूचित करता है ॥ ३१ ॥

धान्य सहित भूमिलाभ और कष्ट का योग—

सस्योपेते क्षेत्रे विरुवति शान्ते ससस्यभूलब्धिः ।
आकुलचेष्टो विरुवन् सीमान्ते क्लेशकृद्यातुः ॥ ३२ ॥

यदि धान्य सहित खेत की शान्ता दिशा में स्थित होकर काक शब्द करे तो ...

सहित भूमि का लाभ होता है। तथा गाँव की सीमा के अन्त में स्थित होकर व्याकुलता पूर्वक शब्द करे तो गमन करने वाले को क्लेश करने वाला होता है ॥ ३२ ॥

स्निग्ध पत्र आदि पर स्थित काक का फल—

सुस्निग्धपत्रपल्लवकुसुमफलानम्रसुरभिमधुरेषु ।
सक्षीराव्रणसंस्थितमनोज्ञवृक्षेषु चार्थसिद्धिकरः॥ ३३ ॥

स्निग्ध पत्ते, नवीन पल्लव, फूल और फलों से नम्र, सुगन्धि युत, मधुर, छिद्र रहित और मनोहर वृक्ष पर स्थित काक अर्थ सिद्धि करने वाला होता है ॥ ३३ ॥

पके हुये धान्य वाले स्थान आदि में स्थित काक का फल—

निष्पन्नसस्यशाद्वलभवनप्रासादहर्म्यहरितेषु ।
धन्योच्छ्रयमङ्गल्येषु चैव विरुवन् धनागमदः ॥ ३४ ॥

पके हुये धान्य वाले स्थान, दूब युक्त गृह, देवगृह, हर्म्य, हरा स्थान, धन्य (शुभ) स्थान, ऊँचे स्थान और प्रशस्त स्थान में स्थित काक शब्द करे तो धन की प्राप्ति होती है।

गौ के पूंछ आदि पर स्थित काक का फल—

गोपुच्छस्थे वल्मीकगेऽथवा दर्शनं भुजङ्गस्य ।
सद्यो ज्वरो महिषगे विरुवति गुल्मे फलं स्वल्पम् ॥ ३५ ॥

गौ की पूंछ या वल्मीक पर बैठा हुआ काक शब्द करे तो सर्प का दर्शन, भैंस पर बैठा हुआ काक बोले तो शीघ्र ज्वर और गुल्म पर बैठा हुआ काक बोले तो अल्प शुभाशुभ फल होता है ॥ ३५ ॥

तृण राशि आदि पर स्थित काक का फल—

कार्यस्य व्याघातस्तृणकूटे वामगेऽम्बुसंस्थे वा ।
ऊर्ध्वाऽग्निप्लुष्टेऽशनिहते च काके बधो भवति ॥ ३६ ॥

तृण के ढेर पर या वाम भाग गत जल में बैठा हुआ काक बोले तो कार्य का विनाश होता है। तथा ऊर्ध्व भाग में अग्नि दग्ध या बिजली से हत वृक्ष पर बैठा हुआ काक शब्द करे तो बध होता है ॥ ३६ ॥

काँटेदार वृक्ष आदि पर स्थित काक का फल—

कण्टकमिश्रे सौम्ये सिद्धिः कार्यस्य भवति कलहश्च ।
कण्टकिनि भवति कलहो वल्लीपरिवेष्टिते बन्धः ॥ ३७ ॥

काँटेदार सौम्य (दूध वाले) वृक्ष पर बैठा हुआ काक कार्य की सिद्धि और कलह करता है। केवल काँटेदार वृक्ष पर बैठा हुआ काक कार्य की असिद्धि और लताओं से वेष्टित वृक्ष पर बैठा हुआ काक बन्धन करता है ॥ ३७ ॥

ऊपर से कटे हुये वृक्ष आदि पर स्थित काक का फल—

छिन्नाग्रेऽङ्गच्छेदः कलहः शुष्कद्रुमस्थिते ध्वाङ्क्षे ।
पुरतश्च पृष्ठतो वा गोमयसंस्थे धनप्राप्तिः ॥ ३८ ॥

यदि काक ऊपर से कटे हुये वृक्ष पर बैठा हो तो अङ्गच्छेद, सूखे वृक्ष पर बैठा हो तो कलह और आगे या पीछे गोबर पर बैठा हो तो धन का लाभ करता है ॥ ३८ ॥

मृत पुरुष आदि के अङ्गों पर स्थित काक का फल—

मृतपुरुषाङ्गावयवस्थितोऽभिविरुवन् करोति मृत्युभयम् ।
भञ्जन्नस्थि च चञ्च्वा यदि विरुवत्यस्थिभङ्गाय ॥ ३९ ॥

मृत पुरुष के अङ्गों पर स्थित होकर बोलता हुआ काक गमन करने वाले के सामने पड़े तो मृत्यु भय होता है। तथा चोंच से हड्डी को तोड़ता हुआ काक शब्द करे तो गमन करने वाले की हड्डी टूटने का कारण होता है ॥ ३९ ॥

काक की चेष्टा से और फल—

रज्ज्वस्थिकाष्ठकण्टकिनिःसारशिरोरुहानने रुवति ।
भुजगगदंष्ट्रितस्करशस्त्राग्निभयान्यनुक्रमशः ॥ ४० ॥

यदि कौआ रस्सी, हड्डी, काठ, काँटेदार वस्तु, असार वस्तु और केश को मुख में लेकर शब्द करे तो क्रम से सर्प, रोग, दंष्ट्री (सूअर आदि), चोर, शस्त्र और अग्नि भय करता है। कहा भी है—

काष्ठरज्ज्वस्थिनिःसारकेशकण्टकिमृद्रुवन् । व्यालाहिव्याधिशस्त्राग्नितस्करेभ्यो भयङ्करः ॥४०॥

सितकुसुमाशुचिमांसाननेऽर्थसिद्धिर्यथेप्सिता यातुः ।
पक्षौ धुन्वन्नूर्ध्वाननेन च विघ्नं मुहुः क्वणति ॥ ४१ ॥

यदि कौआ सफेद पुष्प, अपवित्र वस्तु और मांस को मुख में लेकर शब्द करे तो गमन करने वाले के अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है। पंखों को कँपाते हुये ऊपर को मुख करके बार बार शब्द करे तो यात्रा में विघ्न होता है ॥ ४१ ॥

यदि शृङ्खलां वरत्रां वल्लीं वादाय वाशते बन्धः ।
पाषाणस्थे च भयं क्लिष्टापूर्वाध्विकयुतिश्च ॥ ४२ ॥

यदि कौआ लोहे की जञ्जीर, वरत्रा (चमड़े की रस्सी) और लता को मुख में लेकर शब्द करे तो बन्धन होता है। तथा पत्थर पर बैठा हुआ काक मार्ग में अपरिचित मनुष्य का समागम करता है ॥ ४२ ॥

अन्योऽन्यभक्षसंक्रामिताननेतुष्टिरुत्तमा भवति ।
विज्ञेयः स्त्रीलाभो दम्पत्योर्विरुवतोर्युगपत् ॥ ४३ ॥

यदि दो कौवे परस्पर एक दूसरे के मुख में भोजन देते हों तो गमन करने वाले को उत्तम तुष्टि का लाभ होता है। तथा नर मादा दोनों साथ साथ शब्द करें तो स्त्री लाभ होता है ॥ ४३ ॥

प्रमदाशिरउपगतपूर्णकुम्भसंस्थेऽङ्गनार्थसम्प्राप्तिः ।
घटकुट्टने सुतविपद्घटोपहदनेऽन्नसम्प्राप्तिः ॥४४॥

स्त्री के मस्तक स्थित जलपूर्ण घड़े पर बैठा हुआ कौआ स्त्री लाभ कराता है। घड़े को ताड़न करे तो पुत्र का मरण होता है तथा घड़े पर बीट कर दे तो भोजन लाभ होता है॥

स्कन्धावारादीनां निवेशसमये रुवंश्चलत्पक्षः ।
ह्यचयतेऽन्यत्स्थानं निश्चलपक्षस्तु भयमात्रम् ॥ ४५ ॥

यात्रा में गया हुआ राजा जहाँ पर निवास करता है उसको 'स्कन्धावार' कहते हैं। स्कन्धावार आदि के निर्माण काल में पंखों को चलाता हुआ काक शब्द करे तो दूसरे स्थान में निवास करने को सूचित करता है। तथा पंखों को स्थिर करके शब्द करे तो केवल भय को सूचित करता है। स्थानान्तर गमन को नहीं। कहा भी है—

सेनानिविष्टः सार्थे वा वासो दृष्टो न वाशते। तस्य देशप्रयातस्य भयमात्रोपजायते ॥४५॥

प्रविशद्भिः सैन्यादीन् सगृध्रकङ्कैर्विनामिषं ध्वाङ्क्षैः ।
अविरुद्धैस्तैः प्रीतिर्द्विपतां युद्धं विरुद्धैश्च ॥ ४६ ॥

यदि गिद्ध और कङ्क पक्षी के साथ कौए बिना मांस के सेना आदि (पुर और गाँव) में (परस्पर विरोध रहित होकर) प्रवेश करें तो शत्रु के साथ स्नेह और कलह करते हुये प्रवेश करें तो युद्ध होता है ॥ ४६ ॥

बन्धः सूकरसंस्थे पङ्काक्ते सूकरे द्विकेऽर्थाप्तिः ।
क्षेमं खरोष्ट्रसंस्थे केचित्प्राहुर्वधं तु खरे ॥ ४७ ॥

सूअर पर स्थित काक हो तो बन्धन, कीचड़ से लिपटे हुये सूअर पर स्थित काक हो तो धन का लाभ तथा गदहे और ऊँट पर स्थित काक हो तो क्षेम करता है। किसी का मत है कि गदहे पर स्थित काक वध करता है। कहा भी है—

वधबन्धकर' क्रोशन् खरसूकरपृष्ठगः। पङ्कदिग्धशरीरस्य वराहस्योपरि स्थित ॥
वायस' शस्यते यातुस्तूर्णीम्भूतो रुवन्नपि ॥ ४७ ॥

वाहनलाभोऽश्वगते विरुवत्यनुयायिनि क्षतजपातः ।
अन्येऽप्यनुव्रजन्तो यातारं काकवद्विहगाः ॥ ४८ ॥

घोड़े पर बैठा हुआ काक शब्द करे तो वाहन का लाभ होता है। तथा पीछे पीछे चलता हुआ काक शब्द करे तो खून गिरता है। काक को छोड़ कर अन्य पक्षी गण भी गमन करने वाले के पीछे पीछे चले तो काक की तरह फल देते हैं। यहाँ पर काश्यप—

उलूककङ्कप्लवगा गृध्रश्येनादयश्च ये। मांसाशिनश्च विहगास्तुल्या वायसचेष्टितैः ॥ ४८ ॥

यहाँ पर विशेष—

द्वात्रिंशत्प्रविभक्ते दिक्चक्रे यथया समुद्दिष्टम् ।
तत्तत्तथा विधेयं गुणदोषफलं पियासूनाम् ॥ ४९ ॥

द्वात्रिंशद्विभक्त दिक्चक्र में जिस प्रकार फल कहा गया है उसी प्रकार गमन करने वालों को गुण दोष फल कहना चाहिये। शान्त पूर्व दिशा में स्थित शकुन शुभ, अशुभ शकुन मध्यम फल, दीप्त पूर्व दिशा में क्रूर चेष्टा वाले शकुन राजा से भय इत्यादि की तरह फल कहना चाहिये ॥ ४९ ॥

काक के शब्द का फल—

का इति काकस्य रुतं स्वनिलयसंस्थस्य निष्फलं प्रोक्तम् ।
कव इति चात्मप्रीत्यै केचि रुवे स्निग्धमित्राप्तिः ॥ ५० ॥
करेति कलहं कुरुकुरु च हर्षमथ कटकटेति दधिभक्तम् ।
केके विरुतं कुकु वा धनलाभं यायिनः प्राह ॥ ५१ ॥

४७, ४८ बृ० सं०

अशुभ शकुन में कर्तव्य—

क्रोशादूर्ध्वं शकुनविरुतं निष्फलं प्राहुरेके
तत्रानिष्टे प्रथमशकुने मानयेत्पञ्च षट् च ।
प्राणायामान्नृपतिरशुभे षोडशैव द्वितीये
प्रत्यागच्छेत् स्वभवनमतो यद्यनिष्टस्तृतीयः ॥ ६२ ॥

कोई कोई (काश्यप आदि आचार्य) कहते हैं कि एक कोस चले जाने के बाद शकुन का शब्द निष्फल होता है। तथा यात्रा काल में यदि पहला शकुन अशुभ हो तो ग्यारह प्राणायाम और दूसरा शकुन अशुभ हो तो सोलह प्राणायाम करे। यदि तीसरा शकुन अशुभ हो तो घर लौट आवे। यहां पर काश्यप—

क्रोशादनन्तरं यत् स्याच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् । निष्फलं तद्विजानीयं शकुनानां विचेष्टितम् ॥

प्राणायाम का लक्षण—

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥

अर्थ—सात व्याहृति (ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम्), प्रणव (ओं), शिर (आपोज्योतीरसोऽमृतम्) इनके साथ गायत्री (तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्) को श्वास को रोकते हुए तीन बार पढ़े ॥ ६२ ॥

'विमला' हिन्दी टीकायां वायसविरुताध्यायः पञ्चनवतितमः ॥ ९५ ॥

अथ शाकुनोत्तराध्यायः

फलादेश के लिये कुछ उपदेश—

दिग्देशचेष्टास्वरवासरर्क्षमुहूर्तहोराकरणोदयांशान् ।
चरस्थिरोन्मिश्रबलाबलं च बुद्ध्वा फलानि प्रवदेद्रुतज्ञः ॥१॥

दिक् (पूर्व आदि और अङ्गारित आदि), देश, चेष्टा, स्वर (दीप्त और शान्त), दिन नक्षत्र, मुहूर्त (शिवा आदि), होरा (राश्यर्ध और काल होरा), करण, लग्न, अंश, (द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश), चर (मेष, कर्क, तुला और मकर), स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ), उन्मिश्र (द्विस्वभाव=मिथुन, कन्या, धनु और मीन) इन शकुनों का और राशियों का बलाबल जान कर शकुनों के शब्द को जानने वाले फल कहें ॥ १ ॥

उनमें भेद का प्रदर्शन—

द्विविधं कथयन्ति संस्थितानामागामिस्थिरसञ्ज्ञितं च कार्यम् ।
नृपदूतचरान्यदेशजातान्यभिघातः स्वजनादि चागमाख्यम् ॥ २ ॥

एक देश में स्थित पुरुषों के दो प्रकार के कार्य कहे गये हैं, उनमें एक आगामि (भविष्यत्) और दूसरा स्थिरसञ्ज्ञक (वर्तमान और भूत) है। राजा, दूत, गूढ पुरुष और परदेश से उत्पन्न कार्य अन्य हैं। उपद्रव तथा बन्धु और मित्रों का आगमन रूप कार्य भविष्यत् है ॥ २ ॥

स्थिर और चर का ज्ञान—

उद्वद्वसङ्ग्रहणभोजनचौरवह्नि-
वर्षोत्सवात्मजवधाः कलहो भयं च।
वर्गः स्थिरोऽयमुदयेन्दुयुते स्थिरर्क्षे
विन्द्यात् स्थिरं चरगृहे च चरं यदुक्तम् ॥ ३ ॥

उद्वह (वहाँ पर स्थित), संग्रहण (किसी के साथ संयोग), भोजन, चोर, अग्नि, वर्षा, उत्सव, पुत्र, वध, कलह, भय ये स्थिर वर्ग हैं। यदि ये वर्ग स्थिर स्थान में उत्पन्न स्थिर स्थान स्थित शकुन के द्वारा सूचित किये जाते हों तो चर संज्ञक होते हैं। यदि ये वर्ग स्थिर हों और उदय कालिक लग्न और चन्द्र स्थिर राशि में हो तो उद्वहादि कार्य उसी रोज या भूत जाने तथा लग्न और चन्द्र चर राशि में हो और चर स्थान स्थित शकुन हों तो उद्वहादि कार्य भविष्य में जाने ॥ ३ ॥

स्थिर और चर का लक्षण—

स्थिरप्रदेशोपलमन्दिरेषु सुरालये भूजलसन्निधौ च।
स्थिराणि कार्याणि चराणि यानि चलप्रदेशादिपु चागमाय ॥ ४ ॥

स्थिर स्थान, पत्थर, गृह, देवालय, पृथ्वी पर, जल के समीप इन स्थानों में स्थित शकुन हों तो स्थिर कार्य का शुभाशुभ फल होता है। यदि वे शकुन चल प्रदेश आदि में स्थित हों तो भविष्यत् कार्य के लिये सूचित करता है ॥ ४ ॥

वर्षा का ज्ञान—

आप्योदयर्क्षक्षणदिग्जलेषु पक्षावसानेषु च ये प्रदीप्ताः।
सर्वेऽपि ते वृष्टिकरा रुवन्तः शान्तोऽपि वृष्टिं कुरुतेऽम्बुचारी ॥ ५ ॥

जलचर (कर्क, मकर और मीन) लग्न, जलसंज्ञक नक्षत्र (पूर्वाषाढा और शतभिषा), जलसंज्ञक मुहूर्त, पश्चिम दिशा, जल स्थान इन स्थानों में तथा पक्षावसान (अमा और पूर्णिमा) में स्थित प्रदीप्त शकुन शब्द करें तो सब वृष्टि करने वाले होते हैं। शान्त भी जलचारी शकुन जलादि में स्थित हों तो वृष्टि करने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

आग्नेय भय दोष ज्ञान—

आग्नेयदिग्लग्नमुहूर्त्तदेशेष्वर्कप्रदीप्तोऽग्निभयाय रौति।
विष्ट्यां यमर्क्षोदयकण्टकेषु निष्पत्रवल्लीषु च दोषकृत् स्यात् ॥६॥

आग्नेय (पूर्व और दक्षिण) दिशा, आग्नेय (क्रूर=मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर और कुम्भ) लग्न, अग्नि नामक मुहूर्त, आग्नेय (कृत्तिका) नक्षत्र, आग्नेय देश (अग्नि वाला स्थान) इन स्थानों में सूर्य से प्रदीप्त होकर शकुन शब्द करें तो अग्निभय होते हैं। तथा विष्टि करण, शनि की राशि (मकर और कुम्भ) लग्न में हो और कँटेदार वृक्ष या पत्र रहित लता पर स्थित सूर्य से दीप्त शकुन बैठा हो तो दोष करने वाला होता है ॥ ६ ॥

कलह ज्ञान—

ग्राम्यः प्रदीप्तः स्वरचेष्टिताभ्यामुग्रो रुवन् कण्टकिनि स्थितश्च।
भौमर्क्षलग्ने यदि नैर्ऋते च स्थितोऽभितश्चेत्कलहाय दृष्टः ॥ ७ ॥

आग्य शकुन स्वर और चेष्टा से प्रदीप्त हो, बहुत ओर से शब्द करता हो, कटिदार वृक्ष पर स्थित हो, मङ्गल की राशि (मेष और वृश्चिक) लग्न में हो, नैर्ऋत्य कोण में स्थित हो और सम्मुख, वाम या दक्षिण पार्श्व में दिखाई दे तो कलह करता है ॥ ७ ॥

स्त्री के साथ समागम का योग—

लग्नेऽथचेन्दोर्भृगुभांशसंस्थे विदिक्स्थितोऽधोवदनश्च रौति ।
दीप्तः स चेत् सङ्ग्रहणं करोति योन्या तया या विदिशि प्रदिष्टा ॥८॥

कर्क लग्न में, शुक्र के नवांश में, विदिशा में स्थित होकर दीप्त शकुन नीचे को मुख करके शब्द करे तो उस विदिशा में उक्त स्त्री (स्त्रोणां विकल्पे बृहती कुमारी इत्यादि से उक्त स्त्री) के साथ समागम होता है ॥ ८ ॥

पुरुष और नपुंसक के साथ समागम का योग—

पुंराशिलग्ने विषमे तिथौ च दिक्स्थः प्रदीपः शकुनो नराख्यः ।
वाच्यं तदा सङ्ग्रहणं नराणां मिश्रे भवेत् पण्ढकसम्प्रयोगः ॥९॥

पुरुष राशि (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ) के लग्न में, विषम (१, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५) तिथियों में और पूर्व आदि (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर) दिशाओं में पुरुष संज्ञक दीप्त शकुन हो तो पुरुषों के साथ समागम होता है। मिश्रित (पुरुष संज्ञक लग्न में सम तिथि हो या सम राशि के लग्न में विषम तिथि हो तथा विदिशा या दिशा में स्थित पुरुषसंज्ञक दीप्त शकुन) हो तो नपुंसक के साथ समागम होता है ॥ ९ ॥

प्रधान पुरुष के आगमन का कारण—

एवं रवेः क्षेत्रनवांशलग्ने लग्ने स्थिते वा स्वयमेव सूर्ये ।
दीप्तोऽभिघत्ते शकुनो विरौति पुंसः प्रधानस्य हि कारणं तत् ॥१०॥

इसी प्रकार जिस समय नवांश और लग्न में रवि की राशि हो या लग्न में स्वयं सूर्य बैठा हो उस समय शकुन शब्द करे तो प्रधान पुरुष के आगमन का कारण होता है ॥१०॥

प्रकारान्तर से कर्मों का विधान—

प्रारभ्यमाणेषु च सर्वकार्येष्वर्कान्विताद्वाद्गणयेद्विलग्नम् ।
सम्पद्विपच्चेति यथाक्रमेण सम्पद्विपच्चेति तथैव वाच्या ॥ ११ ॥

सब कार्यों के प्रारम्भ में सूर्य युत राशि से लग्न राशि तक गिने। जिस राशि में रवि बैठा हो वह सम्पत्, द्वितीय राशि विपत्, तृतीय सम्पत् इत्यादि क्रम से लग्न राशि तक गिने। सम्पत् राशि में कार्य की सम्पत्ति और विपत् राशि में कार्य की विपत्ति जाननी चाहिये ॥ ११ ॥

आगत के आकृति का ज्ञान—

काणेनाक्ष्णा दक्षिणेनैति सूर्ये चन्द्रे लग्नाद् द्वादशे चेतरेण ।
लग्नस्थेऽर्के पापदृष्टेऽन्ध एव कुब्जः स्वर्क्षे श्रोत्रहीनो जडो वा ॥१२॥
क्रूरः षष्ठे क्रूरदृष्टो विलग्नाद् यस्मिन् राशौ तद्गृहाङ्गे व्रणोऽस्य ।
एवं प्रोक्तं यन्मया जन्मकाले चिह्नं रूपं तत्तदस्मिन् विचिन्त्यम् ॥१३॥

यदि लग्न से बारहवें स्थान में सूर्य हो तो दाहिनी आँख से काना, चन्द्र हो तो बाईं आँख से काना, लग्नस्थित सूर्य पापग्रह (सूर्य, मङ्गल और शनि) से देखा जाता हो तो अन्धा, सिंह लग्न में स्थित सूर्य हो तो कुबड़ा, बहरा और मूर्ख तथा जिस राशि के लग्न से पापग्रह (सूर्य, मङ्गल और शनि) छठे स्थान में स्थित होकर पापग्रह से देखा जाता हो उस राशि के सम्बन्धी अङ्ग (कालाङ्गानि-वराङ्ग इत्याद्युक्त अङ्ग) में व्रण युत पुरुष का समागम होता है। इस प्रकार जन्म में जो मैंने कही है उन सबका इस प्रकरण में विचार करना चाहिये ॥ १२-१३ ॥ तथा च—

सौम्यर्क्षांशे रविजरुधिरौ चेत् सदन्तोऽत्र जातः-कुब्जः स्वर्क्षे शशिनि तनुगे मन्दमाहेयदृष्टे॥
पङ्गुर्मीने यमशशिकुजैर्वीक्षिते लग्नसंस्थे सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत् सौम्यदृष्टिः॥

सौरशशांकदिवाकरदृष्टे वामनको मकरान्त्यविलग्ने।
धीनवमोदयगैश्च दृकाणैः पापयुतैरभुजाङ्घ्रिशिराः स्यात् ॥

रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षिते-नयनरहितः सौम्यासौम्यैः सबुद्बुदलोचनः॥
व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रविर्नशुभगादिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः ॥

मन्द बुद्धियों के लिये 'बोधियात्रा' नामक ग्रन्थ में यवनेश्वरकृत अक्षर कोश लिखते हैं।

उसमें पहले प्रयोजन प्रदर्शन—

अतः परं लोकनिरूपितानि द्रव्येषु नानाक्षरसंग्रहाणि।
इष्टप्रणीतानि विभाजितानि नामानि केन्द्रक्रमशः प्रवक्ष्ये ॥ १ ॥

अब प्रश्न ज्ञान के बाद द्रव्यों (धातु, मूल और जीवों) में लोक प्रसिद्ध, अनेक अक्षरों से संगृहीत, इष्ट (नारायण, अर्क, वसिष्ठ, पराशर, मय आदि) से निर्मित, विभागीकृत नामों को केन्द्र के क्रम से कहते हैं ॥ १ ॥

क्रमज्ञान—

लग्नाम्बुसंस्थास्तनभःस्थितेषु क्षेत्रेषु ये लग्नगता गृहांशाः।
तेभ्योऽक्षराण्यात्मगृहाश्रयाणि विन्द्याद् ग्रहाणां स्वगणक्रमेण ॥ २ ॥

लग्न, चतुर्थ लग्न, सप्तम लग्न और दशम लग्न में जिस राशि का नवांश हो, उन पर से अपनी-अपनी राशि के आश्रित अक्षरों और ग्रहों के अपने गण के क्रम से अक्षरों को जाने॥

ग्रहों के वर्ग—

कवर्गपूर्वान् कुजशुक्रचान्द्रिजीवार्कजानां प्रवदन्ति वर्गान्।
यकारपूर्वाः शशिनो निरुक्ता वर्णास्त्वकारप्रभवा रवेः स्युः ॥ ३ ॥

क ख ग घ ङ ये मङ्गल के, च छ ज झ ञ ये शुक्र के, ट ठ ड ढ ण ये बुध के, त थ द ध न ये बृहस्पति के, प फ ब भ म ये शनि के, य र ल व श ष स ह ये चन्द्र के और अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः ये सूर्य के वर्ग हैं ॥ ३ ॥

राशि और द्रेष्काण वश नामाक्षरों की संख्या—

द्रेष्काणवृद्ध्या प्रवदन्ति नाम त्रिपञ्चसप्ताक्षरमोजराशौ।
युग्मे तु विन्द्याद् द्विचतुष्कषट्कं नामाक्षराणि ग्रहदृष्टिवृद्ध्या ॥ ४ ॥

द्रेष्काण की वृद्धि से नाम कहते हैं-जैसे विषम राशि के प्रथम द्रेष्काण में तीन अक्षरों का, द्वितीय द्रेष्काण में पाँच अक्षरों का और तृतीय द्रेष्काण में सात अक्षरों का नाम जाने। तथा सम राशि के प्रथम द्रेष्काण में दो अक्षरों का, द्वितीय द्रेष्काण में चार अक्षरों का और तृतीय द्रेष्काण में छ अक्षरों का नाम जाने। ग्रहदृष्टि की वृद्धि से नामाक्षर होते हैं। यहाँ पर दो प्रकार से नामाक्षर लाते हैं, प्रथम स्थिति वश और द्वितीय दृष्टि वश, वहाँ दृष्टि के वश नामाक्षर लाने में दृष्टिबल विचार करना चाहिए। कहा भी है—

त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमान्यवलोकयन्ति चरणाभिवृद्धितः।
रविजामरेज्यरुधिराः परे च क्रमशो भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः॥ ४॥

नवांश के वश नामाक्षरों की संख्या—

वर्गोत्तमे त्र्यक्षरकं चरांशे स्थिरर्क्षभागे चतुरक्षरं तत्।
ओजेषु चैभ्यो विषमाक्षराणि स्युर्द्विस्वभावेषु तु राशिवच्च॥ ५॥

चर राशि में प्रथम नवांश, स्थिर राशि में पञ्चम नवांश और द्विस्वभाव राशि में नवम नवांश वर्गोत्तम संज्ञक है। यदि सम राशियों में चर राशि का वर्गोत्तम नवांश हो तो दो अक्षरों का, स्थिर राशि का वर्गोत्तम नवांश हो तो चार अक्षरों का, विषम राशियों में चर राशि का वर्गोत्तम नवांश हो तो तीन अक्षरों का और स्थिर राशि का वर्गोत्तम नवांश हो तो पाँच अक्षरों का नाम होता है। द्विस्वभाव राशियों में राशि की तरह नामाक्षरों की संख्या होती है। जैसे—द्विस्वभाव राशियों में विषम राशि (मिथुन या धनु) वर्गोत्तम नवांश हो तो तीन या सात अक्षरों का और सम राशि (कन्या या मीन) का नवांश हो तो चार या छे अक्षरों का नाम होता है॥ ५॥

यहाँ पर विशेष—

द्विमूर्त्तिसञ्ज्ञे तु वदेद् द्विनाम सौम्येक्षिते द्विप्रकृतौ च राशौ।
यावान् गणः स्वोदयगोऽशकानां तावान् ग्रहः सम्प्रदकेऽक्षराणाम्॥ ६॥

द्विस्वभाव राशि या सौम्य (बुध) से दृष्ट द्विस्वभाव राशि में दो नाम कहना चाहिए। तथा लग्न राशि में जितने नवांशों की संख्या बीती हो उतनी नामाक्षरों संख्या कहनी चाहिये॥ ६॥

संयुक्ताक्षर का ज्ञान—

संयोगमादौ बहुलेषु विन्द्यात् कूटेषु संयोगपरं वदन्ति।
स्वोच्चांशके द्विःकृतमृक्षयोगाद् गुर्वक्षरं तद्भवनांशके स्यात्॥ ७॥

बहुल (विषम राशियों) में नाम के आदि का संयुक्ताक्षर जाने। जैसे—श्रीधर, क्षीर, स्मर आदि। कूट (सम राशियों) में नाम के अन्त में संयुक्ताक्षर कहते हैं। जैसे पद्म, धर्म, वत्स आदि। अपने उच्चांश में राशि के योग से एक अक्षर दो बार आता है। यथा—विषम राशि में अपना उच्चांश हो तो प्रथम आदि विषम अक्षर दो बार आता है। जैसे—ददद, दामोदर आदि। यदि सम राशि में अपना उच्चांश हो तो द्वितीय आदि सम अक्षर दो बार आता है जैसे—देवदत्त, धराधर आदि। लग्न स्थित नवांश राशि में गुरु अक्षर होता है। जैसे—लग्न स्थित नवांश विषम राशि में हो तो नाम का विषम अक्षर संयुक्त होता है जैसे—कपित्थ, अश्वत्थ आदि। सम राशि में हो तो सम अक्षर संयुक्त होता है, जैसे—धम्भ, शुद्ध, शुद्धोदन आदि। ग्रहों के उच्च राशि—

अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः।
दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः॥ ७॥

यहाँ पर विशेष—

मात्रादियुक् स्याद् ग्रहयुक्त्रिकोणे द्रेष्काणपर्यायवदक्षरेषु।
नभोबलेषूर्ध्वमधोऽम्बुजेषु ज्ञेयो विसर्गोऽस्तुबलान्वितेषु॥ ८॥

लग्न से पञ्चम या नवम स्थान ग्रहों (सूर्यादि) से युत हो तो नाम के आदि का अक्षर मात्रा युक्त होता है। तथा द्रेष्काण के पर्याय तुल्य अक्षर मात्रा से युक्त होता है। यथा सम राशि का द्रेष्काण हो तो सम अक्षर मात्रा युक्त होता है। जैसे—ईश्वर आदि।

विषम राशि का द्रेष्काण हो तो विषम अक्षर मात्रा युक्त होता है, जैसे—श्रीधर आदि। यदि लग्न से दशम स्थान बली हो तो ऊर्ध्वमात्रा से युक्त नाम के आदि का अक्षर श्रीधर, वासुदेव, वैश्रवण, शौण्ड आदि। चतुर्थ स्थान बली हो तो अधोमात्रा युत नाम के आदि का अक्षर (सुहिरण्य, शूरवर्मा आदि) और सप्तम स्थान बली हो तो विसर्ग युत नाम के आदि का अक्षर होता है। कहा भी है—

मनुष्यरूपा बलिनो विलग्नाश्चतुष्पदाश्चाम्बरमध्यसंस्थाः ।
जलोद्भवाख्या बलिनो जलस्थाः कीटोऽस्तगो व्योमतले द्विमूर्त्तिः ॥
कण्टककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतुर्थखमानाम् ।
तेषु यथा विहितेषु बलाढ्याः कीटनराम्बुचराः पशवश्च ॥ ८ ॥

शीर्षोदयेषूर्ध्वमुशन्ति मात्रामधश्च पृष्ठोदयराशिगेषु ।
तीर्यक् च विन्द्यादुभयोदये तां दीर्घेषु दीर्घामितरेषु चान्याम् ॥ ९ ॥

शीर्षोदय राशि लग्न में हो तो ऊर्ध्व मात्रा (ओ, औ), पृष्ठोदय राशि लग्न में हो तो अधो मात्रा (उ, ऊ), उभयोदय राशि लग्न में हो तो तिर्यक् मात्रा (ए, ऐ) और दीर्घ राशि (सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक) में दीर्घ मात्रा (आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ) होती है। अन्य राशि (मध्य = मिथुन, कर्क, धनु और मकर, ह्रस्व = मेष, वृष, कुम्भ और मीन) में अन्य मात्रा (अ, इ और उ) होता है। कहा भी है—

शीर्षोदया मानुषसर्वरूपाः ससिंहकीटा यवनैर्निरुक्ताः ।
मत्स्यद्वयं तूभयतः प्रवृत्त पृष्ठेन शेषास्तु सदोदयन्ति ॥

और भी—

गोजाश्विकर्किमिथुनाः सघृगाः निशाख्याः पृष्ठोदया विमिथुना कथितास्त एव ॥
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषाः लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ॥

उक्तं च—आद्यन्तराश्योरुदयप्रमाणं द्वौ द्वौ मुहूर्त्तौ नियतं प्रदिष्टम् ।
क्रमोत्क्रमाभ्यामतिपञ्चमं स्याच्चकार्द्धयोर्विद्घ्युदयप्रमाणम् ॥
एवं प्रमाणानि गृहाणि बुद्ध्या ह्रस्वानि मध्यानि तथायतानि ।
चक्राङ्कभेदै' मद्दीकृतानि मार्गप्रमाणान्यपि कल्पयन्ति ॥

तथा च—पूर्वार्धे विषमाद्यः कृतगुणा मानं प्रतीपं च तत् ॥ ९ ॥

प्राग्लग्नतोयास्तनभःस्थितेषु भेष्वंशकेभ्योऽक्षरसंग्रहः स्यात् ।
क्रूरोऽक्षरं हन्ति चतुष्टयस्थो दृष्ट्यापि मात्रां च त्रिकोणगो वा ॥१०॥

लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान स्थित नवांशों के द्वारा नामाक्षरों का संग्रह होता है। तथा पाप ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो अथवा पाप ग्रह की दृष्टि से भी अक्षर का नाश होता है ॥ १० ॥

शुभग्रहस्तूर्जितवीर्यभागी स्थानांशतुल्याक्षरदः स चोक्तः ।
पश्यन् स्थितः केन्द्रत्रिकोणयोर्वा स्वोच्चेऽपि वर्णद्वयमात्मभागे ॥११॥

अत्यन्त वीर्यशाली शुभग्रह जिस राशि के जितने संख्यक नवांश पर स्थित हो तत्तुल्य अक्षरों को देता है। वही अत्यन्त बलशाली शुभ ग्रह केन्द्र, त्रिकोण, अपने उच्च या अपने नवांश में स्थित होकर देखा जाता हो तो दो अक्षर देता है ॥ ११ ॥

क्षेत्रेश्वरे क्षीणबलेंऽशके च मात्राक्षरं नाशमुपैति तज्जम् ।
असम्भवेऽप्युद्भवमेति तस्मिन् वर्गोत्तमेवांशयुजीशदृष्टे ॥ १२ ॥

लग्न का स्वामी और नवांश बलहीन हो तो उसे उत्पन्न मात्राक्षर का नाश होता है। यदि वही लग्न स्वामी और नवांश असम्भव (बल हीन का असम्भव अर्थात् बली) हो और उच्च स्थित नवांश स्वामी से देखा जाता हो तो मात्राक्षर की उत्पत्ति होती है ॥१२॥

अनिश्चयीकरण—

केन्द्रे यथास्थानबलप्रकर्षं क्षेत्रस्य तत्क्षेत्रपतेश्च बुद्ध्वा।
कार्योऽक्षराणामनुपूर्वयोगो मात्रादिसंयोगविकल्पना च ॥ १३ ॥

केन्द्र में तथा राशि और राशिपति का स्थान और बल की उत्कृष्टता को जान कर अक्षरों का आनुपूर्विक संयोग करना चाहिये। तथा मात्रा आदि के संयोग की भी कल्पना करनी चाहिये ॥ १३ ॥

नवांश के क्रम से राशियों के अक्षर—

तत्रादिराश्यादिचतुर्विलग्नमाद्यंशकादिक्रमपर्ययेण।
प्रशांशकेभ्यः स्ववर्गणाक्षराणामन्वर्थने प्राप्तिरियं विचार्या ॥१४॥

वहाँ प्रथम लग्न राशि फिर उससे चतुर्थ राशि आदि के प्रथम नवांश आदि क्रम से नवांशाधिपति ग्रहों के अपने-अपने वर्गाक्षरों का संयोजन में यह निष्पत्ति करनी चाहिये अग्रिम पद्य से इसका अर्थ स्पष्ट होता है ॥ १४ ॥

आदि राश्यादि क्रम से वर्ण—

मेषे ककारो हिबुके यकारस्तुले चकारो मकरे पकारः।
मेषे छकारो हिबुकेऽप्यकारस्तुले खकारो मकरे फकारः ॥ १५ ॥

जैसे लग्न में मेष राशि और प्रथम नवांश हो तो उससे चतुर्थ-चतुर्थ क्रम से मेष कर्क, तुला और मकर राशियाँ हुईं। मेष में प्रथम नवांश स्वामी मंगल होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर ककार आता है। चतुर्थ राशि (कर्क) का प्रथम नवांश स्वामी चन्द्र है, उसके वर्ग का प्रथम अक्षर यकार आता है। सप्तम राशि (तुला) का स्वामी शुक्र है उसके वर्ग का प्रथम अक्षर चकार आता है और दशम राशि (मकर) का स्वामी शनि है उसके वर्ग का प्रथम अक्षर पकार आता है। यदि मेष राशि के लग्न में द्वितीय नवांश हो तो मेष राशि में द्वितीय नवांश शुक्र के वर्ग का द्वितीय अक्षर छकार, चतुर्थ राशि (कर्क) में द्वितीय नवांश स्वामी सूर्य के वर्ग का प्रथम अक्षर अकार, सप्तम राशि तुला में द्वितीय नवांश स्वामी मंगल के वर्ग का द्वितीय अक्षर खकार और दशम राशि (मकर) में द्वितीय नवांश स्वामी शनि के वर्ग का द्वितीय अक्षर फकार आता है ॥ १५ ॥

मेष लग्न के तृतीय और चतुर्थ नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

मेषे टकारो हिबुके ठकारस्तुले तकारो मकरे थकारः।
मेषे तु रेफो हिबुके जकारस्तुले बकारो मकरे गकारः ॥ १६ ॥

यदि मेष लग्न में तृतीय नवांश हो तो मेष राशि में तृतीय नवांशाधिपति बुध के वर्ग का प्रथम अक्षर टकार, चतुर्थ राशि (कर्क) में तृतीय नवांशाधिपति बुध के वर्ग का द्वितीय अक्षर ठकार, सप्तम राशि (तुला) में तृतीय नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का प्रथम अक्षर तकार और दशम राशि (मकर) में तृतीय नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का द्वितीय अक्षर थकार आता है। मेष राशि के लग्न में चतुर्थ नवांश हो तो मेष राशि में चतुर्थ नवांशाधिपति चन्द्र के वर्ग का द्वितीय अक्षर रकार, चतुर्थ राशि (कर्क)

में चतुर्थ नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का तृतीय अक्षर जकार, सप्तम राशि (तुला) में चतुर्थ नवांशाधिपति शनि के वर्ग का तृतीय अक्षर वकार, दशम राशि (मकर) में चतुर्थ नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का तृतीय अक्षर गकार आता है॥ १६॥

मेष लग्न के पञ्चम और षष्ठ नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

आकारमाद्येऽम्बुगते घकारमस्ते भकारं मकरे झकारम्।
लग्ने डकारं हिबुके दकारमस्ते धकारं मकरे ढकारम्॥ १७॥

मेष लग्न में पञ्चम नवांश हो तो मेष में पञ्चम नवांशाधिपति सूर्य के वर्ग का द्वितीय अक्षर आकार, चतुर्थ राशि (कर्क) में पञ्चम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का चतुर्थ अक्षर घकार, सप्तम राशि (तुला) में पञ्चम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का चतुर्थ अक्षर भकार और दशम राशि (मकर) में पञ्चम नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का चतुर्थ अक्षर झकार आता है। मेष लग्न में षष्ठ नवांश हो तो मेष में षष्ठ नवांशाधिपति बुध के वर्ग का तृतीय अक्षर डकार, चतुर्थ राशि (कर्क) में षष्ठ नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का तृतीय अक्षर दकार, सप्तम राशि (तुला) में षष्ठ नवांशाधिपति के वर्ग का चतुर्थ अक्षर धकार और दशम राशि (मकर) में षष्ठ नवांशाधिपति बुध के वर्ग का चतुर्थ अक्षर ढकार आता है॥ १७॥

मेष लग्न के सप्तम और अष्टम नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

लग्ने ञकारो हिबुके मकारः तुले ङकारो मकरे लकारः।
लग्ने ककारो हिबुके पकारस्तुले चकारो मकरे इकारः॥ १८॥

मेष लग्न में सप्तम नवांश हो तो मेष में सप्तम नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का पञ्चम अक्षर ञकार, चतुर्थ राशि (कर्क) में सप्तम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का पञ्चम अक्षर मकार, सप्तम राशि (तुला) में सप्तम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का पञ्चम अक्षर ङकार और दशम राशि (मकर) में सप्तम नवांशाधिपति चन्द्र के वर्ग का तृतीय अक्षर लकार आता है। मेष लग्न में अष्टम नवांश हो तो मेष में अष्टम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का प्रथम अक्षर ककार, चतुर्थ राशि (कर्क) में अष्टम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का प्रथम अक्षर पकार, सप्तम राशि (तुला) में अष्टम नवांशाधिपनि शुक्र के वर्ग का प्रथम अक्षर चकार और दशम राशि (मकर) में अष्टम नवांशाधिपति सूर्य के वर्ग का तृतीय अक्षर इकार आता है॥ १८॥

मेष लग्न में नवम नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

लग्ने नकारो हिबुके तकारस्तुले णकारो मकरे टकारः।
इत्येतदुक्तं चरसंज्ञकस्य वक्ष्ये स्थिराख्यस्य चतुष्टयस्य॥ १९॥

मेष लग्न में नवम नवांश हो तो मेष में नवम नवांशाधिपति गुरु के वर्ग का पञ्चम अक्षर नकार, चतुर्थ राशि कर्क में नवम नवांशाधिप गुरु के वर्ग का प्रथम अक्षर तकार, सप्तम राशि (तुला) में नवम नवांशाधिपति बुध के वर्ग का पञ्चम अक्षर णकार और दशम राशि (मकर) में नवम नवांशाधिपति बुध के वर्ग का प्रथम अक्षर टकार आता है। यह चर संज्ञक चार राशियों के लिये कहा गया है, अब स्थिर संज्ञक चार राशियों के लिये कहता हूँ॥ १९॥

वृष लग्न के प्रथम नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

वृषे फकारो हिबुके खकारः कीटे वकारो नृघटे छकारः।
आद्यांशकेभ्यो मतिमान्विदध्यादनुक्रमेण स्थिरसंज्ञकेषु॥ २०॥

वृष लग्न में प्रथम नवांश हो तो वृष में प्रथम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का द्वितीय अक्षर फकार, चतुर्थ राशि (सिंह) में प्रथम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का द्वितीय अक्षर खकार, सप्तम राशि (वृश्चिक) में प्रथम नवांशाधिपति चन्द्र के वर्ग का चतुर्थ अक्षर वकार, दशम राशि (कुम्भ) में प्रथम नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का द्वितीय अक्षर छकार आता है। इस तरह स्थिर संज्ञक राशियों के प्रथम नवांश में वर्णों का विन्यास करे।

वृष लग्न के द्वितीय और तृतीय नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

लग्ने बकारो हिबुके जकारः ईकारमस्तेऽम्बरगे गकारः।
वृषे थकारो हिबुके टकारः कीटे डकारो नृघटे दकारः ॥ २१ ॥

वृष लग्न में द्वितीय नवांश हो तो वृष में द्वितीय नवांशाधिपति शनि के वर्ग का तृतीय अक्षर बकार, चतुर्थ राशि (सिंह) में द्वितीय नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का तृतीय अक्षर जकार, सप्तम राशि (वृश्चिक) में द्वितीय नवांशाधिपति सूर्य के वर्ग का चतुर्थ अक्षर ईकार और दशम राशि (कुम्भ) में द्वितीय नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का तृतीय अक्षर गकार आता है। वृष लग्न में तृतीय नवांश हो तो वृष में तृतीय नवांशाधिपति ,गुरु के वर्ग का द्वितीय अक्षर थकार, चतुर्थ राशि (सिंह) में तृतीय नवांशाधिपति बुध के वर्ग का प्रथम अक्षर टकार, सप्तम राशि (वृश्चिक) में तृतीय नवांशाधिपति बुध के वर्ग का तृतीय अक्षर डकार और दशम राशि (कुम्भ) में तृतीय नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का तृतीय अक्षर दकार आता है ॥ २१ ॥

• वृष के चतुर्थ और पञ्चम नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

वृषे घकारो हिबुके शकारः कीटे झकारो नृघटे भकारः।
लग्ने जकारो,हिबुके ञकारः कीटे ङकारो नृघटे मकारः ॥ २२ ॥

वृष लग्न में चतुर्थ नवांश हो तो वृष में चतुर्थ नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का चतुर्थ अक्षर घकार, चतुर्थ राशि (सिंह) में चतुर्थ नवांशाधिपति चन्द्र के वर्ग का पञ्चम अक्षर शकार, सप्तम राशि (वृश्चिक) में चतुर्थ नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का चतुर्थ अक्षर झकार और दशम राशि (कुम्भ) में चतुर्थ नवांशाधिपति शनि के वर्ग का चतुर्थ अक्षर भकार आता है। वृष लग्न में पञ्चम नवांश हो तो वृष में पञ्चम नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का पंचम अक्षर ञकार, चतुर्थ राशि (सिंह) में पञ्चम नवांशाधिपति सूर्य के वर्ग का पञ्चम अक्षर ञकार, सप्तम राशि (वृश्चिक) में पञ्चम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का पञ्चम अक्षर ङकार और दशम राशि (कुम्भ) में पञ्चम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का पञ्चम अक्षर मकार आता है ॥ २२ ॥

वृष के षष्ठ और सप्तम नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

लग्ने ढकारोऽथ जले णकारश्चास्ते धकारोऽम्बरगे नकार'।
वृषे षकारो हिबुके चकारः कीटे पकारो नृघटे ककारः ॥ २३ ॥

वृष लग्न में षष्ठ नवांश हो तो वृष में षष्ठ नवांशाधिपति बुध के वर्ग का चतुर्थ अक्षर ढकार, चतुर्थ राशि (सिंह) में षष्ठ नवांशाधिपति बुध के वर्ग का पञ्चम अक्षर णकार, सप्तम राशि (वृश्चिक) में षष्ठ नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का चतुर्थ अक्षर धकार और दशम राशि (कुम्भ) में षष्ठ नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का पञ्चम अक्षर नकार आता है। वृष लग्न में सप्तम नवांश हो तो वृष में सप्तम नवांशाधिपति चन्द्र के वर्ग का षष्ठ अक्षर षकार, चतुर्थ राशि (सिंह) में सप्तम नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का प्रथम

अक्षर थकार, सप्तम राशि (वृश्चिक) में सप्तम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का प्रथम अक्षर पकार और दशम राशि (कुम्भ) में सप्तम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का प्रथम अक्षर ककार आता है ॥ २३ ॥

वृष के अष्टम और नवम नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

ऊकारमाहुर्वृषभे जले खमस्ते फकारो नृघटे छकारः ।
अन्त्ये वृषे टं तमुशन्ति सिंहे थं सप्तगे ठं प्रवदन्ति कुम्भे ॥ २४ ॥

वृष लग्न में अष्टम नवांश हो तो वृष में अष्टम नवांशाधिपति सूर्य के वर्ग का षष्ठ अक्षर ऊकार, चतुर्थ राशि (सिंह) में अष्टम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का द्वितीय अक्षर खकार, सप्तम राशि (वृश्चिक) में अष्टम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का द्वितीय अक्षर फकार और दशम राशि (कुम्भ) में अष्टम नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का द्वितीय अक्षर छकार आता है। वृष लग्न में नवम नवांश हो तो वृष में नवम नवांशाधिपति बुध के वर्ग का प्रथम अक्षर टकार, चतुर्थ राशि (सिंह) में नवम नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का प्रथम अक्षर तकार, सप्तम राशि (वृश्चिक) में नवम नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का द्वितीय अक्षर थकार और दशम राशि (कुम्भ) में नवम नवांशाधिपति बुध के वर्ग का द्वितीय अक्षर ठकार आता है ॥ २४ ॥

मिथुन के प्रथम नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

द्विमूर्त्तिसंज्ञे मिथुने जकारः षष्ठे बकार. प्रथमांशके स्यात् ।
धनुर्धरेऽस्तोपगते गकारो मीनद्वये चाम्बरगे सकारः ॥ २५ ॥

द्विस्वभाव राशि मिथुन लग्न में प्रथम नवांश हो तो मिथुन में प्रथम नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का तृतीय अक्षर जकार, चतुर्थ राशि (कन्या) में प्रथम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का तृतीय अक्षर बकार, सप्तम राशि (धनु) में प्रथम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का तृतीय अक्षर गकार और दशम राशि (मीन) में प्रथम नवांशाधिपति चन्द्र के वर्ग का सप्तम अक्षर सकार आता है ॥ २५ ॥

मिथुन के द्वितीय और तृतीय नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

लग्ने घकारो हिबुके भकारश्चास्ते झकारोऽम्बरमध्यगे ई ।
लग्ने दकारो हिबुके धकारमस्ते डकारं विदुरम्बरे ढम् ॥ २६ ॥

मिथुन लग्न में द्वितीय नवांश हो तो मिथुन में द्वितीय नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का चतुर्थ अक्षर घकार, चतुर्थ राशि (कन्या) में द्वितीय नवांशाधिपति शनि के वर्ग का चतुर्थ अक्षर भकार, सप्तम राशि (धनु) में द्वितीय नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का चतुर्थ अक्षर झकार और दशम राशि (मीन) में द्वितीय नवांशाधिपति सूर्य के वर्ग का चतुर्थ अक्षर ईकार आता है। मिथुन लग्न में तृतीय नवांश हो तो मिथुन में तृतीय नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का तृतीय अक्षर दकार, चतुर्थ राशि (कन्या) में तृतीय नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का चतुर्थ अक्षर धकार, सप्तम राशि (धनु) में तृतीय नवांशाधिपति बुध के वर्ग का तृतीय अक्षर डकार और दशम राशि (मीन) में तृतीय नवांशाधिपति बुध के वर्ग का चतुर्थ अक्षर ढकार आता है ॥ २६ ॥

मिथुन के चतुर्थ और पञ्चम नवांश में वर्ण विन्यास क्रम—

लग्ने मकारो हिबुके ङकारश्चास्ते हकारोऽम्बरगे ञकारः ।
लग्ने पकारो जलगे चकार ऐकारमस्तेऽम्बरगे ककारः ॥ २७ ॥

मिथुन लग्न में चतुर्थ नवांश हो तो मिथुन में चतुर्थ नवांशाधिपति शनि के वर्ग का पञ्चम अक्षर मकार, चतुर्थ राशि (कन्या) में चतुर्थ नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का पञ्चम अक्षर ढकार, सप्तम राशि (धनु) में चतुर्थ नवांशाधिपति चन्द्र के वर्ग का अष्टम अक्षर हकार और दशम राशि (मीन) में चतुर्थ नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का पञ्चम अक्षर ञकार आता है। मिथुन लग्न में पञ्चम नवांश हो तो मिथुन में पञ्चम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का प्रथम अक्षर पकार, चतुर्थ राशि (कन्या) में पञ्चम नवांशाधिप शुक्र के वर्ग का प्रथम अक्षर चकार, सप्तम राशि (धनु) में पञ्चम नवांशाधिपति सूर्य के वर्ग का अष्टम अक्षर ऐकार और दशम राशि (मीन) में पञ्चम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का प्रथम अक्षर ककार आता है ॥ २७ ॥

मिथुन के षष्ठ और सप्तम नवांश में वर्ण का विन्यास क्रम—

प्राग्लग्नगे न जलगे णमाहुरस्तं गते टं नभसि स्थिते तम् ।
प्राग्लग्नगे ख जलगे यमाहुरस्तं गते छं नभसि स्थिते फम् ॥ २८ ॥

मिथुन लग्न में षष्ठ नवांश हो तो मिथुन में षष्ठ नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का पञ्चम अक्षर नकार, चतुर्थ राशि (कन्या) में षष्ठ नवांशाधिपति बुध के वर्ग का पञ्चम अक्षर णकार, सप्तम राशि (धनु) में षष्ठ नवांशाधिपति बुध के वर्ग का प्रथम अक्षर टकार और दशम राशि (मीन) में षष्ठ नवांशाधिपति के वर्ग का प्रथम अक्षर तकार आता है। मिथुन लग्न में सप्तम नवांश हो तो मिथुन में सप्तम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का द्वितीय अक्षर खकार, चतुर्थ राशि (कन्या) में सप्तम नवांशाधिपति चन्द्र के वर्ग का प्रथम अक्षर यकार, सप्तम राशि (धनु) में सप्तम नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का द्वितीय अक्षर छकार और दशम राशि (मीन) में सप्तम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का द्वितीय अक्षर फकार आता है॥ २८ ॥

मिथुन के अष्टम और नवम नवांश में वर्ण का विन्यास क्रम—

लग्ने जमोकारमथाम्बुसंस्थे गमस्तसंस्थे विदुरम्बरे बम् ।
ठ लग्नगेऽन्त्ये हिबुकाश्रिते डं थमस्तगे दं नभसि स्थिते वै ॥२९॥

मिथुन लग्न में अष्टम नवांश हो तो मिथुन में अष्टम नवांशाधिपति शुक्र के वर्ग का तृतीय अक्षर जकार, चतुर्थ राशि (कन्या) में अष्टम नवांशाधिपति सूर्य के वर्ग का नवम अक्षर ओकार, सप्तम राशि (धनु) में अष्टम नवांशाधिपति मङ्गल के वर्ग का तृतीय अक्षर गकार और दशम राशि (मीन) में अष्टम नवांशाधिपति शनि के वर्ग का तृतीय अक्षर बकार आता है। मिथुन लग्न में नवम नवांश हो तो मिथुन में नवम नवांशाधिपति बुध के वर्ग का द्वितीय अक्षर ठकार, चतुर्थ राशि (कन्या) में नवम नवांशाधिपति बुध के वर्ग का तृतीय अक्षर डकार, सप्तम राशि (धनु) में नवम नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का द्वितीय अक्षर थकार और दशम राशि (मीन) में नवम नवांशाधिपति बृहस्पति के वर्ग का तृतीय अक्षर दकार आता है ॥ २९ ॥

यहाँ पर विभाग प्रदर्शन—

एवं विकल्पोऽक्षरसंग्रहोऽयं नाम्नां निरुद्दिष्टविधान उक्तः ।
सर्वेषु लग्नेषु च केचिदेवमिच्छन्ति पूर्वोक्तविधानवत्तु ॥ ३० ॥

इस तरह यह नामाक्षरों के संग्रहों की निर्विशेष विधि कही गई है। कोई-कोई आचार्य मेष आदि सब लग्नों में पूर्वोक्त विधि को करने के लिये कहते हैं ॥ ३० ॥

मेष	वृष	मिथु	कट	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुंभ	मीन
क	फ	ज	य	ख	च	घ	ष	ग	प	छ	स
छ	ब	घ	अ	ज	भ	ख	ई	त	फ	ग	ई
ट	ध	द	ठ	ट	प	त	ड	ड	थ	द	ढ
र	घ	म	ज	श	ङ	व	क्ष	ह	ग	म	अ
आ	अ	प	ध	ड	ष	म	ड	ऐ	श	म	क
ढ	द	न	द	ण	ण	घ	ध	ढ	ढ	न	त
अ	ए	ख	म	च	ए	इ	प	छ	ल	क	फ
क	ऊ	ञ	प	ख	औ	च	ठ	ग	ह	छ	ध
न	ट	ठ	त	ल	ह	ण	थ	थ	ट	ठ	द

प्रकारान्तर से नाम का आनयन—

केन्द्राणि वा केन्द्रगतांशकैः स्वैः पृथक् पृथक् सद्गुणितानि कृत्वा।
त्रिकृद्विभक्तं विदुरक्षरं तत् चैत्रेश्वरस्यांशपरिक्रमस्वम्॥ ३१॥

केन्द्र गत मेषादि राशि के नवांश संख्या से केन्द्र गत राशि के अक्षरों को गुणा करके नव का भाग देने से जो शेष बचे तत्तुल्य नवांशाधिपति क्रम से अक्षर जाने। यहाँ पर आचार्य के कहने का अभिप्राय यह है कि चर आदि तीनों केन्द्रों में मङ्गल आदि पाँच ग्रहों के छः छः नवांश होते हैं तथा नव नवांश में नव अक्षर होते हैं अतः यहाँ पर 'नव नवांश में नव अक्षर तो छः नवांश में क्या' इस त्रैराशिक से छः अक्षर आते हैं। अतः चर राशि के प्रथम नवांश में अपने वर्ग का प्रथम अक्षर, द्वितीय में द्वितीय, तृतीय में तृतीय, चतुर्थ में चतुर्थ, पञ्चम में पञ्चम, षष्ठ में प्रथम, फिर स्थिर राशि के प्रथम नवांश में अपने वर्ग का द्वितीय अक्षर, द्वितीय में तृतीय, तृतीय में चतुर्थ, चतुर्थ में पञ्चम, पञ्चम में प्रथम, षष्ठ में द्वितीय, फिर द्विस्वभाव राशि के प्रथम नवांश में अपने वर्ग का तृतीय, द्वितीय में चतुर्थ, तृतीय में पञ्चम, चतुर्थ में प्रथम, पञ्चम में द्वितीय और षष्ठ नवांश में अपने वर्ग का तृतीय अक्षर जाने। सूर्य और चन्द्र के चर आदि तीनों केन्द्रों में तीन-तीन नवांश होते हैं, अतः चर राशि के प्रथम नवांश में अपने वर्ग का प्रथम अक्षर, द्वितीय में द्वितीय, तृतीय में तृतीय, फिर स्थिर राशि के प्रथम नवांश में अपने वर्ग का चतुर्थ अक्षर इत्यादि क्रम से जाने॥ ३१॥

यहाँ पर व्याप्ति का प्रदर्शन—

सञ्चिन्तितप्रार्थितनिर्गतेषु नष्टक्षतस्त्रीरतिभोजनेषु।
स्वप्नर्क्षचिन्तापुरुषादिवर्गेष्वेतेषु नामान्युपलक्षयेत॥ ३२॥

सञ्चिन्तित (मन से चिन्तित) कार्यों की परिकल्पना, प्रार्थित (वाणी से युक्त), निर्गत (निर्गमन), नष्ट वस्तु, क्षत, स्त्री, रति (स्त्री के साथ रमण), भोजन (आहार विशेष मांस आदि), स्वप्न, नक्षत्र, चिन्ता और पुरुष आदियों के नामों को जानना चाहिये। यहाँ पर चारों केन्द्रों को प्रस्तुत होने के कारण लग्न आदि क्रम से सञ्चिंतित आदि के नामों को जाने। जैसे लग्न से सञ्चिन्तित, चतुर्थ से प्रार्थित, सप्तम से निर्गत, दशम से नष्टवस्तु, फिर लग्न से क्षत, चतुर्थ से स्त्री, सप्तम से रति, दशम से भोजन, फिर लग्न से स्वप्न, चतुर्थ से नक्षत्र, सप्तम से चिन्ता और दशम से पुरुषादि के नामों को जानना चाहिये। यहाँ तक यवनेश्वर कृत अक्षर कोश है॥ ३२॥

अक्षर कोश से आगन्तुक और प्रश्न कर्ता के नाम का आनयन—

द्व्यक्षरं चरगृहांशकोदये नाम चास्य चतुरक्षरं स्थिरे।
नामयुग्ममपि च द्विमूर्त्तिषु त्र्यक्षरं भवति चास्य पञ्चभिः ॥१४॥

चर लग्न और चर नवांश में आगन्तुक या प्रश्न कर्ता के दो अक्षर का नाम तथा स्थिर लग्न और स्थिर नवांश में चार अक्षर का नाम होता है। द्विस्वभाव राशि के लग्न और नवांश में दो नाम होते हैं, उनमें एक तीन अक्षर का और दूसरा पाँच अक्षर का होता है ॥ १४ ॥

नामाक्षर का आनयन—

काद्यास्तु वर्गाः कुजशुक्रसौम्यजीवार्कजानां क्रमशः प्रदिष्टाः।
वर्णाष्टकं यादि च शीतरश्मे रवेरकारात् क्रमशः स्वराः स्युः ॥१५॥
नामानि चाग्न्यम्बुकुमारविष्णुशक्रेन्द्रपत्नीचतुराननानाम्।
तुल्यानि सूर्यात् क्रमशो विचिन्त्य द्वित्र्यादिवर्णैर्घटयेत्स्वबुद्ध्या ॥१६॥

मङ्गल, शुक्र, बुध, बृहस्पति और शनि के क्रम से कवर्ग आदि हैं। जैसे—मङ्गल के कवर्ग, शुक्र के चवर्ग, बुध के टवर्ग, बृहस्पति के तवर्ग और शनि के पवर्ग हैं। तथा चन्द्र के यकार आदि आठ वर्ण (य, र, ल, व, श, ष, स, ह) और रवि के अकार आदि बारह स्वर हैं। प्रयोजन—लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम इन चारों स्थानों में जो वर्तमान नवांशाधिपतियों के अक्षर हों उनको क्रम से स्थापन करके नाम रचना करे। जो ग्रह वर्गोत्तम, स्वराशि, स्वद्रेष्काण, स्वनवांश या स्वोच्च में स्थित या बली हो वह अपने अक्षर को द्विगुणित और त्रिगुणित करके देता है। तथा जो वर्गोत्तम आदि से वर्जित हो वह अपने अक्षर का नाश करता है। यदि लग्न या नवांश का पति सूर्य हो तो अग्निपर्याय, चन्द्र हो तो अम्बुपर्याय, बुध हो तो विष्णुपर्याय, बृहस्पति हो तो इन्द्रपर्याय, शुक्र हो तो इन्द्राणीपर्याय, शनि हो तो ब्रह्मपर्याय के नाम होते हैं। सूर्य आदि ग्रहों के क्रम से विचार करके दो, तीन आदि अक्षरों के नामों की अपनी बुद्धि से कल्पना करे ॥

पूर्व सिद्ध नाम वाले व्यक्तियों का वयोज्ञान—

वयांसि तेषां स्तनपानबाल्यव्रतस्थिता यौवनमध्यवृद्धाः।
अतीव वृद्धा इति चन्द्रभौमज्ञशुक्रजीवार्कशनैश्चराणाम् ॥१७॥

नामाक्षर देने वाले ग्रहों में चन्द्र बली हो तो स्तनपान करने वाला बच्चा, मंगल हो तो बाल्य (दो वर्ष से छै वर्ष तक का शिशु), बुध हो तो ब्रह्मचारी, शुक्र हो तो युवा, गुरु हो तो मध्यवयस्क, सूर्य हो तो वृद्ध और शनि हो तो अतिवृद्ध होता है ॥ १७ ॥

इति 'विमला' हिन्दी टीकायां धातुभोत्तराध्यायः षण्णवतितमः ॥ ९६ ॥

अथ पाकाध्यायः

उसमें पहले ग्रहचारोक्त फलों के पाक काल—

पक्षाद्भानोः सोमस्य मासिकोऽङ्गारकस्य वक्रोक्तः ।
आदर्शनाच्च पाको बुधस्य जीवस्य वर्षेण ॥ १ ॥
षड्भिः सितस्य मासैरब्देन शनेः सुरद्विपोऽब्दार्धात् ।
वर्षात् सूर्यग्रहणे सद्यः स्यात् त्वाष्ट्रकीलकयोः ॥ २ ॥
त्रिभिरेव धूमकेतोर्मासैः श्वेतस्य सप्तरात्रान्ते ।
सप्ताहात्परिवेषेन्द्रचापसन्ध्याभ्रसूचीनाम् ॥ ३ ॥

सूर्य का फल एक पक्ष में, चन्द्र का एक मास में, मंगल का वक्रोक्तानुसार (भौमचार प्रकरणोक्तानुसार), बुध का उदित काल तक में, बृहस्पति का एक वर्ष में, शुक्र का छै मास में, शनि का एक वर्ष में, चन्द्र ग्रहण में राहु का छै मास में, सूर्य ग्रहण का एक वर्ष में, त्वष्टा नामक ग्रह, तामस और कीलक का तत्काल, धूम केतु का तीन मास में, श्वेत केतु का सात रात में तथा सूर्य, चन्द्र के परिवेष, इन्द्रधनुष, सन्ध्या और अभ्रसूची का फल सात दिन में होता है ॥ १-३ ॥

शीतोष्ण विपर्यय आदि का फल काल—

शीतोष्णविपर्यासः फलपुष्पमकालजं दिशां दाहः ।
स्थिरचरयोरन्यत्वं प्रसूतिविकृतिश्च षण्मासात् ॥ ४ ॥

शीत और उष्ण का विपर्यय (शीत काल में उष्णता और उष्ण काल में शीतता) का, बिना ऋतु के फल फूलों का, दिग्दाह का, स्थिर (वृक्षादि), चर (चतुष्पदादि) का विपर्यय (वृक्षादि का चल और चतुष्पदादि का निश्चल होने) का और प्रसूति विकृति का फल छै मास में होता है ॥ ४ ॥

अक्रियमाणकार्य को करना आदि का फल—

अक्रियमाणककरणं भूकम्पोऽनुत्सवो दुरिष्टं च ।
शोषश्चाशोष्याणां स्रोतोऽन्यत्वं च वर्षार्धात् ॥ ५ ॥

अक्रियमाण कार्य का (आचार रहित कार्य का, जो कभी नहीं किया उसका या जो कभी नहीं किया वह अकस्मात् किया जाय उसका) करना, भूमिकम्प, प्राप्त उत्सव को नहीं करना, अशुभ अनभिमत वस्तु का होना, नहीं सूखने वाले सरोवर आदि का सूखना, नदियों के प्रवाहों का उलटा बहना इनका फल छै मास में होता है ॥ ५ ॥

स्तम्भा आदि के सम्भाषण आदि का फल—

स्तम्भकुसूलार्चानां जल्पितरुदितप्रकम्पितस्वेदाः ।
मासत्रयेण कलहेन्द्रचापनिर्घातपाकाश्च ॥ ६ ॥

खम्भा, मिट्टी की बनी हुई कोठी (कोठियाँ), प्रतिमा, इनका सम्भाषण करना, रोना, इनको अश्रुपात होना, इनमें पसीने का आना तथा कलह, इन्द्रधनुष और निर्घात

अथ नक्षत्रकर्मगुणाध्यायः

अश्विन्यादि नक्षत्रों के ताराओं का प्रमाण—

शिखिगुणरसेन्द्रियानलशशिविषयगुणर्तुपञ्चवसुपक्षाः ।
विषयैकचन्द्रभूतार्णवाग्निरुद्राश्विवसुदहनाः ॥ १ ॥
भूतशतपक्षवसवो द्वात्रिंशच्चेति तारकामानम् ।
क्रमशोऽश्विन्यादीनां कालस्ताराप्रमाणेन ॥ २ ॥
नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत् ।
दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधेरन्यस्य वा वाच्यः ॥ ३ ॥

अश्विनी आदि नक्षत्रों के क्रम से शिखि (३) आदि तारे हैं। जैसे-अश्विनी में तीन, भरणी में तीन, कृत्तिका में छै, रोहिणी में पाँच, मृगशिरा में तीन, आर्द्रा में एक, पुनर्वसु में चार, पुष्य में तीन, श्लेषा मे पाँच, मघा में पाँच, पूर्वाफाल्गुनी में दो, उत्तराफाल्गुनी में दो, हस्त में पाँच, चित्रा में एक, स्वाति में एक, विशाखा में चार, अनुराधा में चार, ज्येष्ठा में तीन, मूल में ग्यारह, पूर्वाषाढ़ा में दो, उत्तराषाढ़ा में दो, अभिजित् में तीन, श्रवणा में तीन, धनिष्ठा में चार, शतभिषा में सौ, पूर्वभाद्रपदा में दो, उत्तरभाद्रपदा में दो और रेवती में बत्तीस तारे हैं। तारों के प्रमाण से नक्षत्रों का फल होता है। जैसे विवाह में नक्षत्रों का शुभाशुभ फल तारातुल्य वर्षों में होता है। तथा जिस नक्षत्र में ज्वर या अन्य रोग की उत्पत्ति हो उस नक्षत्र के तारा तुल्य दिन में उसका नाश होता है।

नक्षत्रों के स्वामी—

अश्वियमदहनकमलजशशिशूलभृददितिजीवफणिपितरः ।
योन्यर्यमदिनकृत्त्वष्टृपवनशक्राग्निमित्राश्च ॥ ४ ॥
शक्रो निर्ऋतिस्तोयं विश्वे ब्रह्मा हरिर्वसुर्वरुणः ।
अजपादोऽहिर्बुध्न्यः पूषा चेतीश्वरा भानाम् ॥ ५ ॥

अश्विनी कुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, शिव, अदिति, बृहस्पति, सर्प, भग (सूर्य विशेष), अर्यमा (सूर्य विशेष), रवि, त्वष्टा (विश्वकर्मा), वायु, इन्द्राग्नी, मित्र, इन्द्र, निर्ऋति (राक्षस), जल, विश्वेदेव, ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अजचरण (सूर्य विशेष), अहिर्बुध्न्य (सूर्य विशेष), पूषा (सूर्य विशेष) ये क्रम से अश्विनी आदि नक्षत्रों के स्वामी हैं। जैसे—अश्विनीकुमार अश्विनी के, यम भरणी के, अग्नि कृत्तिका के, ब्रह्मा रोहिणी के, चन्द्रमा मृगशिरा के, इत्यादि स्वामी हैं ॥ ४-५ ॥

ध्रुव संज्ञक नक्षत्र और उसमें विहित कर्म—

त्रीण्युत्तराणि तेभ्यो रोहिण्यश्च ध्रुवाणि तैः कुर्यात् ।
अभिषेकशान्तितरुनगरधर्मबीजध्रुवारम्भान् ॥ ६ ॥

इन पूर्वोक्त नक्षत्रों में से तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्र ध्रुव (स्थिर) संज्ञक हैं। इनमें अभिषेक (राजा आदि का अभिषेक), शान्ति (उत्पातों का प्रतीकार), रोपण

(वृक्षों का रोपण), नगर (नगरों की प्रतिष्ठा आदि), धर्मक्रिया, बीज (बीजों का बोना) और स्थिर कार्यों का आरम्भ करे । यहाँ पर पराशर—

चत्वारो हि चतुष्का ध्रुवौ मृदुर्दारुणस्तथा क्षिप्रः । उग्राणि पञ्च पञ्च चराणि साधारणे द्वे च॥ चत्वारि खलु नक्षत्रेषु ध्रुवाणि भवन्ति । प्राजापत्यं त्रीण्युत्तराणि । तेषु पुरनगरग्रामकाननोपवनभवनानि । वेदानतरुकुसुमबीजवपनस्थिरनिधिनिधानकृषिधनगोऽर्घामन्त्रसंग्रहणस्नानालङ्करणपर्न्युद्वहनचरणाभिगमननृपतिनायकाभिषेकमन्त्रेऽग्न्याधाननियमायुष्यपौष्टिकशान्तिकधान्यान्यन्यानि स्थिराणि कारयेत् । ऋणधनप्रयोगपथगमनमद्यवैरचौराणि च वर्जयेत्॥

तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र और उसमें विहित कर्म—

मूलशिवशक्रभुजगाधिपानि तीक्ष्णानि तेषु सिद्ध्यति ।
अभिघातमन्त्रवेतालबन्धवधभेदसम्बन्धाः ॥ ७ ॥

मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा, अश्लेषा ये तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र हैं । इनमें अभिघात (उपद्रव), मन्त्र (मन्त्र साधन प्रयोग), वेताल (वेताल के उत्थापन आदि का कर्म), बन्ध (बन्धन), वध, भेद (मिले हुये दो को अलग करना) और सम्बन्ध (राजकुल में आवेदन) की सिद्धि होती है । यहाँ पर पराशर—

चत्वारि नक्षत्रेषु दारुणानि भवन्ति । आर्द्राश्लेषा ज्येष्ठा मूलमित्येतेष्वरिनगरस्कन्धावारावरोधनमय नरेन्द्राभिघातयुद्धकलहकूटसाहसोपधानभेदवञ्चनविवादचौर्यानृतशपथकितवच्छलनपणयन्त्रायुधग्रहणकारणदर्शनाभिचारगदवियोगवधभृत्यनिग्रहचतुष्पददमनभटनियोगान् विशेषतो मूले मूलकर्म । रुद्रर्क्षेषु पीडनवपनधान्यतरुकुसुमबीजवेश्मप्रवेश स्थिरनिधिनियोगांश्च कारयेत् । सर्वेषु च सर्वं दारुणं कर्म॥ ७ ॥

उग्र संज्ञक नक्षत्र और उसमें विहित कर्म—

उग्राणि पूर्वभरणीपित्र्याण्युत्सादनाशशाठ्येषु ।
योज्यानि बन्धविषदहनशस्त्रघातादिषु च सिद्ध्यै ॥ ८ ॥

तीनों पूर्वा, भरणी, मघा ये नक्षत्र उग्र संज्ञक हैं । इनको उत्सादन, नाश (परार्थ नाश) शाठ्य इन कार्यों में योजित करना चाहिये । तथा ये नक्षत्र बन्ध (बन्धन), विष (शत्रुओं के लिये विष का प्रयोग), दहन (अग्निदाह), शस्त्र (शस्त्रप्रहार), घात (मारण) आदि में सिद्धि के लिये होते हैं ।

पञ्चनक्षत्रेषूग्राणि भवन्ति । मघा भरणी त्रीणि पूर्वाणीति । एषु भटचौरगुल्मपुरपदूतकारशौल्क्यशाठिकधुद्रान् स्थापयेत् । तथा निभृतनियमनप्रणिधिसम्प्रयोगवैरोत्थानकलहकोलाहलसम्प्रहारवञ्चनविवादान्यद्रव्यहरणान्यदारगमनद्यूताभिसारविलम्बवर्तनयुद्धयोद्धायुधग्रहणकरणदर्शनारम्भाणि । नगरग्रामजनपदपुराग्निवालयन्त्रोपकरणदुर्गक्रियाणां पराधिकप्रयोगान् । युद्धसंग्रामाभियोगेषु प्रथममरयोऽभिहन्तव्या इत्यादिषु विषप्रयोगालजविसर्गाभिचारं कारयेत् । विशेषतः पित्र्येऽपितृपिण्डसम्प्रदानकोष्ठागारविविधाकारनिधानानि । याम्ये सौभाग्यकरणस्थावरणानि । आप्ये जलवाहपुरासवकूपनदीवाहकूपखननानि । सर्वेषु सर्वमुग्रं च ॥ ८ ॥

लघु संज्ञक नक्षत्र और उसमें विहित कर्म—

लघु हस्ताश्विनपुष्याः पण्यरतिज्ञानभूषणकलासु ।
शिल्पौषधयानादिषु सिद्धिकराणि प्रदिष्टानि ॥ ९ ॥

हस्त, अश्विनी, पुष्य ये लघु संज्ञक नक्षत्र हैं । ये नक्षत्र पण्य (विक्रय), रति, ज्ञान

(शास्त्रारम्भ), भूषण, कला (चित्र, गीत, वाद्य और नृत्य), शिल्प कर्म, औषध (द्रव्य-प्रयोग), यान (यात्रा) आदि में सिद्धि करने वाले होते हैं। यहाँ पर पराशर—

चत्वारि नक्षत्राणि क्षिप्राणि भवन्ति। हस्तः पुष्योऽभिजिदश्विनीमित्येतेषु त्रिविधपण्य-विक्रयधनप्रयोगयोगाध्यासरत्नकरमदमलस्कन्धावारबलसार्थनिर्याणदूतचारसम्प्रेषणाध्वगमनयज्ञनयाजनाध्ययनाध्यापनशिल्पारम्भध्वजपताकातपत्रबालव्यजनसमुच्छ्रयस्थापनराजग्रहणारोहणभैषज्यप्रयोगगदागदौषधग्रहणधारणानि सर्वाण्येव चात्र क्षिप्राणि कर्माणि कारयेत् ॥

मृदु संज्ञक नक्षत्र और उसमें विहित कर्म—

मृदुवर्गोऽनूराधाचित्रापौष्णैन्दवानि मित्रार्थे।
सुरतविधिवस्त्रभूषणमङ्गलगीतेषु च हितानि ॥ १० ॥

अनुराधा, चित्रा, रेवती, मृगशिरा ये नक्षत्र मृदुसंज्ञक हैं। ये सब मित्र, सुरत विधि, वस्त्र, भूषण, मङ्गल कार्य और गाने में शुभ हैं। यहाँ पर पराशर—

चत्वारि नक्षत्रेषु मृदूनि भवन्ति। मृगशिरश्चित्रानुराधारेवत्य इत्येतेषूपनयनचूडाकरणगोदानाद्विव्रतनियमजप्यस्वस्त्ययनवहनवपनविस्मापनकौतुकमङ्गलयज्ञवाहनाध्ययनाध्यापनकन्यावरणपाणिग्रहणधनप्रयोगान् गुरुनरेन्द्राणां वाद्यगीतनृत्ताभिनयालापहास्योद्यानहर्षपरिवर्धनान्यारभेत। मणिरजतालंकाराम्बरधारणसंग्रहणविक्रयशिल्पप्रयोगगमनप्रयोगसुहृत्सम्बन्धिबान्धवसम्बन्धान्यायुष्यपौष्टिकधर्मार्थकामयुक्तानि सर्वाण्येव चात्र नपनाञ्जनसौभाग्यविधिचित्रचित्राणि विशेषतः सर्वेषु सर्वाणि मृदूनि कर्माणि कारयेत् ॥ १० ॥

मृदु तीक्ष्ण और चर संज्ञक नक्षत्र तथा उसमें विहित कर्म—

हौतभुजं सविशाखं मृदुतीक्ष्णं तद्विमिश्रफलकारि।
श्रवणत्रयमादित्यानिले च चरकर्मणि हितानि ॥ ११ ॥

कृत्तिका, विशाखा ये मृदुतीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र हैं। ये मिश्रितफल करने वाले हैं, अर्थात् इनमें मृदु, दारुण दोनों कर्मों को करे। श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति ये पाँच नक्षत्र चर संज्ञक हैं, ये चर कार्य में शुभ हैं। यहाँ पर पराशर—

पञ्च नक्षत्राणि चराणि भवन्ति। स्वातिः पुनर्वसुः श्रवणं धनिष्ठा शतभिषगिति। एतेषु कुञ्जरतुरगमहिषखरगोखरकरभगवां समारोहणानि। विशेषेण पुनर्वसौ पुनर्भूगमन विटकरणम्। वारुणे सुरासवसन्धानसरःसरित्सेवौषधविधानानि। सर्वेषु विशेषेण सर्वं चरकर्म कुर्यात् ॥ ११ ॥

क्षौर कर्म में विहित नक्षत्र—

हस्तत्रयं मृगशिराः श्रवणत्रयं च पूषाश्विशक्रगुरुभानि पुनर्वसुश्च।
क्षौरे तु कर्मणि हितान्युदये क्षणे वा युक्तानि चोडुपतिना शुभतारया च ॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, ज्येष्ठा, पुष्य, पुनर्वसु इन नक्षत्रों में या इन नक्षत्रों के उदय काल में या इन नक्षत्रों के देवता सम्बन्धी मुहूर्त के उदय में (जैसे—हस्त नक्षत्र का देवता सूर्य है अतः सूर्य संज्ञक मुहूर्त के उदय में), चन्द्र और तारा के अनुकूल रहने पर क्षौर करना शुभ है ॥ १२ ॥

यहाँ पर यात्रा में मुहूर्त—

शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरिञ्चिपङ्कजभवमराः।
इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्यमयोनयश्चाह्नि ॥

हस्ताश्विपुष्याः पूषाद्यन्तकाग्निधातारः। इन्द्वदितिगुरुहरिविष्णुनिलाख्याः पणा रात्रौ॥ अह्नः पञ्चदशांशो रात्रेश्चैवं मुहूर्त इति। स च विशेषतश्चौरकर्मणिवधुभिर्युतया॥

क्षौर कर्म के निषेध समय—

न स्नातमात्रगमनोन्मुखभूषितानाम्-
भ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम् ।
सन्ध्यानिशाशनिकुजार्कतिथौ च रिक्ते
क्षौरं हितं न नवमेऽह्नि न चापि विष्ट्याम् ॥ १३ ॥

स्नान कराने के बाद, कहीं पर जाने के समय, तेल आदि लगाने के बाद, युद्ध के समय, बिना आसन, सन्ध्याकाल, रात्रि के समय, शनि, मङ्गल और रविवार में, रिक्ता तिथि में, नौवें दिन में, विष्टि करण में क्षौर करना शुभ नहीं है। यहाँ पर पराशर- प्रतिपच्चतुर्थीविवाहदेशासवपारणुवीजयपनमिग्रभणसंमहाभिषेकसमादिरिपरमिदमनिष्ट मध्याभ्यासमनध्ययनं क्षुरकर्मेति ॥ १३ ॥

सब नक्षत्रों में क्षौर कर्म—

नृपाज्ञया ब्राह्मणसम्मते च विवाहकाले मृतसूतके च ।
बद्धस्य मोक्षे क्रतुदीक्षणासु सर्वेषु शस्तं क्षुरकर्म भेषु ॥ १४ ॥

राजाओं की आज्ञा से, ब्राह्मणों की सम्मति से तथा विवाह काल में, मरणाशौच, जननाशौच, कैदी के छूटने और यज्ञ-दीक्षा के समय सब नक्षत्रों में क्षौर करना शुभ है॥१४॥

पुरुष संज्ञक कार्यों के विधान का नक्षत्र—

हस्तो मूलं श्रवणा पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यः ।
पुंसञ्ज्ञितेषु कार्येष्वेतानि शुभानि धिष्ण्यानि ॥ १५ ॥

हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य ये पुरुष संज्ञक नक्षत्र हैं, इनमें पुरुष संज्ञक कार्यों का करना शुभ है ॥ १५ ॥

नामकरणादि संस्कारों के नक्षत्र—

सावित्रपौष्णानिलमैत्रतिष्यत्वाष्ट्रे तथा चोडुगणाधिपर्क्षे ।
संस्कारदीक्षाव्रतमेखलादि कुर्याद्गुरौ शुक्रबुधेन्दुयुक्ते ॥१६॥

हस्त, रेवती, स्वाति, अनुराधा, पुष्य, चित्रा, मृगशिरा, इन नक्षत्रों में तथा शुक्र, बुध, चन्द्र, गुरु इन वारों में संस्कार (नामकरणादि), दीक्षा, उपनयन, मौञ्जी, आदि (क्षौर कर्म, विद्याग्रहण) कर्मों को करना चाहिये ॥ १६ ॥

सब कार्यों में लग्न की शुद्धि—

शुद्धैर्द्वादशकेन्द्रनैधनगृहैः पापैस्त्रिषष्ठायगै-
र्लग्ने केन्द्रगतेऽथवा सुरगुरौ दैत्येन्द्रपूज्येऽपि वा ।
सर्वारम्भफलप्रसिद्धिरुदये राशौ च कर्तुः शुभे
स्वग्राम्यस्थिरभोदये च भवनं कार्यं प्रवेशोऽपि वा ॥१७॥

लग्न से द्वादश, केन्द्र और अष्टम गृह में शुभग्रह, तृतीय, षष्ठ और एकादश में पाप ग्रह, लग्न या केन्द्र में बृहस्पति या शुक्र हो तो सब कार्यों की सिद्धि होती है। तथा कर्त्ता की जन्म राशि, ग्राम्य राशि (मेष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु और कुम्भ) या स्थिर

राशि (सिंह, वृश्चिक) लग्न में हो तो घर बनाना और गृह में प्रवेश करना शुभ है।

यहाँ पर यवनेश्वर—

लग्नेषु जीवेन्दवभार्गवेषु परेषु चैतेषु गृहर्क्षमशम्।
राशावयो वा विचरे गृहस्थे गृहाशयोर्वा भृगुनन्दनेन्द्वो.॥
जलाशये वा गृहमागतेऽस्मै गृहे स्वनाथाधिपलक्षिते वा।
चन्द्रे शुभस्थे च शुभानि विन्द्याद्वास्तुप्रवेशादिनिवेशनानि ॥ १७ ॥

इति 'विमला' हिन्दी टीकायां नक्षत्रकर्मगुणाध्यायोऽष्टनवतितमः ॥ ९८ ॥



अथ तिथिकर्मगुणाध्यायः

तिथियों के स्वामी—

कमलजविधातृहरियमशशाङ्कषड्वक्त्रशक्रवसुभुजगाः।
धर्मेशसवितृमन्मथकलयो विश्वे च तिथिपतयः ॥ १ ॥
पितरोऽमावास्यायां संज्ञासदृशाश्च तैः क्रियाः कार्याः।
नन्दा भद्रा विजया रिक्ता पूर्णा च तास्त्रिविधाः ॥ २ ॥
यत्कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत्कार्यम्।
करणमुहूर्त्तेष्वपि तत् सिद्धिकरं देवतासदृशम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मा, विधाता, विष्णु, यम, चन्द्र, कार्त्तिकेय, इन्द्र, वसु, सर्प, धर्म, शिव, सूर्य, कामदेव, कलि ये क्रम से प्रतिपदा आदि तिथियों के स्वामी हैं। जैसे—प्रतिपदा के ब्रह्मा, द्वितिया के विधाता, तृतीया के विष्णु इत्यादि स्वामि हैं। तथा अमावास्या के स्वामी पितर हैं। इन तिथियों में संज्ञा सदृश कार्य करना चाहिए। जैसे प्रतिपदा में ब्रह्मकर्म (विवाह आदि), द्वितीया में भवन निर्माण आदि, तृतीया में चौल करण, दमन आदि, चतुर्थी में शत्रु का मारण आदि, पञ्चमी में वमन, औषधि सेवन, पौष्टिक कर्म आदि, षष्ठी में मित्र संग्रह, अभिषेक आदि, सप्तमी में गाड़ी, सवारी, क्रिया, गमन आदि, अष्टमी में शस्त्र ग्रहण, दुर्ग, उपकरण आदि, नवमी में परविघात, मारण आदि, दशमी में धर्म, ब्राह्मण, तर्पण आदि, एकादशी में स्थिर, घर, मृदु, सौम्य कर्म आदि, द्वादशी में अग्न्याधान आदि, त्रयोदशी में मैत्री, काम सेवन आदि, चतुर्दशी में विष, रस के प्रयोग आदि और पञ्चदशी में पितृतर्पण आदि कार्य करना चाहिये। नन्दा, भद्रा, विजया, रिक्ता, पूर्णा ये तिथियाँ तीन प्रकार की होती हैं, जैसे नन्दा (१।६।११), भद्रा (२।७।१२), विजया (३।८।१३), रिक्ता (४।९।१४) और पूर्णा (५।१०।१५) तिथि होती हैं। जिस नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह उस नक्षत्र के देवता की तिथि में करना चाहिये। जैसे रोहिणी में जो कार्य कहा गया है वह उसके देवता (ब्रह्मा) की तिथि (प्रतिपदा) में करना चाहिये। इसी प्रकार अभिजित् नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह द्वितिया में, श्रवण नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह तृतीया में, भरणी में जो कार्य कहा गया है वह चतुर्थी में, मृगशिरा में जो कार्य कहा गया है वह पञ्चमी में, कृत्तिका में जो कार्य कहा गया है वह षष्ठी में, ज्येष्ठा में जो कार्य कहा गया है वह सप्तमी में, हस्त में जो कार्य कहा गया है वह द्वादशी में, पूर्वफाल्गुनी में जो कार्य कहा गया है वह चतुर्दशी में, उत्तराषाढा में जो कार्य कहा गया है वह पञ्चदशी में

और मघा में जो कार्य कहा गया है वह अमावास्या में करना चाहिये। इसी प्रकार जिस नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह उस नक्षत्र के देवता के करण में भी करना चाहिये। जैसे—ज्येष्ठा में जो कार्य कहा गया है वह बव करण में, रोहिणी में जो कार्य कहा गया है वह बालव में, *अनुराधा में जो कार्य कहा गया है वह कौलव में*, उत्तर फाल्गुनी में जो कार्य कहा गया है वह तैतिल में, ज्येष्ठा में जो कार्य कहा गया है वह गर में, श्रवण में जो कार्य कहा गया है वह वणिज में, भरणी में जो कार्य कहा गया है वह विष्टि में, श्लेषा में जो कार्य कहा गया है वह शकुनि में, रोहिणी में जो कार्य कहा गया है वह चतुष्पद में, आश्लेषा में जो कार्य कह गया है वह नाग में और स्वाती में जो कार्य कहा गया है वह किंस्तुघ्न में करना चाहिये। इसी प्रकार जिस नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह उस नक्षत्र के देवता सम्बन्धी मुहूर्त में भी करना चाहिये। जैसे—आर्द्रा में जो कार्य कह गया है वह शिव मुहूर्त में, श्लेषा में जो कार्य कहा गया है वह भुजग में, अनुराधा में जो कार्य कहा गया है वह मित्र में, मघा में जो कार्य कहा गया है वह पिता में, धनिष्ठा में जो कार्य कहा गया है वह वसु में, पूर्वाषाढ़ा में जो कार्य कहा गया है वह जल में, उत्तराषाढ़ा में जो कार्य कहा गया है वह विश्व में, अभिजित् में जो कार्य कहा गया है वह विरञ्चि में, रोहिणी में जो कार्य कहा गया है वह पङ्कजप्रभव में, विशाखा में जो कार्य कहा गया है वह ऐन्द्राग्नि में, मूल में जो कार्य कहा गया है वह निर्ऋति में, शतभिषा में जो कार्य कहा गया है वह वारुण में, उत्तर फल्गुनी में जो कार्य कहा गया है वह अर्यमा में, पूर्व फल्गुनी में जो कार्य कहा गया है वह भाग्य में, पूर्वभाद्रपदा में जो कार्य कहा गया है वह अजैकपाद में, उत्तर भाद्रपदा में जो कार्य कहा गया है वह अहिर्बुध्न्य में, रेवती में जो कार्य कहा गया है वह पूषन में, अश्विनी में जो कार्य कहा गया है वह दस्र में, भरणी में जो कार्य कहा गया है वह अन्तक में, कृत्तिका में जो कार्य कहा गया है वह आग्नेय में, मृगशिरा में जो कार्य कहा गया है वह इन्दु में, पुनर्वसु में जो कार्य कहा गया है वह अदिति में, पुष्य में जो कार्य कहा गया है वह गुरु में, श्रवण में जो कार्य कहा गया है वह हरि में, हस्त में जो कार्य कहा गया है वह रवि में, चित्रा में जो कार्य कहा गया है वह त्वष्टा में और स्वाती में जो कार्य कहा गया है वह अनिल मुहूर्त में करना चाहिये।

यहाँ पर गर्ग—

नन्दा प्रतिपदित्युक्ता प्रशस्ता ध्रुवकर्मसु। ज्ञानस्य च समारम्भे प्रवासे च विगर्हिता॥
भाषादत्र तपः कुर्यात् पुष्टिसौभाग्यमेव च। जन्म चात्रोत्तमं विन्द्यात् स्वयम्भूर्देवता यतः॥
भद्रेत्युक्ता द्वितीया तु तिथिरग्र्याथामिनां हिता। आरम्भे भेरजानां च प्रवासे च प्रवासिनाम्॥
आवाहांश्च विवाहांश्च वास्तुचैत्यगृहाणि च। पुष्टिकर्मकरश्रेष्ठा देवता च बृहस्पतिः॥
बलेत्युक्ता तृतीया तु बलसम्पच्च कारयेत्। गोऽश्वकुञ्जरभृत्यानां दमनं मानसानि च॥
कुर्यादासवकर्माणि बीजान्यपि च वापयेत्। बलकर्मारभेतैव विष्णुं विन्द्याच्च दैवतम्॥
रिक्ता प्रोक्ता चतुर्थी च क्षुद्रकर्म प्रयोजयेत्। गोमहं दारुणं कुर्यात् कूटशास्त्रं समारभेत्॥
अत्र सम्मारणं कुर्यादभिघाताश्रयाणि च। ध्रुवसेनाश्रयं कुर्याद् यम विन्द्याच्च दैवतम्॥
पूर्णा च पञ्चमी प्रोक्ता प्रशस्ता ध्रुवकर्मणि। नवाद्याग्रयणानां च शयनासनवेश्मनाम्॥
जन्मसेनाविभूषायां व्यवहारोपचिक्रिया। प्रशान्तं पौष्टिकं कर्म सोम विन्द्याच्च दैवतम्॥
षष्ठी भासा तिथिर्नाम प्रशस्ता ध्रुवकर्मसु। चैत्यारम्भं गृहं कुर्याद्देवतायतनानि च॥
कारयेत् सङ्क्रमद्वारगोपुराट्टालयानि च। आधानं च न कर्तव्यं कुमारश्चात्र दैवतम्॥
सप्तमी मित्रनामा तु मित्रकार्याणि ध्रुवाणि च। कुर्याद्राज्ञो ध्वजं छत्रमासनं शयनानि च॥

४९, ५० बृ० सं०

बालत्वं ब्राह्मणानां तु सर्वारम्भेषु शस्यते। अनारम्भस्तु वर्णानां शेषाणामिति निश्चय.॥
मित्रयुक्त तु यत् कर्म यच्च स्यात् सिद्धिकारणम्। स्थावराणि च सर्वाणि कौलवे संप्रयोजयेत्॥
तैतिलेन च कर्तव्यं राजद्वारिकमेव यत्। अलङ्काराँश्च विविधान् सर्वाधिकरणानि च॥
गरादिना च कर्तव्य कर्म गृहसमुद्भवम्। कृषिं प्रवेश वस्तूनां ग्रहणं चेत्रकर्मणाम्॥
सर्वकार्याणि वणिजि विवादोत्थानि कारयेत्। सर्वकार्याणि वणिजि विवादोत्थानि कारयेत्॥
विष्टिनामेह्न करण येन कर्म न कारयेत्। परेनापि कृतं कर्म भवाप्यफलोदयम्॥५॥

कर्णवेध का मुहूर्त—

लाभे तृतीये च शुभैः समेते पापैर्विहीने शुभराशिलग्ने।
वेध्यौ च कर्णावमरेज्यलग्ने पुष्येन्दुचित्राहरिपौष्णभेषु॥ ६॥

लग्न से ग्यारहवें और तीसरे में शुभ ग्रह हों, शुभ ग्रह की राशि (वृष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु, और मीन) लग्न में हो, पाप ग्रह (सूर्य, मङ्गल और शनि) से रहित होकर लग्न बृहस्पति से युत हो तथा पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, श्रवण और रेवती नक्षत्रों में कर्ण वेध शुभ होता है॥ ६॥

सक्षेप से विवाह पटल—

रोहिण्युत्तररेवतीमृगशिरोमूलानुराधामघा-
हस्तस्वातिषु षष्ठतौलिमिथुनेषूद्यत्सु पाणिग्रहः।
सप्ताष्टान्त्यवहिःशुभैरुडुपतावेकादशद्वित्रिगे
क्रूरैस्त्र्यायषडष्टगैर्न तु भृगौ षष्ठे कुजे चाष्टमे॥ ७॥
दम्पत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते चारानुकूले रवौ
चन्द्रे चार्ककुजार्किशुक्रवियुते मध्येऽथवा पापयोः।
त्यक्त्वा च व्यतिपातवैधृतिदिनं विष्टिं च रिक्तां तिथिं
क्रूराहायनपौषचैत्रविरहे लग्नांशके मानुपे॥ ८॥

रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, मृगशिरा, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और स्वाती नक्षत्रों में, कन्या, तुला और मिथुन लग्नों में, सप्तम, अष्टम और द्वादश स्थानों से भिन्न स्थानों में शुभ ग्रह हो, एकादश, द्वितीय या तृतीय स्थानों में चन्द्र हो, तृतीय, षष्ठ और एकादश में पाप ग्रह हों तथा षष्ठ में शुक्र और अष्टम में मङ्गल न हो तो विवाह शुभ होता है। वर, कन्या दोनों में किसी एक की राशि से दूसरे की राशि दूसरी, नवमी और आठवीं न हो अर्थात् द्विर्द्वादश, नवमपञ्चम और षट्काष्टक राशि से रहित राशि हो, सूर्य चारानुकूल (तृतीय, षष्ठ, दशम या एकादश स्थान में स्थित) हो, सूर्य, मङ्गल, शनि या शुक्र से वियुत या दो पापग्रहों के मध्य में चन्द्र हो तथा व्यतिपात और वैधृति योग, विष्टिकरण, रिक्ता तिथि, पाप वार, क्रूरायन (दक्षिणायन), चैत्र और पौष मास इन सबों को छोड़ कर, मानुप (द्विपद संज्ञक लग्न=मिथुन, कन्या, और तुला) में विवाह शुभ होता है। यहाँ पर पौष और चैत्र मास का निषेध कर रहे हैं। किन्तु दक्षिणायन में पौष को होने के कारण दक्षिणायन के निषेध से ही पौष का निषेध हो जाता है फिर पौष का निषेध क्यों किया। यहाँ आचार्य का अभिप्राय यह है कि दक्षिणा-

यन में स्थित कार्तिक और मार्गशीर्ष में विवाह करना चाहिए तथा उत्तरायण में स्थित चैत्र में विवाह नहीं करना चाहिए। कहा भी है—

हस्तोत्तरास्वातिमघानुराधाप्राजेशपौष्णेन्दवनैरृतेषु ।
उद्वाहसौभाग्यसुखानि कन्या प्राप्नोति शेषैः सुतभर्तृशोकम् ॥
कन्यातुलावन्मिथुनेषु साध्वी शेषेष्वसाध्वी धनवर्जिता च ।
अन्येषु मेषु द्विपदांश इष्टः कन्यादिलग्नेषु न चान्त्यभाग ॥
सौम्यान् व्ययास्तनिधनेष्वरिभे च शुक्रं हित्वा स्थितस्त्रिधनलाभगतः शशांकः ॥
पापास्त्रिषड्निधनलाभगता विवाहे हित्वाऽष्टमं क्षितिजमिष्टफलानि दद्यु ॥
त्रिकोणषष्ठाष्टधनव्ययेषु पापग्रहाणां शुभमन्यभेषु ।
गोचरशुद्धाविन्दुं कन्याया यत्नतः शुभं वीक्ष्य । तिग्मकिरणं च पुंसां शेषैरबलैरपि विवाह ॥
नान्त्ये समेत शुभकृच्छशांकः केषां चिदिष्टो बुधजीवयुक्तः ॥
मध्ये पापग्रहयोः पाणिग्रहणे शशी न सौख्यकारः। तस्माच्छशाङ्कः कन्यायाः सुस्थितो देयः॥
न वैधृतिदिने कुर्याद् व्यतिपातयुतेऽहनि । रिक्तासु न कर्तव्यं न विष्टिदिवसे तथा ॥
आग्नेयमहवासरेषु कलहः प्रीतिस्तु सरलूत्तमा ।
केचित् स्थैर्यमुशन्ति सौरदिवसे चन्द्रे ससापत्न्यकम् ॥
उत्तरां भजमानेन कार्यो वै सप्तसप्तिना । चतुर्णामपि वर्णानां विवाहः श्रेष्ठ उच्यते ॥
माघफाल्गुनवैशाखा ऐन्द्रसौम्यानलास्तथा । षडेते पूजिता मासाश्चातुर्वर्ण्येऽपि नित्यशः ॥
एषूढा सुभगा साध्वी पुत्रिणी धर्मवत्सला । धनिनी देवभक्ता च यथासंख्यं प्रकीर्तिता ॥
आषाढचैत्रपौषाश्च नभस्यः श्रावणस्तथा । कुत्सिता सर्ववर्गाणां विवाहेषु मनीषिभिः ॥
आषाढे नष्टशौचा तु खला सन्तानवर्जिता । वैशाखे सर्वसामान्या चैत्रे चालुप्तमैथुना ॥
पौषे भर्तृविहीना स्यात्प्रमत्येऽपि च दुर्भगा । एवमाषाढजुजोढा तु श्रावणे तु मृतप्रजा ॥
द्विपदभवनं प्राप्तो योंऽशः शुभोऽन्यगृहोदये । द्विपदभवनेष्वप्यन्यांशा भवन्त्यशुभावहाः ॥
विलग्नांशः स्वनाथेन यद्युद्वाहे न दृश्यते । पुविनाशस्ततोऽस्यांशो यद्येव योषितस्ततः ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां करणगुणाध्यायः शततमः ॥ १०० ॥

अथ नक्षत्रजातकाध्यायः

अश्विनी और भरणी नक्षत्र में जन्म का फल—

प्रियभूषणः सुरूपः सुभगो दक्षोऽश्विनीषु मतिमांश्च ।
कृतनिश्चयसत्यारुग्दक्षः सुखितश्च भरणीषु ॥ १ ॥

जिस मनुष्य का अश्विनी नक्षत्र में जन्म हो वह अलंकरण का स्नेही, सुन्दर, सबों का प्रिय, सब कार्य करने में चतुर और बुद्धिमान होता है। भरणी नक्षत्र में उत्पन्न जातक जिस कार्य का प्रारम्भ करे उसको सिद्ध करने वाला, सत्य बोलने वाला, नीरोग, चतुर और सुखी होता है। यहां पर विशेष—

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा । ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणा ॥

यहां पर पराशर—

विज्ञानवानरोगो निरकृतदातार्यमृत्यवनितेशः। दृढ चितिपतिसेवी जातः स्यादश्विने शूरः॥
धीरः क्रूरोऽनृतवाक् परवित्तहरो नरश्चपलबुद्धिः। बहुदासपुत्रभृत्यो याम्ये प्रियमांसमत्स्यश्च ॥

ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र में फल—

ज्येष्ठासु न बहुमित्रः संतुष्टो धर्मकृत्प्रचुरकोपः ।
मूले मानी धनवान् सुखी न हिंस्रः स्थिरो भोगी ॥ १० ॥

ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न जातक अधिक मित्रों से रहित, सन्तुष्ट, धर्म करने वाला और अधिक क्रोध करने वाला होता है। मूल नक्षत्र में उत्पन्न जातक मानी, धनवान्, सुखी, हिंसा कर्म से रहित, स्थिरबुद्धि वाला और भोगी होता है। यहाँ पर पराशर—

ज्ञातिषु गुणेषु राजसु पूजां प्राप्नोति नाशयति शत्रून्। तेजोऽधिकोऽर्थभागी जातः स्यादिन्द्रदेवर्क्षे॥
धनधान्याढ्यो दाता परवित्तहरो नरः कलहशीलः। क्रूरः परोपतापी मूले मूलोपजीवी च॥

पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ में जन्म का फल—

इष्टानन्दकलत्रो मानी दृढसौहृदश्च जलदैवे ।
वैश्वे विनीतधार्मिकबहुमित्रकृतज्ञसुभगश्च ॥ ११ ॥

पूर्वाषाढ नक्षत्र में उत्पन्न जातक अपने अभीष्ट आनन्द देने वाली स्त्री से युत, अभिमानी और अच्छे मित्रों से युत होता है। उत्तराषाढ नक्षत्र में उत्पन्न जातक विशेष नम्र स्वभाव वाला, धार्मिक, बहुत मित्रों से युत, दूसरे से किये गये उपकार को मानने वाला और सबका प्रिय होता है। यहाँ पर पराशर—

सलिलपथकर्मसिद्धः क्लेशसहिष्णुः परस्य दारेच्छुः। नित्यमकल्पशरीरः प्रियमद्यः पूर्वषाढासु॥
यानोद्यानवनरतिः प्रवाससुरतीर्थसाधुसेवी च। बहुशिल्पार्थः प्रियवाक् जातः स्याद्वैश्वदेवे च॥

श्रवण और धनिष्ठा में उत्पन्न का फल—

श्रीमाञ्छ्रवणे श्रुतवानुदारदारो धनान्वितः ख्यातः ।
दाता चाढ्यः शूरो गीतप्रियो धनिष्ठासु धनलुब्धः ॥ १२ ॥

श्रवण नक्षत्र में उत्पन्न जातक श्रीमान्, पण्डित, उदार स्त्री से युत, धनी और विख्यात होता है। धनिष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न जातक दानी, धनी, गीत वाद्यादि का प्रेमी और लोभी होता है। यहाँ पर पराशर—

ज्ञातिश्रेष्ठो धनवान् दानरुचिर्भवति दक्षिणो दक्षः। नित्यमरोगशरीरः श्रवणे हतशत्रुपक्षश्च॥
धनधान्यसञ्चयानामीशः स्यान्नृपतिसत्कृतो यज्वा। अक्लेशभाक् जितरिपुः श्रविष्ठया भीरुसारश्च॥

शतभिषा और पूर्वभाद्र नक्षत्र में जन्म का फल—

स्फुटवाग्व्यसनी रिपुहा साहसिकः शतभिषक्षु दुर्ग्राह्यः ।
भद्रपदासूद्विग्नः स्त्रीजितधनपटुरदाता च ॥ १३ ॥

शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न जातक स्पष्ट बोलने वाला, अनेक व्यसन में आसक्त, शत्रुओं को नाश करने वाला, साहसी और कष्ट से किसी के वश में आने वाला होता है। पूर्वभाद्र में उत्पन्न जातक दुःखित चित्त वाला, स्त्री के वश में रहने वाला, धनी, पण्डित और कृपण होता है। यहाँ पर पराशर—

परदारमद्यसेवी क्लेशसहो वारुणे नरो धीरः। स्थिरसञ्चयः स्थिरसुहृज्जितविक्रमपण्डितो रोगी॥
दारुणकर्मा क्रोधी निशाचरस्तीक्ष्णविक्रमश्चण्डः। विषमः प्रसह्य हन्ता प्राक्प्रोष्ठपदे भवति जातः॥

उत्तरभाद्रपदा और रेवती में उत्पन्न का फल—

वक्ता सुखी प्रजावान् जितशत्रुर्धार्मिको द्वितीयासु।
संपूर्णाङ्गः सुभगः शूरः शुचिरर्थवान् पौष्णे ॥ १४ ॥

उत्तरभाद्रपदा में उत्पन्न जातक, वक्ता, सुखी, सन्तति से युक्त, शत्रुओं को जीतने वाला और धर्माचरण करने वाला होता है। रेवती नक्षत्र में उत्पन्न जातक सम्पूर्ण अङ्गों से युक्त, सबका प्रिय, शूर, पवित्र और धनवान् होता है। यहां पराशर—

नृपसत्कृतो बहुसुतः प्रदानशीलो जले सततभीरुः। इज्याध्ययनरतिः स्यादाहिर्बुध्न्ये नरो जातः॥
सर्वाङ्गसुभगः प्रदाता प्रवासनिरतो विशुद्धकुलशीलः। गोमानल्पपुत्रः पौष्णे विद्वान् नरो जातः॥

ग्रन्थान्तरों में नक्षत्रों का फल—

अश्विन्यामतिबुद्धिवित्तविनयप्रज्ञायशस्वी सुखी
याम्यर्क्षे विकलोऽन्यदारनिरतः क्रूरः कृतघ्नो धनी।
तेजस्वी बहुलोद्भवः प्रभुसमो मूर्खश्च विद्याधनी
रोहिण्यां पररन्ध्रवित् कृशतनुर्बोधी परस्त्रीरतः॥
चान्द्रः सौम्यमनोऽटनः कुटिलदृक् कामातुरो रोगवान्
आर्द्रायामधनश्चलोऽधिकबलः क्षुद्रक्रियाशीलवान्।
मूढात्मा च पुनर्वसौ धनबलख्यातः कविः कामुकः
तिष्ये विप्रसुरप्रियः सधनधी राजप्रियो बन्धुमान्॥
सार्पे गूढमतिः कृतघ्नवचनः कोपी कृताधारवान्
गर्वी पुण्यरतः कलत्रवशगो मानी मघायां धनी।
फल्गुन्यां चपलः कुकर्मचरितस्त्यागी दृढः कामुकः
भोगी चोत्तरफाल्गुनीभजनितो मानी कृतज्ञः सुधीः॥
हस्तर्क्षे यदि कर्मधर्मनिरतः प्राज्ञोपकर्त्ता धनी
चित्रायामतिगुप्तशीलनिरतो मानी परस्त्रीरतः।
स्वात्यां देवमहीसुरप्रियकरो भोगी धनी मन्दधी-
र्गर्वी दारवशोजितारिरधिकक्रोधी विशाखोद्भवः॥
मैत्रे सुप्रियवाग् धनी सुखरतः पूज्यो यशस्वी विभु-
र्ज्येष्ठायामतिकोपवान् परवधूसक्तो विभुर्धार्मिकः।
मूलर्क्षे पटुवाग्विधूतकुशलो धूर्तः कृतघ्नो धनी
पूर्वाषाढभवो विचाररचितो मानी सुखी शान्तधीः॥
मान्यः शान्तगुणः सुखी च धनवान् विश्वर्क्षजः पण्डितः
श्रोत्रायां द्विजदेवभक्तिनिरतो राजा धनी धर्मवान्।
आशालुर्वसुमान् वसुद्भुजनितः पीनोरुकण्ठः सुखी
कालज्ञः शततारकोद्भवनरः शान्तोऽल्पभुक् साहसी॥
पूर्वप्रौष्ठपदि प्रगल्भवचनो धूर्तो भयार्त्तो मृदु-
श्चाहिर्बुध्न्यजमानवो मृदुगुणस्त्यागी धनी पण्डितः।
रेवत्यामुरुलाञ्छनोपगततनुः कामातुरः सुन्दरो
मन्त्री पुत्रकलत्रमित्रसहितो जातः स्थिरः श्रीरतः॥

ग्रन्थान्तर में प्रत्येक नक्षत्रचरणों का फल—

चौरोऽल्पकर्मा सुभगो दीर्घायुर्दस्त्रभांघ्रिषु। त्यागी धनी क्रूरकर्मा दरिद्रो याम्यभांघ्रिषु॥

तुला और वृश्चिक राशि में नक्षत्रों का विभाग—

तौलिनि चित्रान्त्यार्धं स्वातिः पदत्रयं विशाखायाः।
अलिनि विशाखापादस्तथानुराधान्विता ज्येष्ठा ॥ ४ ॥

चित्रा के शेष दो पाद, स्वाति के चार पाद और विशाखा के आद्य तीन पाद तुला राशि तथा विशाखा का शेष एक पाद, अनुराधा के चार पाद और ज्येष्ठा के चार पाद वृश्चिक राशि है ॥ ४ ॥

धनु और मकर राशि में नक्षत्रों का विभाग—

मूलमषाढा पूर्वा प्रथमश्चाप्युत्तरांशको धन्वी।
मकरस्तत्परिशेषं श्रवणः पूर्वं धनिष्ठार्धम् ॥ ५ ॥

मूल के चार पाद, पूर्वाषाढा के चार पाद और उत्तराषाढा का प्रथम एक पाद धनु राशि तथा उत्तराषाढा के शेष तीन पाद, श्रवण के चार पाद और धनिष्ठा के प्रथम दो पाद मकर राशि है ॥ ५ ॥

कुम्भ और मीन राशि में नक्षत्रों का विभाग—

कुम्भोऽन्त्यधनिष्ठार्धं शतभिषगंशत्रयं च पूर्वायाः।
भद्रपदायाः शेषं तथोत्तरा रेवती च झषः ॥ ६ ॥

धनिष्ठा के शेष दो पाद, शतभिषा के चार पाद और पूर्वाभाद्रपदा के प्रथम तीन पाद कुम्भ राशि तथा पूर्वाभाद्रपदा का शेष एक पाद, उत्तरभाद्रपदा के चार पाद और रेवती के चार पाद मीन राशि है ॥ ६ ॥

संक्षेप से राशियों में नक्षत्रों का विभाग—

अश्विनीपित्र्यमूलाद्या मेषसिंहहयादयः।
विषमर्क्षान्निवर्त्तन्ते पादवृद्ध्या यथोत्तरम् ॥ ७ ॥

अश्विनी, मघा और मूल नक्षत्र के आदि से क्रमशः मेष, सिंह और धनु राशि प्रारम्भ होती है, तथा विषम नक्षत्र (कृत्तिका, मृगशिर, पुनर्वसु और आश्लेषा) से एक एक पाद वृद्धि करके समाप्त होती है ॥ ७ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां राशिविभागाध्यायो द्व्युत्तरशततमः ॥ १०२ ॥

अथ विवाहपटलाध्यायः

उसमें पहले लग्न स्थित सब ग्रहों का फल—

मूर्तौ करोति दिनकृद्विधवां कुजश्च राहुर्विपन्नतनयां रविजो दरिद्राम्।
शुक्रः शशाङ्कतनयश्च गुरुश्च साध्वीमायुःक्षयं प्रकुरुतेऽथ विभावरीशः ॥ १ ॥

यदि विवाह कालिक लग्न में सूर्य या मङ्गल बैठा हो तो विधवा, राहु हो तो नष्ट सन्तान वाली, शनि हो तो दरिद्र, शुक्र, बुध या गुरु बैठा हो तो साध्वी और चन्द्र हो तो नष्ट आयु वाली होती है ॥ १ ॥

द्वितीय भाव स्थित सब ग्रहों का फल—

कुर्वन्ति भास्करशनैश्चरराहुभौमा दारिद्र्यदुःखमतुलं नियतं द्वितीये।
वित्तेश्वरीमविधवां गुरुशुक्रसौम्या नारीं प्रभूततनयां कुरुते शशाङ्कः॥२॥

यदि विवाह काल में लग्न से द्वितीय भाव में सूर्य, शनि, राहु या मङ्गल बैठा हो तो सदा अतिशय दारिद्र्य दु.ख से युत, गुरु, शुक्र या बुध हो तो धनवती, वैधव्य रहित तथा चन्द्र हो तो अधिक सन्तान वाली स्त्री करते हैं॥ २॥

तृतीय भाव स्थित सब ग्रहों का फल—

सूर्येन्दुभौमगुरुशुक्रबुधास्तृतीये कुर्युः सदा बहुसुतां धनभागिनीं च।
व्यक्तां दिवाकरसुतः सुभगां करोति मृत्युं ददाति नियमात् खलु सैंहिकेयः॥

यदि विवाह काल में लग्न से तृतीय भाव में सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, गुरु, शुक्र या बुध हो अधिक सन्तान वाली और धन से युत, शनि हो तो कीर्ति से युत और सुभगा तथा राहु हो तो निश्चय मृत्यु को पाने वाली स्त्री होती है॥ ३॥

चतुर्थ भाव में स्थित सब ग्रहों का फल—

स्वल्पं पयः स्रवति सूर्यसुते चतुर्थे दौर्भाग्यमुष्णकिरणः कुरुते शशी च।
राहुः सपत्नमपि च क्षितिजोऽल्पवित्तं दद्याद्भृगुः सुरगुरुश्च बुधश्च सौख्यम्॥

जिसके विवाह काल में लग्न से चतुर्थ स्थान में शनि हो उसके स्तनों से बहुत थोड़ा दूध निकलता है। सूर्य या चन्द्र हो तो भाग्य रहित, राहु हो तो सौत (सौतिन) वाली, मङ्गल हो तो अल्प धन वाली तथा शुक्र, बृहस्पति या बुध हो तो सुख भोगने वाली स्त्री होती है॥ ४॥

पञ्चम भाव स्थित सब ग्रहों का फल—

नष्टात्मजां रविकुजौ खलु पञ्चमस्थे
चन्द्रात्मजो बहुसुतां गुरुभार्गवौ च।
राहुर्ददाति मरणं शनिरुग्ररोगं
कन्याविनाशमचिरात्कुरुते शशाङ्कः॥ ५॥

जिसके विवाह काल में लग्न से पञ्चम स्थान में रवि या मङ्गल हो तो उसकी सन्तान मर जाती है। बुध, गुरु और शुक्र हो तो बहुत सन्तान, राहु तो मृत्यु, शनि हो तो कठोर रोग तथा चन्द्र हो तो शीघ्र कन्या का नाश करता है॥ ५॥

षष्ठ भाव स्थित सब ग्रहों का फल—

षष्ठाश्रिताः शनिदिवाकरराहुजीवाः
कुर्युः कुजश्च सुभगां श्वशुरेषु भक्ताम्।
चन्द्रः करोति विधवामुशना दरिद्रा-
मृद्धां शशाङ्कतनयः कलहप्रियां च॥ ६॥

यदि विवाह काल में लग्न से षष्ठ भाव में शनि, सूर्य, राहु, गुरु या मङ्गल हो श्वशुर

दन्ध) से वर्जित, प्रकटित दोष वाले, पुरातन, नवीन गुणों (सुन्दर वस्तु द्रव्य वृत्तबन्धों) से योजित शास्त्र भी भूषित करने के लिये समर्थ होते हैं।

मुखचपलावृत्त से गोचर का कारण—

बहुधा इस संसार में ग्रहगोचर का व्यवहार किया जाता है। इसलिये अनेक छन्दों के द्वारा उसके फलों को कहता हूँ। आर्यगण हमारे मुख चापल्य को क्षमा करें। यह आर्यावृत्तों के अन्तर्गत मुखचपला वृत्त है।

आर्या का लक्षण—

लक्ष्मैतत्सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमे जः।
षष्ठोऽयं न लघू वा प्रथमेऽर्धेनियतमार्यायाः॥
षष्ठे द्वितीयलात्परके न्ले मुखलाच्च सयति पदनियमः।
चरमेऽर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो लः॥

विपुला और चपला का लक्षण—

विपुला तु याऽन्यथा पादभाक् जकारौ द्वितीयकचतुर्थौ।
गुरु मध्यगौ भवेतां तदा सर्वतश्चपला॥

न्यास—

	ज		ज				
॥ऽ	।ऽ।	ऽऽ	।ऽ।	ऽऽ	।ऽ।	ऽऽ	ऽ
	ज		ज				
ऽऽ	।ऽ।	ऽऽ	।ऽ।	ऽऽ	।	ऽऽ	ऽ

मुखचपला का लक्षण—

प्रायेण गोचरो व्यवहार्योऽतस्तत्फलानि वक्ष्यामि।
नानावृत्तैरार्या मुखचपलत्वं क्षमध्वं नः॥ २॥

अर्धे यदमिमे लक्षणं भवेत् केवले तु चपलायाः। मुखचपलाऽसौ गदिता शेषे लक्षणिका॥

जघनचपला आर्या वृत्त के द्वारा अपनी नम्रता का प्रदर्शन—

माण्डव्यगिरं श्रुत्वा न मदीया रोचतेऽथवा नैवम्।
साध्वी तथा न पुंसां प्रिया यथा स्याज्जघनचपला॥ ३॥

जिन्होंने माण्डव्यऋषि की वाणी सुनी है उनको मेरी वाणी अच्छी नहीं लगेगी अथवा इस तरह कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि अपनी साध्वी स्त्री उस प्रकार पुरुषों को प्रिय नहीं लगती जिस प्रकार जघनचपला (असाध्वी = वेश्या) प्रिय होती है।

सर्वेऽप्याकाशवासा स्फटिकबिसलताशङ्खकार्पासभासाः
ते स्नान वर्द्धयन्तो नरपतितिलकं तं समुत्पादयन्ति।
यस्तेनोत्तालवाजिव्रजखुरजरजोध्यासमालोकयन्तिव
मुष्यन्ते प्रेयसीभिर्दृढमुभयनिदाशंकया चक्रवाकाः॥
कौर्पैरन्यत्र मुक्ताविचकिलधवलो रोहिणीप्राणनाथः
सर्वैः सवीक्ष्यमाणः सवलयविलयैस्तं समुत्पादयेद्धि।
नीतं यस्य प्रमादैर्धनमलिनमपि श्वेतिमानं यशोभि-
र्बिभ्राणा शंभुशङ्कां मधुमथनमहो मन्दमालिङ्गति श्रीः॥

जघनचपला का लक्षण—

पूर्वार्धे पूर्वसमं चपलाया लक्षणं निरवशेषम्। पाश्चात्यमर्धमाश्रित्य वर्तते जघनचपला सा॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द से सब ग्रहों का गोचर फल—

सूर्यः षट्त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चन्द्रमा
जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ ।
सौम्यः षड्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः
शुक्रः सप्तमषड्दशर्क्षसहितः शार्दूलवत् त्रासकृत् ॥ ४ ॥

जन्म राशि से छठी, तीसरी या दशवीं राशि में सूर्य, तीसरी, दशवीं, छठी, सातवीं या पहली राशि में चन्द्रमा, सातवीं, नववीं, दूसरी या पाँचवीं राशि में गुरु, छठी या तीसरी राशि में मङ्गल और शनि, छठी, दूसरी चौथी, दशवीं या आठवीं राशि में बुध तथा ग्यारहवीं राशि में सब ग्रह शुभ होते हैं। सातवीं, छठी और दशवीं राशि में स्थित शुक्र सिंह की तरह भय करने वाला होता है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द भी है।

शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण—

सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

न्यास—म	स	ज	स	त	त	गु	
ऽऽऽ	॥ऽ	।ऽ।	॥ऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ	॥ ४ ॥

स्रग्धरा वृत्तके द्वारा जन्म राशि, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ राशिमें स्थित सूर्य का फल—

जन्मन्यायासदोऽर्कः क्षपयति विभवान् कोष्ठरोगाध्वदाता
वित्तभ्रंशं द्वितीये दिशति च न सुखं वञ्चनां दृग्रुजं च ।
स्थानप्राप्तिं तृतीये धननिचयमुदा कल्यकृच्चारिहर्त्ता
रोगान् दत्ते चतुर्थे जनयति च मुहुः स्रग्धरा भोगविघ्नम् ॥ ५ ॥

यदि सूर्य जन्म राशि में हो तो उपद्रव, धन का नाश, पेट का रोग और मार्ग में भ्रमण, द्वितीय राशि में हो तो धन का नाश, दुखी, सब कार्यों का नाश और नेत्र रोग, तृतीय राशि में हो तो स्थान लाभ, धन-समूह से युत, आनन्द युत और शत्रु का नाश तथा चतुर्थ राशि में सूर्य हो तो रोग और माला को धारण करने वाली स्त्री के उपभोग में बार बार विघ्न उत्पन्न करता है। यह स्रग्धरा छन्द है।

स्रग्धरा का लक्षण—

'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

न्यास—म	र	भ	न	य	य	य	
ऽऽऽ	ऽ।ऽ	ऽ॥	॥।	।ऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ	॥ ५ ॥

सुवदनावृत्त के द्वारा पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम राशिगत सूर्य का फल—

पीडाः स्युः पञ्चमस्थे सवितरि बहुशो रोगारिजनिताः
षष्ठेऽर्को हन्ति रोगान् क्षपयति च रिपून् शोकांश्च नुदति ।
अध्वानं सप्तमस्थो जठरगदमयं दैन्यं च कुरुते
रुक्त्रासौ चाष्टमस्थे भवति सुवदना न स्वापि वनिता ॥६॥

यदि सूर्य जन्म राशि से पञ्चम राशि में हो तो रोग और शत्रु-जनित बहुत प्रकार की पीड़ा, षष्ठ में हो तो रोग, शत्रु और शोक का नाश, सप्तम में हो तो मार्ग में भ्रमण, पेट

यहाँ पर यवनेश्वर—

स्वस्थानगो भोजनगन्धमाल्यनारीसुहृद्वस्त्रप्रदः खलु स्यात् ।
चन्द्रो द्वितीयर्क्षगतस्तु तस्माद्बहुव्ययायासविवादकारी ॥
तृतीयगो वस्त्रहिरण्ययोषित्सुहृद्यशोभोजनदो हिमांशुः ।
स्वबन्धुपीडाधननाशजानि कुर्वीत दुःखानि चतुर्थसंस्थः ॥
धनक्षयाजीर्णदशार्त्तदैन्यचित्तोद्भवकृत् पञ्चमगः शशाङ्कः ।
शत्रुक्षयारोग्यसुखार्थसिद्धि स्निग्धागमप्रीतिकरश्च षष्ठः ॥
जामित्रगः स्त्रीजनबन्धुशय्याहिरण्यभोज्याम्बरदः शशाङ्कः ।
क्षुद्व्याधिचिन्ताकलहार्थनाशो मृत्युक्षयोपद्रवदोऽष्टमस्थः ॥
धनक्षयारिव्ययमानभङ्गरोगादिकारी नवमः शशाङ्कः ।
मेषूरणस्थो बहुमानहर्षचेष्टाफलौदार्यविरोधकारी ॥
एकादशः स्निग्धविवाहशय्यास्त्रीभोजनप्राप्तिसुखार्थकारी ।
निशाकरो द्वादशगस्तु दैन्यमालस्यमीर्ष्योपचय च कुर्यात् ॥ १० ॥

उपेन्द्रवज्राछन्द के द्वारा जन्मराशि और द्वितीय में स्थित मंगल का फल—

कुजेऽभिघातः प्रथमे द्वितीये नरेन्द्रपीडा कलहारिदोषैः ।
भृशं च पित्तानलचौररोगैरुपेन्द्रवज्रप्रतिमोऽपि यः स्यात् ॥११॥

यदि जन्मराशि में मङ्गल हो तो उपद्रव। और द्वितीय में हो तो राजपीड़ा, कलह-दोष, शत्रु दोष, धातु दोष, अग्नि, चोर, रोग इन सबों से इन्द्रवज्र-सम कठोर मनुष्य को भी अतिशय उपघात करता है। यह उपेन्द्रवज्रा छन्द है। उपेन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण—उपेन्द्रवज्रा तु जतौ जगौ ग ।

न्यास—ज त ज गु
ISI SSI ISI SS ॥ ११ ॥

उपजाति छन्द के द्वारा तृतीय राशि गत मङ्गल का फल—

तृतीयगश्चौरकुमारकेभ्यो भौमः सकाशात्फलमादधाति ।
प्रदीप्तिमाज्ञां धनमौर्णिकानि धात्वाकराख्यानि किलापराणि ॥१२॥

यदि मङ्गल तृतीय राशि में हो तो चोर और कुमारों (अष्ट वर्षीय बालकों) के द्वारा फल, आदेश, धन, ऊनी वस्त्र, खान से उत्पन्न द्रव्य और अन्य द्रव्यों का भी लाभ करता है। यह उपजाति छन्द है।

उपजाति का लक्षण—

यत्र द्वयोरप्यनयोस्तु पादा भवन्ति तावन्मिलिता मिथस्ते । विद्वद्भिराद्यैः परिकीर्तिता सा प्रयुज्यतामित्युपजातिरेषा ॥

न्यास—इन्द्रवज्रा का पाद—त त ज गु
SSI SSI ISI SS
उपेन्द्रवज्रा का पाद—ज त ज गु
ISI SSI ISI SS ॥ १२ ॥

प्रसभछन्द के द्वारा चतुर्थ राशि गत मङ्गल का फल—

भवति धरणिजे चतुर्थगे ज्वरजठरगदासृगुद्भवः ।
कुपुरुषजनिताच्च सङ्गमात्प्रसभमपि करोति चाशुभम् ॥ १३ ॥

यदि मङ्गल चतुर्थ राशि में स्थित हो तो ज्वर, उदर रोग, रक्त विकार और निन्दित पुरुष के साथ समागम से हठतापूर्वक अशुभ करता है। यह प्रसभ छन्द है।

प्रमम छन्द का लक्षण—

प्रममनवि ननौ रलौ गुरु।

न्यास—न	न	र	ल	गु	
॥।	॥।	ऽ।ऽ	।	ऽ	॥ १३ ॥

मालती छन्द के द्वारा पञ्चम राशि गत मंगल का फल—

रिपुगदक्रोपभयानि पञ्चमे तनयकृताश्च शुचो महीसुते।
द्युतिरपि नास्य चिरं भवेत् स्थिरा शिरसि कपेरिव मालती यथा॥१४॥

यदि मंगल जन्म राशि से पञ्चम राशि में स्थित हो तो शत्रु, रोग, क्रोध, भय और पुत्र के द्वारा शोक होता है। तथा जिस तरह वानर के सिर पर मालती पुष्प अधिक देर तक स्थिर नहीं रहती है उसी तरह उस मनुष्य की कान्ति बहुत देर तक स्थिर नहीं रहती है। यह मालती छन्द है।

मालती छन्द का लक्षण—

नजजरैरपि मालती मता।

न्यास—न	ज	ज	र	
॥।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	॥ १४ ॥

अपरवक्त्रा छन्द के द्वारा षष्ठ राशि गत मंगल का फल—

रिपुभयकलहैर्विवर्जितः सकनकविद्रुमताम्रकामभाः।
रिपुभवनगते महीसुते किमपरवक्त्रविकारमीक्षते॥ १५॥

जन्म राशि से षष्ठ स्थान में मंगल हो तो शत्रुभय और कलह से रहित, सुवर्ण, प्रवाल और तांबे का लाभ होता है। तथा उसको क्या दूसरे मनुष्य के मुखविकार देखना पड़ता है, कभी नहीं। यह अपरवक्त्रा छन्द है।

अपरवक्त्रा का लक्षण—

ननरलगयुतौ नझौ जरौ भवति सदापरवक्त्रमीदृशम्।

न्यास—न	न	र	ल	गु
॥।	॥।	ऽ।ऽ	।	ऽ
न	ज	ज	र	
॥।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	॥ १५ ॥

विलम्बितगति छन्द के द्वारा सप्तम, अष्टम और नवम राशि गत मंगल का फल—

कलत्रकलहाक्षिरुग्जठररोगकृत्सप्तमे
क्षरत्क्षतजरूक्षितः क्षपितवित्तमानोऽष्टमे।
कुजे नवमसंस्थिते परिभवार्थनाशादिभि-
र्विलम्बितगतिर्भवत्यबलदेहधातुक्रमैः॥ १६॥

यदि जन्म राशि से सप्तम स्थान में मंगल हो तो स्त्री के साथ विरोध, नेत्ररोग और उदररोग होता है। अष्टम में हो तो निकलते हुये रुधिर से विवर्ण शरीर, धन और मान का नाश करता है। जिसके नवम में मंगल हो वह पराभव, अर्थनाश, आदि से शरीर में निर्बलता और धातुओं के क्षय से मन्दगति वाला हो जाता है। यह विलम्बितगति छन्द है।

विलम्बितगति छन्द का लक्षण—
विलम्बितगतिर्जसौ जसयलैर्गयुक्तैर्भवेत् ।

न्यास—ज	स	ज	स	य	ल	गु	
ISI	IIS	ISI	IIS	ISS	I	S	॥१६॥

सुपुष्पिताग्र छन्द के द्वारा दशम और एकादश राशि गत मंगल का फल—

दशमगृहगते समं महीजे विविधधनाप्तिरुपान्त्यगे जयश्च ।
जनपदमुपरिस्थितश्च भुङ्क्ते वनमिव षट्चरणः सुपुष्पिताग्रम् ॥ १७ ॥

यदि जन्म राशि से दशम स्थान में मंगल हो तो मध्यम फल और एकादश में हो तो अनेक प्रकार के धन की प्राप्ति और जय होती है। तथा पुष्पित अग्रभाग वाले वृक्षों से युत वन में भ्रमर की तरह लोगों में प्रधान होकर भोग करता है। यह सुपुष्पिताग्र छन्द है।

सुपुष्पिताग्र छन्द का लक्षण—
भवति जगति नौ ततश्च रौ यो नजसहितैर्जरगैश्च पुष्पिताग्रा ।

न्यास—न	न	र	य		
III	III	SIS	ISS		
न	ज	ज	र	गु	
III	ISI	ISI	SIS	S	॥ १७ ॥

इन्द्रवंशा छन्द के द्वारा द्वादश राशि गत मंगल का फल—

नानाव्ययैर्द्वादशगे महीसुते सन्ताप्यतेऽनर्थशतैश्च मानवः ।
स्त्रीकोपपित्तैश्च सनेत्रवेदनैर्योऽपीन्द्रवंशाभिजनेन गर्वितः ॥१८॥

जिसके जन्म राशि से व्यय स्थान में मंगल हो वह इन्द्र के वंश में उत्पत्ति के गर्व से युत होने पर भी अनेक प्रकार के खर्च, अनेक प्रकार के उपद्रव, स्त्री के ऊपर क्रोध, पित्त और नेत्र रोगों से पीड़ित होता है। अर्थात् श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न भी मनुष्य अनेक प्रकार के खर्च आदि से पीड़ित होता है। यह इन्द्रवंशा छन्द है।

इन्द्रवंशा छन्द का लक्षण—
ताविन्द्रवंशा जरसहितौ मता ।

त	त	ज	र
SSI	SSI	ISI	SIS

यहाँ पर यवनेश्वर—

नृपानलव्यालविषाग्निशस्त्रभयार्थनाशी क्षयभंगकारी ।
भौमः शशिस्थानगतो द्वितीये स्वभर्थसूयामिपवञ्चनाकृत् ॥
ऐश्वर्यमानद्युतिहर्षकारी तृतीयसंस्थोऽश्वसुवर्णदश्च ।
चतुर्थगस्तूदरदारुगराशुकृप्रवृत्तिर्निवेदकरो धराजः ॥
सुतार्थनाशक्षतवैरमोघव्याधिप्रदः पञ्चमराशिसंस्थः ।
षष्ठे कुजेऽरिक्षयमानहर्षप्रख्यापनारोग्यसमृद्धिकारी ॥
जामित्रसंस्थो धनमित्रनाशक्लेशोदराध्यामयरोगकृत् स्यात् ।
भौमेऽष्टमे रुग्विपदासृग्दारक्षतक्षयोपद्रवदैन्यकारी ॥
शश्वधनार्थसुवर्णनाशखेदाध्वकारी नवमो महीजः ।
मेषूरणे व्याघ्ररिशस्त्रचौरव्रणार्तिकृत् सिद्धिकरश्च पश्चात् ॥

मानारमजाज्ञापितितान्नहेमद्युतिप्रदो रुद्रपदेऽरिजिच्च ।
स्त्रीविग्रहोद्वेजनपादरोगस्वजनावमञ्जश्रमदः कुजोऽन्त्ये ॥ १८ ॥

स्वागता छन्द के द्वारा जन्म राशि गत बुध का फल—

दुष्टवाक्यपिशुनाहितभेदैर्बन्धनैः सकलहैश्च हृतस्वः ।
जन्मगे शशिसुते पथि गच्छन् स्वागतेऽपि कुशलं न शृणोति ॥१९॥

जिसके जन्म राशि में बुध हो वह मनुष्य कठोर वाक्य, चुगुलखोरी, शत्रुता और पारस्परिक भेद से नष्ट धन वाला होता है। तथा उसके शुभागमन में भी कुशलवार्त्ता कोई नहीं सुनता है। यह स्वागता छन्द है।

स्वागता छन्द का लक्षण—
स्वागता रनभगैर्गुरुणा च।

न्यास—र न भ गु गु
ऽ।ऽ ।।। ऽ।। ऽ ऽ ॥ १९ ॥

द्रुतपद छन्द के द्वारा द्वितीय और तृतीय राशि गत बुध का फल—

परिभवो धनगते धनलब्धिः सहजगे शशिसुते सुहृदाप्तिः ।
नृपतिशत्रुभयशङ्कितचित्तो द्रुतपदं व्रजति दुश्चरितैः स्वैः ॥ २० ॥

यदि जन्म राशि से द्वितीय में बुध हो तो अनादर और धन का लाभ, तृतीय में हो तो मित्र का लाभ कराने वाला, राजा और शत्रु के भय से शङ्कित होकर अपने दुश्चरित्रों के कारण भागने वाला होता है। यह द्रुतपद छन्द है।

द्रुतपद छन्द का लक्षण—
द्रुतपद नभभयैः कथितं तत्।

न्यास—न भ ज य
।।। ऽ।। ।ऽ। ।ऽऽ ॥ २० ॥

रुचिरा छन्द के द्वारा चतुर्थ और पञ्चम राशि गत बुध का फल—

चतुर्थगे स्वजनकुटुम्बवृद्धयो धनागमो भवति च शीतरश्मिजे ।
सुतस्थिते तनयकलत्रविग्रहो निषेवते न च रुचिरामपि स्त्रियम् ॥२१॥

यदि जन्म राशि से चतुर्थ में बुध हो तो अपने जन और बन्धुओं की वृद्धि और धन की प्राप्ति होती है। पञ्चम में हो तो पुत्र और स्त्री के साथ कलह और अपने उद्वेग के कारण सुन्दरी स्त्री का भी उपभोग नहीं होता है। यह रुचिरा छन्द है।

रुचिरा छन्द का लक्षण—
जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः।

न्यास—ज भ स ज गु
।ऽ। ऽ।। ।।ऽ ।ऽ। ऽ ॥ २१ ॥

प्रहर्षणीय छन्द के द्वारा षष्ठ, सप्तम और अष्टम राशि गत बुध का फल—

सौभाग्यं विजयमथोन्नतिं च षष्ठे वैवर्ण्यं कलहमतीव सप्तमे ज्ञः ।
मृत्युस्थे जयसुतवस्त्रवित्तलाभा नैपुण्यं भवति मतिप्रहर्षणीयम् ॥२२॥

यदि जन्म राशि से छठी राशि में बुध हो तो सौभाग्य, विजय और उन्नति करता है। सातवीं राशि में हो तो विवर्णता और कलह करता है। आठवीं राशि में हो

तो विजय, पुत्र, वस्त्र और धन का लाभ तथा हर्षित करने वाली निपुणता का लाभ करता है। यह प्रहर्षणी छन्द है।

प्रहर्षणी छन्द का लक्षण—

त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।

न्यास—म न ज र गु

SSS III ISI SIS S ॥ २२ ॥

दोधक छन्द के द्वारा नवम और दशम राशि गत बुध का फल—

विघ्नकरो नवमः शशिपुत्रः कर्मगतो रिपुहा धनदश्च।

सप्रमदं शयनं च विधत्ते तद्गृहदोऽथ कथां स्तरणं च ॥ २३ ॥

यदि नवमी राशि में बुध हो तो विघ्नकारक, दशवीं राशि में हो तो शत्रुनाशक, धन देने वाला तथा स्त्री, शय्या, स्त्री के सोने का सुन्दर गृह, ऐतिहासिक वार्ता और सुन्दर बिछौना देता है। यह दोधक छन्द है।

दोधक छन्द का लक्षण—

दोधकमिच्छति भत्रितयाद्गौ।

न्यास—भ भ भ गु

SII SII SII S ॥ २३ ॥

मालिनी छन्द के द्वारा एकादश और द्वादश राशि गत बुध का फल—

धनसुतसुखयोषिन्मित्रवाहाप्तितुष्टि-

स्तुहिनकिरणपुत्रे लाभगे मृष्टवाक्यः।

रिपुपरिभवरोगैः पीडितो द्वादशस्थे

न सहति परिभोक्तुं मालिनीयोगसौख्यम् ॥ २४ ॥

यदि जन्म राशि से ग्यारहवीं राशि में बुध स्थित हो तो धन, पुत्र, सुख, स्त्री, मित्र तथा वाहन की प्राप्ति करने वाला, सन्तुष्ट और मधुर बोलने वाला होता है। यदि बारहवीं राशि में बुध हो तो शत्रु, अनादर और रोग से पीड़ित होता है, तथा माला धारण करने वाली स्त्री के संगम का सुख भोगने के लिये समर्थ नहीं होता है। यह मालिनी छन्द है।

मालिनी छन्द का लक्षण—

ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकैः।

न्यास—न न म य य

III III SSS ISS ISS ॥ २४ ॥

यहाँ पर यवनेश्वर—

स्थाने शशाङ्कस्य शशाङ्कसूनुः सौभाग्यविद्यामतिमानहर्त्ता।
द्वितीयसंस्थस्तपवादशोकवैरक्रियामन्वतिदैन्यकारी॥
तृतीयगो बन्धुविरोधरोधव्यापत्तिकर्त्ता द्रविणस्य सौम्यः।
चतुर्थगो मानगुणप्रशंसाप्रमोदयोषिद्धनलाभकारी॥
नैहान्यमुद्वेगमनर्थचर्यां कुर्याद् बुधः पञ्चमगोऽरतं च।
षष्ठे विवृद्धिं मनसः प्रहर्षमुत्साहलाभोपचयं करोति॥

आमिष्रगश्चान्द्रिरनिष्टमार्गसन्तापदैन्यादुविरोधकारी ।
स्यादष्टमस्थो विविधोपकारी बुद्धिप्रसादस्थितिसौख्यकर्त्ता ॥
मङ्गापवादाध्वपरिश्रमान्तरायापकारी नवमर्क्षसंस्थः ।
क्रियाप्रसिद्धिं दशमेऽर्थलाभ विश्लथमानं च बुधो ददाति ॥
एकादशे मानचतुष्पदस्त्रीचित्तार्थसौभाग्यविनोदकर्त्ता ।
बुधोऽन्त्यराशौ विचरंश्च कुर्यादुद्वेजनं कार्यपरिश्रमं च ॥

भ्रमरविलसिताछन्द के द्वारा जन्मराशि और द्वितीय राशिगत बृहस्पति का फल—

ीवे जन्मन्यपगतधनधीः स्थानभ्रष्टो बहुकलहयुतः ।
ाप्यार्थेऽर्थान् व्यरिरपि कुरुते कान्तास्याब्जे भ्रमरविलसितम् ॥२५॥

जिसके जन्म राशि में बृहस्पति हो उसके धन और बुद्धि का नाश, स्थान का ाश तथा वह अनेक प्रकार के विरोध से युत होता है। जिसके द्वितीय राशि में बृहस्पति हो वह धनों को प्राप्त करके शत्रुरहित होकर स्त्री के मुखकमल पर भ्रमर की तरह विलास करता है। यह भ्रमरविलसिता छन्द है।

भ्रमरविलसिता छन्द का लक्षण—
म्भौ न्लौ गान्ता भ्रमरविलसिता ।

न्यास—म म न ल गु
SSS SII III I S ॥ २५ ॥

मत्तमयूर छन्द के द्वारा तृतीय और चतुर्थ राशि गत बृहस्पति का फल—

स्थानभ्रंशात् कार्यविघाताच्च तृतीयेऽनेकैः क्लेशैर्बन्धुजनोत्थैश्च चतुर्थे ।
जीवे शान्तिं पीडितचित्तश्च स विन्देत् नैव ग्रामे नापि वने मत्तमयूरे ॥२६॥

जिसके तृतीय स्थान में बृहस्पति हो वह स्थान नाश और कार्यों के नाश से पीड़ित चित्त वाला होता है। चतुर्थ स्थान में हो तो अनेक प्रकार के क्लेश और बन्धुओं से पीड़ित चित्त वाला होता है तथा न गाँव में, न मतवाले मयूरों से युत वन में उसको शान्ति मिलती है। यह मत्तमयूर छन्द है।

मत्तमयूर छन्द का लक्षण—
वेदै रन्ध्रैर्म्तौ यसगा मत्तमयूरम् ।

न्यास—म त य स गु
SSS SSI ISS IIS S ॥ २६ ॥

मणिगुणनिकर छन्द के द्वारा पञ्चम राशि गत बृहस्पति का फल—

जनयति च तनयभवनमुपगतः परिजनशुभसुतकरितुरगवृषान् ।
सकनकपुरगृहयुवतिवसनकृन्मणिगुणनिकरकृदपि विबुधगुरुः ॥ २७ ॥

पञ्चम भवन गत बृहस्पति परिजन, धर्मादि, पुत्र, हाथी, घोड़ा और बैल का लाभ तथा सुवर्ण, नगर, गृह, स्त्री, वस्त्र और मणियों के समूहों का लाभ करता है। यह मणिगुणनिकर छन्द है।

मणिगुणनिकर छन्द का लक्षण—
वसुमुनियतिरिति मणिगुणनिकरः ।

ल गु
IIIIIIIIIIIIII S ॥ २७ ॥

हित कार्यों को प्राप्त करके पुष्प और रत्नों से विभूषित होकर वसन्ततिलका वृक्ष के पुष्प समान अतिश्वेत बाल होने पर भी कामदेव की सेवा करता है। यह वसन्ततिलका छन्द है।

वसन्ततिलका छन्द का लक्षण—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

न्यास—त	भ	ज	ज	गु	
ऽऽ।	ऽ।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽऽ	॥ ३३ ॥

इन्द्रवज्रा छन्द के द्वारा तृतीय और चतुर्थ राशिगत शुक्र का फल—

आज्ञार्थमानास्पदभूतिवस्त्रशत्रुक्षयान् दैत्यगुरुस्तृतीये।

दत्ते चतुर्थश्च सुहृत्समाजं रुद्रेन्द्रवज्रप्रतिमां च शक्तिम्॥ ३४॥

तृतीय राशि गत शुक्र प्रभुत्व, धन, मान, स्थान, समृद्धि, वस्त्र और शत्रु का नाश करता है। चतुर्थ राशिगत शुक्र मित्रों के साथ समागम तथा शिव, इन्द्र और वज्र की तरह शक्ति करता है। यह इन्द्रवज्रा छन्द है।

इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

न्यास—त	त	ज	गु	
ऽऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽऽ	॥ ३४ ॥

अनवसिता छन्द के द्वारा पञ्चम राशिगत शुक्र का फल—

जनयति शुक्रः पञ्चमसंस्थो गुरुपरितोषं बन्धुजनाप्तिम्।

सुतधनलब्धिं मित्रसहायाननवसितत्वं चारिबलेषु॥ ३५॥

पञ्चम राशिगत शुक्र अधिक सन्तोष, बन्धुओं की प्राप्ति, पुत्र और धन का लाभ तथा शत्रु के सैन्यों में अनवस्थिति करता है। यह अनवसिता छन्द है।

अनवसिता छन्द का लक्षण—

अनवसिता न्यौ भ्गौ गुरुरन्ते।

न्यास—न	य	भ	गु	
।।।	।ऽऽ	ऽ।।	ऽऽ	॥ ३५ ॥

लक्ष्मी छन्द के द्वारा षष्ठ, सप्तम और अष्टम राशिगत शुक्र का फल—

षष्ठो भृगुः परिभवरोगतापदः स्त्रीहेतुकं जनयति सप्तमोऽशुभम्।

यातोऽष्टमं भवनपरिच्छदप्रदो लक्ष्मीवतीमुपनयति स्त्रियं च सः॥३६॥

षष्ठ राशि गत शुक्र अनादर, रोग और सन्ताप करता है। सप्तम राशि गत शुक्र स्त्री के सम्बन्ध लेकर अनिष्ट करता है। अष्टम राशि गत शुक्र गृह और वस्त्र देने वाला तथा लक्ष्मीवती स्त्री का लाभ कराने वाला होता है। यह लक्ष्मी छन्द है।

लक्ष्मी छन्द का लक्षण—

लक्ष्मीरियं तभसजगैरुदाहृता।

न्यास—त	भ	स	ज	गु	
ऽऽ।	ऽ।।	।।ऽ	।ऽ।	ऽ	॥ ३६ ॥

प्रमिताक्षरा छन्द के द्वारा नवम और दशम राशिगत शुक्र का फल—

नवमे तु धर्मवनितासुखभाग् भृगुजेऽर्थवस्त्रनिचयश्च भवेत्।

दशमेऽवमानकलहान् नियमात् प्रमिताक्षराण्यपि वदन् लभते ॥ ३७ ॥

जिसके नवम राशि में स्थित शुक्र हो वह धर्म, स्त्री और सुख भोगने वाला तथा धन और वस्त्रों से युत होता है। जिसके दशम राशि गत शुक्र हो वह मनुष्य परिमित भाषण करने पर भी अपमान और कलह का लाभ करता है। यह प्रमिताक्षरा छन्द है।

प्रमिताक्षरा छन्द का लक्षण—

प्रमिताक्षरा सजयुतावथ सौ।

न्यास—स	ज	स	स	
।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	।।ऽ	॥ ३७ ॥

स्थिर छन्द के द्वारा एकादश और द्वादश राशि गत शुक्र का फल—

उपान्त्यगो भृगोः सुतः सुहृद्धनान्नगन्धदः।
धनाम्बरागमोऽन्त्यगः स्थिरस्तु नाम्बरागमः ॥ ३८ ॥

एकादश राशिगत शुक्र मित्र, धन, अन्न और सुगन्ध द्रव्य देने वाला होता है। द्वादश राशि गत शुक्र धन और वस्त्रों का लाभ कराने वाला होता है, किन्तु वस्त्र का लाभ स्थिर नहीं रहता। यह स्थिर छन्द है।

स्थिर छन्द का लक्षण—

लगौ स्थिरः प्रकीर्त्तितः।

न्यास—ल	गु	ल	गु	ल	गु	ल	गु
।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ

यहाँ पर यवनेश्वर—

हिरण्यनारीरजतार्थविद्यासुताम्बरस्थानचतुष्पदानाम् ।
लाभं शशिस्थानमुपेत्य शुक्रः कुर्याद् द्वितीये तु वराङ्गनाप्तिम् ॥
मिष्टान्नवस्त्रास्त्रजमानहर्षस्थानाङ्गनारोग्यकरस्तृतीये ।
शुक्रश्चतुर्थे धनपतिपुत्रमित्रेष्टभोज्याम्बरगन्धदः स्यात् ॥
सुहृत्सुतोद्भूतिगुणप्रवृत्तिख्यातिप्रदः पञ्चमगोऽर्थदश्च ।
षष्ठे भृगुर्दैन्यविवादरोगद्वेषोद्भवान् मानवधांश्च कुर्यात् ॥
जामित्रसंस्थो भृगुजस्तृषार्तः स्त्रीहेतुकोद्वेगकुमित्रदः स्यात् ।
स्त्रीसौख्यविस्थापनमानहर्षप्रियागमाच्छादनदोऽष्टमस्थः ॥
सुहृद्गुरुस्त्रीधनधर्मविद्यायशोगुणाप्तिं नवमर्क्षसंस्थः ।
करोति शुक्रो दशमे सबन्धुमप्रीतिचेष्टाफलमानविघ्नान् ॥
एकादशे स्त्रीशयनान्नपानभूपारतिश्चेदगृहार्थकारी ।
भृग्वात्मजो द्वादशगस्तु चन्द्रारोग्यप्रदो वस्त्रविनाशकृच्च ॥ ३८ ॥

तोटक छन्द के द्वारा जन्म राशि गत शनि का फल—

प्रथमे रविजे विषवह्निहतः स्वजनैर्वियुतः कृतबन्धुवधः।
परदेशमुपैत्यसुहृद्भवनो विमुखार्थसुतोऽटकदीनमुखः ॥ ३९ ॥

जिसके जन्म राशि में शनि हो वह विष और अग्नि से पीड़ित, बन्धुओं से रहित, बन्धु का वध करने वाला, परदेश में जाने वाला, मित्र और गृह से रहित, धन और पुत्र से रहित, भ्रमण शील, तथा दीन मुख होता है। यह तोटक छन्द है।

तोटक छन्द का लक्षण—

अथ तोटकमम्बुधिसकारयुतम् ।

न्यास—स स स स

।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ॥ ३९ ॥

वंशपत्रपतित छन्द के द्वारा द्वितीय राशिगत शनि का फल—

चारवशाद् द्वितीयगृहगे दिनकरतनये

रूपसुखापवर्जिततनुर्विगतमदबलः ।

अन्यगुणैः कृतं वसुचयं तदपि खलु भव-

त्यम्बुवद्वंशपत्रपतितं न बहु न च चिरम् ॥ ४० ॥

जिस मनुष्य के चार वश जन्म राशि से द्वितीय राशि में शनि हो वह रूप तथा सुख से रहित शरीर वाला, अहंकार रहित और निर्बल होता है। अन्य विद्या आदि गुणों से धन को इकट्ठा करने पर भी वंशपत्र पर पतित जल बिन्दु की तरह वह पर्याप्त नहीं होता और चिरकाल तक नहीं ठहरता। यह वंशपत्रपतित छन्द है।

वंशपत्रपतित छन्द का लक्षण—

दिङ्मुनिवंशपत्रपतितं भरनभनलगैः।

न्यास—भ र न भ न ल गु

ऽ।। ऽ।ऽ ।।। ऽ।। ।।। । ऽ ॥ ४० ॥

ललिता छन्द के द्वारा तृतीय राशिगत शनि का फल—

सूर्यसुते तृतीयगृहगे धनानि लभते

दासपरिच्छदोष्ट्रमहिषाश्वकुञ्जरखरान् ।

सद्मविभूतिसौख्यममितं गदव्युपरमं

भीरुरपि प्रशास्त्यधिरिपूंश्च वीरललितैः ॥ ४१ ॥

जिसके तृतीय राशि में शनि हो वह धन, भृत्य, परिवार, ऊँट, भैंस, घोड़ा, हाथी, गदहा, गृह, ऐश्वर्य, अति सौख्य और आरोग्य लाभ करता है, तथा डरपोक होने पर भी वीर चरित्रों के द्वारा प्रबल शत्रु को भी अपने वश में करता है। यह ललिता छन्द है।

ललिता छन्द का लक्षण—

स्याद्भरना रनौ च गुरुनाम सा च ललिता।

भ र न र न गु

ऽ।। ऽ।ऽ ।।। ऽ।ऽ ।।। ऽ ॥ ४१ ॥

भुजङ्गप्रयात छन्द के द्वारा चतुर्थ राशिगत शनि का फल—

चतुर्थे गृहे सूर्यपुत्रेऽभ्युपेते सुहृद्वित्तभार्यादिभिर्विप्रयुक्तः ।

भवत्यस्य सर्वत्र चासाधु दुष्टं भुजङ्गप्रयातानुकारं च चित्तम् ॥४२॥

जिसके चतुर्थ गृह में शनि हो वह मित्र, धन, स्त्री आदि (पुत्र और बन्धु) से रहित होता है, तथा इसका चित्त सर्वत्र असाधु, दुष्ट और भुजङ्ग (सर्प) के प्रयात (गमन) का अनुकरण करने वाला (अति कुटिल) होता है। यह भुजङ्गप्रयात छन्द है।

भुजङ्गप्रयात छन्द का लक्षण—
भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः,

न्यास—य य य य
।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ॥ ४२ ॥

पुटा छन्द के द्वारा पञ्चम और षष्ठ राशिगत शनि का फल—

सुतधनपरिहीणः पञ्चमस्थे प्रचुरकलहयुक्तश्चार्कपुत्रे ।
विनिहतरिपुरोगः षष्ठयाते पिबति च वनितास्यं श्रीपुटोष्ठम् ॥४३॥

जिसके पञ्चम राशिगत शनि हो वह पुत्र तथा धनों से रहित और कलहों से युत होता है। षष्ठ राशि गत शनि हो तो शत्रु रहित, नीरोग और सुन्दर ओठों से युत स्त्री के मुख का पान करने वाला होता है। यह पुटा छन्द है।

पुटा छन्द का लक्षण—
वसुयतिविरामौ नौ पुटा म्यौ।

न्यास—न न म य
।।। ।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवी छन्द के द्वारा सप्तम, अष्टम और नवम राशिगत शनि का फल—

गच्छत्यध्वानं सप्तमे चाष्टमे च हीनः स्त्रीपुत्रैः सूर्यजे दीनचेष्टः ।
तद्वद्धर्मस्थे वैरहृद्रोगबन्धैर्धर्मोऽप्युच्छिद्येद्वैश्वदेवीक्रियाद्यः ॥४४॥

जिसके जन्म राशि से सप्तम या अष्टम गृह गत शनि हो वह मार्ग में गमन करता है। तथा स्त्री, पुत्र से हीन और दीन चेष्टा से युत होता है। नवम राशिगत शनि हो तो पूर्ववत् फल होता है। तथा द्वेष और हृदय के रोग से उसका वैश्वदेवी क्रिया आदि धर्म नष्ट होता है। यह वैश्वदेवी छन्द है।

वैश्वदेवी छन्द का लक्षण—
बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ।

न्यास—म म य य
ऽऽऽ ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ॥ ४४ ॥

ऊर्मिमाला छन्द के द्वारा दशम, एकादश और द्वादश राशि गत शनि का फल—

कर्मप्राप्तिर्दशमेऽर्थक्षयश्च विद्याकीर्त्योः परिहानिश्च सौरे ।
तैक्ष्ण्यं लाभे परयोषार्थलाभश्चान्त्ये प्राप्नोत्यपि शोकोर्मिमालाम् ॥४५॥

दशम राशि गत शनि हो तो कर्म का लाभ तथा धन, विद्या और कीर्ति का नाश होता है। एकादश राशि में शनि हो तो कठोर स्वभाव तथा दूसरे की स्त्री और धन का लाभ होता है। द्वादश राशि में शनि हो तो शोक की ऊर्मि (तरंगों) की माला (समुदाय) की प्राप्ति होती है। यह ऊर्मिमाला छन्द है।

ऊर्मिमाला छन्द का लक्षण—
म्भौ तो गौ चेत्कथिता सोर्मिमाला।

न्यास—म भ त गु
ऽऽऽ ऽ।। ऽऽ। ऽऽ

यहाँ पर यवनेश्वर—

बन्धाध्वशस्त्रानिलरुग्विपत्तिं विडम्बनश्रीसुतवित्तनाशम् ।
स्थाने विधत्ते शशिनोऽर्कपुत्रस्ततो व्ययायासकरो द्वितीये ॥
तृतीयगोऽरिक्षयमानहर्षसौभाग्यवह्न्यागमदोऽर्कसूनुः ।
चतुर्थगोबन्धुधनावमानच्छायाविघाताध्वभयार्त्तिकारी ॥
स्थितिक्रियारम्भसुतार्थनाशस्त्वबन्धुविद्वेषविवादकारी ।
शनैश्चर पञ्चमगोऽथ षष्ठे शत्रुक्षयामोदसुतार्थदाता ॥
छायाविघातश्रमगुह्यरोगस्त्रीमित्रनाशाध्वकृदर्कसूनुः ।
जामित्रसंस्थोऽष्टमगोऽथ शोकदुद्बन्धुमृत्यव्यसनार्त्तिकारी ॥
स्याध्यध्ववैरश्रमवित्तनाशान्कुरुते शनि स्याद्ववमर्त्यसंस्थ. ।
ऐश्वर्यचेष्टाफलसञ्चयश्री मेपूरणे स्याच्यपश्रीतिकृच्च ॥
यशः परस्त्रीधनभृत्यलाभक्रियासमृद्धिस्थितिमानदस्तु ।
एकादशे द्वादशगस्तु चेष्टानैपुण्यकीर्तिद्युतिमानहर्त्ता ॥ ४५ ॥

वितान छन्द के द्वारा सब मनुष्यों में गोचर फल के भेद का कारण—

अपि कालमपेक्ष्य च पात्रं शुभकृद्विदधात्यनुरूपम् ।
न मधौ बहु कं कुडवे वा विसृजत्यपि मेघवितानः ॥ ४६ ॥

जिस तरह वसन्त काल में मेघ समुदाय से बहुत जल की वृष्टि होने पर भी कुडव (प्रस्थांशितुल्य पात्र) में बहुत जल नहीं होता है उसी तरह शुभ करने वाला ग्रह काल और पात्र के अनुरूप फल करता है। यह वितान छन्द है।

वितान छन्द का लक्षण—

त्रिसगैरपि विद्धि वितानम् ।

न्यास—स	स	स	गु	
॥ऽ	॥ऽ	॥ऽ	ऽ	॥ ४६ ॥

भुजङ्गविजृम्भित छन्द के द्वारा अशुभ स्थान स्थित ग्रहों की शान्ति—

रक्तैः पुष्पैर्गन्धैस्ताम्रैः कनकवृषभकुलकुसुमैर्दिवाकरभूसुतौ
भक्त्या पूज्याविन्दुर्धेन्वा सितकुसुमरजतमधुरैः सितश्च मदप्रदैः ।
कृष्णद्रव्यैः सौरिः सौम्यो मणिरजततिलककुसुमैर्गुरुः परिपीतकैः
प्रीतैः पीडा न स्यादुच्चाद्यदि पतति विशति यदि वा भुजङ्गविजृम्भितम् ॥

रक्त पुष्प, सुगन्ध द्रव्य, समालम्भन (रक्त चन्दन आदि), ताँबा, सोना और बैल से सूर्य तथा मंगल की, धेनु, सफेद पुष्प, चान्दी और मिष्टान्न से चन्द्र की, कामोद्दीपक द्रव्य (गन्ध, पुष्प, धूप और बलि) से शुक्र की, काले द्रव्यों से शनि की, मणि, चाँदी और तिल पुष्प से बुध की, पीले द्रव्यों (पुष्प, सुगन्ध द्रव्य और उपहारों) से बृहस्पति की भक्तिपूर्वक पूजा करे। यदि ऊँचे स्थान से गिरे या क्रीडासक्त सर्पों में प्रवेश करे तो भी इस प्रकार पूजा से परितुष्ट ग्रहों के द्वारा पीड़ा नहीं होती है। यह भुजङ्गविजृम्भित छन्द है।

भुजङ्गविजृम्भित छन्द का लक्षण—

मौ तो नाः नगणा प्राद्ध्वंसुमदनदहनमुनिभिर्भुजङ्गविजृम्भितम् ।

न्यास—म	म	त	न	न	न	र	स	ल	गु	
ऽऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽ।	।।।	।।।	।।।	ऽ।ऽ	॥ऽ	।	ऽ	॥४७॥

उद्गता छन्द के द्वारा ग्रह पूजा की प्रशंसा—

शमयोद्गतामशुभदृष्टिमपि विबुधविप्रपूजया ।

शान्तिजपनियमदानदमैः सुजनाभिभाषणसमागमैस्तथा ॥ ४८ ॥

देवता और ब्राह्मणों की पूजा से, शान्ति, मन्त्र जप, नियम, दान और जितेन्द्रियत्व से तथा सुजनों से भाषण और उनके साथ समागम से अशुभ दृष्टि-जन्य (गोचरोक्त मफल) दोषों का नाश करो। यह उद्गता छन्द है।

उद्गता छन्द का लक्षण—

प्रथमे सजौ यदि सलौ च नसजगुरुकाण्यनन्तरम् ।
यद्यथ भनजलगाः स्युरथो सजसा जगौ च भवतीयमुद्गता ॥

न्यास—स	ज	स	ल			
IIS	ISI	IIS	I			
न	स	ज	गु			
III	IIS	ISI	S	I		
भ	न	ज	ल	गु		
SII	III	ISI	I	S		
स	ज	स	ज	गु		
IIS	ISI	IIS	ISI	S	॥ ४८ ॥	

गीति और उपगीति लक्षण कथन पूर्वक रवि, मङ्गल, चन्द्र और शनि के फल प्रदान काल—

रविभौमौ पूर्वार्धे शशिसौरौ कथयतोऽन्त्यगौ राशेः ।

सदसल्लक्षणमार्यागीत्युपगीत्योर्यथासंख्यम् ॥ ४९ ॥

सूर्य, मंगल राशि के पूर्वार्ध में, चन्द्र और शनि राशि के अन्त में शुभाशुभ फल देते हैं। जिस छन्द में आर्या के पूर्वार्ध सम दोनों अर्ध हों उसको गीति और जिसका उत्तरार्ध सम दोनों अर्ध हों उसको उपगीति छन्द कहते हैं। यह गीति और उपगीति का लक्षण है। छन्दः शास्त्रोक्त गीति का लक्षण—आर्यायाः पूर्वार्धं यदुक्तमितरत्र प्रथमतो लक्ष्म। गीतिं गीतिविधिविदो वदन्ति सर्वत्र तदितरत्रापि। छन्द शास्त्रोक्त उपगीति का लक्षण—आर्याद्वितीयदलनार्धे लक्ष्म प्रतिनियतमवगम्य। उभयत्राप्युपगीतिं वदन्ति यत्यंशकैर्गदितैः ॥ ४९ ॥

उपगीति आर्या के द्वारा बुध का फल प्रदान काल—

आदौ यादृक् सौम्यः पश्चादपि तादृशो भवति ।

उपगीतेर्मात्राणां गणवत् सन्मम्रयोगो वा ॥ ५० ॥

उपगीति की मात्राओं के गण की तरह या साधुओं के समागम की तरह बुध राशि के आदि और अन्त में समान फल देता है। अर्थात् जैसे उपगीति छन्द में दोनों अर्ध तुल्य लक्षण लक्षित होते हैं तथा जैसे साधुओं का समागम सदा एक सा रहता है उसी तरह बुध राशि के आदि और अन्त में तुल्य फल देता है। यह उपगीति छन्द है ॥ ५० ॥

बृहस्पति के गोचर फल के उपदेश के द्वारा आर्या का लक्षण—

आर्याणामपि कुरुते विनाशमन्तर्गुरुर्विषमसंस्थः ।

गण इव षष्ठे दृष्टः स सर्वलघुतां जनं नयति ॥ ५१ ॥

जिस प्रकार सूर्य के किरण के संयोग से पित्त का प्रकोप बढ़ जाता है उसी प्रकार सूर्य की किरणों के योग से अस्त गत शनि विकारयुत होकर अशुभ फल देने में अधिक बढ़ता है और मनुष्यों को तापित करता है। किन्तु पथ्य भोजन करने वाले आर्यों को उस प्रकार अशुभ फल नहीं देता है। यह पथ्या छन्द है।

पथ्या छन्द का लक्षण—

द्व्यन्तान्तरादिगुरुमिरित्यनेनार्याद्वयेन प्रागेव प्रदर्शितम् ॥ ५५ ॥

वक्त्र छन्द के द्वारा ग्रह युक्त चन्द्र का विशेष फल—

यादृशेन ग्रहेणेन्दुर्युक्तस्तादृग्भवेत्सोऽपि ।
मनोवृत्तिसमायोगाद्विकार इव वक्त्रस्य ॥ ५६ ॥

जिस तरह मनोवृत्ति के संयोग से मुख का विकार मनोवृत्ति के समान होता है, अर्थात् प्रसन्न मन रहने से प्रसन्न मुख और दुःखित मन रहने से उदास मुख रहता है, उसी तरह यादृश शुभा-शुभ ग्रह से युक्त चन्द्र होता है, तादृश शुभा शुभ फल करता है। अर्थात् शुभ ग्रह से युत चन्द्र शुभ फल और पापग्रह से युत चन्द्र पापफल करता है। यह वक्त्र छन्द है।

वक्त्र छन्द का लक्षण—

रौ यदा गौ तु वक्त्र स्यात् म्रौ गावन्यत्र दृश्येते ।
तृतीये चरणे यसौ गौ जसौ गुरुश्चो ग स्याद् ॥

न्यास—र	र	गु	म	र	गु	
ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽऽ	ऽऽऽ	ऽ।ऽ	ऽऽ	
य	स	गु	ज	स	गु	
।ऽऽ	।।ऽ	ऽऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ	॥ ५६ ॥

श्लोक छन्द के द्वारा दुःस्थित ग्रहों से मनुष्यों की लघुता—

पञ्चमं लघु सर्वेषु सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
यद्वच्छ्लोकाक्षरं तद्वल्लघुतां याति दुःस्थितैः ॥ ५७ ॥

जिस तरह श्लोक के चारों पादों में पञ्चम तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में सप्तम अक्षर लघु होता है उसी तरह प्रतिकूल ग्रहों से मनुष्य लघुता को प्राप्त करता है। यह श्लोक छन्द है।

इसका यही उदाहरण है।

न्यास—		ल		
	ऽ।ऽ	।।ऽ	ऽऽ	
		ल		
	ऽ।ऽ	।।ऽ	।ऽ	
		ल		
	ऽऽऽ	ऽ।ऽ	ऽऽ	
		ल	ल	
	।।ऽ	ऽ।ऽ	।ऽ	॥ ५७ ॥

अनुष्टुप् छन्द के द्वारा सुस्थित ग्रहों से मनुष्यों की सुस्थितता—

प्रकृत्यापि लघुर्यश्च वृत्तवाह्ये व्यवस्थितः।

स याति गुरुतां लोके यदा स्युः सुस्थिता ग्रहाः॥ ५८॥

जिस तरह स्वभाव से लघु अक्षर भी वृत्तवाह्य (पादान्त) में व्यवस्थित होने से गुरु हो जाता है उसी तरह जो पुरुष स्वभाव से लघु (दूषित कुल में उत्पन्न) और वृत्तवाह्य (बाह्येन्द्रिय) में व्यवस्थित है अर्थात् दुश्शील है, वह भी अनुकूल ग्रह आने पर लोगों में पूजित होता है। यह अनुष्टुप् छन्द है।

इसका यही उदाहरण है॥ ५८॥

वैतालीय छन्द के द्वारा असुस्थित ग्रहों के आने पर प्रारम्भ किया हुआ कर्म कर्ता का घातक—

प्रारब्धमसुस्थितैर्ग्रहैर्यत् कर्मात्मविवृद्धये बुधैः।

विनिहन्ति तदेव कर्म तान् वैतालीयमिवाप्ययाकृतम्॥ ५९॥

जिस तरह अविधान से वेताल सिद्धि के लिये किया हुआ कर्म साधकों का ही नाश करता है उसी तरह पण्डित लोग असुस्थित ग्रहों के आने पर आत्मवृद्धि के लिये जिस कर्म का प्रारम्भ करते हैं वह कर्म ही उनका नाश करता है। यह वैतालीय छन्द है॥५९॥

औपच्छन्दसिक छन्द के द्वारा सुस्थित ग्रह आने पर स्वल्प प्रयत्न से कार्य की सिद्धि—

सौस्थित्यमवेक्ष्य यो ग्रहेभ्यः काले प्रक्रमणं करोति राजा।

अणुनापि स पौरुषेण वृत्तस्यौपच्छन्दसिकस्य याति पारम्॥ ६०॥

सुस्थित ग्रहों को देखकर जो राजा शत्रु के ऊपर आक्रमण करता है वह अल्प सैन्य से युत होने पर भी औपच्छन्दसिक वृत्त (वेदोक्त किया) का पार जाता है। यह औपच्छन्दसिक छन्द है।

औपच्छन्दसिक छन्द का लक्षण—

पर्यन्ते र्यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं वदन्ति सन्तः॥ ६०॥

दण्डक छन्द के प्रथम पाद द्वारा रविवार में विहित कर्म—

उपचयभवनोपयातस्य भानोर्दिने कारयेद्धेमताम्राश्वकाष्ठास्थिचर्माणिकाद्रिद्रुमत्वक्सन्यालचौरायुधीयाटवीक्रूरराजोपसेवाभिषेकौषधक्षौमपण्यादिगोपालकान्तारवैद्याश्मकूटावदाताभिविख्यातशूराहवश्लाघ्ययाग्यग्निकर्माणि सिध्यन्ति लग्नस्थिते वा रवौ।

जन्म राशि से उपचय (३, ६, १०, ११) भवन या लग्न में स्थित सूर्य हो और सूर्य वार हो तो सोना, ताँबा, घोड़ा, लकड़ी, हड्डी, चमड़ा, ऊनी वस्त्र, पर्वत, वृक्ष, त्वचा, शुक्ति, सर्प, चोर, शस्त्र-सम्बन्धी, वन, क्रूर, राजा का आराधन, राजा आदि का अभिषेक, औषध, क्षौम, क्रय विक्रय आदि, वन में उत्पन्न हुए द्रव्यों के ग्रहण पोषण आदि, गोपाल, मरुभूमि, वैद्य, पत्थर, दम्भ, साफ़ुलोत्पन्न, कीर्तियुक्त, शूर, युद्ध में कथनीय, गमनशील, अग्निकर्म इन सब वस्तुओं के सम्बन्धी कर्मों की सिद्धि होती है। यहाँ पर समास संहिता में—

समाससंहिता में—

नृपाभिषेककर्माणि युद्धकार्याणि यानि च। सूर्यस्य दिवसे प्राशस्तानि सर्वाणि कारयेत्॥

पितृश्राद्ध, देवताओं का कार्य, पुरःस्थित (पदाति), छत्र, चामर, भूषण, राजा, देव गृह, देव प्रतिष्ठा, गृह प्रतिष्ठा, धर्माश्रय, मङ्गल, शास्त्र, सुन्दर, बलप्रद, साथ वचन, व्रत (चान्द्रायण आदि), हवन, धन, इन सब वस्तुओं के सम्बन्धी कार्य वर्णक (सर्प आदि) से युत मनोहर दण्ड की तरह सिद्ध और सुन्दर होते हैं। यह वर्णक दण्डक छन्द है।

वर्णक दण्डक छन्द का लक्षण—

नद्वयेन सप्तभिर्भैर्गुरुणा च।

न्यास—न	न	भ	भ	भ	भ	भ	भ	भ	गु
॥।	॥।	ऽ॥	ऽ॥	ऽ॥	ऽ॥	ऽ॥	ऽ॥	ऽ॥	ऽ

यहाँ पर समाससहिता में—

शान्तिपौष्टिककर्माणि तथा ज्ञानाश्रितानि च। तानि कृत्स्नं विधेयानि दिने देवगुरोः शुभे॥

यहाँ पर यवनेश्वर—

दिने गुरोर्धार्मिकपौष्टिकेज्याबाध्यामिधेयक्रतुमुण्डनादि।
क्रियाश्रिता धर्मसुवर्णवस्त्रदेहाश्रयाश्चाधराश्रयाश्च॥

यहाँ पर गर्ग—

यज्ञं च विविधं कुर्यात् तपांसि च विशेषतः। यज्ञे यज्ञे तस्तेवे छादयेत् कारयेद् गृहम्॥
आरभेद्धारात चेद् ज्यौतिष च विशेषतः। ग्राहयेद्वस्त्रवस्त्राणि यात्रां दद्याद् नृपस्य च॥
आदिशेच्च व्रतं पुत्रे बीजान् सर्वांश्च वापयेत्। योजयेच्छकटं चात्र दिने देवगुरोः शुभे॥६२॥

समुद्रदण्डक छन्द के प्रथमार्ध द्वारा शुक्र दिन में विहित कार्य—

भृगुसुतदिवसे च चित्रवस्त्रवृष्यवेश्याकामिनीविलासहासयौवनोपभोगरम्यभूमयः। स्फटिकरजतमन्मथोपचारवाहनेक्षुशारदप्रकारगोवणिक्कृषीवलौषधाम्बुजानि च।

शुक्र वार में चित्र कर्म, वस्त्र, वीर्य वृद्धि के लिये प्रयोग, वेश्या, कामासक्त स्त्री, विलास, उपहास, यौवनोपभोग (स्त्री प्रसङ्ग आदि), चाँदी, कामदेव का उपचार, वाहन, इक्षु (ईख = गन्ना), शारदीय धान्य, वाणिज्य, खेती, औषध, जलज (कमल आदि), इन वस्तुओं के सम्बन्धी कार्य सिद्ध होते हैं। यहाँ पर समाससहिता में—

कलागान्धर्वकर्माणि रत्नकर्माणि यानि च। तानि कार्याणि दिवसे सदा दैत्यगुरोः शुभे॥

यहाँ पर यवनेश्वर—

गान्धर्वविद्यामणिरत्नगन्धयोभूमिशय्याम्बरभूषणानाम्।
स्त्रीपण्यकोशोरमवनन्दनानां क्रियाविधिः शुक्रदिने प्रशस्तः॥

यहाँ पर गर्ग—

गजमश्वं प्रयुञ्जीत कर्मबन्धे नियोजयेत्। पिबेत् सुरां च मद्यं च प्रचरेत् कुसुमाम्बरम्॥
गन्धांश्च विविधानद्यात् कामयेच्च वराङ्गनाः। सूते च सहसा प्रीतिं तिलं तैलं च योजयेत्॥
मङ्गलं स्थापयेदेव शोचयेच्चैव पादपान्। सर्वमेतद्यथोद्दिष्टं कुर्याच्छुक्रदिने शुभे॥६२३॥

समुद्रदण्डक छन्द के अपरार्द्ध द्वारा शनि वार में विहित कर्म—

सवितृसुतदिने च कारयेन्महिष्यजोष्ट्रकृष्णलोहदासवृद्धनीचकर्मपक्षिचौरपाशिकान् च्युतविनयविशीर्णभाण्डहस्त्यपेक्षविभ्रकारणानि चान्यथा न साधयेत्समुद्रगोऽप्ययं क्रमम्॥६३॥

शनि वार में भैंस, छाग, ऊँट, कृष्णलोह (शस्त्र, आयुध आदि), भृत्य, वृद्ध, नीच, पक्षी, चोर, बन्धन आदि जानने वाले, नम्रता से रहित, फूटा भाण्ड, हस्त्यपेक्षा (हाथी के ग्रहणादि), विघ्न के कारण इनके आश्रित सब कार्य सिद्ध होवे हैं। इन पूर्वोक्त नियमों को छोड़ कर समुद्र में जाने पर भी जल बिन्दु की भी प्राप्ति नहीं होती है। यह समुद्रदण्डक छन्द है।

समुद्रदण्डक छन्द का लक्षण—

अथ नद्वयात् परतः पञ्च रेफा जकारान्तरिता भवन्त्यन्ते लघुगुरू।

न्यास—न न र ज र ज र ज र ज र ल गु

III III SIS ISI SIS ISI SS ISI SIS ISI SIS I S

यहाँ पर समास संहिता में—

शस्त्राणि पापकर्माणि पशुकर्माणि यानि च। तानि सौरदिने कुर्याल्लौहकर्माणि यानि च॥
संवत्सरे तथा मासे होरायामुदये तथा। उक्तानि यानि कर्माणि तानि कुर्याद्दृहस्य च॥

यहाँ पर यवनेश्वर—

विपापमशस्त्रत्रपुसीसलोहप्राकारबन्धानृतमारणानि ।
सर्वं च पापात्मककर्मजानि, कार्पासवस्त्रजितानि चेष्टम्॥

यहाँ पर गर्ग—

नियोगान् विविधान् कुर्याद्विरम चापि प्रवेशयेत्। कर्म चौर्यं भृतिं चैवाश्वरथेभ्वश्वयोजनम्॥
हस्त्यपेक्षा विप्रकर्म द्रव्यं दम्भाश्रितं तथा। वर्जयेच्चैव यात्रां च दिने सूर्यसुतस्य च॥ ६३॥

विपुला आर्या छन्द के द्वारा यहाँ पर प्रशंसार्थ वाक्य—

विपुलामपि बुद्ध्वा छन्दोविचितिं भवति कार्यमेतावत्।
श्रुतिसुखदवृत्तसङ्ग्रहमिममाह वराहमिहिरोऽतः॥ ६४॥

बहुत विस्तीर्ण छन्दों के प्रस्तारों को जान कर भी इतना ही कार्य होता है। अतः वराहमिहिर आचार्य ने कर्णसुख जनक यह छन्दसग्रह कहा है। यह विपुला आर्या छन्द है।

विपुला आर्या छन्द का लक्षण—

विपुला तु यान्यथा पादमासित्यादि॥ ६५॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां ग्रहगोचराध्यायश्चतुरधिकशततमः॥ १०४॥

अथ रूपसत्राध्यायः

इसमें पहले नक्षत्र पुरुष के अङ्ग विभाग में नक्षत्रों की स्थिति—

पादौ मूलं जङ्घे च रोहिणी जानुनी तथाश्विन्यः।
ऊरू चाषाढद्वयमथ गुह्यं फल्गुनीद्वितयम्॥ १॥
कटिरपि च कृत्तिकापार्श्वयोश्च यमला भवन्ति भद्रपदाः।
कुक्षिस्था रेवत्यो विज्ञेयमुरोऽनुराधा च॥ २॥
पृष्ठं विद्धि धनिष्ठां भुजौ विशाखा स्मृतौ करौ हस्तः।

अङ्गुल्यश्च पुनर्वसुराश्लेषासञ्ज्ञिताश्च नखाः ॥ ३ ॥
ग्रीवा ज्येष्ठा श्रवणं श्रवणौ पुष्यो मुखं द्विजाः स्वातिः ।
हसितं शतभिषगथ नासिका मघा मृगशिरो नेत्रे ॥ ४ ॥
चित्रा ललाटसंस्था शिरो भरण्यः शिरोरुहाश्चार्द्रा ।
नक्षत्रपुरुषकोऽयं कर्तव्यो रूपमिच्छद्भिः ॥ ५ ॥

नक्षत्र पुरुष के दोनों पाँव में मूल, दोनों जंघाओं में रोहिणी, दोनों जानुओं में अश्विनी, दोनों ऊरु में पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा, गुह्य (लिङ्ग और गुदा) में पूर्वफाल्गुनी और उत्तरफाल्गुनी, कमर में कृत्तिका, दोनों पार्श्व में पूर्वभाद्रपदा और उत्तरभाद्रपदा, पेट में रेवती, छाती में अनुराधा, पीठ में धनिष्ठा, दोनों भुजाओं में विशाखा, दोनों हाथों में हस्त, अंगुलियों में पुनर्वसु, नखों में श्लेषा, ग्रीवा में ज्येष्ठा, दोनों कानों में श्रवण, मुख में पुष्य, दाँतों में स्वाति, हास्य में शतभिषा, नासिका में मघा, दोनों आँखों में मृगशिरा, ललाट में चित्रा, शिर में भरणी तथा केशों में आर्द्रा को स्थापित करे। सुन्दर रूप की इच्छा करने वाले पुरुषों को यह नक्षत्र चक्र बनाना चाहिये ॥ १-५ ॥

रूपसत्राख्य व्रत के आरम्भ करने का समय—

चैत्रस्य बहुलपक्षे ह्यष्टम्यां मूलसंयुते चन्द्रे ।
ह्युपवासः कर्तव्यो विष्णुं सम्पूज्य धिष्ण्यं च ॥ ६ ॥

चैत्र शुक्ला अष्टमी में यदि मूल नक्षत्र और चन्द्र वार हो तो उस दिन विष्णु और नक्षत्र की पूजा करके प्रथम उपवास आरम्भ करके जैसे जैसे रोहिणी आदि आता जाय तैसे तैसे आर्द्रा तक उपवास करना चाहिये। यहाँ पर गर्ग—

अष्टम्यां मधुमासस्य कृष्णपक्षे तु नैर्ऋते। नक्षत्रे चन्द्रवारे तु मुहूर्ते तु गुणान्विते ॥
प्रारम्भेद्रूपसत्राख्यं व्रतं धर्मात्मक पुमान्। येन पूर्णेन मनुजो रूपशोभामवाप्नुयात् ॥१॥

व्रत समाप्ति के बाद का कर्तव्य—

दद्याद्व्रते समाप्ते घृतपूर्णं भाजनं सुवर्णयुतम् ।
विप्राय कालविदुषे सरत्नवस्त्रं स्वशक्त्या च ॥ ७ ॥

व्रत समाप्त होने के बाद अपनी शक्ति के अनुसार कालज्ञ ब्राह्मण के लिये सुवर्ण, रत्न और वस्त्रों के साथ घृत से पूर्ण पात्र दान करे ॥ ७ ॥

इसके बाद का कर्तव्य—

अन्नैः क्षीरघृतोत्कटैः सहगुडैर्विप्रान् समभ्यर्चयेद्
दद्याच्चेषु सुवर्णवस्त्ररजतं लावण्यमिच्छन्नरः ।
पादर्क्षात्प्रभृति क्रमादुपवसन्नङ्गर्क्षनामस्वपि
कुर्यात् केशवपूजनं स्वविधिना धिष्ण्यस्य पूजां तथा ॥८॥

लावण्य की इच्छा करने वाला मनुष्य दूध, घृत और गुड़ से मिश्रित अन्नों से ब्राह्मणों की पूजा करे तथा उन ब्राह्मणों को सोना, वस्त्र और चाँदी देवे। पाँव के नक्षत्र से आरम्भ करके उपवास करता हुआ विष्णु और अङ्ग के नक्षत्रों की पूजा करे ॥ ८ ॥

इस तरह व्रत करने से अन्य जन्म में पुरुष कैसा होता है—

प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षाः क्षपाकरास्यः सितचारुदन्तः।
गजेन्द्रगामी कमलायताक्षः स्त्रीचित्तहारी स्मरतुल्यमूर्तिः॥ ९॥

पूर्व कथित पूजा करने से मनुष्य लम्बी भुजाओं से युत, विस्तीर्ण और पुष्ट छाती वाला, चन्द्र के समान मुख वाला, सफेद सुन्दर दाँतों से युत, गजेन्द्र के समान गति वाला, कमल के समान विस्तीर्ण नेत्र वाला, स्त्री के चित्त को हरने वाला और कामदेव के समान स्वरूप वाला होता है॥ ९॥

पूर्वोक्त व्रत करने से स्त्री कैसी होती है—

शरदमलपूर्णचन्द्रद्युतिसदृशमुखी सरोजदलनेत्रा।
रुचिरदशना सुकर्णा भ्रमरोदरसंनिभैः केशैः॥ १०॥
पुंस्कोकिलसमवाणी ताम्रोष्ठी पद्मपत्रकरचरणा।
स्तनभारानतमध्या प्रदक्षिणावर्त्तया नाभ्या॥ ११॥
कदलीकाण्डनिभोरुः सुश्रोणी चारुकुन्दरा सुभगा।
सुश्लिष्टाङ्गुलिपादा भवति प्रमदा मनुष्यश्च॥ १२॥

यदि पूर्वोक्त व्रत को स्त्री करे तो शारदीय चन्द्र के समान मुखकान्ति, कमल दल के समान नेत्र, सुन्दर दाँत, सुन्दर कान, भ्रमरोदर के समान केश, पुंस्कोकिल के समान वाणी, ताम्र वर्ण के समान ओंठ, कमल के समान हाथ और पाँव, स्तनों के भार से नत मध्य भाग, दक्षिणावर्त्त नाभियों से युत, केले के खम्भे के समान ऊरु, सुन्दर नितम्ब पूर, स्वामिप्रिया और मिली हुई अँगुलियों से युत पाँव वाली होती है। इसी तरह इस व्रत को करने से पुरुष भी होता है॥ १०-१२॥

रूपसत्र करने वाले की प्रशंसा—

यावन्नक्षत्रमाला विचरति गगने भूषयन्तीह भासा
तावन्नक्षत्रभूतो विचरति सह तैर्ब्रह्मणोऽह्नोऽवशेषम्।
कल्पादौ चक्रवर्ती भवति हि मतिमांस्तत्क्षयाच्चापि भूयः
संसारे जायमानो भवति नरपतिर्ब्राह्मणो वा धनाढ्यः॥ १३॥

इस लोक में अपनी कान्ति से शोभा पैदा करती हुई नक्षत्रमाला जब तक आकाश में रहती है तब तक स्त्री या पुरुष नक्षत्ररूप होकर नक्षत्रों के समान कल्पान्त तक विचरण करता है। फिर दूसरे कल्प के आदि में बुद्धिमान् चक्रवर्ती राजा होता है, चक्रवर्तित्व नाश होने के बाद संसार में जन्म लेकर राजा वा धनाढ्य ब्राह्मण होता है॥

मार्गशीर्ष आदि बारह मासों के नाम—

मृगशीर्षाद्याः केशवनारायणमाधवाः सगोविन्दाः।
विष्णुमधुसूदनाख्यौ त्रिविक्रमो वामनश्चैव॥ १४॥

श्रीधरनामा तस्मात् सहृषीकेशश्च पद्मनाभश्च ।
दामोदर इत्येते मासाः प्रोक्ता यथासंख्यम् ॥ १५ ॥

केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर ये क्रम से मार्गशीर्ष आदि बारह मासों के नाम हैं। जैसे मार्गशीर्ष का केशव, पौष का नारायण इत्यादि ॥ १४-१५ ॥

द्वादशी की प्रशंसा—

मासनामसमुपोषितो नरो द्वादशीषु विधिवत् प्रकीर्तयन् ।
केशवं समभिपूज्य तत्पदं याति यत्र न हि जन्मजं भयम् ॥१६॥

मनुष्य विधिपूर्वक द्वादशी में मास के नाम के साथ व्रत रख कर केशव, नारायण आदि की पूजा के बाद उनके नाम का कीर्तन करता हुआ उनके पद को प्राप्त होता है, जहाँ पर पुनर्जन्म का भय नहीं है ॥ १६ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां रूपसत्राध्यायः पञ्चाधिकशततमः ॥ १०५ ॥

अथोपसंहाराध्यायः

इसमें पहले शास्त्र और बुद्धि का माहात्म्य—

ज्योतिःशास्त्रसमुद्रं प्रमथ्य मतिमन्दराद्रिणाऽथ मया ।
लोकस्यालोककरः शास्त्रशशाङ्कः समुत्क्षिप्तः ॥ १ ॥

मैंने (वराहमिहिर ने) बुद्धिरूप मन्दराचल के द्वारा ज्यौतिषशास्त्र रूप समुद्र को अच्छी तरह मथन करके संसार में प्रकाश करने वाला शास्त्ररूप चन्द्र निकाला है ॥ १ ॥

पूर्वाचार्यग्रन्था नोत्सृष्टाः कुर्वता मया शास्त्रम् ।
तानवलोक्येदं च प्रयतध्वं कामतः सुजनाः ॥ २ ॥

इस शास्त्र को बनाते हुये मैंने पूर्वाचार्यकृत ग्रन्थों के आशयों को नहीं छोड़ा है। अतः उन पूर्वाचार्य कृत ग्रन्थों को और इस शास्त्र को यत्नपूर्वक देख कर पण्डितों को प्रयत्न करना चाहिये, अर्थात् जो अच्छा हो उसको ग्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥

सज्जन और दुर्जनों की चेष्टा—

अथवा कृशमपि सुजनः प्रथयति दोषार्णवाद्गुणं दृष्ट्वा ।
नीचस्तद्विपरीतः प्रकृतिरियं साध्वसाधूनाम् ॥ ३ ॥

अथवा सुजन मनुष्य दोषरूप समुद्र में थोड़ा सा भी गुण देख कर उसको विस्तार करते हैं। परन्तु नीच पुरुष इससे विपरीत स्वभाव का होता है, अर्थात् गुणों को छिपाता है और स्वल्प दोष को भी विस्तार करता है। यही साधु और असाधु का लक्षण है ॥ ३ ॥

नवीन काव्य दुर्जनों को दिखाना चाहिये—

दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमायाति।
श्रावयितव्यं तस्माद्दुष्टजनस्य प्रयत्नेन॥ ४॥

काव्य रूप सुवर्ण दुर्जन रूप अग्नि से तपाये जाने पर विशुद्धि को प्राप्त होता है। इसलिये दुर्जन मनुष्य को यत्नपूर्वक शास्त्र सुनाना चाहिये॥ ४॥

विद्वानों से प्रार्थना—

ग्रन्थस्य यत्प्रचरतोऽस्य विनाशमेति
लेख्याद्बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण।
यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं वा
कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम्॥ ५॥

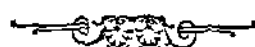
प्रचारोन्मुख इस ग्रन्थ में लेखक दोष से जो अशुद्धियां रह जांय या जो मुझसे आगम विरुद्ध किया गया हो और जो नहीं किया गया हो वे सब मत्सरता को छोड़ कर बहुश्रुत मनुष्यों के मुख से सुन कर पण्डितों को यहां पर ठीक कर लेना चाहिये॥ ५॥

पूर्वाचार्यों के लिये नमस्कार—

दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम्।
शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः॥ ६॥

सूर्य, मुनिगण और गुरुजनों के चरणों में नमस्कार जन्य अनुग्रह से उत्पन्न बुद्धि के द्वारा इस ग्रन्थ का संग्रह मैंने किया है। अतः पूर्वाचार्यों के लिये मेरा नमस्कार है॥ ६॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामुपसंहाराध्यायः षडधिकशततमः॥ १०६॥



अथ शास्त्रानुक्रमण्यध्यायः

उसमें पहले अध्यायों का संग्रह—

शास्त्रोपनयः पूर्वं सांवत्सरसूत्रमर्कचारश्च।
शशिराहुभौमबुधगुरुसितमन्दशिखिग्रहाणां च॥ १॥

पहले शास्त्रोपनय, बाद सांवत्सरसूत्र, अर्कचार, चन्द्रचार, राहुचार, भौमचार, बुधचार, गुरुचार, शुक्रचार, शनिचार, केतुचार॥ १॥

चारश्चागस्त्यमुनेः सप्तर्षीणां च कूर्मयोगश्च।
नक्षत्राणां व्यूहो ग्रहभक्तिर्ग्रहविमर्दश्च॥ २॥

अगस्त्यचार, सप्तर्षिचार, कूर्मविभाग, नक्षत्रव्यूह, ग्रहभक्तियोग, ग्रहयुद्ध॥ २॥

श्रीधरनामा तस्मात् सहृषीकेशश्च पद्मनाभश्च ।
दामोदर इत्येते मासाः प्रोक्ता यथासंख्यम् ॥ १५ ॥

केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर ये क्रम से मार्गशीर्ष आदि बारह मासों के नाम हैं। जैसे मार्गशीर्ष का केशव, पौष का नारायण इत्यादि ॥ १४-१५ ॥

द्वादशी की प्रशंसा—

मासनामसमुपोषितो नरो द्वादशीषु विधिवत् प्रकीर्तयन् ।
केशवं समभिपूज्य तत्पदं याति यत्र न हि जन्मजं भयम् ॥१६॥

मनुष्य विधिपूर्वक द्वादशी में मास के नाम के साथ व्रत रख कर केशव, नारायण आदि की पूजा के बाद उनके नाम का कीर्तन करता हुआ उनके पद को प्राप्त होता है, जहां पर पुनर्जन्म का भय नहीं है ॥ १६ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां रूपसत्राध्यायः पञ्चाधिकशततमः ॥ १०५ ॥

अथोपसंहाराध्यायः

उसमें पहले शास्त्र और बुद्धि का माहात्म्य—

ज्योतिःशास्त्रसमुद्रं प्रमथ्य मतिमन्दराद्रिणाऽथ मया ।
लोकस्यालोककरः शास्त्रशशाङ्कः समुत्क्षिप्तः ॥ १ ॥

मैंने (वराहमिहिर ने) बुद्धिरूप मन्दराचल के द्वारा ज्यौतिषशास्त्र रूप समुद्र को अच्छी तरह मथन करके संसार में प्रकाश करने वाला शास्त्ररूप चन्द्र निकाला है ॥ १ ॥

पूर्वाचार्यग्रन्था नोत्सृष्टाः कुर्वता मया शास्त्रम् ।
तानवलोक्येदं च प्रयतध्वं कामतः सुजनाः ॥ २ ॥

इस शास्त्र को बनाते हुये मैंने पूर्वाचार्यकृत ग्रन्थों के आशयों को नहीं छोड़ा है। अतः उन पूर्वाचार्य कृत ग्रन्थों को और इस शास्त्र को यत्नपूर्वक देख कर पण्डितों को प्रयत्न करना चाहिये, अर्थात् जो अच्छा हो उसको ग्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥

सज्जन और दुर्जनों की चेष्टा—

अथवा कृशमपि सुजनः प्रथयति दोषार्णवाद्गुणं दृष्ट्वा ।
नीचस्तद्विपरीतः प्रकृतिरियं साध्वसाधूनाम् ॥ ३ ॥

अथवा सुजन मनुष्य दोषरूप समुद्र में थोड़ा सा भी गुण देख कर उसको विस्तार करते हैं। परन्तु नीच पुरुष इससे विपरीत स्वभाव का होता है, अर्थात् गुणों को छिपाता है और स्वल्प दोष को भी विस्तार करता है। यही साधु और असाधु का लक्षण है ॥ ३ ॥

नवीन काव्य दुर्जनों को दिखाना चाहिये—

दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमायाति ।
श्रावयितव्यं तस्माद्दुष्टजनस्य प्रयत्नेन ॥ ४ ॥

काव्य रूप सुवर्ण दुर्जन रूप अग्नि से तपाये जाने पर विशुद्धि को प्राप्त होता है। इसलिये दुर्जन मनुष्य को यत्नपूर्वक शास्त्र सुनाना चाहिये ॥ ४ ॥

विद्वानों से प्रार्थना—

ग्रन्थस्य यत्प्रचरतोऽस्य विनाशमेति
लेख्याद्बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण ।
यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं वा
कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम् ॥ ५ ॥

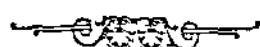
प्रचारोन्मुख इस ग्रन्थ में लेखक दोष से जो अशुद्धियां रह जांय या जो मुझसे आगम विरुद्ध किया गया हो और जो नहीं किया गया हो वे सब मत्सरता को छोड़ कर बहुश्रुत मनुष्यों के मुख से सुन कर पण्डितों को यहां पर ठीक कर लेना चाहिये ॥ ५ ॥

पूर्वाचार्यों के लिये नमस्कार—

दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम् ।
शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः ॥ ६ ॥

सूर्य, मुनिगण और गुरुजनों के चरणों में नमस्कार जन्य अनुग्रह से उत्पन्न बुद्धि के द्वारा इस ग्रन्थ का संग्रह मैंने किया है। अतः पूर्वाचार्यों के लिये मेरा नमस्कार है ॥ ६ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामुपसंहाराध्यायः षडधिकशततमः ॥ १०६ ॥



अथ शास्त्रानुक्रमण्यध्यायः

इसमें पहले अध्यायों का संग्रह—

शास्त्रोपनयः पूर्वं सांवत्सरसूत्रमर्कचारश्च ।
शशिराहुभौमबुधगुरुसितमन्दशिखिग्रहाणां च ॥ १ ॥

पहले शास्त्रोपनय, बाद सांवत्सरसूत्र, अर्कचार, चन्द्रचार, राहुचार, भौमचार, बुधचार, गुरुचार, शुक्रचार, शनिचार, केतुचार ॥ १ ॥

चारश्चागस्त्यमुनेः सप्तर्षीणां च कूर्मयोगश्च ।
नक्षत्राणां व्यूहो ग्रहभक्तिर्ग्रहविमर्दश्च ॥ २ ॥

अगस्त्यचार, सप्तर्षिचार, कूर्मविभाग, नक्षत्रव्यूह, ग्रहभक्तियोग, ग्रहयुद्ध ॥ २ ॥

परिचयः

श्रीसीताजन्मपूतो ...

सर्वेत्यात्यन्तसार ...

तस्मिन्भूद्धीदेवनाख्य-सम ... मैथिलब्राह्मणा ...

तस्माज्जाताः प्रसिद्धा 'मवि' 'रदि' 'जयदत्ता'भिधानैः क्रमेण पुत्राः पुत्रेषु मान्या स च समुदये ... शास्त्रयोर्ज्ञे

त्रिष्वेतेषु महोद्यमोऽयममवरकीर्तिप्रभापान्वितः स्वच्छः श्री'जयदत्त'संज्ञकबुधो विज्ञानविद् सन्नाम् ।
तज्जात कृतलक्षणो भरतभूद्दीपोऽभिरूपो महान् सोऽयं मत्प्रपितामहोऽतिसरलः श्री 'भातृनाथा'भिधः ॥
श्रीगोरवाभिमानाह्वयोऽतिहृदयालुः कर्मठस्तत्सुतः गम्भीरे सरितां पति समगुणादर्शः सनामग्रणी ।
सोऽयं देवनिकेतनातिथिमितः सीतासमां मानरं दृष्ट्वाऽत्यन्तमकाण्डके निजगृहे चिन्ताकुलोऽभूत्सुतम् ॥
स्नेहेनेत्थममुं निभाल्य हि समानीयात्मनः सन्निधौ 'ठाढी'सञ्ज्ञकमौम्यनाततनिगमान्मातामहेन द्रुतम् ।
'गूना'ख्येन महात्मना स्वसुतवज्ज्ञोपाह्वयेनैधितः स्वग्रामेऽसमये स्वमातृरहितोऽसौ 'चौगमा'ख्ये स्थितः ॥
तेनैवास्य समाप्तवाल्यवयसः सम्प्राप्तविषयस्य वै स्वीयग्रामसमीपवर्ति'जरिसो'ग्रामे सतां धामनि ।
श्रीपारायस्य धनान्वितस्य सुतया श्री 'वेदमण्या'ह्वयस्याभिज्ञस्य बहुप्रदस्य विधिना पाणिग्रहोऽकार्यत ॥
तत्रैवायमनीत्य मातृजनने कालं कियन्तं ततः स्नेहार्द्रश्वशुरेण नैजनिकटे चानीय सर्वादिरः ।
तस्मात्तत्समयात्स्वकीयवसतिं तत्रैव निर्माय च च्छात्राध्यापनतो, नयन्स्वसमयं दैवज्ञचूडामणिः ॥
तज्जातेषु सुतेषु पञ्चसु महामान्यो वदान्योऽनुजो दान्तोऽत्यन्तमनन्तपादभजकः शान्तो नितान्तं सताम् ।
ज्ञाता श्री'बलदेव'सञ्ज्ञकबुधः सौजन्यवारां निधिः ख्यातो मज्जनकोऽतिविस्तगणकः स्वीयान्वयानन्दकः ॥
तज्जातेषु नगेषु सूनुषु कुलालङ्कारभूतेष्वहं ज्येष्ठाच्छ्री'रघुवंश'कादवरजो विद्वज्जनानां सताम् ।
वाञ्छन् प्रेमसुधारसार्द्रहृदयानां सन्ततं सत्कृपां श्रीकालीपदपद्मसेवनकृती नन्दोऽच्युतादिः कृती ॥ १ ॥
सुविदित'दरभङ्गा'ख्ये प्रान्ते पत्तालये 'बहेडा'ख्ये । 'जरिसो'नाम्ना ख्यातं नगरं भूदेववृन्दसंवलितम् ।
अकरोत्तत्र निवासी श्रीमद्बलदेवशर्मणस्तनयः । श्रीलाच्युतादिनन्दो वाराहीसंहितटीकाम् ॥
ज्योतिषशास्त्रे काशीस्थायामुत्तीर्य राजकीयायाम् । प्रतिपरीक्षं प्रथमायां श्रेण्यामाचार्यपरीक्षाखण्डम् ॥ १२
सर्वप्रथमायां तल्लब्धो 'रीपन्' सुहेमपदकश्च । अथ लब्धश्च विहारे ज्योतिषसाहित्यशास्त्रयोर्मध्ये ॥ १३
आचार्यस्य च पदवीं पोष्टाचार्याभिधानिकां कादयाम् । इत्येवास्त्यस्माकं संस्तवबोधोत्कः । सम्प्रति कश्चित्
पूर्वमयान्ते वसतोऽमुष्यामेव स्थापितश्च सकलान् । श्रीरामसाधुमठसंस्कृतविद्यालये विदन् ॥ १५
स्यक्त्वामुं स्वयमेव पूर्वकथितं विद्यालयं सयुतप्रान्तान्तः स्थितिमुद्बुलन्दशहराख्ये मण्डले संस्थिते
'खुर्जा'ख्ये नगरेऽतिमञ्जुलतरे राधाकृष्णाह्वये कालेजे अधुनानुशास्मि सुधियः । त्रिस्कन्धकं ज्योतिषम् ।

'चलन-कलन' नाम्नि ग्रन्थरत्ने प्रकार्षं विवरणमतिसूक्ष्मं सर्वप्रश्नोत्तराणाम् ।
तदनु धवलटीकायुग्मकं 'चौदुदाये' तदनु च रुचिरं सदान्तुरत्नावलीके ॥ १७ ॥
तदनु च सकलानां मानवानां नितान्तमुपकृतिकरणार्थं 'पद्धतीनां' प्रकाशम् ।
तदनु विबुधवर्ज्यां जैमिने सूत्रके च रुचिरयुगलटीकां पञ्चमे पुस्तकेऽस्मिन् ॥ १८ ॥

अथ 'भावकल्याध्यायो' लोमशोक्तोऽतिमञ्जुलः । मया विमलया षष्ठे टीकया विमलीकृतः ॥ १९

'चापत्रिकोणगणिते' अथ सप्तमेऽस्मिन् नीलाम्बरेण रचिते गणकाग्रगेण ।
युक्तिं कृताऽतिकलिता विवृताऽवदाता छात्रोपकारजनिका मयका पुलाका ॥ २० ॥
कृता 'ताजिक'सञ्ज्ञकेऽष्टमे ग्रन्थे प्रसिद्धे विमलाऽभिधानिका ।
टीका मया वासनया समेता सोदाहृतिः सर्वमनःप्रिया च ॥ २१ ॥

'बीजगणिते' च नवमे सवासनोद्देशिका टीका । अथ 'जातकाभरण'के दशमे विमला मया विहिता ॥ २२
'रमलनवरत्न'सुते टीका चैकादशेऽथ विमलेव । सरलत्रिकोणमथ द्वादशकं पुस्तकं मया रचितम् ॥ २३

'गोलीयरेखागणिते' त्रयोदशेऽकारीह ग्रन्थे विमलाऽथ वासना ।
ग्रन्थास्त्विन्द्रप्रमिताः प्रकाशिता मुद्रापयित्वा विदुषां मुदे मया ॥ २४ ॥

विमला हिन्दीटीका वाराहीसंहितायाश्च । रचिता रुचिरा मयका विदुषां प्रीत्यै चतुर्दश्याम् ॥ २५
साष्टाष्टचन्द्रतुल्ये शाके माघे वसन्तपञ्चम्याम् । पूर्णत्वमियं 'विमला' टीकाऽऽसा विज्ञजनतुष्ट्यै ॥

रोहिणी योग के समय में और भी शुभ योग—

अथवाऽञ्जनशैलशिलानिचयप्रतिरूपधरैः स्थगितं गगनम् ।
हिममौक्तिकशङ्खशशाङ्ककरद्युतिहारिभिरम्बुधरैरथवा ॥ १६ ॥

अथवा अञ्जन पर्वत के काले पत्थरों के समान मेघों से युत या हिम, मोती, शंख और चन्द्र-किरण की कान्ति हरण करने वाले मेघों (श्वेत वर्ण के मेघों) से युत आकाश रोहिणी योग के समय में शुभ होता है ॥ १६ ॥

रोहिणी योग के समय में और भी शुभ योग—

तडिद्धैमकक्ष्यैर्बलाकाग्रदन्तैः स्रवद्वारिदानैश्चलत्प्रान्तहस्तैः ।
विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्रायशोभैस्तमालालिनीलैर्वृतं चाब्दनागैः ॥१७॥

बिजली रूप मध्यबन्धन (करधनी), हसपंक्ति रूप आगे के दाँत, गिरते हुये जलरूप मद, चलते हुये अग्रभाग रूप हाथ, विचित्र इन्द्रधनु के समान ऊँची ध्वजा वाले, तमाल वृक्ष और भ्रमर की तरह काले हाथी की तरह मेघों से व्याप्त आकाश रोहिणी के समय में शुभ होता है ॥ १७ ॥

मेघ वर्णन—

सन्ध्यानुरक्ते नभसि स्थितानामिन्दीवरश्यामरुचां घनानाम् ।
वृन्दानि पीताम्बरवेष्टितस्य कान्ति हरेश्चोरयतां यदा वा ॥१८॥

जिस आकाश में संध्याकालिक राग से रगे, नील कमल के समान मानो पीताम्बर पहने हुए विष्णु भगवान् की कान्ति को चुराने वाले मेघ हैं ॥ १८ ॥

मेघ का और वर्णन—

सशिखिचातकदर्दुरनिःस्वनैर्यदि विमिश्रितमन्द्रपटुस्वनाः ।
खमवतत्य दिगन्तविलम्बिनः सलिलदाः सलिलौघमुचः क्षितौ ॥१९॥

मयूर, चातक और मेढक के शब्दों से युत मधुर शब्द वाले, आकाश को व्याप्त कर दिगन्त तक लटके हुये तथा पृथ्वी पर अधिक वृष्टि करने वाले मेघ ॥ १९ ॥

फल निरूपण—

निगदितरूपैर्जलधरजालैस्त्र्यहमवरुद्धं द्व्यहमथवाऽह्नः ।
यदि वियदेवं भवति सुभिक्षं मुदितजना च प्रचुरजला भूः ॥२०॥

तीन या दो दिन तक पूर्वोक्त स्वरूप वाले मेघों से युत आकाश हो तो सुभिक्ष, आनन्दयुत मनुष्य और पृथ्वी पर अधिक वृष्टि होती है ।

यहाँ पर गर्ग—

दधिरौप्यामलकौद्बलताम्राभारुणसन्निभाः । शुककौशेयमाञ्जिष्ठास्तपनीयसमप्रभाः ॥
क्षचिद्धृष्टमूला सुस्निग्धाः पर्वताकारसन्निभाः । घना घना प्रसरयन्ते विद्युत्स्तनितसङ्कुलाः ॥

यहाँ पर पराशर—

रोहिणीयोगे पुनः प्रदक्षिणो मृदुर्मारुतः स्नेहवन्ति चाभ्राणि विद्युच्छक्रचापालङ्कृतानि स्वादुसुरभिविमलशिशिरतावृद्धिश्चाम्भसां वृष्टिः क्षेमसुभिक्षाय । यावतो दिवसान्निमित्तप्रादुर्भावानुबन्धस्तावद्वर्षाणि सुभिक्षक्षेमम् । आसप्तरात्राद्बिलवासिनां बिलेभ्यो निष्क्रमणं स्त्रीपुरुषबालानां प्रमोदः पक्षिणां क्षीरपुष्पफलवृक्षसेवनं तरूणामच्छिद्रपत्रता पुरपौरहिताय ॥

समाससहिता में—

आषाढबहुलपक्षे शिशिरकरे रोहिणीसमायुक्ते।
यदि गगनममलमन्यन्ततीक्ष्णरश्मिः सहस्रांशुः ॥
सलिलगुरुनभ्रजलधरतडिल्लतालोलरञ्जितदिगन्तः ।
अमितमलभेकचातककादम्बविमिश्रमाकाशम् ॥
क्षितितनयरविजरहितः स्फटिकनिभश्चन्द्रमा निरुत्पातः ।
मरुतश्च पूर्वपूर्वोत्तरोत्तराः शान्तमृगविहगाः ॥ २० ॥

अशुभ मेघ का लक्षण और फल—

रूक्षैरल्पैर्मारुताक्षिप्तदेहैरुष्ट्रध्वाङ्क्षप्रेतशाखामृगाभैः ।
अन्येषां वा निन्दितानां स्वरूपैर्मूकैश्चाब्दैर्नो शिवं नापि वृष्टिः ॥२१॥

रूक्ष, अल्प, वायु से प्रेरित, ऊंट, कौआ, मुर्दा, वानर या अन्य निन्दित जीवों (कुत्ता, बिल्ली, राक्षस आदि) की तरह कान्ति वाले और शब्द रहित मेघ अशुभ और अवृष्टि करने वाले होते हैं ।

यहाँ पर गर्ग—

छिन्नमूलाश्च वृक्षाश्च शुष्का वाष्पाकुलीकृताः । पापसत्त्वानुकाराश्च मेघाः पापफलप्रदाः ॥

शुभ मेघ का लक्षण और फल—

विगतघने वा वियति विवस्वानमृदुमयूखः सलिलकृदेवम् ।
सर इव फुल्लं निशि कुमुदाढ्यं खमुडुविशुद्धं यदि च सुवृष्ट्यै ॥२२॥

यदि मेघ रहित आकाश में सूर्य के किरण तीक्ष्ण हों तथा रात्रि में निर्मल नक्षत्रों से युत आकाश, खिली हुई कुमुदिनियों से युत सरोवर की तरह हो तो सुन्दर वृष्टि होती है ॥ २२ ॥

दिशाओं के विभाग से मेघों का फल—

पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दैराग्नेयाशासम्भवैरग्निकोपः ।
याम्ये सस्यं क्षीयते नैर्ऋतेऽर्द्धं पश्चाज्जातैः शोभना वृष्टिरब्दैः ॥२३॥
वायव्योत्थैर्वातवृष्टिः क्वचिच्च पुष्टा वृष्टिः सौम्यकाष्ठासमुत्थैः ।
श्रेष्ठं सस्यं स्थाणुदिक्सम्प्रवृद्धैर्वायुश्चैवं दिक्षु धत्ते फलानि ॥२४॥

पूर्व दिशा में उत्पन्न मेघों से धान्य की उत्तम निष्पत्ति, आग्नेय कोण में उत्पन्न मेघों से अग्नि का भय, दक्षिण दिशा में उत्पन्न मेघों से धान्य का नाश, नैर्ऋत्य कोण में उत्पन्न मेघों से धान्य की आधी निष्पत्ति, पश्चिम दिशा में उत्पन्न मेघों से सुन्दर वृष्टि, वायव्य कोण में उत्पन्न मेघों से कहीं-कहीं पर वायु युत वृष्टि (सर्वत्र नहीं), उत्तर दिशा में उत्पन्न मेघों से पूर्ण वृष्टि और ईशान कोण में उत्पन्न मेघों से उत्तम धान्य होता है। दिशाओं के वश वायु का भी इसी तरह फल समझना चाहिये ॥ २३-२४ ॥

उत्पातों का लक्षण और फल—

उल्कानिपातास्तडितोऽशनिश्च दिग्दाहनिर्घातमहीप्रकम्पाः ।
नादा मृगाणां सपतत्रिणां च ग्राह्या यथैवाम्बुधरास्तथैव ॥ २५ ॥

रोहिणी योग के समय दिशाओं के वश मेघों के फल (पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरित्यादि पद्योक्त फल) की तरह दिशाओं के वश उल्कापात, विद्युत्, दिग्दाह, आकाश में शब्द, भूकम्प, पक्षी और वन-जन्तुओं के शब्द का फल कहना चाहिये ॥२५॥

चारों दिशाओं में कुम्भस्थापन से फल—

नामाङ्कितैस्तैरुदगादिकुम्भैः प्रदक्षिणं श्रावणमासपूर्वैः ।
पूर्णैः स मासः सलिलस्य दाता स्रुतैरवृष्टिः परिकल्प्यमूनैः ॥२६॥

रोहिणी योग के दिन वृष्टि होने पर उत्तर आदि चारों दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से श्रावण आदि चार मासों का नाम अङ्कित करके चार घड़ों का स्थापन करे। जिस मास का घड़ा जल से पूर्ण हो जाय वह मास फल देने वाला, घड़े से बिलकुल जल निकल जाय तो अवृष्टि और थोड़ा जल हो तो अपनी बुद्धि से तारतम्य करके वृष्टि की कल्पना करनी चाहिये। जैसे आधे में आधा, चौथाई में चौथाई इत्यादि वृष्टि कहनी चाहिये।

यहाँ पर गर्ग—

सौम्ये तु श्रावणं विन्द्यात्पूर्वे भाद्रपदं वदेत् । दक्षिणेऽश्वयुजो ज्ञेयः पश्चिमे कार्तिकं विदुः ॥
सर्वे कुम्भाः सुपूर्णाः स्युरभग्ना कान्तिसंयुताः । चतुरो वार्षिकान् मासान् सर्वान् वर्षति वासवः
सर्वस्रुतैरवृष्टिः स्यादर्द्धैरर्धमवर्षणम् । इत्थंस्तथाविधा वृष्टिर्वक्तव्या जलमानतः ॥ २६ ॥

अन्यैश्च कुम्भैर्नृपनामचिह्नैर्देशाङ्कितैश्चाप्यपरैस्तथैव ।
भग्नैः स्रुतैर्न्यूनजलैः सुपूर्णैर्भाग्यानि वाच्यानि यथानुरूपम् ॥ २७ ॥

रोहिणी योग के समय वृष्टि होने पर उत्तर आदि चार दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से उत्तर आदि दिशाओं में स्थित राजा, देश और ब्राह्मण आदि चार वर्णों का नाम अङ्कित करके पूर्ववत् चार घड़ों का स्थापन करे। यदि जिस दिशा का घड़ा नष्ट हो जाय उस दिशा के राजा, देश और वर्णों का नाश, जिस दिशा के घड़ा से सब जल

बह जाय उस दिशा के राजा आदियों में उपद्रव, जिस दिशा के घड़ा में थोड़ा जल रहे उस दिशा के राजा आदियों को मध्यम फल और जिस दिशा का घड़ा जल से पूर्ण हो जाय उस दिशा के राजा आदियों को अति शुभ फल होता है।

यहाँ पर काश्यप—

अन्यदेशाङ्किताः कुम्भा भिद्यन्ते च स्रवन्ति च। बन्धहीना विहीनाश्च तेऽभियोज्या नृपेण वै॥

रोहिणी के साथ दक्षिण गत चन्द्र-समागम का फल—

दूरगो निकटगोऽथवा शशी दक्षिणे पथि यथातथा स्थितः।
रोहिणीं यदि युनक्ति सर्वथा कष्टमेव जगतो विनिर्दिशेत् ॥२८॥

यदि दूर स्थित या समीप स्थित चन्द्रमा रोहिणी के दक्षिण गत होकर संयोग करे तो संसार को दुःखी करने वाला होता है॥ २८॥

रोहिणी के साथ उत्तर गत चन्द्र समागम का फल—

स्पृशन्नुदग्याति यदा शशाङ्कस्तदा सुवृष्टिर्बहुलोपसर्गा।
असंस्पृशन्योगमुदक्समेतः करोति वृष्टिं विपुलां शिवं च ॥२९॥

यदि रोहिणी के दक्षिण में स्पर्श करते हुये उत्तर तरफ हो कर चन्द्रमा गमन करे तो सुन्दर वृष्टि और लोगों में अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं। यदि रोहिणी को स्पर्श नहीं करते हुये उत्तर तरफ हो कर चन्द्रमा गमन करे तो सुन्दर वृष्टि और लोगों का शुभ करने वाला होता है॥ २९॥

रोहिणी शकट के मध्यस्थित चन्द्र का फल—

रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः।
क्वापि यान्ति शिशुयाचिताशनाः सूर्यतप्तपिठराम्बुपायिनः॥ ३०॥

यदि रोहिणी शकट (छ तारा होने के कारण रोहिणी शकट कहते हैं) के मध्य स्थित हो कर चन्द्रमा गमन करे तो आश्रय रहित, बच्चों के लिये भोजन माँगते हुये, सूर्य किरण से अत्यन्त उष्ण जल पीते हुये लोग (प्रजा गण) अनिश्चित स्थान पर गमन करते हैं। (-ग्रहलसिद्धान्त में शकटभेद लक्षण—विक्षेपोऽर्द्धितयादधिको-ऽवमस्य ससदृश मागे। यस्य ग्रहस्य याम्यो भिनत्ति शकटं स रोहिण्याः)॥ ३०॥

रोहिणी के पश्चिमस्थित चन्द्र का फल—

उदितं यदि शीतदीधितिं प्रथमं पृष्ठत एति रोहिणी।
शुभमेव तदा स्मरातुराः प्रमदाः कामिवशे च संस्थिताः॥ ३१॥

पहले चन्द्र का उदय हो कर पीछे चन्द्र के पश्चिम दिशा में रोहिणी उदित हो कर गमन करे तो लोगों में अनेक प्रकार के शुभ होते हैं तथा कामातुर स्त्रीगण पति के वश हो जाती है॥ ३१॥

रोहिणी के पूर्व दिशा स्थित चन्द्र का फल—

अनुगच्छति पृष्ठतः शशी यदि कामी वनितामिव प्रियाम् ।
मकरध्वजबाणखेदिताः प्रमदानां वशगास्तदा नराः ॥ ३२ ॥

जैसे प्रिया स्त्री के पीछे कामी पुरुष गमन करता है, उसी तरह यदि रोहिणी के पीछे चन्द्र गमन करे तो काम के बाण से खेदित हो कर मनुष्य गण स्त्री के वश में हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

रोहिणी के आग्नेयादि में स्थित चन्द्र का फल—

आग्नेय्यां दिशि चन्द्रमा यदि भवेत्तत्रोपसर्गो महान्
नैर्ऋत्यां समुपद्रुतानि निधनं सस्यानि यान्तीतिभिः ।
शक्रेशानिलदिक्स्थिते हिमकरे सस्यस्य मध्यश्रयो
याते स्थाणुदिशं गुणाः सुबहवः सस्यार्घवृष्ट्यादयः ॥ ३३ ॥

जिस वर्ष में रोहिणी के आग्नेय कोन में चन्द्रमा स्थित हो उस वर्ष में बहुत उपद्रव, नैर्ऋत्य कोण में चन्द्रमा स्थित हो तो अति वृष्टि आदि ईतियों से पीड़ित हो कर धान्य का नाश, वायव्य कोण में स्थित चन्द्र हो तो मध्यम धान्य और ईशान कोण में स्थित चन्द्र हो तो उस वर्ष में धान्यों के मूल्य में अल्पता, सुन्दर वृष्टि आदि बहुत गुण होते हैं ।

समाससंहिता में—

उदगपि च तुहिनकिरणः पूर्वोत्तरतोऽथवा स्थितः प्राच्याम् ।
यदि भवति तदा वसुधा भवति विवृद्धा प्रहृष्टजना ॥
उपसर्गोऽनलदिक्स्थे धान्यानासंस्थिते शकटके च ।
किं कष्टैस्तैरन्यैः श्रुतमात्रैर्यैः कृतो भवति ॥
क्रिमिशुककालभादिभयं नैर्ऋत्यां नातिपुष्टिरपरेण ।
वायव्यायासस्ये मध्यं सस्यं कुमुदनाथे ॥ ३३ ॥

भेदित और आच्छादित योगतारा का फल—

ताडयेद्यदि च योगतारकामावृणोति वपुषा यदापि वा ।
ताडने भयमुशन्ति दारुणं छादने नृपवधोऽङ्गनाकृतः ॥३४॥

यदि चन्द्रमा रोहिणी की योगतारा को भेदित (शृङ्ग के एक देश से स्पर्श) करे या अपने बिम्ब से उसको आच्छादित करे तो भेदित करने से कठोर भय और छादित करने से स्त्री के द्वारा राजा का मरण होता है ।

योगतारा का लक्षण—

सतारागणमध्ये तु या तारा दीप्तिमत्तरा । योगतारेति सा प्रोक्ता नक्षत्राणां पुरातनैः ॥३४॥

पशुओं के वश शुभाशुभ फल—

गोप्रवेशसमयेऽग्रतो वृषो याति कृष्णपशुरेव वा पुरः॥

भूरि वारि शबले तु मध्यमं नो सितेऽम्बुपरिकल्पनापरैः॥३५॥

यदि गो-प्रवेश (पश्चिम संध्या) समय में वन से आये हुये पशुओं में आगे बैल या काला पशु हो तो उस वर्ष में बहुत वृष्टि होती है। यदि शबल (कृष्ण-श्वेत) पशु आगे हो तो मध्यम फल, उसमें कालापन ज्यादा हो तो वृष्टि, सफेदी ज्यादा हो तो थोड़ी वृष्टि और बिल्कुल सफेदी हो तो अवृष्टि होती है।

यहाँ पर गर्ग—

प्राक्प्रवेशे तु यूथस्य पुरतो वृषभो यदा। प्रवेशे कृष्णवर्णो वा पशुर्बहुजलप्रदः॥
कृष्णा तु गौः सुभिक्षाय क्षेमारोग्याय चोच्यते। गौर्यामिय च नीलायां मध्याः सस्यस्य सम्पदः॥
अनावृष्टिकरी श्वेता वाताय कपिला स्मृता। पाटला सस्यनाशाय रोगाय करटा स्मृता॥
एकदेशाय शबला चित्रे चित्रा तु वर्षति। पाण्डुरा मध्यमाङ्गी वा ग्रीष्मधान्यविवर्द्धनी॥
कपिला पश्चिमं वर्षं सोमा स्वप्ने प्रवर्षति॥ ३५॥

अदर्शन चन्द्र का फल—

दृश्यते न यदि रोहिणीयुतश्चन्द्रमा नभसि तोयदावृते।

रुग्भयं महदुपस्थितं तदा भूश्च भूरिजलसस्यसंयुता॥ ३६॥

मेघ से ढके हुये आकाश में रोहिणी योग के समय यदि चन्द्र नहीं दिखाई दे तो उस वर्ष में अतिशय रोग का भय होता है तथा पृथ्वी बहुत धान्य और वृष्टि से युत होती है॥ ३६॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां रोहिणीयोगाध्यायश्चतुर्विंशः॥ २४॥

अथ स्वातीयोगाध्यायः

पहले रोहिणी योग की तरह फलादेश और कालनिर्देश—

यद्रोहिणीयोगफलं तदेव स्वातावपाढासहिते च चन्द्रे।

आषाढशुक्ले निखिलं विचिन्त्यं योऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये॥ १॥

रोहिणी योग में उक्त सब फलों की तरह आषाढ़ शुक्ल में स्वाती नक्षत्र में स्थित चन्द्र के सब फलों का विचार करना चाहिये तथा इस (स्वाती योग) में जो विशेष फल हैं उन्हें मैं कहता हूँ।

यहाँ पर पराशर—

सर्वं एते योगा मास्याषाढे भवन्ति। तान्दैवज्ञः प्रयतः शुचिरवधारयेत्। स्वातिसंयुते चन्द्रमसि घनस्निग्धस्तनितविद्युन्मालैरभ्रैर्नभसोऽवच्छादनं सुभिक्षक्षेमाय वह्निसर्वतप्रादुर्भाव इति। उल्कानिर्घातकम्पोपघातैश्च विपर्ययः॥ १॥

रात और दिन के त्रिभाग में वृष्टि का फल—

स्वातौ निशांशे प्रथमेऽभिवृष्टे सस्यानि सर्वाण्युपयान्ति वृद्धिम् ।
भागे द्वितीये तिलमुद्गमाषा ग्रैष्मं तृतीयेऽस्ति न शारदानि ॥ २ ॥
वृष्टेऽह्नि भागे प्रथमे सुवृष्टिस्तद्वद्द्वितीये तु सकीटसर्पा ।
वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टे निश्छिद्रवृष्टिर्द्युनिशं प्रवृष्टे ॥ ३ ॥

स्वाती नक्षत्र में स्थित चन्द्र के समय रात-दिन दोनों के तीन २ भाग करे, यदि रात्रि के प्रथम भाग में वृष्टि हो तो सब धान्यों की वृद्धि, द्वितीय भाग में तिल, मूग और उड़द की वृद्धि, तृतीय भाग में ग्रीष्म ऋतु के धान्य की उत्पत्ति और शारदीय धान्य का अभाव, दिन के प्रथम भाग में सुन्दर वृष्टि, द्वितीय भाग में कीड़े और साँपों से युत वृष्टि तथा तृतीय भाग में वृष्टि हो तो मध्यम वृष्टि होती है। यदि सम्पूर्ण दिन और रात में वृष्टि हो तो वर्षाकाल में दोष रहित वृष्टि होती है।

यहाँ पर गर्ग—

स्वातियोगे यदा युक्ते पूर्वरात्रे प्रवर्षति । ग्रीष्मशारदसम्पत्तो तां समामभिनिर्दिशेत् ॥
रात्रेर्द्विभागमाश्रित्य स्वातियोगेऽभिवर्षति । सम्पदो मुद्गमाषाणां तिलानां चावधारयेत् ॥
त्रिभागशेषे शर्वर्या स्वातियोगेऽभिवर्षति । ग्रैष्मं सम्पद्यते सस्यं शारदं तु विनश्यति ॥
अहस्तु प्रथमे भागे वर्षात्क्षेमसुवृष्टये । द्वितीये शोभना वृष्टिर्बहुसस्यसरीसृपाः ॥
अहस्तृतीयभागे तु मध्यमां कुरुते समाम् । अहोरात्रं यदा वर्षे स्वातियोगे पुरन्दरः ॥
तदा तु चतुरो मासान् सर्वान्वर्षति वासवः ॥ २–३ ॥

अपांवत्स तारा के निकट स्थित चन्द्र का फल—

समनुत्तरेण तारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यपांवत्सः ।
तस्यासन्ने चन्द्रे स्वातेर्योगः शिवो भवति ॥ ४ ॥

चित्रा के उत्तर में अपांवत्स नामक तारा है, उसके समीप में यदि स्वाती के साथ चन्द्र का संयोग हो तो शुभ होता है ॥ ४ ॥

स्वाती योग का फल—

सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति हिमं माघमासान्धकारे
वायुर्वा चण्डवेगः सजलजलधरो वापि गर्जत्यजस्रम् ।
विद्युन्मालाकुलं वा यदि भवति नभो नष्टचन्द्रार्कतारं
विज्ञेया प्रावृडेषा मुदितजनपदा सर्वसस्यैरुपेता ॥ ५ ॥

यदि माघ कृष्ण सप्तमी में स्वाती नक्षत्र गत चन्द्र होने के समय हिम गिरे, भयङ्कर वायु चले, जल युत मेघ गर्जे, विद्युन्माला से व्याप्त आकाश रहे तथा मेघाच्छन्न होने के कारण चन्द्र, सूर्य और तारा न दिखाई दे तो वर्षाकाल में आनन्दित और सब धान्यों से युक्त जनपद जानना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वाती योग का और शुभाशुभ फल—

तथैव फाल्गुने चैत्रे वैशाखस्यासितेऽपि वा ।
स्वातियोगं विजानीयादाषाढे च विशेषतः ॥ ६ ॥

इसी तरह फाल्गुन, चैत्र और वैशाख के कृष्ण पक्ष में स्वाती योग का विचार करे । किन्तु आषाढ मास में विशेष रूप से इस का विचार करना चाहिये ॥ ६ ॥

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां स्वातीयोगाध्याय' पञ्चविंशः ॥ २५ ॥

अथ आषाढीयोगाध्यायः

आषाढी योग में धान्यों के परिमाण से धान्यों की स्थिति—

आषाढ्यां समतुलिताधिवासितानामन्येद्युर्यदधिकतामुपैति बीजम् ।
तद्वृद्धिर्भवति न जायते यदूनं मन्त्रोऽस्मिन् भवति तुलाभिमन्त्रणाय ॥

आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन उत्तराषाढा नक्षत्र गत चन्द्र के समय बराबर सब धान्यों को अभिमन्त्रित तराजू से अलग-अलग तौलकर रख दे, दूसरे दिन उन सबों को फिर तोले, जो धान्य बढ़ जाय उस की उस वर्ष में वृद्धि और जो कम हो जाय उस की हानि होती है । यहाँ तुला को अभिमन्त्रित करने के लिये मन्त्र है ।

समाससंहिता में—

तुलिताधिवासितानामन्येद्युर्यदधिकं भवति बीजम् ।
आषाढपौर्णमास्यां तद्वृद्धिरत्र मन्त्रोऽयम् ॥ १ ॥

यहाँ पर आर्ष मन्त्र—

स्तोतव्या मन्त्रयोगेन सत्या देवी सरस्वती ।
दर्शयिष्यसि यत्सत्यं सत्ये सत्यव्रता ह्यसि ॥ २ ॥
येन सत्येन चन्द्रार्कौ ग्रहा ज्योतिर्गणास्तथा ।
उत्तिष्ठन्तीह पूर्वेण पश्चादस्तं व्रजन्ति च ॥ ३ ॥
यत्सत्यं सर्ववेदेषु यत्सत्यं ब्रह्मवादिषु ।
यत्सत्यं त्रिषु लोकेषु तत्सत्यमिह दृश्यताम् ॥ ४ ॥
ब्रह्मणो दुहितासि त्वमादित्येति प्रकीर्तिता ।
काश्यपी गोत्रतश्चैव नामतो विश्रुता तुला ॥ ५ ॥

मन्त्र योग से सत्यरूपा सरस्वती देवी की उपासना करनी चाहिये । हे सत्यरूपे सरस्वति ! जो परमार्थ रूप वस्तु है उस को तुम ही दिखा सकती हो क्योंकि तुम सत्यव्रत वाली हो । जिस सत्य से चन्द्र, सूर्य, कुजादि ग्रह और नक्षत्र गण पूर्व दिशा

में उदित हो कर पश्चिम में अस्त होते हैं। जो सत्य सब वेदों में है, जो सत्य ब्रह्मवादियों में है और जो सत्य तीनों लोकों में है उस को दिखा दो। तुम ब्रह्मा जी की पुत्री हो पर आदित्या (अदिति की पुत्री) कहलाती हो, गोत्र से कश्यप गोत्र की हो और तुला के नाम से विख्यात हो ॥ २–५ ॥

तुला का लक्षण—

क्षौमं चतुःसूत्रकसन्निबद्धं षडङ्गुलं शिक्यकवस्त्रमस्याः ।
सूत्रप्रमाणं च दशाङ्गुलानि षडेव कक्ष्योभयशिक्यमध्ये ॥ ६ ॥

दश अङ्गुल प्रमाण चार-चार सूत्रों से छ अङ्गुल प्रमाण शिक्यक वस्त्र (दोनों पलड़े के वस्त्रों) को बाँधे और दोनों पलड़ों के बीच में छ अङ्गुल प्रमाण कक्ष्य (डंडी) बाँधे ॥ ६ ॥

द्रव्यों के प्रमाण से वृष्टि का ज्ञान—

याम्ये शिक्ये काञ्चनं संनिवेश्यं शेषद्रव्याण्युत्तरेऽम्बूनि चैव ।
तोयैः कौप्यैः सैन्धवैः सारसैश्च वृष्टिर्हीना मध्यमा चोत्तमा च ॥७॥
दन्तैर्नागा गोहयाद्याश्च लोम्ना हेम्ना भूपाः शिक्थकेन द्विजाद्याः ।
तद्वद्देशा वर्षमासा दिशश्च शेषद्रव्याण्यात्मरूपस्थितानि ॥८॥

दक्षिण तरफ के पलडे पर सुवर्ण और उत्तर तरफ के पलड़े पर कूप, नदी या सरोवर के जल के साथ शेष द्रव्य का स्थापन करे। यदि प्रथम दिन की अपेक्षा द्वितीय दिन में कूप का जल बढ़ जाय तो अवृष्टि, नदी का जल बढ़ जाय तो मध्यम वृष्टि और सरोवर का जल बढ़ जाय तो उत्तम वृष्टि होती है। गज दन्त के प्रमाण से हाथी का, गौ, घोड़ा, आदि (गदहा, ऊँट, बकरी और भेड़) के लोम से क्रमशः उन सबों का, सुवर्ण से राजा का, मोम से ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का, देश, वर्ष मास और दिशाओं का तथा अपने-अपने प्रमाण से शेष द्रव्यों का शुभाशुभ ज्ञान करना चाहिये ॥ ७–८ ॥

तुला का लक्षण—

हैमी प्रधाना रजतेन मध्या तयोरलाभे खदिरेण कार्या ।
विद्धः पुमान् येन शरेण सा वा तुला प्रमाणेन भवेद्वितस्तिः ॥ ९ ॥

सुवर्ण का तुलादण्ड (डण्डी) श्रेष्ठ, चाँदी का मध्यम और इन दोनों के अला॰ में खैर की लकड़ी का तुला दण्ड बनाना चाहिये। अथवा जिस बाण से कोई मनुष्य वेधित हुआ हो उस का तुलादण्ड बनाना चाहिये। वह तुलादण्ड बारह अङ्गुल प्रमा॰ का होना चाहिये ॥ ९ ॥

तोले हुये द्रव्यों का शुभाशुभ फल—

हीनस्य नाशोऽभ्यधिकस्य वृद्धिस्तुल्येन तुल्यं तुलितं तुलायाम् ।
एतत्तुलाकोशरहस्यमुक्तं प्राजेशयोगेऽपि नरो विदध्यात् ॥१०॥

दूसरे दिन में तोला हुआ द्रव्य अल्प हो तो उस वर्ष में उसका नाश, अधिक हो

तो वृद्धि और समान हो तो मध्यम फल होता है। यह परम गोपनीय तुला का रहस्य मैंने कहा है। रोहिणी योग काल में भी इसका विचार करे।

यहाँ पर गर्ग—

येषां प्रणमते सारं ते भवन्ति च नामसम्। येषां तु हीयते सारं तेषां नाशं विनिर्दिशेत् ॥

समानि तु समानि स्युस्तुल्या तुलितानि तु ॥

तथा च पराशरः—

सारसेऽम्भसि सस्यानां राशां च विजयोऽधिके।

नाशेऽये मध्यमा सम्पत्कनीयस्यचलोदके ॥

यस्यां दिशि भवेन्माल्यमम्लानं शुचिगन्धिमत्।

तस्यां दिशि विजानीयाद्राज्ञां शिवमनामयम् ॥ १० ॥

पापग्रह के योग से शुभाशुभ फल—

स्वातावपाढास्वथ रोहिणीषु पापग्रहा योगगता न शस्ताः।

ग्राह्यं तु योगद्वयमप्युपोष्य यदाधिमासो द्विगुणीकरोति ॥ ११ ॥

स्वाती, उत्तरापाढा या रोहिणी नक्षत्र गत चन्द्र के साथ यदि पापग्रह (मंगल, शनि, राहु या केतु) का योग हो तो शुभ नहीं होता है।

यहाँ पर गर्ग—

योगे पापैरुपहते प्रजानामशुभं वदेत्। दुर्भिक्षावृष्टिमरकान् सौम्यैः सौभिक्षमादिशेत् ॥ ११ ॥

तीनों योगों में रोहिणी योग की विशेषता—

त्रयोऽपि योगाः सदृशाः फलेन यदा तदा वाच्यमसंशयेन।

विपर्यये यत्त्विह रोहिणीजं फलं तदेवाभ्यधिकं निगद्यम् ॥ १२ ॥

तीनों (रोहिणी, स्वाती और आषाढी) योगों का फल या दो योगों का फल समान हो तो निःसन्देह वही फल कहना चाहिये। यदि तीनों का अलग-अलग फल हो तो अधिकतर रोहिणी योग का फल ही उस वर्ष में कहना चाहिये ॥ १२ ॥

दिशाओं के वश वायु का फल—

निष्पत्तिरग्निकोपो वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा।

बहुजलपवना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः ॥ १३ ॥

उक्त तीनों योगों के समय यदि पूर्व दिशा की हवा चले तो धान्यों की उत्तम निष्पत्ति, आग्नेय कोण की हवा चले तो अग्निकोप, दक्षिण दिशा की हवा चले तो थोड़ी वृष्टि, नैर्ऋत्य कोण की हवा चले तो मध्यम वृष्टि, पश्चिम दिशा की हवा चले तो उत्तम वृष्टि, वायव्य कोण की हवा चले तो अधिक वृष्टि, उत्तर दिशा की हवा चले तो सुन्दर वृष्टि और ईशान कोण की हवा चले तो उत्तम वृष्टि होती है ॥ १३ ॥

आषाढ कृष्ण चतुर्थी का फल—

पूर्वायामाषाढ्यां कृष्णचतुर्थ्यामजैकपादर्क्षे।

यदि वर्षति पर्जन्यः प्रावृट् शस्ता न चेन्न ततः ॥ १४ ॥